प्रकाशक,
बिहारीलाल जैन,
व्यवस्थापक, **हिन्दी-जैनसाहित्य-प्रसारक कार्यालय,**
चन्दावाडी, गिरगाँव-**बम्बई** ।



मुद्रक,
मूलचन्द किसनदास कापडिया,
प्रोप्रायटर-"**जैनविजय**" **प्रेस,**
खपाटिया चकला-**सूरत** ।

साधारण बुद्धिके लोगोंमे धार्मिक श्रद्धा तथा सदाचारकी प्रवृत्ति करानेके लिये कथा-ग्रन्थ बहुत ही अच्छे साधन है। पुण्य और पापके मीठे और कडुए फलोके मनोरंजक तथा सरल उदाहरण उनके हृदयमे हमेशाके लिये अंकित हो जाते हैं। और इस कारण बुरे मार्गमे गमन करनेके लिये वे साहस नही कर सकते। इन कथाओंमें आचार्योंने आटेमे नमककी तरह कहीं कहीं तत्त्वचर्चा भी की है, जिनका ज्ञान पढनेवालोंको सहज ही हो जाता है। इस लिये ये कथा-ग्रन्थ आगामी तत्त्वबोधक ग्रन्थोंमें प्रवेश करनेके द्वार हैं, ऐसा कहनेमे कोई हानि नही है।

यह पुण्यास्रव-कथाकोष इन्ही कथा-ग्रन्थोंमेंसे एक प्रधान ग्रन्थ है। हमारे सम्प्रदायमें इसके पठन-पाठनका सविशेष प्रचार है। बालकसे लेकर वृद्धतक इस ग्रन्थके पढने सुननेमें आनन्द प्राप्त करते हैं। यह देखकर हमारे समाजके परम उदार श्रेष्ठी श्रीमाणिक्यचन्द्र हीराचन्द्रजीकी रुचि इस ग्रन्थके प्रकाश करनेकी हुई। और उन्होंने मुझे इसकी भाषा लिखनेके लिये बाध्य किया।

जिनधर्म सम्बन्धी प्रथमानुयोगके नाना ग्रन्थोसे उद्धृत करके यह 'यथानाम तथा गुणवाला' पुण्यास्रव, कथाकोष ग्रन्थ संग्रह किया गया है। इसके मूल संस्कृत-ग्रन्थकर्त्ता श्रीरामचन्द्र मुमुक्षु हैं, जो श्रीकेशवनन्दि मुनिके शिष्य हैं। ग्रन्थके अन्तमे जो प्रशस्ति दी गई है, उसमे उनके संघ-पट्ट आदिका पूरा पूरा पता मिलता है। श्रीरामचन्द्र मुमुक्षुने शायद यह ग्रन्थ कर्णाटकीय भाषासे उद्धृत किया है। जिन्हे संस्कृतका थोड़ासा भी बोध हो वे सुखपूर्वक इस ग्रन्थके पठन-पाठनसे ज्ञान प्राप्त कर सके, इस लिये ग्रन्थकर्त्ताने बहुत ही सरल संस्कृतमे—सो भी गद्यमे इस ग्रन्थको बनाया है। और प्रत्येक कथाके आरंभमें उस कथाका संक्षेपमे परिचय देनेवाला एक एक श्लोक दिया है

पंडित दौलतरामजी काशलीवालने (आनन्दरामजीके पुत्रने) इस ग्रन्थकी एक भाषाटीका बनाई है, जो प्राय सब जगह मिलती है। परन्तु इसकी भाषा ठेठ ढूँडारी है, जिसे सब देशके हिन्दी जाननेवाले सरलतासे नही समझ सकते। इस लिये सेठजीकी इच्छा इसे वर्तमान हिन्दी-भाषामे प्रकाशित करनेकी हुई। पहले मूल संस्कृत और भाषाटीकासहित तैयार करनेका सेठजीका आग्रह था, और तदनुसार

॥३॥

अनुमान १० फार्मके यह ग्रन्थ मूलसहित ही तैयार हुआ था, परन्तु पीछे संस्कृतसे विशेष उपकार न समझकर यह विचार बदल दिया गया। और निदान केवल भाषामें ही यह ग्रन्थ प्रकाशित किया गया।

जिस समय इस ग्रन्थको बनानेका भार मैने लिया, उसी समय मेरे अशुभ कर्मोंने कुछ ऐसा रस दिया कि आजतक निवृत्ति नही हुई। अनुमान डेढ वर्षमे यह ग्रन्थ तैयार हो सका। इस बीचमें न जाने मुझपर शारीरिक, मानसिक, और कुटुम्ब-सम्बन्धी कितनी विपत्तियाँ आईं। जिनके कारण ग्रन्थके प्रारभमे मेरा जो उत्साह था, वह अन्ततक न रहा। एक वार तो इसके सम्पूर्ण होनेकी आशा ही न रही, इस कारण एक पडित मित्रसे सहायता करनेकी प्रार्थना करनी पडी और उन्होंने कृपा करके इसके मध्यका प्राय एक तृतीयाश भाग तैयार भी कर दिया।

आदिसे अन्ततक सस्कृत मूलग्रन्थकी दो तीन प्रतियोके आधारसे यह टीका लिखी गई है। और जहाँ आवश्यकता हुई है, भाषा-वचनिकाकी भी सहायता ली है। वचनिकाकारके इस विषयमे हम बहुत कृतज्ञ हैं कि उनकी टीकासे अनेक सशयपूर्ण स्थान साफ हो गये है। हमारे मित्रवर्यने वचनिकासे बिलकुल सहायता नही ली है, क्योकि वे सस्कृतके एक अच्छे पडित है। कथाओके प्रारभमे जो श्लोक हैं, उनका हमने पहले हिन्दी-पद्यमें अनुवाद करना चाहा, और १६ पद्य इस प्रकारके बनाये भी, परन्तु पीछेसे मूल श्लोकोंके कवित्वमें विशेष आनन्द नही आनेसे उत्साह भग हो गया। इस लिये फिर मूल श्लोकोंको ही प्रकाशित करके हमने सतोष कर लिया। आशा है कि पाठकगण हमारे इस अपराधको क्षमा करेंगे।

यह ग्रन्थ जितनी सरलभाषामे हो, उतना ही इससे अधिक लाभ हो। क्योंकि इसके पढनेवाले सरलभाषा ही समझ सकते हैं। परन्तु सरल भाषाके लिखनेका अभ्यास न होनेसे प्रयत्न करनेपर भी खेद है कि शायद जैसी चाहिए, वैसी सरल भाषा मै नही लिख सका। तो भी मुझे यह आशा अवश्य है कि पडित दौलतरामजीकी वचनिकासे इसमें अधिक कठिनता नहीं आई होगी। पहले मूलसहित प्रकाश करनेका विचार था, इस लिये पहलेके आठ दश फार्मोंकी भाषा मूलके अनुसार बहुत परतत्रतासे लिखी गई है। उसमे भाषा सुन्दरताके नष्ट होनेकी सभावना है। पाठकोसे हम इसकी भी क्षमा चाहते है।

१ इनमेसे एक प्रति सवत् १५५८ भादोंसुदी ९ की लिखी हुई है। जिसे मरवणपाढ्याने श्रीहेमचन्द्रमुनिको लिखाकर प्रदान की थी। यह प्रति प्राय शुद्ध और कहीं २ सटिप्पण है। दूसरी प्रतिमें अन्तके १५-२० पत्र नहीं है।

श्रीमूलसङ्घसरस्वतीगच्छाम्नायी बीसाहूमडमंत्रेश्वरगोत्रीय स्वर्गवासी सेठ हीराचन्द्र गुमानजीके सुपुत्र और दानवीर सेठ माणिक्यचन्द्रजीके छोटे भाई सेठ नवलचन्द्रजीकी सौभाग्यवती भार्या परसनबाईने अपने पुण्याजली व्रतके उद्यापनके उपलक्ष्यमें इस ग्रन्थका जीर्णोद्धार कराया है। इसके बदलेमें उद्धार करनेवालोंको जितने धन्यवाद दिये जावें, उतने थोडे हैं। जिनवाणीका उद्धार करनेके लिये हमारी जातिके धनाढ्योंको उक्त सेठजीका और उनके कुटुम्बका अनुकरण करना चाहिए कि जिनधर्मकी प्रभावना करनेका सबमें बडा द्वार जैनग्रन्थोंका प्रकाशित करना है।

अन्तमें पाठकगणोंसे इस ग्रन्थमें जो कुछ भूल हो, उन्हें क्षमापूर्वक सुधार करके पढनेकी प्रार्थना करके मैं इस प्रस्तावनाको समाप्त करता हूँ। इत्यलम् विज्ञेषु।

बम्बई।
ता० २४–१०–०७

जिनवाणीका सेवक—
नाथूराम प्रेमी।



द्वितीयावृत्तिकी सूचना।

आज ठीक ९ वर्षके बाद इस ग्रन्थका दूसरा सस्करण प्रकाशित होता है। अनुवादमें संस्कृत शब्दोंका प्रयोग अधिक हुआ है, इसीलिए मेरी इच्छा थी कि उनके बदले बोलचालके शब्द डालकर भाषा और भी सरल कर दी जाय। इसके लिए मैंने प्रयत्न भी किया था। शुरूके ३०–४० पृष्ठ स्वय मैंने और ५०–६० पृष्ठ मेरे साथियोंने ठीक किये थे; परन्तु फिर समय नही मिला और इधर हिन्दी–जैनसाहित्य–प्रसारक कार्यालयके मालिकोंने इसके प्रकाशित करनेमें जल्दी की, इसीलिए आगेके पृष्ठ ज्योंके त्यों रहने दिये गये। प्रकाशक महाशयोंने प्रूफ संशोधन प्रेसके कर्मचारियों द्वारा सावधानीसे कराया है। आशा है कि अशुद्धियाँ न रही होंगी। यदि दृष्टिदोषसे कहीं रह गई हों तो उनके लिए पाटकोंको क्षमा करना चाहिए।

मूल ग्रन्थकी प्रत्येक कथाके आरभमें एक एक श्लोक है। उनमेंसे १६ श्लोकोंका मैंने पद्यानुवाद किया था और उन्हें शुरूकी कथाओंके आदिमें दे दिया था, शेष कथाओंके आदिमें मूल श्लोक ही दे दिये थे; परन्तु अबकी वार वे सब निकाल दिये गये हैं। क्योंकि उक्त श्लोक और उनके पद्य न तो महत्त्वके ही थे और न सुन्दर ही थे। उनकी कोई आवश्यकता भी नही समझी गई।

चन्दावाडी, बम्बई
११–१०–१६

निवेदक,
नाथूराम प्रेमी।



सूचिपत्र ।



पुण्यास्रव कथाकोश।

श्रीवीरं जिनमानम्य वस्तुतत्त्वप्रकाशकम्।
वक्ष्ये कथामयं ग्रन्थं पुण्यास्रवाभिधानकम्॥

अथ पूजाफलवर्णनाष्टक।

(१) मालीकी लड़कियोंकी कथा।

जम्बूद्वीप-पूर्वविदेह-आर्यखंड-अवंतीदेशमें सुसीमा नामक एक नगरी है। वहां नरदत्त नामक सकलचक्रवर्ती राज्य करता था। एक दिन ऋपिनिवेदक (माली) ने आकर सूचना दी कि-हे देव! यहांसे थोड़ी दूर गन्धमादन-पर्वतपर शिवघोप तीर्थंकरका समवसरण आया है। यह सुनकर चक्रवर्ती अपने परिवारके सहित वहां गया और गणधरादिकोंको वन्दना करके मनुष्योंके कोठेमें जा बैठा। इतनेमें वहां एक देव दो देवियोंको लेकर आया और बोला-"हे सौधर्मेन्द्र देव! आपकी ये दो नवीन देवियां हैं।" यह कहकर उसने उन्हें सौधर्म इन्द्रको सोंप दीं। यह देखकर चक्रवर्तीने तीर्थंकर भगवान्से पूछा कि ये यहां पीछेसे क्यों लाई गई? भगवान् तीर्थंकरने कहा कि ये इस

समय किस पुण्यके फलसे उत्पन्न हुई है, सो सुनो। "इसी नगरमें एक माळीके एक माताके गर्भसे उत्पन्न हुई दो कन्या थी। एकका नाम कुसुमावती और दूसरीका पुष्पवती था। ये दोनों प्रतिदिन पुष्पकरंड वनसें फूल तोड़के लाती और घरको आती हुई मार्गमे जिनमन्दिरकी देहलीपर एक एक फूल चढ़ाया करती थीं। सो आज उसी वनमे इन्हे सर्पने काट खाया और ये मरके सौधर्म इन्द्रकी देवी हुई है।" भगवान्‌की ऐसी वाणी सुनकर सब लोग प्रसन्न हुए और पूजामें तत्पर हो गये।

सारांश—पूजनका ऐसा महत्त्व है कि अत्यन्त मूर्ख, व्रतरहित, शूद्रकी कन्याये भी भगवानके मन्दिरकी देहलीपर केवल फूल चढ़ानेके कारण देवगतिको प्राप्त हो गई। फिर यदि सम्यग्दृष्टी व्रती श्रावक अष्टद्रव्यसे और भावसहित भगवान्‌की पूजा करे, तो इन्द्र महेन्द्रकी पदवीको क्यो न प्राप्त होवे? अवश्य ही होवे इसलिये हम सबको प्रतिदिन भक्तिभावसे जिनपूजा करनी चाहिये।

(२) महाराक्षस विद्याधरकी कथा।

लंका नगरीमें एक महाराक्षस नामका राजा था। वह एक दिन मनोहर उद्यानमे जलक्रीडा करनेके लिये गया था। उस उद्यानमे एक सरोवर था। जिसके किसी कमलपुष्पमे फॅसे हुए एक मरे हुए भौरेको देखकर राजाको अतिशय वैराग्य उत्पन्न हुआ। इसके बाद उसनें वहीपर विहार करते हुए किसी मुनिको देखकर पूछा—भगवान्! मेरे पुण्यके अतिशयका क्या कारण है अर्थात् यह कहिए कि मुझको इतना राज्य और वैभव किस पुण्यके फलसे प्राप्त हुआ? यति महाराज कहने लगे—"एक दिन पोदनापुर नगरका राजा कनकरथ जिन भगवानकी पूजा कर रहा था। उस समय वहां तू देशान्तरसे आकर ठहरा था। तेरा नाम प्रीतंकर था और तू भद्र मिथ्यादृष्टी था। सो वहॉ तूने पूजाकी अनुमोदना की; इसलिये उस पुण्यसे आयुके अन्तमे मरकर तू यक्षदेव हुआ। इसके बाद एक समय जब पुण्डरीकनी

वनीमे मुनियोके संघका दावाग्निसे उपसर्ग हो रहा था, तव उसका निवारण करके तू आयुके अन्तमें शरीर छोड़कर पुष्कलावती देशके विजयार्द्धवासी विद्याधर राजा तडिद्वेग और रानी श्रीप्रभाके मुदित नामक पुत्र हुआ। और कुमारावस्थामे ही दीक्षित (मुनिव्रतधारी) हो गया। एक समय तू अपनी उक्त अवस्थामें अमरविक्रम विद्याधरकी विभूतिको देखकर निदानबंधपूर्वक समाधिमरण करके सनत्कुमार स्वर्गमे देव हुआ और वहांसे च्युत होकर तू महाराक्षस राजा हुआ। ” राजा इस प्रकार अपने भवान्तर सुनकर अपने अमरराक्षस और भानुराक्षस पुत्रोंको राज्य देकर मुनि होगया और अन्तमे मोक्षको प्राप्त हुआ।

सारांश—जिनपूजाकी अनुमोदनासे प्रीतंकर मिथ्यादृष्टी भी कुछ समयमे मोक्षगामी हो गया। फिर यदि सम्यग्दृष्टी श्रावक भक्तिभावसहित जिनपूजा करे, तो उनकी मुक्ति क्यो न हो ? अवश्य ही हो।

(३) मेंडककी कथा।

मगधदेशमे राजगृह नामका एक नगर है। एक दिन वहांके राजा श्रेणिकसे वनपालने आकर कहा कि–हे देव ! श्रीमहावीर भगवानका समवसरण विपुलाचल पर्वतपर आया है। श्रेणिक महाराज यह सुनके आनन्दित होते हुए समवसरणमे गये और जिन भगवान्की पूजा तथा गणधरादि यतीश्वरोंकी वन्दना करके अपने कोठेमें जा बैठे और धर्मश्रवण करने लगे। इतनेमे ही वहांपर एक देव आया। उसके मुकुटमें तथा ध्वजामें मेंडकका चिन्ह था और उसका ठाटबाट आश्चर्यकारी था। उसे देखकर राजा श्रेणिकको बहुत अचरज हुआ। इसलिये उन्होने गणधरसे पूछा–भगवान् ! यह क्या ? यह पीछसे आया हुआ कौन है और किस पुण्यके फलसे देव हुआ है ? गणधर कहने लगे–“इसी राजगृह नगरमें सेठ नागदत्त और सेठानी भवदत्ता थी। अपनी आयुके अन्तमें सेठ आर्तध्यानपूर्वक मरके

यह देख किसी सखीने महाराजसे जाकर कहा–"हे देव, जयावतीदेवी न जाने क्यों रो रही है।" यह सुनकर महाराज वहां गये और रानीके आँसुओंको पोंछकर दुःखका कारण पूछने लगे। परन्तु जब रानी कुछ नहीं बोली, तब किसी एक सखीने कहा–"महाराज, दूसरेके बालकोंको देखकर महारानीको अपने पुत्र न होनेका दुःख हुआ है।" रानीको पुत्रकी अभिलाषा हुई है, ऐसा जानकर राजाने कहा–"हे देवि, आओ चलें, जिनालयमें जाकर जिन भगवान्‌की पूजा करें।" इस प्रकार दुःखको भुलानेके लिये वे रानीको जिनमन्दिर ले गये। वहां भगवत्‌की पूजा और ज्ञानसागर मुनिकी वन्दना करके वे धर्मश्रवण करने लगे। पीछे राजाने पूछा–भगवन, इस रानीके पुत्र होगा कि नहीं? तब मुनिने कहा कि–"इसके छह खंडका स्वामी और चरमशरीरी (तद्भवमोक्षगामी) पुत्र होगा।" मुनिनाथके इस वचनसे सन्तुष्ट होकर राजा रानी अपने घर लौट आये।

उसके कितने ही दिनोंके पीछे उनके पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम रत्नशेखर धरके राजा रानी सुखसे रहने लगे और वह पुत्र दिनोदिन बढ़ने लगा। सात वर्षके पीछे उसे जिनालयमें जैनोपाध्यायके निकट पढ़नेके लिये भेजा। सो थोड़े ही दिनोंमे सम्पूर्ण शास्त्र और विद्याओंमें अत्यन्त कुशल होकर रत्नशेखर युवावस्थाको प्राप्त हुआ। वह एक समय चैत्रके उत्सव (वसन्तोत्सव) में जलक्रीडा करनेके लिये वनको गया था। वहां जलक्रीडा कर चुकनेपर मणिमय सिंहासनपर बैठा हुआ विलासिनियों (नृत्य करनेवाली स्त्रियों) का नृत्य देख रहा था उस समय आकाशमार्गसे जाते हुए किसी विद्याधरका विमान उसके ऊपर आया। विमानके अटक जानेसे वह विद्याधर उतरकर नीचे आया, और उसने राजकुमारके दर्शन किये। एक दूसरेके दर्शनसे परस्पर स्नेह उत्पन्न हुआ। उचित संभाषणके अनन्तर दोनों एक आसनपर बैठे। रत्नशेखरने पूछा–"आप कौन है? कहांसे आ रहे है? आपके दर्शनसे मेरे हृदयमें प्रेम उत्पन्न हुआ है। विद्याधरने कहा–"हे मित्र, सुरकंठपुरके राजा जयधर्म और रानी विनयवतीका मै मेघवाहन नामका पुत्र हूं। मेरे पिता मुझे राज्य देकर दीक्षित हो गये है। मै आज स्वेच्छाविहारको जाता था कि आप दिखाई दिये। परन्तु आप कौन है सो कहिये?" रत्नशेखर बोला–"मै इस रत्नसंचयपुरके राजा वज्रसेनका पुत्र हूं, मेरा नाम रत्नशेखर है।" उस

प्रकार दोनोंमें मित्रभाव होनेपर, रत्नशेखरने कहा;-मित्र, मेरी इच्छा है कि मैं सुमेरुगिरके जिनमन्दिरोंके दर्शन करूं।" मेघवाहनने कहा-"तो आइये विमानमें बैठ जाइये, हम दोनों ही वहांको चलें।" रत्नशेखरने कहा-"मैं अपनी साधी हुई विद्याके द्वारा जाना चाहता हूं, आपकी विद्याके द्वारा नहीं।" यह सुनकर विद्याधरने मन्त्र दिया और कहा-इसका आप जप कीजिये। रत्नशेखरने ज्यों ही जप किया, त्यों ही पांचसौ विद्या सम्मुख आकर कहने लगीं,-"आज्ञा दीजिये, हम क्या करें?" तब रत्नशेखर उन विद्याओंके द्वारा अपने मित्रसहित दिव्य विमानोंमें आरोहण करके चल पड़ा और ढाईद्वीपके जिनालयोंकी पूजा करके विजयार्द्धशिखरके सिद्धकूटचैत्यालयपर आया।

भगवानकी पूजा करके वे दोनों सभामंडपमें आकर ज्यों ही बैठे, त्यों ही वहां विजयार्द्धकी दक्षिणश्रेणीके रथनूपुरके राजा विद्युद्वेग और रानी सुखकारिणीकी पुत्री मदनमंजूषा अपनी सखियोंके सहित जिनेंद्र भगवानके दर्शनोंको आई और रत्नशेखरको देखकर उसपर आसक्त हो गई। यह सुनकर उस कन्याका पिता आया और रत्नशेखरको मित्रसहित अपने घर ले गया। बाद उसने वहांके अनेक विद्याधर कुमारोंके भयसे पुत्रीके स्वयंवरका प्रबंध किया। स्वयंवर-मंडपमें मदनमंजूषाने अपने पसंद किये हुए वरके गलेमें माला डाल दी, इससे सम्पूर्ण विद्याधर क्रोधित होकर अपने मंत्रियोंकी सलाह न मान करके युद्ध करनेको तैयार हो गये। परन्तु फिर मंत्रियोंके वचनोंको किसी प्रकार मानकरके उन्होंने अजित नामक दूतको रत्नशेखरके निकट भेजा। उस दूतने जाकर रत्नशेखरको सूचना दी कि,-"हे भूमगोचरी राजा, धूमशिख आदि विद्याधर राजाओंने मुझे आपके निकट भेजा है। वे सब ही आपसे स्नेह करते हैं और कहते हैं कि खेचरेन्द्रकी कन्या मदनमंजूषा हमको सौंपके रत्नशेखर सुखसे रहे, इस लिये कन्या उन्हें सौंप दीजिये।" यह सुनकर रत्नशेखरने मेघवाहनके मुखकी ओर देखकर दूतसे यह कह दिया कि इस प्रकारकी दुर्बुद्धिसे तेरे स्वामियोंके सिर धड़पर नहीं टिकेंगे। तू अभी चला जा! और युद्धके मैदानमें खड़े होनेको उनसे कह दे।"

दूतकी बात सुनकर विद्याधर राजा क्रोधित हो युद्धके मैदानमें सज्जित हो रहे और उनको ठहरे हुए देखकर रत्नशेखर और मेघवाहन भी विद्याशक्तिसे चतुरंग सेना बनाकर विद्युद्वेगके साथ रणभूमिमें आ डटे। विद्याधरोंने अपने अपने वीरोंको युद्ध करनेका इशारा किया और इसी प्रकार रत्नशेखरने भी। तब दोनों ओरके योद्धा परस्पर युद्ध करने लग गये। बहुत समयके बाद जब विद्याधरोंकी पैदल सेना भागने लगी, तब घुड़सवार और रथारोही योद्धाओंने अत्यंत क्रुद्ध होकर एक ही साथ आक्रमण करके रत्नशेखरको घेर लिया। उस समय रत्नशेखरने अपने हाथके धनुषसे अच्छे अच्छे बाणोंको छोड़ा; और अनेक योद्धाओंका घात किया। इसके प्रत्युत्तरमें जब विद्याधरोंने अग्निबाण, नागबाण आदि विद्यामयी बाण छोड़े, तब उन्हे रत्नशेखरने जलबाण, गरुड़बाणादि बाणोंसे नष्ट करके कहा—तुम लोग अब भी समझ जाओ, और मेरी सेवा करके सुखपूर्वक रहो। यह सुनकर वे सब विद्याधर श्रेष्ठ वस्तुओंकी भेट ले लेकर शरणमे आये और लाचार हो आज्ञाकारी राजा बन गये। इसके पीछे रत्नशेखरने जगतको विस्मित करनेवाली विभूतिसहित सबके साथ नगरमें प्रवेश किया और उत्तम मुहूर्तमें मदनमंजूषाका पाणिग्रहण किया।

कितने ही दिनोंके बाद रत्नशेखरको मातापिताके दर्शनोंकी उत्कण्ठा हुई, अतएव वह विद्याधर राजाओंके साथ श्वसुर, स्त्री, और मित्रसहित विमानमे बैठ करके अपने नगरमें आया। पुत्रका आगमन जानके पिता परिवारसहित सम्मुख गया और उसे देखके सुखी हुआ। नगरमें प्रवेश करके रत्नशेखरने सबसे पहले अपनी माताको और फिर पिताको प्रणाम किया। इसके बाद आये हुए विद्याधरोंका आदर सत्कार करके कितने ही दिनोंमे उन्हे विदा किया और आप सुखपूर्वक रहने लगा।

एक दिन रत्नशेखर मेघवाहन और मदनमंजूषाके साथ सुमेरुगिरिपर जाकर जिनालयोंकी पूजा करके एक जिनालयमे बैठा था उसी समय आकाशसे अमितगति और जितारि नामक दो चारणमुनि उतरे। उनकी वन्दना करके धर्मोपदेश श्रवण करनेके बाद रत्नशेखरने पूछा—"मेरे पुण्यके अतिशयका हेतु क्या है और मेघवाहन तथा मदनमंजूषा इन दोनोंपर मेरा विशेष स्नेह क्यो है? इसका कारण कहिये।" यतीश्वर कहने लगे, सुनोः—

"आर्यखंडकी मृणाली नगरीमें श्रीसंभवनाथ तीर्थंकरके तीर्थमें जितारि नामक राजा और उसकी कनकमाला रानी थी। उस नगरका राजपुरोहित श्रुतकीर्ति नामक था। पुरोहितकी वन्धुमती स्त्री और प्रभावती कन्या थी। प्रभावती कन्या राजकन्याके साथ किसी जैनपंडिता (आर्यिका अथवा अध्यापिका) के निकट पढ़ती थी। एक दिन वह पुरोहित अपनी स्त्री वन्धुमतीको लेकर अपने गृहके क्रीडाभवनमें क्रीड़ा करनेके लिये गया था, सो क्रीड़ाके अनन्तर ब्राह्मणीको तो निद्रा आ गई और आप भ्रमण करनेको चला गया। इतनेमें वन्धुमतीके शरीरकी सुगंधपर आसक्त होकर एक सर्प आया और उसने आकर वन्धुमतीको डस लिया। जब वह मर गई, तब पुरोहितने आकर उससे वातचीत करनी चाही किन्तु वह वोली नहीं। जब उसे मालूम हुआ कि मेरी स्त्री मर गई है तब वह बहुत ही शोक करने लगा। यहां तक कि लोगोंको उसका अग्निसंस्कार भी न करने दिया। लोगोंने जब कि श्रुतकीर्ति सो रहा था मौका पाकर ब्राह्मणीका अग्निसंस्कार कर दिया। परन्तु दग्धक्रिया हो जानेपर भी पुरोहितने शोक नहीं छोड़ा। ऐसी दशा देखकर प्रभावती पुत्री उसे मुनिके समीप ले गई। सो मुनिके सम्बोधनसे वह पुरोहित दिगम्बर मुनि हो गया; परन्तु पीछे मंत्र तंत्रोंके झगड़ेमें पड़कर चारित्रसे भ्रष्ट हो गया और मंत्रोंकी सिद्धिमें लग गया। वह अपनी लड़कीको एक गुफामें ले गया और उसकी सहायतासे उसने अनेक विद्यायें सिद्ध कर लीं। लड़की मंत्रोंमें लगनेवाली सामग्री फूल आदि उसके लिए एकठा कर देती थी। विद्याओंके वलसे उसने एक नगर वनाया और उसमें वह तरह तरहके भोग भोगता हुआ रहने लगा। उसकी यह दशा देखकर पुत्री जब उससे कुछ कहती थी, तब वह कहता था कि पुत्री, मुझे मत समझा। परन्तु वह नहीं मानती और धर्मोपदेश दिया ही करती। इससे तंग आकर श्रुतकीर्तिने उसे अपने विद्यावलसे ले जाके एक अटवीमें छोड़ दी। प्रभावती उस अटवीमें धर्मभावनापूर्वक रहने लगी। इसके कुछ दिनों वाद श्रुतकीर्तिने पुत्रीको देखनेके लिये उसके पास एक 'विद्या' भेजी, सो वह विद्या उससे जाके कहने लगी, "हे प्रभावती, जहां तुझे अच्छा लगे मैं तुझे वहीं ले जाऊंगी, कह कहां जाया चाहती है?" प्रभावतीने कहा "कैलासको ले चलो" तब विद्या उसे ले गई और कैलासमें ठहराके चली आई। वहां प्रभावती सम्पूर्ण जिनालयोंका पूजन स्तवन करके एक जिनालयमें जा वैठी।

इतनेमें भगवती पद्मावती वहां आई और भगवानकी वन्दना करके मन्दिरमेंसे ज्यों ही निकलने लगीं, त्यों ही उन्होंने पुत्रीको देखकर पूछा—"तू कौन है?" कन्याने इसके उत्तरमें जबतक अपना सब हाल कहा, तबतक सम्पूर्ण देव भी वहां आ गये। उन्हें देखकर कन्याने पद्मावतीसे पूछा—"हे देवी, ये सब देव यहां क्यों आये हैं?" भगवतीने कहा—"आज भादों सुदी पंचमीका दिन है। इन दिनोंमें पुष्पांजलिव्रतका विधान होता है। अतएव व्रतका उत्सव करनेके लिये ये सब आये हैं।" यह जानकर प्रभावतीने कहा,—"तो मेरे लिये पुष्पांजलिव्रतका स्वरूप बतलाइये।" देवीने कहा—"कहती हूं सुन—" भादों, कुँआर, कार्तिक, अगहन, पूष, माघ, फागुन और चैत इन आठ महीनोंमेंसे किसी भी महीनेकी सुदी पंचमीके प्रातःकालसे इस व्रतका प्रारंभ होता है। उस दिन उपवास रहता है और प्रत्येक प्रहरमें चौबीस तीर्थंकरोंका अभिषेक पूजन करना होता है। पूजनके समय भगवानके आगे चौबीस तन्दुलके पुंजोंकी स्थापना करे, फिर उन चौबीस पुंजोंको यक्षि देवियोंके बारह पुंजोंसे घेर दे, और चौबीस तीर्थकरोंके स्तोत्र पाठको पढ़ते हुए उनपर पुष्पांजली क्षेपण करे।

रातके समय जाग करके दिनकी नाईं पूजनादि करके दूसरे दिनके दोपहरतक पुष्पांजलीव्रतकी विधि करे अर्थात् जैसी पहले दिन पूजा, अभिषेक, तथा चौबीस पूंज रखकर पुष्पांजलिक्षेपण आदि विधि की गई थी, उसीके अनुसार दोपहरतक करे। पश्चात् पारणेमें चौबीस यतीश्वरोंको आहारादि तथा उचित उपकरण पुस्तक पिच्छि कमंडलादि देवे। यदि चौबीस यतियोंकी प्राप्ति न हो, तो पांच अथवा एक ही यतिको दे। इसके सिवाय दो सुहागनी पुण्यवती स्त्रियोंका भोजन वस्त्रादिसे सत्कार करके उन्हें एक एक बिजौरा देवे। इस प्रकार चार दिन पुष्पांजलिव्रतकी विधि करके नवमीको उपवास करे और उसी प्रकार अभिषेकादिक करे। फिर रत्नोंकी अंजलि क्षेपण करे। यदि रत्न नहीं मिलें तो पांच प्रकारके फूलोंकी अंजलि क्षेपण करे। इस प्रकार तीन वर्ष तक विधिपूर्वक यह व्रत करे और फिर उद्यापन करे। उद्यापनमें चौबीस तीर्थकरोंकी चौबीस प्रतिमा तैयार कराके जिनमन्दिरोंको देवे। पुस्तकादिक लिखाके ऋषि मुनियोंको भेट करे और चारों वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंको तथा चारो संघों अर्थात् यति, आर्यिका, श्रावक,

श्राविकाओंको यथाशक्ति भोजनादिक करावे। इसके फलसे स्वर्गादि सुख प्राप्त होते हैं। उद्यापनादि करनेकी शक्ति न होनेपर तीन वर्षके बदले पांच वर्ष सोनेके रंगके समान केशरसे रंगे हुए अक्षत पुष्पांजलिके संकल्पसे क्षेपण करनेसे भी उक्त फल अर्थात् स्वर्गादि सुख प्राप्त होते हैं।" यह सुनकर कन्याने कहा–"मै इसे ग्रहण करती हूं।" तब देवीने कहा–"ग्रहण करो और मनुष्यत्वको सफल करो।" इसके पश्चात् पद्मावतीने पांच दिन वहीं रहकर जैसा कि ऊपर कहा गया है उसी प्रकार उससे विधिपूर्वक पुष्पांजलि व्रत कराया फिर सम्पूर्ण देवोंके चले जानेपर पद्मावती देवीने प्रभावतीको उठाकर मृणालपुरमें पहुंचा दिया। सो वहां उसने भूतिलक जिनमन्दिरमें प्रवेश करके जिनदेवकी वन्दनापूर्वक त्रिभुवनस्वयभूं ऋषिके निकट दीक्षा मांगी। ऋषीश्वरने कहा–"तूने बहुत अच्छी याचना की! क्योंकि अब तेरी आयु केवल तीन ही दिनकी बाकी है।" तब दीक्षा लेकर प्रभावती पुष्पांजलिका व्रत करती हुई रहने लगी। इसी समय उसके पिताको चिन्ता हुई कि प्रभावती न जाने कहाँ होगी और उसकी क्या दशा होगी, इस लिये उसने इसका पता लगानेके लिए अवलोकिनी विद्याको भेजा।

जब विद्याने लौट कर प्रभावतीकी दीक्षादिकी बात कही, तब श्रुतकीर्तिने पुत्रीको अपने समान ही चारित्रभ्रष्ट करनेकी इच्छासे अपनी विद्यायें भेजीं; परन्तु वे शान्तमूर्ति प्रभावतीके तपको नष्ट करनेमे किसी प्रकार समर्थ नहीं हुई। उनके तरह तरहसे उपसर्ग करनेपर भी वह अचलाचित्ता कन्या धर्मध्यानमें स्थित रही अर्थात् रंचमात्र भी श्रद्धानसे च्युत नहीं हुई और तब उसके व्रतके प्रभावसे धरणेन्द्र अपनी पद्मावतीदेवी सहित वहां आ पहुंचा, जिसे देखते ही वे सब विद्यायें नष्ट हो गईं। इतनेहीमें आयु पूर्ण हो जानेसे उस कन्याका शरीर छूट गया और वह कठिन तपस्याके फलसे अच्युतस्वर्गके पद्मावती विमानमें पद्मनाभ नामक देव हुई। यह पद्मनाभ अपने पूर्वभवका स्मरण करके मध्यलोकमे आया और पूर्वजन्मके पिता श्रुतकीर्तिको समझाकर और उसे फिरसे पहिलेके गुरु त्रिभुवनस्वयंभूके निकट दीक्षा दिलाकर चला गया। पीछे श्रुतकीर्ति भी समाधिपूर्वक देहत्याग करके उसी अच्युतस्वर्गके प्रभास विमानमें प्रभास नामक देव हो गया। पद्मनाभ देवको उस अच्युत स्वर्गमे अनेक महादेवियाँ प्राप्त हुईं, जिनमें एक पद्मिनीदेवी थी। वह उसे अत्यन्त

प्यारी थी। उसके साथ बहुत कालतक सुख भोगके आयु बीत जानेपर तू रत्नशेखर उत्पन्न हुआ, प्रभासदेव मेघवाहन हुआ और वह पद्मिनी महादेवी मदनमंजूषा हुई। यही तुम तीनोंके स्नेहका कारण है।"

इस प्रकार रत्नशेखरने अपने भवान्तर सुने। उसके हृदयमें पुष्पांजलि व्रतका महत्त्व बैठ गया। उसने इस व्रतको भक्तिपूर्वक ग्रहण कर लिया और अपने नगरमें आकर सुखसे रहने लगा।

एक दिन वज्रसेन (रत्नशेखरके पिता) सिंहासनपर विराजमान थे। उस समय उन्हें वनपालने एक कमलका फूल लाकर दिया। उस कमलमें एक मरा हुआ भौंरा बन्द था। सो उसे देखते ही महाराजको वैराग्य उत्पन्न हुआ, और रत्नशेखरको राज्य देकर उन्होंने एक हजार राजाओंके साथ यशोधर मुनिके समीप दीक्षा ले ली। इधर रत्नशेखरके आयुधागार (हथियार-घर)में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। वह दिग्विजय करनेको निकला और जिससमय छह खंड पृथिवीको वश करके अपने नगरको आया उसी समय सुना कि पिता वज्रसेन मुनिको केवलज्ञान प्राप्त हुआ है। यह सुनते ही वह सबके साथ वन्दना करनेको गया। वहांसे आकर अपने मित्र मेघवाहनको सम्पूर्ण विद्याधरोंका स्वामी बनाकर राज्य करने लगा। कुछ दिनोंके बाद मदनमंजूषा महारानीके गर्भसे उनके कनकप्रभनामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

यह रत्नशेखर चक्रवर्ती निन्यानवे लाख, निन्यानवे हजार, नौसौ निन्यानवे वर्षपूर्व राज्य करके एक दिन रात्रिको उल्कापात (तारेका टूटना) देखकर वैराग्यको प्राप्त हो गया और उसने कनकप्रभ पुत्रको राज्य देकर मेघवाहनादि बहुतसे क्षत्रियोंके साथ त्रिगुप्तमुनिके निकट दीक्षा ले ली। तपस्याके प्रभावसे उसे केवलज्ञान प्राप्त हुआ और साथ ही मेघवाहन भी मुक्त हो गया। मदनमंजूषादि अर्यिका और अन्य क्षत्रिय मुनि तपस्या करके पुण्यके अनुसार यथोचित स्वर्गोंमें देव हुए। देखिये; एक बार भी जिनपूजा करके ब्राह्मणकी पुत्री इस प्रकार वैभवको प्राप्त हुई, फिर निरन्तर जिनपूजाके फलका तो पूछना ही क्या है?

---

(५) भूषणवैश्यकी कथा।

जब श्रीरामचन्द्रजी रावणको मारके अयोध्यामें आये तब भरतसे बोले-" तुम्हें जो नगर अच्छा लगे वही ले लो और सुखसे रहो। " भरतने कहा—हे महाप्रसाद, मुझे तो त्रिलोकशिखर अर्थात् मोक्षनगर अभीष्ट है, सो उसे ग्रहण करना चाहता हूं। तब रामने कहा-" उसे तो कुछ समय राज्य करनेके बाद मेरे साथ ही ग्रहण करना। इसके उत्तरमें भरत यह कहकर जाने लगे कि-" इसमें पहिले दो बार अन्तराय आ चुका है, अतएव अभी ग्रहण करता हूं, क्षमा कीजिये "। तब लक्ष्मणने हाथ पकड़ लिया और रामने उन्हें यह कहकर बिठा लिया कि जब मैं कहूं तब जाना। इसके बाद रागभावोंकी वृद्धि करनेके लिए-उनके वैराग्यको मन्द करनेके लिए उन्हें रणवासकी विलासिनी स्त्रियोंके साथ जलक्रीड़ा करनेके लिए भेज दिया। परन्तु इसमें भरतका मन नहीं लगा। वे सरोवरमें ही अनुप्रेक्षाओंका चिन्तवन करने लगे। इतनेमें उन्होंने देखा कि त्रिलोकमंडन हाथी राजमहलके मूलस्तंभसहित स्त्रीजनोंको भय उत्पन्न करता हुआ आ रहा है। वह राम लक्ष्मणकी भी डांट नहीं मानता था परन्तु भरतने उसे बातकी बातमें वश कर लिया। तब उपशांतचित्त होकर हाथी भरतको अपनी पीठपर बैठाके नगरमें ले आया। लोग इस घटनासे बड़े आश्चर्यमें हुए और हाथीने उसी दिनसे अन्न पानी ग्रहण करना छोड़ दिया। महावतोंने इस बातको रामचन्द्रजीसे कहा। तब उन्होंने जाकर उसे बहुत समझाया परन्तु उसने कुछ भी नहीं खाया पिया। इससे महाराज रामचन्द्रादिको चिन्तायुक्त हुए तीन दिन बीत गये। चौथे दिन वनमालीने आकर सूचना दी कि महाराज, आपके पुण्योदयसे महेन्द्र बागमें भगवान् देशभूषणका समवसरण आया है। यह सुनके जिस प्रकार खजानेको पाकर धनहीन पुरुष प्रसन्न होता है, उसी प्रकार महाराज रामचन्द्र हर्षित होकर परिजनों सहित वन्दना करनेको गये और वन्दना करके मनुष्योंके कोठेमें जा बैठे। पदार्थोंका निरूपण हो चुकनेपर उन्होंने पूछा-" भगवान्, भरतकी ताड़नाके पश्चात् त्रिलोकमंडन हाथीने

कवलादिका त्याग कर दिया है, इसका क्या कारण है ? " भगवान्ने कहा—" [1]जातिस्मरण " तब भवसम्बन्धके निरूपण करनेमें अत्यन्त प्रसन्न मुनिराज भरत और हाथीके भवान्तरोंको कहने लगे;—

इसी अयोध्या नगरीमें क्षत्री सुप्रभ और उसकी स्त्री प्राह्लादिनीके सूर्योदय और चंद्रोदय नामके दो पुत्र हुए। उन्होने आदिनाथस्वामीके साथ दीक्षा धारण की, परन्तु मरीचिके साथ वे दीक्षाभ्रष्ट हो गये। इस कर्मके फलसे अनेक भवपर्यन्त तिर्यच गतिमे भ्रमण करके चन्द्रोदय तो हस्तिनापुरके राजा हरिपति और रानी मनोहरीके कुलंकर नामक पुत्र हुआ जिसका व्याह श्रीदामा नामक राजपुत्रीके साथ हुआ। इधर सूर्योदय राजमंत्री विश्वावसु और उसकी स्त्री अग्निकुंडाके मूढश्रुति नामक पुत्र हुआ। पश्चात् कुलंकर राजा हुआ और मूढश्रुति मंत्री। एक दिन कुलंकर तपस्वियोकी पूजा करनेके लिये जा रहा था कि मार्गमे अभिनन्द मुनि मिल गये। सो उनकी वन्दना करके और धर्मश्रवण करके कुलंकरने श्रावकके व्रतोंका ग्रहण किया। उस समय मुनिने कहा—" एक वृत्तान्त सुननेके योग्य है कि तेरा महारम्भ नामक पिता तपस्वीके वेपमे मरकर तपस्वियोंके आश्रमके पास सूखे वृक्षकी कोटरमे सर्पकी पर्यायको प्राप्त हुआ है। " मुनिके इस प्रकार कहने और उसीके अनुसार बताये हुए स्थानमें सर्पको देखनेसे कुलंकर और भी दृढव्रती हो गया। परन्तु पीछे उन ग्रहण किये हुये व्रतोको मूढश्रुतिने नष्ट कर दिये। और फिर वे दोनो व्यभिचारिणी श्रीदामा रानीके द्वारा मारे गये और क्रमसे खर्गोश-नेवला, चूहा-मोर, सर्प-हरिण, हाथी-मेंडक, हुए।

यह पिछला मेंडक हाथीके पैर तले दब कर तीन वार मेंडक ही हुआ। चौथीवार उसी हाथीके पैरसे मरकर केकड़ा हुआ और वह हाथी विलाव हुआ। फिर केंकड़ा हुआ, तो कौएने खा लिया, इससे मरकर खरगोश हुआ। फिर सर्प मच्छ इत्यादि अनेक योनियोमे भ्रमण करके राजगृह नगरमे वह्रासननामक ब्राह्मण और उल्काहनामके स्त्रीके मूढश्रुति मंत्रीका जीव तो विनोद नामक पुत्र हुआ और कुलंकर राजाका जीव विनोदका रमण नामक छोटा भाई हुआ। सो विद्यार्थी होकर देशान्तरको गया और कुछ समयमे वहांसे विद्याका पारगामी होकर लौटा। रात्रिमें अपने नगरके

[1] अनेक जीवोंको कारणवशात् पूर्वजन्मका स्मरण हो जाता है, इसको जातिस्मरणज्ञान कहते हैं।

समीप ही एक यक्षके मन्दिरमें ठहर गया। विनोदकी समिधा नामक स्त्री उस दिन इसी मन्दिरमें अपनें नारायणदत्त नामक जारसे मिलनेकें लिये आई, और रमणके अचानक मिल जानेसे उसके साथ बात करने लगी। इतनेमें उसका पति विनोद भी वही आ पहुँचा। उसको इसके व्यभिचारका पता लग गया था। उसने समझा कि-"यही इसका जार है" और अपने भाईको मार डाला। पीछे वह अपनी स्त्रीके साथ घर आया, और वहां उसके द्वारा आप भी मारा गया। इसके वाद ये दोनों भाई चारो गतिमें भ्रमण करके एक बार भैसा हुए और भीलोकी अग्निसें जलके मरकर भील हुए और फिर हरिण हुए। इन हरिणोंकी माताओंको मारके किसी शिकारीने इन्हें जीता हुआ पकड़ लिया और पाल करके वड़ा किया। एक समय स्वयंभूति नारायण विमलनाथ केवलीकी वन्दना करके जा रहे थे। उन्होने शिकारीको देखा और उससे धन देकर इन दोनों हरिणोको ले लिया, तथा अपने घर लाकर देवपूजाके गृहके पास वांध दिया। वहां रमणचर हरिण तो शान्तिसे मरकर स्वर्गको गया और दूसरा तिर्यंच गतिमे भ्रमणकर पल्वल देशके काम्पिल्य नगरमें धनदत्त नामक वनिया हुआ। वनियेकी धारिणी नामक स्त्री थी। उसके वह रमणचरका जीव स्वर्गसे आकर भूषण नामक पुत्र हुआ।

धनदत्तके अठारह करोड़का धन था। उसे भय था कि यदि यह लड़का मुनिके दर्शन करेगा तो वैरागी हो जायगा, इसी कारण उसने उसे सर्वतोभद्र नामक विशाल महलमें रक्खा। जहॉ किसी मुनि आदिका जाना नही हो सकता था। भूषणकुमार उसमें सुरकुमारोके समान रहने लगा। एक वार भट्टारक श्रीधर केवलीकी पूजाको जाते हुए देवोको देखकर उसे जातिस्मरण हो गया। वह गुप्तवेशसें निकलकर समवसरणकी ओर चल दिया। वीचमे थक करके विश्रामके लये वैठा था कि उसके शरीरमेसे निकलती हुई सुगन्धिमे आसक्त होकर एक सर्पने आकर उसे डस लिया। और तब वह माहेन्द्रस्वर्गमे उत्पन्न हुआ। उधर इसका पिता धनदत्त मोहके कारण तिर्यंचगतिरूपी समुद्रमे पड़ गया। इसके वाद भूषण माहेन्द्रस्वर्गसे आकर पुष्करार्द्ध द्वीपके चन्द्रादित्यनगरके राजा प्रकाश और रानी यशोमाधवीके जगद्युति नामक पुत्र हुआ। जगद्युति सत्पात्रदानके पुण्यसे देवकुरु भोगभूमिमे उत्पन्न हुआ। फिर वहांसे स्वर्ग गया, और वहांसे चयकर जम्बूद्वीप-

पश्चिमविदेह–नंद्यावर्तपुरके स्वामी सकलचक्रवर्ती अचलवाहन और महाराणी हरिणीके अभिराम नामक पुत्र हुआ। वहां चारहजार स्त्रियोंका पति होकर भी वह रागरहित रहा। पिताने तपश्चरण करनेका निषेध किया, इसलिये वह गृहमें ही दुर्धर अणुव्रतोंका पालनकरके ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें उत्पन्न हुआ।

वह धनदत्त जो कि हरिण था, भ्रमण करके पोदनापुरमें अग्निमुख नामक वैश्य और उसकी भार्या शकुनाके मृदुमति नामक पुत्र हुआ। वह पढ़ा लिखा तो कुछ भी नहीं, सातों व्यसनोंमें लिप्त हो गया। लोगोंके उलहनोंसे दुखी होकर पिताने उसे घरसे निकाल दिया। तब वह देशान्तरमें कुछ पढ़ लिखकर जवान होनेपर आया और परदेशीके वेशसे अपने घर पहुंचा। उसने अपनी मातासे पानी मांगा। माताने उसे पहचाना नहीं, परदेशी समझकर पानी पिलाने लगी। उस समय उसे रो आया। मृदुमतिने पूछा–माता, तुम क्यों रोती हो? माताने कहा, तुम्हारे सरीखा मेरा भी एक पुत्र देशान्तरको चला गया है। मृदुमतिने कहा–वह तुम्हारा पुत्र मैंही हूं। और कुछ निशानी बताई। तब माता पिता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे बत्तीस करोड़की द्रव्यका स्वामी बना दिया। परन्तु उस संपूर्ण द्रव्यको वसंतरमणा और अमररमणा वेश्यायें खा गईं, तब मृदुमति चोरी करने लगा। एक दिन वह शशांकपुर नामक नगरको गया और रात्रिको राजभवनमें घुसकर उसने महाराजके शयनगृहमें प्रवेश किया। उस दिन महाराज नन्दिवर्धनने शशांकमुख मुनिके मुखसे धर्मोपदेश सुना था; उससे उन्हें अत्यन्त विरक्तता हो गई थी। इसलिये अपनी रानीको समझा रहे थे कि, मैं प्रातःकाल जिनदीक्षा लूंगा, तुझे शोक नहीं करना चाहिये। राजाका वैराग्यसे भरा हुआ वह उपदेश सुनकर मृदुमति चोरी करना तो भूल गया और विरक्त होकर दूसरे ही दिन मुनि हो गया। वह ग्यारह वर्ष तक मुनिसंघमें तपस्या करके बारहवें वर्ष एकाकी (अकेला) विहार करने लगा।

आलोक नामक नगरके बाहिर एक पर्वतपर गुणसागर मुनि चौमासेका योग धारण करके विराजमान थे। उनकी जिस समय प्रतिज्ञा पूरी हुई, उस समय पूजाके लिये देव आये। उस नगरके लोग बड़ा भारी आश्चर्य करके कहने लगे–आज क्या कारण है जो देवलोकसे देव आ रहे हैं और सैंकड़ों आदमी पता

लगानेके लिए पर्वतकी तरफ दोड़े; परंतु उनके पहुंचनेके पहले ही गुणसागर भट्टारक आकाशमार्गसे चले गये, लोगोंने उन्हें जाते हुए देखा भी नहीं। और उधर चर्याके लिये अकेले आये हुए मृदुमति मुनिको देखकर समझा कि ये ही वे गुणसागर भट्टारक है, इनहीकी पूजाके लिये देव आये थे। इसलिये वे नगरनिवासी उनकी पूजा करने लगे। मृदुमति मुनिने जान लिया कि ये लोग मुझे गुणसागर जान रहे हैं, परन्तु कहा नहीं कि मै गुणसागर नहीं हूं दूसरा मुनि हूं। अतएव उस समय परिणामोंकी ऐसी मलिनतासे तिर्यचगति नाम कर्मका उपार्जन करके आयु पूर्ण होनेपर मृदुमति ब्रह्मोत्तर स्वर्गको गये। वहांपर अभिराम और मृदुमति मिल गये और उन दोनोंमें पक्का स्नेह हो गया। स्वर्गकी आयु पूरी करके अभिरामका जीव भरत और दूसरे मृदुमतिका जीव त्रिलोकमंडन हाथी हुआ।

इस प्रकार हाथीके जातिस्मरणका कारण सुनके भरतको बड़ा आश्चर्य हुआ। उनका वैराग्य फिर चेत गया और वे श्रीरामचन्द्रादि गुरुपुरुषोंसे क्षमा कराके मुनि हो गये। उनकी माता कैकेयीने भी तीनसौ राजपुत्रियोंके साथ पृथिवीमती अर्जिकाके पास दीक्षा ले ली। इधर हाथीने श्रावकधर्मको ग्रहण करके देशमे भ्रमण करना आरंभ किया। प्रासुक आहार पानी ग्रहण करते हुए और अत्यन्त कठिन व्रतादिकोंको पालते हुए अन्तमें उसने ब्रह्मोत्तर स्वर्गको प्राप्त किया।

उस देशके रहनेवाले लोगोंको यह विश्वास होगया कि यह देव है, इसीसे हमारे देशमें रोगादिक नहीं हुए। और तब वे सब उस हाथीकी प्रतिमा बनाकर विनायकके नामसे पूजने लगे, जिसकी चाल अबतक चली जाती है। अनेक लोग हाथीकी मूर्ति बनाकर अब भी उसे पूजते है।

भरतमुनिको संयमके फलसे चारणादिक अनेक ऋद्धियां प्राप्त हुई। वे बड़े तपस्वी हुए और अन्तमें केवल ज्ञानको उत्पन्न करके मोक्षमहलमें जा विराजे। इसप्रकार भूवण वैश्य जो अत्यन्त अविवेकी था, पूजा करनेकी इच्छामात्रसे ऐसे वैभवको प्राप्त हो गया तब नित्यपूजा करनेवाले विवेकी पुरुषोंके फलका तो कहना ही क्या है?

(६) करकंडुकी कथा।

कुंतलदेशके तेरपुर नगरमें नील और महानील नामके दो राजा थे। उनके नगरमें एक वसुमित्र नामका सेठ था, जिसकी स्त्रीका नाम वसुमती था। वसुमित्रके घर एक धनदत्त नामक ग्वाला रहता था। उसे एक दिन एक जंगलमे भ्रमण करते समय एक तालाव मिली और उसमे उसे एक हजार पांखुरीका कमल दिखलाई दिया। उसे उत्कंठा सहित तोड़के ज्यों ही वह चलने लगा कि वहां एक नागकन्याने प्रगट होकर कहा कि—" देख, इस फूलको उसे भेट करना जो सबसे उत्कृष्ट हो।" ग्वाला यह वात स्वीकार करके कमल सहित अपने घर आया और उसनें अपने स्वामीसे यह सब हाल कह दिया। इसके वाद उसके स्वामीने यह वृत्तान्त राजासे कहा। तब राजा ग्वाला और सेठको साथ लेकर सहस्रकूट चैत्यालयको गया। उसने वहाँ सुगुप्ति मुनिसे पूछा—" भगवन्, सबसे अच्छा कौन है ?" उन्होने कहा, " इस लोकमें जिनदेव ही सर्वोत्कृष्ट है।" यह सुनके ग्वालाने जिनदेवके आगे खड़े होके कहा—" हे सर्वोत्कृष्ट, कमलं गृहाण " और वह कमलका फूल चढ़ा दिया।

यहां एक दूसरा वृत्तान्त है। श्रावस्ती नगरीमे सागरदत्त सेठ और नागदत्ता नामकी उसकी स्त्री थी। सागरदत्तने अपनी इस स्त्रीको सोमशर्मा ब्राह्मणमे अनुरक्त जानकर दीक्षा ले ली और तपस्याके प्रभावसे स्वर्गधाम पाया। पीछे स्वर्गसे चयकर वह चम्पापुरीके राजा वसुपाल और रानी वसुमतीके दन्तिवाहन नामका पुत्र हुआ।

उधर नागदत्ताका जार सोमशर्मा ब्राह्मण मरकर कलिंग देशमें नर्मदातिलक हाथी हुआ। सो उसे दन्तपुरके राजा वलवाहनने पकड़कर वसुपाल राजाके पास भेटके तुल्य भेज दिया। वलवाहन वसुपालका आश्रित राजा था।

व्याभिचारिणी नागदत्ता भी मर गई और वहुत कालतक भ्रमण करके ताम्रलिप्त नगरीमें वसुदत्त वणिककी स्त्री हुई। इस जन्ममें भी उसका नाम नागदत्ता हुआ। इस नागदत्ताके दो पुत्रियां हुई, एक धनवती और दूसरी धनश्री।

पहली धनवतीको नागालन्दपुरके वैश्य धनदत्त और उसकी स्त्री धनमित्राके धनपाल नामक पुत्रने और दूसरी धनश्रीको कोशाम्बीपुरके वैश्य वसुपाल और वसुमतीके पुत्र वसुमित्रने व्याही।

वसुमित्र सेठ जैन था, इसलिये उसके संसर्गसे धनश्री भी जैनी हो गई और इसी समय मोहके वश उसकी माता नागदत्ता भी उसके पास आई थी सो धनश्रीने अपने साथ उसे भी मुनिके पास ले जाकर अणुव्रत ग्रहण करा दिये। पीछे नागदत्ता अपनी वड़ी पुत्री धनवतीके पास गई। धनवती बौद्धधर्मकी माननेवाली थी, इसलिये वहां उसने अपनी माको बौद्धभक्त वना ली, अणुव्रत वगैरह सव छुड़ा दिये। इसके वाद नागदत्ता जव धनश्रीके पास गई, तव फिर जैनी हो गई। परन्तु धनवतीने उसे वहकाकर बौद्ध फिर वना ली। इस प्रकार काललब्धिसे उसने तीन वार अणुव्रत ग्रहण किये और तीनों वार धनवतीने उन्हें नष्ट करा दिये। परन्तु चौथी वार वह अणुव्रतोंमें अटल हो गई, धनवतीका बौद्धमंत्र फिर उसके ऊपर न चला। निदान जैनधर्मको पालते हुए कालान्तरमें उसकी मृत्यु हो गई और कोशाम्बीके राजा वसुपाल और रानी वसुमतीके वह पुत्री हुई।

यह पुत्री ऐसे बुरे मुहूर्तमें उत्पन्न हुई कि, राजाने उसे एक मंजूषा (संदूक) में रखके अपने नामकी मुद्रा (मुहर) लगाके यमुनामें वहा दी। यमुना नदी गंगामें मिलकर पद्मद्रहमें जाके मिली है, सो वह मंजूषा वहती हुई पद्मद्रहमें जा पहुंची। पद्मद्रहके किनारे कुसुमपुर नामक नगर है। वहांके कुसुमदत्त मालीने वह मंजूषा देखकर निकाल ली, और घर लाकर अपनी कुसुमवती स्त्रीको सोंप दी। कुसुमवतीने उस कन्याको पाकर वड़ी खुशी मनाई और पद्मद्रहमें उसे पाई थी, इस कारण उसका नाम पद्मावती रखके पालन पोषण करना प्रारंभ कर दिया। पद्मावती जिस समय यौवनवती हुई, उस समय उसके रूप लावण्य और गुणोंकी प्रशंसा सुनकर दन्तिवाहन राजकुमार कुसुमपुरमें आया और अपने नेत्रोंसे उसके अपूर्व स्वरूपको देखकर मोहित हो गया। उसने मालीसे पूछा—"सच वतला, यह कन्या किसकी है?" मालीने वह मंजूषा जिसमें पद्मावतीको पाया था, राजकुमारको लाके दिखलाई, और कहा—"मैने तो इसे इसमें वन्द पाया था; इसके सिवाय मै और कुछ नहीं जानता। राजकुमारने मंजूषामें लगी हुई मुद्रा (मुहर) देखकर

जान लिया कि यह राजवंशकी पुत्री है। इस कारण उसके साथ वड़ी खुशीसे विवाह कर लिया और उसे लेकर अपने नगरमे आया। पद्मावती अपने पतिकी अत्यन्त प्यारी हो गई।

कुछ दिनोंके पीछे राजा वसुपाल अपने सिरके सफेद वाल देखके वैराग्यको प्राप्त हो गया और अपने पुत्र दन्तिवाहनको राज्यभार सोपके जिनदीक्षा ले आयुके अन्तमे शरीर छोड़कर स्वर्गमे उत्पन्न हुआ।

एक दिन पद्मावती रानी चौथे स्नानके पीछे, अपने पति दन्तिवाहनके साथ सोती थी। उसे पिछली रातमे सिंह, हाथी, और सूर्य स्वप्नमे दिखलाई दिये। तव दूसरे दिन राजासे उन स्वप्नोंका हाल कहकर पूछा कि "इसका क्या फल है?" उन्होने कहा,–तेरे सिंहके दर्शनसे प्रतापी, हाथीके देखनेसे क्षत्रियोंमे श्रेष्ठ, और सूर्यदर्शनसे प्रजारूपी कमलोंको प्रमुदित करनेवाला पुण्यवान् पुत्र उत्पन्न होगा। स्वप्नका ऐसा सुन्दर फल सुनकर पद्मावती वड़ी प्रसन्न हुई।

तेरपुर नगरका वह ग्वाला जिसने भगवान्‌को वह हजार पांखुरीका कमल चढ़ाया था, एक दिन सरोवरमें तैरनेके लिये घुसा था, सो सैवालमे उलझके मर गया और पद्मावती रानीके गर्भमें आया, जिसके कि आगमनमें पद्मावतीको तीन स्वप्न हुए। ग्वालाके मर जानेसे वसुमित्रको वड़ा वैराग्य हुआ। उसकी अन्तःक्रिया करके तत्काल ही सुगुप्ति मुनिके निकट उसने दीक्षा ले ली, और तपस्या करके स्वर्गधाम पाया।

इधर गर्भके दिन वढ़नेपर पद्मावती रानीको दोहला उत्पन्न हुआ कि जिस समय मेघोंसे आकाश घिरा हुआ हो, विजली चमक रही हो, मेह वरस रहा हो, उस समय पुरुषवेषमे मै स्वयं हाथीपर चढ़के और अपने पीछे राजाको वैठाके नगरके वाहर भ्रमण करूं। रानीके इस विचित्र दोहलेका हाल दन्तिवाहनने अपने मित्र वायुवेग विद्याधरसे कहा। उसने तत्काल ही अपनी विद्यासे आकाशको मेघोंसे ढ़ँक दिया, और पानी वरसाना भी प्रारंभ कर दिया। तव राजाने नर्मदातिलक हाथी सुसज्जित कराया और फिर रानी सहित उसपर सवार होके ठाटवाटके साथ वाहर निकला। वाहर निकलनेकी देरी थी कि नर्मदातिलकने अंकुशको न मानकर वड़ी तेजीसे भागना शुरू किया, और सव लोग जो साथ थे, देखते ही रह गये। वड़ी कठिनतासे राजा एक झाड़ीमें किसी वृक्षकी शाखासे झूमके रह गया। परन्तु पद्मावती हाथीकी

पीठपर ही रही, और थोड़ी ही देरमें वह हाथी राजाकी दृष्टिसे लोप हो गया। राजा, हाय पद्मावती! हाय पद्मावती! कहता रह गया और विलाप करता हुआ अपने नगरको लौट आया। विद्वान् पुरुषोंने बहुत कुछ समझाकर उसे ज्यों त्यों शांत किया।

नर्मदातिलक हाथी अपनी पीठपर पद्मावतीको बैठाये हुए अनेक देशोंको लांघता हुआ दक्षिणकी ओर चला गया। जब थक गया तब एक तालावमें विश्रामके लिये घुसने लगा। इस समय पद्मावतीके पुण्यके प्रभावसे एक जलदेवीने आकर उसकी सहायता की, अर्थात् उसे हाथीपरसे उतारकर सरोवरके किनारे बैठा दिया। पद्मावती किनारे बैठके अपने भाग्यपर रोने लगी। इतनेमें एक भट नामके मालीनें वहां आकर और उसे रोती हुई देखकर समझाया। कहा कि—"बहिन, रोती क्यों हो? मेरे साथ चलो।" पद्मावतीने पूछा कि—"तुम कौन हो? जो मुझपर इतनी दया करते हो।" उसने कहा कि "मैं माली हूं, दुःखियोंपर दया करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं।" यह सुनके पद्मावतीने उसके साथ जाना स्वीकार किया और वह माली उसे हस्तिनागपुर ले गया। वहां उसने ऐसा प्रसिद्ध कर दिया कि यह मेरी बहिन है।

मालीकी स्त्रीका नाम मारदत्ता था। वह स्वभावसे बड़ी क्रूरा और दुष्टा थी। एक दिन जब माली कहीं अन्यत्र गया था तब उसने पद्मावती घरसे निकाल दी। लाचार होके बेचारी पद्मावती वहांसे रोती पीटती निकल पड़ी और एक स्मशान (मरघट) में पहुंचकर उसने पुत्र प्रसव किया। पुत्रके उत्पन्न होनेके पीछे एक चांडालने आकर प्रणाम किया और कहा कि, "आप मेरी स्वामिनी हैं।" पद्मावतीने यह आश्चर्ययुक्त बात सुनके पूछा—"तुम कौन हो? जो मुझ दुखिनीको अपनी स्वामिनी कहते हो, मैं तुम्हें नहीं पहिचानती हूं।" चांडाल बोला;—"विद्युत्प्रभ नगरके राजा विद्युत्प्रभ और रानी विद्युल्लेखाका मैं बालदेव नामक पुत्र हूं। एक दिन मैं अपनी स्त्री कनकमालाके साथ दक्षिणकी ओर क्रीड़ा करनेको जा रहा था। मार्गमें रामगिरि पर्वतपर श्रीवीर मुनि विराजमान थे; इसलिये मेरा विमान उनके ऊपरसे नहीं जा सका। मुझे बड़ा भारी क्रोध उत्पन्न हुआ क्योंकि मैंने समझ लिया कि इन्होंने ही

मेरे विमानको रोका है, अतएव वीर मुनिको मैने उपसर्ग करना प्रारंभ किया। परन्तु उनके पुण्यके प्रभावसे उसी समय पद्मावती देवीने प्रगट होकर उपसर्गका निवारण कर दिया और मेरी विद्या नष्ट कर दी। उस समय लाचार होके मैने देवीसे प्रणाम करके प्रार्थना की कि, "अपराध क्षमा करके मेरी विद्या मुझे पुनः प्रदान कीजिये।" तब देवीने कहा कि "हस्तिनागपुरके स्मशानमें तू जिस बालकको देखेगा, उसीके राज्यमें तेरी विद्या सिद्ध हो जावेगी।" सो हे स्वामिनि! मै वही बालदेव हूं, उस दिनसे चांडालके वेषमें इस स्मशानकी देखरेख रखता हुआ रहता हूं।"

बालदेवकी यह आश्चर्य भरी हुई कहानी सुनकर रानी पद्मावतीको संतोष हुआ। इसलिये उसने अपना वह बालक उसी समय बालदेवको यह कहकर सोंप दिया कि, अब इसका लालन पालन तू ही कर। बालदेवने स्नेहपूर्वक उस बालकको ले लिया और अपनी स्त्री कंचनमालाको सोंप दिया। उस बालकके दोनों हाथोंमें खुजली थी, इसलिये वह उसका करकंडु नाम रखके पालन करने लगी।

बालककी माता स्मशानसे चलकर गांधारी ब्रह्मचारिणीके आश्रयमें रहने लगी और एक दिन उसके साथ समाधिगुप्त मुनिके पास जाकर उसने दीक्षाकी याचना की। परन्तु मुनिराजने कहा कि, अभी दीक्षाका समय नहीं है। क्योंकि पूर्वभवमें जो तूने तीन बार अपने व्रत भंग किये हैं, उनके फलसे तीन दुःख तुझपर आनेवाले हैं। सो उनका उपशम हो चुकनेपर तथा पुत्रराज्यका सुख देखकर उसीके साथ तू तप धारण करेगी। यह सुनके पद्मावतीको संतोष हुआ, और वह पुत्रको देख देखकर ब्रह्मचारिणीके पास रहने लगी। बालक करकंडु भी बालदेव विद्याधरके द्वारा धीरे धीरे सम्पूर्ण कलाओंमें कुशल-चतुर हो गया, और इस प्रकार करकंडु और बालदेवादि उस स्मशानमें सुखसे समय व्यतीत करने लगे।

एक दिन जयभद्र और वीरभद्र नामके दो आचार्य उस स्मशानमें आये। उस समय एक मुर्देके नेत्रोंमेंसे तीन बांस ऊगते हुए दिखलाई दिये। उन्हें देखकर किसी यतिने आचार्य महाराजसे पूछा-भगवन्! यह क्या कौतुक है? मुर्देमेंसे इस प्रकार बांसोंके निकलनेका क्या कारण है? आचार्य बोले,-इसमें आश्चर्य कुछ नहीं है, इस नगरका जो

कोई राजा होगा, इन तीन बांसोंसे उसके अंकुश, छत्र और ध्वजाके दंड बनाये जावेंगे। उस समय यह बात किसी ब्राह्मणने सुन ली, सो वह उन बांसोंको उसी समय काट ले गया और पीछे किसी प्रकारसे करकंडुने उससे उन्हें ले लिया।

कुछ दिनोंके पीछे उस नगरका राजा बलवाहन कालके गालमें जा फँसा। उसके कोई पुत्र नहीं था, इसलिये उसके परिवारके लोगोंने राजाकी खोज करनेके लिये विधिपूर्वक एक पाटबद्ध हाथी छोड़ा, सो वह हाथी खोज करता हुआ अन्तमें करकंडुके पास पहुंचा और अभिषेकपूर्वक अपनी पीठपर स्थापित करके नगरमें ले आया। परिवारके लोगोंने करकंडुको अपने नगरका राजा बना लिया, और खूब आनन्द मनाया।

करकंडुके राजा होते ही बालदेवकी विद्या सिद्ध हो गई, सो वह प्रसन्नतापूर्वक करकंडुको नमस्कार करके और उसकी माताको उसे सोंपके विजयार्द्धको चला गया। पश्चात् करकंडु अपने प्रतिकूल (विरुद्ध) शत्रुओंको दूर करके राज्य करने लगा।

राजा करकंडुका प्रताप सुनकर दन्तिवाहनने अपना एक दूत उसके पास भेजकर कहला भेजा कि, तुम्हें महाराजाधिराज दन्तिवाहनके आधीन राजा होकर रहना चाहिये, वे तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हैं। दूतका यह संदेशा सुनकर करकंडुको अतिशय क्रोध हुआ, और उसके उत्तरमें कहला भेजा कि, रणभूमिमें आकर जो कोई विजयपताका फहरावेगा वही स्वामी होगा, इस तरह बातोंसे कोई किसीका स्वामी तथा नौकर नहीं हो सकता। यह उत्तर पाते ही दन्तिवाहन अपनी चतुरंगिनी सेनाके साथ लड़ाई करनेको बाहिर निकल पड़ा और इधरसे करकंडु भी सेनासहित चंपापुरीके समीप आ ठहरा। दोनों सेनायें व्यूह प्रतिव्यूहके क्रमसे संजकर खड़ी हो गईं। परन्तु इतनेमें ही पद्मावतीने आकर करकंडुसे कहा—बेटा! यह जो तेरा प्रतिपक्षी बनकर मैदानमें खड़ा है, और कोई नहीं मेरा पति तथा तेरा प्यारा पिता है। यह सुनते ही करकंडु हाथीसे उतर पड़ा और पिताके चरणोंमें जा पड़ा। पिताने भी गद्गद होकर पुत्रको छातीसे लगा लिया। बड़ा भारी आनन्द हुआ। लड़ाईकी सब तैयारियोंने उत्सवका रूप धारण

कमलसे पूजा करके मस्तक नवाता है।" यह सुनके राजाने प्रसन्न होकर उन भीलोंको इनाम दिया, और जाके देखा, तो सचमुच हाथी वांवीकी पूजा कर रहा है। इससे राजाको सन्देह हुआ और इस कारण उसने उस वांवीको खुदवाई। खुदवाते ही उसमेंसे एक मंजूषा (सन्दूक) में रक्खी हुई पार्श्वनाथ भगवान्‌की रत्नमयी प्रतिमा निकली, जिसके दर्शनसे उसने हर्ष माना, और अर्गलदेव नाम रखके उस (गुफा) में उसकी स्थापना कर दी। स्थापना हो चुकनेपर प्रतिमाजीके आगे एक ऊंची जगह देखकर कारीगरसे कहा कि, यह विढंगी मालूम होती है इस कारण तू इसे हथियारसे साफ कर दे। तब कारीगरने कहा कि, यह जलकी नाली है। इसमेंसे जलका पूर निकलनेकी संभावना है, इसलिये इसे फोड़नी न चाहिये। परन्तु कारीगरकी यह बात राजाने नहीं मानी और हटसे उस ऊंची जगहको उसने फुड़वा डाली। उसके फूटनेकी देरी थी, कि पानीका प्रवाह शुरू हुआ और वह यहां तक बढ़ा कि, लोगोंका वहांसे निकलना मुश्किल हो गया। इस कारण राजाने एक कुशके आसनपर वैठकर संन्यास धारण कर लिया और आत्मचिंतनमें ध्यान लगाया। इतनेमें एक नागकुमारने प्रगट होकर कहा कि-"हे राजन्! कालके माहात्म्यसे आजकल इस रत्नमयी प्रतिमाकी रक्षा नहीं हो सकती थी, इस कारण मैंने यह गुफा जलपूर्ण की है, इस लिए तुझे जलके रोकनेके लिये आग्रह नहीं करना चाहिये।" और फिर बड़े आग्रहसे राजाको आसनसे उठाया। राजाने उठकर पूछा, कृपाकर यह बतलाइये कि, यह गुफा किसनें बनवाई और वांवीमें प्रतिमा किसने स्थापित की? तब नागकुमारने कहा, सुनो मैं इसकी कथा कहता हूं।

इस ही विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें नभस्तिलकपुर नामका एक नगर है। उसमें अमितवेग और सुवेग नामके दो राजा थे। एक वार वे दोनों आर्यखंडके जिनालयोंकी वन्दना करनेके लिये आये, और यहां मलयागिरिपर रावणके बनवाये हुए जिनमन्दिरोंको उन्होंने देखा। जिनमन्दिरोंकी वन्दना करके वे दोनों यहां वहां भ्रमण कर रहे थे कि, कहींपर एक पार्श्वनाथ भगवान्‌की प्रतिमा दिखलाई दी। सो उसे वे दोनों एक मंजूषामें रखके यहां ले आये। और एक जगह मंजूषा रखके किसी कारण थोड़ी देरके लिये कहीं चले गये, पश्चात् लौटके चाहा कि, मंजूषाको उठा ले, परन्तु किसी

कर लिया। बहुत कालके बिछुरे हुए माता, पिता और पुत्रने एक होकर बड़ी भारी विभूतिके साथ नगरमें प्रवेश किया। पश्चात् पुत्रका आठ हजार कन्याओंके साथ विवाह करके और उसे ही सम्पूर्ण राज्यभार सोंपके दन्तिवाहन पद्मावतीके साथ भोगोंको भोगता हुआ काल व्यतीत करने लगा। करकंडु बड़ी उत्तमतासे राज्यका कार्य चलाने लगा।

एक समय महाराज करकंडुसे मंत्रियोंने कहा कि, हे देव! चेरम, पांड्य, चौल आदि देश भी जीतनेके योग्य है, उनके जीतनेका उपाय अवश्य ही करना चाहिये। करकंडुको मंत्रियोंकी यह सलाह ठीक जँची, इस कारण वह बड़ी भारी सेनाके साथ विजय करनेके लिये निकल पड़ा। और तेरपुर नगरमें ठहरकर उसने उक्त राजाओंके पास दूत भेजा। परन्तु जब दूतने लौटकर उनकी उद्धतताकी सूचना दी, तब कोपित होके करकंडुने वहां जाके युद्ध क्षेत्रमें डेरा डाल दिया। प्रतिपक्षी राजा लोग मिलके आये और घोर युद्ध करनेमें तत्पर हुए। परन्तु संध्या हो जानेसे युद्ध बन्द हो गया और दोनों ओरकी सेना उस दिन स्वस्थ होकर अपने अपने स्थानोंमें ठहर गई।

दूसरे दिन फिर अतिशय विकट संग्राम हुआ, और जब देखा कि, मेरी सेनाका बेतरह नाश हो रहा है, तब करकंडुने स्वयं कुपित होकर हथियार पकड़ा और बातकी बातमें उन सब ही राजाओंको कैद कर लिया। उस समय उनके मुकटोंपर चरण रखते हुए करकंडुने देखा कि, उनमें जिन भगवानकी प्रतिमायें लगी हुई हैं, तब "तस्समिच्छामि" ऐसा कहकर पूछा कि, क्या आप लोग जैनी हैं? उन्होंने कहा, हां! सुनते ही हाय! हाय! मैं बड़ा निन्द्य हूं, जो मैंने जैनियोंको उपसर्ग किया। इस प्रकार पश्चात्ताप करके क्षमा कराई। पश्चात् उनके साथ अपने देशको चला, और तेरपुरके समीप उन्हें विदा करके आप ठहर गया।

वहां द्वारपालोंके द्वारा भीतर पहुंचाये हुए दो भीलोंने जिनका कि नाम शरा और शिव था, राजासे निवेदन किया कि–"हे देव! यहांसे दक्षिणकी ओर छह कोसके परे पर्वतके ऊपर एक धाराशिव नामक नगर है। वहां एक सहस्रकूट जिनालय है। उस जिनालयसे कुछ ऊँचाईपर पर्वतके शिखरपर एक सांपकी बांबी है। वहां एक सफेद हाथी सरोवरसे जल और कमल लेके आता है, सो उस बांबीको तीन परिक्रमा देकर पीछे जल चढ़ाकर और

कारणसे वह मंजूषा अपने स्थानसे जरा भी न खसकी, तब आश्चर्ययुक्त होकर उन्होंने तेरपुर जाकर एक अवधिबोध महामुनिसे पूछा–भगवन्! वह मंजूषा क्यों नहीं उठती? मुनिराज बोले;–"तुम दोनोंमेंसे यह सुवेग आर्त्तध्यानसे मरकर जन्मान्तरमें हाथी होगा, उस समय राजा करकंडु वहां आकर मंजूषाको पूजा करके उखाड़ेंगे, तब वह हाथी सन्यास मरण करके स्वर्गको जावेगा।" प्रतिमाका इस प्रकार स्थिरपना जानके दोनो राजाओंने पूछा, कि यह गुफा किसकी बनवाई हुई है? सो भी कृपा करके बतलाइये, तब मुनि बोले;–" पूर्वकालमें विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीके रथनूपुर नगरमें नील और महानील नामके राजा थे। एक समय संग्राममें शत्रुओंने जब उनकी विद्या नष्ट कर डाली, तब उन्होंने यह गुफा बनवाई। इसके पीछे विद्याको फिरसे पाकर वे दोनों राजा विजयार्द्धको चले गये और वहां कुछ दिनोंमें तपस्या करके स्वर्गगामी हुए।" यह कथा सुनके अमितवेग और सुवेग नामके वे दोनो राजा उन्हीं मुनिके निकट दीक्षित हो गये। पीछे उनमेंसे बड़ा अमितवेग तो ब्रह्मोत्तरस्वर्गको गया और सुवेग आर्तध्यानके कारण मरके हाथी हुआ।

कुछ दिनोंके बाद वह अमितवेग जो देव हुआ था, सुवेगके जीव हाथीको समझानेके लिये मध्यलोकमें आया। उसके उपदेशसे हाथीको जातिस्मरण हो आया और सम्यक्त्वयुक्त होकर व्रतोंको अंगीकार करके वह निरन्तर पूजा करने लगा। वह देव यह कहके वहांसे चला गया कि, जब कोई इस बांबीको आकर खोदे, तब तू सन्यास ग्रहण कर लेना। सो हे राजन्! उसीके कहे अनुसार जब तुमने बांबीको खुदवाया, तबहीसे यह हाथी सन्यासस्थित हो रहा है। और आप पूर्वजन्ममें यहां ही एक ग्वाला थे, सो जिनपूजाके फलसे इस जन्ममें राजा हुए हो, यही इस गुफाके सम्बन्धकी सब कथा है।

इस प्रकार उपदेश दे करके नागकुमार नागवापिकामें चला गया और राजाने तीसरे दिन उस हाथीको धर्मश्रवण कराया, सो वह सम्यक्परिणामोंसे शरीर छोड़कर सहस्रार स्वर्गको गया। पीछे करकंडुने अपने, माताके,

और अर्गलदेवके नामकी तीन गुफायें बनवाईं और उनकी प्रतिष्ठा कराके कुछ दिनोंमें वसुपाल पुत्रको राज्य देकर अपने पिताके निकट चेरमादि क्षत्रियों सहित दीक्षा ले ली। साथ ही माता पद्मावती भी आर्यिका हो गई।

करकण्डु मुनि विशिष्ट तप करके आयुके अन्तमें सन्यासपूर्वक शरीर छोड़कर सहस्रार स्वर्गको गये। और दान्तिवाहनादि भी अपने २ पुण्यके अनुसार स्वर्गलोकको गये। साराश–देखो! जिनपूजाके फलसे एक ग्वाला भी इस प्रकार ऊंचे पदको प्राप्त हुआ, अन्य लोग जिन पूजा करें, तो ऐसा कौनसा पद है, जो उन्हें प्राप्त न हो?

(७) वज्रदन्तचक्रवर्तीकी कथा।

जम्बूद्वीप–पूर्वविदेह–पुष्कलावतदेश–पुण्डरीकनी नगरीमें भगवान्, यशोधर तीर्थकर राज्य करते थे। उन्हें एक थोड़ासा निमित्त पाकर ही वैराग्य उत्पन्न हो गया और इस कारण वे अपने पुत्र वज्रदन्तको राज्य देकर आप दीक्षाकल्याणको प्राप्त हो गये।

एक दिन मण्डलेश्वर राजा वज्रदन्त अपनी सभामें विराजमान थे कि, इतनेमें हाथोंमें वस्त्र और ध्वजा लिए हुए दो पुरुषोंने आकर एक ही साथ दो प्रार्थनायें की। एकने तो यह कहा कि, देव! आपके आयुधागार (हथियार-खाने)में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है, और दूसरेने कहा, कि यशोधर भगवानको केवलज्ञान प्राप्त हुआ है। एकसे एक अधिक हर्ष करनेवाले ये दोनों समाचार पाकर राजाने आये हुये पुरुषोंको इनाम देकर प्रसन्न किया और आपने स्वयं सम्पूर्ण जनों सहित समवशरणको गमन किया। फिर वहां पहुंचकर भगवानके शरीरकी प्रभाको देखकर नेत्र सफल किये, और पूजा करके तात्कालिक विशुद्धपरिणामोंसे उत्पन्न हुए पुण्यफलसे उसी समय उन्होंने अवधिज्ञान प्राप्त किया। और पीछे वे छहों खंड पृथिवीको साधकर सुखसे राज्य करने लगे। (आदिपुराणमें यह कथा प्रसिद्ध है।)

सारांश—पूजाका ऐसा माहात्म्य है कि, व्रतरहित वज्रदन्त चक्रवर्ती एक वार ही भगवान्‌की पूजा करके अवधिज्ञानी हो गये। अन्य जन प्रतिदिन भावसहित पूजा करे, तो क्यों न ज्ञानवान् होवे? अवश्य ही होवें।

(८) राजा श्रेणिककी कथा।

मगधदेशके राजगृह नगरमें एक उपश्रेणिक राजा राज्य करता था। उसके एक सोमशर्मराज नामक कपटी मित्रने जो कि पूर्वभवका वैरी था, एक घोड़ा उसके पास भेटमे भेजा। यह घोड़ा वाहरी चिह्नोंसे तो बड़ा सीधा साधा जान पड़ता था, परन्तु यथार्थमे वह था बड़ा दुष्ट, इस लिये उस दिन उपश्रेणिक विना जाने उसपर सवार होके चल पड़ा। थोडी ही दूर चलके घोड़ा बेलगाम हो गया और अंतमें उपश्रेणिकको उसने एक बड़े भयानक जंगलमे जा पटका। परन्तु उस समय वहां भाग्यसे एक यमदंड नामका क्षत्री आपहुंचा, और वह बड़े आदरसे इसे अपने घर ले गया। यमदंड एक उच्चकुलका क्षत्री था। परन्तु कारणवश राज्यभ्रष्ट हो जानेसे वह एक छोटेसे गांवमे आके रहने लगा था। उसकी विद्युन्मती स्त्री और तिलकावती नामकी अतिशय रूपवती कन्या थी। उपश्रेणिक उसे देखकर ऐसा मोहित हुआ कि, उसे अपना सर्वस्व देनेको तैयार हो गया और आखिर यमदंडसे उस कन्याके लिये याचना की। यमदंडने कहा, यदि आप मेरी पुत्रीसे जो पुत्र उत्पन्न हो उसे राज्य देनेकी प्रतिज्ञा करे, तो मै आपकी याचना स्वीकार कर सकता हूं, अन्यथा नहीं। उपश्रेणिक इस बातपर राजी हो गया, और वह तिलकावतीको पाकर प्रसन्न हुआ।

कुछ दिनोंके वाद राजगृहमें आनेपर तिलकावतीके चिलाती नामक पुत्र हुआ। चिलातीके सिवाय उपश्रेणिकके अन्य भी पांच सौ पुत्र थे। परन्तु उन सवमें उसकी इन्द्राणी नामक रानीका पुत्र श्रेणिक अत्यन्त रूपवान् और

गुणवान् था। राजाको एक दिन निमित्तज्ञानीको पूछनेपर यह विदित हुआ कि, प्रत्येक राजकुमारको एक एक शक्करका घड़ा देनेसे जो कुमार उस घड़ेको अन्यके सिरपर रख सिंहद्वारसे ले आवेगा, तथा नये घड़ेको ओसकी बून्दोंसे भरदेगा, तथा सब कुमारोंके एक पांतमें भोजन करते समय एक कुत्ता उनपर छोड़ देनेसे जो कुमार उसे हटाकर निर्विघ्न भोजन करेगा, और जो नगरदाह होनेपर सिंहासनादिकोंको निकालके बचा लेवेगा, वही इस राज्यका अधिकारी होगा, अन्य नहीं। यह सुनकर राजा राज्याधिकारी कुमारकी परीक्षा करनेके लिये तैयार हुआ।

पहले दिन उसने सब राजकुमारोंको राजभवनमें बुलाके शक्करसे भरे हुए घड़े सोंपे और उन्हें अपने अपने स्थानपर ले जानेके लिए कहा। तब उन चिलातीपुत्रादि राजकुमारोंने तो स्वयं अपने अपने घड़े उठा लिये और सिंहद्वार तक लाके अपने सेवकोंको सोंप दिये, परन्तु श्रेणिकने ऐसा नहीं किया, वह अपना घड़ा भीतरसे भी एक सेवकके सिरपर देकर बाहर लाया और वहां अपने सेवकको देके निश्चिन्त हो गया।

दूसरे दिन राजकुमारोंको यह आज्ञा मिली कि, तुम लोग ओसकी बूंदोंसे एक एक घड़ा भरके ले आओ। तब वे सब एक एक घड़ा लेकर ऐसे स्थानोंमें गये, जहां कि एक दूसरेको न देख सके और अपने अपने काममें लग गये। परन्तु ज्यों ही ओसकी बूंदे उठाके वे उन कोरे घड़ोंमें डालते त्यों ही वे जहांकी तहां सूख जातीं। इस तरह बहुत परिश्रम करनेपर भी वे घड़ोंको न भर सके, और आखिर विफलप्रयत्न होके घर लौट आये। परन्तु श्रेणिकने ऐसा नहीं किया। उसने एक कपड़ेको घासपर कई बार बिछाके और उसमें इकट्ठे किये हुए जलको निचोड़ निचोड़कर बड़ी सरलतासे अपना घड़ा भर लिया और उसे लाकर राजाको दिखला दिया।

तीसरे दिन राजाने सब राजकुमारोंको एक पांतमें खीरके भोजनोंके लिये बैठाके उनपर एक भयानक कुत्ता छोड़ दिया। जिसके छूटते ही वे सबके सब परोसे हुए थालोंको छोड़ छोड़ कर भागे। परन्तु श्रेणिक अपनी चतुराईसे अन्य कुमारोंके सब थाल एकत्र करके उन्हें क्रम क्रमसे कुत्तेके आगे डालता गया, और मौका पाकर आप आनन्दसे भोजन करता गया। कुत्ता खानेमें लगा रहनेसे कुछ उपद्रव नहीं कर सका।

फिर चौथे दिन शहर जलनेके समय निमित्तज्ञानीके कहे अनुसार वह सिंहासनादिकोंको भी बचाके निकाल लाया और इस प्रकार राज्याधिकारी होनेके सम्पूर्ण चिह्न श्रेणिक राजकुमारमे पाये गये।

श्रेणिकको राज्याधिकारी जानकर उसके पिताने उसके सिर यह झूठा दोष लगाया कि, तुम गुप्तरूपसे पांच हजार योद्धा रखते हो, उसे अपने देशसे निकल जानेकी आज्ञा दे दी। तदनुसार वह देशसे निकलकर अनेक नगर ग्रामोमे अकेला घूमता फिरता हुआ नान्दिग्रामके सभामंडपमें पहुंचा। वहां एक इन्द्रदत्तनामक वयोवृद्ध (बूढ़ा) वणिक् (बनिया) था, उसे देखकर श्रेणिकने "मामा!" कहकर सम्बोधन किया और फिर मित्रता उत्पन्न करके वह उसे लेकर एक ब्राह्मणके घर गया। वहां जाकर ब्राह्मणसे कहा-हम दोनों राजपुरुष है, और राजाके कामको जाते हुए यहांसे आ निकले है, इसलिए हमे भोजनादिक दो। ब्राह्मणने स्पष्ट उत्तर दे दिया कि, भोजन तो बड़ी बात है, मै राजाके पुरुषोंको पानी भी पीनेको नही देता हूं, तुम लोग यहांसे चले जाओ, मै तुमसे डरनेवाला नहीं हूं। आखिर निरुपाय होकर वे दोनों जठराग्निभगवत नामके किसी बौद्ध सन्यासीके मठमें गये। वहां उन्हे पेटभर भोजन मिला, और साथ ही धर्मोपदेश मिला। उसका असर श्रेणिकपर इतना हुआ कि, उसने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया।

दूसरे दिन मठ छोड़के चलते समय मार्गमें श्रेणिकने इन्द्रदत्तसे कहा कि, हे मामा! चलो अपन दोनो जिव्हारथपर चलके चलें। यह सुनकर इन्द्रदत्तको बड़ा अचंभा हुआ और उसने इस ऊटपटांग बातसे यह समझा कि, यह कोई पागल है। इसलिये कुछ उत्तर न देकर आगे चल दिया। श्रेणिकने कुछ दूर चलके आगे जल भरा हुआ देखके जूते पहन लिये और आगे एक वृक्षके नीचे पहुंचनेपर छाता लगा लिया। इसके बाद एक नरनारियोंसे भरे हुए गांवको देखकर पूछा-मामा! यह गांव बसा हुआ है, या ऊजड़? आगे एक पुरुष अपनी स्त्रीको मार रहा था, उसे देखके पूछा-यह बंधी हुई स्त्रीको मारता है, अथवा खुली हुईको? फिर एक मुर्देको जाते हुए देखके पूछा कि, यह अभी मरा है, या पहले ही मर चुका है? पके हुए धानके खेतको देखकर पूछा-खेतका मालिक इसे भोग चुका है, अथवा आगे भोगेगा? खेतमें हल चलते हुए देखकर पूछा-इस हलकी कितनी

डालियां है? और अन्तमें एक बेरके पेड़को देखके पूछा-मामा! इसमे कितने कांटे है?। [1]इन सब वातोंसे इन्द्रदत्तको निश्चय होगया कि, यह सचमुच कोई पागल है।

इन्द्रदत्त वेणातड़ाग नामके गांवका रहनेवाला था। उसके एक नन्दश्री नामकी कन्या अत्यन्त रूपवती और गुणवती थी। गांवके वाहर एक तालाव था, वहां पहुंचनेपर एक वृक्षके नीचे श्रेणिक राजकुमारको छोड़के इन्द्रदत्त अपने घर पहुंचा। घरमें प्रवेश करते ही कन्याने प्रणाम करके पूछा-क्या पिताजी, आज आप अकेले ही आये है? इन्द्रदत्तने कहा-वेटी; मै अकेला नहीं आया, एक अत्यन्त रूपवान् युवाके साथमें आया हूं। परन्तु खेद है कि, उसके वर्तावको देखकर कहना पड़ता है, कि वह पूरा पागल है। पुत्रीने कहा-मुझे कृपाकर सुनाइये कि, किन वर्तावोंके कारण वह पागल समझा गया? तव पिताने पुत्रीके संतोषके लिये मार्गकी वीती हुई सारी घटनायें कह सुनाई। उन्हे सुनकर नन्दश्रीने कहा-पिताजी, वह पुरुष पागल नही, असन्त चतुर है। उसने जो कुछ प्रश्न किये है, वे सव यथार्थ है। देखिये;-आपसे उसने मामा इसलिये कहा है, कि भानजा माननीय होता है। जिह्वारथपर चढ़के चलनेका अभिप्राय कथा विनोद है। कथा विनोद करते हुए चलनेसे मार्ग सहज ही कट जाता है। पानीमे कांटे वगैरह दिखलाई नही देते है, वे पैरोंमे चुभ न जावें, इस कारण उसने जूते पहने थे। काकादि पक्षियोंकी वीट पड़नेके भयसे झाड़के नीचे छाता लगाया था। उस ग्राममें आप दोनोंने भोजन किये कि नहीं? यदि किये तो उसे वसा हुआ समझना चाहिये, अन्यथा ऊजड़। स्त्री यदि रक्खी हुई थी तो उसे छूटी, और विवाहिता थी, तो उसे वंधी समझना चाहिये। मरे हुए पुरुषको यदि वह गुणवान् था, तो उसी समय मरा, और यदि मूर्ख था, तो पहले ही मर चुका, समझना चाहिये। धानका खेत यदि ऋण लेकर तैयार किया गया था, तो उसका फल वह पहले ही भोग चुका, ऐसा समझना चाहिये, अन्यथा आगे भोगेगा। हलकी दो डालियां होती है, और वेरीके दो

[1] तदुक्तम्—जिह्वारथ प्राणहितातपत्र कुग्रामनार्यो मृतक च शालीन्।
डालं वकालद्रुमकण्टकाश्च पृष्टः कुमारेण पथीन्द्रदत्त ॥

कांटे होते हैं, अर्थात् बेरीके कांटे दो दो प्रकारके एकत्र रहते है । इस प्रकार नन्दश्रीने उसके सब अभिप्रायोको स्पष्ट करके पिताको समझा दिया और फिर यह पूछकर कि, वह कहां ठहरा है? अपनी एक निपुणमती नामक सखीको जिसके कि बड़े बड़े नख थे, नखोंमे तेल भरके उसके समीप भेजी । निपुणमतीने तालावके किनारे जाके श्रेणिकसे पूछा कि, इन्द्रदत्तजीके साथ क्या आपका ही शुभागमन हुआ है ? उसने कहा,-हां !, तो उसकी पुत्री नन्दश्रीने आपके लिये यह तेल भेजा है, और कहा है कि, इससे शरीर मर्दन करके पश्चात् स्नान करके आप मेरे घर पधारिये । श्रेणिकने यह सुनके जमीनपर पांवसे एक गढ़ा करके और उसमें पानी भरके निपुणमतीसे कहा-इसमें वह तेल छोड़ दो, और बतलाओ कि, तुम्हारी स्वामिनीका घर कहां है ? मै शीघ्र ही वहां आऊंगा । तब निपुणमती तेलको गढ़ेमे छोड़के और चलते समय कानको इशारेसे दिखलाके वहांसे चली गई । उसके चले जानेपर श्रेणिककुमारने उसी तेलसे अंगमर्दन किया और पीछे स्नानादि करके ग्राममे प्रवेश किया । एक घरमें ताड़वृक्ष लगा हुआ था, और उसके द्वारपर खूब कीचड़ हो रही थी । उस कीचडके वीच वीचमें पत्थर रक्खे हुए थे । श्रेणिक उसीको नन्दश्रीका घर समझके कीचड़मेसे ही प्रवेश करके और पैरोको खूब कीचड़से भरकर आंगनमे जा पहुंचा । वहां नन्दश्रीने बहुत थोड़ासा पानी लाके रक्खा और कहा-इससे पैर धो करके भीतर चलियेगा । यह देख श्रेणिकने एक वांसकी सींकसे पैरोंकी सब कीचड़ उतार ली और पीछे थोड़ेसे पानीसे पैर गीले करके और उसमेसे थोड़ासा पानी शेष बचाकर घरमें प्रवेश किया । यह देख नन्दश्रीने अत्यन्त आसक्त होकर कहा-कुमार ! आज आप मेरे यहां ही अतिथि होवें अर्थात् भोजन करे । कुमारने कहा-आज मुझे प्रतिज्ञा है, कि मै पराये अन्नका भोजन नही करूंगा, सो यदि तुम्हे भोजन कराना है, तो लो मेरे वस्त्रमे ये वत्तीस चावल बंधे हुए है, इनसे वत्तीस प्रकारके व्यंजन तैयार करो । यदि ऐसा नही कर सकोगी, तो मै भोजन नही करूंगा । तब नन्दश्रीने उन चावलोंको ले लिये, और उन्हें पीसकर उनके आटेसे पूवे बनायें । और उन्हे निपुणमतीके द्वारा व्यभिचारी लोगोंके अड्डेमें विकवाये । व्यभिचारी लोगोने उनपर रीझके बहुतसा द्रव्य दिया और फिर

काटे होते हैं, अर्थात वेरीके कांटे दो दो प्रकारके एकत्र रहते हैं। इस प्रकार नन्दश्रीने उसके सब अभिप्रायोंको स्पष्ट करके पिताको समझा दिया और फिर यह पूछकर कि, वह कहां ठहरा है? अपनी एक निपुणमती नामक सखीको जिसके कि वड़े वड़े नख थे, नखोंमे तेल भरके उसके समीप भेजी। निपुणमतीने तालावके किनारे जाके श्रेणिकसे पूछा कि, इन्द्रदत्तजीके साथ क्या आपका ही शुभागमन हुआ है? उसने कहा,-हां!, तो उसकी पुत्री नन्दश्रीने आपके लिये यह तेल भेजा है, और कहा है कि, इससे शरीर मर्दन करके पश्चात स्नान करके आप मेरे घर पधारिये। श्रेणिकने यह सुनके जमीनपर पांवसे एक गढ़ा करके और उसमें पानी भरके निपुणमतीसे कहा-इसमें वह तेल छोड़ दो, और वतलाओ कि, तुम्हारी स्वामिनीका घर कहां है? मै शीघ्र ही वहां आऊंगा। तव निपुणमती तेलको गढ़ेमें छोड़के और चलते समय कानको इशारेसे दिखलाके वहांसे चली गई। उसके चले जानेपर श्रेणिककुमारने उसी तेलसे अंगमर्दन किया और पीछे स्नानादि करके ग्राममे प्रवेश किया। एक घरमें ताड़वृक्ष लगा हुआ था, और उसके द्वारपर खूव कीचड़ हो रही थी। उस कीचडके वीच वीचमें पत्थर रक्खे हुए थे। श्रेणिक उसीको नन्दश्रीका घर समझके कीचड़मेसे ही प्रवेश करके और पैरोंको खूव कीचड़से भरकर आंगनमें जा पहुंचा। वहां नन्दश्रीने वहुत थोड़ासा पानी लाके रक्खा और कहा-इससे पैर धो करके भीतर चलियेगा। यह देख श्रेणिकने एक वांसकी सींकसे पैरोंकी सव कीचड़ उतार ली और पीछे थोड़ेसे पानीसे पैर गीले करके और उसमेसे थोड़ासा पानी शेष वचाकर घरमें प्रवेश किया। यह देख नन्दश्रीने अत्यन्त आसक्त होकर कहा-कुमार! आज आप मेरे यहां ही अतिथि होवें अर्थात् भोजन करें। कुमारने कहा-आज मुझे प्रतिज्ञा है, कि मै पराये अन्नका भोजन नहीं करूंगा, सो यदि तुम्हे भोजन कराना है, तो लो मेरे वस्त्रमें ये वत्तीस चावल वंधे हुए हैं, इनसे वत्तीस प्रकारके व्यंजन तैयार करो। यदि ऐसा नहीं कर सकोगी, तो मै भोजन नहीं करूंगा। तव नन्दश्रीने उन चावलोंको ले लिये, और उन्हे पीसकर उनके आटेसे पूवे वनाये। और उन्हे निपुणमतीके द्वारा व्यभिचारी लोगोंके अड्डेमें विकवाये। व्यभिचारी लोगोंने उनपर रीझके वहुतसा द्रव्य दिया और फिर

पा सकते हो। परन्तु जब अहंकार और अभिमानके वशमें पड़के श्रेणिकने कुछ भी मांगना उचित नहीं समझा, तब इन्द्रदत्तने राजासे कहा—महाराज नगरमें सात दिन तक अभयघोषणा (कोई जीव मारा न जावे और न किसी प्रकारकी तकलीफ दी जावे) करानेकी इसकी इच्छा है, सो यदि आप उसे पूर्ण कर दें तो अच्छा हो। तब राजाने प्रसन्नचित्त होकर उसी समय अभयघोषणा फिरवा दी। नन्दश्री सन्तुष्ट हुई, और थोड़े ही दिनोंमें उसने प्रतापशील अभयकुमार पुत्रको जन्म दिया। श्रेणिक उसकी बाललीलामें अनुरक्त हुआ और उसे वर्णमाला आदि सिखलाता हुआ सुखसे कालयापन करने लगा।

उधर राजा उपश्रेणिक अपनी आयु पूर्ण करके और प्रतिज्ञानुसार तिलकावतीके पुत्र चिलातीपुत्रको राज्य देकर मृत्युको प्राप्त हो गया, और चिलातीपुत्र राज्यका कार्य चलाने लगा। परन्तु थोड़े ही दिनोंमें अपने अन्याय और दुराचारोंसे उसने राज्यको रसातल पहुंचा देनेका सूत्रपात कर दिया। तब उसके बुद्धिमान् मंत्रियोंने मिलकर एक विज्ञापन श्रेणिकके निकट इस आशयका भेजा कि, यहां बड़ा अन्याय हो रहा है। आप इस राज्यको संभालनेके लिये शीघ्र आवें। इस विज्ञापनको पढ़कर श्रेणिकने अपने श्वसुरको बतलाया और वह यह कहकर वहांसे चलनेको उत्सुक हुआ कि, आप अपनी पुत्री और दोहितेके साथ पीछेसे आइयेगा, मैं जाता हूं। इतनेमें ही स्वागतके लिये पांच हजार योद्धा आ गये, सो श्रेणिक उनके तथा श्वसुरके दिये हुए और भी अनेक सेवकोंके साथ उत्साहपूर्वक चलकर राजगृहमें आ पहुंचा। उधर इसका आगम जानके चिलातीपुत्र डर कर एक किलेमें जा छुपा, और श्रेणिकको सहज ही राज्यासन मिल गया।

नन्दिग्रामके ब्राह्मणोंपर श्रेणिकका बड़ा भारी कोप था, क्योंकि उन्होंने इसे भोजन नहीं दिया था। सो राज्याधिकार मिलते ही उसने उस ग्रामको लेनेके लिये अपने सेवक भेजे, परन्तु यह सुनकर मंत्रियोंने उन्हें रोका और पूछा कि, महाराज ! आप निरापराधियोंके साथ ऐसा वर्ताव क्यों करते हैं ? श्रेणिकने कहा—चाहे जो हो, परन्तु मैं उस ग्रामको नष्टकरके ही छोडूंगा, क्योंकि उसपर मेरा बड़ा क्रोध है। तब मंत्रियोंने समझाया, कि महाराज ! आप राजा हैं, जो चाहे सो कर सकते हैं। परन्तु हमारी प्रार्थना यह है कि, यदि ऐसा करना ही है, तो कुछ अपराध उन

राजाको यह बात कुछ अच्छी लगी, इसलिये उसने वहां एक मेंढा भिजवाया और आज्ञा
लोगोंके सिरपर मॅढके करे। राजाको यह बात कुछ अच्छी लगी, इसलिये उसने वहां एक मेंढा भिजवाया और आज्ञा

भिजवाई कि, इसको यथेष्ट (इच्छानुसार) खाने पीनेको मिलना चाहिये। परन्तु याद रक्खो, न तो यह दुबला हो और
न मोटा। यदि हुआ, तो नष्ट कर दिये जाओगे। मेंढेके पहुंचते ही बेचारे ब्राह्मण बडे दुःखी होने लगे। परन्तु इतनेहीमें
अभयकुमारने पहुंचकर उन लोगोंको एक उपाय बतलाकर निश्चिन्त (बेफिकर) कर दिया कि, मेंढेको दो व्याघ्रोंके
बीचमें लाके बांध दो, और खूब खाने पीनेको देते रहो, जिस समय कुछ मोटा हो, उस समय व्याघ्रोंको निकट कर
दो, और जिस समय दुर्बल हो, उस समय उन्हें कुछ दूर हटा दो। ब्राह्मण यह युक्ति सुनकर बड़े प्रसन्न हुए, और
आखिर उसमें कृतकार्य हुए अर्थात् कही हुई युक्तिसे वह मेंढा न मोटा हुआ न दुर्बल। इसके पीछे उन सबने
प्रार्थना की, कि जब तक हम लोगोंसे यह राजकोप न टले तब तक आप यहां ही रहें।

अभयकुमार अपनी माता और नानाके साथ राजगृहको जा रहा था, और उस दिन नन्दिग्राममें जो कि
मार्गमें है, उसे विश्राम करना पड़ा था। इसीसे ब्राह्मणोंके साथ उसका यह सम्बन्ध जुड़ गया, और पीछे गरीब
ब्राह्मणोंकी प्रार्थना स्वीकार करके उसे वहीं कुछ दिनोंके लिये ठहर जाना पड़ा।

दूसरे दिन महाराजकी ओरसे सूचना हुई कि, तुम लोग कर्पूरवापी (कपूरबावडी) को मेरे पास तक ले
आओ, अन्यथा तुम्हें प्राणदंड दिया जावेगा। ब्राह्मण बेचारे घबड़ाके फिर अभयकुमारके पास आये, तब उसने
एक सरल युक्ति बतलाकर उनका चित्त हलका किया। और तदनुसार ही राजाके निकटवर्ती पुरुषोंके द्वारा यह ..न
कर कि, वह कब सोता है उन ब्राह्मणोंने गांव भरके सम्पूर्ण भैंसे और बैलोंको एकट्ठे जोतकर तुरही भेरी आदि
बाजोंके शब्दोंके सहित नगरमें प्रवेश करके पुकार मचाई कि, महाराज! यह बावड़ी आ गई। उस समय
राजा निद्राके वशीभूत हो रहा था, उसे कुछ भी ज्ञान नहीं था, इसलिये उसने चटसे कह दिया—अच्छा जाओ, उस
बावड़ीको जहांकी तहां छोड़ आओ! सुनते ही ब्राह्मण बैल और भैंसोंको लेकर अपने गांव चले आये।

तीसरे दिन राजाने हाथीका वजन कितना है? यह ब्राह्मणोंसे पुँछवाया। तब अभयकुमारकी सम्मतिसे

ब्राह्मणोंने हाथीका वजन इस प्रकारसे निर्णय करके राजासे निवेदन कर दिया कि,—पहले तालावमें एक नौकापर हाथीको वैठाके निकाला, उस समय हाथीके वजनसे वह जितनी पानीमें डूवी, उसपर उसका चिह्न कर दिया, और फिर हाथीके वदलेमे पत्थर भरके उस चिह्न तक नौका जितने पत्थरोंके भरनेसे डूवी, उन पत्थरोंको तौल लिये, वस जो पत्थरोंका वजन था, वही वजन हाथीका निकल आया।

चौथे दिन राजाने एक साफ किया हुआ कत्थेकी लकड़ीका हाथ भरका टुकड़ा ब्राह्मणोंके पास भिजवाया और आज्ञा दी कि, इसकी जड़ और शिखा (चोटी) वतलाओ? तव ब्राह्मणोंने उस टुकड़ेको पानीमें डालके जो सिरा पानीके ऊपर रहा, उसे शिखा और जो नीचे रहा, उसे जड़ निश्चय करके राजाको वतला दिया।

पांचवे दिन महाराजकी यह आज्ञा हुई कि, जिस प्रमाणसे तिल लिये जावें, उसी प्रमाणसे उनका तैल निकालकर हाजिर किया जावे, अर्थात् जिस वर्तनमें भरके तिल लो, उसी वर्तनको भरके उसका तैल दो। तव ब्राह्मणोंने एक दर्पणके तल भागमें भरकर तिल ले लिये और उनका तैल उसी प्रमाणसे निकालकर उपस्थित कर दिया।

छट्टे दिन कहा गया कि, दो पैरवाले चोपाये और नारियलके दूधके सिवाय कोई ऐसा दूध हाजिर करो, जो भोजनके कार्यमें आ सके। सुनकर ब्राह्मणोंने कच्चे धानको पेलिकर उसके दूधका घड़ा भरके महाराजके पास पहुंचा दिया।

सातवे दिन आज्ञा हुई कि, एक ही मुर्गेको हमारे साम्हने लडाओ, तव ब्राह्मणोंने एक मुर्गेके आगे दर्पण रखके उसे खूव लडाके वतला दिया।

आठवें दिन आदेश दिया गया कि, एक रेतका रस्सा तयार करके ले आओ। तव ब्राह्मणोंने साम्हने जाके प्रार्थना की कि, महाराज! हम लोग यह वालू साथमें लाये हैं, रस्सा वना दिया जावेगा, परन्तु इसके पहले आप अपने खजानेमेंसे वालूके वनाये हुए रस्सेको मंगवा दीजिये, ताकि हम उसे देखकर उसीके मुआफिक रस्सा तयार कर सकें। राजाने कहा–वह तो हमारे यहां नही है, तव ब्राह्मणोंने कहा कि, तो वह और कहीं भी नहीं हो सकता। राजा यह सुनके चुप हो रहे, और ब्राह्मण जीतके अपने घर गये।

इसके वाद नवमें दिन राजाने यह आज्ञा दी कि,-घडेमें रक्खे हुए एक कुम्हडा (पैठा) हमारे सामने ले आओ।
तव ब्राह्मणोंने कुछ अवकाश मांगके एक घडेमें एक छोटेसे फलको जो कि झाड़में लगा हुआ था, रखके वढ़ाया और
फिर समयपर ले जाके उसे हाजिर कर दिया।

इस प्रकार सम्पूर्ण विकट प्रश्नोका उत्तर ब्राह्मणोकी ओरसे मिलता गया, तव राजाको सन्देह हुआ कि, इन्हे
अवश्य ही कोई विशेप बुद्धिशाली पुरुप प्रत्युपाय वतलानेवाला मिल गया है ! इसलिये उसने अनेक चतुर पुरुपोंको
उस विचक्षण पुरुपका पता लगानेके लिये भेजा।

वे चतुर पुरुप घरसे निकलकर ब्राह्मणोंके गांवके निकट ही पहुँचे थे कि, वहां जामुनके वृक्षोपर अभयकुमार
वहुतसे वालको सहित क्रीड़ा कर रहा था, उसने इन्हे आते हुए देखकर अपने साथियोसे कहा कि, देखो, इन आने-
वालोंसे तुममेसे कोई भी नही वोलना। इतनेमें वे पुरुप उस वृक्षके नीचे आ गये और कहने लगे-भाई, हमको भी
कुछ थोंड़ेसे जामून खिलाओ। कुमारने कहा-कहिये आप लोगोंको गर्म गर्म जामून खिलाऊँ या ठंडे ठंडे ? उन्होंने
कहा,-गर्म गर्म खिलाओ, तो अच्छा हो। कुमारने पके पके जामून हाथसे मसलकर नीचे डालना शुरू किये और उन
लोगोने नीचे पड़ जानेसे जो रेती जामुनमें लग जाती थी, उसे मुहसे फूँक फूँककर खाना शुरू किया यह देख
अभयकुमारने मुसकुराके कहा-देखोजी; होशयारीसे फूँकते जाना, नही तो गर्मीसे मूंछे झुलस जावें ? सुनकर वे लोग
वड़े लज्जित हुए और तव उन्होंने ठंडे जामुनकी याचना की। पश्चात् वहांसे लौटके राजासे जाकर उन वालकोकी
कथा सुनाई। सुनकर राजाने उस गांवके ब्राह्मणोके पास आज्ञा भिजवाई कि, उन सव वालकोको जो कि खेल रहे
थे, हमारे पास ले आओ। परन्तु स्मरण रहै कि, वे न तो मार्गसे आवे न उन्मार्गसे, न गाड़ी घोड़े आदिकी सवा-
रीसे आवें न पैदल, और न रातको और न दिनको। तव ब्राह्मणोने अभयकुमारसहित उन सब वालकोंको एकत्र

करके गाड़ियोंकी धुरीमें छींके बांधके और उनमें बैठाके संध्याके समय राजाके सम्मुख पहुंचा दिये*। उस समय पुत्रके मिलापसे राजा श्रेणिकको बडा भारी आनन्द हुआ। पुत्रने अपनी सब कथा कहके बेचारे ब्राह्मणोंको अभयदान दिलवाया। पश्चात् नन्दश्रीको पट्टरानीका, अभयकुमारको युवराजका पद देकर और जठराग्नि भगवत्को अपना गुरु बनाके [1]बौद्धधर्मका प्रकाश करता हुआ राजा श्रेणिक सुखसे काल व्यतीत करने लगा।

एक दिन राजा श्रेणिकके साम्हने एक झगड़ा उपस्थित हुआ, जिसका सारांश यह है कि;–उसी राजगृह नगरमे समुद्रदत्त शेठके वसुदत्ता और वसुमित्रा नामकी दो स्त्रियाँ थीं, जिनमेसे छोटी वसुमित्राके एक पुत्र था। वह पुत्र दोनोंको इतना प्यारा था कि, दोनो ही उसका लालन पालन करतीं और दूध पिलाया करती थीं। कुछ दिनोके पीछे शेठके मरनेपर उन दोनोमें "यह मेरा पुत्र है" इस प्रकार कहकर झगड़ा शुरू हुआ, और वह यहां तक बढ़ा कि, वे दोनो राजाके पास उसे मिटानेको पहुंचीं। परन्तु राजा अनेक प्रयत्न करनेपर भी उसका फैसला न कर सका। तव अभयकुमारके पास वह झगड़ा आया, और उसने अनेक उपायोसे उसका असली तत्त्व समझना चाहा, परन्तु जब कुछ लाभ नही हुआ, तव अन्तमें अभयकुमारने एक प्रयत्न किया। वह यह कि, उस वालकको धरतीपर लिटाके एक छुरी निकाली और उसे यह कहकर मारनेको तत्पर हुआ कि, अब इन दोनों माताओंको इसके दो टुकड़े करके एक एक सोंप देता हूं, इसके विना यह झगड़ा नही मिट सकता। यह सुनते ही जो उस वालककी असली माता थी, उसने पुकारके और रोके कहा,–"महाराज! मुझे यह पुत्र नहीं चाहिये। इसीको (दूसरीको) सोंप दीजिये। मै

---

*उक्त च,—मेषश्च वापी करिकाष्ठतैल क्षीराब्धिजम्बालुकवेष्टन च।
घटस्थकुष्माण्डफल शिशूना दिवानिशावर्ज्जसमागम च॥

१ मूल पुस्तकमे सर्वत्र बौद्धके स्थानमे वैष्णवधर्म लिखा गया है। (यथा.—जठराग्निं राजगुरु कृत्वा वैष्णव धर्म प्रकाशयन् सुखेन स्थित।) परन्तु श्रेणिकचरित्रादि अन्य आर्ष ग्रन्थों और इतिहासोसे बौद्धधर्म ही ठीक जँचता है। इस कथाकोषमे न जाने क्यो ऐसा लिखा गया है।

उसके पास ही इसे देख देखके जीऊंगी, परन्तु कृपा करके वध न कीजिये।" इस सच्चे पुत्रस्नेहसे अभयकुमारने तुरन्त जान लिया कि, यही इसकी यथार्थ माता है, अतएव उसी समय वह पुत्र उसे सौंप दिया गया।

दूसरे दिन अभयकुमारके पास एक दूसरा झगड़ा उपस्थित हुआ। वह यह कि, अयोध्या नगरीमें वलभद्र नामका कोई एक गृहस्थ था। उसकी भद्रा नामक स्त्री अत्यन्त रूपवती थी। एक वार उसपर ब्रह्मराक्षसने आसक्त होकर वलभद्रका (उसके पतिका) रूप धारण करके उसके घरमे प्रवेश करना चाहा। परन्तु भद्राने उसकी भावभंगी और गतिसे जान लिया कि, यह कोई दूसरा ही है, और मेरे साथ छल करना चाहता है, अतएव उसने शीघ्रतासे अन्तर्गृह (मझघरे) के किवाड़ दे दिये और इतनेमें उसका असली पति भी आ गया। परन्तु वे दोनो ही इस प्रकारके गुप्त संकेतादिक वतलाते थे कि, वह कुछ निश्चय न कर सकी कि, इनमे असली कौन है। वेचारा वलभद्र भी बड़े विस्मयमे पड़ा। और आखिर उसने इसकी पुकार अभयकुमारसे जाकर की।

दृष्टिभेद, स्वरभेद, और गतिभेदसे जव अभयकुमार इस वातका निश्चय नहीं कर सके कि, इनमें वलभद्र कौन है? क्योंकि उस ब्रह्मराक्षसने इस खूवीसे वेप वदला था कि, दृष्टि आदिसे उसका पहिचान लेना कठिन था, तव उन्होंने एक कोठरीके भीतर दोनोको वन्द करके वाहरसे द्वार लगा दिया, और आज्ञा दी कि, जो कोई चावीके छेदमेंसे निकल आवेगा वही घरका स्वामी होगा, भद्रा उसीको दिलाई जावेगी। तव ब्रह्मराक्षस अपनी मायासे उसी समय वाहर निकल आया। वेचारा वलभद्र नहीं निकल सका। वस! असलीकी पहिचान हो गई। जो कोठरीसे नहीं निकल सका था, उस असली वलभद्रको उसकी स्त्री और घर सौंप दिया गया। इस युक्तिपूर्ण न्यायके करनेसे अभयकुमारकी वड़ी ख्याति हुई।

अयोध्या नगरीमें भरत नामका एक चित्रकार था। एक समय उसने पद्मावतीकी आराधना करके यह वर पा लिया कि, जिस रूपको मनमें विचार करके वह कलम कागजपर रखता था, उस पटपर उसका साक्षात् रूप स्वयमेव

खिच जाता था। इस विद्याको पाकर उसने नाना देशोंमें भ्रमण करके प्रशंसा प्राप्त की, और वह एक अद्वितीय चित्रकार हो गया।

एक वार वह सिन्धुदेशके वैशालीपुर नगरके राजा चेटकके दरवारमें गया। और वहां अपने गुणको दिखलाकर उसने वहांके सम्पूर्ण चित्रकारोंको जीत लिया। उस समय राजाने प्रसन्न होकर उसको एक अच्छी वृत्ति (नौकरी) लगा दी; और वह उससे आनन्द-पूर्वक निर्वाह करके वहीं रहने लगा।

राजा चेटककी सुभद्रादि सात रानियोंसे प्रियकारिणी, मृगावती, सुप्रभा, ज्येष्ठा, चेलिनी और चन्दना नामकी सात पुत्रियां थीं। इनमेंसे पहली चार कन्याओंका विवाह हो चुका था, और शेष तीन कुंवारी थीं। भरत चित्रकारने इन सातोंके चित्रपट खींचके अपने द्वारपर लटका रक्खे थे, वे लोगोंको ऐसे रुचे कि, स्वयं लिख लिखके उन्हे अपने अपने द्वारोंपर लटकाये। पश्चात् एक दिन भरतने चेलिनी कन्याका नग्नरूप मनमें धारणकरके उसका चित्र खींचा। सो वह ऐसा ज्योंका त्यों खिच गया कि, उसके गुप्त अंगपर जो तिल था, वह भी वाकी न वचा। इसपरसे राजाको यह विश्वास हो गया कि, इसने अवश्य ही किसी न किसी तरह मेरी कन्याका शील नष्ट किया है, अन्यथा ऐसा चित्र वह कभी नहीं खींच सकता था। और इससे वह अतिशय क्रोधित होकर उसे मारनेके लिये तैयार हुआ, परन्तु तव तक किसीने जाके भरतसे कह दिया कि, तू यहांसे अपने प्राण वचाके शीघ्र भाग जा, अन्यथा महाराज तुझे जीता नहीं छोड़ेंगे। सुनते ही वह वहांसे भाग खड़ा हुआ और राजगृह नगरीमें जा पहुंचा। वहां उसने राजा श्रेणिकको उस कन्याका चित्रपट दिखाके विह्वल वना दिया। श्रेणिक इस चिन्तामें मग्न हो गया कि, वह मुझे कैसे प्राप्त हो सकती है? यदि राजा चेटकसे उसकी याचना की जावे, तो वह जैनी है, इसलिये मुझे वह अपनी कन्या कभी देना नहीं चाहेगा। और यदि युद्धका विचार किया जावे, तो उसको जीत लेना वड़ा कठिन कार्य है। पिताको इस प्रकार व्याकुल देखके अभयकुमारने उसे धैर्य वँधाया और आप स्वयं एक वड़ा व्यापारी वनके वैशालीपुर गया। वहां चेटकमहाराजसे मिलके संभाषण (वातचीत) की प्रियताके कारण उनका अत्यन्त प्यारा वन गया। इसके

बाद मौका पाकर एक दिन उसने राजमहलके निकट रहनेके लिये एक स्थानकी याचना की, राजाने उसे प्रसन्नतासे पूर्ण की। अभयकुमार वहां रहने लगा और अपने जैनीपन तथा अन्य अनेक उत्तम गुणोके कारण प्रसिद्ध हो गया। अच्छे अच्छे लोगोंसे उसकी रसाई हो गई।

एक दिन उसने अवसर पाके राजाकी उन तीनों कन्याओंके आगे जिनका कि विवाह नहीं हुआ था, राजा श्रेणिकके रूप और गुणोंकी ऐसी प्रशंसा की कि, तीनो ही श्रेणिकपर अत्यन्त आसक्त हो गई, और अभयकुमारसे प्रार्थना करने लगी कि, हमको किसी प्रकारसे उनके पास पहुंचा दो। तब अभयकुमारने अपने रहनेके घरसे एक सुरंग तैयार करवाई और उसमेंसे उन तीनोंको लेके चलने लगा। परन्तु उस समय चन्दना अपनी मुद्रिका और ज्येष्ठा अपना हार भूल आई थी, सो वे दोनो उन चीजोंके लिये लौट गई, केवल चेलिनी रह गई। तब अभयकुमार उस अकेलीको ही लेके सुरंगके द्वारा उस नगरसे बाहर हो गया और कुछ दिनोंमें चलके राजगृह पहुंचा। आगमन सुनके राजा श्रेणिक बडी भारी विभूतिके साथ लेनेके लिये आया और बड़े स्नेह सत्कारके साथ चेलिनीका नगर प्रवेश कराया। पश्चात् शुभमुहूर्तमें विवाह करके और उसे पट्टरानीका पद देके राजा श्रेणिक नाना प्रकारके भोगोंका अनुभव करता हुआ सुखसे रहने लगा।

राजा श्रेणिक चेलिनी महारानीको अपना धर्म बहुत सुनाया करते थे, और चाहते थे कि, यह किसी तरह स्वधर्मावलम्बिनी हो जावे, जैनधर्मको छोड़ देवे। परन्तु हजार प्रयत्न करनेपर उसने जैनधर्म नहीं छोड़ा। एक दिन राजगुरु जठराग्निने आके रानीसे कहाः–हे देवि! क्षपणक (जैनगुरु) मरकर स्वर्गलोकमें क्षपणक अर्थात् भिक्षुक ही होते है। चेलिनीने कहा–तुमने यह कैसे जाना? जठराग्नि बोलाः–मुझे बुद्धदेवने[1] बुद्धि ही ऐसी दी है कि, मै उससे ऐसी बातें जान लेता हूं। रानीने कहा,–यदि आप ऐसी बुद्धि रखते है, तो कृपाकरके कल आप मेरे ही महलमें आके भोजन करना स्वीकार करें। तब जठराग्नि यह बात स्वीकार करके वहांसे चला गया।

१ यहा भी मूलमे 'विष्णु' पद दिया है। "विष्णुर्मतिमदात्तयाबोधि मया एव।" इति

दूसरे दिन रानीने जठराग्नि, और उनके साथी सब साधुओंको बुलाके बडे सत्कारसे बिठलाया और फिर इस रीतिसे कि उन्हे मालूम न हो, उन सबका एक एक जूता लेकर और उनका चूर्ण बनाके चटनीमे अच्छी तरहसे मिलवा दिया। पश्चात् वह चटनी साधुओंको परोसी गई और वे बड़े प्रेमसे उसे चाट गये। चलते समय जब सबने देखा कि एक एक जूता गायब है, तब रानीसे पूछा। रानीने कहा, आप तो ज्ञानवान् है। ज्ञानसे जान लीजिये, जूते कहाँ गये। जठराग्निने कहा;-महरानी, ऐसा ज्ञान हमारे पास नही है। रानीने कहा-तो फिर आप यह कैसे जान सके कि दिगम्बर क्षपणक स्वर्गमे क्षपणक ही होता है? जठराग्निने कहा-महारानीजी, नही जान सकता, परन्तु अब कृपा-करके वे जूते दिला दीजिये। रानीने हँसके कहा-मै कहाँसे दिलाऊँ, जूते तो सब आप लोग ही खा गये है। सुनते ही एक साधुने उसी समय कै (वमन) कर दी। उसमे चर्मके छोटे २ टुकड़े देखकर वे सब साधु बड़े लज्जित हुए और पश्चात्ताप करते हुए अपने स्थानको गये।

एक दिन राजाने कहा-हे देवि, हमारे गुरुमहाराज जब ध्यानका अवलम्बन करते है, तब वे अपनी आत्माको बुद्धभवनमें लेजाते है-और वहाँ सुखमें मग्न हो जाते है। यह सुनके रानीने कहा-तो महाराज उनका वह अविचल ध्यान एक बार नगरके बाहर मुझे दिखलाइये, यदि वह सच्चा ध्यान होगा तो मै आपके धर्मको उसी समय स्वीकार कर लूँगी। तब उस नगरके बाहर मंडपमे वे सब साधु वायुधारण (प्राणायाम) करके बैठ गये और राजा चेलिनीको लेकर उनके दर्शनोंको गया। वहाँ रानी चेलिनीने एक सखीके द्वारा उस मंडपमे आग लगवा दी और आप तमाशा देखने लगी। आगके प्रज्वलित होते ही देखा कि वे सबके सब साधु उस मंडपमेसे निकलकर भाग खड़े हुए। यह देख राजा रानीपर अतिशय कुपित हुआ और बोला-यदि भक्ति नही थी, तो क्या उनको मारनेका प्रयत्न करना तुम्हें उचित था? रानीने कहा-महाराजा, एक कथा सुनिये;—

"वत्स देशमे एक कौशाम्बी नामकी नगरी है। वहाँके राजाका नाम वसुपाल और रानीका यशस्विनी था। नगरीमे दो सेठ अधिक प्रसिद्ध थे, एक सागरदत्त और दूसरा समुद्रदत्त। सागरदत्तकी स्त्रीका नाम वसुमती और

बाद मौका पाकर एक दिन उसने राजमहलके निकट रहनेके लिये एक स्थानकी याचना की, राजाने उसे प्रसन्नतासे पूर्ण की। अभयकुमार वहां रहने लगा और अपने जैनीपन तथा अन्य अनेक उत्तम गुणोंके कारण प्रसिद्ध हो गया। अच्छे अच्छे लोगोंसे उसकी रसाई हो गई।

एक दिन उसने अवसर पाके राजाकी उन तीनों कन्याओंके आगे जिनका कि विवाह नहीं हुआ था, राजा श्रेणिकके रूप और गुणोंकी ऐसी प्रशंसा की कि, तीनो ही श्रेणिकपर अत्यन्त आसक्त हो गईं, और अभयकुमारसे प्रार्थना करने लगीं कि, हमको किसी प्रकारसे उनके पास पहुंचा दो। तब अभयकुमारने अपने रहनेके घरसे एक सुरंग तैयार करवाई और उसमेंसे उन तीनोंको लेके चलने लगा। परन्तु उस समय चन्दना अपनी मुद्रिका और ज्येष्ठा अपना हार भूल आई थी, सो वे दोनो उन चीजोंके लिये लौट गईं, केवल चेलिनी रह गई। तब अभयकुमार उस अकेलीको ही लेके सुरंगके द्वारा उस नगरसे बाहर हो गया और कुछ दिनोंमें चलके राजगृह पहुंचा। आगमन सुनके राजा श्रेणिक बडी भारी विभूतिके साथ लेनेके लिये आया और बड़े स्नेह सत्कारके साथ चेलिनीको नगर प्रवेश कराया। पश्चात् शुभमुहूर्तमे विवाह करके और उसे पट्टरानीका पद देके राजा श्रेणिक नाना प्रकारके भोगोंका अनुभव करता हुआ सुखसे रहने लगा।

राजा श्रेणिक चेलिनी महारानीको अपना धर्म बहुत सुनाया करते थे, और चाहते थे कि, यह किसी तरह स्वधर्मावलम्बिनी हो जावे, जैनधर्मको छोड़ देवे। परन्तु हजार प्रयत्न करनेपर उसने जैनधर्म नहीं छोड़ा। एक दिन राजगुरु जठराग्निने आके रानीसे कहाः–हे देवि! क्षपणक (जैनगुरु) मरकर स्वर्गलोकमें क्षपणक अर्थात् भिक्षुक ही होते है। चेलिनीने कहा–तुमने यह कैसे जाना? जठराग्नि बोलाः–मुझे बुद्धदेवने[1] बुद्धि ही ऐसी दी है कि, मै उससे ऐसी बातें जान लेता हूं। रानीने कहा,–यदि आप ऐसी बुद्धि रखते है, तो कृपाकरके कल आप मेरे ही महलमें आके भोजन करना स्वीकार करें। तब जठराग्नि यह बात स्वीकार करके वहांसे चला गया।

---

१ यहा भी मूलमे 'विष्णु' पद दिया है। "विष्णुर्मतिमदात्तयाबोधि मया एव।" इति

दूसरे दिन रानीने जठराग्नि, और उनके साथी सब साधुओंको बुलाके बडे सत्कारसे विठलाया और फिर इस रीतिसे कि उन्हें मालूम न हो, उन सबका एक एक जूता लेकर और उनका चूर्ण बनाके चटनीमें अच्छी तरहसे मिलवा दिया। पश्चात् वह चटनी साधुओंको परोसी गई और वे बड़े प्रेमसे उसे चाट गये। चलते समय जब सबने देखा कि एक एक जूता गायब है, तब रानीसे पूछा। रानीने कहा, आप तो ज्ञानवान् हैं। ज्ञानसे जान लीजिये, जूते कहाँ गये। जठराग्निने कहा;-महरानी, ऐसा ज्ञान हमारे पास नहीं है। रानीने कहा-तो फिर आप यह कैसे जान सके कि दिगम्बर क्षपणक स्वर्गमें क्षपणक ही होता है? जठराग्निने कहा-महारानीजी, नहीं जान सकता, परन्तु अब कृपा-करके वे जूते दिला दीजिये। रानीने हँसके कहा-मैं कहाँसे दिलाऊँ, जूते तो सब आप लोग ही खा गये हैं। सुनते ही एक साधुने उसी समय कै (वमन) कर दी। उसमें चर्मके छोटे २ टुकड़े देखकर वे सब साधु बड़े लज्जित हुए और पश्चात्ताप करते हुए अपने स्थानको गये।

एक दिन राजाने कहा-हे देवि, हमारे गुरुमहाराज जब ध्यानका अवलम्बन करते हैं, तब वे अपनी आत्माको बुद्धभवनमें लेजाते हैं-और वहाँ सुखमें मग्न हो जाते हैं। यह सुनके रानीने कहा-तो महाराज उनका वह अविचल ध्यान एक बार नगरके बाहर मुझे दिखलाइये, यदि वह सच्चा ध्यान होगा तो मैं आपके धर्मको उसी समय स्वीकार कर लूँगी। तब उस नगरके बाहर मंडपमें वे सब साधु वायुधारण (प्राणायाम) करके बैठ गये और राजा चेलिनीको लेकर उनके दर्शनोंको गया। वहाँ रानी चेलिनीने एक सखीके द्वारा उस मंडपमें आग लगवा दी और आप तमाशा देखने लगी। आगके प्रज्वलित होते ही देखा कि वे सबके सब साधु उस मंडपमेंसे निकलकर भाग खड़े हुए। यह देख राजा रानीपर अतिशय कुपित हुआ और बोला-यदि भक्ति नहीं थी, तो क्या उनको मारनेका प्रयत्न करना तुम्हें उचित था? रानीने कहा-महाराजा, एक कथा सुनिये;—

"वत्स देशमें एक कौशाम्बी नामकी नगरी है। वहाँके राजाका नाम वसुपाल और रानीका यशस्विनी था। नगरीमें दो सेठ अधिक प्रसिद्ध थे, एक सागरदत्त और दूसरा समुद्रदत्त। सागरदत्तकी स्त्रीका नाम वसुमती और

समुद्रदत्तकी स्त्रीका नाम सागरदत्ता था। एक वार सागरदत्त और समुद्रदत्त ये दोनो सेठ परस्पर स्नेह वढ़ानेके लिये इस प्रकार वचनवद्ध हो गये कि हम दोनोके पुत्र पुत्रियोका विवाह जव होगा, तव परस्पर ही होगा ।

कुछ काल वीतनेपर सागरदत्त और वसुमतीके एक सर्प्प-पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसका कि नाम वसुमित्र रक्खा और दूसरे समुद्रदत्त सेठके नागदत्ता नामकी कन्या हुई, प्रतिज्ञानुसार विवाह योग्य होनेपर दोनो सेठोने उन दोनोका विवाह कर दिया। नागदत्ता यौवनवती हुई। उसे देखकर एक दिन उसकी माता सागरदत्ता रोने लगी कि हाय ! मेरी पुत्रीको कैसा वर मिला ? माताको रोती देख, पुत्रीने पूछा—मा, तू क्यो रोती है ? माताने कहा–वेटी, तेरे भाग्यको देखके रोती हूँ। नागदत्ता वोली नही, तुझे चिन्ता नही करनी चाहिए, मेरा भाग्य वुरा नही है। मेरा पति दिनको तो सर्प वनकर पिटारेमे रहता है, परन्तु रात्रिको दिव्य पुरुष होकर मेरे साथ दिव्य भोगोको भोगता है। माताने विस्मित होकर कहा कि यदि ऐसा है तो रातको उसके पिटारेमेसे निकलनेपर वह पिटारा तू मुझे दे देना। पुत्रीने यह वात स्वीकार की और तदनुसार अवसर पाके माके हाथमे उसने वह पिटारा दे दिया। माताने उसे पाकर तत्काल ही जला दिया और उसके जल जानेसे वसुमित्र फिर सर्प न हो सका, मनुष्यरूपमे ही रहने लगा।”

राजन्, इसी प्रकार ये आपके गुरुमहाराज भी जो कि ध्यानके वलसे वुद्धभवनमे आनन्द करते है, जल जानेसे सदाके लिये वहाँ ठहर जावेंगे, ऐसा विचार करके मैने यह आग लगवाई थी, अपराध क्षमा करे। यह तर्क सुनके राजा अपने क्रोधको दवाके और मन ही मन मसूसके रह गया।

एक दिन राजा शिकार खेलनके लिये जा रहा था कि मार्गमे यशोधर मुनिको तपस्या करते हुए देखकर उसे धर्मद्वेष उत्पन्न हुआ, इसलिये उसने क्रोधित होकर मुनिराजपर कुत्ते छोड़ दिये। परन्तु जव देखा कि मुनिकी तपस्याके प्रभावसे उन कुत्तोनें कुछ भी उपद्रव नही किया, वल्कि नमस्कार करके वे उनके निकट वैठ

गये, तब एक मरे हुए साँपको उठाकर उसने मुनिराजके गलेमें डाल दिया और साथ ही उन तीव्र-कषाय-जनित परिणामोंसे उसने सातवें नरककी आयु अपने गलेमें डाल ली।

इसके पश्चात् चौथे दिन रात्रिको जब एकान्तमें यह कथा राजाने रानी चेलिनीको सुनाई तब उसने अतिशय दुःखी होकर कहा—महाराज, आपने यह बहुत बुरा कर्म किया, व्यर्थ ही आपने अपने हाथसे दुर्गतिका मार्ग साफ किया। परम निर्ग्रंथ मुनियोंके उपसर्ग पहुँचानेके समान संसारमें कोई दूसरा पातक नहीं है। राजाने कहा—तो क्या वे जिनके गलेमें मैंने साँप डाला है, उसको अलग करके वहाँसे नहीं जा सके होंगे? रानीने कहा—वे महामुनि स्वयं ऐसा नहीं कर सकते। जबतक उनका उपसर्ग निवारण न होगा, तबतक वे वहाँ ही अचल रहेंगे। यदि ऐसा है, तो मैं अभी देखनेको जाऊँगा, ऐसा कहके राजा उठ खड़ा हुआ और अनेक दीपकोंका प्रकाश कराके सेवकोंके साथ वहाँ गया। देखा, महामुनि जैसेके तैसे तपस्या करते हुए अडोल खड़े हैं, और साँप उनके गलेमें पड़ा है। उस समय राजाके हृदयमें भक्ति उत्पन्न हुई। इसलिये उसने अपनी रानीसहित मुनिराजका उष्ण जलसे शरीर स्वच्छ करके पूजा की और चरणोंकी सेवा करते हुए शेष रात्रि वहीं बिताई। सूर्योदयके समय प्रदक्षिणा करके रानीने हाथ जोड़के कहा—हे संसारसमुद्रसे पार लगानेवाले भगवान्, उपसर्ग दूर हो गया है। हम लोगोंपर अनुग्रह (कृपा) कीजिये। यह सुनकर मुनि ध्यानासन छोड़के बैठ गये और नमस्कारके उत्तरमें दोनोंसे बोले—तुम दोनोंके "धर्मकी वृद्धि होव"। दोनोंको इस प्रकार समान आशीर्वाद दिया गया। इस बातका राजाके चित्तपर बड़ा असर हुआ। वह सोचने लगा—अहो! मुनिराजके हृदयमें कैसी अद्वितीय क्षमा है, जो मुझ अपराधीमें और अपनी परम भक्त रानीमें कुछ भी भेद न रखके एकरूप धर्मवृद्धि देते हैं। इनके चरणोंपर तो अपना सिर काटके चढ़ाना चाहिये। राजा ऐसा विचार कर ही रहा था कि उसे जानकर मुनिराज बोले—राजन्, तूने बहुत बुरा विचार किया है, ऐसी अपघातकी इच्छा तुझे नहीं करनी चाहिये। राजा आश्चर्ययुक्त होके रानीसे बोला—प्रिये, मुनि महोदयने मेरे मनकी इस बातको कैसे जान लिया कि मेरी आत्मघात करनेकी इच्छा है? रानीने कहा—महाराज, मनकी बातका जान लेना तो मुनियोंका एक

साधारण कार्य है, आप तो इनसे अपने पूर्व जन्मोंका भी वर्णन पूछ सकते है और उससे संतोपलाभ कर सकते है। राजाने यह सुनके वड़ी नम्रतासे कहा—प्रभो, कृपाकर कहिये कि मै पूर्व जन्ममे कौन था? मुनिराज कहने लगे—

इसी आर्यखंडके सूरकान्त देशमे प्रयत्नपुर नामका एक नगर है। वहाँके राजाका नाम मित्र था। मित्रके पुत्र सुमित्र और प्रधानके पुत्र सुपेणमे वड़ी मित्रता थी। सुषेण सुमित्रको अपने साथ जलक्रीड़ा करनेके लिये वड़े स्नेहसे ले जाता था और एक वावड़ीमे स्नान कराता था, परन्तु इससे सुमित्रको वड़ा कष्ट होता था।

कुछ दिनो वाद जव सुमित्र राजा हुआ, तव सुपेण उसके भयसे भागकर तापस हो गया। एक दिन राजसभामें सुपेणको न देखकर सुमित्रने पूछा कि सुपेण कहाँ है? तव लोगोने कहा कि वह तापसी हो गया है सुनके राजा वहाँ गया जहाँ सुपेण था और उसके पॉव पड़के वोला—भाई, मेरा कोई अपराध हो तो क्षमा करो और अव इस वेपको छोड़ दो। परन्तु जव सुपेण किसी प्रकार तपस्या छोड़नेको राजी नही हुआ तव सुमित्र "यदि तप नही छोड़ते हो तो न सही परन्तु मेरे यहाँ आकर भिक्षा तो ग्रहण किया करो" ऐसा निवेदन करके अपने घर गया।

सुपेण मासोपवास करके पारणेके दिन उक्त प्रार्थनाके अनुसार राजाके यहाँ भिक्षा मॉगनेके लिये गया, परन्तु उस समय किसी कारणसे राजाका चित्त स्थिर नही था, उसने तापसीको देखा नहीं; इसलिये उसे वापिस लौट जाना पड़ा। इसके पश्चात् तापसी उपवास करके फिर दूसरे तीसरे पारणेको भी राजाके यहाँ गया, परन्तु कारणवश उसे दोनो दिन फिर भी भूखा लौटना पड़ा। यह देख किसी पुरुपने कहा—यह राजा वड़ा कृपण है। आप स्वयं तो किसीको भिक्षा देता नही है और देनेवालोको भी देनेसे रोक देता है। इस वेचारे तापसीको उसने व्यर्थ भूखे मारा। सुपेण तापसी यह सुनके क्रोधके कारण असावधानतासे विना विचारे वहाँसे चला कि एक पत्थरकी ठोकर खाके गिर पड़ा और उसी ठोकरसे वह मरकर व्यन्तर देव हुआ।

उधर जव राजाने सुना कि तापसीकी मृत्यु हो गई तव आप भी तापसी हो गया और जीवनके अन्तमे शरीर छोड़के व्यन्तर देव हुआ। फिर उस व्यन्तर पर्यायको पूरी करके तू श्रेणिक राजा हुआ और वह सुपेण तापसीका

जाव आगे तेरी इस महारानीसे कुणिक नामका पुत्र होगा। अपने इस प्रकार भवान्तर सुनकर राजाको जातिस्मरण हो गया और "एक जिनदेव ही सच्चा देव है, दिगम्बर मुनि ही सच्चे गुरु है और अहिंसालक्षणयुक्त जिनधर्म ही सच्चा धर्म है।" इस प्रकारका श्रद्धान करके वह उपशम सम्यग्दृष्टि हो गया। पश्चात् अन्तर्मुहूर्तमे मिथ्यात्वका आश्रय लेकर सुखसे रहने लगा।

एक दिन तीन मुनिराज चर्याके लिये महारानी चेलिनीके महलोके द्वारपर पधारे। उन्हे देखकर राजाने कहा—देवि, मुनियोको आहारके लिये पड़गाहो। और उठके उनके सन्मुख गया। रानीने भी सम्मुख आकर नमस्कारपूर्वक कहा—हे तीन गुप्तियोके पालनेवाले मुनीश्वर आइये, तिष्ठिये, यह सुनके वे मुनि वहाँ नही ठहरे और लौटके उद्यानकी ओर चले गये। राजाने पूछा—देवि, मुनिराज आहारके लिये नही ठहरकर क्यों चले गये? रानीने कहा—चलिये, वही मुनियोके पास चले और उनसे उसका कारण पूछे।

राजा और रानी दोनो उसी समय उद्यानमें गये। वहाँ वन्दना करनेके बाद राजाने श्रीधर्मघोष मुनिसे पूछा—आप मेरे द्वारपर क्यो नही ठहरे? मुनि बोले—हम मनोगुप्ति नहीं पाल सके थे और रानीने 'त्रिगुप्तिगुप्त' ऐसा सम्बोधन देकर हमे ठहराना चाहा था, इसलिये नही ठहरे। वह मनोगुप्ति नही पल सकनेकी कथा इस प्रकार है कि:—

कलिंग देशके दन्तपुर नगरमें राजा धर्मघोष और रानी लक्ष्मीमती थी। राजा धर्मघोष जो कि किसी निमित्तसे संसार-देह-भोगोसे विरक्त होकर दिगम्बर हो गया था एक दिन कोशाम्बी नगरीको चर्याके लिये गया। वहाँ उसे राजाके गरुड़ नामके मंत्रीकी स्त्रीने पड़गाहा। सो भोजन करते समय उस मुनिके हाथमेसे एक कौर गिर पड़ा और उसको देखनेके लिये धरतीपर दृष्टि जानेसे अकस्मात् उस स्त्रीके पाँवका अँगूठा उसे दीख गया। जिससे उसके हृदयमें विचार उत्पन्न हुआ कि यह अँगूठा तो लक्ष्मीमतीके समान है, अतएव स्त्रीका स्मरण हो गया। फिर उसने आहार नही लिया। सो हे राजन्, वह धर्मघोष मुनि मै ही हूँ। विहार करता हुआ यहाँ आ पहुँचा

हैं। राजा यह सुनके विस्मित हुआ और फिर उसने दूसरे श्रीजिनपाल मुनिके सम्मुख होकर पूछा। वे कहने लगे-हमसे एक वार वाग्गुप्ति नही पली थी, सो उसकी कथा इस प्रकार है:—

भूमितिलक नगरके राजा प्रजापाल और रानी धारिणीकी कन्या वसुकान्ताकी कोशाम्वीके राजा चण्डप्रद्योतने याचना की। परन्तु प्रजापालने उसे अपनी कन्या देना स्वीकार नहीं किया। इसपर चण्डप्रद्योतने चढ़ाई करके भूमितिलक नगरको घेर लिया। उसी समय किलेसे लगे हुए किसी वनमे जिनपाल मुनि ध्यानारूढ़ है, वनपालके द्वारा यह वात जानकर राजा प्रजापाल आनन्दित होकर वन्दनाको गया। वन्दनाके पश्चात् किसीने कहा कि हे मुने, राजाको अभयदान दीजिए। तव राजाके पुण्यके प्रभावसे किसी एक देवने कहा कि "डरो मत" सुनकर राजा वहाँसे प्रसन्नचित होकर वड़ी भारी विभूतिके साथ नगरमें आ गया।

राजा चण्डप्रद्योत जो कि चढ़ाई करके आया था, यह जानकर कि प्रजापाल राजा जैनी है, अपनी सेना लोटाकर ले गया। तव प्रजापालने उसके अचानक लौट जानेका कारण अनेक पुरुषोंको भेजकर निर्णय किया और उसे जव जैनियोंके साथ चंडप्रद्योतका इतना वात्सल्य है, यह विदित हुआ तव प्रसन्न होकर उसे नगरमे सन्मानपूर्वक ले आया और अपनी पुत्री उसे व्याह दी।

एक दिन चंडप्रद्योतने अपनी स्त्री वसुकान्तासे कहा-यदि मै तुम्हारे पिताको जैनी नही जानता; तो वड़ा भारी अनर्थ करता। वसुकान्ताने कहा-मेरे पिताको जिनपाल भट्टारकने अभयदान दे दिया था, इसलिये कुछ भी अनर्थ नही हो सकता। चंडप्रद्योतने कहा-यदि ऐसा है, तो मै अवश्य ही उन जिनपाल भट्टारककी वन्दनाको जाऊँगा और तत्काल ही वह उनके निकट गया। वहाँ वन्दना करके उसने पूछा-प्रभो, समपरिणामी अर्थात् सवको समान देखनेवाले यतियोंको क्या ऐसा उचित है कि किसीको अभय प्रदान करें और किसीका विनाश चितवन करें? परन्तु मुनि उस समय मौन धारण किये हुए थे, इसलिये उन्होने कुछ उत्तर नहीं दिया। तव वसुकान्ताने कहा-प्राणनाथ, मेरे पिताके पुण्यसे दिव्यध्वनि (देवध्वनि) हुई थी, उसमें मुनिका कोई दोष नही था। उन्होंने किसीका

कि वह गिर पड़ा और तेल फैल गया। यह देख तूकारीने कहा–और दूसरा ले जाइए। सो सेठ दूसरा लेनेको गया, परन्तु वह भी गिर गया, और इसी प्रकार तीसरा भी। तब उसे डर हुआ कि शायद अब तैल नहीं मिलेगा, परन्तु तूकारीने कहा–आप भय न करें, जितने घड़ोंकी जरूरत हो, आप उतने ले जाइए, यह सुन सेठने एक और घड़ेको लेकर पूछा–हे माता, मुझसे इतने घड़े फूट गये, परन्तु तुमने क्रोध बिल्कुल नहीं किया, इसका क्या कारण है? तूकारीने कहा कि सेठजी, मै कोपका फल भोग चुकी हूँ, इसलिये क्रोध नहीं करती। सुनो मै अपनी कथा आपको सुनाती हूँ:—

"आनन्दपुरमे शिवशर्मा नामका ब्राह्मण है। उसकी कमलश्री नामकी स्त्रीके आठ पुत्र और मै एक भट्टा नामकी पुत्री हूँ। मुझसे यदि कोई "तू" शब्द कहता था, तो बड़ा भारी अनिष्ट हो जाता था, अर्थात् इस शब्दके सुननेसे मुझे बड़ी भारी चिड़ थी, इस कारण मेरे पिताने नगरभरमें घोषणा करा दी कि भट्टासे कोई भी 'तू' नहीं कहे। इस घोषणासे और मेरी चिड़से आखिर मेरा नाम तूकारी पड़ गया। और मुझमे क्रोध करनेकी आदत जानकर मेरा विवाह होना मुश्किल हो गया–मेरे साथ कोई भी विवाह करनेको तैयार नहीं हुआ। पश्चात् सोमशर्म्माने मेरी इच्छा की और 'तू' नहीं कहूँगा, ऐसी व्यवस्था करके विवाहपूर्वक मुझे यहाँ ले आया। और व्यवस्थाके अनुसार अपना वचन पालन भी करने लगा। एक दिन सोमशर्मा नटकला देखनेको गया था, सो वहाँसे बहुत रात बीत जानेपर घर आया और कहने लगा–प्रिये, किवाड़ खोलो। परन्तु मैने क्रोधित होके किवाड़ नहीं खोले। जब बहुत देर हो गई, तब उसने कहा कि 'तू' खोलती क्यो नहीं, सो तो बतला? फिर क्या था, 'तू' शब्दके सुनते ही मै अत्यन्त क्रोधित होकर नगरसे निकल गई। उस समय मार्गमें चोरोंने मेरे वस्त्राभरण सब छीन लिये और मुझे एक भीलोंके राजाको सोंप दी। वह भिल्लराज मेरा शील भंग करनेको तैयार हुआ, परन्तु वनदेवताने उसे रोककर मेरे शीलकी रक्षा की। तब भिल्लने एक बंजारेको मुझे सोंप दी। बंजारेने भी मुझपर कुदृष्टि की, परन्तु वह भी मेरा शील भंग करनेको समर्थ न हुआ। आखिर वह क्रिमिराग–कम्बलद्वीपको मुझे ले गया और वहाँ पारसकुल नामके किसी पुरुषको

लाभालाभ चिंतवन नहीं किया था। चलिए, अब जिनमन्दिरको चलें। पश्चात् जिनमन्दिरके दर्शन करके वे दोनों अपने स्थानको गये और सुखसे रहने लगे। राजन्, वह जिनपाल मुनि मैं ही हूँ; मुझसे उस समय वाग्गुप्ति नहीं पल सकी थी। राजा श्रेणिकने यह सुनकर पश्चात् तीसरे श्रीमणिमाली मुनिसे आहार न लेनेका कारण पूछा। वे बोले;—

मणिवत देशके मणिवत नगरमें मणिमाली नामका राजा था। उसके गुणमाला नामकी भार्या और मणिशेखर नामका पुत्र था। रानी गुणमाला एक दिन राजाके केशोंको कंघेसे सँवार रही थी, उस समय उसने राजाके सिरमें एक सफेद बाल देखकर कहा–महाराज, देखिए यमराजका दूत आ पहुँचा है। राजाने कहा–कहाँ है? तब रानीने उन्हें वह बाल दिखला दिया। उसे देखकर मणिमालीको बड़ा वैराग्य हुआ, अतएव वे अपने पुत्र मणिशेखरको राज्य देकर अनेक राजाओंके साथ दीक्षित हो गये। पश्चात् समस्त आगमोंके ज्ञाता होकर विहार करते हुए एक समय उज्जयनी नगरीमें आये और वहाँके स्मशानमें मृतकशय्या लगाकर ध्यानारूढ़ हो रहे। उसी समय वहाँ कोई सिद्ध वेतालविद्याकी सिद्धिके लिये मृतक मनुष्योंके कपालोंमें (खोपड़ियोंमें) दूध और चावल लेके नर–कपालोंके ही चूल्हेमें उन्हें पकानेके लिये आया। सो उसने मृतक चोरोंके दो कपालोंको वहींपर मृतकशय्या लगाये हुए उस मुनिके कपालके साथ मिलाकर चूल्हा बनाया। उसने समझा कि यह भी कोई मुर्दा पड़ा हुआ है। और फिर आग जलाके उसपर चावलोंको राँधने लगा। उस समय गर्मीके कारण नसोंके संकोचसे मुनिके हाथ खिंचकर मस्तकपर आये। तथा उनके मस्तकपर आ लगनेसे जिस कपालमें चाँवल रँध रहे थे वह कपाल गिर पड़ा और उसमें भरे हुए दूधके गिरनेसे आग बुझ गई। यह देख वह सिद्ध डरकर भाग गया। पश्चात् दूसरे दिन सूर्यका उदय होनेपर किसी वनमालीने मुनिको देखा और उनकी दशा जिनदत्त नामके सेठसे जाकर कही। सो सेठ स्मशानमें जाकर मुनिको ले आया और अपनी वसतिकामें उन्हें ठहराकर किसी वैद्यसे औषधि पूछी। वैद्यने कहा कि सोमशर्मा भट्टके घर लक्षमूलका तेल है, यदि आप वह ले आवें, तो उससे दग्ध मुनि अवश्य ही नीरोग हो जावेंगे। तब सेठने जाकर सोमशर्माकी भार्या तुकारीसे तेलकी याचना की। उसने कहा–ऊपर अटारीपर तेलके घड़े रक्खे हैं, सो आप उसमेंसे कोई एक ले आवें। तब सेठ घड़ेको लेने गया और घड़ेके गलेमें हाथ देके ज्यों ही उसने उठाया

मुझे बेच दी। वह पारसकुल प्रत्येक पक्षमे शिरामोचन (फस्त खोल) करके अर्थात् रगोंको खोलके मेरा खून कपड़े रँगनेके लिये निकाल लेता था, और पीछे लक्षमूल तैलकी मालिशसे शरीरकी पीड़ाको दूर कर देता था। इस प्रकार दुःखोंको झेलती हुई मै वहाॅ रहने लगी। परन्तु कुछ दिन पीछे मेरे भाई धनदेवने जिसे उज्जायिनीके नरेशने पारसके राजाके निकट भेजा था, राज्यकार्य्य करके लौटते समय मुझे देखकर वहाॅसे छुड़ा लाया और सोमशर्म्माको मुझे सौप दी। क्रोधके फलको भोगकर उस समय मैने क्रोधत्याग व्रत ले लिया, और तबसे मै बिल्कुल क्रोध नही करती हूँ।

तूकारीकी यह कथा सुनकर जिनदत्त तैलके घड़ेको ले गया और उससे उसने मणिमाली मुनिको बहुत शीघ्र ही जले हुए घावोंसे रहित कर दिया। इतनेमे वर्षाकाल आ गया। मुनिने उसी नगरीमे वर्षाकाल संबन्धी योगको ग्रहण कर लिया अर्थात् उन्होने चार महीने वहीपर तपस्या करनेका निश्चय किया।

एक दिन जिनदत्त सेठ अपने पुत्रके भयसे रत्नोंसे भरा हुआ एक कलश मुनिके आसनके समीप लाकर गाड़ गया। परन्तु उस समय गर्भगृहमे छुपे हुए उसके पुत्रने अपने पिताकी इस करतूतको देख लिया, इसलिए एक दिन उसने मुनिकी दृष्टि बचाकर उस कलशको वहाॅसे उखाड़कर अन्यत्र धर दिया। इसके बाद मुनि तो अपना योग पूरा करके वहाॅसे विहार कर गये और सेठने आकर जब वहाॅपर कलशको नही देखा, तब उसने मुनिको लौटानेके लिए अपने सेवक भेजे और आप स्वयं भी उनकी खोजके लिए एक ओर चला, सो मार्गमे मुनिको देखकर उसने ठहराया और बोला—कोई एक कथा कहिए। मुनिने कहा—नहीं, तुम ही कहो। तब जिनदत्त सेठ अपने अभिप्रायको सूचन करता हुआ अन्योक्तिरूपमे कथा कहने लगा क्योंकि उसे यह शंका हो गई थी कि मुनि ही मेरे रत्नोंके कलशको उड़ा लाये है।

वाराणसी नगरीमे जितशत्रु राजाके धनदत्त नामका एक वैद्य था। उसकी भार्या धनदत्ताके धनमित्र और धनचन्द्र नामके दो पुत्र थे। ये दोनों अपने पिता धनदत्तके पढ़ानेपर किसी तरह नही पढ़े। परन्तु पिताके मरनेपर जब उनकी जीविका दूसरे किसी वैद्यने ले ली, तब वे दोनों अभिमानके वशसे चम्पापुरीमे जाकर शिवभूति नामके एक विद्वान्‌के निकट जाके पढ़े। और वहाॅसे अपने नगरको लौटकर आते हुए उन्होने वनमे नेत्रोंकी पीड़ासे दुःखी किसी

एक व्याघ्रको देखा। उस समय बड़े भाईने छोटे भाईके रोकते हुए भी उस व्याघ्रके नेत्रोंमें औषधि लगाई। जिसके लगाते ही पीड़ा दूर होगई, परन्तु इसके वदलेमें वह व्याघ्र उस ज्येष्ठ पुत्रका भक्षण कर गया। सो मुनि महाराज, क्या व्याघ्रको ऐसा करना उचित था? मुनिने कहा—नहीं, उचित नहीं था। मेरी कथा सुनो:—

हस्तिनापुरमें विश्वसेन नामक एक राजा था। उसे किसी वणिकने वलिपलित-विनाशक अर्थात् जिसके खानेसे शरीरमें वलि न पड़े और सफेद वाल न होवे, ऐसा एक आमका बीज लाकर दिया। राजाने वह बीज अपने वन-पाल (माली) को सौंप दिया। और वनपालने उसे वागमें बो दिया। पश्चात् उसके वृक्षमें जिस समय फल लगे, उस समय आकाशमें एक गीध साँपको अपनी चोंचमें दवाये हुए निकला, और अचानक उस साँपके विपकी एक बूँद टपककर एक फलपर आके पड़ गई। उस विपकी उष्णतासे वह फल पक गया, और उसे वनपालने जाकर राजाको भेंट किया। परन्तु राजाने स्वयं उसे नहीं खाया, अपने युवराज कुमारको दे दिया, सो उसके खाते ही कुमार मर गया। तब राजाने क्रोधित होकर उस जरानाशक आम्रवृक्षको कटवा डाला। सो सेठजी, दूसरेके दोपके कारण उस वृक्षको काट डालना क्या राजाको उचित था? सेठने कहा नहीं, उसने अनुचित किया। अब मैं कहता हूँ, सो सुनिए:—

गंगा नदीके प्रवाहमें वहते हुए एक हाथीके बच्चेको विश्वभूत नामके एक तापसने देखकर दयार्द्र (दयासे भींगे) चित्त होके निकाला और पालपोपके वड़ा किया। पश्चात् सम्पूर्ण लक्षणयुक्त होनेपर जब राजा श्रेणिकने उसे ले लिया, तब अंकुशादिककी पीड़ा सहनेमें असमर्थ होके छूटके वह हाथी भागा और आके तापसके घरमें घुसने लगा। परन्तु उस समय तापसीने उसे रोका, इसलिए उसने क्रोधित होके वेचारे तापसीको मार डाला। सो क्यों महाराज, उसे ऐसा करना उचित था? मुनिने कहा—नहीं। अब मुनि कहते हैं;—

चम्पा नगरीमें देवदत्ता नामकी वेश्याने एक तोतेको पाला था। इतवारके दिन वह वेश्या एक वर्तनमें मदिरा रखके भीतर गई थी कि इतनेमें किसी एक कन्याने आके उसमें विप डाल दिया। उधर देवदत्ता भीतरसे आके जब उसे

पीने लगी, तब उस तोतेने विपके कारण वेश्या मर जावेगी, इस भयसे उस मदिराको गिरा दी। परन्तु इसके बदलेमें मदिराको गिरी हुई देखके वेश्याने क्रोधित होके तोतेको मार डाला। सो हे सेठजी, विना परीक्षा किये क्या उस तोतेको मारना उचित था? सेठने कहा—नहीं था, परन्तु अब मेरी कथा सुनिए;—

वाराणसी नगरीमें सोनेका व्यापार करनेवाला वसुदत्त नामका बड़ी तोंदवाला एक वैश्य था। वह एक दिन दुकानसे रोकड़की थैली लेकर जा रहा था कि इतनेमें एक चोर भागता हुआ आया और सेठजीकी तोंदके सहारेसे खड़ा हो गया। सो उनके वस्त्रमें ऐसा छुप गया कि पीछेसे जो प्यादे उसके पकड़नेको आये, उन्होंने भी नहीं जाना कि चोर कहाँ गया। वे यह समझकर कि सेठजीका पेट ही ऐसा बड़े आकारका है, इसमें चोर-फोर कोई नहीं छुपा है, वहाँसे लाचार होकर चले गये। इसके बाद उनके जानेपर वह चोर उन्हीं सेठजीकी रोकड़की थैली छीनके चलता बना। सो मुनि महाराज, उस चोरको अपने रक्षकके साथ क्या ऐसा करना उचित था? मुनिने कहा—नहीं, मेरी कथा सुनो;—

चम्पा नगरीमें सोमशर्म्मा नामक ब्राह्मणके दो स्त्रियाँ थीं, एकका नाम सोमिल्ला और दूसरीका सोमशर्मा। इनमेंसे सोमिल्लाके एक पुत्र था। उस नगरमें भद्र नामका एक बैल था। उसको सम्पूर्ण नगरवासी खानेको दिया करते थे। एक दिन वह बैल सोमशर्माके घरके दरवाजेपर बैठा था कि मौका पाकर सोमशर्म्माने [दूसरी स्त्रीने] सोमिल्लाके बालकको लाके उसके सींगोंमें पिरो दिया। बालक मर गया। लोगोंने जाना कि बालकको बैलने ही छेदके मार डाला है, इसलिए उसी दिनसे सब लोग बैलका अनादर करने लगे अर्थात् सबने उसे खानेको देना बन्द कर दिया। बेचारा बैल भूख और चिन्ताके मारे क्षीण होने लगा।

एक दिन उसी नगरके जिनदत्त सेठकी स्त्रीको लोगोंने परपुरुषमें अनुरागी होनेका दोष लगाया था, सो वह अपनी शुद्धिके लिए दिव्यगृहमें जाकर तपे हुए लोहेका गोला धारण करनेके लिए तैयार हो रही थी कि इतनेमें वहाँ-पर बैलने आके उस तपे गोलेको दाँतोंसे पकड़कर उठा लिया और शुद्ध हो गया। सो हे सेठजी, लोगोंको क्या निर्दोष बैलका इस प्रकार अनादर करना उचित था? जिनदत्तने कहा नहीं, अब मैं एक कथा सुनाता हूँ;—

पद्मरथ नगरके राजा वसुपालने एक ब्राह्मणको किसी राज्यकार्यके लिए अयोध्याके राजा जितशत्रुके पास भेजा था। वह मार्गमें एक जंगलमें प्यासके मारे ऐसा दुःखी हुआ कि आगे नहीं जा सका और एक वृक्षके नीचे पड़ गया इतनेमें एक वन्दरने आकर उसे वतला दिया कि अमुक जगह एक जलाशय है। तुम उसमें पानी पीके अपनी प्यास बुझा लो। तव ब्राह्मणने जलाशयके निकट जाकर पानी पिया। उस समय उसके हृदयमें एक दुष्ट विचार उत्पन्न हुआ कि न जाने आगे जल मिलेगा कि नहीं, इसलिए यहाँहींसे कुछ प्रबन्ध कर लेना चाहिए। धोखेसे उसने उस वन्दरको मारकर उसके चमड़ेकी खलीती (थैलिया) वना ली, और फिर उसे पानीसे भरकर साथ रख ली। सो मुनिराज, क्या बन्दरके साथ ब्राह्मणको ऐसा वर्ताव करना चाहिए था? मुनिने कहा-कदापि नहीं। अव मुनि कथा कहते है;—

कोशाम्बी नगरीमें सोमशर्मा नामका एक ब्राह्मण था। उसकी स्त्री कपिला अपुत्रवती थी। उसके मन वहलानेके लिए एक दिन ब्राह्मणने एक न्योलेका वच्चा जंगलमेंसे पकड़कर ला दिया था। उसे कपिलाने थोड़े दिनोंमें ऐसा सिखला लिया कि जो कुछ वह कहती थी, न्योला वही करता था।

कालान्तरमें कपिलाके एक पुत्र उत्पन्न हो गया। सो एक दिन उसे झूलेमें सुलाकर और उसकी रखवाली न्योलेको सोंपकर कपिला घरके वाहर चावल कूट रही थी। इतनेमें एक सॉप झूलेकी ओर झपटा हुआ जा रहा था कि न्योलेने टुकड़े टुकड़े करके उसको मार डाला और उसके खूनसे अपना मुंह लाल किये हुए वह अपनी मालकिनके पास गया। उसे इस प्रकार आते देख कपिलाने समझा कि मेरे पुत्रके खूनसे इसने अपना मुंह लाल किया है, अतएव क्रोधमें आकर उसने एक मूसलसे उसका काम तमाम कर दिया। विचारवान् सेठजी, विना सोचे विचारे क्या उस कपिलाको ऐसा करना चाहिए था? उसने कहा-नहीं। अव सेठ कथा कहता है;—

कोई बूढ़ा ब्राह्मण वाँसकी एक पोली लकड़ीमें सोना छुपाके गंगाजीको चला था कि एक वटुक (ब्राह्मणका लड़का) इस वातको ताड़कर उसके साथ हो लिया। मार्गमें पहली रातको दोनोंने एक कुम्हारके घर डेरा किया और सवेरे वहाँसे

उठके फिर चल दिये। थोड़ी दूर चलनेपर वटुक बोला–ओह! यह एक घासका तिनका बिना दिया हुवा मेरे सिरमें उलझा हुआ चला आया, बड़ा पाप हुआ, इसे अब जहाँके तहाँ देकर आना चाहिए। ऐसा कहकर वह लौट पड़ा। ब्राह्मण तो आगे चलकर एक ग्राममें किसी जजमानके यहाँ भोजन करके एक मठमें ठहर गया। इतनेमें वटुक आ गया। ब्राह्मणने अपने जजमानके यहाँ भोजनार्थ जानेको उससे कहा, परन्तु वह रास्तेमें कुत्तोंका डर है यह बहाना बनाकर जानेको तैयार नहीं हुआ। तब कुत्तोंसे बचनेके लिए ब्राह्मणने अपनी वही पोली लकड़ी उसे दे दी, क्योंकि उस वटुकपर उसकी चालाकीसे विश्वास जम गया था। बस, वटुकके हाथमें लकड़ी आई कि वह वहाँसे चम्पत हुआ। बेचारा ब्राह्मण हाथ मलता रह गया। सो मुनिराज, क्या उस वटुकको ऐसा करना उचित था? यतिने कहा–नहीं, मेरी कथा सुनो;—

कोशाम्बी नगरीमें गान्धर्वानीक राजाके यहाँ अंगारदेव नामक एक सुनार था। वह एक दिन राजाका पद्मराग-मणि उज्ज्वल करनेके लिए अपने घर ले गया था। उस दिन चर्याके लिए आये हुए एक मुनिकी भक्तिपूर्वक स्थापना करके वह दुकानके पास बैठा था कि इतनेमें एक मोर उस मणिको निगल गया, परन्तु यह घटना किसीने देखी नहीं। पश्चात् जब सुनारने वहाँ मणिको नहीं पाया, तब उसने मुनिसे ही उस मणिकी याचना की, क्योंकि उसे मुनिपर ही सन्देह हुआ था, अन्य कोई पुरुष उस समय वहाँ आया नहीं था। परन्तु उस समय ध्यानारूढ़ हो मौनसाधन करके मुनिने कुछ उत्तर नहीं दिया तब क्रोधित होकर उसने एक लकड़ी फेंकके मारी। भाग्यकी बात है कि वह लकड़ी मुनिको तो लगी नहीं, उस मयूरके गलेमें जाके लगी, जिसकी चोटसे मयूरने उसी समय मणि उगल दिया। पीछे सुवर्णकार उस मणिको राजाके यहाँ जाके सौंप आया और वैराग्यपरायण [तत्पर] होकर उसी समय मुनि हो गया। सेठजी, सुनारको निर्दोष मुनिके साथ क्या ऐसा करना उचित था? सेठने कहा–नहीं, परन्तु अब मैं कहता हूँ, सो सुनिए;—

कोई एक पुरुष जंगलमें फिर रहा था कि एक बड़े भारी हाथीको अपने पीछे लगा देखकर डरके मारे एक वृक्ष-पर चढ़ गया और उसके सहारेसे उसने अपने प्राण बचाये। हाथी उसे नहीं पाकर वहाँसे चला गया। पीछे वह

पुरुष वृक्षसे उतरकर चलने लगा कि लकड़ीकी खोजमे फिरते हुए लकड़हारोंको देखकर उसने उसी वृक्षको काटनेके लिए बतला दिया, जिसपर कि वह चढ़ा था। सो यति महाराज क्या प्राणरक्षक वृक्षके साथ उसे ऐसा करना चाहिये था? यति बोले-नहीं, अब मै कहता हूँ;—

द्वारावतीमे नारायण राजा थे। उनसे एक दिन मालीने आकर उद्यानमे मेदज मुनिके आनेकी बात कही। तब नारायणने उद्यानमे जाके मुनिको वन्दना की। देखनेसे मालूम हुआ कि उन्हे कोई भयंकर रोग हो गया है, अतएव वैद्यराजको बुलाकर औषधि पूछी। उसने रालकपिष्ठपिण्डका प्रयोग करना बतलाया। तब कृष्ण नारायणने मुनिराजको रुक्मणीके महलमे ले जाकर उक्त औषधि की, जिससे कि वे मुनि नीरोगी हो गये। नारायणने पूछा-महाराज, रोग शान्त हो गया? उन्होने कहा-हाँ, कर्मोंके उपशम होनेसे उसका शमन हो गया। वैद्य साथमे ही था, अतः वह यह सुनकर बड़ा क्रोधित हुआ कि मैने जो औषधि बतलाई उसका तो कुछ उपकार नही मानता, कर्मोंका उपशम बतलाता है, बड़ा कृतघ्नी है।

कालान्तरमे वह वैद्य मरकर एक जंगलमे बन्दर हुआ और एक बार दैवात् उसी जंगलमे मेदज मुनि जा पहुँचे और वहाँ ध्यान लगाकर पर्यंकासनसे आसीन हुए। उन्हे देखकर बन्दरने कुपित होकर एक पैनी लकड़ी उनकी जंघामे मारी, परन्तु मुनिराज उस चोटसे सर्वथा दुःखी और चल नही हुए। तब बन्दर उन्हे इस प्रकार शरीरसे निर्भयत्व देखकर शान्त हो गया और स्वयं पश्चात्ताप करके वह एक औषधि लाया तथा लकड़ीको निकालकर घावपर उसे लगाकर उसने मुनिको अच्छा कर दिया। पीछे जंगलके उत्तम उत्तम फूल लाकर उनसे मुनिराजकी पूजा की और हाथका संकेत करके कहा-भगवान्, उपसर्ग दूर हो गया। मुनिराजने हाथ उठाये और बन्दरने प्रणाम करके अणुव्रत ग्रहण किये। सो सेठजी, वैद्यको क्या ऐसा विना विचारे कार्य करना योग्य था? जिनदत्तने कहा-नहीं, अब मै कहता हूँ;—

जिनदत्तने इतना कहा ही था कि उसके पुत्र कुबेरदत्तने वह रत्नोका कलश जिसके चुरा लानेका मुनिपर सन्देह

था, लाके पिताके आगे रख दिया और मुनिके सन्मुख होकर वह बोला—मुनिराज आइए, वनमे चलकर मुझे दीक्षा दीजिये।

इसके पश्चात् पिताने भी वैराग्य प्राप्त होकर दीक्षा ले ली। और इस प्रकार दोनो बाप बेटे मुनि होकर विहार करने लगे। सो हे राजन्, मै वही मणिमाली हूँ। उस समय कायगुप्तिके न पलनेसे मै आपके यहाँ आहारको नही ठहरा था, क्यो कि रानीने "तीन गुप्तिके धारण करनेवाले, पधारिये" इस प्रकार कहा था। मणिमाली मुनिकी यह विलक्षण कथा सुनके राजा श्रेणिक "वेदक सम्यग्दृष्टि" हो गया।

कुछ दिनोंके बाद महारानी चेलिनी गर्भवती हुई और उसे दोहला उत्पन्न हुआ। परन्तु उसकी पूर्ति न होनेसे वह (दुबली) होने लगी। राजासे अपनी इच्छा प्रगट नही की। एक दिन जब राजाने बड़े भारी आग्रहसे पूछा, तब रानी ने कहा—हे नाथ, इस पापिनीकी ऐसी इच्छा होती है कि आपके वक्षस्थलको विदारण करके रुधिरका पान करूँ। तब राजाने अपने सरीखा बेसनका पुतला बनाके उससे रानीकी इच्छा पूर्ण की। पश्चात् कुछ दिनोंमें उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका मुख देखनेके लिये राजा गये तो बालक उन्हे देखकर भौहे चढ़ाके और लाल लाल नेत्र करके होठोको दाँतोसे डसने लगा। तब "यह मेरे लिये दुखदाई होगा" ऐसा विचार करके राजाने रुष्ट होके उस बालकको किसी बगीचेमे छुड़वा दिया परन्तु रानी राजासे छुपाकर उसे ले आई और धायको सोंप दिया, सो कुणिक नामसे बढ़ने लगा। पश्चात् चेलिनीके क्रमसे वारिषेण, हल्ल, विहल्ल और जितशत्रु नामके पाँच पुत्र और भी हुए। छटे गर्भमे रानीको दोहला हुआ कि हाथीपर आरूढ़ होके वर्षा ऋतुमे भ्रमण करूँ। इस दोहलेकी अप्राप्तिमे रानी क्षीण शरीर होने लगी, तब राजाने क्षीण होनका कारण पूछा। रानीने अपने दोहलेका स्वरूप कहा। सुनकर राजाको बड़ी चिन्ता हुई कि, ग्रीष्म ऋतुमे वर्षाकालकी वांछा कैसे पूर्ण की जावे। तब राजाको चिंतित देखके अभयकुमारने कहा कि मै वर्षाकालकी वृष्टि करूँगा। और रातको व्यन्तरादिकोको देखनेके लिये स्मशान भूमिमे गया। वहाँ एक वड़के वृक्षके नीचे अनेक दीपकोका प्रकाश किये हुए धूप और धुएँसे अनेक व्यन्तरोको अपने

मन्त्रकी शक्तिसे बुलाये हुए और सुगन्धित फूलोंसे मंत्र जपते हुए एक उद्विग्न (जिसका चित्त ठिकाने न हो) पुरुषको देखकर पूछा कि तुम कौन हो और क्या जपते हो ? उसने कहा कि:—

विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीके गगनवल्लभ नगरका मैं पवनवेग नामका राजा हूँ। मैं एक दिन जिनमन्दिरोंकी वन्दनाके लिए सुमेरुगिरिपर गया था। वहाँ दालकपुरके राजा विद्याधर चक्रवर्तीकी कन्या सुभद्रा भी उसी समय आई थी। उसके देखनेहीसे मेरे हृदयके कामवाणसे सौ टुकड़े हो गये, अतएव मैं उसे लेकर भागा और इस दक्षिण भरतके ऊपर आकाशमार्गमें जा रहा था कि सुभद्राकी सखियोंके द्वारा मेरा गमन इस ओरको जानकर उसका पिता कुपित होकर पीछे लगा और आखिर मुझे उससे (चक्रवर्तीसे) युद्ध करना पड़ा। परन्तु मैं हार गया। मेरी विद्याका छेदन करके तथा अपनी कन्याको लेकर वह चला गया। और अब मैं यहाँ भूमिगोचरी होकर रहता हूँ। मेरे लिये यह उपदेश था कि बारह वर्षके पीछे इस मंत्रके जापसे फिरसे विद्या सिद्ध हो जावेगी। परन्तु उससे दूने अर्थात् २४ वर्ष जाप करनेसे भी वह मुझे सिद्ध न हुई, अतएव अशान्तचित्त होकर अब मैं अपने घरको जानेकी इच्छा करता हूँ।

यह सुनके अभयकुमारने कहा कि वह मंत्र मुझे तो सुनाओ। पवनवेगने मंत्र सुनाया, तो उसमें जो अक्षर न्यून थे उन्हें पूर्ण करके अभयकुमारने कहा कि अब जाप करो। पवनवेगने शुद्ध मंत्रका जाप किया कि तत्काल ही विद्या सिद्ध हो गई। इसलिये अभयकुमारको उसने तुरन्त उठके नमस्कार किया। और इसके बाद उसीने कुमारकी इच्छानुसार वर्षादिक की, जिससे रानीका दोहला पूर्ण हुआ और उसने गजकुमार नामके पुत्रको जना। इसके बाद कुछ दिनोंके पीछे रानीके मेघकुमार नामके पुत्रने भी अवतार लिया। इस प्रकार सात पुत्रोंकी माता होकर चेलिनी महारानी सुखसे रहने लगी।

एक दिन वनमालीने आकर राजाको सूचना दी कि हे देव, विपुलाचल पर्वतपर भगवान् वर्द्धमानस्वामीका समवसरण आया है। तब राजा श्रेणिक सम्पूर्ण परिजनोंके साथ भगवानकी पूजाके लिये गया और पूजा करके जिन भगवानकी विभूतिके अतिशयको देखकर अधिक परिणामोंकी विशुद्धिसे क्षायकसम्यग्दृष्टि हो गया

और उसी समय तीर्थंकर प्रकृतिका भी उसने वंध किया । इसके बाद उसने गौतम गणधरसे अभयकुमार तथा गजकुमारके पुण्यके अतिशयका कारण पूछा । तव गणधर भगवान् बोले.—

वेणातटाकपुर नामके गाममे रुद्रदत्त नामका एक ब्राह्मण था । एक दिन वह गंगास्नान करनेको जाता था । सो मार्गमे रात्रिको श्रावककी एक वसतिकामे जाकर उसने भोजनकी याचना की । श्रावकने कहा कि रात्रिको भोजन करना उचित नही है । तव ब्राह्मणने भोजन नही किया और उससे और भी वहुतसा धर्म श्रवण करके वह जैनी हो गया । पश्चात् सन्यासपूर्वक मरण करके सौधर्म स्वर्गको गया ।. और फिर वहॉसे चयकर यह अभयकुमार हुआ है ।

एक जंगलमे सुधर्म नामके कोई मुनि ध्यानमे मग्न हो रहे थे । पास ही एक भीलोंका छोटासा गॉव था । गॉवके अतिदारुण नामके एक भीलने आकर उस जंगलमे आग लगा दी । मुनि महाराज उसमे समाधिसहित मरण करके अच्युत स्वर्गको गये । पश्चात् भीलने जव मुनिराजका कलेवर देखा, तो उसका विना जाने जल जानेका वड़ा पश्चात्ताप हुआ । आयुके अन्तमे वह भील मरके उसी जंगलमे हाथी हुआ ।

अच्युतस्वर्गका रहनेवाला देव (सुधर्म मुनिका जीव) एक दिन नन्दीश्वर द्वीपकी वन्दना करके स्वर्गलोकको जा रहा था । मार्गमे उसी वनमे हाथीको देखकर उसने दिगम्बर मुनिका वेष धारण कर लिया और जिस मार्गसे हाथी जा रहा था, उसी मार्गमे आके ध्यानमे मग्न होकर वैठ गया। उसे देखकर हाथीको जातिस्मरण हो गया, इसलिए उसने उक्त मुनिको प्रणाम किया, और धर्मका व्याख्यान सुनकर उत्कृष्ट श्रावकके व्रत धारण किये । इसके वाद वह समाधिपूर्वक मरण करके सहस्रार स्वर्गमे देव हुआ और वहॉसे चयकर यह गजकुमार हुआ है ।

गौतमस्वामीके मुखसे उक्त भवान्तर सुनकर श्रेणिक राजाके अभयकुमार गजकुमारादिक पुत्रोंको वड़ा वैराग्य हुआ, इसलिए उन्होने दीक्षा ले ली, साथ ही अभयकुमारकी माता नन्दश्रीने भी आर्यिकाकी दीक्षा ले ली । राजा श्रेणिकको जिन जिन वातोंकी सुननेकी इच्छा थी सो सव सुनकर महारानी चेलिनीके साथ अपने नगरमे आये और महामंडलेश्वरकी विभूति सहित सुखसे काल व्यतीत करने लगे ।

एक दिन सौधर्मस्वर्गका सौधर्मेन्द्र अपनी सभामें सम्यक्त्वका स्वरूप निरूपण कर रहे थे कि इतनेमें एक देवने पूछा–क्या इस प्रकारका सम्यक्त्वधारी पुरुष कोई भरतक्षेत्रमें है? इन्द्र महाराजने कहा कि हाँ, ऐसा सम्यग्दृष्टि राजा श्रेणिक है। यह सुनकर दो देव उसकी परीक्षाके लिए भरतक्षेत्रमें आये और राजाके क्रीडाको जानेके मार्गमें एक नदीमें दोनोंने स्वाँग धारण किया। एक तो दिगम्बर मुनिका वेष धारण करके और मछली पकड़नेका जाल बिछाके बैठा तथा दूसरा आर्यिकाका वेष लेकर उस जालमेंसे निकली हुई मछलियोंको कमंडलुमें डालनेके काममें मग्न हुआ। राजाने क्रीडाको जाते हुए उक्त जोड़ेको देखा और समीप जाके नमस्कारपूर्वक पूछा—आप ये क्या कर रहे हैं? "धर्मवृद्धि हो!" ऐसा कहके वेषी यतिने कहा—इस आर्यिकाके गर्भ धारण हुआ है, सो इसे मछलीका मांस खानेकी इच्छा हुई है, अतएव मैं मछलियोंको पकड़ रहा हूँ। राजाने कहा—इस उत्तम वेषको धारण करके ऐसा करना सर्वथा अनुचित है। मायावी यतिने कहा–राजन्, जब प्रयोजन आ पड़ा, तब क्या किया जावे? राजाने कहा–तो भी दिगम्बरोंको अनुचित है। वेषी मुनिने कहा कि राजन, प्रयोजन आ पडनेपर सब ही साधु तुझ सरीखे हो जाते हैं। राजाने कहा–तब तुम सम्यग्दृष्टि भी नहीं हो, अत्यन्त निकृष्ट हो। यतिने कहा–तो क्या मैं असत्य कहता हूँ? जब तू मुझसे ऐसा कहता है, तब परम यतियोंको गाली देनेके कारण तू अवश्य जैन नहीं है, हम तो जैन हैं ही। राजाने कहा–सम्यक्त्वके संवेगादि लक्षणोंके अभावसे तथा जैन मुनियोंकी अप्रभावना करनेके कारण तुम कैसे जैनी कहला सकते हो? और सुनो–यदि तुम इस पवित्र वेषको धारण करके ऐसा करोगे, तो तुम ही जानोगे! मायावी यतिने कहा–क्या करोगे? राजाने कहा–दर्शनभ्रष्ट होनेके कारण तुम दिगम्बर मुनि नहीं हो सकते, इसलिए मैं तुम्हें गधेपर चढ़ाके निकालूँगा। ऐसा कहकर उन दोनोंको घर लाया। मंत्रियोंने देखके राजासे पूछा हे देव, ऐसे भ्रष्ट मुनियोंके नमस्कार करनेसे सम्यग्दर्शनमें क्या अतिचारका दूषण नहीं लगता? श्रेणिकने कहा–ये वेषधारी जैन हैं, ऐसा जानकर मैंने नमस्कार किया था, इस कारण दर्शनातिचार नहीं हो सकता। हाँ, यदि मेरे चरित्र होता, तो सचमुचमें चरित्रमें अतिचार लगता। तब राजाको इस प्रकार सम्यग्दर्शनमें दृढ़ देखकर वे दोनों देव अत्यन्त प्रसन्न

होकर प्रगट हो गये और नमस्कार करके राजदम्पतिका (राजा–रानीका) गंगाजलसे अभिषेक करके तथा स्वर्गलोकके दिव्य वस्त्राभरणो (कपड़े और गहनो) से पूजन करके स्वर्गलोकको चले गये ।

इस प्रकार देवोंसे पूजित राजा श्रेणिकने एक दिन यह सोचकर कि पुत्रको राज्य देकर मैं सुखसे रहूँ, कुणकको राज्य सोपकर आप एकान्तवास करने लगा । और कुणकने उसके बदलेमें क्या किया कि पिताको (श्रेणिकको) ही लोहके पिंजरेमें कैद कर दिया । माताको बड़े आग्रहसे बचाया, नहीं तो उनकी भी ऐसी ही दशा करता । पिंजरेमें श्रेणिकको विना नमककी काँजी और कोदोका भोजन मिलता था और ऊपरसे पुत्रके कड़े वचन सुनना पडते थे । खेदकी बात है कि ऐसे प्रतापी राजाको भी कर्मके वशमें पड़कर ऐसे दुःखोको सहते हुए रहना पड़ता है ।

दूसरे दिन राजा कुणिक भोजन कर रहा था, उस समय उसके पुत्रने उसकी थालीमें पेशाव कर दिया। मोहके कारण राजाने पुत्रपर कोप न किया और थालीमेंके भातको एक ओर करके खा लिया । पश्चात् माता चेलिनीसे कहा–क्या मेरे सिवाय ऐसा अपत्यमोही (सन्तानपर ममता करनेवाला) कोई दूसरा पुरुष है ? माताने दुःखी होके कहा–बेटा, तू कितना मोही है ? तू अपने पिताके मोहकी बात सुन । एक वार बालकपनमें तेरी अँगुलीमें पीव और रसकी अत्यन्त दुर्गंधियुक्त एक फोड़ा हुआ था उस समय जब किसी भी उपायसे तुझे चैन नहीं मिलती थी, तब तेरा पिता उस अँगुलीको अपने मुखमें डालके रखता था । यह सुनकर कुणिकने कहा–हे मा, पैदा होनेके दिन मुझे जंगलमें डलवा दिया, यह कहाँका पुत्रमोह है ? माताने कहा–बेटा, जंगलमें तुझे मैंने छोड़ा था वे तो जंगलसे ले आये थे और राजा भी तुझे उन्होने ही किया था । फिर उनके पुत्रमोहकी बराबरी कौन कर सकता है ? हाय उनके साथ ऐसा बुरा वर्ताव करना क्या तुझे उचित है ?

माताकी उक्त बात सुनकर कुणिकको अपने कियेका बड़ा पछतावा हुआ । वह अपनी निन्दा करता हुआ पिताको पिंजरेसे (बंधनसे) छुड़ानेको चला । परन्तु इसका फल बिलकुल उलटा ही हुआ । श्रेणिकको उसके विरूपक मुखके

देखनेसे भय हुआ कि वह इससे भी अधिक दुःख देनेके लिए आ रहा है, अतएव तलवारकी धारपर पड़के वह मर गया और पहले नरकको गया।

कुणिकको पिताकी मृत्युसे बहुत दुःख हुआ। अग्निसंस्कारादि करनेके पश्चात् मृतात्माकी मुक्तिके लिए उसने ब्राह्मणादिकोंको गृह आहारादि दिये। माता चेलिनीने कुणिकको बहुत समझाया, परन्तु उसने जैनधर्म अंगीकार नहीं किया। तब निराश होकर चेलिनीने वर्द्धमानस्वामीके समवशरणमें अपनी बहिन चन्दन नामकी आर्यिकाके निकट दीक्षा ले ली। और अन्तमें समाधिसे शरीर छोड़के स्वर्गलोकमें देव हुई। अभयकुमारादि मुनि तपस्याके अनुसार यथायोग्य गतियोंको प्राप्त हुए।

इस प्रकार राजा श्रेणिकने सातवें नरककी आयु बाँधकरके भी केवल एक वार जिन भगवान्के दर्शन और पूजनसे सम्यक्त्वको पाकर उससे तीर्थंकर पदवीका उपार्जन किया और सातवें नरकका बंध न्यून (कम) करके प्रथम नरकको ही पाया। आगामी कालमें श्रेणिक इसी भरतक्षेत्रके 'महापद्म' नामक प्रथम तीर्थंकर होवेंगे। तो फिर दर्शनपूर्वक चारित्रके धारण करनेवाले अन्य भव्यजीव जिनपूजासे क्या त्रैलोक्यनाथ नहीं हो सकते? अवश्य होंगे। अतएव सम्पूर्ण सज्जनोंको भगवानकी पूजा करनेमें निरन्तर तत्पर रहना चाहिए [1]।

इति श्रीकेशवनन्दिदिव्यमुनिशिष्यश्रीरामचन्द्रमुमुक्षुविरचित पुण्यास्रवकथाकोषकी सरलभाषाटीकामें प्रथम पूजाफलवर्णनाष्टक समाप्त हुआ।



[1] भ्राजिष्णोराराधनाकर्णाटटीकाकथितक्रमेणोल्लेखमात्र कथितेयं कथा। (इति मूलग्रन्थे)। अर्थात् यह कथा भ्राजिष्णु विद्वान्की बनाई हुई कर्णाटकभाषाकी टीकाके क्रमसे संक्षेपमात्र यहाँ लिखी गई है।

अथ पंच नमस्कार मंत्र फलाष्टक।

(१) सुग्रीव बैलकी कथा।

अयोध्या नगरीके राजा रामचन्द्र और लक्ष्मण अपने नगरके बाहर बने हुए महेन्द्र उद्यानमें सकलभूषण केवलीकी वन्दनाके लिए गये। सब लोग केवली भगवान्‌की पूजा वन्दना करके बैठे। धर्मश्रवणके अनन्तर राजा विभीषणने पूछा–हे भगवन्, एक हजार अक्षौहिणी सेनाका नायक और रामचन्द्रजीका अत्यन्त प्यारा राजा सुग्रीव किस पुण्यके फलसे हुआ, सो कृपा करके कहिए। भगवान बोले;—

इसी भरतक्षेत्रमें श्रेष्ठपुर नामका एक नगर है। वहाँके राजाका नाम छत्रछाया और रानीका श्रीदत्ता था। उस नगरमें पद्मरुचि नामका एक अधिगम सम्यग्दृष्टि सेठ रहता था। उसने एक दिन चैत्यालयसे घरको आते समय मार्गमें एक बैलको दूसरे बैलके साथ लड़कर पड़ते हुए देखा। बैलको आसन्नमृत्यु (मरनेके करीब) जानकर उसने पञ्च नमस्कार मंत्र[1] पढ़के सुनाया। सो उक्त मन्त्रके प्रभावसे वह बैल शरीर छोड़कर राजा छत्रछायाकी रानी श्रीदत्ताके वृषभध्वज नामका पुत्र हुआ और कुछ दिनोंमें राज्यका स्वामी हुआ।

एक दिन राजा वृषभध्वज हाथीपर आरूढ़ होकर लीलासे नगरमें घूम रहा था कि बैलके पड़नेके स्थानको देखकर मूर्छित हो गया। जातिस्मरण होनेसे पूर्व पर्यायकी सुधि हो आई। इसके बाद चुप होके अपने महलमें आया। और उस पुरुषको खोज करनेके लिए जिसने नमस्कार मंत्र दिया था, उसने एक बड़ा भारी विचित्र जिनमन्दिर बनवाया। और उस मन्दिरमें एक जगह पड़ी हुई बैलकी मूर्ति बनवाई, जिसके निकट ही एक पुरुष नमस्कार मंत्र सुना रहा है। और उन दोनों मूर्तियोंके पास एक विचक्षण पुरुषको यह कहकर बैठाया कि जो कोई इस दृश्यको बड़े आश्चर्यसे देखे, उसको मेरे पास ले आना।

१—णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं। णमो उवज्झायाणं, णमो लोगे सव्वसाहूणं।

इसके बाद जब पद्मरुचि सेठ उस मन्दिरमें आया, तो इस दृश्यको देखकर वह बड़ा विस्मित हुआ। इसलिए नियुक्त (नियत किया) पुरुष उसे राजाके समीप ले गया। राजाने पूछा–आप उस बैलको देखकर विस्मित क्यों हुए ? सेठ बोला–मैंने इसी प्रकार पड़े हुए एक बैलको पंच नमस्कार मंत्र सुनाया था, सो इसके दर्शनसे उसका स्मरण हो आया है। वह कहाँ उत्पन्न हुआ और यह बात क्या है ? इसलिए विस्मित हुआ हूँ। यह सुनते ही राजाने अपना परिचय देकर कहा कि वह मै ही हूँ। उस सेठका बड़ा भारी सत्कार करके वैभवादिकसे उसे अपने समान कर लिया।

वह वृषभध्वज देव और मनुष्य दोनों गतियोंके सुखोंका बहुत कालतक अनुभव करके सुग्रीव हुआ है, और पद्मरुचि सेठ परपरा गतिसे रामचन्द्र हुए है।

पाठकगणो, इस प्रकार एक पशु भी नमस्कार मंत्रके प्रभावसे ऐसे पदको प्राप्त हो गया फिर अन्य जनोकी तो बात ही क्या है ?

(२) बन्दरकी कथा।

भरतक्षेत्रके सौरीपुर नगरमे अन्धकवृष्टि नामका राजा राज्य करता था। उस नगरके बाहर गन्धमादन पर्वतपर तपस्या करते हुए सुप्रतिष्ठ मुनिका सुदर्शन नामके एक देवने घोर उपसर्ग किया, परन्तु मुनि ध्यानसे च्युत न होकर केवलज्ञानको प्राप्त हुए। तब वह राजा केवलीकी वन्दनाको गया और पूजा करके पूछने लगा–हे भगवान्, आपको यह उपसर्ग किस कारणसे हुआ ? सर्वज्ञ भगवान् बोले;—

जम्बूद्वीप–भरतक्षेत्र–कलिंगदेशके काञ्चीपुर नगरके निवासी सुदत्त और सूरदत्त नामके वैश्य व्यापारमे बहुतसा धन पैदा करके अपने नगरमें आ रहे थे, सो राजकीय कर (टैक्स) लेनेवालोंके भयसे उन दोनोने नगरके बाहर एक स्थानमे वह द्रव्य गाढ़ दिया। परन्तु जमीनमे गाढ़ते समय किसी पुरुषने देख लिया, सो उनके जाते ही वह खोदकर

निकाल ले गया। उसके बाद वे दोनो धन ले जानेकी एक दूसरेपर शंका करके आपसमें खूब लड़े और मरके पहले नरकमें जाकर उत्पन्न हुए। वहाँसे आकर मेढ़े हुए। सो वे भी आपसमें लड़कर मरे और गंगाके किनारे बैल होकर उसी प्रकार भी मरकर सम्मेदशिखरपर वन्दर हुए। अबकी बार दोनोंमें फिर भी युद्ध हुआ और एक वन्दर जो कि सुदत्तका जीव था, मर गया, परन्तु सूरदत्तका जीव कंठगतप्राण हो रहा था कि इतनेमें वहाँसे सुरगुरु और देवगुरु नामके चारण ऋद्धिके धारी मुनि निकले। उन्होंने कंठगतप्राण वन्दरको पंचनमस्कार मंत्र सुनाया, सो उसके फलसे वह शरीर छोड़के सौधर्म स्वर्गमें 'चित्राङ्गद' नामक देव हुआ। फिर वहाँसे चयकर कांचीपुरके राजा जितसेन और रानी सुभद्राके समुद्रदत्त नामका पुत्र हुआ। इसके बाद तपस्या करके अहमिन्द्र हुआ। वहाँसे आकर पोदनपुरके राजा सुस्थिर और रानी लक्ष्मणाके मैं सुप्रतिष्ठ नामका पुत्र हुआ। और वह दूसरा वन्दर बहुत काल तक भ्रमण करता हुआ सिन्धुनदीके तटपर मृगायण तापसीकी विशाला स्त्रीके गौतम नामका पुत्र हुआ। वह गौतम पंचाग्नितपके प्रभावसे जोतिर्लोकमें यह सुदर्शन देव हुआ है। सो कहीं जा रहा था कि मेरे ऊपर इसका विमान आया। सो उस समय पूर्वभवके वैरका स्मरण करके इसने मुझपर उपसर्ग किया।

केवली भगवानके मुखसे अपनी पूर्वकथा सुनकर सुदर्शनदेव सम्यक्त्वयुक्त हो गया।

देखो, पंचनमस्कार मंत्रके प्रभावसे एक वन्दर भी, इस प्रकार केवललक्ष्मीको प्राप्त हो गया, फिर उसके फलकी और क्या महिमा कही जावे ?

---

(३) विंध्यश्री कन्याकी कथा।

वाराणसीके राजा अकम्पन और रानी सुप्रभाकी पुत्री सुलोचना जैनधर्मकी परमभक्त और सम्पूर्ण कलाओंमे कुशल थी। वह विद्याओंका अभ्यास करती हुई सुखसे रहती थी कि इतनेमें अकम्पनके मित्र विंध्यपुरके राजा

१ भाषाकारने न जाने क्यों इस कथाको छोड दिया है।

विंध्यकीर्ति, रानी प्रियङ्गुश्रीकी पुत्री विंध्यश्री उसके पिताने सुलोचनाको लाके सोंपी और कहा कि इसको पढ़ा लिखा कर सकल कलाओंमें प्रवीण करो। पश्चात् विंध्यश्री पुत्री सुलोचनाके पास सुखसे रहने लगी। एक दिन सुलोचनाने उसे महलके उद्यानमें फूल चुननेके लिए भेजी कि वहाँ एक काले सॉपने निकलकर उसे डस लिया। सो सुलोचनाके दिये हुए पंच नमस्कार मंत्रके प्रभावसे गंगाकूट निवासिनी गंगादेवी हुई। सो अपनी उपकार करनेवालीका स्मरण करके उसने सुलोचनाके पास आकर उसकी पूजा की, और फिर अपने स्थानमें जाकर सुखसे काल बिताने लगी।

(४) अर्धदग्ध पुरुष और बकरेकी कथा।

जम्बूद्वीप-भरतक्षेत्र-अंगदेशकी चम्पापुरी नगरीका राजा विमलवाहन और रानी विमलमती थी। इसी नगरीमें एक भानु नामका सेठ था। उसकी स्त्री देविला पुत्रकी इच्छासे सदैव यक्ष और यक्षिणीकी पूजा किया करती थी। एक दिन सुमति नामके दिगम्बर मुनिने देखकर उससे कहा—हे पुत्रि; तेरे एक उत्तम पुत्ररत्न उत्पन्न होगा, तू कुदेवोंकी पूजा करके अपने सम्यक्त्वको मत बिगाड़। इसके बाद कुछ दिनोंमें देविलाके चारुदत्त नामका पुत्र उत्पन्न हुआ और राजमंत्रीके हरिशिख, गोमुख, वराहक, परंतप और मरुभूति आदि पुत्रोंके सहित बालक्रीड़ा करता हुआ बढ़ने लगा।

चम्पापुरीके पास मन्दारगिरि नामका एक पर्वत है। उसपर यमधर नामके मुनि तपस्या करके मोक्ष प्राप्त हुए थे। इस कारण वहाँ प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष (अगहन) महीनेमें मेला लगता था। सो एक बार राजा और मंत्रि आदि प्रतिष्ठित पुरुष वहाँको जा रहे थे। उन्होंने चारुदत्तको लौटा दिया। तब वह अपने मित्रोंके साथ नदीके किनारेके बगीचेमें क्रीड़ा करनेको चला गया। वहाँ टहल रहा था कि उस कदम्बवृक्षकी शाखामें बँधा हुआ एक मूर्छित पुरुष दिखलाई दिया। तब उसने विमानके ऊपर ठहरी हुई उस पुरुषकी दृष्टिके भावको

१—२ अनयो वृत्तयो कथा चारुदत्तचरित्रादेवोद्ध्रियते। इन दोनों वृत्तोंकी कथा चारुदत्तचरित्रसे उद्धृत की जाती है।

जानके विमानकी शोध की। विमानमें तीन गुटिका (गोली) मिली। जिनमेंसे पहली कीलोच्छेदिनी गुटिकाके प्रभावसे उस पुरुषको बंधनसे छुड़ाया, दूसरी संजीवनी गुटिकाकी सामर्थ्यसे मूर्छारहित किया और तीसरी व्रणसंरोहिणी गुटिकाके प्रभावसे उसके जो घाव लगे थे, उन्हें भी अच्छे कर दिये। इस प्रकार सब प्रकारसे बंधनरहित तथा सुखी होनेपर वह पुरुष उठा और चारुदत्तको प्रणाम करके बोला;–हे भव्योत्तम, मेरी कथा सुनो। मैं विजयार्द्धकी दक्षिणश्रेणीके शिवमन्दिरपुरके राजा महेन्द्रविक्रम तथा मत्स्या रानीका पुत्र हूँ। मेरा नाम अमितगति विद्याधर है। मैं अपने धूमसिंह और गोरिमुंड इन दो मित्रोंके साथ एक बार हीमन्त पर्वतपर गया था। वहाँ मैंने हिरण्यरोम नाम क्षत्रिय तापसकी सुकुमारिका नामकी कन्या देखी। वह अपने रूप और सौकुमार्यसे देवाङ्गनाओंको भी जीतती थी। अतः मैंने उसपर मोहित होकर उसके पितासे याचना की। तब तापसने प्रसन्नतासे मेरे साथ पुत्रीका विवाह कर दिया। इसके बाद सुकुमारिकाके रूपको देखकर मेरा मित्र धूमसिंह अत्यन्त आसक्त हो गया और इस कारण वह उसको उड़ा ले जानेका उपाय सोचने लगा। परन्तु मुझे यह बात मालूम नहीं थी। मैं सुकुमारिकाके साथ क्रीड़ा करनेको यहाँ आया था। सो उस पापीने वेखबरीमें पाकर मुझे कील दिया और आप सुकुमारिकाको लेके चला गया। उसके बाद आपने आकर मुझे छुड़ाया, सो प्रत्यक्ष ही है। इतना कहके अमितगति चारुदत्तका उपकार मानके और नमस्कार करके वहाँसे चला गया।

कुछ दिनोंके पीछे चारुदत्तका विवाह उसके मामा सिद्धार्थकी कन्या मित्रवतीके साथ हुआ, परन्तु वह विवाह सम्बन्धको सर्वथा न समझके दिनरात नाना कलाओं और काव्यशास्त्रोंके अध्ययन (पढ़ने) में ही मग्न रहता था। एक दिन सवेरे ही चारुदत्तकी सासने अपनी पुत्री मित्रवतीको किये हुए शृंगारविलेपनादि सहित देखकर पूछा–पुत्रि, क्या तू पतिके साथ नहीं सोती है, जो आज तेरे शरीरपर विलेपनादि शृंगार द्रव्य ज्योंके त्यों दिखाई पड़ते हैं? मित्रवतीने लज्जित होके धीमी आवाजसे कहा कि वे तो कभी मेरी चिन्ता ही नहीं करते हैं। निरन्तर पढ़नेमें तथा अनुमान प्रमाणादिकोंकी उधेड़बुनमें लगे रहते हैं। यह सुनके सुमित्राने चारुदत्तकी माता देविलासे जाके कहा;–तुम्हारा पुत्र पढ़ा हुआ मूर्ख है। वह स्त्रियोंसे बातचीत भी नहीं करता है। गृहस्थाश्रम किसे कहते हैं? वह यह भी नहीं जानता

है। देविलाको यह वात सुनके दुःख हुआ। उसने अपने देवर रुद्रदत्तको एकान्तमें बुलाके कहा-आप कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे चारुदत्तकी विषयभोगोंकी ओर लालसा बढ़े।

रुद्रदत्त यह सुनके वसन्तमाला वेश्याकी पुत्री वसंततिलकाके पास जो रूपलावण्यादि सब गुणोंमें अद्वितीय थी उससे वोला कि मैं चारुदत्तको तुम्हारे यहाँ लाता हूँ, जिस तरह बन सके, तुम उसको वशमे करना। वह चारुदत्तको भुलाके उसके पास पहुँचा गया।

चारुदत्तको वसन्ततिलकाने बड़े सत्कारसे बैठाया, और चौपड़का खेल शुरू कर दिया। खेलते खेलते चारुदत्तने तृपित (प्यासा) होके पानी माँगा, सो वसन्ततिलकाने मोहनीचूर्ण मिला पानी लाके दिया। उसके पीते ही चारुदत्त विह्वल हो गया और महलकी छतपर उसके साथ रमण करने लगा। इसके बाद वह उसमें इतना मग्न हुआ कि छह वर्षमे सोलह करोड़ द्रव्यपर पानी फेर दिया और घरद्वारका कभी नाम भी नहीं लिया। पुत्रको इस प्रकार व्यसनमग्न देखके चारुदत्तका पिता वैराग्यसम्पन्न होकर दीक्षित हो गया। इधर दूसरे छह वर्षोंमें चारुदत्तने सोलह करोड़की और भी धूल उड़ा दी। इसके बाद वारह हजार मुहर सोनेका सिक्का लेकर अपने रहनेका घर गिरवी रख दिया। परन्तु आखिर जब वह भी पूरा हो गया, तब चारुदत्त अपनी स्त्रीके कीमती कपड़े जेवर वगैरह लेके उन्हे बेचके वसन्तमालाके पास द्रव्य भेजने लगा। यह देख वसन्तमालाने अपनी पुत्रीसे कहा—अब इस गतद्रव्य अर्थात् खाली हाथ पुरुषको छोडकर किसी दूसरे आँखोंके अंधे धनिकको देख, क्योंकि वेश्याओंके धर्मशास्त्रमे ऐसा ही कहा है,—

धनमनुभवन्ति वेश्या न पुन पुरुष कदापि धनहीनम्। धनहीने कामदेवेऽपि प्रीति बध्नाति नो वेश्या ॥

अर्थात् वेश्या धनका अनुभवन करती है, पुरुपका नही। धनहीन पुरुप कामदेवके समान हो, तो भी वेश्या उससे प्रीति नही लगाती। माके धर्मशास्त्रको सुनके वसन्ततिलकासे रहा नही गया। उसने कहा—इस जन्ममे तो मेरा यही पति है, दूसरा नहीं हो सकता। और सब पुरुष मेरे भाइयोंके बराबर है।

इसके बाद वसन्ततिलका चारुदत्तको क्षणभर भी अपनेसे अलग नही करती थी, क्योंकि वह अपनी माताके

गया। वारह वर्षमे असीम द्रव्य कमाया। उसको लेकर दोनो घरको लौट रहे थे कि अचानक समुद्रमे जहाज फट गया। वहते हुए लकड़ीके टुकड़ोंका सहारा पाकर वड़ी कठिनतासे दोनो प्राण वचाकर किनारे आ लगे। परन्तु दोनो विछुड़ गये। चारुदत्तका कुछ पता न लगनेसे सिद्धार्थ अपने नगरको चला गया। इधर चारुदत्तने उदुम्बरावती ग्राममे आके सिद्धार्थकी खवर पाई।

इसके वाद सिन्धुदेशके संवर ग्राममे आकर चारुदत्तने पिताका अठारह करोड़ रुपया जो कि किसीके यहाँ जमा था, लेकर जिनमन्दिरो और जिनशास्त्रोंके जीर्णोद्धार करनेके लिए तथा पूजादि शुभकार्योंके लिए दान कर दिया। और वड़े दानशीलके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसके दानगुणकी प्रशंसा सुनकर वीरप्रभ नामका यक्ष मनुष्यका वेप धारण करके परीक्षा लेनेके लिए आया। और दुःखका वहाना वनाके सिसकता हुआ एक स्थानपर वैठ गया। चारुदत्तने उसे दुःखी देखकर पूछा कि भाई क्यो सिसकता है? यक्षने कहा-मेरे पेटशूलकी वडी भारी पीड़ा है। और यह पीड़ा मनुष्यकी पसलीके सेकसे दूर होती है, सो मिलना वड़ा ही कठिन है, इसलिए अपने भाग्यपर रोता हूँ। आप वड़े दानी सुने जाते है; इससे पसलीकी याचना करता हूँ। यह सुनके चारुदत्त छुरी निकालके और उससे अपनी पसली काटके उसे देने लगा। यह देख यक्षको अत्यन्त आश्चर्य हुआ, उसने वड़ी भक्तिसे चारुदत्तकी पूजा की और छुरीके घावको शीघ्र अच्छा कर दिया।

इसके वाद चारुदत्त भ्रमण करता हुआ राजगृह नगरीमे गया। वहाँ विष्णुदत्त नामक एक दंडीने आकर कहा कि यहाँसे कुछ दूरीपर एक रसकूप है। उसमेसे यदि हम रस निकालें, तो वहुतसा द्रव्य पैदा कर सकेंगे। चारुदत्तने कहा-चलो निकालें, मुझे रसकूप दिखाओ। इसके वाद तपस्वी चारुदत्तको वहाँ ले गया और एक वस्त्रमें वाँधकर तथा हाथमे तुम्बी देकर उसे कुएमे उतार दिया। चारुदत्त तुम्बीको रससे भरकर ऊपर भेजनेके लिए वस्त्रमें वाँध रहा था कि इतनेमे कुएमेसे किसीने कहा;-यह तपस्वी वड़ा धूर्त तथा कपटी है, मुझे इसीने इस कुएमे डाला है, और देख अव तुझे भी मेरा साथी वनानेके प्रयत्नमे है। यह सुनके आश्चर्ययुक्त होके चारुदत्तने पूछा-तुम कौन

चित्तको जान गई थी कि अब यह निर्धन चारुदत्तको मेरे पास नहीं रहने देगी। परन्तु एक दिन चूक ही गई। उसकी माताने एक कुट्टिनीके द्वारा नींद बढ़ानेवाली कोई चीज़ उन दोनोंको खिला दी। पश्चात् जब दम्पति सो गये, तब वसन्तमालाने चारुदत्तको गहने रहित और वस्त्रहीन करके आधी रातके समय कम्बलमें बाँधके पाखानेमें पटक दिया। वहाँ जब विष्टा खानेवाले सुअरने आके उसके मुखका स्पर्श किया, तब चारुदत्तने कुछ चेतमें आके जाना कि यह वसन्ततिलका ही मुझसे स्पर्श कर रही है। अतएव बोला कि प्रिये वसन्ततिलके; जरा उस ओर खिसक। परन्तु वहाँ था कौन जो खिसके? आवाज़ सुनके कोतवाल आ गया। उसने, तू कौन है? यहाँ क्यों पड़ा है? इस प्रकार प्रश्न करके उठाया। और जब जाना कि यह चारुदत्त है, बड़ी निन्दा की। चारुदत्त लज्जित होके वहाँसे अपने घर गया, परन्तु वहाँ द्वारपालने भीतर जानेसे रोका। तब चारुदत्तने पूछा कि तुम क्यों रोकते हो? क्या यह मेरा घर नहीं है? उसने कहा कि घर तो आपका ही है, परन्तु अभी गिरवी रक्खा है, इससे आपका नहीं है। तब चारुदत्तने पूछा--तो मेरी माता कहाँ है? द्वारपालने बतलाया कि अमुक स्थानपर है। तब वह वहाँ गया, उसकी अवस्थाको देखके माता और स्त्री अत्यन्त दुःखित हुई। स्नानादि कराया, इसके बाद चारुदत्तके मामाने कहा कि मेरे पास सोलह करोड़का द्रव्य है, सो तुम उसे लेके काम काज चलाओ और कुछ चिन्ता मत करो। चारुदत्तने कहा--व्यापार अन्य देशोंमें अच्छा हो सकता है यहाँ नहीं। पश्चात् द्रव्यादि लेके घरसे निकला। यह देख मोहके कारण उसका मामा सिद्धार्थ भी उसके साथ हो लिया। दोनोंनें आलोक देश सीमावती नदीके किनारेसे मूल खरीद किये और दोनों उन्हे स्वयम् मस्तकपर रखके पलाशपुर नगरमें ले गये। वहाँ वृषभध्वजके घर रहके बेचनेसे जो धन कमाया, उससे कपास संग्रह किया। फिर कपासको बैलोंपर भरके कंजक नाम किसी वणजारेके साथ चले। मार्गमें भीलोंने बैल छीन लिये और कपास जला दिया। फिर मलयागिरिमें रत्नोंका उपार्जन किया, सो उन्हे भीलोंने छीन लिया। तब दोनों प्रियंगुवेला नगरमें गये। वहाँ चारुदत्तके पिता भानुका सुरेन्द्रदत्त नामका मित्र रहता था। वह इन दोनोंको द्वीपान्तरोंको व्यापारके लिए ले

हो ? उसने उत्तर दिया—मैं उज्जयनीके एक सेठका पुत्र हूँ, व्यापारमें द्रव्य खोकर मैं इस तपस्वीके पंजेमें फँस गया था। इसने रसका लोभ देकर मुझे इस कुएमें उतारा और आप रस लेके चलता बना। अब मैं इस रसकूपमें पड़के अधमरा होकर जी रहा हूँ, अब तबकी दशा है। यह सुनके चारुदत्त सचेत हो गया। उसने पहली वार तो तुम्बीको भरके कपड़ेसे बाँध दी, और उसे उस दंडीने खीच ली। परन्तु दूसरी वार अपने बदले पत्थर बाँध दिया, जिसे पापी तापसीने आधी दूर खीचके यह समझके कि अबकी वार चारुदत्त लटका हुआ आ रहा है, वस्त्रको बीचमेंसे काट दिया। पत्थर धमसे कुएमें जा पड़ा। इससे चारुदत्तने वणिक्पुत्रसे पूछा कि भाई; मेरे यहाँसे निकलनेका कोई उपाय हो, तो बतलाओ। उसने कहा—यहाँ एक गोह रस पीनेके लिए हमेशह आया करती है, सो तुम लौटते समय उसकी पूछको पकड़के निकल सकते हो। सुनके चारुदत्त प्रसन्न हुआ और उस वणिक्पुत्रको पंचनमस्कार मंत्र देके जिस समय गोह आई, लौटते समय उसकी पूछ पकड़के ऊपरको चला। परन्तु ज्यों ही कुएका ऊपरी भाग कुछ निकट आया, त्यों ही गोह एक छिद्रके संकीर्णमार्गमें प्रवेशकरके जाने लगी, तब चारुदत्तने लाचार होके उसे छोड़ दिया और अन्तरालमें किसी पत्थरको पकड़के वह एकत्व, अन्यत्वादि बारह भावनाओंका चिन्तवन करने लगा। इतनेमें कुएके किनारे बकरियाँ चरनेको आई और उनमेंसे एक बकरीका पैर फिसलके एक गड्ढेमें जा पड़ा। चारुदत्त जहाँ लटक रहा था, वही उस गड्ढेका अन्त था, सो उसने चटसे उसका पैर पकड़ लिया। बकरी चिल्लाई, तब उसका रक्षक वहाँ आकर गड्ढेको खोदने लगा। चारुदत्तने कहा—भाई; धीरे धीरे खोदना, मुझे चोट न लग जावे। यह सुन बकरियोंके रक्षकको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने डरते डरते ज्यों त्यों करके चारुदत्तको कुएमेंसे बाहर निकाला।

इसके बाद चारुदत्त वहाँसे चला। जंगलमें एक अजगर मिला, उससे बचकर आगे चला तो एक जंगली भैंसा मारनेको दौड़ा, उससे बचनेके लिए वह एक वृक्षपर चढ़ गया। फिर वहाँसे चलके नदीके किनारे अंग देशसे आये हुए रुद्रदत्त, हरिशिखादिक मित्रोंसे मिला। और उन सातोंके साथ श्रीपुर नगरको गया। वहाँपर एक प्रियदत्त नामक पुरुषने स्नान भोजनादिक कराके इन सबका सत्कार किया और बहुतसा द्रव्य मार्गके खर्चके लिए दिया।

सो इन्होने उस द्रव्यसे बहुतसी काँचकी चूड़ियाँ खरीदकर गांधार देशमे ले जाके बेची।

गांधार देशमे किसी पुरुषने रुद्रदत्तको सलाह दी कि यहाँसे कुछ दूरपर एक पर्वत है। वहाँका मार्ग बहुत संकीर्ण (तंग) है, अतएव बकरोंपर चढ़कर उस पर्वतके शिखरपर जाना चाहिए और वहाँ बकरोंकी भाथड़ियोंमे (मसकोंमें) बैठके उनको सीं देना चाहिए। उस पर्वतपर एक भेरुण्ड नामके भीमकाय (बड़े आकारके) पक्षी आते है, वे उन भाथड़ियोको मांसके पिंड समझके ले उड़ेंगे, और रत्नद्वीपमे उन्हें खानेके लिए जमीनपर रक्खेंगे। उस समय होशयारीसे भाथड़ी काटके बाहर निकल आना चाहिए और फिर वहाँसे मनमाने रत्न ले आना चाहिए। यह सुनके सातों मित्र बकरे लाकर उस संकीर्ण मार्गपर आये। उस समय चारुदत्त "आप लोग यहाँ थोड़ी देर ठहरें, मैं रास्ता देखके अभी आता हूँ" ऐसा कहकर उस विकट मार्गपरसे चला, जो केवल चार अंगुल चौड़ा और दोनों ओर बड़ी ऊँची घाटियोंसे घिरा हुआ तथा नीचे पातालतक दिखलाता हुआ बड़ा भयानक था। चारुदत्तको वहाँसे वापिस लौटनेमे जब कुछ विलंब हुआ, तब रुद्रदत्तादि "न जाने वह अभी तक क्यों नही लौटा" इस प्रकार चिन्ताकरके आप भी उसी मार्गपरसे देखनेको चल पड़े। थोड़ी दूर गये थे कि, बीचमे चारुदत्त आता हुआ मिल गया। बड़ी कठिनाई हुई। चारुदत्तने कहा—भाइयो; तुमने बड़ा अन्याय किया। इस समय यदि मै लौटता हूँ, तो मेरा पतन [नीचे गिरना] होता है। और यदि तुम लौटते हो तो तुमारा पतन होता है। अब क्या किया जावे? रुद्रदत्तने कहा—भाई हम लोग लौटते है, हम लोग पुण्यहीन है। यदि हम मर जावेंगे, तो क्या? तुम चिरंजीवी रहो। तुम पुण्यवान् हो, तुमसे संसारका बहुत उपकार हो सकता है। इसके उत्तरमे चारुदत्तने यह कहके कि "यदि मै अकेला मर जाऊँगा, तो इसमे तुम्हारा क्या जावेगा, मुझे ही लौटने दो।" पाँवकी अंगुली जमीनपर रोपके शक्तिपूर्वक बकरेको लौटा लिया। यह देख उसकी शक्तिपर मित्रोको आश्चर्य हुआ। पश्चात् बकरेपर सवार होके चारुदत्त सबके साथ पर्वतपर चढ़ा और फिर वहाँ अपने बकरेको बाँधके एक वृक्षके नीचे सो गया।

चारुदत्त जबतक सोया, तबतक रुद्रदत्तने सवारीके छहो बकरे मारडाले और पीछे वह चारुदत्तके बकरेको

मार रहा था कि, इतनेमे चारुदत्तकी ऑख खुल गई। उसने रुद्रदत्तके घोर पापकर्मकी बड़ी निन्दा की, और प्राण निकलते हुए वकरेको पंचनमस्कार मंत्र सुनाया। इसके वाद सबके सब उन मरे हुए वकरोंकी भाथड़ियोंके भीतर घुसके और उनका मुँह सींके पड़ गये। इतनेमे भेरुण्डपक्षी आये और उन सब भाथड़ीयोंको एक एक करके ले उड़े। चारुदत्तकी भाथड़ी एक काना भेरुण्ड उठाके उड़ा, उसे अन्य वहुतसे भेरुण्डोने मिलके उससे छीनना चाही, परन्तु उनकी धींगाधींगीमें वह उसकी चोंचमेसे छूटके समुद्रमे जा पड़ी। पीछे अन्य भेरुण्डोंको भागते देख करके उस कानेने भाथड़ीको फिर उठा ली और चला, परन्तु फिर भी अन्य पक्षियोंने आके घेर लिया। सो इस प्रकार तीन वार उसने उस भाथड़ीको पटकी और उठाई। चौथी वार रत्नद्वीपके रत्नपर्वतकी चूलिकामे वह भेरुण्ड भाथड़ीको रखके उसके खानेका उद्यम करने लगा, तव भाथड़ी काटके चारुदत्त वाहर निकल पड़ा। भेरुण्ड उड़ गया। और इसी प्रकार अन्य मित्रोंको भी वे पक्षी दूसरे दूसरे स्थानोंपर ले गये।

भाथड़ीमेसे निकलके चारुदत्त पर्वतपर यहाँ वहाँ भ्रमण कर रहा था कि एक गुफामें मुनि महाराजको देखके उसने नमस्कार किया। मुनिने 'धर्मवृद्धि' देकर कहा—चारुदत्त कुशल तो है? यह सुनके चारुदत्त आश्चर्ययुक्त होके वोला—भगवन्, आपने मुझे पहले कहाँ देखा था, जो मेरा नाम लेकर वोला। मुनि वोले—मैं वही अमितगति हूँ, जिसको तुमने वन्धनसे छुड़ाया था। वहाँसे आके मैने उस विद्याधरसे अपनी स्त्रीको छुड़ाकर, और वहुत काल राज्य करके यह तपस्या ग्रहण की है। मुनिने इस प्रकार अपना स्वरूप कहके सुनाया था कि इतनेमे उक्त मुनिके सिंहग्रीव, और वाराहग्रीव पुत्र अपने अपने विमानों सहित वन्दना करनेके लिए आये। और वन्दना करके बैठ गये। मुनिने कहा—चारुदत्तको [1]इच्छाकार करो। सिंहग्रीव, वाराहग्रीवने इच्छाकार करके पूछा—ये कौन है? तव मुनिने चारुदत्तका सम्पूर्ण परिचय दिया।

इसी प्रस्तावमें दो कल्पवासी देवोने आकर पहले चारुदत्तको और वादमें मुनिको नमस्कार किया। यह देख

१ श्रावक जव श्रावकसे मिलता है, तव जुहारादिकी नाईं "इच्छाकार" करता है। यह एक शिष्टाचारका शब्द है।

सिंहग्रीवने पूछा कि गृहस्थको मुनिके प्रथम नमस्कार करनेका क्या कारण है ? तव उनमेंसे बकरेका जीव मरकर पंच नमस्कार मंत्रके प्रभावसे देव हुआ था सो बोला;—

वाराणसी नगरीमें एक सोमशर्म्मा नामका ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सोमिला था। सोमिलाके भद्रा और सुलसा नामकी दो पुत्री उत्पन्न हुई। वे दोनो खूब विद्या पढ़कर उसके [विद्याके] गर्वसे कुमारी ही सन्यासिनी हो गई। उस समय इनकी विद्याकी प्रशंसा सुनके भौतिकपदार्थवादी याज्ञवल्क्य नामक तपस्वी विद्याथी वाराणसी नगरीमें आया, और उनसे वाद करनेको तत्पर हुआ। सुलसाको उसने वादमे परास्त किया और आखिर उसके साथ विवाह करके सुखसे रहने लगा। कुछ दिनोंके पीछे, उसके पुत्र उत्पन्न हुआ, परन्तु वे दोनों पापी (मातापिता) उसे पीपलके वृक्षके नीचे डालकर वहाँसे चले गये। बालकको दूसरी बहिन भद्राने पाके उसका नाम पिप्पलाद रखके बढ़ाया और पढ़ाके विद्यासे परिपूर्ण किया। एक दिन उसने भद्रासे पूछा कि मेरा नाम " पिप्पलाद " क्यो पड़ा ? तव भद्राने उसका पूर्व वृत्तान्त उसे कह सुनाया। तव पिप्पलादने अपने पिताके पास जाकर उसे वादमे पराजित किया और अपना स्वरूप प्रगट किया कि मै तुम्हारा पुत्र हूँ। उस समय पिप्पलादका मै वाग्वली नामका शिष्य हुआ। मैने अपने गुरुके कहे हुए शास्त्रके समर्थनके लिए एक विवाद किया। परन्तु उसमे हार होनेके कारण रौद्रध्यानपूर्वक मरण करके नरक गया। और अपनी आयु पूर्ण करके वहाँसे निकलकर बकरेकी पर्यायमे आया। और छह वार बकरा होकर छहो वार यज्ञमें होमा गया। पश्चात् सातवी वार टक्क देशमे पुनः बकरा हुआ और मरते समय चारुदत्तके दिये हुए पंचनमस्कार मंत्रके प्रभावसे मै सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ।

इसके वाद दूसरे देवने कहा कि मै पूर्वजन्ममे एक रसकूपमें पड़ा हुआ था। वहाँ चारुदत्तने आकर मुझे पंच नमस्कार मंत्र दिया था, सो उसके फलसे मैं भी मरकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ हूँ।

इस प्रकार ये चारुदत्त हम दोनोंके ही गुरु है, अतएव किये हुए उपकारके स्मरणके लिए पहले हम दोनोंने इन्हें नमस्कार किया है, क्योंकि:—

अक्षरस्यापि चैकस्य पदार्धस्य पदस्य वा। दातारं विस्मरन्पापी किं पुनर्धर्मदेशिनम् ॥

अर्थात् एक अक्षर, आधा पद, अथवा एक पदके देनेवाले गुरुके उपकारको भी जो भूलता है वह पापी है, फिर धर्मोपदेश देनेवाले गुरुके विषयमें तो कहना ही क्या है? देवोंके इस प्रकार उपकारसे भरे हुए वचनोंको सुनकर सब लोग प्रसन्न हुए।

पश्चात् चारुदत्तकी आज्ञासे देवोंने चारुदत्तके रुद्रदत्तादिक मित्रोंको जहाँ थे वहाँसे लाके मिला दिया और कहा–आप लोगोंको जितने द्रव्यकी इच्छा हो हम देवेंगे। चलिए चम्पानगरीको चलें। परन्तु सिंहग्रीवने उन्हें ऐसा नहीं करने दिया, और यह कहकर कि हम ही इनकी इच्छा पूर्ण करेंगे, अपने नगरको ले गया। वहाँ जाकर चारुदत्तने अनेक विद्याएँ साधकर विद्याधर राजाओंकी बत्तीस कन्याओंके साथ विवाह किया। बाद जब उसने अपने नगरको जानेकी इच्छा प्रगट की, तब सिंहग्रीवने कहा कि मेरी गन्धर्वसेना पुत्रीने यह प्रतिज्ञा की है कि मुझे जो कोई वीणा बजानेमें जीतेगा वही मेरा भर्तार होगा। सो इसे आप अपने साथ ले जाइए और वहाँ जो कोई वीणामें प्रवीण राजा हो अर्थात् जो इसे वीणावादमें जीत लेवे, उसके साथ इसका विवाह कर दीजिएगा। ऐसा कहकर गन्धर्वसेना चारुदत्तके साथ कर दी।

चारुदत्त कोट्यावधि द्रव्य सम्पन्न होकर सिंहग्रीवादिक विद्याधरों, अपनी विवाहित स्त्रियों और रुद्रदत्तादि मित्रोंके साथ बड़े विभवसहित अपने नगरको आया। वहाँ अपने गिरवी रक्खे हुए महलको छुड़ाया। और वसन्ततिलका [वेश्याकी पुत्री] जो यह प्रतिज्ञा करके बैठी थी कि संसारमें मेरा एक वही पति है जो पति उसकी है वही मेरी है। सो उसको भी अपनी प्यारी स्त्री बनाई। इस प्रकार बहुत सुखका समय अनुभव करके किसी निमित्तको पाकर अनेक राजाओंके साथ चारुदत्त दीक्षित हो गया। और घोर तपश्चर्यापूर्वक समाधिमरण करके सर्वार्थसिद्धिको प्राप्त हुआ।

पाठको, इस प्रकार एक मिथ्यादृष्टि मनुष्य (रस कूपमें पड़ा हुआ) और एक तिर्यंच (बकरा) भी इस

पंचनमस्कार मंत्रके प्रभावसे स्वर्गादिकके बड़े भारी पदोंको प्राप्त हो गये। यदि सम्यग्दृष्टि श्रावक इस पंचपद मंत्रका ध्यान करें तो क्यों न मनोवांछित पदको पावें? उन्हें सब सुलभ हो जावे।

(५) सर्पसर्पिणीकी कथा।

वाराणसी नगरीमें राजा विश्वसेन राज्य करते थे। उनकी महारानीका नाम वामादेवी (ब्रह्मदत्ता) था। वामादेवीके गर्भसे देवाधिदेव परमेश्वर पार्श्वनाथने अवतार लिया था; यह बात जगत्प्रसिद्ध है। एक बार पार्श्वनाथकुमार हाथीपर चढ़कर बाहर जा रहे थे कि उन्हें एक स्थानमें एक तपस्वी पंचाग्नि तपता हुआ दिखलाई दिया। उसे देखके भगवत्ने एक सेवकसे पूछा-यह कौन है और क्या करता है? सेवकने कहा-देव; यह एक योगी है, और बड़ी कठिन तपस्या करता है। तब तीर्थंकर कुमारने कहा कि अज्ञानियोंका तप संसार बढ़ानेका ही कारण होता है, मोक्ष सुखका नहीं। यह सुनके जन्मान्तरोंका विरोधी वह भौतिक तपस्वी क्रोधसे आगबबूला होकर बोला-कुमार; मैं अज्ञानी क्यों हूँ? आपने मुझे अज्ञानी कैसे जाना? इसके उत्तरमें तीर्थंकरकुमारने हाथीसे उतरकर उसके समीप जाके कहा-यदि आप ज्ञानी है तो इस जलते हुए काष्ठमें क्या है? बतलाइये। तपस्वीने कहा-इसमें कुछ भी नहीं है। कुमारने कहा-अच्छा इसे फाड़कर देखो। तत्काल ही काष्ठ फाड़ा गया तो उसमें आधे जले हुए कंठगतप्राण सर्पयुगल निकले। तब उन्हें कुमारने पंचनमस्कार मंत्र दिया। जिसके प्रभावसे वे उसी समय शरीर छोड़कर धरणेन्द्र और पद्मावती हो गये। परन्तु इस आश्चर्यजनक घटनाका पूर्व भवके वैरी तपस्वीपर कुछ भी असर नहीं हुआ, वह क्रोधकी आगमें जलता हुआ फिर भी पहलेकी तरह तप करने लगा।

१ यह कथा पार्श्वपुराणमेंसे संक्षेपकरके लिखी गई है।

तपस्वीके विषयमे ऊपर कहा गया है कि वह श्रीपार्श्वकुमारका जन्मान्तरोंसे विरोधी था। इसपर दोनोंका " पूर्वमे वैर कैसे बँधा ? " भव्योंके हृदयमें ऐसा प्रश्न उठना स्वाभाविक है। अतएव मैं (आचार्य) वैरका कारण यथास्मरण कहता हूँ;—

इस भरतक्षेत्रके सुरम्य देश, पोदनापुर नगरमे राजा अरविन्द राज्य करते थे। उनकी महारानीका नाम लक्ष्मीवती देवी था। राज्यके मंत्री विश्वभूति ब्राह्मण थे। उनकी स्त्री अनुन्धरीके गर्भसे कमठ और मरुभूति नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए। इन दोनोंमे पहला कमठ कुरूप तथा सुन्दर नहीं था और दूसरा मरुभूति अतिशय प्रिय तथा सुन्दर था। अतएव पिताने मरुभूतिका विवाह एक वसुंधरी नामकी सुरूपवान् कन्याके साथ कर दिया। कमठका विवाह नहीं हुआ।

एक दिन विश्वभूति मंत्री अपने सिरमें सफेद वाल देखकर संसारसे विरक्त हो गये। उन्होंने मरुभूतिको राजाकी शरणमे सोप दिया, और अपना मंत्रीपद उसे दिलाकर दीक्षा धारण कर ली। थोड़े दिनोंमे मरुभूति राजाका अत्यन्त प्यारा और कृपापात्र मंत्री हो गया।

एक वार राजा अरविन्द मंत्रीको साथ लेकर वज्रवीर्य मण्डलेश्वरपर चढ़ाई करनेको गये। राज्यको एक प्रकारसे सूना जानकर कमठ निरंकुश (स्वच्छंद) हो गया। सिंहासनपर वैठकर अपनेको राजा प्रगट करने लगा और राज्यके कठिन कामोमें भी हाथ डालना शुरू कर दिया। इतना ही नहीं किन्तु एक दिन वह अपने भाईकी प्यारी स्त्री वसुंधरीको देखकर कामपीड़ित हो गया और बुरे काम करनेको तत्पर हो गया। जिस समय वह कामाग्निमें जलता हुआ उपवनके एक लतागृहमे बैठा था, उसके कलहंस नामके सखाने पूछा कि आपकी आज ऐसी अवस्था क्यों है ? कमठने अपनी हृदयव्यथाकी सब कथा उससे कही। कलहंस कमठके अभिप्रायको जानकर वसुंधरीके निकट आया और बोला—वसुंधरी; वनमे कमठके ऊपर एक वड़ा भारी संकट आया है। यदि तू चलकर उसकी रक्षा न करेगी तो उसका वचना कठिन है। वेचारी वसुंधरी दुष्ट सखाकी धूर्तताको कुछ न समझ सकी और घवड़ाई हुई

कमठके निकट पहुँची। वहाँ कमठने उसे अनेक तरहकी खुशामदकी वातों, कोमल वचनों, और प्रार्थनाओंसे वश कर
लिया और फिँर वह पापी वसुंधरीसे लतागृहमें रमण करने लगा।

इधर राजा अरविन्द शत्रुको जीतकर अपने नगरमे आये और कमठके सव कामोंको जो उसने उनके वाद किये
थे सो जाने। मरुभूतिने भी सव कुछ जान लिया। राजाने मरुभूतिसे मंत्र किया कि कमठने अपनी गैरहाजिरीमे इस
प्रकारके अन्याय किये, उसे क्या दंड देना चाहिए? मरुभूति मंत्री यद्यपि जानता था कि कमठ दंड देनेके योग्य है,
परन्तु भ्रातृमोहके वशमे पड़कर वोला–राजन, क्या कमठ कभी ऐसे अन्याय कर सकता है? आप दुष्ट लोगोंकी कही
हुई वातोंको न मानें, वे लोग सत्य नहीं कहते। यह सुनकर राजा शान्ततासे वोला–तुम खेद मत करो, मै कमठको
अवश्य दंड दूँगा; क्योंकि उसपर सव दोष अच्छी तरह निश्चित हो चुके है। इस प्रकार मरुभूतिको समझाकर राजाने
उसे घर भेज दिया और कमठको बुलाकर गधेपर चढ़ाके शहरसे निकाल दिया।

कमठ ऐसी दुर्दशासे निकलके जंगलमे जाकर तपस्वी हो गया और सिरपर एक शिला रखकरके तपस्या करनें
लगा। यहाँ उसके दंडका हाल सुनकर मरुभूतिको वड़ा दुःख हुआ। उसने कमठका पता लगाकर राजाके निकट जाके
निवेदन किया–हे देव; कमठ वनमे तपस्या करता है, सो मै वहाँ जाता हूँ और देखकर फिर लौट आऊँगा। राजाने
पूछा–वह किस प्रकारका तप करता है? तव मरुभूतिने कहा–वह भौतिकरूप तप करता है। राजाने कुछ विचारकर
कहा–यदि ऐसा है तो उसके पास मत जाओ। परन्तु मोहके वशमे पड़के राजाने मना किया तो भी मरुभूति अकेला
वनमे गया। और कमठके निकट जाकर वोला–हे तात, मेरे मना करनेपर भी राजाने जो तुझे दंड दिया, वह सव
अव क्षमा कर, और पावोंपर पड़ गया। तव कमठने कुपित होकर कहा कि तूने ही यह सव किया है। यह कहकर
मस्तककी शिलाको उसपर पटककर उसने प्राण ले लिये। मरुभूति शरीर छोड़कर कूर्च नामके सल्लकी वनमें वज्रघोष
नामका वड़ा भारी हाथी हुआ। और इधर कमठकी यह करतूत देखकर साथी तपस्वियोने उसे वहाँसे निकाल दिया।

तब वह जंगली भीलोंमे मिलकर चोरी करने लगा। और एक दिन जहाँ चोरी की थी उस ग्रामके लोगोंद्वारा मारा गया। और उसी वनमे कुर्कुट साँप हुआ।

यहाँ जब मरुभूति कई दिन तक नहीं आया, तब राजा अरविन्दने वनमें जाकर एक अवधिज्ञानी मुनिसे पूछा कि भगवन्; मरुभूति मंत्रीका क्या हुआ, वह अभी तक क्यों नहीं आया? मुनिराजने उसका सब हाल सुना दिया। उसे सुनकर राजाको खेद हुआ। नगरमे आकर उन्होंने कुछ दिनों राज्य किया और एक दिन लोप होते हुए बादलोंको देखकर संसार और शरीरको उसीके समान अस्थिर जानकर दीक्षा धारण कर ली।

अरविन्द मुनि कुछ समयमें सम्पूर्ण आगमोंके ज्ञानी हुए। एक बार भ्रमण करते हुए पूर्वोक्त कूर्चक वनमें आये और वेगावती नदीके किनारे एक शिलापर बैठे। वहाँपर एक सुगुप्ति नामका बड़ा भारी व्यापारी अपने डेरे डालकर पड़ा था। सो जिस समय वह मुनि महाराजके निकट धर्म श्रवण कर रहा था उस समय वह वज्रघोष हाथी उसके डेरेको उखाड़कर नष्ट करके मुनि महाराजकी ओर चला। परन्तु उनके दर्शनसे उसे जातिस्मरण होगया, इसलिए उसने सम्मुख आकर नमस्कार किया। नम्रताको देखकर और निकट भव्य जानके मुनिराजने उसे श्रावकके व्रत दिये।

वज्रघोष हाथी श्रावकके व्रत पालता हुआ शान्तिसे रहने लगा और इस अवस्थामें वह बहुत दुबला हो गया। एक दिन पानी पीनेको आये हुए हाथियोंसे विलोड़ित (गँदला–मैला) होकर जब वेगावतीका जल पीने योग्य हो गया तब वज्रघोष उसे पीनेके लिए जाकर कीचड़में फँस गया और निकलनेमें असमर्थ हो गया। तब सन्यास धारण करके अनुप्रेक्षाओंका चिन्तवन करने लगा। इतनेमें कमठका जीव दुष्ट कुक्कुट साँपने आकर उसे डस लिया। हाथी मरकर यथार्थ चारित्रके प्रभावसे सहस्रार स्वर्गके स्वयंप्रभ विमानमें शशिप्रभ नामका महर्द्धिक देव हुआ। और कुक्कुट साँप अन्तमें मरकर परंपरासे अपने कुकर्मोंके प्रभावसे पाँचवें धूमप्रभ नरकमें पहुँचकर वहाँके घोर दुःखोंको सहने लगा।

शशिप्रभदेव अपनी सागरोपम आयु पूर्ण करके पुष्कलावती देशके त्रैलोकोत्तमपुरके राजा विद्युन्मति और रानी

विद्युन्मालाके सहस्ररश्मि नामका पुत्र हुआ। कौमार अवस्थामें ही वह समाधिगुप्ति मुनिके निकट दीक्षित हो गया। कुछ कालमें सम्पूर्ण आगमोंके ज्ञाता होकर सहस्ररश्मि मुनि एक दिन हिमवत् पर्वतपर ध्यानारूढ़ विराजमान थे। इतनेमें उन्हें एक अजगरने आकर निगल लिया। यह अजगर और कोई नहीं, उस कुर्कुट साँपका ही जीव था। धूमप्रभा पृथिवीसे निकलकर उसने अजगरकी पर्याय पाई थी। सहस्ररश्मि मुनि शरीर छोड़कर अच्युत स्वर्गके पुष्कर विमानमें विद्युत्प्रभ नामके देव हुए और अजगर परंपरासे छट्टे नरककी तमःप्रभा पृथिवीमें अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिए गया।

विद्युत्प्रभ देव सागरोपम स्वर्गसुख भोगकर जम्बूद्वीप–अपरविदेह–पद्मदेशके अश्वपुर नामक नगरके राजा वज्रवीर्य और महारानी विजयाके वज्रनाभ नामका प्रतापवान् पुत्र हुआ। वह राज्यासनपर वैठ सकलचक्रवर्ती हुआ। और वहुत काल तक राज्य भोगकर क्षेमंकर मुनिके निकट दीक्षित हो गया। इधर कमठका जीव छट्ठे नरकसे निकलकर एक वनीमें कुरंग नामका भील हुआ। सो शिकारके लिए घूमते हुए उस दुष्टने अपने वाणसे निरपराध वज्रनाभ मुनिको वेध दिया। उसकी पीड़ासे शरीर छोड़कर वे मध्यम ग्रैवेयकके सुभद्र विमानमें अहमिन्द्र उत्पन्न हुए। और इधर भील सातवे नरकमें पहुँचा।

इसके पश्चात् अहमिन्द्र, ग्रैवेयकके भोगोंको चिरकालतक भोगकर अपनी स्थिति पूर्ण होनेपर अयोध्यापुरीके राजा वज्रवाहु और रानी प्रभंकराके आनन्द नामका पुत्र पैदा हुआ। वहाँ महामण्डलेश्वरकी विभूति पाकर कुछ कालमें सागरदत्त मुनिके निकट दीक्षित हो गया। सोलहकारण भावनाओंका चिन्तवन करके और उसके द्वारा तीर्थंकर प्रकृतिका वन्ध करके वे जिस समय क्षीर वनमें प्रतिमायोग धारण किये हुए विराजमान थे उस समय एक सिंहने आकर उन्हें अत्यन्त कष्ट देकर प्राण ले लिये। यह सिंह उसी कमठ दुष्टका जीव था, जो भीलकी पर्याय छोड़कर नरक गया था। वहाँसे निकलकर वह इसी क्षीरवनमें सिंह हुआ था, सो मुनिको देखकर अत्यंत वैर चिन्तवन करके

उसने फिर यह बुरा काम किया। मुनिराज तो इस उपसर्गसे शरीर छोड़कर लान्तव स्वर्गमें इन्द्र हुए और वह सिंह धूमप्रभा नरकमें गया।

लान्तवेन्द्र अपनी आयु पूर्ण करके गर्भकल्याणकोत्सवपूर्वक वैशाखकृष्णा द्वितीयाको महारानी वामादेवी अर्थात् ब्रह्मदत्ताके गर्भमें आये। और पोषकृष्णा एकादशीको उनका जन्मकल्याणक हुआ। तेईसवें तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ भगवान् हुए। प्रियंगुके फूलके समान श्याम वर्ण, नव हाथके प्रमाण काय और सौ वर्षकी आयु पाई। तीस वर्ष कुमारकालके व्यतीत होनेपर पिता राजा विश्वसेनने उनके विवाहके लिए पाँचसौ कन्याओंको उपस्थित किया परन्तु पार्श्वकुमारने उनमेंसे किसीसे भी विवाह नहीं किया। उन्हें देखकर संसारसे उलटा वैराग्य हो गया। अतएव विमला नामकी पालकीपर बैठ करके नगरसे निकले और एक हजार राजाओंके साथ दीक्षा ग्रहण की, पहले पहल आठ दिनका उपवास लिया। उसके पूर्ण होनेपर चर्याके लिए नगरमें गये सो किसी राजाने भगवानका आव्हानन करके क्षीरान्न (खीर) से पारणा कराया। चार महीना कठिन तपस्या करके एक दिन पार्श्व भगवान् उसी वनमें देवदारु वृक्षके नीचे एक शिलापर अष्टोपवास धारण किये हुए ध्यानारूढ़ हो रहे थे। इतनेमें एक संवर नामक ज्योतिष्क देवने आकर उन्हें देखा और पूर्व वैरका स्मरण करके घोर उपसर्ग करना शुरू किया। यह देव कमठका जीव था। उसने सिंहकी पर्यायसे नरकमें जाकर और वहाँसे निकलकर बहुत समय संसारमें भ्रमण किया, पश्चात् महीपालपुरके राजा नृपालके महीपाल नामका पुत्र हुआ। यह महीपाल पार्श्वनाथ भगवानकी माता ब्रह्मदत्ताका सगा भाई था, जो कि राज्यसिंहासनपर बैठकर और कुछ कालतक राज्य करके अपनी प्यारी स्त्रीके वियोगसे दुःखित होकर तापसी हो गया था। यह वही तापसी था, जिससे पार्श्व भगवानका विवाद हुआ था, और जिसके पंचाग्निकी लकड़ियोंमेंसे अधजले साँप निकले थे। तापसी पर्यायके अन्तमें मरकर कुतपके प्रभावसे वह संवर नामका देव हुआ, जिसने भगवानको देखते ही पूर्व वैरके कारण उपसर्ग करना प्रारंभ किया।

भगवानके अत्यन्त घोर उपसर्गसे धरणेन्द्रका आसन कम्पायमान हुआ। अतएव धरणेन्द्र और पद्मावती दोनों

उनकी रक्षा करनेको उपस्थित हुए। धरणेन्द्रने भगवानके ऊपर अपने फणका मंडप खड़ा कर दिया और पद्मावतीने फणमंडपके ऊपर छत्र लगाया। तब संवरदेवके किये हुए उपसर्गका कुछ फल नहीं हुआ अर्थात् वह कुछ नहीं कर सका। संवरके उपसर्गको जीतकर भगवानने चैत्रकृष्णा चतुर्थीको केवलज्ञान प्राप्त किया। समवसरणकी अति उत्तम रचना हुई। उसकी विभूति देखकर पाँचसौ तापसियोंने कुतपको छोड़कर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। और संवरदेव जिसने उपसर्ग किया था, वह भी सम्यक्त्वयुक्त हो गया। इनके अतिरिक्त और भी हजारों क्षत्रियोंने श्रावकोंके व्रत ग्रहण किये।

श्रीधर आदिक १० गणधरों, ३५० पूर्वधरों, १०९०० शिक्षकों, १४०० अवधिज्ञानियों, १००० केवलज्ञानियों, १००० वैक्रियक ऋद्धिवालों, ७५० मनःपर्ययज्ञानियों, ६०० वादियों, सुलोचना आदि ३६००० आर्यिकाओं, १००००० श्रावकों, ३००००० श्राविकाओं और असंख्यात करोड़ देव देवियों तथा तिर्यचों सहित अर्थात् इतनी समवसरणकी विभूति सहित चार महीना कम सत्तर वर्ष धर्मोपदेश करते हुए विहार करके सम्मेदशिखरपर्वतपर आरूढ़ हुए। वहाँ केवल एक मास तक योग निरोधकरके शुक्लध्यानका अवलम्बन किया और श्रावणसुदी सप्तमीको परम अतीन्द्रिय-सुखयुक्त मोक्षको प्राप्त हुए। सो हे भव्य जीवो; देखो, नमस्कार मंत्रके प्रभावसे क्रूर जीव सर्प और सर्पिणी भी धरणेन्द्र और पद्मावती हुए, जिन्होंने कि भगवानके घोर उपसर्गका निवारण कर अनन्त पुण्यका बंध किया; तो फिर अन्य मनुष्यादि सम्यग्दृष्टि जीव नमस्कारमंत्रकी आराधना करके क्या क्या फल नहीं पा सकते? सब कुछ पा सकते हैं। ऐसा जानके पंचनमस्कार मंत्रका निरन्तर जाप करो।

जब कोई रोग हुआ, तब लोगोंने कहा कि तूने मुनिराजकी निन्दा की थी, यह उसीका फल है। वेदवतीको इस बातपर विश्वास हो गया, अतएव मुनिनिन्दाके पापसे छूटनेके लिए उसने श्राविकाके व्रत धारण कर लिये। इसके पीछे वेदवतीके यौवनवती होनेपर राजा शम्भुने उसके साथ विवाह करनेकी इच्छा की,-और उसके पितासे याचना की। परन्तु राजा मिथ्यादृष्टि था, अतएव श्रीभूतिने अपनी श्राविका कन्या उसे देना अस्वीकार किया।

तब राजाने कुपित होकर मंत्रीको मार डाला। वह मरकर स्वर्गलोक गया। और वेदवती कन्या "मेरे निरपराध पिताको राजाने मारा है, अतएव जन्मान्तरमें मैं उसके विनाश करनेका निमित्त होऊँगी" ऐसा निदान करके तपस्यापूर्वक शरीर त्याग किया और स्वर्गमें देवाङ्गना हुई। इसके बाद देवायु पूर्ण करके भरतक्षेत्रके दारुण ग्राममें सोमशर्म्मा ब्राह्मणकी ज्वाला नामकी स्त्रीके सरसा नामकी कन्या हुई। वह यौवनवती होनेपर अनिविभूति नामके एक ब्राह्मण पुत्रको व्याही गई। परन्तु पतिके साथ थोड़े ही दिन रहकर किसी जारमें आसक्त होकर उसे लेकर देशान्तरमें निकल गई। मार्गमें एक मुनिके दर्शन हुए, सो पापिनीने उनकी निन्दा की। इस महापापके फलसे मरकर उसने तिर्यंच गति पाई। बहुत काल भ्रमण करके वह एक बार चन्द्रपुर नगरके राजा चन्द्रध्वज और रानी मनस्विनीके चित्रोत्सवा नामकी पुत्री हुई। जवान होनेपर मंत्रीके पुत्र कपिलपर आसक्त होकर उसके साथ परदेशको चली गई। परन्तु आखिर मंत्रीपुत्रसे भी नहीं बनी। उसे छोड़कर विदग्धपुरके राजा कुण्डलमंडितकी प्यारी स्त्री बनी। वहाँ पूर्व जन्मके संस्कारके कारण पाकर श्रावकके व्रत ग्रहण किये, और बहुत काल उनका शुद्धचित्तसे पालन किया। आयु पूर्ण करके इस बड़े भारी पुण्य फलसे वह दूसरे जन्ममें सीता सती हुई।

सीताके स्वयंवरादिकका चरित्र पद्मचरित अर्थात् पद्मपुराणसे (रामायणसे) जानना चाहिए। यहाँपर केवल इतना ही कहना है कि एक मूर्ख हथिनीने भी नमस्कार मंत्रके प्रभावसे श्रीमती सीता सती सरीखी उत्तम पर्याय पाई। यदि अन्य सम्यग्दृष्टि मनुष्य महामंत्रका जप करें, तो क्या क्या वैभव न पावें ? इसके प्रभावसे सब कुछ पा सकते हैं।

---

(६) कीचड़में फँसी हुई हथिनीकी कथा ।

भरतक्षेत्रके यक्षपुर नामके नगरमे श्रीकान्त नामका राजा राज्य करता था। उसकी रानीका नाम मनोहरी था। इसी नगरमे सागरदत्त वणिक् और रत्नप्रभा नामकी उसकी स्त्री थी। रत्नप्रभाके गुणवती नामकी एक कन्या थी। सागरदत्त उसका विवाह उसी नगरके रहनेवाले नयदत्तके पुत्र धनदत्तके साथ करना चाहता था। परन्तु राजाने आज्ञा दी कि तुम्हे उसका विवाह मेरे साथ करना पड़ेगा। अतएव विवाह नही हो सका।

नयदत्तकी स्त्रीका नाम नन्दना था। उसके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। जिसमेसे एक उक्त धनदत्त था और दूसरेका नाम वसुदत्त था। वसुदत्तको राजाने जंगलमे क्रीड़ा करते समय मार डाला। तब वसुदत्तके सेवकोने गुस्सेमें आकर राजाको भी मार डाला। ये दोनो मरकर हरिण हुए। उधर धनदत्त विदेशको चला गया। अतएव वह गुणवती पुत्री आर्तध्यानसे मरकर जहाँ वे हरिण उत्पन्न हुए थे, वही हरिणी हुई। आखिर उसीपर मोहित होकर वे दोनों हरिण आपसमे लड़कर मर गये, और जंगली सुअर हुए। हरिणी मरकर सूकरी हुई। सो वहाँ भी वे दोनों सूकरीके पीछे लड़कर मरे और हाथी हुए। सूकरी मरकर हथिनी हुई। और इस पर्यायमे भी पूर्व प्रकारसे मरकर भैसा, बन्दर, कुरवक, मेढ़ा, आदि अनेक पर्यायोमे उन दोनोने भ्रमण किया। और वह गुणवती भी क्रमसे उसी जातिकी स्त्री होती गई, तथा उसीके निमित्तसे वे दोनो लड़कर मरते रहे।

एक वार गुणवती गंगा नदीके किनारे हथिनी हुई। सो एक दिन कीचड़मे फँसकर कंठगतप्राणा हो रही थी कि इतनेमें एक सुरंग नामका विद्याधर आया और उसने उसे पंचनमस्कार मंत्र दिया। उसके फलसे हथिनी शरीर छोड़नेपर मृणालपुरके राजा शम्बुके मंत्री श्रीभूतिकी सरस्वती स्त्रीके वेदवती नामकी कन्या हुई। एक दिन मृणालपुरमे चर्याके लिए एक मुनिराज पधारे थे, सो वेदवतीने देखकर मूर्खतावश उनकी निन्दा की। इसके वाद उसके गलेमे

(७) दृढ़सूर्य चोरकी कथा ।



उज्जयनी नगरीमे राजा धनपाल राज्य करता था । उसकी रानीका नाम धनपती था । वसन्तोत्सवमें वसन्तसेना नामकी एक वेश्याने रानीके गलेमें एक अत्यन्त दिव्य सुन्दर हार देखकर विचारा कि "ऐसे हारके पाये विना मेरा जीवन व्यर्थ है"। और इसी चिन्तामे वह अपने घर आकर शय्यापर पड़ रही । एक दृढ़सूर्य नामका चोर उसका यार था, उसने रात्रिको आकर इस चिन्तामे पड़ी हुई देखकर पूछा-प्रिये; क्या मुझपर रुष्ट हो गई हो, जो इस प्रकार निरुत्साह देख पड़ती हो । वेश्याने कहा-नही प्यारे, मै तुमपर रुष्ट नहीं हूं । एक दूसरा ही कारण है । यदि तुम मुझे रानीका दिव्य हार लाकर न दोगे तो मै अब जीऊँगी नही । चोरने कहा-कुछ चिन्ता मत करो, मै अभी लाता हूं। इस प्रकार समझा बुझाकर वह राजमहलमें गया, और रानीके गलेमेंसे हार उतारकर बाहर निकला । उस समय चुराये हुए दिव्य हारकी प्रभा देखकर यमपाश नामके कोतवालने चोरको पकड़ लिया और राजाके सम्मुख उपस्थित किया । राजाज्ञासे वह प्रातःकाल शूलीपर चढ़ाया गया। उस समय धनदत्त नामके सेठ चैत्यालयकी बन्दनाके लिए वहॉसे निकले। उन्हें देखकर चोरने गिड़गिड़ाकर कहा--तुम बड़े दयालु जान पड़ते हो, मै बहुत प्यासा हूँ, कृपाकरके मुझे पानी लाकर पिलाओ । चोरके उपकारकी इच्छा करके सेठने कहा—देख भाई; मुझे बारह वर्षमें मेरे गुरुने एक महाविद्या दी है । यदि मै तेरे लिए पानी लानेको जाऊँगा, तो उसे भूल जाऊँगा, सो यदि लौटकर आनेपर तू उसे मुझे सुनाकर याद दिलानेकी प्रतिज्ञा करे, तो मै अभी पानी लाये देता हूँ । चोरने कहा-अच्छा, मुझे वह विद्या बतला दो, मै याद करता रहूँगा, और आपके आनेपर आपको सुना दूँगा । तब सेठने उसे पंचनमस्कार मंत्ररूपी महाविद्या बतला दी, और वहॉसे चल दिये । इधर दृढ़सूर्य नमस्कार मंत्रका उच्चारण करते करते गतप्राण हो गया और सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ ।

चोरके मर जानेपर चौकीदारोंने राजासे जाकर कहा कि हे देव; धनदत्त सेठने चोरके निकट जाकर कुछ धीरे धीरे सलाह की थी। इसपर राजाने यह अनुमान करके कि सेठके साथ इस चोरकी जरूर साजिश होगी और सेठके घरमें चोरका गुप्त धन भी होगा। इसलिए सेठको पकड़नेके लिए उसने अपने नौकर भेजे। लेकिन सेठके दरवाजेपर बैठे हुए एक पहरेदारने उन्हें घरके भीतर जाने नहीं दिया। परन्तु वे जबरदस्ती भीतर जाने लगे, तब पहरेदारने लकड़ीसे उनकी खूब खबर ली, यहाँ तक कि वे बेहोश हो गये। राजा इस बातकी खबर पाकर क्रोधित हुआ और बहुतसे नौकर और भेजे, परन्तु उन्हें भी उस पहरेदारने मार गिराया। आखिर राजा खुद बड़ी भारी सेनाके साथ वहाँ गया। परन्तु उस पहरेदारका बाल भी बाँका न कर सका। उसने क्षणभरमें पहलेकी तरह, उस बड़ी भारी सेनाको भी जमीनपर गिरा दिया। यह देख राजा डरकर भागने लगा, परन्तु उसने भागने नहीं दिया, और कहा कि हे राजा, यदि तू शरण ले, तो तुझे बचाता हूँ, नहीं तो तेरी रक्षा नहीं है। तब राजा घरमें गया, और सेठके पास जाकर बोला—सेठजी, मुझे बचाओ! बचाओ! राजाको इस हालतमें लाचार देख सेठको अचंभा हुआ। उसने पहरेदारसे पूछा-तू कौन है? और महाराजकी यह दशा तूने किस कारण की? पहरेदारने नमस्कार करके कहा—सेठजी, मैं दृढ़सूर्य नामका चोर हूँ। आपकी कृपासे मैं सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ हूँ। इस समय आपकी रक्षा करनेके लिए मैंने ये सब कौतुक किया है। राजाकी सेनाके जो ये सब लोग पड़े हुए हैं, वे मरे नहीं हैं, किन्तु मेरी मायासे बेहोश हो रहे हैं।

पाठक जान ही गये होंगे कि यह पहरेदार वही चोर है, जिसे धनदत्त सेठने शूलीपर चढ़े हुए पंच नमस्कार मंत्ररूपी महाविद्या दी थी। उसीके प्रभावसे यह देव हुआ, और अपनी पहली हालत विचार करके अपने उपकार करनेवाले सेठको विपत्तिमें फँसा हुआ जानकर मायासे पहरेदार बना और सेठकी रक्षा की।

देखिये! मरणकालमें एक चोर भी विना विचारे अथवा विना महत्त्व जाने ही नमस्कार मंत्रके उच्चारणसे देवपदको प्राप्त हो गया, यदि अन्य सदाचारी पुरुष शुद्ध मनसे इस मंत्रका पाठ करे तो क्यों न स्वर्गादिक सुखोंको प्राप्त होवे? अवश्य ही होवे।

(८) सुदर्शन सेठकी कथा।

भरतक्षेत्र–अंगदेश–चम्पापुरी नगरीमें धात्रीवाहन नामका एक राजा था। उसकी अभयमती नामकी परम रूपवती रानी थी। इस नगरीके मुख्य सेठका नाम वृषभदास और सेठानीका जिनमती था। सेठके यहाँ सुभग नामका ग्वाला नौकर था। एक दिन वह जंगलसे गौवें लेकर घरको लौट रहा था कि रास्तेमें सूरजके डूबनेके वक्त एक मुनि ध्यानारूढ़ विराजमान दिखलाई दिये। उस समय शीत बहुत पड़ रहा था, सो मुनिको देखकर उसने सोचा कि आज इस भीषण शीतमें इनकी रात कैसे बीतेगी? इन्हें बड़ा कष्ट होगा। किसी उपायसे इनका शीत निवारण करना चाहिए। ऐसा विचारकर वह घर आया और थोड़ीसी लकड़ियाँ और आग लेकर मुनिके पास गया। आग जलाकर, रातभर वहीं रहा, और मुनिकी शीत वेदना दूर करता रहा। सवेरा होनेपर मुनिने मौननिसर्जन किया और उसे अत्यन्त निकट भव्य जानकर उपदेश दिया कि हे भव्य, तू उठते बैठते चलते समय पहले "णमो अरहंताणं" आदि मंत्रका उच्चारण किया कर। फिर स्वयं मुनि "णमो अरहंताणं" ऐसा उच्चारण करके आकाशमार्गसे चल दिये। मुनिराजको आकाशमार्गमें जाते देखकर उक्त मंत्रपर ग्वालाकी बड़ी भारी श्रद्धा हो गई। इस कारण वह मुनिराजकी आज्ञानुसार निरन्तर भोजनादि सम्पूर्ण क्रियाओंके पहले णमोकार मंत्रका उच्चारण करने लगा।

एक दिन वृषभदास सेठने पूछा कि तू इस णमोकार मंत्रका उच्चारण निरन्तर क्यों किया करता है? ग्वालाने पूर्वोक्त मुनिकी सब कथा कह सुनाई। उसे सुनकर सेठने अत्यन्त प्रसन्नता प्रगट की और अच्छे अच्छे भोजन वस्त्रादिकसे उसे संतुष्ट किया।

एक दिन सुभग ग्वाला गाय भैंस चराने गया था कि वहाँ जंगलमें सो गया। इतनेमें किसीने आकर कहा–तेरी गाय भैंसे तो गंगाके पार उतर गई, तू यहाँ क्या करता है? यह सुनकर वह तत्काल उठा और पार जानेके लिए

गंगामें कूद पड़ा। कूदते ही एक तीक्ष्ण काठसे उसका पेट फट गया, और वह मरनेको हो गया। तब उक्त महा मंत्रका उच्चारण करके उसने यह निदान किया कि इस मंत्रके माहात्म्यसे मै अपने सेठके पुत्र उत्पन्न होऊँ। प्राण छोड़कर निदानके अनुसार वह जिनमती सेठानीके गर्भमे आया। उस दिन सेठानीने पिछली रातमे सुदर्शन मेरु, कल्पवृक्ष, देवोका विमान, समुद्र और अग्नि ऐसे पॉच स्वप्न देखे। प्रातःकाल होनेपर जिनमतीने उक्त स्वप्न सेठजीको सुनाये और उनका फल पूछा। तव सेठने कहा–चलो, चैत्यालयको चले, वहॉ मुनिराजसे इनका फल पूछेगे। फिर दोनो जिन मंदिरको गये, और भगवान्‌की पूजा करके संतुष्टचित्त हो सुगुप्ति मुनिके पास आये और वंदना करके वैठ गये। सेठजीके पूछनेपर मुनिराजने कहा कि जिनमतीके गर्भसे सुदर्शनमेरुके दर्शनसे धीर, कल्पवृक्षके देखनेसे लक्ष्मीवान् तथा त्यागी, देव विमानके देखनेसे सुखी, समुद्रके देखनेसे गुणसमुद्र, और अग्निके देखनेसे कामरूप ईधनका जलानेवाला, इस प्रकार परम सौभाग्यशाली पुत्र उत्पन्न होगा। यह सुनकर दम्पति अत्यन्त प्रसन्न हुए और घर आकर सुखसे समय विताने लगे। नौ महीने पूरे होनेपर पौष शुक्ला चतुर्थीको पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम सुदर्शन रक्खा। सुदर्शन अपने पड़ौसी पुरोहितके लडके कपिलके साथ बालक्रीड़ा करता हुआ वढ़ने लगा।

उसी चम्पापुरीमे सागरदत्त नामका एक और सेठ रहता था। उसकी सागरसेना नामकी स्त्रीने एक दिन वृषभदास सेठसे कहा कि यदि मेरे पुत्री उत्पन्न होगी, तो मै उसका विवाह तुम्हारे सुदर्शनके साथ करूँगी। कुछ दिनोमे सागरसेनाके गर्भसे एक मनोरमा नामकी अत्यन्त रूपवती कन्या उत्पन्न हुई। और वह भी सुदर्शनके समान दिनदूनी रात चौगुनी वढ़ने लगी।

एक दिन न्याय, व्याकरण, काव्यादि समस्त शास्त्रोंमे प्रवीण सुदर्शन कुमार अपने जगन्मनोहारी स्वरूपसे लोगोको मोहित करता हुआ अपने मित्रो सहित राजमार्गपरसे कहीं जा रहा था कि इतनेमें सोलह शृंगार किये हुए और अनेक सखी जनोसे घिरी हुई मनोरमापर उसकी दृष्टि पड़ी। मनोरमा जिनमंदिरके दर्शनोंको जा रही थी। उस अनुपम रूपके देखनेहीसे सुदर्शन कुमार कामवाणसे विद्ध हो गया। अत्यन्त व्याकुल होकर घर आया और किसीसे

विना कुछ कहे सुने शय्यापर जा पड़ा। उसकी यह दशा देखकर उसके मातापिता व्याकुल चित्त हो गये और इसका कारण पूछा, परन्तु उससे संतोषजनक उत्तर नहीं मिला। पीछे सुदर्शनके मित्र कपिलभट्टसे पूछनेपर मालूम हुआ कि कुमार मनोरमापर आसक्त हो गया है, इसी कारण वह इतना वेचैन है। तब वृषभदासने मनोरमाकी याचनाके लिए सागरदत्तके यहाँ जानेका विचार किया।

उधर मनोरमाका भी उस दिन यही हाल हो गया। वह भी सुदर्शन कुमारके रूप लावण्यको देखकर मुग्ध हो गई। सुदर्शनकी विरहरूपी अग्निसे जब उसका सारा शरीर दग्ध होने लगा, तब वह भी घर जाकर चित्तको सम्हाल न सकनेसे शय्यापर जा पड़ी। सखियोंके द्वारा उसके माता पिता भी पुत्रीकी अवस्थासे परिचित होकर चिन्तित हुए। और बहुत सोच विचारके पश्चात् उसका पिता सागरदत्त वृषभदास सेठके घर अपनी इच्छा प्रगट करनेको आया। सुदर्शनका पिता सागरदत्तके घर जानेको तैयार था ही कि सागरदत्तको स्वयं अपने घर आया हुआ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। और पूछा–हे महाभाग, आपका आगमन कैसे हुआ? सागरदत्तने विनयपूर्वक कहा–मेरी पुत्रीके साथ आप अपने कुमारका विवाह कर दीजिए, मैं इसी याचनाके लिए आया हूँ। यह सुनकर वृषभदासने हर्षित चित्त होकर कहा–जो मैं चाहता था, वही प्यारा विचार आपने प्रगट किया, आपको धन्यवाद है, और मुझे यह सम्बन्ध स्वीकार है। पश्चात् दोनों सम्बन्धियोंने उसी समय श्रीधर नामके ज्योतिषीको बुलाकर उसके द्वारा वैशाख शुक्ला पंचमीका शुभ मुहूर्त्त विवाहके लिए निश्चित्त करके नियत समयपर मनोरमा और सुदर्शनका मनोवांछित विवाह कर दिया। परस्पर अभूत पूर्व प्रेमसुखका अनुभव करते हुए वे दोनों काल यापन करने लगे और कुछ दिनोंमें उस प्रेमके फल स्वरूप सुकान्त नामके पुत्रको पाकर वे धन्यभाग हुए।

एक दिन नाना देशोंमें विहार करते हुए समाधिगुप्त नामके परम यति चम्पापुरी नगरीके वनमें पधारे। वनमालीके द्वारा उनका आगमन सुनकर राजा मंत्री आदि सम्पूर्ण श्रद्धालु लोग वन्दना करनेको गये। वन्दना और धर्म श्रवणके पश्चात् वृषभदास सेठने सुदर्शन पुत्रको राजाकी शरणमें सोंपकर दीक्षा ले ली, और जिनमती सेठानी भी

आर्यिका हो गई। पश्चात कालांतरमें दोनों समाधिपूर्वक शरीर छोड़कर स्वर्ग लोकको गये। यहाँ सुदर्शनकुमार घरका मालिक होकर अपने पुत्र सुकान्तको नाना प्रकारकी विद्या पढ़ाता हुआ सबका प्यारा होकर सुखसे रहने लगा। एक समय उसके रूपके अतिशयको सुनकर कपिलभट्टकी स्त्री कपिला अत्यन्त आसक्त हुई और उससे मिलाप करनेके लिए व्याकुल होने लगी। एक दिन सुदर्शनको अपने घरके पाससे जाते हुए देखकर पहचाना और अपनी सखीसे कहा इसको किसी उपायसे छलकर मेरे पास ले आ। सखी जल्दीसे उसके पास गई और बोली– हे सुभग, आपके मित्र बड़े भारी विपत्तिमें पड़े हुए हैं, और आप उनकी खबर भी नहीं लेते, यह क्या बात है? सुदर्शन सेठ आश्चर्यचकित होकर, "हैं कपिलभट्ट बीमार हैं? मुझे तो किसीने खबर भी नहीं दी, अन्यथा मैं आनेमें नहीं चूकता।" ऐसा कहकर उसीके साथ भट्टके घर आये और पूछा कि मेरे मित्र कहाँ हैं बतलाओ? सखीने कहा–वे अटारीपर पड़े हैं, आप अकेले वहाँ जाइए। भोले भाले सुदर्शन सेठ अपने मित्रादिकोंको नीचे बैठाकर आप अकेले ऊपर गये। और वहाँ एक पलँगपर चादर ओढ़े हुए किसीको पड़े देखकर बिना जाने उसपर बैठ गये। चादर खींचकर बोले–मित्र, तुझे क्या पीड़ा है? परन्तु वहाँ तो विचित्रतासे कपटजाल ही बिछाया गया था। वह कपिला ही पलँगपर पड़ी हुई थी। चादर खींचते ही उसने इनका वस्त्र पकड़ लिया और उसके हाथ अपने कुच युगलोंपर रखकर नम्रतापूर्वक कहा–प्यारे मैं तुम्हारे संयोगके बिना अधमुई हो रही हूँ, तुम दयालु हो, कृपा करके प्रणय दान देकर मेरी रक्षा करो, नहीं तो मेरा जीना कठिन है। उस समय सुदर्शन सेठ अपने धर्मकी रक्षाका और कोई उपाय न देखकर बोले–मैं तो नपुंसक हूँ, केवल बाहरसे देखनेमें रमणीक दीखता हूँ, परन्तु मुझमें सार बिलकुल नहीं है। यह सुनकर कपिलाने विरक्त होकर लाचारीसे सेठका वस्त्र छोड़ दिया। और इस प्रकार उस दिन बड़ी कठिनतासे अपने ब्रह्मचर्यकी रक्षा करके सेठजी अपने घर आ गये और सुखसे रहने लगे।

एक बार वसन्तके उत्सवमें राजादिक समस्त प्रतिष्ठित पुरुष बाहर बागोंमें क्रीड़ा करने गये। और महारानी अभयमती भी अपनी कपिला सखी और समस्त अन्तःपुरकी स्त्रियों सहित पुष्पक रथपर चढ़कर बागको चली। मार्गमें

उन्होंने एक रथपर बैठी हुई और गोदमे सुकान्त पुत्रको लिये हुए मनोरमाको देखा। पूछा—यह किसकी भाग्यवान् स्त्री है, जिसकी गोदमे बालक बैठा हुआ है? किसीने कहा कि यह सुदर्शन सेठकी स्त्री और सुकान्त कुमारकी माता मनोरमा है। यह सुनकर अभयमतीने कहा—इसको धन्य है, जो ऐसे सुन्दर पुत्रकी माता हुई। परन्तु कापिलाको इससे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा—महारानीजी, मुझे तो किसीने कहा था कि सुदर्शन नपुंसक है! तो फिर उसके यह पुत्र कहाँसे हो गया? अभयमतीने कहा—सुदर्शन सरीखे रूप सौभाग्यशाली पुण्यवान् पुरुषको कही ऐसी लज्जाजनक पीड़ा हो सकती है? कभी नही। तुझसे किसी दुष्टने ऐसा कह दिया होगा। इसपर कापिलाने नपुंसक कहनेकी सारी गुप्त कथा रानीको कह सुनाई। रानीने कहा-तू मूर्खा है, इसलिए उसने उस समय तेरेसे ठगाई की होगी, यथार्थमें वह ऐसा नही है। इसपर कापिला बोली—अच्छा मै ब्राह्मणी मूर्खा ही सही, परन्तु अब आप तो बड़ी पण्डिता है, आपका जीवन भी मै जब सफल समझूँ जब आप उससे संभोग कर लेवें, अन्यथा व्यर्थ ही है। यह सुनकर रानीने कहा—"इसके साथ सुखका अनुभव करूँगी, तब ही जीऊँगी. अन्यथा प्राण छोड़ दूँगी" ऐसी प्रतिज्ञा करके उद्यानको गमन किया। वहाँ जलक्रीड़ा करनेके बाद वह महलोंमे आकर व्याकुलचित्त हो शय्यापर पड़ गई। यह देख उसकी पण्डिता धायने पूछा—बेटी; तू आज इतनी व्याकुल और चिन्तामे क्यो है? अभयमतीने हृदयका सच्चा हाल कह सुनाया। तब पंडिताने कहा—यह तूने बहुत बुरा विचार किया, क्योकि सुदर्शन सेठ अखंड एकपत्नीव्रतका धारण करनेवाला है। वह अपनी स्त्रीके सिवाय अन्य स्त्रियोंकी ओर ऑख उठाकर भी नही देखता। परस्त्रियोसे संभोग तो दूर रहे, वह उनकी वार्ता भी नहीं करता। इसके सिवाय राजमहलके सातो दरवाजोंपर पहरेदार भी निरन्तर बैठे रहते है, इसलिए किसी प्रकारसे उनको उल्लंघन करके उसका यहाँ लाना भी दुर्घट है। और ऐसा करना अनुचित भी है। सो तू इस व्यर्थ विचारको छोड़ दे। यह सुनकर कामवती अभयमतीने एक लम्बी आह खीचकर कहा—यदि उसका संगम न होगा तो क्या मेरा मरण भी न हो सकेगा? अर्थात् यदि उससे मिलाप न होगा, तो अब मै जीती नही रहूँगी। रानीका इस

प्रकार बड़ा भारी हठ देख पंडिताने पीछेसे कुछ सोच विचारकर दिलासा दी कि मै उपाय करती हूँ, ऐसा कहकर वह एक कुम्हारके घर गई। और उससे पुरुषके आकारके सात मिट्टीके पुतले बनवाये। इसके बाद प्रतिपदाकी रात्रिको उनमेसे एक पुतला कंधेपर रखकर रानीके महलको चली, परन्तु द्वारपर पहुँचते ही द्वारपालने उसे रोका। तब पूछा—क्या मुझे भी महारानीके महलमें जानेकी मनाई है? द्वारपालने कहा—हॉ! इतनी रात्रिको सभीके जानेकी मनाई है। इस समय कोई प्रवेश नही कर सकता। पंडिता यह सुनकर भी नही मानी और जवर्दस्ती भीतर जाने लगी। तब द्वारपालने एक धक्का देकर उसे वाहर करनी चाही, परन्तु धक्केके लगते ही वह पुतले सहित गिर पड़ी, और हाय! हाय! करके वोली—आज महारानीका उपवास है, वे इस मिट्टीके वने कामदेवकी पूजा करके रात्रिजागरण करेगी, और उसे तूने पटककर तुड़वा डाला। अव देखना, प्रातःकाल तेरी कैसी दुर्दशा कराती हूँ, तेरा सकुटुम्ब नाश कराऊँगी। ये वातें सुनकर वेचारा द्वारपाल भयभीत होकर उसके पॉवोंपर पड़ गया और गिड़गिड़ाकर वोला—आज तो क्षमा कर, आगे कभी तुझसे छेड़छाड़ नही करूँगा। यह सुन पंडिता लौटकर अपने घर गई, और दूसरे दिन दूसरा पुतला लेकर रात्रिको दूसरे दरवाजेसे आई, और वहॉ भी इसी प्रकार फैल करके वहॉके द्वारपालको वश कर लिया। इस प्रकार सातों द्वारपालोंको अपना चेला वनाकर पंडिता आठवें दिन अपना मतलब सिद्ध करनेके लिए चली।

उस दिन सुदर्शन सेठके अष्टमीका उपवास था। अतः वे सूर्यास्तके समय स्मशानभूमिमें जाकर प्रतिमायोग धारण किये हुए विराजमान थे। पंडिताने रात्रिको वहॉ जाकर उनसे कहा—सेठजी; आप धन्य हो, जो आपपर महारानी अभयमती आसक्त हुई है। आप मेरे साथ इसी समय चलें, और राजमहलमे उसके साथ दिव्य भोगोका अनुभवन करें। संसारमें भोगानुभवन ही सार है। यह यौवनकी वहार सदा नही रहती, यहॉ स्मशानमें बैठकर शरीर शोषण करने (सुखाने)से क्या लाभ होगा?" ऐसे नाना प्रकारके वचनोंसे उसने सेठजीका चित्त चलायमान करना चाहा, परन्तु जब वे धीर वीर मेरुके समान सर्वथा अचल रहे तब चांडालिनी पंडिताने उन्हें उठाकर कंधेपर रख लिया और

राजमहलके द्वारोंका उल्लंघन करके अभयमतीकी सेजपर लाकर रख दिये। द्वारपालोंने यह समझ कि आज भी यह किसी पुतलेको लिये जाती है, चूँ भी नही की।

अभयमतीने अपनी शय्यापर अपने अभीष्ट (जिसकी इच्छा थी उस) पुरुषको पाकर उसके साथ कामविकारोंकी स्त्रीसुलभ नाना चेष्टाये की, परन्तु परम इन्द्रियजित सुदर्शन, सुदर्शनमेरुके समान तनिक भी विचलित नहीं हुए। तब अभयमतीने खिन्न और विरक्त होकर पंडितासे कहा—इसको वहीं स्मशानमें ही ले जाकर रख आओ। पंडिताने झरोखोमेसे बाहर देखकर कहा कि सबेरा हो गया है, अब इसे वहाँ कैसे ले जाऊँ ? क्या करूँ ? बड़ी कठिनता उपस्थित है! अभयमतीने देखा कि अब कोई उपाय नहीं सूझता है, तब सुदर्शनको वहीं शय्याके निकट कायोत्सर्ग खड़ा करके उसने नोचकर अपने शरीरमे बहुतसे नखोंके चिन्ह कर लिये और ऊँचे स्वरसे पुकार २ कर रोना शुरू किया। हाय! हाय! मुझ शीलवतीका पवित्र शरीर इस पापीने विध्वंस कर दिया! हाय! अब मैं क्या करूँ? यह सुन किसीने जाकर राजासे कह दिया—महाराज; सुदर्शन सेठने महारानीके महलमें बड़ा अत्याचार किया है। राजा सुनते ही क्रोधसे उन्मत्त (मतवाला) हो गया। अतः विना सोचे समझे ही उसने सेवकोंको आज्ञा दे दी की उस दुष्टको स्मशानभूमिमें ले जाकर मार डालो। आज्ञानुसार सेवक लोग निरपराधी सेठकी चोटी पकड़कर घसीटते हुए स्मशानमें ले गये और वहाँ उन्हें तरवारोंसे मारने लगे। परन्तु ज्यों ही तलवारें उनके कंठपर पड़ीं कि वे फूलोंकी माला हो गईं! इसपर दूसरोंने और भी हथियार चलाये, परन्तु वे भी जिनधर्म और ब्रह्मचर्य्यव्रतके प्रभावसे पुष्पादिकरूप हो गये। किसी साधु पुरुषपर उपसर्ग होता हुआ जानकर एक यक्षने उसी समय वहाँ प्रगट होकर प्रहार करते हुए राजाके नौकरोंको जहाँका तहाँ कील दिया। राजा नौकरोंका यह हाल सुन और भी क्रुद्ध हुआ। उसने जाना कि सुदर्शनने ही अपने मंत्रके प्रभासे यह सब किया है। अतः और भी अनेक सेवकोंको मारनेके लिए भेजा, परन्तु उनकी भी वही दशा हुई अर्थात् वे भी कील दिये गये। तब राजा स्वयं बड़ी भारी सेना लेकर सुदर्शनके मारनेके लिए चला। उधर यक्षने भी अपनी मायासे चतुरंग सेना तैयार कर ली और दोनो ओरके योद्धा रणके मैदानमे व्यूह

प्रतिव्यूहके क्रमसे आ खड़े हुए। दोनों सेनाओंमें संसारको चमत्कृत करनेवाला घनघोर युद्ध होने लगा। बहुत समयके बाद जब दोनों ओरकी सेनाये घिर गई तब यक्ष और राजा दोनो हाथीपर चढ़कर सम्मुख हुए। देवने कहा–राजन्, अब तू मत मर। मै देव हूँ। मुझपर तू विजय नही पा सकेगा। अभी तक समझ जा, और सुदर्शनकी चिन्ताको छोड़ दे। तू उस धर्मात्माको दुःख नही दे सकेगा, इसलिए अपने स्थानपर जा और सुखसे राज्य करे। राजाने इसके उत्तरमे गर्जकर कहा–यदि तू देव है, तो क्या हुआ? देव क्या राजाओंके किंकर नही होते है? युद्ध कर, फिर दिखाता हूँ मै तुझे अपनी भुजाओका पराक्रम, इस तरह दोनोका वचनयुद्ध हो चुकनेपर शस्त्रयुद्ध प्रारंभ हुआ। राजाने बड़े वेगसे बाणोकी बौछार करना शुरू की और यक्षके हाथीको खिन्न करके शीघ्र ही गिरा दिया। तब यक्ष दूसरे हाथीपर चढ़कर उसके सम्मुख आया, और उसके प्रतापको देखकर अत्यन्त आनन्दित होता हुआ पुनः युद्ध करने लगा। अबकी बार राजाका हाथी धराशायी हुआ, और तब वह भी दूसरे हाथीपर चढ़कर फिर लड़ने लगा। पश्चात् यक्षने राजाकी ध्वजा तथा छत्रको छेदकर हाथीको प्राणरहित कर दिया। तब वह रथपर आरूढ़ होकर सम्मुख हुआ और यह देख यक्ष भी अपने हाथीको छोड़कर एक दूसरे रथपर चढ़ दौड़ा। विद्यामयी बाणोसे दोनोमे तीनो लोकोको स्तंभित करनेवाला घनघोर युद्ध हुआ। आखिर बहुत समयके पीछे राजाने यक्षके रथको खंडित कर दिया और उसे जमीनमे डालकर मार डाला। परन्तु देखता है कि मरकर यक्ष एकके दो हो गये। उन्हे भी मारा तो चार हो गये। इस प्रकार दूने दूने होते होते सारी रणभूमि भर गई। तब राजा इस मायासे डरकर भागनेको सोचने लगा, परन्तु भाग नही सका। यक्ष पीछे लग गया। उसने कहा–तू भागके जावेगा कहाँ? आज यदि तू सुदर्शन सेठके शरणमे जावेगा, तो सजीव रह सकता है, नही तो तुझे अभी परलोकको पहुँचाता हूँ। तब राजा दूसरा उपाय न देखकर सेठजीकी शरणमे आया और बोला–सेठजी, मेरी रक्षा करो! रक्षा करो! तब सेठने हाथ उठाकर यक्षको रोका और पूछा आप कौन है? जो हमारे महाराजको कष्ट दे रहे हैं। यक्षने सेठजीको नमस्कार किया और अपना स्वरूप और आनेका कारण प्रगट किया। पश्चात् राजाको

अभयमतीकी कुटिलताका वृत्तान्त कहकर उसकी सम्पूर्ण सेनाको जीवा दी और अन्तमें सेठजीको पुनः नमस्कार करके तथा उनके ऊपर पुष्पवृष्ट्यादि करके वह स्वर्गलोकको चला गया।

उधर जब अभयमतीने जाना कि मेरा भंडाफोड़ हो गया, तब वह वृक्षसे एक कपड़ा बाँधकर, उसमें लटककर अर्थात् फाँसी लगाकर मर गई। और पाटलीपुत्र (पटना) नगरमें जाकर व्यन्तरी हुई। इधर पंडिताने जब देखा कि रानीकी पूरी दुर्दशा हो गई और अब मेरी बारी आई है। तब वह वहाँसे भागकर उसी पाटलीपुत्र नगरमें देवदत्ता नामकी वेश्याके घर जा रही। और उससे अपनी पूर्वकी सब कथा कह सुनाई। देवदत्ताने उसे सुनकर कपिला और अभयमतीकी खूब हँसी की और स्वयं प्रतिज्ञा की कि यदि मैं सुदर्शन सेठको देख पाऊँ और उसी समय उसके तपको नष्ट न कर डालूँ, तो मेरा नाम देवदत्ता नहीं।

यहाँ राजाने सुदर्शन सेठसे नम्र होकर कहा कि अज्ञानतासे मैंने जो आपका अपराध किया है, उसे क्षमा कीजिए और मैं अपना आधा राज्य आपको समर्पण करता हूँ उसे ग्रहण कीजिए। इसके उत्तरमें सेठने कोमल वचनोंसे कहा-इसमें आपका कोई अपराध नहीं है। मेरे पूर्वकृत कर्मोंका फल मुझे मिला है। और आप जो कृपा करके आधा राज्य मुझे देते हैं, वह भी मैं ग्रहण नहीं कर सकता। क्योंकि जिस समय मुझे आपकी महारानीने स्मशानसे उठाकर मँगवाया था, उस समय मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि इस उपसर्गके पश्चात् जीवित रहूँगा, तो पाणिपात्र (हाथके बर्त्तन) में ही भोजन करूँगा, अर्थात् दिगम्बर मुनि हो जाऊँगा। पश्चात् महाराजने बहुत आग्रह किया, परन्तु दृढ़व्रती सुदर्शनने संसारमें रहना स्वीकार न किया।

उन्होंने जिनमन्दिरमें जाकर भक्तिभावसहित भगवत्की पूजा की और पश्चात् विमलवाहन नामके यतिकी वन्दना करके उनसे पूछा--भगवन्, मनोरमाके ऊपर मेरा अत्यन्त मोह क्यों है? कृपाकरके इसका कारण बताइए। मुनि कहने लगे:—

विंध्यदेशके काशीकौशलपुरमें भूपाल नामका राजा और वसुन्धरा नामकी उसकी रानी थी। दोनोंके प्रेमके फलरूप एक लोकपाल नामका पुत्र था। एक दिन राजाने सिंहद्वारपर बहुतसी प्रजाको रोती चिल्लाती देखकर पूछा—ये मेरी प्रजा क्यों दुःखी हो रही है ? अनन्तबुद्धि मंत्रीने कहा—महाराज, यहाँसे दक्षिणदिशाकी ओर एक विंध्यगिरि नामका पर्वत है। उसमें एक व्याघ्र नामका भील रहता है, वह ही प्रजाको आकर सताया करता है, इस कारण प्रजा पुकार करती है। यह सुनकर राजाने एक बड़ी भारी सैना सहित अनन्त नामके सेनापतिको पकड़नेके लिए भेजा। परन्तु प्रचंड भीलने अपने बाहुबलसे उसे हरा दिया। तब राजा स्वयं उसपर चढ़ाई करनेको तैयार हुआ। यह देख लोकपाल पुत्रने उन्हें रोका, और यह कहकर कि समर्थ पुत्रके मौजूद होते हुए पिताको इस कार्यके लिए जानेकी आवश्यकता नहीं है, वह भीलपर चढ़ाई करके गया। और शीघ्र ही उसे यमपुरको भेजकर सुचित्त हो गया।

भील मरकर वत्सदेशके किसी एक ग्राममें कुत्ता हुआ और उसकी कुरंगी स्त्री कुत्ती हुई। वे दोनों वहाँसे कोशाम्बी नगरीमें जाकर एक जिनमन्दिरका आश्रय पाकर रहने लगे। कुत्ता अन्तमें पर्याय पूर्ण करके चम्पापुरीमें लोध नामकी जातिविशेषमें सिंहप्रिय और सिंहनीके पुत्र उत्पन्न हुआ। बाल्यावस्थामें ही मातापिता उसे छोड़कर मर गये। पश्चात् कितनेक दिनमें उस पर्यायको भी छोड़कर भील चम्पापुरीमें वृषभदास सेठके सुभग नामका ग्वाला हुआ। जो कि चारण मुनिके द्वारा णमोकार मंत्र पाकर सम्पूर्ण कार्योंमें उक्त मंत्रका उच्चारण किया करता था। सो उसी श्रद्धावान् ग्वालाने मरते समय निदान करके तुम्हारी पर्याय पाई है, अर्थात् तुम पूर्व जन्ममें सुभग ग्वाला थे।

उधर वह कुरंगी भीलनी शरीर छोड़कर वाराणसीमें भैंस हुई। और वहाँसे मरकर चंपापुरीमें सांवल नामक धोबीकी यशोमती स्त्रीके वत्सिनी नामकी कन्या हुई। सो एक आर्यिकाके संसर्गमें पुण्योपार्जनकर आयुके अन्तमें मरण करके तेरी मनोरमा प्रिया हुई।

मुनिराजके मुखसे अपने भवान्तर और मनोरमाके स्नेहका कारण सुनकर सुदर्शन सेठ संतोषित हुआ। पश्चात् मनोरमादिक सम्पूर्ण कुटुम्बको छोड़कर और राजादिकोंसे क्षमा कराकर वह वहाँ ही दीक्षित हो गया। यह देख

राजाको बड़ा वैराग्य उत्पन्न हुआ, इसलिए वह भी अपने पुत्रको राज्यभार सौंपकर और सुदर्शन सेठके सुकान्त पुत्रको राज्यश्रेष्ठीका पद देकर सुदर्शनके साथ ही दीक्षित हो गया। पश्चात् उनके अन्तःपुरकी बहुतसी रानियोंने भी आर्यिकाके व्रत धारण किये।

सम्पूर्ण मुनियोंने उसी नगरमें पारणा किया। पश्चात् गुरुवर्यके साथ नाना स्थानोंमें विहार करते हुए सुदर्शन मुनिने सम्पूर्ण आगमोंका ज्ञान लाभ कर लिया और पश्चात् गुरुकी आज्ञापूर्वक एकाकी विहार करना प्रारंभ किया। नाना तीर्थस्थानोंकी वन्दना करके एक बार वे चर्याके लिए पाटलीपुत्र नगरमें गये सो वहाँ अचानक पापिनी पंडिताने देखकर उन्हें पहिचान लिया और देवदत्तासे आकर कहा कि जिसकी कथा मैंने तुमसे कही थी, वह सुदर्शन मुनि ये आ रहा है। देवदत्ताने अपनी पूर्व प्रतिज्ञाको स्मरण करके धोखा देकर मुनिका भोजन करनेके लिए आह्वान किया। निष्कपट मुनि उस पापिनीके जालको नहीं समझ सके, और आहारके लिए ठहर गये। देवदत्ताने उन्हें ले जाकर हठात शय्यापर पकड़कर बैठा लिया और वेश्यासुलभ सैकड़ों चाटुक वचन कहना प्रारंभ किया—प्यारे, तुम अभी तक परम यौवन अवस्थाको धारण किये हुए हो। अभी यह तपस्या तुम्हारे योग्य नहीं है। और तुम्हारा यह सुकुमार शरीर इस कठोर कर्मके योग्य भी नहीं है। मेरे पास अटूट धन है। मेरे साथ कुछ काल रमण करके उन भोगों और मेरी इच्छाको पूर्ण करो।"

वेश्याका यह प्रलाप सुनकर परम निश्चल और धीर वीर सुदर्शन मुनि बोले;—हे मुग्धे (मूर्खिणी), यह अपवित्र शरीर दुःखोंका घर, वायु, पित्त, कफ इन त्रिदोषोंसे पीड़ित, कृमिकुलसे परिपूर्ण और विनश्वर है। यह सांसारिक भोगोपभोगोंके अनुभवन करनेके लिए नहीं है, किन्तु परलोकसिद्धिकी सहायताके लिए है। अतएव इसे तपस्यामें ही लगाना चाहिए। ये सम्पूर्ण भोगोपभोग अविचारितरम्य और दुःखान्त है। इनसे प्राणीको कभी सन्तोषकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। मोक्षके अतिरिक्त अन्यत्र सुख नहीं है, और वह तपस्याके विना नहीं प्राप्त हो सकती। सो हे मूर्खे, अब तू इस दुष्कृत्यसे अपनेको बचा और कुछ अपना कल्याण कर।

यह सुन देवदत्ताने यह कहकर कि "यह सब पीछे करना और पीछे ही उपदेश देना। अभी वह समय नहीं है।" सुदर्शन मुनिको अपनी सुकोमल शय्यापर लिटा लिया। परन्तु मुनिने उस समय सन्यास धारण कर लिया और प्रतिज्ञा कर ली कि यदि इस उपसर्गका निवारण हो जावेगा, तो आहारादि ग्रहण करूँगा, अन्यथा सर्वथा त्याग है। और नगरीमें प्रवेश करनेकी भी प्रतिज्ञा ले ली। परन्तु वेश्याने उनका पिंड न छोड़ा, उसने तीन दिनतक कामविकारोंकी नाना चेष्टाये की। परन्तु जगज्जयी कामको जीतनेवाले सुदर्शन मुनि मेरुके समान सर्वथा निश्चल रहे। आखिर वेश्या लाचार और निरुपाय होकर रात्रिको उन्हें स्मशान भूमिमे ले जाकर कायोत्सर्ग पूर्वक स्थापन कर आई और अपने घर चली आई।

इतनेमे वह व्यन्तरी जो पूर्वजन्ममे अभयमती थी, वहाँसे कहीं जा रही थी। सो मुनिके ऊपर विमान अटकनेसे नीचे उतरी और सुदर्शनको पहिचानकर बोली—रे सुदर्शन, तेरे प्रेममे फँसकर और तज्जनित आर्तध्यानसे मरकर मैंने यह व्यन्तर पर्याय पाई है। उस समय तो तू किसी देवकी सहायतासे बच गया था, परन्तु बतला, इस समय यहाँ तेरी रक्षा करनेवाला कौन है? यह कहकर नाना प्रकारके उपसर्ग करने लगी। तब मुनिराजके पुण्यप्रभावसे उसी यक्षने आकर रक्षा की। व्यन्तरीके साथ यक्षका सात दिन तक घोर युद्ध हुआ, और आखिर व्यन्तरी हारकर पलायमान हो गई।

यहाँ सुदर्शन मुनि कठिन तपस्याके फलसे केवलज्ञान प्राप्त करके गन्धकुटीरूप समवसरणादिकी विभूतिसे युक्त हुए। उनके केवलज्ञानके अतिशयको देखकर व्यन्तरी सम्यग्दृष्टि हो गई। और पंडिता तथा देवदत्ताने दीक्षा ग्रहण कर ली। उधर मनोरमा केवलज्ञान उत्पन्न हुआ सुनकर वन्दनाको आई और पुत्रादिकोंसे मोह छोड़कर वह भी वन्दनापूर्वक आर्यिका हो गई। उसके साथ और भी अनेक पुरुष और स्त्रियाँ दीक्षित हुई। पश्चात् सुदर्शन मुनि भव्यजनोंके पुण्यकी प्रेरणासे कुछ काल विहार करके पौषशुक्ला पंचमीको मोक्ष पधारे।

धात्रीवाहनादि राजा जो मुनि हो गये थे, उनमेसे अनेक सौधर्म स्वर्गको गये, अनेक ईशानको, इस प्रकार

सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त गये । आर्यिकायें भी सौधर्म, अच्युतादि कल्पस्वर्गोमे देव और कोई कोई देवी अपनी २ तपस्या और परिणामोंकी उज्ज्वलताके अनुसार हुई ।

सारांश—इस प्रकार एक ग्वाला भी णमोकार मंत्रके प्रभावसे सुदर्शन मुनि होकर अविनाशी सुखको प्राप्त हुआ । अन्य जन इसका पाठ करें, तो क्यों न सम्पूर्ण इच्छित सुखोंको पावें ? अवश्य ही पावें ।

इति श्रीकेशवानन्दिदिव्यमुनीशिष्यश्रीरामचन्द्रमुमुक्षुविरचितपुण्यास्रवकथाकोषकी सरलभाषाटीकामे पचनमस्कारमन्त्रफलवर्णन नामका दूसरा अष्टक समाप्त हुआ ।

अथ श्रवणफलाष्टक ।

(१) वालिमुनिकी कथा ।

इसी आर्यखंडके किष्किन्धापुर नामके नगरमें विद्याधरोंके स्वामी वानरवंशी महाराज वालिदेव राज्य करते थे । उन्होने एक दिन किसी महामुनिसे धर्मश्रवण करनेके पश्चात् यह प्रतिज्ञा की कि जिन भगवान्, जिन मुनि, और जैनोपासकों (श्रावकों)के सिवाय और किसीको नमस्कार नहीं करूँगा ।

यहाँ लंकापुरीमे जब रावणने सुना कि वालिदेवने इस प्रकारकी प्रतिज्ञा ली है । तब ऐसा समझा कि वालिदेवने मुझे नमस्कार करनेकी अनिच्छासे ऐसा किया है, और कोई कारण नहीं है । इसलिए इसने एक अच्छे विद्वान् शास्त्रज्ञ दूतको किष्किधापुर भेजा । उसने वहाँ जाकर वालिदेवको सूचना दी कि हे देव, जगद्विजयी रावणने जो आज्ञा की है, उसे सुनिए,—

"आपके और हमारे बीचमें परम्परासे स्नेह चला आता है, इसलिए आपको भी उसी सम्बन्धका पालन करना चाहिए। और हमने आपके पिताको सूर्यके शत्रु अत्यन्त प्रचंड राजा यमको जीतकर उसका राज्य आपको दिया है। उस उपकारका स्मरण करके आपको चाहिए कि अपनी बहिन श्रीमाला हमें दे दें और नमस्कार करके सुखसे राज्य करें।" यह सुनकर वालिदेवने कहा—"रावणकी आज्ञायें सम्पूर्ण उचित हैं, परन्तु वे असंयत अर्थात् अव्रती हैं, इसलिए उन्हें मैं नमस्कार नहीं कर सकता। नमस्कार करनेके सिवाय और सब प्रकारसे मैं आज्ञाका पालन कर सकता हूँ।" दूतने कहा—"नहीं, आपको नमस्कार करना ही पड़ेगा, नहीं तो आपकी हानि होगी।" तब वालिदेवने यह कहकर दूतको विदा कर दिया कि "अच्छा, जो होनेवाला होगा सो होगा, तुम जाओ।"

दूतने उक्त बात रावणसे जाकर निवेदन की, तब उसने अत्यन्त कुपित होकर अपनी सारी सेना समेत आकर किष्किंधापुर घेर लिया। वालिदेवको मंत्रियोंने बहुत समझाया कि रावणसे युद्ध करनेमें लाभ नहीं है, परन्तु उन्होंने एक न मानी और अपनी सेनासहित रावणका सामना करनेके लिए कूँच कर दिया। जब दोनों ओरकी सेनायें लड़नेको तैयार हुईं, तब दोनों ओरके मंत्रियोंने विचार किया कि इन दोनोंमें एक तो प्रतिवासुदेव है, और दूसरा चरमशरीरी, सो मृत्यु दोनोंकी असंभव है, व्यर्थ ही सेनाका नाश होगा। इसलिए यदि दोनों ही आपसमें युद्ध करके अपनी अपनी हविस निकाल लें, तो अच्छा हो। उक्त विचार दोनों मंत्रियोंने अपने स्वामियोंसे निवेदन किया। यह बात दोनों राजाओंने मान ली और सेनाकी लड़ाई बन्द कर खुद लड़ाईके लिए मैदानमें आये। दोनोंमें घोर युद्ध हुआ और आखिर कुछ समयमें वालिदेवने रावणको बाँध लिया। परन्तु उसी समय संसारकी अनित्यताके विचारने वालिदेवको वैरागी बना दिया। उन्होंने रावणको छोड़ दिया, और क्षमा कराई। फिर अपने भाई सुग्रीवको राज्य दे, उसे रावणके आधीन करके परम वैरागी वालिदेवने दिगम्बर मुनिकी दीक्षा ले ली। वे कुछ ही कालमें सम्पूर्ण आगमोंके पाठी और एकाकी होकर कैलासपर्वतपर प्रतिमायोग धारण करके काल यापन करने लगे।

एक वार रावण रत्नावली नामकी कन्याके विवाहके लिए विमानमें बैठा हुआ आकाशमार्गमे जा रहा था। जब उसका विमान कैलासपर्वतपर जहाँ कि वालि मुनि तपस्या करते थे, पहुँचा, तो वह अटक गया। उसका सबब जाननेके लिए रावणने नीचे उतरकर देखा, तो बाल मुनिको ध्यान लगाये हुए देखे। उन्हें देखकर रावणको यह निश्चय हो गया कि इन्होने क्रोध करके मेरे विमानको अटकाया है। ऐसा निश्चय है कि जिन मन्दिर, जिन मुनि तथा अन्य किन्हीं पुण्यात्मा पुरुषोके ऊपरसे जाता हुआ विमान अटक जाता है, परन्तु रावणने पूर्व वैर होनेसे ऐसा ही समझ लिया। अतः क्रोधित होकर अपने आप बोला-"मै पर्वत सहित इसे (वालि मुनिको) समुद्रमे पटक दूं" ऐसा विचार करके उसने पर्वतके नीचे प्रवेश किया और अपनी शक्ति तथा विद्याके बलसे पर्वतको उखाड़ा। यह देख वालि मुनिने यह विचारकर कि "रावणकी करतूतिसे ये सुन्दर जिनालय नष्ट हो जावेगे, तथा इस पर्वतके निवासी लाखो जीव भी मर जावेगे।" अपनी कायबलकी ऋद्धिसे बॉयें पॉवका अँगूठा नीचेको दबाया। रावण उसके भारसे दबकर निकलनेमे असमर्थ हो, चिल्लाने लगा। उसे सुन, विमानमें बैठी हुई मन्दोदरी आदि रानियोने वालिदेवके निकट आ, अपने पतिकी भिक्षा मॉगी। मुनिने दयाकर अँगूठा ढीला कर दिया। तब रावण निकलकर बाहर आया। मुनिराजके तपके प्रभावसे देवोंके आसन कम्पायमान हुए, अतः उन्होने वहाँ आकर पंचाश्चर्य करके नमस्कार किया। फिर दशाननका "रोतीति रावणः" अर्थात् रोया इसलिए 'रावण' नाम रखकर देव अपने अपने स्थानोको चले गये। और रावण भी अत्यन्त निःशल्य हो, वालिदेवकी वन्दना कर, अपने इच्छित स्थानको चला गया। तथा मुनिराज भी केवली होकर कुछ काल विहार करके मोक्षको पधारे।

एक वार श्रीसकलभूषणकेवलीसे विभीषणने पूछा कि हे भगवान्, इस प्रकार प्रभावशाली वालिदेव किस पुण्यके फलसे उत्पन्न हुए? कृपाकरके मुझे समझाइए। तब केवली भगवान् कहने लगे;—

इसी आर्यखंडमे एक वृन्दारक नामका वन है। उसमे एक मुनि आगमका पाठ किया करते थे और एक हरिण प्रतिदिन उसे सुना करता था। सो वह हरिण आयुके अन्तमे मरकर उस पुण्यके फलसे ऐरावतक्षेत्रके स्वच्छपुर

नगरमें विराहित नामक वणिककी शीलवती स्त्रीके मेघरन नामका पुत्र हुआ। फिर वहांसे आयु पूर्ण कर अणुव्रत धारण करनेके फलसे ईशानस्वर्गमें देव हुआ। देवायु पूर्ण करके पूर्वविदेहके कांकिग्र ग्राममें कान्तशोक वणिककी रत्नाकिनी स्त्रीके सुप्रभ नामका पुत्र हुआ। वह दीक्षित होकर और बहुत काल तपस्या करके सर्वार्थसिद्धि स्वर्गमें गया, और फिर वहांसे चयकर बड़े प्रभाववाला बालिदेव हुआ।

सारांश—परमागमके शब्द श्रवणमात्रसे एक दरिद्र पशु भी ऐसा नरमशरीरी पुरुष हो गया, अन्य मनुष्य यदि परमागमका अध्ययन करें, तो क्या न पावें? सर्व सिद्धि पा सकते हैं।

(२) भामण्डलकी कथा।

इसी आर्यखंडमें मिथिला नामकी एक नगरी है। वहांके राजा जनक और महारानी विदेहीके युगल सन्तान उत्पन्न हुई, एक पुत्र और दूसरी पुत्री। जिस समय यह युगल उत्पन्न हुआ, उसी समय एक सुप्रभ नामका राक्षस वहांसे निकला। सो वह अपने पूर्वभवका स्मरण करके पुत्रीको छोड़कर पुत्रको मारनेके लिए वहांसे उठा ले गया। पीछे जब उसे मारनेको तैयार हुआ, मगर उस बालकका सुन्दर प्रतापशाली मुख देख, उसे दया आ गई, और मारनेके बजाय अपने कुण्डल उसके कानोंमें पहिना दिये, व लघुपर्ण नामकी विद्याको उसे सौंप, कह दिया कि जहांपर इसका भलीभांति पालन पोषण हो, वहां ही इसे रख आ।

लघुपर्ण विद्या उस दिन अंधेरी रात्रिमें उस पुत्रको लेकर आकाशमार्गसे जा रही थी, कि रास्तेमें जाते हुए विजयार्द्धकी दक्षिणश्रेणिके रथनूपुरनरेश इन्दुगतिकी कुण्डलके उजासमें जगमगाते हुए लड़केके शरीरपर निगाह पड़ी। तब लालायित होकर राजाने पुत्रको लेनेके लिए अपने हाथ फैलाये। लघुपर्णा भी योग्य समझ उसके हाथमें पुत्र

डालकर चल दी। राजा अपने घर आया और रानी पुष्पवतीको यह कहकर कि यह तेरा पुत्र है, उसे सोंप दिया और नगरमें सर्वत्र घोषणा करा दी कि महारानी पुष्पवतीके पुत्र उत्पन्न हुआ है। वहाँ वह वालक धीरे२ पलकर बड़ा हो, सारी विद्याओंमें होशियार वन गया और प्रभामण्डल नामसे संसारमें प्रसिद्ध हुआ।

उधर राजा जनकको पुत्रहरणका वहुत शोक हुआ। बुद्धिमान् मंत्रियों और शहरके लोगोंके समझानेपर उन्होंने वड़ी कठिनतासे उस शोकको भुलाया और पुत्रीका नाम सीता रखकर सुखसे रहने लगे। रानी विदेही भी अपने पतिकी तरह शोकको भूल, पतिकी सेवा करती हुई सुखसे काल विताने लगी।

एक दिन राजा जनकने स्वदेशमें उपद्रव करनेवाले 'तरंगम' नामके भीलोंके सरदारपर चढ़ाई की, और उसी समय अपने मित्र अयोध्यापुरीके राजा दशरथको सहायताके लिए पत्र लिखा। राजा दशरथने मित्रका मतलव जान, उसी समय उसकी सहायताके लिए कूच करनेको रणभेरी वजवाई। उनका शब्द सुनकर दशरथके पुत्र रामचन्द्र और लक्ष्मणने कारण पूछा और पिताको रोककर खुद दोनों भाई जनककी सहायताके लिए गये। परन्तु मिथिला [जनकपुरी] में जनकसे उनका मिलाप नहीं हुआ, क्योंकि इसके पहले ही जनकने भीलसे लड़ाई करना शुरू कर दिया था। लड़ाई खूव जोरसे हो रही थी। जनकके भाई कनकको भीलराजने वाँध लिया था। उस समय रामलक्ष्मणने युद्धक्षेत्रमें पहुँच, खलवली मचा दी। थोड़े ही समयमें उन्होंने भीलको वाँध लिया और राजा जनकका उसे सेवक वनाया। कनकको तथा और अनेक क्षत्रियोंको जिन्हें भीलने कैद कर लिया था, छोड़ दिये। सव जगह जयजयकार होने लगा।

रामचन्द्रका प्रताप देखकर जनकको वहुत मोह हुआ, अतः "मैं अपनी सीता तुम्हें ही दूँगा।" ऐसा प्रीतिपूर्वक कहकर श्रीरामलक्ष्मणको वड़े सन्मानके साथ विदा किया।

एक समय सीताके रूपकी प्रशंसा सुनकर नारदजी उसके देखनेके लिए आये। परन्तु सीताकी विलासिनी सखियोंने विना पहिचाने, वदशकल होनेके कारण गालियाँ देकर उनका अपमान किया। महामानी नारदजी इस कारण

अत्यन्त कुपित होकर वहाँसे चले गये। उन्होंने कैलास जाकर एक कपड़ेपर सीताका सर्वांग मनोहर चित्र खींचा, और रथनूपुर जाकर बागमें भामंडलके क्रीड़ाभवनके पास ही उस चित्रको रख आप वृक्षकी शाखाओंके पीछे छुपकर बैठ रहे। इतनेमें प्रभामंडल वहाँ आया और उस अपूर्व तस्वीरके रूपको देखकर मूर्छित हो गया। भामंडलकी यह दशा इन्दुगतिने आकर देखी। उसके साम्हने चित्रपट पड़ा देखकर पूछा–इस चित्रपटको यहाँ कौन लाया? तब नारदने उसी समय प्रकट होकर "तुम्हारा कल्याण हो!" यह आशीर्वाद देते हुए कहा–तस्वीर लानेवाला मैं हूँ। यह कन्या युवराजके ही योग्य है इसलिए मैं लाया हूँ। बाद उसका सब हाल कहकर नारदजी वहाँसे चले गये।

अब इन्दुगति इस चिन्तामें पड़े कि वह कन्या कैसे प्राप्त हो? मंत्रियोंसे सलाह कर राजाने अन्तमें यह निश्चय किया कि किसी तरह राजा जनकको यहाँ लाना चाहिए। इस कामको करनेके लिए एक चपलगति विद्याधरको राजाने आज्ञा दी। आज्ञा पा, वह घोड़ेका रूप धारण कर, मिथिलानगरीमें आया। वहाँ जनकने उसे देखकर बाँध लिया। इतनेमें एक भीलने आकर महाराजसे निवेदन किया कि अमुक स्थानमें एक हाथी है। राजा उसी समय उसे पकड़नेके लिए तैयार हुए परन्तु हाथीके भयसे उक्त घोड़ेपर सवार होकर चले। घोड़ा थोड़ी ही दूर चलकर आकाशमार्गमें उन्हें ले उड़ा और जल्दी ही सिद्धकूटपर ले आया। वहाँ जनकको ठहराकर इन्दुगतिको खबर दी कि मैं जनकको ले आया हूँ। तब विद्याधरोंका राजा इन्दुगति खुद जाकर सत्कारपूर्वक उन्हें अपने यहाँ ले आया, और अतिथि सत्कार किया। पश्चात् भामंडलके साथ सीताका व्याह करनेको कहा। जनकने कहा–"मैं सीता रामचन्द्रको देना स्वीकार कर चुका हूँ अतः खेद है कि आपकी इच्छा पूरी नहीं कर सकता। यह सुनकर इन्दुगतिने कहा–"छिः! ऐसी सुन्दर कन्या क्या एक सामान्य भूमिगोचरीको देने योग्य थी? जनकने कहा–"और क्या विद्याधरोंके योग्य थी जो आकाशमें पक्षियोंकी तरह उड़ा करते हैं? देखो! तीर्थंकरादिक लोकोत्तर पुरुष भूमिगोचरी ही हुए हैं। अतः मैंने जो कार्य किया है, वह अनुचित नहीं है" यह सुन, विद्याधरोंके स्वामीने कहा;—"खैर! परन्तु कन्या ही बलवान् और पराक्रमीको ही देना चाहिए, इसलिए ये दो 'वज्रावर्त' और

‘सागरावर्त’ धनुप देता हूँ, इन्हें जो राजकुमार चढ़ा देवे; उसे ही सीता देना, अन्यको नहीं।” यह बात जनकने स्वीकार की। पश्चात् इन्दुगतिकी आज्ञानुसार एक विद्याधर जनकको जहाँका तहाँ पहुँचा आया, और ‘महत्तर’ तथा ‘चन्द्रवर्धन’ विद्याधर उन दोनो धनुषोंको मिथिलापुरीमें ले आये।

रानी विदेही आदि राजपरिवारको यह हाल सुनकर वहुत चिन्ता हुई, परन्तु उन्हें रामचन्द्रके बलका बड़ा भरोसा था, इसलिए कुछ धैर्य हुआ। स्वयंवरमंडप रचा गया, और दोनों धनुप रक्खे गये। उनके तेजको देखकर सम्पूर्ण क्षत्री राजा काँप उठे। परन्तु तत्काल ही रामचन्द्रने वज्रावर्त और लक्ष्मणने सागरावर्त धनुप चढ़ाकर उनका भय दूर कर दिया। जयजयकार होने लगा। चन्द्रवर्धन विद्याधरको दोनों कुमारोंका वल देखकर बड़ा हर्ष हुआ, अतः वह भी अपनी आठ पुत्री लक्ष्मणको देना स्वीकार करके वहाँसे चला गया। और अन्य सब विद्याधर राजाओंने भी प्रसन्न चित्त हो ऐसा ही किया। श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण अयोध्या गये।

इधर जब भामंडलने सुना कि दोनो धनुप चढ़ाये गये और राम तथा सीताका विवाह भी हो गया। तब वहुत घबराया और नाराज हो, एक हजार अक्षौहिणी सेनाके साथ वह मिथिला नगरीकी ओर चला। परन्तु मार्गमें विदग्ध नगरको देखकर उसे जातिस्मरण हो आया। इसलिए ज्योंका त्यों पीछा लौट गया। और इन्दुगतिसे जाकर कहा कि सीता मेरी बहिन है। अभी तक बड़ी भूल हो रही थी।

“अहो! यह संसार कैसा निन्द्य और अविचारी है। जिसमें भाई भी बहिनपर आसक्त होता है और उसके लिए सैकड़ों प्रयत्न करता है। छि! ऐसा संसार बुद्धिमानोंके अनुरागका कारण नहीं है।” इस प्रकार विचार कर इन्दुगति भामंडलको अपना सारे राज्यका भार सोंप ‘सर्वभूतशरण्य’ मुनिराजके निकट दीक्षित हो गया। मुनिव्रत अंगीकार कर लिये।

सर्वभूतशरण्य गुरु बड़े भारी मुनियोंके संघके साथ विहार करते हुए एक समय अयोध्यानगरीके जंगलमें आये। सो मुनिका आगमन सुनकर राजा दशरथ अपने भाइयों सहित वन्दना करनेके लिए आये। वहाँ इन्दुगतिको देखकर

गुरुवर्यसे पूछा-भगवन्, ये किस कारण संसारसे विरक्त हुए? तब मुनिराजने प्रभामंडल और सीताका सब हाल बयान किया।

इसी समय भामंडलने भी आकर मुनिराजके वचन सुने, और दशरथ, राम व लक्ष्मणको नमस्कार करके वहीपर बैठी हुई सीताको प्रणाम किया। फिर मुनिराजसे अपनेपर इन्दुगति और पुष्पवतीके स्नेहका तथा सीताका चित्रपट देखकर आसक्त होनेका कारण पूछा। मुनिराज कहने लगे;—

दारुण नामक ग्राममे विमुचि नामके ब्राह्मण और मनस्विनी ब्राह्मणीके अतिभूत नामका एक पुत्र था। उसी नगरमे एक रंडाज्वाला नामकी स्त्री रहती थी, सो युवा होनेपर उसकी पुत्री सरसाके साथ उसका विवाह हुआ। एक वार अतिभूति अपने पिताके साथ भिक्षाके लिए दूसरे गॉवको गया था कि सरसा एक कय नामके जारपर आसक्त होकर घरसे निकल गई। मार्गमें दोनोने एक नग्न मुनिराजको देखकर गालियॉ दी, इसलिए उस पापके फलसे दोनो आयुके अन्तमें मरकर तिर्यंच गतिमे उत्पन्न हुए। पश्चात् वहुत काल भ्रमण करके किसी शुभकर्मके फलसे सरसा तो चन्द्रपुरके राजा चन्द्रध्वजकी रानी मनस्विनीके चित्रोत्सवा नामकी पुत्री हुई और कय उसी नगरके प्रधान धूमकेशिकी स्त्री स्वहाके कपिल पुत्र हुआ। दोनो युवा होनेपर एक दूसरेपर पुनः आसक्त हुए और निदान चित्रोत्सवा तथा कपिल दोनों घरसे निकल भागे और विदग्धपुरमें आकर रहने लगे।

उधर अतिभूति ब्राह्मण जब भिक्षा मॉगकर लौटा, तो घरमें सरसाको न देखकर बहुत दुःखी हुआ "जो मेरी स्त्रीकी गति हुई है, सो ही मेरी होगी" ऐसा विचार करके घरसे निकल पड़ा, और अन्तमें आर्तध्यानसे मरकर उसने वहुत काल तक तिर्यंच गतिमे भ्रमण किया। पश्चात् एक वार ताराक्ष सरोवरमें हंस हुआ। सो सरोवरके किनारे तपस्या करते हुए एक मुनिराजके पवित्र वचन सुनकर स्वर्गमे किन्नर देव हुआ, और फिर वहॉसे विदग्धपुरके राजा प्रकाशसिंह और राजा प्रियमतीके कुंडलमंडित पुत्र हुआ और युवा होनेपर राज्यसिहासनपर बैठा।

कपिलजी जो चित्रोत्सवाको उड़ा लाये थे और विदग्धपुरमें रहने लगे थे, थोड़े ही दिनोंमें ऐसे निर्धन हो गये कि पेट भरनेके लिए लकड़ियाँ बेचनी पड़ीं। एक दिन आप तो लकड़ी लेनेको जंगलमें गये थे, राजा कुंडलमंडित आपके घरके पाससे निकला, और चित्रोत्सवाको देखकर उसपर आसक्त हो गया। अतः किसी प्रकार प्रसन्न करके उसे अपने घर ले आया। उधर जब कपिलजी आये और अपनी प्रियाको घरमें नहीं देखा, तब विलाप करने लगे। किसीने कह दिया कि साध्वी होकर चली गई है, इसलिए उसकी खोजमें कुछ दूर तक दौड़ धूप की। परन्तु जब मालूम हुआ कि राजा ले गया है, तब राज्यद्वारपर जाकर शोर मचाया। परन्तु आसक्तचित्त राजाने कुछ सुनाई नहीं की, और तिरस्कार करके उसे निकलवा दिया। आखिर कपिल वहाँसे निकलकर मुनि हो गया और आर्तध्यानके वशसे मरके धूमप्रभ देव हुआ।

राजा कुंडलमंडित और चित्रोत्सवाने एक बार वनसे लौटते हुए मुनिराजसे श्रावकके व्रत ग्रहण कर लिये। पश्चात् कुछ काल तक राज्य करके आयुके अन्तमें शुभ मरणकर दोनों प्रभामंडल और सीता युगल उत्पन्न हुए। प्रभामंडलका चित्त सीतापर आसक्त होनेमें यही पूर्व जन्मका संस्कार कारण है।

विमुचि, मनस्विनी, और ज्वाला ये तीनों पुत्र और पुत्रीके स्नेहसे देशान्तर निकल गये। पश्चात् संवरनगरके उद्यानमें मुनिराजको प्रणाम करके दीक्षित हो गये और तपस्या करके सौधर्मस्वर्गमें देव देवी हुए। स्वर्गके अनन्त सुखोंका अनुभवन करके अन्तमें विमुचि ब्राह्मणका जीव इन्दुगति विद्याधर हुआ, मनस्विनी उसकी रानी पुष्पवती हुई और ज्वाला जनककी रानी विदेही हुई।

इस प्रकार पूर्वस्नेहका कारण सुनके सब ही प्रसन्न हुए। भामंडलने बड़ी धूमधामके साथ नगरमें प्रवेश किया। इसी समय एक पवनवेग नामके विद्याधरने यह बात राजा जनकसे जाकर कही कि भामंडल आपके पुत्र है। राजा जनक सुनते ही प्रसन्नचित्त हो गये। पुत्रको देखनेके लिए विद्याधरके विमानमें बैठ अयोध्यानगरीमें आये। इनके

आनेकी खबर पा, राजा दशरथ इनका स्वागत कर नगरमे ले गये। वहाँ राजाओके योग्य खातिर तवज्जह की गई। भामंडलने अपनी विद्याके बलसे पिताको बाल कालकी अनेक लीलाये दिखाकर हर्षित किया।

राजा दशरथके कुछ दिन अतिथि (पाहुना) रहकर प्रभामंडल अपने पितादिकोंके साथ मिथिलानगरीमे आये। वहाँका राज्य अपने काका कनकको सौंप, आप पिताके साथ रथनूपुर चले गये और सम्पूर्ण गुणोंके आधार तथा विद्याधरचक्रवर्ती होकर सुखसे रहने लगे।

सारांश—इस प्रकार मुनिराजके वचन श्रवणमात्रसे एक हंस पक्षी भी ऐसे वड़े विद्याधर चक्रवर्तीकी विभूतिका प्राप्त हो गया। जो भव्य प्रतिदिन जिनवाणीका श्रवण करेंगे, वे क्यो न उच्चसे उच्च पद पावेंगे ? अवश्य पावेंगे।

(३) राजा यमकी कथा।

उड्रदेशके धर्मनगरका राजा यम सम्पूर्ण शास्त्रोका जाननेवाला वड़ा भारी विद्वान् था। उसकी मुख्य रानीका नाम धनमती था। उसके दो संतान थे। एक पुत्र जिसका नाम गर्दभ था, और एक पुत्री जिसका नाम कोणिका था। राजाकी और भी वहुतसी रानियाँ थीं, जिनसे पाँचसौ पुत्र उत्पन्न हुए थे। राज्यमंत्रीका नाम दीर्घ था।

एक वार एक निमित्तज्ञानीने आकर कहा कि जो कोई पुरुष कोणिकाको व्याहेगा वह सम्पूर्ण पृथिवीका स्वामी होगा। तब राजा यमने इस डरसे कि कहीं वह मेरा भी राज्य न छीन ले, कोणिकाको एक भोहरे (भूमिगृह)-मे छुपा रक्खी। केवल एक दो सेवक इसकी खानेपीने आदिकी सार सँभालके लिए रख दिये थे, वे ही इस विषयको जानते भी थे। उन्हे इस बातकी कठिन आज्ञा थी कि इस विषयको किसीसे न कहे।

एक वार धर्मनगरमे पाँचसौ यतियोंके संघसहित श्रीसुधर्माचार्यका आगमन हुआ। सो उनकी वन्दनाके लिए

सम्पूर्ण नगरनिवासी बड़े उत्साहके साथ चले जा रहे थे। उन्हें देखकर राजा यम अपनी विद्याके घमंडमें आकर मुनियोंकी निन्दा करने लगा; और शास्त्रार्थमें हरा देनेके विचारसे उनके पास गया। परन्तु जिस मतलबसे वह वहाँको चला था, उसे भूल गया। वहाँ पहुँचते २ मुनिराजके प्रभावसे उसका घमंड जाता रहा, इसलिए उसने सुधर्मगुरुको नमस्कार किया और धर्मश्रवण कर अपने गर्दभपुत्रको राज्य दे अन्य पाँचसौ पुत्रों सहित वह मुनि हो गया। कुछ कालमें वे सब मुनि (पुत्र) तो सम्पूर्ण आगमोंके पाठी हो गये। परन्तु यम मुनिको पंचनमस्कार मंत्रका उच्चारण भी ठीक २ नहीं आया। यह दशा देख गुरुने बहुत निन्दा की। तब उससे लज्जित हो, यम मुनि अपने इस कर्मकी निर्जराके लिए उपाय पूछ तीर्थक्षेत्रोंकी वन्दनाको अकेले ही निकल पड़े।

मार्गमें एक यव (जव) के खेतके पाससे एक पुरुष गधेके रथपर चढ़ा हुआ जा रहा था। सो वह कभी तो गधेको यव चरानेके लिए उस रथको खेतमें ले जाता था और कभी बाहर ले आता था। यह देखकर यम मुनिने निम्नलिखित खंडश्लोक बनाकर पढ़ा:—

"कड्ढ पुण णिक्खेवसि रे गदहा जव पच्छेसि खादिउ"

अर्थात् "रे मूर्ख, तू जवोंको खिलानेके लिए गर्दभको क्यों बार बार निकालता और पैठाता है?" पश्चात् आगे चलकर दूसरे दिन मार्गमें कुछ बालक खेल रहे थे, उनके खेलनेकी एक काठकी कोणिका किसी गड्ढेमें जा पड़ी। बालक उसके ढूँढनेके लिए इधर उधर फिरने लगे। सो उन्हें देखकर यम मुनिने एक दूसरा खंडश्लोक पढ़ा:—

"अण्णत्थ किं पलोवसि तुम्हे एत्थम्मि णिब्बुड्ढि याछिद्दे अच्छइ कोणिया"

अर्थात् "रे मूर्ख बालको, तुम यहाँ वहाँ क्यों ढूँढते फिरते हो, कोणिका बिलमें पड़ी है।" पश्चात् वहाँसे चलकर एक दिन उन्होंने एक मेंढकको अपने डरसे कमलपत्रमें छिपते हुए देखा। परन्तु जिस ओरको वह जाता था, उस ओरसे एक साँप आ रहा था। तब आपने तीसरा खंडश्लोक बनाकर पढ़ा:—

"अम्हादो णत्थि भयं दीहादो भयं दीसते तुम्ह।"

अर्थात् "रे मेंढ़क, तुझे मुझसे भय नहीं करना चाहिए, परन्तु दीहादि अर्थात् सॉपादिसे तुझे भयकी संभावना है।" इस प्रकार तीन खंडश्लोक बनाकर यम मुनिने आगे गमन किया। और अन्य कोई पाठादिके न आनेसे इन्हींका स्वाध्यायादि करना प्रारंभ कर दिया। अर्थात् जिस समय स्वाध्यायका समय होता था, वे इन्हीं तीन खंडश्लोकोंका पाठ किया करते थे। निदान विहार करते हुए वे धर्म नगरके बागमें जा, कायोत्सर्ग ध्यानपूर्वक ठहरे। यह वही नगर था, जहॉ कि ये पूर्वमें राजा थे। इनके आनेकी खबर सुन, गर्दभ राजा और दीर्घ मंत्री ये दोनों यह समझकर कि कहीं ये हमारा राज्य लेनेको न आये हों, मारनेको आये और यम मुनिके पीछे आ खड़े हो गये। दीर्घ मंत्री मारनेके लिए वार वार तल्वार उठाता, परन्तु यह सोचकर कि व्रतीका वध करनेमें वड़ा भारी पाप होता है, फिर रह जाता। और यही हाल गर्दभका था, अर्थात् वह भी इसी प्रकार तलवार उठा शंकितचित्त हो रह जाता था। इसी समय मुनिके स्वाध्यायका समय हुआ, अतएव उन्होंने अपने पूर्वरचित खंडश्लोकोंका पढ़ना प्रारंभ किया और पहले प्रथम खंडश्लोकको पढ़ा। उसे सुनकर गर्दभने दीर्घसे कहा—मंत्रीजी, मुनिने हमको जान लिया। देखो, वे कहते है कि "कड्ढ पुण णिक्खेवीस रे गद्दहा जवं पच्छेसि खादिउं" अर्थात् "रे गधे, वार वार क्यों तलवार निकालता है, और फिर क्यों भीतर कर लेता है।" पश्चात् मुनिने दूसरे खंडश्लोकका पाठ किया। तब गर्दभने अनुमान करके कहा—मंत्रीजी, मुनि हमारा राज्य लेनेको नहीं आये है, परन्तु हमको मालूम नहीं है, इसलिए कोणिकाको (पुत्रीको) बतलानेके लिए आये है। देखो, वे कहते है कि "अण्णत्थ किं पलोवसि तुम्हे एत्थमि णिवुड्ढि याछिद्दे अच्छइ कोणिया" "अर्थात् यहॉ वहॉ खोज क्या करते हो, कोणिका बिलमें अर्थात् तहखानेमें पड़ी है।" पश्चात् जब मुनिने तीसरा खंडश्लोक पढ़ा, तब गर्दभने विचार किया कि मुनि यह कहते है कि "अम्हादो णत्थि भयं दीहादो भयं दीसते तुम्ह" अर्थात् "मेरा भय कुछ नहीं है, तुझे दीहादि अर्थात् दीर्घादिसे भय करना चाहिए" इससे जान पड़ता है कि ये दीर्घ मेरे साथ कुछ दुष्टता करेगा। बेचारे

मुनि तो दयावान् है, मोहके वश मुझे सचेत करनेको आये है। इस प्रकार श्रद्धान करके वे दोनों मुनिके पैरोंपर गिर पड़े और धर्मश्रवण करके श्रावक हो गये।

यह देख मुनि भी उत्कृष्ट वैराग्यको प्राप्त हुए और उत्तम चारित्रके प्रभावसे अणिमादि सात ऋद्धिधारी हुए। पश्चात् कुछ दिनोंमें घोर तपस्या कर अष्ट कर्मोंको खपा मोक्ष चले गये।

सारांश—यह है कि इस प्रकार ऐसे श्रुत-स्वाध्यायसे भी यम मुनि मोक्ष प्राप्त हुए, यदि दूसरे लोग भी श्रेष्ठ शास्त्रोंका अभ्यास करें, तो क्यों न अभीष्ट पदको पावें? अवश्य ही पावें।



(४) सूर्यमित्र और चांडालपुत्रीकी कथा।[1]

अंगदेश—चम्पापुरी नगरीका राजा चन्द्रवाहन और रानी लक्ष्मीमती थी। राजाके पुरोहितका नाम नागशर्मा था। यह ख़राब स्वभाववाला और मिथ्यादृष्टि था। उसकी त्रिवेदी नामकी एक स्त्रीसे एक नागश्री नामकी गुणवती कन्या उत्पन्न हुई थी।

एक दिन नागश्री बहुतसी ब्राह्मणोंकी कन्याओंके साथ नगरके बाहर वनमें एक नागमन्दिर था, वहाँ नागकी पूजाके लिए गई। वहाँ सूर्यमित्र आचार्य और अग्निभूति भट्टारक ये दो मुनि तपस्या कर रहे थे। सो उन्हें देख नागश्रीने शान्तचित्त हो नमस्कार किया, और धर्मश्रवण करके पाँच अणुव्रत ग्रहण कर लिये। वहाँसे चलते समय सूर्यमित्र मुनिने नागश्रीसे कहा कि हे पुत्री; यदि तेरा पिता इन व्रतोंको छुड़ावे तो एक काम करना कि हमारे व्रत हमको यहाँ ही आकर सौंप जाना। तब नागश्री "ऐसा ही करूँगी" कहकर अपने घरको गई।

१ यह कथा सुकुमालचारित्रसे उद्धृत की गई है।

नागश्रीके साथ जो अन्य ब्राह्मण कन्यायें थीं, उन्होंने आकर यह सब हाल नागशर्मासे कहा। सुनते ही नागशर्मा आगबबूला हो नागश्रीसे बोला;-" मूर्खिणी, तूने बहुत बुरा काम किया। क्या विप्रों (ब्राह्मणों) की कन्याओंको क्षपणकोंका (जैन मुनियोंका) धर्म धारण करना उचित है? कभी नहीं। सो तू यदि अपना भला चाहती है, तो इसी समय उन व्रतोंको छोड़ दे।" तब पिताके आग्रहसे लाचार हो नागश्रीने कहा;-" हे तात, मुनिराजने कहा था कि यदि तेरा पिता व्रत छोड़नेको कहे तो तू आकर मुझे वापिस सौंप जाना। सो यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो अब मैं उन्हें ये व्रत सौंप आती हूँ। ऐसा कहकर वह उद्यानकी ओर चली। और नागशर्मा भी उसके साथ हो लिया।

मार्गमें किसी युवाको (जवानको) बाँधे हुए कुछ लोग मारनेको ले जा रहे थे। उसे देख नागश्रीने पूछा;-पिताजी, इस पुरुषको लोगोंने क्यों बाँध रक्खा है?" पिताने कहा;-" मैं नहीं जानता, चलो कोटवालसे पूछता हूँ।" कोटवालसे पूछनेपर उसने कहा;-" इसी चम्पा नगरीमें अठारह कोड़ द्रव्यका धनी देवदत्त नामका एक वणिक है। उसकी समुद्रदत्ता भार्यासे उत्पन्न हुआ यह इकलौता वसुदत्त नामका पुत्र है। आज यह अक्षधूर्त नामके जुआरीके साथ जुआ खेलकर एक लाख दीनार हार गया था। सो अक्षधूर्तने अपना जीता हुआ धन सख्तीके साथ इससे मांगा, परन्तु पासमें द्रव्य न होनेसे इसने खफा हो छुरीसे उसका गला काट दिया। इसी अपराधमें हम लोग इसे मारनेको लिये जाते हैं। यह सुन नागश्रीने कहा:-हिंसामें यदि इस प्रकार प्राणदंडका दुःख होता है तो पिताजी, मुनिके पास जो मैंने यह अहिंसाव्रत लिया है, उसे क्यों छोड़ूँ? और आप उसे क्यों छुड़ाते हैं? नागशर्माने कहा:-अस्तु, यदि ऐसा है तो चल इस एक व्रतको रख ले, शेष चार व्रतोंको छोड़ आवें। इस प्रकार निश्चय करके दोनों आगे चले।

एक जगह किसी पुरुषको ऊँचा मुख किये हुए शूलीपर चढ़ा देखकर नागश्रीने पूछा-पिताजी, इस बेचारेको क्यों इतना दुःख दिया जा रहा है? पिताने कहा;-" पुत्री, राजा चन्द्रवाहनपर बड़ी भारी सेनाके साथ एक वज्रवीर्य नामका राजा चढ़कर आया था। उसने देशकी सीमापर डेरा डाल चन्द्रवाहनके पास एक दूतके हाथ कहलाया कि

या तो तुम हमारी सेवा स्वीकार करो, अन्यथा रणभूमिमें आकर हमारा साम्हना करो। और जो यह न हो सके तो चम्पानगरी हमारे हवाले करो। तब चन्द्रवाहनने "रणभूमिमे साम्हना ही करूँगा" ऐसा कहकर दूतको विदा कर दिया। और साथ ही वल नामके सेनापतिको बड़ी भारी फौजके साथ वज्रवीर्यका मुकाबिला करनेको भेजा। उधरसे वज्रवीर्य भी आ पहुँचा। दोनो सेनाओमे घनघोर युद्ध होने लगा। तब इस तक्षक नामके पुरुषने जो कि राजाका अंगरक्षक था, डरके मारे रणभूमिसे भागकर राजासे आकर झूठमूठ ही कह दिया कि हे देव, वज्रवीर्यने सेनापतिको मार डाला और उसके हाथी आदि भी छीन लिये। यह सुन राजा अत्यन्त चिन्तातुर हुआ। उधर वल सेनापति विजय पा विपक्षीको बाँध नगरकी ओर लौटा। तब उसके आनेके ठाठबाट देखकर राजाने समझा कि यह हमारा विपक्षी ही चढ़कर आ रहा है, इसलिए उसने लड़ाईकी तैयारी की। क़िलेका द्वार बन्दकर दिया। कोटपर अच्छे अच्छे वीरपुरुषोको रक्खे और खुद भी हाथीपर चढ़कर इधर उधर सम्हाल करने लगा। राजाको इस प्रकार घबराया देख, वल सेनापतिने प्रगट हो द्वार खुलवाया और सम्मुख जा नमस्कार किया। राजा प्रसन्न हुआ। उसने वज्रवीर्यका बहुत सत्कार किया व एक सूबेका उसे राजा बना दिया, पश्चात् इस तक्षकके असत्यभाषणको याद कर जिससे कि बड़ी चिंता हुई थी, राजाने इसे दंड देनेकी आज्ञा दी है, इसलिए यह शूलीका दुःख भोग रहा है। यह सुन नागश्रीने कहाः-पिताजी, मैने उन मुनीश्वरोंके पास इसी असत्यका त्याग किया है, जो ऐसा दुःखदाई है। सो अब मै सत्याणुव्रतको कैसे छोड़ूँ? पुरोहितने कहा-अच्छा, इसे भी रख, परन्तु बाक़ीके तीन अवश्य ही छोड़ आना चाहिए। ऐसी बाते करते दोनो फिर आगे चले।

एक स्थानमे एक पुरुषको शूलीमे छिदा हुआ देख नागश्रीने पूछा-इसकी यह दुर्दशा क्यों हुई है? नागशर्माने कहाः-मै नही जानता, चल चांडालसे पूछे। तब दोनोंने चांडालसे जाकर पूछा तो उसने इस प्रकार उसकी कथा कह सुनाई;—

"इस शहरमे एक वासुदत्त नामका सेठ रहता है। उसके एक वसुकान्ता नामवाली कन्या है। वह बहुत ही

सुन्दर और जवान है। कुछ दिन पहले वह साँपके काटनेसे मुर्देके समान हो गई थी, मरी समझकर लोग उसे मसानमें ले गये, चिता चुनकर लड़कीकी लाश उसपर रक्खी गई, और उसमें आग लगाना ही चाहते थे कि इतनेमें एक युवक पथिक रूपका पुतला वहाँ आया। वसुकान्ताके रूपको देख उसपर आसक्त हो गया। लोगोंने उसके मरनेका कारण बताया। उसने कहाः-यदि इस लड़कीकी मेरे साथ शादी कर दो तो मैं इसे जीवित कर दूँ" सेठने गरुड़ नाभिकी बात मान ली। वह सवेरे तक लाशकी रक्षा करनेके लिए कह, वहाँसे चला गया। सेठने एक एक हजार दीनार [सोनेका सिक्का] की चार थैलियाँ लड़कीके चारो तरफ रख दीं, और चार बहादुर जवानोंको बुलाकर कहाः-यदि तुम लोग इसकी रातभर चौकसी करोगे तो हरएकको एक एक थैली दी जावेगी। वे स्वीकार कर वहीं चौकसी करने लगे अन्य सब लोग अपने२ घर गये।

अगले दिन गरुड़नाभिने, जो गारुड़ी विद्याका अच्छा जानकर था, सर्पका विष उतारकर लड़कीको जिन्दा कर दी। सेठने भी अपनी प्रतिज्ञानुसार उन दोनोंका बड़ी धामधूमसे व्याह करवा दिया।

सुबह चार थैलियोंमेंसे जब एक थैली नहीं मिली, तब सेठने कहा-"तुम चारोंमेंसे एक थैली किसीने ले ली है, वह अपने घर जावे और तीन थैलियाँ दूसरे तीन एक एक ले ले। मगर एकने भी थैली लेना स्वीकार नहीं किया। आखिर चारो राजाके सामने पेश किये गये। राजाने चण्डकीर्ति नामके अपने कोटवालको बुलाकर कहा-"थैलीके चुरानेवाले मनुष्यको ला वरना तेरा सिर कटवा दिया जावेगा।" कोतवाल पाँच दिनकी अन्दर चौर-को पेश करनेका वादा कर चारोंको साथ ले अपने घर गया और उदास हो पलँगपर लेट रहा।

सुमति नामकी कोतवालके एक चतुर लड़की थी। उसने पितासे उदासीका कारण पूछा, पिताने सब हाल कह सुनाया। हँसते हुए लड़कीने चारेको सौपनेका वादा कर पिताको ढाढ़स बँधाया।

लड़कीने चारोंको अपने घर रखनेके लिए पितासे कहा और आप वहाँसे चली गई। कोतवालने चारोंको रख लिए और सुन्दर मकान उनको रहनेके लिए दे दिये। संध्याको एक बड़ी बढ़िया सेज बिछाई, मखमलके गद्दी

तकिये उसकी शोभाको दुगनी करने लगे, झालर निराली ही छटा दिखाने लगी। सेज सजाकर लड़कीने एक युवकको बुलाया। बड़ी ही मधुर और उसके मनको आकर्षण करनेवाली बातें कहीं। अन्तमें उसको युवकने अपने साथ शादी करनेके लिए कहा। लड़कीने अपनी भी शादी करनेकी इच्छा प्रकट कर कहा:-अगर तुम थैली चुरानेवाले चोरको बता दो तो मैं तुमसे शादी कर लूँ क्योंकि मुझे तुम्हारेपर चोर होनेका शक है। उसने उत्तर दिया:-मैं तीनोंको मसानमें छोड़कर वेश्याके यहाँ गया था, सो तीन पहर रात बीते वापिस आया, पीछेसे क्या हुआ मुझे कुछ पता नहीं है। लड़कीने कहा:-अच्छा, मुझे कुछ दिल बहलानेवाली कथा सुनाओ। युवक बोला-मुझे कोई कथा नहीं आती, तुम ही सुनाओ तब सुमतिने इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया:—

पाटलीपुत्रके सेठ धनदत्तकी लड़की सुदामा अपने घरके पीछेवाले तालाबमें पैर धो रही थी, एक मगरके बच्चेने आकर उसका पैर पकड़ लिया। वह डरकर अपनी रक्षाके लिए चिल्लाने लगी इतनेहीमें उसका बहनोई उधर आ निकला। उसने हँसते हुए कहा:-यदि व्याहके दिन फेरे फिरकर मेरे पास आना स्वीकार करो तो मैं तुम्हें बचा लूँ। निष्कपट लड़कीने मान लिया और धनदेवने उसकी मगरसे रक्षा की। कुछ काल बाद उसकी शादी हुई। लड़की अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेको रात्रिमें सिरसे पैरतक गहनेसे लद, धनदेवके घरकी ओर चली। रास्तेमें चोरने उसे आ घेरी और जेवर सौंपनेको कहा। लड़कीने कहा:-मुझे इसी तरह एक जगह जाना है, मैं लौटकर आऊँगी तब तुझे सब जेवर दे दूँगी। चोरने उसकी बातका विश्वास किया। जब वह आगे बढ़ी, आप भी उसके पीछे हो लिया। आगे चलकर एक राक्षस मिला, और उसने लड़कीको खानेके लिए कहा। लड़कीने राक्षसको भी वही बात कही जो चोरसे कही थी। राक्षस भी विश्वास कर उसके पीछे हो लिया। आगे चलकर एक कोतवाल मिला। कोतवालको भी इस ही तरह वचन दे वह धनपालके पास पहुँची। धनपालको उसे ऐसी भयानक रात्रिमें आई देख बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर अपनी कही हुई बात याद कर बोला:-मैंने तो अपनी साली समझ केवल तुझसे हँसी की थी, तू मेरी बहिनके समान है, जा अपने घर लौट जा। उन तीनोंने (चोर, राक्षस और कोतवालने) भी उसे सत्यवती समझ उसे कुछ नहीं कहा और

आनन्दपूर्वक उसे अपने घर पहुँचा दी। कथा सुनाकर बोली—बताओ उन चारोंमेसे कौन अच्छा था? उसने धनदेवकी प्रशंसा की। तब उसने बहाना कर उसको वहाँसे अपने स्थानमें जानेके लिए रवाना कर दूसरेको बुलाया। दूसरेको भी उक्त प्रकार सब बातें कह चारों (चोर, राक्षस, कोतवाल, धनदेव) मेसे किसको अच्छा होनेके लिए व थैलीके चोरको बता देनेके लिए कहा। उसने तीनोंको छोड़ भेड़ चुराने जाना, थैलीका हाल जाननेसे इनकार किया व चोरको अच्छा बताया। तीसरेको पूछनेपर अपने आपको भेड़ मारनेमें लगा हुआ बता थैलीके चोरको नहीं जानना कहा; और राक्षसको अच्छा बताया। चौथेने कोतवालको अच्छा बताते हुए कहाः—मै लाशपर दृष्टि लगाए बैठा था मुझे नहीं मालूम कि थैली किसने चुराई।

जब चारोंके दिलोंकी बात सुमतिने जान ली तो चोरको अच्छा बतानेवालेको फिर बुलाया और बड़ी ही प्रसन्नतासे कहने लगीः—मै सम्पूर्णतया तुमको चाहती हूँ, मगर यहाँ रहनेसे हमारा काम नहीं चल सकता। यदि तुम मुझे लेकर कहीं चले चलो तो अच्छा है। बाहिर जानेमे धनकी ज़रूरत पड़ेगी सो पाँच हजारका माल तो मेरे पास है, अगर पाँच सात हजारका माल तुम्हारे पास भी हो तो अपना काम अच्छी तरहसे चल जावेगा। संसारमे कामदेव न मालूम क्या २ करवा देता है। मोह जालमे फँस परिणामका विचार छोड़ तत्काल ही एक हजारकी थैली जो उसने चुराकर रख दी थी, लाकर सुमतिको दे दी। सुमतिने सवेरे जल्दीसे चलनेका वादा कर उसे अपने स्थानमें जानेको भेज दिया और आपने तत्काल ही सब हाल अपने पिता चंडकीर्तिसे जा सुनाया। कोतवालने प्रसन्न होकर लड़कीकी तारीफ़ की और चोरको थैली सहित सवेरे ही राजाके सामने पेश कर दिया। वही यह चोर है। राजाने इसे शूलीका दण्ड दिया है।

तब नागश्रीने कहाः—पिताजी, चोरको जब शूलीका दण्ड मिलता है तो मैने जो चोरी नही करनेका व्रत लिया है, उसे क्यों छोड़ूँ? नागशर्माने कहाः—खैर इसे भी रख ले, शेष जो बचे है उन्हे तो अवश्य ही वापिस लौटा देने चाहिए।

थोड़ी दूर जानेपर उन्होने एक स्त्री देखी, जिसकी नाक कटी हुई थी और पुरुषकी चोटीसे उसका गला बँधा हुआ था। नागश्रीने पूछा:—पिताजी, इसकी ऐसी दशा क्यों हुई है? नागशर्मा बोला:—इसी नगरमे मात्स्य नामके सेठकी जैनी नामवाली स्त्री है। उसके गर्भसे नन्द और सुनन्द नामके दो पुत्र हुए थे। नन्द जब व्यापार करने विदेशमें जाने लगा तब उसने मामा सूरसेनसे कहा— मामा, मै द्वीपान्तरोंमे जाता हूँ। जबतक मै न आऊँ अपनी पुत्री मदालीका व्याह किसीसे न करना मुझसे ही करना। सूरसेनने कहा:—मै तुझको ही अपनी पुत्री दूँगा मगर तुम अवधि नियत कर जाओ। नन्द बारा वर्षमे आनेको कह व्यापार करने चला गया। मगर साढ़े बारा वर्ष बीत जानेपर भी वह लौटकर नहीं आया। तब सूरसेनने सुनन्दके साथ अपनी लड़कीका व्याहना निश्चित कर व्याह मण्डप सजाया। दोनो ओर उत्सव मनाये जाने लगे। लग्न होनेके पाँच दिन पहले नन्द भी वहाँ आ गया। सूरसेनने उसके आनेके समाचार पा अपनी लडकी उसहीको देना चाहा मगर उसने यह कह कर इनकार कर दिया कि आपने उसको मेरे भाईके साथ व्याहनेकी तैय्यारी कर ली, इसलिए अब वह मेरी पुत्रीके समान है। सुनन्दको भी सारा हाल मालूम हो गया और उसने भी मदालीको अपनी माता कह कर व्याह करनेसे इनकार कर दिया। अतः मदाली कँवारी ही अपनी जवानीके दिन काटने लगी।

उसके मकानके पास ही एक बारह क्रोड़की मालियतका स्वामी नागचंद्र नामका बनिया रहता था। उसके बारह स्त्रियाँ थी। मदाली और इसके परस्पर प्रेम हो गया और दोनों आनन्दसे कामसेवन करने लगे। कोतवालको इनका हाल मालूम हो गया। एक दिन कोतवालने किसी तरह इनको एक साथ पकड़ लिया और दोनोंको राजाके सामने पेश किये। राजाने इनके लिए जो आज्ञा दी उसहीके अनुसार यह दण्ड भोग रहे है। तब नागश्रीने कहा:—पर पुरुषके साथ रमण करनेसे जब ऐसी दशा होती है तो मैने पापदृष्टिसे किसी पुरुषकी तरफ न देखनेका जो नियम लिया है उसे क्यों तोड़ूँ? नागशर्माने इसे भी रखनेकी इजाज़त दे दी। शेष रहे हुएको वापिस मुनिके पास जाकर छोड़ आनेके लिए आगे बढ़े।

एक पुरुषको बाँधकर मारनेके लिए ले जाते देख नागश्रीने उसका कारण पूछा। नागशर्माने उत्तरमें कहा:— यह राजा चन्द्रवाहनका 'वीरपूर्ण' ग्वाला है। एक बार राजाके घोड़ोंके चरनेके लिए रखाये हुए घासके खेतमें किसीकी गायें भैंसें घुस गई थीं, इसने उन सबको लाकर राजाके सामने पेश कीं। राजाने प्रसन्न होकर सबको ले लेनेकी इजाज़त दे दी। राजाज्ञाका यह अनुचित फायदा उठाने लगा, और लोगोंको यह कह २ कर कि राजाने मुझे सारे शहरमेंसे अच्छी २ गायें भैंसें चुन चुन कर ले लेनेकी आज्ञा दी है, उत्तम उत्तम गायें भैंसें लोगोंकी लाने लगा। एक बार इस चुनावमें रानीकी एक उत्कृष्ट भैंस भी उसके घर आ गई। इसलिए रानीने राजासे प्रार्थना की कि यह क्या बात है? तब शोध करनेपर यह सब हाल जानकर राजाने इसे मारनेके लिए बँधवाकर भेजा है।

यह सुनकर नागश्रीने कहा—पिताजी, बहुत परिग्रहकी इच्छाके त्यागका व्रत जो मैंने लिया है, मैं उसे कैसे छोड़ूँ? तब पुरोहितने खिन्न होकर कहा:—तो इसको भी रख ले, परन्तु उस मुनिके पास अवश्य चल। मैं उसको धमकाये विना नहीं रहनेका। उसे मैं समझा दूँगा कि ब्राह्मणकी पुत्रियोंको अब आगे जैनी बनानेका उद्योग नहीं करना। ऐसा कहकर चला, और दूरहीसे मुनिको देखकर बोला—अरे दिगम्बर, मेरी पुत्रीको तूने ये व्रत क्यों दिये? सुनकर मुनिने कहा—पुरोहितजी, मैंने अपनी पुत्रीको व्रत दिये हैं, इसमें तुम्हारा क्या गया? नागशर्मा क्रोधित होकर बोला—तो क्या यह तेरी पुत्री है? तब मुनिने "अवश्य ही यह मेरी पुत्री है" कहकर नागश्रीकी ओर देखा। नागश्री प्रणाम करके उनके समीप आ बैठी और ब्राह्मणदेवता लाल पीले होते हुए राजाके पास दौड़ गये और लगे चिल्लाने कि एक यति मेरी कन्याको जबर्दस्ती अपनी बनाना चाहता है। यह सुनकर सब लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा और जैनी तथा अन्यमती सब शहरके लोग वन्दना करने तथा यह कौतुक देखनेको मुनियोंके पास आये। राजाने दोनों मुनियोंको नमस्कार करके सूर्यमित्र मुनिसे पूछा— महाराज, यह किसकी पुत्री है? मुनिराजने कहा—हमारी पुत्री है। सुनते ही ब्राह्मण फिर क्रोधमें भूत होकर बोला—महाराज, इस पुत्रीको मेरी स्त्रीने नागदेवकी पूजा करके पाई थी, यह संसार जानता है, और यह उसे

अपनी बनाना चाहता है, सो कैसे हो सकती है? मुनिराजने कहा:-यदि यह इस ब्राह्मणकी पुत्री है, तो इससे पूछो कि तूने इसे कुछ व्याकरणादि शास्त्र भी पढ़ाये है कि यों ही पुत्री बनाता है? ब्राह्मण बोला;-तो क्या तुमने इसे कुछ पढ़ाया है? यदि पढ़ाया हो, तो कहो। मुनि बोले—हाँ हमने इसे पढ़ाया है। राजाने कहा;-तो कृपा करके इसकी परीक्षा दिलाइए। मुनिने कहा:—अच्छा परीक्षा ले लीजिए। ऐसा कहकर सम्पूर्ण विद्वानोंके बीचमें मुनिने कन्याके मस्तकपर अपना दाहिना हाथ रखकर कहा;-"हे वायुभूते, मैंने राजगृहमें जो तुझे पढ़ाया था, उसमें परीक्षा दे।" नागश्री यह सुनते ही पंडितोंके सम्मुख कोमल, मीठी और गूढ़ अर्थसे भरी हुई वाणीसे अनेक तरहके शास्त्रोंका उच्चारण करने लगी। जिसे सुनते ही सब लोग चकित हो रहे। राजाने हाथ जोड़कर कहा;—महाराज, मेरे हृदयमें बड़ा कौतूहल बढ़ रहा है, कि आपने नागश्रीकी परीक्षाके लिए तो याचना की और आपने वायुभूतिसे परीक्षा दिलाई। इसका क्या कारण है? आचार्य बोले;-जो नागश्री है, वही वायुभूति है। यदि कहो कि कैसे? तो सुनो:—

"वत्सदेश कोशाम्बि नगरीमें राजा अतिबल और महारानी मनोहरी थी। राजपुरोहितका नाम सोमशर्मा था। उसकी काश्यपी नाम स्त्रीसे अग्निभूति और वायुभूति नामके दो पुत्र हुए थे। बहुत उपाय किये, परन्तु ये दोनों ही कुछ विद्या न पढ़े। अन्तमें पिताके मरनेपर राजाने बिना जाने इन दोनोंको पुरोहित पद दे दिया। कुछ दिनोंके बाद अनेक वादियोंका गर्व नाश करनेवाला एक विजयजिव्हा नामका पण्डित कोशाम्बीमें आया और राज्यद्वारपर शास्त्रार्थ करनेका सूचनापत्र टाँग दिया। शास्त्रार्थ करनेका अधिकार पुरोहितको ही था, इसलिए अन्य पंडितोंने उस वाद (शास्त्रार्थ) पत्रको नहीं लिया और राजाने अपने इन दोनों पुरोहितोंको उसके लेनेकी आज्ञा दी। तब इन दोनोंने उसे लेकर फाड़ डाला। राजाने इनको मूर्ख जान उनके पद छीन लिये और सोमिल नामके विद्वान् ब्राह्मणको पुरोहितपद दे दिया।

इस घटनासे अग्निभूति और वायुभूति दोनोंको अपनी मूर्खतापर बड़ा दुःख हुआ और उसी समय उन्होंने विद्या पढ़नेके लिए विदेशोंमें जाना निश्चय किया। उस समय उनकी माताने कहा;-प्यारे बेटो, यदि तुम्हारा विदेश

जानेको आग्रह (हठ) ही है, तो अन्य कहीं न जाओ, राजगृह नगरमें राजा सुबलके पुरोहित मेरे भाई सूर्यमित्र बड़े भारी विद्वान् है। तुम उनके पास जाओ, वे बड़े स्नेहसे तुमको पढ़ावेंगे। पुत्रोंने माताकी बात मान ली, और दोनो राजगृह जाकर अपने मामासे मिले; तथा अपना वृत्तान्त उनसे कहा। सूर्यमित्रने सुनकर विचार किया कि ये अपने पिताके निकट अच्छे भोजन और लाड़ चावके कारण जैसे मूर्ख रह गये, उसी प्रकार यदि मैं इन्हें लाड़ प्यारसे रक्खूँगा, तो यहाँ भी ये खेलने कूदनेमें मस्त हो जावेंगे और विद्याध्ययन नहीं कर सकेंगे। इसलिए इनसे अपना असली भेद छुपाना चाहिए। ऐसा निश्चय कर उनसे कहा;–भाइयो, हमारे तो कोई बहिन ही नहीं है, फिर भानजे कहाँसे होगे ? मैं तुम्हारा मामा नहीं हूँ। परन्तु यदि तुम पढ़ना चाहते हो, तो भिक्षा माँगके अपना उदरनिर्वाह किया करो, मैं पढ़ा अवश्य दिया करूँगा, और तुम्हें थोड़े ही दिनोंमें अच्छा विद्वान् बना दूँगा। सुनकर दोनों भाई लाचार राजी हो गये, और भिक्षा माँग माँगकर पढ़ने लगे।

कुछ दिनोंके पीछे जब सब शास्त्रोंमें निपुण होकर ये अपने घरको लौटने लगे, तब सूर्यमित्रने दोनोंको वस्त्रादिक भेंट देकरके कहा;–मैं तुम दोनोंका यथार्थ ही मामा हूँ, परन्तु स्नेहमें पड़कर तुम पढ़ नहीं सकते थे, इसलिए उस समय मैं तुमसे अजान बन गया था। फिर स्नेह प्रगट करके विदा कर दिये। इस बातसे अग्निभूति तो अत्यन्त हर्षित हुआ। परन्तु वायुभूति क्रोधमें जल गया कि चांडालने हमको भिक्षा मँगवाकर पढ़ाया। अस्तु दोनों घर आये और अपनी विद्या प्रगट कर पुनः पुरोहित पदको पा सुख और लक्ष्मीका लाभ कर रहने लगे।

उधर राजगृहमें एक दिन राजा सुबलने स्नानके समय तैलसे खराब हो जानेके भयसे अपने हाथकी अँगूठी सूर्यमित्रको दे दी। और सूर्यमित्र उसे अपनी अँगुलीमें पहिनकर घर चला गया। भोजनादिक करनेके बाद जब राजभवनको पुनः जानेकी वेला हुई, तब उसको हाथमें अँगूठी न देख बड़ी चिन्ता हुई। फिर उसने परमबोध नामके एक ज्योतिषी बुलाकर पूछा; अँगूठी मिलेगी या नहीं ? उसने कहा—अवश्य मिलेगी। वह तो इतना कहकर चला गया। सूर्यमित्र अपने महलकी छतपर बैठकर चिन्ता करने लगा।

इतनेमे नगरके बाहर एक उद्यानमे प्रवेश करते हुए सुधर्माचार्य नामके दिगम्बर मुनिपर उसकी दृष्टि पड़ी। उनके दर्शनमात्रसे उसे ऐसा जान पड़ा कि ये अवश्य ही ज्ञानवान् महात्मा होंगे, इनसे पूछनेपर मेरी अँगूठीका पता लग जावेगा। ऐसा विचारकर संध्याके समय लोगोसे छुपकर उनके निकट गया और यहाँ वहाँ घूमने लगा, लज्जा और अभिमानके मारे कुछ पूछ नहीं सका। तव आचार्य महाराजने स्वयं कहा;-"हे सूर्यमित्र, राजाकी अँगूठी खो गई है, जान पड़ता है तू उसके पूछनेको आया है। सुनते ही सूर्यमित्र आश्चर्य कर उनके पाँवोपर पड़ गया। और बोला;-हाँ, मै अँगूठीकी पूछनेको ही आया हूँ। कृपाकरके वतलाइए वह कहाँ है? मुनिराजने कहा;-तेरे महलके पीछे वागमें जो तालाव है। उसमे खड़ा हुआ तू सूर्यदेवको जल दे रहा था। उस समय तेरी अँगुलीमेंसे निकलकर कमलकी डंडीमे वह अँगूठी गिर पड़ी थी। वह अभी वहाँ ज्योकी त्यों पड़ी है। सवेर जाकर तू उसे उठा लाना। यह सुनते ही सूर्यमित्र घर गया। सवेरे जव उसने तालावमे देखा तो मुनिके कहे अनुसार उसे वह अँगूठी कमलकी डण्डीमे पड़ी मिल गई। उसने उसे लेजाकर राजाको सौपी और आप किसीसे विना कुछ कहे सुने उक्त ज्ञानको सीखनेकी अभिलापासे आचार्य महाराजके पास गया। उन्होने कहाः-यह विद्या जिससे हम सव वस्तुओंको जान और देख सकते है, निर्ग्रन्थ दिगम्बर हुए विना प्राप्त नहीं होती। तव सूर्यमित्र अपने कुटुम्बी तथा मित्रादिकोसे यह कहकर कि वह विद्या जिससे अटूट धनकी प्राप्ति हो सकती है, विना दिगम्बर हुए नहीं मिल सकती इसलिए मै थोड़े दिनोके लिए दिगम्बर हो जाता हूँ, विद्या सीखकर फिर आ जाऊँगा। वह दिगम्बर मुनि हो गया और आचार्यसे विद्या माँगी। उन्होने कहाः-विना क्रियाकलापके पढ़े यह विद्या फल नहीं देती इसलिए पहले क्रियाकलाप पढ़ लो। सूर्यमित्रने यह भी मान लिया और क्रमसे चारों अनुयोग पढ़े। द्रव्यानुयोगके पढ़ते ही उसके नेत्र खुल गये और उसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई। सूर्यमित्र परम तपोधन साधु हो गया। वह घर-द्वार और विद्याकी वात भूल कर गुरु महाराजके साथ चम्पा नगरीमे आया। वहाँ वासुपूज्य भगवान्‌के निर्वाणक्षेत्रकी प्रदक्षिणा करते समय उसे अवधिज्ञान प्राप्त हुआ। फिर

श्रीसुधर्माचार्य गुरु अपना पद सूर्यमित्र मुनिको सौंप एकाविहारी हुए और वाराणसी नगरीमें कर्मोंका नाश कर मोक्षमें गये।

सूर्यमित्र मुनि एक बार आहारके लिए कौशाम्बी नगरीमें आये। उन्हें अग्निभूतिने नवधाभक्तिपूर्वक आहार दिया। जिस समय वे जाने लगे, अग्निभूतिने प्रार्थना की-भगवान्, वायुभूतिके यहाँ चलकर उसे कुछ शिक्षा दीजिए, वह बड़े दुराचारोंमें लवलीन हो रहा है। मुनिने कहाः-वह अति दुष्ट पुरुष है, उसके यहाँ जाना उचित नहीं। परन्तु अग्निभूतिके विशेष आग्रहसे अन्तमें मुनिको वायुभूतिके घर जाना ही पड़ा। मुनिको देखते ही और उसे यह मालूम होते ही कि यह वही सूर्यमित्र है, वायुभूतिने गालियोंकी बौछार करनी शुरू की और मुनिकी मनमानी निन्दा करने लगा। मुनिने विना कुछ कहे सुने उद्यानका रास्ता लिया। अग्निभूतिको उस मुनिनिन्दासे बड़ा भारी वैराग्य हुआ, इसलिए वह उसी समय मुनिके निकट दीक्षित हो गया।

अग्निभूतिकी स्त्री सोमदत्ताको जब यह बात मालूम हुई कि मेरा पति इस कारण दिगम्बर हो गया है, तब वह अपने देवरके पास गई और बोली;-हे वायुभूति, तूने मुनिकी निन्दा की, इस कारण मेरे पतिने तप ले लिया है। परन्तु अभी तक यह बात कोई जानता नहीं है, सो तू जाकर एकान्तमें उन्हें मनाकर लौटा ला। यह सुनते ही वायुभूति और भी क्रोधित हुआ और अबकी उसने वह गुस्सा अपनी भावजपर ही निकाला। उसने अपनी भावजको जोरसे एक लात मारी और उसे घरसे निकाल दी। इस दुःखसे दुःखी हो, सोमदत्ताने निदानबन्ध किया कि अगले भवमें मैं इसके इन्हीं पैरोंको भक्षण करूँगी, तब मेरी छाती ठंडी होवेगी।

उधर वायुभूति सातवें दिन मर कर मुनिनिन्दाजनित पापके फलसे उदम्बरकोढी (कुष्ठी) हुआ। फिर उस कुष्ठकी पीड़ासे मरकर उसी नगरमें गधी हुआ। फिर सूकरी, फिर कूकरी, और फिर भूखों मरकर चम्पानगरीमें नील चांडालकी कौशाम्बी स्त्रीके जन्मांध पुत्री हुआ। इसके शरीरसे बहुत दुर्गंध आती थी, जिससे लोगोंको बड़ा दुःख होता था।

एक दिन सूर्यमित्र और अग्निभूति चम्पा नगरीके उद्यानमें आये। उस दिन सूर्यमित्रका उपवास था, इसलिए अकेले अग्निभूति आहारके लिए नगरीमें गये। वहाँ एक जामुनके वृक्षके नीचे बैठी हुई उस जन्मकी अंधी और दुर्गंधयुक्ता चांडालीको देखकर अग्निभूतिको करुणा उत्पन्न हो आई और आँखोंमें आँसू आ गये। अग्निभूतिने लौटकर गुरुसे पूछा:—महाराज, उसके देखनेसे मुझे दुःख क्यों हुआ? तब सूर्यमित्र मुनिने उसकी सब कथा कही और साथ ही यह भी कहा कि वह अत्यन्त निकट भव्य है, आज ही मृत्यु होगी, इसलिए तुम जाकर उसे कुछ उपदेश दो। तब उसी समय जाकर अग्निभूतिने उसे उपदेश दिया और पाँच अणुव्रत दे सन्यास ग्रहण कराया। इतनेमें ही वहाँसे नागशर्माकी स्त्री त्रिवेदी नागोंकी पूजा करके बड़े भारी आडम्बर और वैभवके साथ निकली। इसको जानकर चांडाली अगले भवमें व्रतके प्रभावसे त्रिवेदीकी पुत्री होनेका विचार करने लगी। इसी खयालमें वह मर गई और उसकी लड़की नागश्री हुई, जो कि आज नागपूजाके लिए यहाँ आई थी। इस प्रकार हम दोनों सूर्यमित्र और अग्निभूति हैं। और यह वायुभूतिका जीव है।

मुनिराजके मुखसे यह आश्चर्यजनक कथा सुनकर, नागशर्मादिक ब्राह्मणोंकी बुद्धि फिर गई और उसी समय "अहा! जैनधर्म ही एक सच्चा धर्म है" ऐसा कहते हुए उनमेंसे बहुतसे लोग दीक्षित हो गये अर्थात् उन्होंने दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली। नागश्री और त्रिवेदी आदिक ब्राह्मणियोंने आर्यिकाओंके व्रत ग्रहण किये। राजा चन्द्रवाहन अपने लोकपाल पुत्रको राज्य देकर बहुतसे राजाओंके साथ संसार देह भोगोंसे उदास हो, मुनि हो गये। यह देख उनके अन्तःपुरकी रानियाँ भी आर्यिका हो गई।

इस प्रकार धर्मकी अपूर्व प्रभावना कर श्रीसूर्यमित्र आचार्यने संघसहित वहाँसे विहार किया और कुछ दिनोंमें राजगृह नगरीके बाहर पहुँचकर उद्यानमें ठहरे। उस समय कौशाम्बी नगरीके राजा अतिबल अपने बड़े काका राजा सुबलको देखनेके लिए वहाँ आये हुए थे। वनपालके मुखसे मुनिराजका आना सुनकर वे अतिबल और सुबल श्री मुनिराजोंकी वन्दना करनेको आये। दीप्ति ऋद्धि सहित सूर्यमित्रको देखकर वे बड़े आश्चर्ययुक्त हुए। दीप्ति ऋद्धिके

प्रभावसे मुनियोंके शरीरकी प्रभा सूर्यकीसी प्रकाशमान होती है। तपके प्रभावसे यह ऋद्धि सूर्यमित्रको उसी समय प्राप्त हुई थी। राजा सुबल यह सोचकर कि वह सूर्यमित्र पुरोहित तपके प्रभावसे ऐसा हो गया है, अतिबलको राज्य देकर दीक्षा लेने लगा। परन्तु अतिबलको स्वयं वैराग्य उत्पन्न हो रहा था, इसलिए उसने राज्य करनेसे इन्कार कर दिया। तब मीनध्वज पुत्रको राज्य दे अतिबलादिक बहुतसे राजाओंके साथ सुबलने दिगम्बर दीक्षा धारण की और उनकी रानियोंने आर्यिकाओंके व्रत अंगीकार किये।

उधर नागश्री आर्यिका बहुत कालतक कठिन तपस्या कर अन्तमें एक महीनेका सन्यास ले शरीर छोड़ अच्युत स्वर्गके पद्मगुल्म विमानमें पद्मनाभ नामकी देव हुई। नागशर्मा भी मरकर उसी विमानमें एक देव हुआ। त्रिवेदी ब्राह्मणी पद्मनाभकी अंगरक्षक देव हुई। राजा चन्द्रवाहन, अतिबल और सुबल आरण स्वर्गमें अतिशय विभूतिशाली देव हुए। इनके अतिरिक्त और सब व्रती अपने २ तपकी योग्यतानुसार यथोचित गतियोंको प्राप्त हुए। सूर्यमित्र और अग्निभूति मुनि विहार करते हुए वाराणसी नगरीमें पहुँचे और वहाँ उन्होंने घोर तपके प्रभावसे चार घातिया कर्मोंका घातकर केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्तमें अग्निमंदिरगिरिके शिखरपर चार अघातिया कर्मोंको भी भस्म कर वे मोक्षमें जा विराजे। पद्मनाभ देव उनकी निर्वाणपूजा करनेको आया। और उसे भक्तिपूर्वक तथा यथाविधि करके अपनी आयुका सागरोपम काल सुखसे व्यतीत करने लगा।

अवन्ति देश-उज्जयिनीके राजा वृषभांकके राज्यमें एक सुरेन्द्रदत्त नामका सेठ रहता था। उसकी स्त्री यशोभद्राके पुत्र नहीं था, इसलिए वह अत्यन्त दुःखी रहती थी। एक दिन राज्यकी भेरियोंकी आवाज सुनकर यशोभद्राने पूछा—ये भेरियाँ क्यों बजाई गई? तब सखीने कहा;—एक सुमतिवर्द्धमान नामके मुनि उद्यानमें पधारे हैं, उनकी वन्दना करनेके लिए महाराज जा रहे हैं। यह सुन यशोभद्रा भी मुनिदर्शनकी अभिलाषिणी होकर उद्यानमें गई। और वन्दना करके मुनिसे पूछा—हे भगवान्, क्या कभी मुझ अभागिनीके पुत्र होगा? मुनिनाथने कहाः—तेरे एक बड़ा धर्मात्मा पुत्र होगा, परन्तु उसका मुख देखने मात्रसे तेरा पति दीक्षा ले लेगा और मुनिका दर्शन करते ही तेरा

वह पुत्र भी मुनि हो जावेगा। यह सुनकर वह हर्ष न चिन्ता करती हुई घर आई। हर्ष उसे इस कारण हुआ कि मेरे पुत्र होगा, और दुःख इससे हुआ कि पति मुझे छोड़कर मुनि हो जावेंगे। कुछ दिनोंमें वह गर्भवती हुई। नौ महीने पूरे होनेपर यशोभद्राने इस डरसे कि पतिको पुत्रका दर्शन न हो जावे, एक तहखानेमें पुत्र प्रसव किया। तथापि वात छुपी नहीं रही। एक दासी प्रसूतिके कपड़े धो रही थी उसे एक ब्राह्मणने देख कर जान लिया कि सुरेन्द्रदत्त सेठके पुत्र उत्पन्न हुआ है। उसने आकर सेठजीको आशीर्वाद दिया। तब सुरेन्द्रदत्त सेठ अपने पुत्रका मुँह देखकर और ब्राह्मणको बहुतसा दान देकर उसी समय दिगम्बर मुनि हो गये। इससे भोली यशोभद्राको बहुत दुःख हुआ। अब वह पुत्रकी रक्षाका बहुत ध्यान रखने लगी कि कहीं इसे भी मुनिके दर्शन न हो जावें। बालकका नाम सुकुमाल रखकर उसने स्वर्णमयी अनेकरत्नजड़ित बहुत सुन्दर सर्वतोभद्र एक बड़ा महल बनवाया। और उसके आसपास चाँदीके बत्तीस महल और भी बनवाये। सुकुमालकुमार उन्हीं महलोंमें रात दिन, राजा प्रजा, और सरदी गरमीका भेद जाने बिना विमानोंके देवों समान बढ़ने लगे और कुमार कालको पूरा कर युवावस्थाको प्राप्त हुए। तब यशोभद्राने महलोंके भीतर ही अनेक धनवान् सेठोंकी चित्रा, रेवती, चतुरिका, मणिमाला, पद्मनी, सुशीला, रोहिणी, सुलोचना और सुदामा आदि बत्तीस कन्याओंके साथ सुकुमालका विवाह कर दिया और प्रत्येकको चाँदीका एक महल सौंप दिया। इस प्रकार उन देवांगनाओंके समान स्त्रियोंमें आनन्द करते हुए सुकुमालकुमार सुखसे काल विताने लगे। परन्तु इस बातसे सर्वथा अजान रहे कि संसारका स्वरूप क्या है और उसमें दुःख है कि नहीं? माताने उनके महलोंमें मुनियोंका आना बंद कर दिया था।

एक दिन किसी व्यापारीने राजाको एक रत्नकम्बल लाकर दिखलाया, परन्तु वह इतना बहुमूल्य था कि लेनेसे असमर्थ होकर राजाने उसे फेर दिया। पीछे वह व्यापारी यशोभद्राके यहाँ गया। यशोभद्राने अपने पुत्रके लिए वह बहुमूल्य कम्बल ले लिया। परन्तु सुकुमालने उसे देखकर कह दिया कि यह कर्कश है, मेरे योग्य नहीं। तब यशोभद्राने अपनी बहुओंके लिए उसकी बत्तीस जूतियाँ बनवा दीं। एक दिन सुदामा उन्हें जूतियोंको पहने हुए अपने मह-

लकी छतपर पश्चिम द्वारके मंडपपर गई थी, लेकिन भीतर जाते समय वह उन्हे वहाँ ही भूल गई। इतनेमे एक गीधने मांसपिंडके धोखे उनमेसे एक पादुका उठा ले गया और राजभवनके शिखरपर बैठकर जब उसने देखा कि यह मांस नही है, तो चोचसे ठोकर मारकर उसे ऑगनमे गिरा दिया। किसीने लेजाकर उसे राजाको दिखलाया। उसे देखकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। राजाने पूछा—यह अमूल्य पादुका किसकी है? तब किसीके बतलानेपर कि यह सुकुमालकी स्त्रीके चरणोकी पादुका है, राजा कौतुकवश सुकुमालको देखनेके लिए गया। सुकुमालकी माता बड़े आनन्दके साथ राजाको अपने महलमे ले गई और सिंहासनपर बैठाकर हाथ जोड़कर बोली:—महाराज, किस लिए दासीके घर पधारे? राजाने कहा:—तुम्हारे पुत्रको देखनेके लिए आया हूँ। सुनते ही यशोभद्राने कुमारको लाकर सन्मुख खड़ा कर दिया। राजाने उसे बड़े प्रेमसे अपने आधे आसनपर बिठलाया। बादमे यशोभद्राने भोजनके लिए प्रार्थना की। राजाने उसे स्वीकार कर कुमारके साथ भोजन किया। फिर राजाने पूछा—तुम्हारे पुत्रको ये तीन पीड़ाएँ क्यो है? एक तो यह जमकर नही बैठ सकता, दूसरे उजेलेमे इसके नेत्रोसे आँसू गिरते है और तीसरे यह भोजन करते समय एक एक चॉवल खाता है। यशोभद्राने कहा:—महाराज, मेरे कुमारको ये पीड़ाएँ नही है, किंतु ये सब उसकी सुकुमारताके भूषण है। यह दिव्य शय्या और दिव्य गद्दीपर ही सोता बैठता है। परन्तु आज आपके साथ सिंहासनपर बैठा है और मैने उसपर मंगलकामनाके लिए सरसो डाले है। उनकी कर्कशतासे यह जमकर नही बैठ सका। दूसरे अभी तक रत्नोके प्रकाशके सिवाय दूसरा प्रकाश इसने देखा ही नही था, आज आपकी आरती उतारनेमे इसे दीपक देखना पड़ा, उसकी तेजीसे इसकी ऑखोमे ऑसू आये। तीसरे इसके भोजनके लिए संध्याको चॉवल धोकर कमलके कोषोंमे रख दिये जाते है और दूसरे दिन सबेरे उनका भात बनाया जाता है। परन्तु आज उन चाँवलोमे आप दोनोके भोजनोकी पूर्तिके लिए थोड़ेसे दूसरे चॉवल मिला दिये गये थे, इसलिए कुमार एक २ चॉवल चुन २ कर खाता था। यह सुनकर राजाको बड़ा भारी आश्चर्य और हर्ष हुआ। पश्चात् राजा यशोभद्राके भेट किये हुए वस्त्राभरण और रत्नादि सुकुमालको ही

प्रेमपूर्वक भेट कर और उसे 'अवन्तिसुकुमार' ऐसा अपर नाम देकर अपने घर गया। अवन्तिसुकुमार उत्तम उत्तम भोगोंको भोगता हुआ काल विताने लगा।

अवन्तिसुकुमारके मामा यशोभद्र महामुनिने अपनी तपस्याके प्रभावसे अवधिज्ञान प्राप्त किया था। एक दिन उन्होंने यह विचार किया कि सुकुमालकी आयु बहुत ही थोड़ी रह गई है। और वह सर्वथा भोगोंमें फँसा हुआ है। कोई ऐसा द्वार भी नहीं है कि जिसमें इस भोगोंसे वैराग्य उत्पन्न होवे, इसलिए इसका कुछ प्रयत्न करना चाहिए। अवन्तिसुकुमारके महलके पास एक उद्यानमें जो जिनमन्दिर था, उसमें उन्होंने योग ग्रहण करनेके दिन ही आकर विश्राम किया। वनमालीके मुखसे उनका यह आगमन सुकुमालकी माताको जब मालूम हुआ, तब वह तत्काल ही उनके पास आई और वन्दना करके बोली—हे नाथ, मुझे अपने पुत्रकी बड़ी भारी चिन्ता है। वह आपके शब्द श्रवणमात्रसे ही तप ग्रहण कर लेगा। और कहीं ऐसा हुआ, अर्थात उसने दीक्षा ले ली, तो निश्चय ही मैं मर जाऊँगी इसलिए दया करके आप किसी दूसरे स्थानपर जाकर योग ग्रहण करें। यह सुन मुनिराज बोले—हे माता, आज योगका दिन है। उसमें जीवोंकी विराधना होनेके कारण यहाँसे दूसरी जगह जाना नहीं बन सकता, इसलिए अब चार महीने तो यहीं चातुर्मासिक प्रतिमायोग धारण करके रहना होगा। यशोभद्रा यह सुनकर विवश चिन्तातुर होती हुई वहाँसे चली आई और मुनिराज प्रतिमायोग धारण कर रहने लगे। शास्त्रोंको पढ़ना पढ़ाना और तत्त्व चिन्तवन करते हुए उन्होंने चार महीने पूरे किये। कार्तिककी पूनोको रातके चौथे पहरमें अपने योगकी निवृत्ति करके जब उन्होंने जाना कि सुकुमालकी निद्रा अब टूट गई है और वह इस समय जगता है तब उसके बुलानेके लिए त्रैलोक्यप्रज्ञप्तिका पाठ करना प्रारंभ किया। उसमें अच्युतस्वर्गके पद्मगुल्मविमानस्थ पद्मनाभ देवकी विभूतिका वर्णन सुनते ही अवन्तिसुकुमारको जातिस्मरण हो आया और उसी समय उन्हें ऐसा वैराग्य हुआ कि महलसे उतरनेको कोई दूसरा उपाय न देख उन्होंने बहुतसे वस्त्रोंको एक दूसरेसे बाँधा और उन्हें नीचे तक लटकाकर उनपरसे ही वे नीचे उतर आये और किसीसे बिना कुछ कहे सुने ही मुनिराजके निकट जिनमंदिरमें पहुँचे। उन्होंने वहाँ जाकर मुनिराजको नमस्कार

किया और दीक्षा माँगी। मुनिराजने कहा:-हे भव्य, तूने अच्छा किया, जो ऐसा निर्मल विचार किया। अब तेरी आयुके तीन दिन शेष है, इसलिए जितने कर्मोंकी निर्जरा हो सके कर डाल। तब सुकुमालने सन्यास ग्रहण करनेकी इच्छा प्रगट कर दीक्षा ले ली और प्रातःकाल ही नगरमे निकलकर एक मनोज्ञ और निर्जन स्थानमे शरीरसे मोह छोड़ प्रायोपगमन सन्यास धारण कर अचल ध्यान लगा दिया। पीछे यशोभद्राचार्य भी वहाँसे निकलकर एक जिनालयमें जा विराजे।

इधर जब सुकुमालकी बत्तीसो स्त्रियोने सुकुमालको नही देखा तब रोते पीटते हुए उन्होंने अपनी साससे जाकर कहा। वह सुनते ही शोकके मारे मूर्च्छित हो गई। सचेत होनेपर यह पागलकी तरह इधर उधर खोज करने लगी। पश्चात् महलसे लटकी हुई वस्त्रमालाको देखकर निश्चय किया कि सुकुमाल वहाँसे उतरकर गया है और वह अवश्य ही मुनिराजके पास गया होगा। परन्तु चैत्यालयमे जाकर देखा तो वहाँ मुनिराजको नही पाया। तब यह समझा कि वे ही सुकुमालको ले गये है। परन्तु कही पता नही लगा। राजादिकोने भी सुकुमालके मोहके वशमे पड़कर बड़ी खोज कराई। परन्तु वह भी सब व्यर्थ गई। उस दिन सुकुमालके शोकके कारण सुकुमालकी स्त्री, माता तथा बंधुवर्गादिकोकी तो बात ही क्या? नगरके पशुपक्षियोने भी आहार पानी छोड़ दिया।

इसी समय जब कि उस निर्जन वनमे स्वपरवैयावृत्यनिरपेक्ष, निर्मलचित्त और मोक्षाभिलाषी सुकुमाल महामुनि द्वादशानुप्रेक्षाओका चितवन कर रहे थे, एक गीदड़ी अपने बच्चेके साथ वहाँ आई और उनके दाहिने पैरको निर्दयी होकर खाने लगी, तथा उसका बच्चा बाये पैरको खाने लगा। लेकिन मुनिराज शरीरसे सर्वथा निस्पृह होकर उस घोर वेदनाको सहने लगे।

यह गीदड़ी और कोई नही, वही अग्निभूतिकी स्त्री सोमदत्ता थी, जिसे सुकुमालने अपने वायुभूतिके जन्ममें लात मारी थी और जिसने प्रतिज्ञा की थी कि मै भवान्तरमे तेरे इसी पैरको खाऊँगी। वह दुष्टिनी अनेक कुयोनियोमे भ्रमण करती हुई यह गीदड़ी हुई थी। सुकुमाल मुनि कंकड़, पत्थर और काँटोंकी भूमिपरसे चलकर इस वनमे आये थे,

॥१२६॥

इससे उनके कोमल पैरोंमेंसे खून निकलने लगा था। वह खून मार्गमें सब जगह टपकता आया था। उस रुधिरको चाटती हुई वह पापिनी गीदड़ी उनके पास तक आ गई थी।

कठोरहृदया स्याली मुनिराजका पैर ही खाकर संतुष्ट नहीं हुई, किन्तु उसने पहले दिन थोड़ा थोड़ा करके, जिससे कि उन्हें खूब कष्ट होवे, घुटनेतक खाया, दूसरे दिन जंघा तक खाया और तीसरे दिन आधी रातको पेट फाड़के उसमेंसे उनकी आँतोंको खींचा। उनके खींचते ही मुनिराजका आत्मा परम समाधिसहित जरा भी परिणामोंमें मलिनता किये विना शरीर छोड़कर चल दिया और उसी समय सर्वार्थसिद्धि स्वर्गमें वे विविध वैभवसम्पन्न प्रभावशाली अहमिन्द्र हुए।

इस प्रकार सुकुमाल स्वामीके घोर उपसर्ग जीतनेके कारण इन्द्रादिक देवोंके आसन कंपायमान हुए और वे सब स्वामीका काल जानकर "जय जय जय" उच्चारण करते हुए नाना प्रकारके तूर्यादि बाजोंके शब्दोंसे दशा व्याप्त करते हुए, जहाँ स्वामीने शरीर छोड़ा था, उन्होंने उस शरीरकी पूजा करके सच्चे हृदयसे स्तवन किया। इनके बाजोंकी आवाज सुनकर माता यशोभद्रा पुत्रका तपग्रहण और सुगतिगमन जानकर शोकको छोड़ अत्यन्त हर्षित हुई और बड़े उत्साहसे पुत्रकी स्तुति करने लगी। प्रातःकाल होनेपर राजादिक गण्यमान्य पुरुषोंको साथ लेकर यशोभद्रा वहाँ गई। वहाँ वह अपने पुत्र सुकुमालका सुकोमल शरीर जो कि आधा पड़ा हुआ था, देखकर शोकके असह्य वेगके कारण मूर्छित हो गई! इसी प्रकार सुकुमाल स्वामीके स्त्री मित्र बांधवादिकोंको भी बहुत शोक हुआ। राजादिकोंको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ कि जिस सुकुमालको सिंहासनपरके एक दो सरसों सहन नहीं होते थे, वही सुकुमाल आज सुमेरुके समान अविचल होकर ऐसे भीषण उपसर्गको सहन करनेमें समर्थ हो गया! धन्य सुकुमाल! तुम धन्य हो!

माता यशोभद्राको सचेत होनेपर ज्ञान उत्पन्न हुआ। वह समझ गई कि यह शरीर ऐसा ही क्षणभंगुर है। इससे तपादिक करके जितना कार्य ले लिया जावे, वही आत्माका कल्याण है। मेरा पुत्र धन्य है,

सौधर्म स्वर्गसे सर्वार्थसिद्धि तक गये। यशोभद्रा आर्यिकाने उग्र तप करके अच्युत स्वर्गमें देव पद प्राप्त किया और शेष आर्यिकाएँ पहले स्वर्गसे सोलहवे स्वर्ग तक कोई देव तथा कोई देवी हुई। सारांश यह कि सबहीने अपने २ पुण्यके अनुसार अच्छी २ पर्याये पाई।

इस प्रकार केवल मायाचारसे ही जिनागमको सुनकर सूर्यमित्र पुरोहित कालान्तरमें सर्वज्ञ पदको प्राप्त हो गया और एक क्षुद्र चांडालिनी सुकुमाल होकर सर्वार्थसिद्धि स्वर्गके अहमिन्द्र पदको प्राप्त हुई। तो विचारनेकी बात है कि अन्य भव्य जन भावसहित जिनागमका पठन, अध्ययन, श्रवण करे, तो क्यों न सर्वोच्च पदको पावें ? अवश्य ही पावें।

(५) भीम केवलीकी कथा।

सौधर्म स्वर्गके कनकप्रभ विमानका स्वामी कनकप्रभ देव अपनी कनकमाला देवीके सहित नन्दीश्वर द्वीपकी वन्दनाको सम्पूर्ण देवदेवियोंके साथ गया था। पूजा, वन्दनाके पश्चात् और दूसरे सब देवोंके चले जानेपर वह जम्बूद्वीप-पूर्वविदेह-पुष्कलावतीदेश-पुंडरीकिनी नगरीके बाहर जो जगत्पाल चक्रवर्तीके बनवाये हुए सुवर्णमयी जिनालय थे, उनकी पूजा करनेके लिए गया। वहाँ शिवंकर नामके उद्यानमें उसे बारह हजार मुनियोंके संघसहित सुव्रताचार्यके दर्शन हुए।

मुनिके उस बड़े भारी संघमें एक भीम नामके साधुको देखकर कनकप्रभको मालूम हुआ कि ये हमारे पूर्वभवको शत्रु हैं। इसलिए उन्हें निःशल्य करनेके लिए कनकप्रभने अपनी स्त्रीसहित मनुष्यका रूप धारण करके सम्पूर्ण मुनियोंकी वन्दनाके अनन्तर भीम साधुको नमस्कार कर धर्मका स्वरूप पूछा। उन्होंने कहा—मै मूर्ख हूँ, इसलिए

अन्य ऋषियोंसे पूछो। तब कनकप्रभने कहा—यदि आप मूर्ख है तो मुनि क्यों हुए? भीमने कहा—मरने पूर्व भा जानकर मैंने यह दीक्षा ले ली है। 'तो वे ही सुनाइए' कनकप्रभके इस प्रकार पूछनेपर भीम मुनि कहने लगे:—

इसी देशके मृणालपुर नगरमें जहाँ कि सुकेत नामका राजा राज्य करता था, एक श्रीदत्त नामका वैश्य था। उसकी विमला नामकी स्त्रीसे एक रतिकान्ता नामकी कन्या हुई थी और विमलाके भाई रतिवर्मके उसकी कनकश्री स्त्रीसे एक भवदेव नामका पुत्र हुआ था। भवदेवकी गर्दन बहुत लम्बी थी, इस कारण उसका दूसरा नाम उष्ट्रग्रीव भी प्रसिद्ध था। उष्ट्रग्रीवने विदेशको जाते समय श्रीदत्तसे कहा कि आप अपनी पुत्री रतिकान्ताको मुझे देनेकी प्रतिज्ञा करें, मैं परदेशको जाता हूँ। यदि आप रतिकान्ता मेरे अतिरिक्त अन्य किसीको देवें तो राजाकी दुहाई है। इस प्रकार आग्रह करके और बारह वर्षकी अवधि देकर भवदेव विदेशको चला गया। उधर जब बारह वर्ष बीत गये तब श्रीदत्तने अपनी बेटी रतिकान्ताका विवाह अशोकदेव और जिनदत्ताके पुत्र सुकान्तके साथ कर दिया।

इसके कुछ दिन पीछे भवदेव विदेशसे आया और यह सुनकर कि मेरी इच्छित रतिकान्ता सुकान्तको व्याह दी गई, ईर्षावश उसने अपने कमाये हुए द्रव्यसे बहुतसे सेवक इसलिए रक्खे कि वे सुकान्तको मार डालें। परन्तु किसी तरह इस बातकी खबर पाकर वे दोनों पुरुष स्त्री शक्तिसेन नामके सहस्रभटकी शरणमें जा रहे। उसके भयसे भवदेव भी झख मारकर बैठ रहा। यह शक्तिसेन शोभा नगरके राजा प्रजापालका सेवक था और जगह बदल कर धन्तग नामके जंगलमें रहता था। सुकान्त और रतिकान्ता शक्तिसेनके जीते जी निर्भय होकर रहे। परन्तु ज्यों ही वह कालके गालमें फँसा कि दुष्ट भवदेवने आग लगाकर उन्हें जला दिया। और पीछे गाँवके लोगोंने यह बात जानकर उसे भी उसी अग्निमें झोंक दिया। इस प्रकारसे मरकर सुकान्त और रतिकान्ता पुंडरीकिनी नगरीके कुबेरदत्त श्रेष्ठीके घर पारावत दम्पति (कबूतर-कबूतरी) हुए और वह भवदेव उसी नगरीके निकट जम्बू ग्राममें मार्जार (बिल्ली) हुआ।

एक दिन वे पारावत-दम्पति जम्बू ग्राममें आये थे कि दुष्ट मार्जारने भक्षण करके उनके प्राण ले लिये । सो दानकी अनुमोदनासे मरकर कबूतर तो हिरण्यवर्म विद्याधर चक्रवर्ती और कबूतरी उसकी पट्टरानी प्रभावती हुई । परन्तु कुछ कारण पाकर दोनोंने ही जिनदीक्षा ले ली ।

एक वार हिरण्यवर्म मुनि अपने गुरुवर्यके साथ शिवंकर उद्यानमें आकर विराजमान हुए और प्रभावती आर्यिका भी अपनी गुरानीके साथ वहाँ आई । तब उस नगरके राजादिक सम्पूर्ण जन इनकी वन्दनाको आये । उनके साथ एक विद्युद्वेग नामके प्यादेकी स्त्री भी आई । यह विद्युद्वेग उस नगरके लोकपालका सेवक था और कर्मके संयोगसे यथार्थमें उस मार्जारने मरकर ही यह पर्याय पाई थी अर्थात् वह मार्जार जिसने पारावतोंका भक्षण किया था, मरकर विद्युद्वेग हुआ था ।

हिरण्यवर्म मुनिका सम्पूर्ण यौवनयुक्त राजरूप देखकर राजा लोकपालने उनके गुरु गुणचन्द्र योगिराजसे पूछा;– भगवान्, ये महात्मा कौन है? और किस कारणसे ऐसी वयमें दीक्षित हो गये है? योगिराजने कहा–पूर्व भवमें इसी पुंडरीकिनी नगरीके कुवेरदत्त श्रेष्ठीके घर ये कबूतर-दम्पति थे। जन्मान्तरके विरोधी मार्जारने जम्बू ग्राममें इनका भक्षण कर लिया। सत्पात्रदानके अनुमोदनके फलसे ये श्रेष्ठ विद्याधर-दम्पति हुए। पश्चात् एक वार इस नगरीको देख इन्हे जातिस्मरण हो आया और इसीसे इन्होंने दीक्षा ले ली। यह सुनकर राजादिक पुरुष प्रसन्नचित्त होते हुए अपने २ घर गये। प्यादेकी स्त्री भी अपने घर गई और उसने वह सब वृत्तान्त अपने पति विद्युद्वेगको जाकर सुना दिया। सुनते ही विद्युद्वेगको भी जातिस्मरण हो गया और उसमें वह मुनि आर्यिकाको अपना वैरी जान उपसर्ग करनेके लिए तत्पर हो गया। रात्रिको उस दुष्टने मुनि और आर्यिका दोनोंको एकत्र बॉध एक श्मशानकी जलती हुई चितामें पटककर जला दिये।

इसके पश्चात् कुछ दिनोंमें वह पापी राजभंडारकी चोरी करता हुआ पकड़ा गया और राजाज्ञासे चतुर्दशीके दिन मारनेके लिए श्मशानमें भेजा गया। परन्तु चंड नामके चांडालने कहा कि आज मेरे त्रसघातका सर्वथा त्याग

है, इसलिए मैं आज इसे नहीं मारनेका। यह सुनकर राजा अत्यन्त कुपित हुआ और उसने आज्ञा दे दी कि इन दोनोंको आज रात्रिभर लाक्षागृहमें (लाखके घरमें) रख सबेरे आग लगा जला देना। आखिर ऐसा ही हुआ। वे दोनों लाक्षागृहमें बन्द कर दिये गये। रात्रि हुई। चोर विद्युद्वेग चांडालसे बोला—भाई, तू मुझे मारकर सुखी क्यों नहीं होता? क्यों मेरे लिए व्यर्थ ही अपने प्राण देता है? चांडालने उत्तर दिया कि जैनधर्मका अतिशय ही ऐसा है। मैंने चतुर्दशीका उपवास किया है और उसमें अहिंसाव्रत ग्रहण किया है, सो मैं मर जाऊँगा, परन्तु दूसरेको नहीं मारूँगा। यह सुनकर विद्युद्वेगको अपनी करणी याद आई। वह अपनी अतिशय निंदा करता हुआ बोला—अहो! मैं इस चांडालसे भी निकृष्ट हूँ, जो मैंने जैनधर्मके परम उपासक मुनि आर्यिकाका वध किया। हाय! मैंने बड़ा बुरा किया। भाई चांडाल, कृपा कर बतला कि मुनि आर्यिकाघाती मुझ पापीकी अब क्या गति होगी? वह बोला—इस महापापके फलसे सातवें नरकके सिवाय अन्यत्र तुझे स्थान नहीं मिलेगा और वहाँ तुझे तेतीस सागर वर्ष पर्यंत महान् दुःखोंका अनुभवन करना होगा। यह सुनकर विद्युद्वेग अतिशय भयभीत हुआ और चांडालके पैरोंपर पड़कर बोला—हे मित्र, मैं इस दुःखसे कैसे छुटकारा पाऊँ? सो कह। तब उसके इस प्रकार कोमल परिणाम देख चांडालने धर्मोपदेश दिया, जिससे कि उसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई। और उस सम्यक्त्वके प्रभावसे उसने जो सातवें नरककी आयु बाँधी थी, उसे छेदकर पहले नरककी चौरासी लाख वर्षकी आयु बाँधकर नारकी हुआ। चंड चांडाल व्रतके प्रभावसे स्वर्गमें देव हुआ।

कालान्तरमें विद्युद्वेगका जीव नरकसे निकलकर पुण्डरीकिनी नगरीमें समुद्रदत्त सेठकी सागरदत्ता भार्याके भीम नामका पुत्र हुआ, सो बहुत ही मूर्ख अक्षरशत्रु हुआ। एक दिन वह शिवंकर नामके उद्यानमें गया था। वहाँ गुप्ताचार्य मुनिको देखकर उसने वन्दना की और उनसे धर्मोपदेश श्रवण किया। पश्चात् उस उपदेशके प्रभावसे अणुव्रत ग्रहण करके जब वह अपने घरको आने लगा, तब आचार्य महाराजने कहा कि भीम, जो तुम्हारा पिता इन व्रतोंका छुड़ाना चाहे तो मुझे वापिस सौंप जाना। भीमने यह बात स्वीकार की और आनन्दके मारे

नाचता हुआ अपने घर गया । यह देख पिताने पूछा-तू नृत्य क्यों करता है ? उसने कहा-मैंने अमूल्य जैनधर्म पाया है, उसकी प्रसान्नतामें नृत्य करता हूँ । तब पिता बोला-तूने बहुत बुरा किया । हमारे कुलमें आज तक किसीने भी जिनधर्म ग्रहण नहीं किया है, सो या तो तू हमारे घरसे निकल जा. अथवा इस धर्मको छोड़ दे । इसपर भीमने कहा-पिताजी, मुनिने मुझसे चलते समय कहा था कि यदि तेरा पिता व्रतोंको छुड़ावै तो तू यहाँ आकर हमको सौंप जाना । यदि आपकी इच्छा ऐसी ही है तो मैं उन्हें जाकर सौंपे आता हूँ । ऐसा कहकर वह उद्यानकी ओर चला । सब लोग उसके पीछे हो लिये । मार्गमें एक चोरको शूलीपर चढ़ता हुआ देखकर भीमको मूर्च्छा आ गई, उसे जातिस्मरण हो आया । अपने पूर्व भवका सारा वृत्तान्त अपने पितादि कुटुम्बी जनोंको जो कि साथमें थे, कह सुनाया । जिससे उन्हें जीवके अस्तित्वमें जो सन्देह था वह दूर हो गया और सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हुई । सबने उसी समय अणुव्रत ग्रहण कर लिये और भीम मुनि हो गया । सो हे महाभाग, मैं वही महाप्रर्व भीम हूँ ।

यह सुनकर वह कनकप्रभ देव जो मनुष्यके रूपमें आया था, बोलाः-मुनिराज, यदि आप अपने उन पूर्व भवके वैरियोंको देखें तो क्या करें ? मुनिने कहा-उनसे क्षमा कराऊँ, क्योंकि मैंने विना कारण उन्हें दुःख दिया था । तब देवने कहा-तो देखिए यह मैं आपके साम्हने खड़ा हूँ, जिसे आपने अग्निमें दग्ध किया था । वह शरीर छोड़कर मैं देव हुआ हूँ । यह सुनते ही भीम मुनिने एक बड़ी आह खींचकर अश्रुपात करते हुए कहा-जो मैंने अज्ञानतासे विना कारण दुःख दिया था सो क्षमा करो । मैं अपने किये हुए पापका फल पा चुका । तब देव देवी मुनिके चरणोंपर पड़े । मुनिराज ध्यानस्थ हो रहे ।

इसके पश्चात् शुक्लध्यानरूपी खड्गसे घातिया कर्मोंका क्षय करके भीम महामुनिने केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्तमें इन्द्रादिक देवोंसे पूज्य होकर वे मेरुगिरिसे मोक्षको पधारे ।

उस प्रकार मुनिघाती चोर भी एक चांडालका उपदेश सुनकर परम गतिको प्राप्त हुआ। यदि अन्य भव्य प्राणी जिनवाणीका, पठन श्रवण करें तो क्यों न त्रैलोक्यनाथके पदको पावें? अवश्य ही पावें।

(६—७) चांडाल और कुत्तेकी कथा।

इसी आर्यखंडकी अयोध्या नगरीमें पूर्णभद्र और मानभद्र नामके दो वैश्य थे। ये दोनों एक माताके उदरमें उत्पन्न हुए सगे भाई थे। एक दिन जिन मन्दिरको जाते हुए मार्गमें एक चांडाल और कुत्तीको देखकर उन्हें अकस्मात् बिना कारण मोह उत्पन्न हुआ, इसलिए जिनवन्दनाके पश्चात् वहाँ एक मुनिराजके दर्शन कर उन्होंने पूछा:—भगवन्, उन दोनोंपर हमारा मोह होनेका क्या कारण है? मुनिराज कहने लगे--

आर्यखंड मगधदेशके शालि नामके ग्राममें सोमदेव विप्र और उसकी अग्निला स्त्रीके अग्निभूति और वायुभूति नामके दो पुत्र थे। वे दोनों एक दिन राजगृहको (दरबारको) जा रहे थे कि मार्गमें बहुतसे लोगोंको उत्साहपूर्वक यात्राके लिए जाते देख उन्होंने पूछा—ये लोग कहाँ जा रहे हैं? तब किसीने कहा कि नन्दिवर्द्धन दिगम्बराचार्यकी वन्दनाको जा रहे हैं। तब 'ओह! क्या कोई हमसे भी अधिक वन्दनीय है?" इस प्रकार घमंड करते हुए वे दोनों वहाँ गये। देखते ही मुनिने, यद्यपि जानते थे, तो भी प्रयोजनसे पूछा—आप कहाँसे आये? उन्होंने कहा—शालि ग्रामसे। मुनिने कहा—नहीं, हम यह नहीं पूछते। यह पूछते हैं कि किस पर्यायसे यहाँ आये हो? विप्रोंने कहा—हम तो यह नहीं जानते हैं यदि आप जानते हैं तो बतलाइए। मुनि बोले—अच्छा, सुनो—

"इसी शालि ग्रामकी सीमामें तुम दोनों स्यालकी पर्यायमें थे। वहाँ एक बड़की खोपड़में कोई प्रमारक नामका कुटुम्बी अपने वस्त्रादिक छोड़कर चला गया था। सो उनपर वर्षाका पानी पड़नेसे गीले हो जानेके कारण वे दोनों

श्याल उन्हे खा गये। परन्तु खाते ही शूल उत्पन्न हुआ, और उसके दुःखके कारण मरकर तुम दोनों हुए। पीछे प्रमादक भी मर गया और अपने ही पुत्रके घर पुत्र हुआ। सो संसारकी विचित्र अवस्था देखकर गूँगा हो रहा है, पूर्वभवके स्मरणके कारण किसीसे कुछ कह नहीं सकता है। अकस्मात् उस समय वह गूँगा वहीं उपस्थित था। सो मुनिके वचन सुनकर लोगोने उससे पूछा तो वह मुँह बोलने लगा और अपनी सब कथा ज्योंकी त्यों कहने लगा। यह देख लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। पीछे वह गूँगा वैराग्य प्राप्त हो दिगम्बर हो गया। उसके साथ और भी अनेक लोगोने दीक्षा ले ली। परन्तु अग्निभूति और वायुभूतिके चित्तपर इसका बुरा असर हुआ। मुनिका सामर्थ्य देख उन्हे उलटा कोप हुआ। अतएव रात्रिको वे दोनों सलाह करके मारनेको आये। परन्तु उस समय क्षेत्रपालने उन्हें ज्योंके त्यों कील दिये। सवेरे लोगोंने उनके इस कृत्यको देखकर अतिशय निंदा की और माता पिताने क्षेत्रपालसे प्रार्थना करके उनकी रक्षा कराई।

पश्चात् वे दोनों श्रावक हो गये और अन्त समयमें समाधिपूर्वक मरण करके प्रथम स्वर्गमें देव हुए। पश्चात् वहाँसे चयकर अयोध्या पुरीके श्रेष्ठी समुद्रदत्त भार्या धारिणीके तुम दोनों पूर्णभद्र और मानभद्र पुत्र हुए। और तुम्हारे माता पिताके जीव नरक तिर्यंच योनिमें परिभ्रमणकर चांडाल और कूकरी हुए है। सो उन्हें देखकर पूर्व जन्मके संस्कारसे तुम्हें मोह उत्पन्न हुआ है।

यह कथा सुनकर उन दोनोंने कूकरी और चांडालको जिन भगवान्‌के वचनरूपी अमृतके पानसे परितृप्त किया। और उन्होने भी सन्याससंयुक्त अणुव्रत ग्रहण कर लिये। पश्चात् चांडाल एक महीनेमें सन्यासपूर्वक मरण करके सोलहवें स्वर्गमे नन्दीश्वर नामका महर्द्धिक देव हुआ। और कूकरी शरीर छोड़कर सातवें दिन उसी नगरके राजा भूपालके रूपवती नामकी पुत्री हुई।

रूपवतीके यौवनवती होनेपर उसके पिताने उसका स्वयंवर रचा। उस समय जब कि वह वरमाला लेकर स्वयंवरके लिए तैयार हो रही थी, उसी महर्द्धिक देवने आकर समझाया कि अब तू इस संसार जालमें क्यों फँसती है?

क्या तू पूर्वभवके दुःखोंको भूल गई? तब देवके सम्बोधनसे रूपवतीको अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न हुआ, इसलिए वह आर्यिकाके व्रत धारणकर समाधिपूर्वक मरण करके स्वर्गमे देव हुई।

इस प्रकार एक वार भी वचनोंकी भावनासे (पूर्णभद्र मानभद्रके उपदेशसे) चांडाल और-कूकरी दोनो ऐसी उत्तम गतिको प्राप्त हुए। यदि अन्य जन निरन्तर जिनवाणी और जिनधर्मकी सेवा करे तो क्या उच्च पदको नही पावे? अवश्य ही पावें।

(८) सुकौशल मुनिकी कथा।

अयोध्या नगरीमें कीर्तिधर नामका राजा और सहदेवी नामकी उसकी रानी थी। एक दिन सूर्यग्रहण देखकर राजा संसारसे उदास हो दीक्षा लेनेके लिए जाने लगा। परन्तु उसके कोई पुत्र नही था, इस कारण राज्यमंत्रियोंने उसे आग्रह करके दीक्षाके लिए नही जाने दिया। तव राजा उदासीन वृत्तिसे राज्य करने लगा। कुछ दिनोमे सहदेवीके गर्भमे पुत्र आया और इस डरसे कि राजा यह जान लेगे तो दीक्षा ले लेंगे, उसने एक गुप्त घरमे पुत्र प्रसव किया। परन्तु वात छुपी न रही। रानीकी दासी प्रसूतिके कपड़ोंको धो रही थी, उसे एक ब्राह्मणने देख लिया। जिससे वह आनन्दित हो राजाके पास बधाई देनेके लिए आया। तव राजा विप्रको द्रव्यादि दे पुत्रको राज्य सौंप दीक्षित हो गया।

पुत्रका नाम सुकौशल रक्खा गया। वह दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि करके युवावस्थामें महामंडलेश्वर राजा हो गया। यह भी मुनिके दर्शनसे कहीं मुनि न हो जावे, इस डरसे माता सहदेवीने अपनी राजधानीमे मुनियोंका आना ही विलकुल वन्द कर दिया।

एक दिन राजा सुकौशल अपनी माता सहदेवीके साथ महलकी छतपर बैठे हुए हवा खा रहे थे। उस समय कीर्तिधर मुनि जो इनके पिता थे चर्याके लिए नगरमे आते हुए दिखाई दिये। परन्तु द्वारपालने उन्हें नगरमें नहीं आने दिया। वे दूसरी ओरको चले गये। यह देख सुकौशलने अपनी मातासे पूछा-यह कौन पुरुप आता था, जिसे द्वारपालने नही आने दिया? माताने कहा-बेटा, यह कोई रंक पुरुप था, तुम्हारे देखने योग्य नहीं था। सहदेवीके ये वाक्य सुनकर सुकौशलकी धात्री (धाय) रोने लगी। विना कारण रोते हुए देखकर सुकौशलने उससे पूछा-क्या रोती है? वह बोली;-जिसे तुम्हारी माता रंक और अदर्शनीय कहती है, वे तुम्हारे पूज्य पिता महातपस्वी कीर्तिधर मुनि है। उनके लिए ऐसे अपमानके शब्द सुनकर ही मुझे रोना आया है। यह सुनकर राजा सुकौशल यह कहते हुए वहाँसे उठ खड़े हुए कि जो अवस्था मेरे पिताने धारण की है, उसीको मै भी धारण करूँगा और उद्यानकी ओर चले। उनके पीछे अन्तःपुरादिके लोग भी गये। वहाँ उक्त मुनिराजके निकट जाकर बोले—हे भगवन्, हे मुनिराज, मुझे दीक्षा दीजिए। सुकौशलके वैराग्यको देख उनकी रानी चित्रमाला छाती पीट पीटकर रोने लगी। परन्तु उसे मुनिराजने रोककर कहा-बेटी, छाती मत पीट। गर्भके बालकको कष्ट होगा। सुकौशलने पूछाः- महाराज, क्या इसके गर्भमे पुत्र है? मुनिराज बोले-हाँ! इसके भाग्यशाली पुत्र होगा। तब सुकौशलने प्रजाजनोंसे कहाः-तुम लोग इसका दुःख न करो कि कोई राजा नही है। मेरे पीछे मेरा पुत्र जो कि चित्रमालाके गर्भमे है, तुम्हारा राजा होगा। इसके पश्चात् सुकौशल गर्भका पट्टबंध करके दीक्षित हो गये और सकल आगमोके पाठी होकर गुरुके साथ तप करने लगे।

एक वार एक पर्वतपर वृक्षके नीचे वर्षाकालका चातुर्मासिक प्रतिमायोग पूर्ण करके सुकौशल मुनि मार्गकी परीक्षाके लिए वहाँसे चले थे कि सामने एक खानेको दौड़ती हुई डरावनी व्याघ्रीको (वाघनीको) देख वे ध्यान धारणकर निश्चल हो गये। यह व्याघ्री सुकौशलकी माता सहदेवी थी। वह अपने पुत्रके शोकसे आर्तध्यानपूर्वक मरण करके इस पर्वतपर व्याघ्री हुई थी। दुष्टाने उस समय ही अर्थात् जब सुकौशल मुनि ध्यानस्थ हो रहे थे, भक्षण करना

प्रारंभ कर दिया। परन्तु मुनिराज कुछ भी नहीं घबराये। शरीरसे ममत्व छोड़ आत्मलीन हो रहे। निदान परम शुक्लध्यानके प्रभावसे उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया और अन्तर्मुहूर्तमें वे शरीर छोड़कर सिद्ध लोकमें जा विराजे।

उस समय "जय! जय! सुकौशल मुनिकी जय हो। जिन्होंने तिर्यंचका घोर उपसर्ग सहन करके मोक्ष लाभ किया" इस प्रकार स्तुति करते हुए आकर देवोंने निर्वाण पूजा की और वादित्रादि बजाये। उनके शब्दोंसे सुकौशल मुनिका उपसर्ग तथा निर्वाणगमन जान, कीर्तिधर मुनिने निर्वाण स्थलपर आकर केवलीकी स्तुति तथा निर्वाण क्रिया की। पश्चात् उस व्याघ्रीको देखकर वे बोले-हे सहदेवि, पूर्व जन्ममें एक दिन सुकौशलके शरीरपर केशरकी ललाई देखकर तुझे मूर्च्छा आ गई थी कि हाय! मेरे पुत्रके यह रक्त किस कारणसे आ गया! और अब इस जन्ममें व्याघ्री होकर तू उसी पुत्रीको खा गई! जिसके वैराग्य शोकसे तूने आर्तध्यानपूर्वक शरीर छोड़ा था। यह हृदयवेधी वचन सुनते ही व्याघ्रीको जातिस्मरण हो गया। अपने घोर कृत्यको स्मरण करके वह पश्चात्ताप करती हुई शिलासे अपना सिर फोड़ने लगी। मुनिराजने उसे परमागमका श्रवण कराकर समझाया, जिससे कि उसने सम्यक्त्वपूर्वक अणुव्रत धारण कर लिये और अन्तमें सन्यासपूर्वक शरीर छोड़कर वह सौधर्म स्वर्गमें देव हुई, जहाँ कि भोगोंकी सामग्री अतिशय रहती है।

इस प्रकार मुनिका भक्षण करनेवाली व्याघ्री भी परमागमके श्रवणसे देव हो गई। यदि संयत प्राणी परमागमका श्रवण, अध्ययन करे, तो क्यों न सम्पूर्ण इच्छित फलोंको पावे? अवश्यमेव पावे।

इति श्रीकेशवनन्दिदिव्यमुनिशिष्यश्रीरामचन्द्रमुमुक्षुविरचित पुण्यास्रवकथाकोषकी सरलभाषाटीकामें श्रवणफलाष्टक नाम तीसरा अष्टक पूर्ण हुआ।

अथ शीलफलाष्टक।

(१—२) राजा मेघेश्वर और रानी सुलोचनाकी कथा।

एक समय सौधर्म इन्द्र अपनी सुधर्मा नामकी सभामें शीलव्रतका वर्णन कर रहा था। उस समय एक रतिप्रभ नामके देवने पूछाः—हे देव, जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें यथावत् शीलव्रतका पालन करनेवाला कोई मनुष्य है या नहीं ? तब इन्द्रने कहाः—हाँ! कुरुजांगल देशमें एक हस्तिनापुर नामका नगर है। वहाँका राजा मेघेश्वर यथावत् शीलव्रतका धारण करनेवाला है और उसकी रानी सुलोचना है, सो वह भी अटल शीलव्रतकी धारण करनेवाली है। इस राजाने पूर्वभवमें एक विद्या सिद्ध की थी। सो किसी विद्याधरके जोड़को देखकर जातिस्मरणके कारण वह फिर भी वशीभूत हो गई है। एक दिन राजा अपनी रानीके साथ कैलाशपर्वतपर वन्दनाके लिए गया। समवसरणमें जाकर उसने श्रीऋषभदेवको नमस्कार किया, स्तुति करके बाहर आया। पश्चात् किसी एकान्त स्थानमें उसने अपनी रानीके साथ क्रीड़ा की, इससे विमानके भीतर ही रानीको निद्रा आ गई। तब राजा वनमें क्रीड़ा करने लगा। वहाँ उसकी दृष्टि एक सुन्दर शिलापर पड़ी, सो उसीपर ध्यान लगाकर बैठ गया, जो कि अब भी वहींपर बैठा है। और रानीने भी सोतेसे उठकर राजाको न देखकर कायोत्सर्ग ध्यान धारण कर लिया है। यह सुनकर वह देव उसी समय उन दोनोंकी परीक्षा करनेके लिए वहाँ गया और अपनी देवीको राजाके पास भेजा कि तू तो जाकर किसी तरह राजाका शील भंग कर, मैं रानीके पास जाता हूँ। देवीने राजाके पास जाकर उसे अनेक प्रकारके हावभाव विभ्रमविलास दिखाकर वशीभूत करनेका प्रयत्न किया परन्तु राजाका चित्त चलायमान न हुआ। मणिके दीपककी तरह दृढ़तासे स्थिर ही रहा। इसी प्रकार उस देवने भी रानीके पास जाकर पुरुषोंकी चेष्टारूप अनेक प्रयत्न किये। परन्तु रानीका चित्त भी चलायमान न हुआ। तब दोनोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। पश्चात् उन्होंने भक्तिपूर्वक राजा रानी दोनोंको हस्तिनापुर लेजाकर महागंगाके जलसे स्नान कराया और स्वर्गलोकके वस्त्र आभूषणोंसे भूषित किया। इस तरह राजा रानीकी पूजा करके

देव देवीसहित अपने स्थान गया और राजा रानीके साथ सुखपूर्वक राज्य करने लगा। इस प्रकार यद्यपि वे दोनों राजा रानी महापरिग्रही महारागी थे, तथापि केवल शीलव्रतके प्रभावसे ही देवोंकर पूजित हुए। सारांश जो कोई मनुष्य अखंड शील पालन करता है वह ऐसी ही अनेक महिमाओंको प्राप्त होता है। ऐसा जानकर शीलका सबको पालन करना चाहिए।

---

(३) कुबेरप्रिय सेठकी कथा।

जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें पुष्कलावतीदेश और उसमें पुंडरीकिणी नामकी एक नगरी है। वहाँका राजा गुणपाल और उसकी एक रानी कुबेरश्रीसे वसुपाल और श्रीपाल नामके दो पुत्र थे। रानी कुबेरश्रीका भाई कुबेरप्रिय था, जो रूपमें कामदेवके समान और चरमशरीरी था। उक्त राजाकी एक दूसरी रानी सत्यवती भी थी, जिसका भाई चपलगति राजाका मंत्री था। एक दिन राजाने एक अपूर्व नाटक देखा और बहुत ही प्रसन्न हुआ। पश्चात् अपने यहाँ रहनेवाली उत्पलनेत्रा नामकी वेश्यासे उसने कहा कि ऐसा अच्छा नाटक तो मेरे ही राज्यमें हुआ है। तब उस वेश्याने कहा–महाराज, यह कुछ भारी कौतुक नहीं है, अपूर्व कौतुक तो मैंने देखा है, जो आपसे निवेदन करती हूँ। एक दिन आपकी सभामें बैठे हुए कुबेरप्रिय सेठको देखकर मैं कामदेवकी पीड़ासे अत्यन्त व्याकुल हुई। उसी समय एक अच्छी दूती उक्त सेठके पास भेजी। उस दूतीने जाकर मेरा यह सब हाल सेठसे कहा। परन्तु सेठने उत्तर दिया कि मेरे स्वदारसन्तोष (परस्त्रीत्याग) व्रत है। यह सुनकर मैं लाचार हो गई। एक वार चतुर्दशीके दिन श्मशानभूमिमें वह सेठ योगधारण करके बैठा था। सो मैं उसको वैसी ही अवस्थामें अपने घर ले आई और सोनेके महलमें ले जाकर उसे अनेक चेष्टाएँ दिखाईं, परन्तु उस सेठका चित्त चलायमान न कर सकी। आखिर उसको उसी श्मशान भूमिमें पहुँचवा दिया। और मैंने उसी समयसे ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार कर लिया है।

सो हे राजन्, मै वेश्या होकर भी उस सेठका चित्त चलायमान न कर सकी, यह बड़ा कौतुक और आश्चर्य है। तब राजाने कहा–उस सेठकी सब ही संतान ऐसी ही शील पालनेवाली है, कुशीली नहीं है।

उत्पलनेत्राने ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया है, यह किसीको ज्ञात नही था, इसलिए एक दिन नगरके कोतवालका पुत्र उसके घर आया और बोला–शृंगारविलेपनादि करो। परन्तु इतनेमें ही मंत्रीका पुत्र आ पहुँचा। तब वेश्याने उसके भयसे कोतवाल पुत्रको किसी संदूकमे बंद कर दिया और मंत्रीपुत्रके साथ बातचीत करने लगी। इतनेमें ही चपलगति मंत्री आया। उसको आते हुए देखकर उसके डरसे उस मंत्री पुत्रको भी वेश्याने उसी संदूकमे बंद कर दिया। चपलगतिने आकर कहा–हे उत्पलनेत्रे, तू शृंगारादि कर लेना, मै शामको बहुतसा द्रव्य लेकर आऊँगा। उत्पलनेत्राने कहा–चपलगति, आप जब अपनी बहिन सत्यवतीके विवाहमें मेरा हार ले गये थे, तब आपने कहा था कि सत्यवतीके विवाहमें पीछे तेरा हार दे देवेगे। सो अब वह हार दे दीजिए। चपलगतिने कहा–अच्छा, तेरा हार दे देंगे। तब उस वेश्याने कहा–हे संदूकमे बैठे हुए देवो, इस विषयमें तुम मेरे साक्षी हो।

दूसरे दिन राजाकी सभामें जाकर उत्पलनेत्राने चपलगतिसे हार माँगा। चपलगतिने कहा–कहाँका हार? मैं नही जानता तूने हार किसको दिया था? वेश्याने कहा–यदि खबर ही नहीं है तो कल दिन क्यों कहा था कि मै तेरा हार दे दूँगा? मन्त्रीने कहा–नहीं, मैने ऐसा कभी नहीं कहा। तब राजाने कहा–उत्पलनेत्रे, तेरा इस विषयमे कोई साक्षी भी है? उसने कहा–हाँ महाराज, है। राजाने कहा–तो उसको बुलाओ, तभी निर्णय होगा। राजाके कहनेसे संदूक मँगाया गया। तब वेश्याने कहा–हे संदूकमें बैठे हुए देवो, सत्य कहो कि कल चपलगतिने मुझे हार देनेको कहा था या नहीं? तब संदूकमे बैठे हुए उन दोनोंने कह दिया—हाँ! अवश्य ही कहा था। इस कौतुकको देखकर राजाने संदूक खुलवाकर देखा तो उसमे मंत्री पुत्र और कोतवाल पुत्र निकले। उन्हे निकलते हुए देखकर सब सभाके लोगोंने बड़ी हँसी की, जिससे वे दोनो बड़े लज्जित हुए। राजाको इस कौतुकसे वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने सत्यवतीको सेवक भेजा और कहा कि तेरे विवाहमे चपलगति जो उत्पलनेत्राका हार लाया था सो

दे दे। सत्यवतीने वह हार उस सेवकको दे दिया। सेवकने राजाको और राजाने उसी वेश्याको दे दिया। पश्चात् राजाने क्रोधके वशीभूत होकर चपलगतिकी जिव्हा (जीभ) काटनेकी आज्ञा दी, परन्तु कुबेरप्रियने राजासे निवेदन करके चपलगतिकी जीभ नहीं काटने दी। राजाने कुबेरप्रियको मंत्रीपद दिया। कुबेरप्रियके मंत्री होनेसे चपलगतिको ईर्षा और क्रोध उत्पन्न हुआ तथा सत्यवतीने हार दे दिया, इससे उसपर भी वह क्रोध करने लगा और रात दिन इन् दोनोका बुरा विचारने लगा।

एक दिन यह चपलगति विमलजला नदीपर क्रीड़ा करनेके लिए गया। वैलोके झुण्डमे वहाँ उसने एक सुन्दर मुद्रिका (अँगूठी) देखी और उठा ली। इतनेमे ही व्याकुलचित्त चितागति नामका विद्याधर वहाँ आकर इधर उधर कुछ ढूंढ़ने लगा। तव चपलगतिने उससे पूछा--भाई, इधर उधर क्या देखते हो? विद्याधरने कहा-मेरी मुद्रिका खो गई है, उसको ढूंढ़ रहा हूँ। यह सुनकर चपलगतिने उसे मुद्रिका दे दी। विद्याधरको संतोष हुआ। उसने चपलगतिसे पूछा-आप कौन है? चपलगतिने कहा-मै कुबेरप्रियका देवपूजक (सेवक) हूँ। विद्याधरने कहा--जो तुम कुबेरप्रियके सेवक हो तो कुबेरप्रिय मेरा मित्र है, उसको यह मुद्रिका दे देना। यह काममुद्रिका है, इसके प्रतापसे मनचाहा रूप वन जाता है। मै उससे फिर कभी यह मुद्रिका वापिस ले लूँगा। ऐसा कहकर वह मुद्रिका दे विद्याधर तो चला गया और चपलगति उसे लेकर वहाँसे लौटा। घर आकर उसने अपने भाई पृथुको सिखाया कि चतुर्दशीके सायंकालके समय तू इस मुद्रिकाको पहनकर सत्यवतीके घर जाना और जब वह तुझे आसनपर विठा देवे, तव अपने मनमे ऐसा विचार करके कि "मेरा रूप कुबेरप्रियकासा हो जाय" इस अँगूठीको अपने चारो तरफ फिराना, तव तेरा रूप कुबेरप्रियकासा हो जायगा। फिर सत्यवतीके पास ही कामचेष्टा भ्रूविक्षेपादिक करना। उस समय मै राजाके पास रहूँगा, इसलिए अपना काम वन जायगा। चतुर्दशीके दिन पृथुने ऐसा ही किया और चपलगतिने उसी समय राजासे कहा-महाराज, इस समय कुबेरप्रिय सत्यवतीके साथ कामक्रीड़ा करता है। मैने पहले यह वात कई वार सुनी थी, परन्तु वह आज प्रत्यक्ष हो गई। राजाने कहा-नहीं, कुबेरप्रियने आज उपवास किया है, उसकी यह वात

संभव नहीं हो सकती। चपलगतिने यह कहकर कि महाराज, प्रत्यक्षमें क्या संदेह है? चलिए स्वयं न देख लीजिए। राजाको लेजाकर अपने भाईको कुवेरप्रियके रूपमें दिखला दिया और कहा–महाराज, इन दोनोंको दंड मिलना चाहिए। राजाने कहा–अच्छा तुम्हीं इसका दंड दो। चपलगतिने "बहुत अच्छा" कहकर कुवेरप्रियको सिर काटनेका हुक्म दिया और सत्यवतीकी नाक काटनेका। महा न्यायवान् कुवेरप्रियको कल सवेरे मारूँगा, और सत्यवतीकी नाक काटूँगा, ऐसा विचार कर अपने भाईको लेकर वह अपने घर गया और भाईको घर छोड़कर श्मशानभूमिसे कुवेरप्रियको उठा लाया। नगरवासियोंको यह सुनकर बड़ा क्षोभ हुआ। सेठ कुवेरप्रियने प्रतिज्ञा की कि जो मैं इस उपसर्गसे बचूँगा, तो पाणिपात्रमें भोजन करूँगा। तथा ऐसी ही प्रतिज्ञा सत्यवतीने की कि मैं बचूँगी तो आर्यिका हो जाऊँगी। और जो इष्टदेवकी पूजा करनेका घर था, वह उसमें कायोत्सर्ग धारण कर बैठ गई। राजा दुःखसे व्याकुल होकर अपनी शय्यापर पड़ रहा। सवेरे ही चपलगति कुवेरप्रियको केश पकड़कर श्मशानभूमिमें लाया और वहाँ उसके मारनेके लिए चाण्डालको बुलाया। पश्चात् चांडालको तलवार देकर आज्ञा दीः–इसका काम तमाम कर दो। जिस समय उसके मारनेकी आज्ञा हुई, उसी समय उसके परम शीलके प्रभावसे देवोंके तथा असुरोंके आसन कंपायमान हुए और अवधिज्ञानसे कुवेरप्रियपर उपसर्ग जानकर वे शीघ्र ही वहाँ आये। इधर कुवेरप्रियका यह हाल देखकर समस्त नगरके लोग हाहाकार करने लगे और "कुवेरप्रिय! हाय, यह तुम्हारा क्या हाल हुआ?" ऐसा चिल्लाते हुए दुःखी होकर उसकी ओर देखने लगे। चांडालने यह कहकर कि 'अब कुवेरप्रिय, अपने इष्टदेवताका स्मरण कर लो' उसके गलेपर तलवारका प्रहार किया। परन्तु वह तलवार कुवेरप्रियके कंठका स्पर्श करते ही उसके कंठमें सुन्दर हाररूप परिणत हो गई। तब चांडाल "जय जय" शब्द करता हुआ अलग जा खड़ा हुआ। यह देखकर चपलगतिको और भी ईर्षा हुई, इसलिए उसने सेवकों सहित और भी अनेक शस्त्रोंका वार किया। परन्तु वे समस्त शस्त्र कोई फलरूप और कोई पुष्परूप हो गये। देवोंने पंचाश्चर्य किये। यह खबर राजाको भी हुई। इसलिए उसने आकर चपलगतिका काला मुँहकर गधेपर चढ़ाकर देशसे निकलवा दिया और कुवेरप्रियसे क्षमा माँगी। कुवेरप्रियने क्षमाकरके कहा–मैं तो दिगम्बरीय दीक्षा धारण करूँगा। राजाने कहा–मैं

भी धारण करूँगा। तव वसुपालको राज्य श्रीपालको यौवराज्य पद और कुवेरप्रियके पुत्र कुवेरकांतको श्रेष्ठी पद देकर उन्होंने अनेक जनोंके साथ जिनदीक्षा ग्रहण की। सत्यवती आदिक अनेक रानियोंने भी आर्यिकाके व्रत धारण किये। उस चांडालने प्रतिज्ञा की कि मै भी पर्वके दिनोंमे अहिंसाव्रत और उपवास करूँगा। यह वही चांडाल है, जिसने लाक्षागृहमें (लाखके घरमे) विद्युद्वेगके लिए धर्मोपदेश दिया था। कुवेरप्रिय और गुणपाल मुनिने घोर तप करके कैलाशपर केवलज्ञान प्राप्त किया और कुछ काल वाद वहींसे मोक्षमें गये। इस तरह कुवेरप्रिय बहुत परिग्रही होनेपर भी देवोंके द्वारा पूजित हुआ। शीलके प्रभावसे क्या नहीं हो सकता है? अर्थात् सव कुछ हो सकता है।

(४) सीताजीकी कथा।

सती सीता रामचन्द्रकी पट्टरानी थीं। जव वे वनवासके दिन पूरे करके सपति वापिस अयोध्यामे आई तव उनको चौथे स्नानके वाद पिछली रातमे दो स्वप्न आये। प्रातःकाल रामचन्द्रसे सीताने उनका फल पूछा। उन्होंने कहा:-तुम्हारे दो पुत्र होंगे, मगर कुछ कष्ट भी उठाना पड़ेगा। सीताने मंगलकी कामनासे तीर्थयात्रा की, भूखोंको अन्न, नंगोंको कपड़े दिये और रातदिन आनेवाले दुःखके शमनकी भावना करने लगी।

अयोध्यामे चारो ओर इस वातकी चर्चा होने लगी कि वहुत दिनो तक सीता रावणके यहाँ रही थी। उसको रामचन्द्रने विना सोचे समझे घरमे रख ली है, यह अच्छा नहीं किया। प्रतिष्ठित लोग इकट्ठे होकर रामचन्द्रके पास गये। उक्त वात रामचन्द्रसे कही। रामचन्द्रने लक्ष्मणके मना करनेपर भी कृतान्तवक्रको बुलाकर सीताको वनमें जाकर छोड़ आनेकी आज्ञा दी। कृतान्तवक्र सेनापति सीताको जंगलमे ले गया और दुःखी हो रामचन्द्रकी आज्ञा उसे सुनाई। सीता सुनते ही मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ी। कृतान्तवक्र भी उनके दुःखसे दुःखी हो रोने लगा। कुछ काल वाद सीताने चैतन्य होकर सेनापतिको रोते देख धैर्यके साथ उससे कहने लगी:- भाई, अपना दुःख मै आप ही भोगूँगी। पूर्वमे कर्म किये उनका फल

प्राणीमात्रको अवश्य भोगना ही पड़ता है। तू जा और स्वामीसे कहना कि जिस भाँति मुझ निरपराधीको जनापवादसे परित्याग किया है ऐसे ही कहीं जैनधर्मको मत छोड़ देना। कृतान्तवक्र उचित या अनुचित आज्ञाओंका पालन करानेवाली दासताको धिक्कार देता हुआ वापिस लौट गया, और सीताकी कही हुई सब बात उसने जाकर रामचन्द्रको कह सुनाई। रामचन्द्र मूर्छित होकर गिर पड़े। लक्ष्मण भी बहुत ही व्याकुल हुए। नगरवासी भी जिन्होंने सीतापर दूषण लगाकर उसे निकलवा दी थी उसकी धर्मनिष्ठा देखकर बहुत दुःखी हुए। मगर मिसल मशहूर है कि "अब पछताये होत क्या ? जब चिड़िया चुग गई खेत" के अनुसार सब मन मार कर रह गये। अनेक प्रकारके उपचारों द्वारा रामचन्द्रको चेता कर कृतान्तवक्रने उन्हें धैर्य बँधाया। सीताके भण्डारी भद्रकलशको रामने आज्ञा दी कि जिस भाँतिसे सीताकी मौजूदगीमें सदाव्रत दान पुण्य आदि होते रहते थे उस ही भाँति अब करते रहना। इधर सीता भी संसारकी असारताका विचार करती हुई इधर उधर भ्रमण करने लगी। इतनेहीमें कोई राजा जो हाथी पकड़नेके हेतु इस वनमें आया हुवा था, इधरसे आ निकला। सीताके अनुपम रूपको देखकर उसके पास आया और विनीत हो कहने लगा—बहिन, तुम कौन हो और इस वनमें क्यों भटकती फिरती हो ? सीताने अपना सब हाल बता उसका परिचय पूछा। राजा बोलाः—मैं पुण्डरीकिणी नगरीका सूर्यवंशी राजा हूँ। मेरा नाम वज्रजंघ है। देवी, तू मेरे साथ चल और आनन्दसे भगवताराधना करती हुई अपना समय बिताना, मैं अपनी बहिनसे भी बढ़कर तेरी सेवा करूँगा। सीता उसके साथ चली गई। नौ मास पूर्ण होनेपर सीताने दो पुत्र प्रसव किये। वे दोनों लवांकुश और मदनांकुश नामसे प्रसिद्ध हुए। वज्रजंघने बहुत आनन्द मनाया। सुखसे दोनोंका बचपन बीतने लगा। देश देशान्तरोंमें फिरते हुए एक सिद्धार्थ नामके क्षुल्लक एक बार पुण्डरीकिणी नगरीमें आये। लोग उनके दर्शनोंको जाने लगे। दोनों बच्चे भी सीताके साथ दर्शनको गये। क्षुल्लकको उन्हें देख उनपर मोह हो आया। उन्होंने कई दिनों तक वहाँ रहकर दोनोंको शास्त्र और शस्त्र विद्या सिखाई। दोनों बालक जब जवान हुए, वज्रजंघने अपनी १६ कुमारियोंका लवांकुशके साथ व्याह करवा दिया। मदनांकुशके लिए पृथ्वीपुरके राजा पृथुसे उसकी पुत्री माँगी किन्तु उसने उत्तरमें कहला भेजा—" क्या तुम डूबकर औरोंको भी डुबाना चाहते हो ?

जिसके बापका व कुलका कुछ पता नहीं है उसके साथ मैं अपनी पुत्रीका व्याह नहीं कर सकता।" वज्रजंघ कुपित होकर दलबल सहित पृथुपर चढ़ दौड़ा। पृथु भी अपनी सेना सहित युद्ध क्षेत्रमें आ डटा। दोनोंमें घोर युद्ध हुआ। लवांकुश और मदनांकुशने भी शत्रुओंको वे हाथ दिखाए कि बड़े २ सेनापति भी उनकी असाधारण वीरताके लिए दाँतों उँगली दबाने लगे। पृथुकी सारी सेना तितर बितर हो गई। सहसा पृथुकी और लवकी मुठभेड़ हो गई। दोनोंमें थोड़ी देरतक घोर युद्ध हुआ। अन्तमें पृथु हार कर भागने लगा। लवने तिरस्कार करते हुए कहा:-जिसके बाप व कुलका कुछ पता नहीं है उसको बेटी देनेमें तो तुम्हें लज्जा आती थी, क्या आज उसहीको अपना मान प्रतिष्ठा बल पौरुष देते हुए शर्म नहीं आती है? पृथुने बहुत नम्र होकर उनसे क्षमा चाही और अपनी पुत्री कनकमालाका उसने मदनांकुशके साथ व्याह करवा दिया। वज्रजंघ दोनों भाइयों सहित अपनी नगरीमें लौट आया।

कुछ दिन बाद दोनों अपने अपूर्व रणकौशल व बलका प्रभाव देशपर जमानेके लिए ससैन्य वहाँसे रवाना हुए, और अनेक देश नरेशोंको परास्त कर विजय दुंदुभि बजाते हुए पुनः पुण्डरीकिणीको लौट आये।

एक बार नारद मुनि घूमते हुए जहाँ सीता रहती थीं वहाँ आ निकले। सीताके पास दोनों युवकोंको बैठे देख बोले:-तुम दोनों राम और लक्ष्मणके समान पराक्रमी और दक्ष बनो। उन्होंने इनका वृत्तान्त पूछा। कलह फैलानेवाले नारदजीने मर्मभेदी वाक्योंमें सब हाल कह सुनाया। सुनकर दोनों भाई राम लक्ष्मणपर बहुत ही क्रोधित हुए। उन्होंने अपनी सेना ले अयोध्यापर चढ़ाई कर दी। राम लक्ष्मण भी युद्धके मैदानमें आ रहे। घमसान युद्ध होना प्रारम्भ हुआ। प्रभामण्डल, सीता, सिद्धार्थ, नारदादि विमानमें बैठ युद्ध देखने लगे, अपनी अपनी जोड़ी देख दोनों ओरके योद्धा परस्पर भिड़ गये। रामसे लव और लक्ष्मणसे अंकुशने लड़ाई शुरू की। राम लक्ष्मण, दोनों भाइयों-की वीरताको देखकर तारीफ़ करने लगे और अपने चक्रको विफल होते देख स्थगित हो देखने लगे। उसी समय नारदने आकर दोनों भाइयोंको परिचय कराया। रामने तत्काल सुलहका झण्डा खड़ा करवा दिया और अपने पुत्रोंसे मिलनेके लिए व्यग्र हो उठे। दोनों भाई भी जाकर राम लक्ष्मणके पैरों गिरे। इन्होंने उन्हें अपने गलेसे लगा लिया,

और सब मिलकर अयोध्यामें गये। सीता आदि भी पुनः पुण्डरीकिणीको लौट गये।

एक वार सब मन्त्रियोंने कहाः—महाराज, जगत्प्रसिद्ध महासती सीताको बुलाना चाहिए। राम बोलेः—मुझे उसके बुलानेमें कुछ उज्र नहीं है; किन्तु मैंने लोगोंके संशयसे उसे निकाली है। अतः जबतक लोगोंका सन्देह नहीं मिटेगा मैं उसे नहीं बुलाऊँगा। सुग्रीवादि रामचन्द्रसे यह कहकर पुण्डरीकिणीको गये कि हम उसे यहाँ लाकर उसकी अग्नि परीक्षा करवाएँगे; और सीताको ले आये। एक बड़े भारी मैदानमें भव्य मण्डल सजाया गया। सारी अयोध्याके लोग बुलाये गये। उच्च सिंहासनपर राम और लक्ष्मण बैठे। सीता अपराधियोंकी भाँति सामने खड़ी हुई। राम बोलेः—सीता, लोगोंको तुमपर सन्देह है कि तुम रावणके घरमें इतने दिनतक रहकर सती कैसे रही होगी। इस संन्देहको दूर करनेके लिए आज तुम अग्नि परीक्षाके लिए बुलाई गई हो। सामने जो अग्निकुण्ड देखती हो वह इस ही हेतुसे वनवाया गया है। सीता 'वहुत अच्छा' कह वहाँसे अग्निकुण्डके पास पहुँची। धधकती हुई आगकी लपटें उन्नत हो आकाशसे वातें कर रही थीं। हवाके झोंकोंसे लपटें टकराकर जो आवाज़ निकालती थी वे मानो सीताको सम्बोधन कर कह रही थीं कि "सीता, तू वेफिक्र होकर हमारी गोदमें आ जा, तुझे तेरे सत्यके प्रतापसे कुछ कष्ट न होगा।"

सीता उच्च स्वरसे बोलीः—हे अग्नि, तेरा कर्म भस्म करनेका है। संसारके सारे पदार्थोंको तू जलाकर खाक कर देती है। मगर सत्यको तू नहीं जलाती। सत्याश्रयीकी तू सदा रक्षा करती है। अतः हे माता; यदि मैंने मन, वचन या कायसे स्वप्नमें भी रामके सिवाय यदि किसी पुरुषका ध्यान किया हो, किसीके रूप यौवनकी प्रशंसा की हो, किसी कारणसे मेरा शरीर रोमाञ्चित हुआ हो तो मुझे भी तू जलाकर भस्म कर देना" यह कहकर सीता अग्निकुण्डमें कूद पड़ी। राम लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये। नगरवासी 'हा! जानकी, हा! जानकी' कह चिल्लाने लगे। इसी समय एक घटना हुई उसका प्रसंगवश यहाँ उल्लेख किया जाता है।

विजयार्द्धकी दक्षिणश्रेणीमें गुंजपुर नामका नगर है। वहाँके राजा सिंहविक्रमकी रानी श्रीकी कोखसे

सकलभूपण नामका पुत्र हुआ था। सकलभूपणकी आठसौ रानियोंमें किरणमंडला प्रधान थी। किरणमंडलाके पिताकी वहिनका पुत्र हेमसुख था। उसको यह किरणमंडला सोदर (सगी) वहिनके समान प्रिय थी। कुछ दिनोंमें राजा सिंहविक्रम तो साधु हो गये और सकलभूपण राजा हुए। एक दिन जब कि राजा बाहर उद्यानमें क्रीड़ा करने गये थे, सब रानियोंने आकर किरणमंडलासे कहा:-हेमसुखका रूप पटपर लिखकर तो दिखाओ, क्योंकि तुम्हे चित्रविद्या अच्छी आती है। किरणमंडलाने उत्तर दिया;-किसी पुरुपका रूप लिखना अनुचित है। तब सबने कहा;-किसी दुष्ट भावसे लिखना अनुचित है, शुद्ध परिणामोंसे लिखनेमें कोई दोप नहीं है। ऐसी प्रार्थना करनेसे उसने चित्रपट खींचा। इतनेमें राजा आ गया, और उस रूपको देखकर क्रोधित हुआ। सब रानियोंने राजाके पैरों पड़कर उसे शान्त किया। परन्तु कुछ काल वीत जानेपर किसी एक रात्रिको सोते हुए स्वप्नमें किरणमंडलाके मुखसे "हा हेमसुख," ऐसा निकल गया। सुनकर राजाको उसके शीलव्रतमें कुछ संशय हुआ। जिससे वैराग्य उत्पन्न होनेके कारण उसने जिनदीक्षा ले ली। तपके प्रभावसे सकल श्रुत ज्ञानका धारक हो गया। अनेक ऋद्धियों सहित महेन्द्र नामके वागमें (वनमें) प्रतिमायोगसे स्थित हुआ। इधर किरणमंडला आर्त्तध्यानसे मरकर व्यंतरी हुई। उस व्यंतरीने उसी उद्यानमें ध्यान लगाये हुए उक्त मुनिको सात दिन तक घोर कष्ट दिया। जिससे अन्तमें उन्हे तीनों लोकोंका प्रगट करनेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। उनकी पूजा करनेके लिए उस समय इन्द्रादि देव जा रहे थे। इन्द्रका विमान ठीक उस समय जब कि सीता अपनी प्रतिज्ञा सुनाकर कुण्डमें कूदी थी, कुण्डपर पहुँचा। इन्द्रने सतीकी रक्षाके लिए तत्काल ही मेघकेतु देवको आज्ञा दी। देवने अपनी विक्रियासे उस अग्निकुंडको एक मनोहर तालाव बना दिया। तालावके मध्य भागमें हजार दलका एक कमल और उस कमलकी मध्यकर्णिकाके ऊपर एक सिंहासन स्थापित किया। उसपर सीताको वैठाकर ऊपरसे मणियोंका मंडप कर दिया। आकाशमार्गसे पंचाश्चर्योंकी वर्षा की। यह देखकर लोगोंको बड़ा आनंद हुआ। रामचन्द्र देवमानवपूजित जानकीके पास आये और कहने लगे-प्रिये, मैने तुम्हे लोगोंके बुरा भला कहनेसे छोड़ी, सो क्षमा करो और अब मेरे साथ यथेष्ट भोग

भोगो। सीताने कहा:—आपके लिए तो क्षमा ही है परन्तु जिन कर्मोंने यह दुःख दिया है, उनके लिए क्षमा कैसे हो सकती है ? उनके नाश करनेके लिए इस असार संसारमे अब तपश्चरण शस्त्रको ग्रहण करूँगी, यह कह सीताने अपने केश उखाड़ रामके साम्हने फैंक दिये और देवपरिवारसहित उसने समवसरणमें जाकर श्रीजिनेन्द्रदेवकी वन्दनाकर पृथ्वीमाति नामकी आर्यिकासे दीक्षा ले ली। इधर रामचन्द्र भी केशोंका आलिंगन कर मूर्छित हो गये। अन्तःपुरकी रानियोंने शीतोपचारसे सचेत किये। तब वे मोहके वश समस्त परिवार सहित सीताका तप भंग करनेके लिए गये। परन्तु श्रीजिनेन्द्रदेवके दर्शनमात्रसे ही उनका यह मोह शान्त हो गया। आर्त्तध्यानको छोड़कर श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा और स्तुति करके वे मनुष्योंके बैठनेके स्थानमें जा बैठे। धर्म श्रवण किया। पश्चात् राम लक्ष्मणादिक समस्त जनोंने सीतासे क्षमा प्रार्थना की और नगरमें प्रवेश किया। सीताने बासठ वर्षतक तपश्चरण किया और अन्तमें वह तेतीस दिनका सन्यास धारणकर शरीरको छोड़ अच्युत नामके सोलहवें स्वर्गमे स्वयंप्रभ नामकी प्रतीन्द्र हुई। इस तरह जब एक स्त्री—बाला भी देवोंसे पूजित हुई, तो और जीव जो कि इस अनुपम शीलव्रतका सेवन करेंगे, सुरपूज्य क्यों नहीं होंगे ? अवश्य होंगे।

---

(५) प्रभावती रानीकी कथा।

वत्सदेशमें एक रौरकपुर नगर है। वहाँ एक उद्दायन नामका राजा राज्य करता था। उसके शुद्ध जैनमतको धारण करनेवाली एक प्रभावती नामकी रानी थी। एक समय राजा किसी शत्रुके ऊपर चढ़ाई करनेको गये, तब रानी प्रभावतीकी धाय मंदोदरी सन्यास धारण कर वहाँसे चली गई। परन्तु थोड़े ही दिनोंमे वह अन्य बहुतसी सन्यासिनियोंके साथ आई और नगरके बाहर ठहरी। प्रभावतीके निकट किसी स्त्रीके द्वारा अपने आनेके समाचार कहला भेजे। उस स्त्रीने जाकर कहा:—मंदोदरी आपको देखनेके लिए आई है और नगरके बाहर ठहरी है। इसके उत्तरमे रानीने कहला भेजा:—वह मेरे ही यहाँ आवे मैं नहीं आ सकती। यह सुनकर मंदोदरी क्रोधित हो स्वयं

उसके घर गई। परन्तु प्रभावतीने इसको न प्रणाम किया, न आसनसे उठी। आसनपर बैठे ही बैठे उसके लिए आसन डलवा दिया। तब मंदोदरीने कहा:-पुत्री, प्रथम तो मै तेरी माता दूसरे फिर तपस्विनी हो गई, फिर भी तूने मुझे नमस्कार क्यो नही किया? प्रभावतीने कहा:-मै सन्मार्ग (जैनमार्ग)को धारण करनेवाली हूँ और तू मिथ्यामार्गको धारण करनेवाली है, इसलिए मैने प्रणाम नही किया। सन्यासिनीने कहा:—शिवप्रणीत (शैवमत) धर्म सन्मार्ग क्यो नही हो सकता? रानीने कहा--नही। इस तरह दोनोका वड़ा शास्त्रार्थ हुआ। और अन्तमे रानीने मंदोदरीको निरुत्तर कर दिया। तब वह क्रोधित हो वहाँसे चली गई और रानीका एक मनोहर चित्र खीचकर उसने उज्जयनीके राजा चन्द्रप्रद्योतको जा दिखाया। चन्द्रप्रद्योत देखते ही आसक्त हो गया। किसी तरह यह भी सुन लिया कि राजा उदायन किसी राजापर चढ़ाई करने गया है, वहाँ नही है। तब वह अपनी समस्त सेना ले रौरकपुर आ पहुँचा। नगरके वाहर अपनी सेनाका पड़ाव डाल दिया और एक अतिचतुर मनुष्य प्रभावती देवीके (रानीके) पास भेजा। उसने उसके आगे अपने स्वामीके रूप सौदर्यके साथ २ अनेक गुणोकी खूब प्रशंसा की। रानीने यह जवाब देकर कि भाई, उसके गुणोसे मुझे क्या? मेरे तो उदायनको छोड़, और सब पुरुष पिता पुत्र भाईके समान है, उस दूतको निकलवा दिया और उस राजाके सेवकोका अपने यहाँ आना सर्वथा बंद कर दिया, बची हुई सेना नगरके दरवाज़े बंद कर, नगरकी रक्षा करनेके लिए किलेपर जा बैठी। चन्द्रप्रद्योतने नगर लेनेका विचार कर, युद्ध प्रारम्भ किया। यह खबर सुन प्रभावती उपसर्ग मिटने तकका अनशन कर अपने इष्टदेवके मंदिरमें जा बैठी। इसी समय कोई देव आकाशसे जाता था, उसने रानीका अवधिज्ञानके द्वारा कष्ट जान चण्डप्रद्योतकी सारी सेना अपनी माया बलसे उज्जयनी पहुँचा दी और आप उसका रूप धारण कर रानीके शीलकी परीक्षाके लिए उद्यत हुआ। उसने अपनी विक्रिया ऋद्धिसे सेना बना ली और मायासे नगरकी रक्षा करनेवाली किलेकी सेनाका नाशकर नगरमे प्रवेश किया। फिर नगरके मध्यभागमे उस जिनमंदिरमे गया जहाँ कि प्रतिज्ञा करके प्रभावती ध्यानस्थ बैठी थी। मंदिरमे जाकर प्रभावतीके सन्मुख अनेक पुरुषविकार भ्रूविक्षेपादिक किये, परन्तु उसका चित्त चलायमान

न हुआ। तब देवने अपनी माया समेट प्रभावतीकी पूजा की और संसारमें घोषणापूर्वक प्रकट करके कि यह महा शीलवती है, अपने स्थान गया।

राजा उद्दायनने लौटकर ये सब समाचार सुने। उसे बड़ा हर्ष हुआ। कुछ काल राज्यकर सुकीर्ति नामके अपने पुत्रको राज्य दे वर्द्धमानस्वामीके समवसरणमे अनेक राजाओंके साथ दीक्षित हो गया। प्रभावती आर्यिका हो गई। राजा उद्दायन तो घोर तप करके अष्ट कर्मोंका नाशकर मोक्षको गया और प्रभावती पाँचवे ब्रह्मस्वर्गमे देव हुई। इस तरह प्रभावती स्त्री होकर भी शीलके प्रभावसे दोनों लोकोंमें देवोंसे पूजित हुई, तो और भी भक्त जन जो इसको धारण करे, क्यों न पूजित होवेंगे? अवश्य होंगे।

(६) श्रीवज्रकिरण राजाकी कथा।

अयोध्याके राजा दशरथके पराजिता, सुमित्रा, कैका (कैकयी) और सुप्रभा नामकी चार रानियाँ थीं। उनसे चार पुत्र उत्पन्न हुए। पराजितासे रामचंद्र, सुमित्रासे लक्ष्मण, कैकयीसे, भरत और सुप्रभासे शत्रुघ्न। इनमेंसे रामचंद्र तो बलभद्र और लक्ष्मण अर्धचक्री नारायण हुए। समयानुसार दशरथको वैराग्य उत्पन्न हुआ। रामचंद्रको राज्य देकर उन्होंने वनमें जानेकी इच्छा प्रगट की। कैकयीने आकर अपना पहिला वर माँगा। दशरथने कहा:— मेरे दीक्षाके निषेधको छोड़कर और चाहे सो माँग ले। तब उसने बारह वर्षके लिए भरतको राज्य देनेका वर माँगा। राजाको इससे बड़ा आश्चर्य तथा दुःख हुआ और कुछ उत्तर न दे चुप रहे। रामचंद्रको यह बात मालूम हुई। वे पिताके वचन पालन करनके लिए भरतको राज्य दे अपनी माताको समझाकर लक्ष्मण और सीताके साथ नगरसे बाहर निकले। रात्रिको श्रीजिनालयमें ठहरे। रामचंद्रजीसे मिलनेके लिए अन्य परिजन लोग आये थे, वे भी यहाँ ही सोये। प्रातःकाल ही सीता और लक्ष्मणके साथ रामचंद्रजी मकानकी खिड़कीके रास्तेसे निकलकर सरयू नदी पार हो गये। थोडी दूर जाकर विश्राम लिया। यहाँ भी जो कुटुंबके लोग चले आये थे, उन

सबको लौटा दिया। किसीने रामचंद्रके जानेका वृत्तान्त भरतसे कहा। भरत अपनी मातासहित आये। और रामचंद्रसे वनमें न जानेके लिए निवेदन किया। परन्तु रामचंद्रजी दोनोंको समझा, राज्यकी मर्यादा दो वर्षके लिए और अधिक कर उनको घर लौटाये। आप वहाँसे आगे चले। चित्रकूटके दक्षिणकी ओर छोड़कर मालवदेशमें प्रवेश किया। वहाँके पके हुए धान्य खेतोंको भी निर्जन देख, किसी पुरुषसे निर्जन होनेका कारण पूछा। उसने कहाः-महाराज, इस उज्जयनी नगरीका राजा सिंहोदर अपनी श्रीधरा नामकी रानी सहित राज्य करता है। इसके आधीन दशपुरका (मन्दसौरका) अधिपति एक वज्र किरण नामक वीर है। एक दिन वह वज्रकिरण शिकार खेलने गया था, मार्गमे उसने एक मुनि महाराजको देखकर उनसे बहुतसा विवाद किया; परन्तु अन्तमे जैनधर्मके अखंड तत्त्वोंसे मोहित हो, जिनदेव शास्त्र और गुरुको छोड़, अन्यको नमस्कार नहीं करनेका उसने नियम ले लिया। अपनी अँगूठीमें जिनप्रतिमा जड़ाई। जब कभी उसे सिंहोदरके यहाँ जानेका काम पड़ता था, तब वह जिनप्रतिमाको सन्मुख करके शिर झुकाता था। किसी ये बात सिंहोदरसे कही। सिंहोदरको अतिक्रोध हुआ। उसने वज्रकिरणके बुलानेके लिए आज्ञापत्र भेजा; परन्तु साथ ही उसे यह चिंता लग गई, कि न जाने वज्रकिरण आवेगा या नहीं इसी चिंतामें मग्न हुआ, वह अपनी शय्यापर सोनेके लिये गया। वहाँ रानीने चिंताका कारण पूछा। राजाने वज्रकिरणके बुलानेका सब वृत्तान्त कहा। उसी समय रानीके कर्णफूल चुरानेके लिए एक विद्युदंड नामका असंयत सम्यक्दृष्टि आया था। ये समाचार उसने भी सुने और तत्काल ही उस महलसे निकल, वह वज्रकिरणके पास चला। वज्रकिरण मार्गमें ही मिल गया। चोरने इसको सिंहोदरके क्रोध होनेके सब समाचार कह सुनाये। वज्रकिरण सुनकर अपने नगरको लौट गया और युद्धकी सामग्री इकट्ठी कर अपने किलेके भीतर बैठ गया। जब वज्रकिरणके न आने और युद्धकी सामग्री इकट्ठी कर बैठ रहनेके समाचार सिंहोदरने सुने, वह क्रोधित हुआ। बहुतसी सेना ले उसपर चढ़ाई की, इसलिए ये पके हुए खेत भी विना मनुष्योंके यों ही खड़े हैं। रामचन्द्रने ये सब वृत्तान्त सुने, उस कहनेवाले पुरुषको वस्त्र और कंकण दे, विदा किया; और आप स्वयं दशपुरकी ओर चले। उस नगरके

वाहरके श्रीचन्द्रप्रभस्वामीके चैत्यालयमे प्रवेश किया। जिनालयमे प्रवेश करते समय वज्रकिरणने अपने गढ़परसे देखकर विचार किया कि दोनों कोई उत्तम अपूर्व पुरुष है। ऐसे मनुष्य मैने कभी नही देखे। ऐसा विचार कर वज्रकिरणने इनके पास भोजनकी सामग्री भेजी। रामलक्ष्मणादिकने भोजन किया। फिर लक्ष्मणने भरतके दूतका वेश धारणकर सिंहोदरसे युद्ध किया और सिंहोदरको पकड़ रामके सुपुर्द किया। यह समाचार सुन वज्रकिरणने रामके पास आ नमस्कार किया और निवेदनकर सिंहोदरको छुड़ाया। श्रीरामने उन दोनोंको समान पदवी दे विदा किये। इस तरह वज्रकिरण वहुत परिग्रहका धारक होकर भी राम लक्ष्मणसे पूजित हुआ। इसी तरह और भी मनुष्य जो व्रतोको धारण करेंगे वे पूजित क्यों नहीं होंगे? अवश्य होंगे।

(७) नीलीबाईकी कथा।

इसी आर्यखंडके लाटदेशमें एक भृगुकच्छ नामका नगर है। वहाँ राजा वसुपाल राज्य करता था। उसी नगरमें एक जिनदत्त सेठ और जिनदत्ता उसकी भार्या थी। जिनदत्ताके नीली नामकी एक रूपवती पुत्री थी। उसी नगरमें एक दूसरे समुद्रदत्त सेठ थे, जिनकी स्त्रीका नाम सागरदत्ता और पुत्रका नाम सागरदत्त था। एक दिन महापूजाके दिनोमें किसी वसतिकामे नीलीवाई सर्व आभरणोसे भूषित कायोत्सर्ग ध्यान कर रही थी। इसके रूप यौवनको देख सागरदत्त उसपर आसक्त हो गया। इसके मिलनेकी निरन्तर चिन्ता करने लगा। इसी चिंतासे वह अतिदुर्बल हो गया। समुद्रदत्तने यह वृत्तान्त सुनकर अपने पुत्रको समझाया कि पुत्र, जिनदत्त जैनी है। इसीलिए जैनीको छोड़कर और किसीको भी वह अपनी कन्या नही देगा। परन्तु पुत्रकी चिंता न मिटी। इसलिए कपटरूपसे वाप वेटे दोनों श्रावक हो गये और जव सागरदत्तका विवाह उक्त कन्याके साथ हो गया, तव फिर वौद्ध हो गये और नीलीका पिताके घर आना जाना भी वंद कर दिया। नीलीके पिताने भी यह सोचकर कि मेरी पुत्री यमधाम पहुँच गई है, सन्तोष धारण किया। इधर नीलीवाई भी श्वसुरके घरमे अपने भर्त्ताकी प्रिया होकर किसी पृथक् घरमे जिनधर्मको

सेवन करती हुई रहने लगी। श्वसुरने विचार किया कि बौद्ध गुरुके दर्शनसे उनके धर्मोपदेशसे काल पाकर यह बुद्धकी भक्त हो जायगी। इसीलिए एक दिन नीलीबाईसे उनके श्वसुरने अपने बौद्ध गुरुओको भोजनार्थ बुलानेको कहा। उसने श्वसुरकी बात मान उनको निमंत्रण दिया और उन्हींकी जूतीका चूरण बना घी शकरमे मिलाया और उसके सुन्दर पदार्थ बना उन्हे खिला दिये। वे खा पीकर जब जाने लगे, तो पूछा;-हमारी जूती कहाँ गई? नीलीने कहा-क्या आप अपने ज्ञानसे नही जान सकते कि कहाँ गई? यदि आपको इतना ज्ञान न हो तो वमनकर देखिए। आपकी जूती आपहीके पेटमे विराजमान है। वेचारे गुरुने वमन किया और उसमे उसने सचमुच ही जूतीके टुकड़े देखे। लज्जित होकर वह अपने घर गया। इधर श्वसुरके सब ही कुटुम्बीजनोने नीलीके ऊपर क्रोध किया। और सागरदत्तकी बहिन वगैरहने तो क्रोधके वशीभूत होकर नीलीके ऊपर परपुरुषका झूठा कलंक लगा दिया। तब नीली श्रीजिनेन्द्रदेवके सामने यह प्रतिज्ञा करके सन्यास धारणकर कायोत्सर्गसे खड़ी हुई कि यह जो मुझे झूठा कलंक लगा है, वह दूर हो जायगा तो अन्न जल लूंगी वरना नही। इससे नगरके देवताका आसन कंपित हो उठा। उसने रात्रिमे आकर कहा- देवि, महासती, तू इस तरह प्राणत्याग मत कर। मै राजाको मंत्रियोको और नगरनिवासियोको यह स्वप्न देता हूं कि नगरके बाहरके दरवाजे कीलित हो गये है, अब वे किसी महासती स्त्रीके वामचरणके (बाये पैरके) स्पर्श विना नही खुलेंगे। प्रातःकाल ही तू उनको अपने चरणसे स्पर्श करना। तेरे पदस्पर्शसे वे कपाट खुल जॉयगे। इस तरह तेरा कलंक दूर होकर कीर्तिसे संसार व्याप्त हो जायगा। ऐसा कहकर उस देवताने राजा मंत्री आदिकको वैसा ही स्वप्न दिया और आप नगरके बाह्य कपाट देकर वहीं बैठ गया। प्रभात ही राजादिकोने देखा कि नगरके सब दरवाजे बंद है। तब उन्हे रात्रिका स्वप्न याद आया, इसलिए आज्ञा की कि नगरकी समस्त स्त्रियॉ अपने २ पैरसे नगरके फाटकका स्पर्श करें। सब स्त्रियॉ आने लगी और सब ही एक एक लात मारके जाने लगी। परन्तु वे कपाट किसीसे भी न खुल सके। सबके पीछे नीलीबाई बुलाई गई। उसने आकर ज्यो ही चरणस्पर्श किया कि सब कपाट खुल गये!! नीलीका कलंक मिटा। यक्ष तथा राजादिकसे वह सन्मानित हुई। इसतरह अल्पज्ञानधारिणी स्त्री होकर नीली अपने

शीलके प्रभावसे देव पूजित हुई। यदि अन्य ज्ञानीपुरुष शीलरत्नको धारण करे, तो क्यों न आदर पावे ?

(८) चांडालकी कथा।

इसी आर्यखंडके सुरम्यदेशमें पोदनापुर नामका एक नगर है। वहॉ राजा महावल अपने पुत्र वलकुमार सहित राज्य करता था। समयानुसार श्रीअष्टान्हिकाका पर्व आया। राजाने अपने राज्यभरमें आज्ञा की कि इन पर्वोंमें कोई जीवघात न करे। राज्यभरमे अहिंसा धर्मकी ध्वजा फहराने लगी। परन्तु राजाका पुत्र वलकुमार अत्यन्त मांसासक्त था। उसने राज्यके एकान्त उद्यानमे ले जाकर राजाके एक मेढ़ेका घात किया और अग्निमे भूनकर उसका मांस खाया। दूसरे दिन अपने मेढ़ेको न पाकर और उसके मारे जानेके समाचार सुनकर राजाने मारनेवालेको तलाश किया। जिस समय वलकुमारने मेढ़ा मारा था, उस समय उस वागके मालीने किसी वृक्षपर चढ़े हुए उसकी सव क्रिया देख ली थी। पश्चात् रात्रिके समय जव माली अपनी स्त्रीसे मेंढे मारे जानेकी वात कह रहा था तव किसी जासूसने सुन ली। और प्रभात ही राजासे जा कहा—महाराज, रात्रिको अमुक मालीसे मेढ़ेके समाचार इस रीतिसे सुने है। राजाने मालीको वुलवाया। पूछनेपर मालीने भी कह दिया कि हॉ! आपके पुत्रने मेढ़ा मारा है। राजाको वड़ा क्रोध आया। कोतवालको वुलाकर उसने कहा;–मेरी आज्ञा मेरा पुत्र ही नही मानता है तो और कौन मानेगा? इसके नव टुकड़े कर डालो। वह कोतवाल भी राजाकी आज्ञानुसार वलकुमारको मारनेके लिए श्मशानमें ले गया। वहॉ चांडालके वुलानेके लिए उसने दूत भेजे, परन्तु चांडालने दूतोंको दूरहीसे देखकर अपनी स्त्रीसे कहा कि इन दूतोंसे कह देना कि चांडाल आज किसी दूसरे गॉव चला गया है और आप घरके किसी कौनेमे छुप रहा। दूतोंने आकर पूछा;–चांडाल कहाँ है? चांडालकी स्त्रीने कहा;–वह आज किसी दूसरे गॉवको गया है। दूतोंने कहा;–अरे! वह पापी वड़ा भाग्यहीन है, जो आज गॉवको

गया है। आज राजकुमार मारा जायगा और उसके मारनेवालेको बहुतसे सुवर्ण रत्न आदिक मिलेंगे। उनके ऐसे वचन सुनकर उस स्त्रीको द्रव्यका लोभ उत्पन्न हुआ। इसलिए वह चांडालके डरसे पूछने तो यही कहती रही कि वह गाँव गया है, परन्तु हाथके इशारेसे बतला दिया कि वह अमुक स्थानपर बैठा है। तब वे चांडालको वहाँ पाकरके श्मशानमें ले गये। वहाँ राजाका पुत्र मारनेके लिए सुपुर्द किया गया। चांडालने कहा;—आज चतुर्दशीका दिन है। आज मेरे जीवघात करनेका त्याग है। मैं आज किसी तरह इस कामको नहीं कर सकता। इन्होंने राजासे निवेदन किया—महाराज; राजकुमारको चांडाल नहीं मारता। राजाने चांडालसे उसका कारण पूछा। चांडालने कहा—महाराजः मुझे एक दिन सर्पने काट खाया और मरा जानकर कुटुम्बी जन मुझे श्मशानमें ले गये। वहाँपर सर्वौषधि ऋद्धिके धारक एक मुनि विराजमान थे। उनके शरीरसे स्पर्श करनेवाली वायुने मेरे शरीरसे स्पर्श कर मुझे जीवित कर दिया। तब उन्हीं मुनिके पास मैंने चतुर्दशीके दिनका अहिंसा अणुव्रत ले लिया। इसलिए आज मैं राजकुमारको नहीं मार सकता। आप जो उचित समझें, सो करें। सुनकर राजाने विचार किया कि क्या चांडालके भी व्रत हो सकते हैं? नहीं, यह झूठ बोलता है। इस तरह क्रोधित हो राजकुमार और चांडाल दोनोंको गाढ़ बंधनमें बंधवाकर उन्होंने सुसुमार नामके हरे तालावमें फिकवा दिये। चांडालने अपने प्राण नाशका भय होनेपर भी अहिंसा अणुव्रत नहीं छोड़ा। इसलिए उसके प्रभावसे जलदेवताने आकर जलके बीचमें ही मणियोंके तोरणादि मंडपयुक्त सिंहासन बनाकर उसपर उस चांडालको बिठाया। दुंदुभि बाजे बजाए, धन्य धन्य शब्द किये। इस तरह अनेक प्रातिहार्य किये। राजा ये वृत्तान्त सुनकर भयभीत हुआ। उसने वहाँ जाकर चांडालका पूजन सत्कार किया। अपने छत्रके नीचे बिठाया। स्वयं स्पर्शकर विशेष सम्मानित किया। बलकुमार उसी सुसुमार सरोवरमें डूबकर मर गया और दुर्गतिको गया। इस तरह एक चांडाल भी व्रतके माहात्म्यसे देवपूजित तथा राजपूजित हुआ तो अन्य मनुष्य भी जो ऐसे व्रतोंको धारण करते हैं, वे क्यों पूजित नहीं होंगे? अवश्य होंगे।

इति श्रीकेशवनन्दिदिव्यमुनिशिष्यश्रीरामचन्द्रमुमुक्षुविरचित पुण्यास्रवकथाकोषकी सरलभाषाटीकामें शीलफलाष्टक नाम चौथा अष्टक पूर्ण हुआ।

अथ उपवासफलाष्टकं ।

(१) नागकुमार कामदेवकी कथा ।

इसी आर्यखंडके मगधदेशमे कनकपुर नामका एक नगर है । वहाँका राजा जयंधर रानी विशालनेत्रा, महाप्रतापी पुत्र श्रीधर और मंत्री नयंधर सहित राज्य करता था । एक दिन वह समस्त स्वजन परिजन सहित सभामें बैठा था कि अनेक देशोंमें परिभ्रमण करनेवाला एक वासव नामका वणिक् मित्र नाना रत्नोंकी भेट लेकर आया । उस भेटमें एक मनोहर चित्र भी था । राजाने खोलकर देखा तो एक सुन्दरी कन्याका खिचा हुआ मनोहर रूप था । राजाने मोहित होकर उस वणिक्से पूछाः–यह किसका चित्र है ? वणिक्ने कहा–आपको पसंद है या नहीं ? आपके चित्तकी परीक्षा करनेके लिए ही इसे लाया हूँ । यह चित्र सोरठ देशके गिरनगरके राजा श्रीवर्मा रानी श्रीमतीकी पृथ्वी नामकी पुत्रीका है । राजाने मोहित होकर बहुतसी भेटके साथ उसी वणिक्को राजा श्रीवर्माके यहाँ उसकी पुत्री माँगनेके लिए भेजा । वह वणिक् बहुतसी उत्तम भेट लेकर राजा श्रीवर्माके दरबारमें पहुँचा । भेट समर्पणकर निवेदन करने लगाः–महाराज, मगधदेशका महामंडलेश्वर राजा जयंधर महाप्रतापी, सर्वकलाकुशल, दानी, भोगी, अतिशय रूपवान् और युवा है । उसने आपकी पुत्रीके साथ विवाह करनेकी इच्छा प्रकटकर मुझे आपके पास भेजा है । श्रीवर्मा यह वृत्तान्त सुनकर प्रसन्न हुआ । उसने अपने कतिपय मंत्रियोंके साथ अपनी पुत्री विवाहके लिए भेज दी । वासव वणिक् भी साथ गया । पृथ्वीका आगमन सुन जयंधरने नगरकी शोभा कराई और आप स्वयं लेनेके लिए सन्मुख आया । बड़ी धूमधामके साथ नगरमें प्रवेश कराया और शुभ मुहूर्तमें अग्निसाक्षिक विवाह करके उसको पट्टरानीका पद दिया । परन्तु कुछ दिन पीछे राजा इसको छोड़कर अन्य आठ हजार रानियोंके साथ तथा विशालनेत्राके साथ क्रीड़ा करने लगा ।

इस तरह कुछ काल व्यतीत होनेपर अपनी शोभा बढ़ाता हुआ वसंत ऋतु आया । राजा भी स्वजन परिजन सहित क्रीडा करनेके लिए उद्यानमे गया । रानी विशालनेत्रा सकल अंतःपुरके साथ पुष्पक विमानपर चढ़कर उद्यानको

चलने लगी। उसके पीछे ही नाना वस्त्रालंकारसे सजे हुए सुन्दर हाथीपर चढ़कर पृथ्वी पट्टरानी चलने लगी। इसके चलनेका आडम्बर और विभूति देखकर विशालनेत्राने अपनी सखीसे पूछाः–यह कौन आ रही है? सखीने कहाः–इतने आडंबरसे ये पृथ्वी महारानी आ रही है। विशालनेत्रा यह सुनकर उसका रूप देखनेके लिए वहीं खड़ी रही। उसको खड़ी देखकर पृथ्वीने पूछाः–यह आगे कौन खड़ी है? एक सखीने कहा–ये विशालनेत्रा अग्रमहिषी है। पृथ्वी यह समझकर कि वह उसका नमस्कार लेनेके लिए खड़ी होगी, सीधी जिनमंदिर चली गई। श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा कर पिहितास्रव नामके मुनिको नमस्कार कर उनसे दीक्षा लेनेकी प्रार्थना की। मुनि महाराजने कहाः—पुत्रकी राज्यविभूतिके देखनेके पीछे राजाके साथ तेरा तप हो सकेगा। तब पृथ्वीने पूछाः–महाराज, क्या मेरे पुत्र होगा? श्रीमुनिने कहाः–हाँ! होगा और वह कामदेव महामंडलेश्वर तथा चरमशरीरी होगा। रानीने पूछाः–वह ऐसा ही प्रतापी होगा, यह बात कैसे जानी जा सकेगी? तब मुनिने कहाः–राजभवनके निकटवर्ती उद्यानमें जो चैत्यालय है, उसके कपाट जिन्हें देव भी नहीं खोल सकते हैं, तेरे पुत्रके पैरोंके अँगूठेके छूनेसे ही खुल जॉयगे और उसी समय वह नागवापीमें जो कि उसी चैत्यालयके अतिसमीप है, पड़ जायगा। पड़ते ही नागकुमार देव उसे अपने मस्तकपर धारण करेंगे। फिर बड़ा होकर नीलगिरि नामके हाथीको और एक घोड़ेको वश करेगा पृथ्वी। देवी यह वृत्तान्त सुन प्रसन्न होकर अपने घर गई। उधर राजा जलक्रीड़ाके समय पट्टरानीको न देख खिन्न हो शीघ्र ही घर लौट आया। आते ही पट्टरानीसे न आनेका कारण पूछा। पृथ्वीने श्रीमुनि महाराजका कहा हुआ सब वृत्तान्त सुनाया। जिससे राजा भी प्रसन्न हुआ। कुछ दिनोंके पश्चात् पृथ्वी देवीकी कोखसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसका नाम प्रतापधर रक्खा गया।

एक दिन पृथ्वी रानी अपने पुत्र प्रतापधरको लेकर उसी राजभवनके समीपस्थ उद्यानके मंदिरमें गई। उद्यानका मंदिर जो आजतक किसीसे भी नहीं खुल सका था, प्रतापधरके चरणस्पर्शमात्रसे ही खुल गया। तब रानी बालकको बाहर ही छोड़कर श्रीजिनेन्द्रदेवके दर्शनके लिए भीतर गई। चिरकालसे इस चैत्यालयके कपाट खुले देखकर नगरके

लोग भी श्रीजिनेन्द्रके दर्शन करनेके लिए व्यग्र हुए। इधर बालक खेलता कूदता हुआ निकटवर्ती नागवापीमें जाकर फिसल पड़ा। बालकको पड़ते हुए देखकर धायने कोलाहल मचाया, जिसे सुनकर बहुत लोग जमा हो गये। परन्तु उस वापीके रक्षक नागकुमार देवने उस गिरे हुए बालकको पानीके ऊपर ही अपने फणपर धारण कर लिया, जिसे देखकर बालककी माता 'हाय पुत्र'! कहती हुई उसी वापीमें कूद पड़ी। परन्तु वापीका अगाध जल इसके पुण्य प्रभावसे जंघा पर्यन्त ही रह गया। उधर अंगरक्षकादिकोंके कोलाहलसे राजाको खबर हुई। वह तत्काल ही शोकाकुल होता हुआ दौड़ आया; परन्तु अपने पुत्र और पट्टरानीको सब प्रकारसे सकुशल देखकर प्रसन्न हुआ। फिर वहाँसे पुत्र और पट्टरानी सहित चैत्यालय जाकर श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा कर अपने घर गया। उसी दिनसे इस बालकका नाम 'नागकुमार' पड़ गया। और थोड़े ही दिनोंमें सकल विद्या कला आदिकमें निपुण हो गया।

एक दिन पंचसुगंधिनी नामकी वेश्याने दरबारमें आकर प्रार्थना की-देव, मेरे किन्नरी और मनोहरी नामकी दो कन्याएँ हैं। वे दोनों ही वीणा बजानेका अहंकार रखती हैं। इसलिए आप नागकुमारको आज्ञा दीजिए कि वह दोनोंकी परीक्षा करे। प्रार्थनानुसार राजाने अपने पुत्रको दोनोंकी परीक्षा करनेके लिए आज्ञा दी। तब नागकुमारने पिताके समीप ही बैठकर अन्यान्य वीणा बजानेमें चतुर पुरुषोंसे भरी हुई सभामें दोनों कुमारियोंकी परीक्षा ली। परीक्षा हो चुकनेपर राजाने पूछा-इन दोनोंमेंसे कौनसी विशेष कुशल है? नागकुमारने कहा-छोटी कुशल है। तब राजाने फिर पूछा-ये दोनों यमज अर्थात् एक साथ उत्पन्न हुई हैं, तुमने कैसे जाना कि यह छोटी है यह बड़ी है? पुत्रने उत्तर दिया:-महाराज, जब यह छोटी कुमारी वीणा बजाती है तब यह बड़ी उसके मुखकी तरफ देखती है और जब यह बड़ी बजाती है, तब यह छोटी अपनी दृष्टि नीचे कर लेती है। इस इंगित चेष्टारूप अनुमानसे जान पड़ता है कि यह छोटी और यह बड़ी है। ये बुद्धिमत्ताके वचन सुनकर सबको आश्चर्य हुआ। और वे दोनों कुमारी नागकुमारपर आसक्त हो गईं। तब नागकुमार पिताकी आज्ञासे दोनोंके साथ विवाह करके सुखसे रहने लगा।

एक दिन राजा अपने स्थानपर सुशोभित था कि किसी सेवकने आकर निवेदन किया:— महाराज, नीलगिरि नामका हाथी अनेक देशोंका नाश करता हुआ नगरके बाहर तालाबके किनारे तक आ पहुँचा है। उससे प्रजाकी रक्षा करनेका प्रयत्न करना चाहिए। तब राजाने अपने श्रीधर नामके पुत्रको इस कामपर नियुक्त किया। और श्रीधर बहुतसी सेना लेकर हाथीको वश करनेके लिए गया; परन्तु उसकी शक्ति तथा उन्मत्तताको देखते ही वह डर गया और पकड़नेमें असमर्थ हो भागकर नगरको लौट आया। तब राजा स्वय उसके पकड़नेके लिए चलने लगा। परन्तु नागकुमार अपने पिताको जानेसे रोककर स्वयं अकेला ही हाथीके पकड़नेके लिए गया। और जो हाथीके पकड़नेकी विधि शास्त्रमें कही है, उसके अनुसार हाथीको पकड़ और उसके कंधेपर चढ़ वह इन्द्रकीसी लीला करता हुआ नगरको लौट आया। राजाने प्रसन्न होकर वह हाथी नागकुमारको दे दिया और वह पिताको नमस्कार कर उसी हाथीपर चढ़ अपने घर गया।

एक दिन एक घोड़ेको यंत्रसे चारा खिलाते हुए देखकर नागकुमारने एक सेवकसे पूछा-इसको यंत्रके द्वारा चारा क्यों खिलाया जाता है? सेवकने कहा:-यह दुष्ट घोड़ा है। जो कोई इसके समीप जाता है, उसीको यह मारता है। यह सुन कुमारने उस घोड़ेके सब बंधन छोड़ दिये और पकड़कर सवार हो लिया। खूब दोड़ाया। फिर अपने घर लाकर राजासे निवेदन किया:-पिताजी, मैंने उस दुष्ट घोड़ेको वशमें कर लिया है। तब राजाने कहा:-यह घोड़ा भी तुम्हारे ही योग्य है। इसको तुम्ही ले जाओ। नागकुमार बहुत अच्छा कहकर घोड़ेको घर ले गया।

नागकुमारकी ऐसी अपूर्व शक्ति और प्रसिद्धि देखकर विशालनेत्रा रानीने अपने पुत्र श्रीधरसे कहा:-पुत्र, तेरा दायद (भागीदार) बहुत प्रबल हो गया है। तू कुछ अपना यत्न कर। तब दुष्ट श्रीधरने नागकुमारके मारनेके लिए पाँच लाख योद्धा इकट्ठे किये। वे इसके निरन्तर मारनेका समय देखने लगे। परन्तु इसकी खबर नागकुमारको सर्वथा न मिली।

एक दिन नागकुमार अपने राजभवनकी पश्चिम दिशाके उद्यानकी सुन्दर वापिकामें अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ

जलक्रीड़ा करनेको गया। महारानी पृथ्वी भी विलेपनादिक उवटन करने योग्य पदार्थ लेकर अपनी नियत सखियोंके साथ पुत्रके पास गई। उस समय विशालनेत्रा अपने राजमहलकी छतपर राजाके साथ बैठी थी। उसने महारानी पृथ्वीको जाती हुई देखकर राजासे कहा--महाराज, यह तो देखिए, आपकी परमप्रिया किसी नियत संकेत स्थानपर जा रही है। तब राजा आश्चर्ययुक्त हो वहींसे देखने लगा कि वह कहाँ जा रही है। जाते जाते जब वह उस वापिकाके पास पहुँची, जहाँ कि उसका पुत्र स्नान कर रहा था, तब नागकुमारने उसे देखकर शीघ्र ही वापीसे निकल प्रणाम किया। माताने बड़े प्रेमसे उवटनादिक लगाया। यह देख झूठ बोलनेवाली विशालनेत्राको राजाने खूब ताड़ना की। थोड़ी देरमे पृथ्वी भी लौटकर आ गई। राजाने पूछाः—कहाँ गई थीं? पृथ्वीने अपने पुत्रके पास जाकर उवटनादिक लगानेके सब समाचार ज्योंके त्यों कह दिये। तब राजाने विशालनेत्राके क्षुद्र और दुष्ट परिणाम देखकर पृथ्वीसे कहाः—प्रिये, तू अपने पुत्रको बाहर मत निकलने दिया कर। पश्चात् राजा तो चला गया। और पृथ्वी रानी उसके कहनेका इस प्रकार विपरीत अर्थ समझकर चिन्तातुर हुई कि महाराज श्रीधरका प्रताप और यश चाहते है, मेरे पुत्रका नहीं। इसीलिए मेरे पुत्रके बाहर आने जानेका निषेध करते है। उसी समय नागकुमारने कहींसे आकर अपनी माताको उदास देख चिन्ताका कारण पूछा। माताने कहा—बेटा, राजाने तेरा बाहरका जाना बंद कर दिया, इसीसे मुझे दुःख हुआ है। यह बात नागकुमारको भी बुरी लगी, इसलिए वह पिताको उलटा चिढ़ानेके लिए अपने नीलगिरि नामके हाथीपर चढ़कर अनेक नगरवासियोंके मध्यमे इन्द्रकीसी विभूति करके घरसे निकलकर अपने सुन्दररूपद्वारा अनेक स्त्रीपुरुषोंको मोहित करता हुआ नगरमें भ्रमण करने लगा। इसके देखनेका नगरमें बड़ा कोलाहल हुआ। राजाने कोलाहल होनेका कारण पूछा। किसी सेवकने कहा—नागकुमार नगरमें भ्रमण कर रहा है, उसीका यह सब आडम्बर है। सुनकर राजा क्रोधित हुआ और कहाः—मैने पृथ्वीसे कहा था कि पुत्रको बाहर मत जाने दिया कर, सो उसने मेरी आज्ञाका उल्लंघन किया। उसके अलंकारादिक छीन लो। इस तरह क्रोधित हो राजाने पृथ्वीके अलंकारादिक सब हरण करा लिये। उसी समय कुमार आया और माताको अलंकार रहित

देखकर कारण पूछा। उसने राजाका यह सब वृत्तान्त सुना दिया। तब कुमारने उसी रातको द्यूत-स्थानमें जाकर वहाँ मंत्री तथा और भी मुकुटबद्ध राजा जो कि उसके पिताके सेवक थे, सबको जीत सबके आभरणादिक अपनी माताके घर ला रक्खे। राजाने मंत्री तथा अपने आधीन राजाओंको इस तरह आभरण रहित देखकर पूछाः–तुम्हारे आभरणादिक कहाँ गये ? आज क्यों नहीं पहिने ? तब सबने निवेदन कियाः–महाराज, सबके आभरणादिक नागकुमारने द्यूतमें जीत लिये है। यह सुनकर राजा क्रोधित हुआ और बोला–अच्छा उसको मैं जीतूँगा। नागकुमारको बुलाकर कहाः–तुम मेरे साथ द्यूत खेलो। पुत्रने कहाः–महाराज, आपके साथ खेलना उचित नहीं है। परन्तु उसे आखिर राजा तथा द्यूतमें हारे हुए मंत्री आदिके विशेष आग्रहसे द्यूत खेलना पड़ा। उसमें पुत्रने पिताके सब कोश आदिक जीत लिये। पश्चात् जब राजा देशके विभागकर द्यूतमें रखने लगा, तब नागकुमारने पैरोंपर पड़कर कहाः–बस महाराज, बहुत हो चुका, अब समाप्त कीजिए। अतः द्यूतका खेल पूरा हुआ। नागकुमारने जो कुछ जीता था, उसमेंसे माताके अलंकारादिक माताको दिये और जो जिसके थे सब वापिस दे दिये। राजाने अपने इस पुत्रसे प्रसन्न होकर नगरके बाहर उसके रहनेके लिए एक और नगर बसा दिया। नागकुमार उस नगरमें आनन्दपूर्वक रहने लगा।

इसी अवसरमें प्रसंगवशात् एक दूसरी कथा लिखी जाती है:—

सूरसेन देशमें मथुरा नगर है। वहाँ राजा जयवर्मा राज्य करता था। उसकी जयावती नामकी रानीसे दो पुत्र हुए, जिनका नाम व्याल महाव्याल था। दोनों ही कोटीभट (एक कोटि योद्धाओंके समान बलवाले) थे। इनमेंसे व्यालके तीन नेत्र थे। किसी दिन नगरके पास वनमें यमधर नामके मुनि आये। वनपालने जाकर राजासे निवेदन किया कि महाराज, वनमें मुनि पधारे है। राजा मुनिकी वंदनाके लिए परिजन सहित गया। वहाँ श्रीमुनिराजको नमस्कार कर जयवर्माने पूछा;—महाराज, मेरे दोनों पुत्र स्वतन्त्र राज्य करेंगे या किसीकी आज्ञामें रहकर राज्य करेंगे ? श्रीमुनिने कहा–जिसके दर्शन करनेसे व्यालके मस्तकका तृतीय नेत्र बंद हो जायगा, यह उसीकी सेवा करता हुआ राज्य करेगा और जो कन्या महाव्यालको न चाहेगी और फिर जिसकी वह स्त्री होगी, उसीकी सेवा

करता हुआ महाव्याल राज्य करेगा। जयवर्मा यह सब वृत्तान्त सुनकर चिन्तवन करने लगा--देखो मेरे पुत्र कोटीभट है, महाप्रतापी है, उनको भी दूसरेका सेवक बनना पड़ेगा। धिक्कार है ऐसे संसारको। ऐसा विचारकर परम वैरागी हो अपने पुत्रोंको राज्य दे उसने जिनदीक्षा ले ली। व्याल महाव्याल भी मंत्रीके पुत्र दुष्टवाक्यको राज्य देकर अपने अपने स्वामीकी तलाश करनेको निकले। कितने ही दिनोमें पाटलीपुत्र (पटना) नगरमें पहुँचे। लोगोंको मोहित करते हुए, बाजारमें कहींपर बैठ गये। इस नगरमें राजा श्रीवर्मा राज्य करता था। इसकी श्रीमती रानीसे एक गणिकासुन्दरी नामकी पुत्री हुई थी। गणिकासुन्दरीकी सखी त्रिपुरा किसी कारणसे बाजारमें आई थी। सो इन दोनोका अतिशय रूप देखकर उसने गणिकासुन्दरीसे इनके रूपकी प्रशंसा की। गणिकासुन्दरी भी इनको किसी गुप्तवेशसे देखकर महाव्यालपर आसक्त हो गई। अपनी पुत्रीकी ऐसी अवस्था सुनकर राजाने अनेक इंगित चेष्टाओंसे इन दोनोको क्षत्रिय निश्चयकर आदरपूर्वक अपने घर बुलाया। महाव्यालको गणिकासुंदरी व्याह दी और गणिका-सुंदरीकी धायकी पुत्री ललितसुंदरीको व्यालके साथ व्याह दी। ये दोनो ही उस नगरमें बड़े आनन्दसे रहने लगे।

एक दिन ललितसुन्दरीने पहलेके वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि एक दिन विजयपुरके राजा जितशत्रुने हम दोनोके रूपकी प्रशंसा सुनी। हमको हमारे पितासे मॉगा। परन्तु हमारे पिताने देना स्वीकार न किया। जितशत्रु यह सुन क्रोधित हुआ। उसने आकर हमारा नगर घेर लिया। परन्तु अन्तमें हारकर अपने नगरको लौट गया। व्यालने छोटे भाई महाव्यालको आज्ञा दी कि तुम जाकर जितशत्रुको समझा दो कि जिससे वह आगे फिर कभी ऐसा न करे। अपने भाईकी आज्ञासे महाव्याल राजा श्रीवर्माका दूत बनकर जितशत्रुके पास पहुँचा और उसको समझाने लगा। जितशत्रु इसको श्रीवर्माका दूत जानकर क्रोधित हुआ और मारनेको दौड़ा। महाव्यालने पकड़कर बॉध लिया और अपने बड़े भाईके पास ले आया। नमस्कार करके इसको सोंप दिया। व्याल पकड़े हुए अपने शत्रुको अपने श्वसुर श्रीवर्माके पास ले गये। श्रीवर्माने वस्त्रालंकारादिकसे भूषित कर, उसको अपने नगरमें भेज दिया। इस तरह दोनो भाई अपनी शूरवीरताको प्रगट करते हुए सुखपूर्वक वहीं रहने लगे।

व्याल नागकुमारकी कीर्ति सुनकर उसके देखनेके लिए उसके नगरमे पहुँचा। नागकुमार अपने नीलगिरि नामके हाथीपर चढ़ा हुआ वाह्योद्यानसे लौटकर नगरमे प्रवेश कर रहा था कि उसी समय व्यालकी दृष्टि इसपर पड़ी। उसके देखते ही व्यालका तृतीय नेत्र बंद हो गया। तव व्याल, मुनिसे सुना हुआ अपना सव वृत्तान्त कहकर नागकुमारका सेवक हो गया। नागकुमार उसे अपने हाथीपर वैठाकर घर ले गया और द्वारपर छोड़कर आप भीतर गया। व्याल द्वारपर ही वैठ गया। समय देखकर श्रीधरको उसके दूतने जाकर कहाः—महाराज, इस समय नागकुमार अकेला ही अपने महलमे है, इच्छा हो तो समझ लीजिए। यह सुनकर श्रीधरने उसके मारनेके लिए अपने उन योद्धाओको आज्ञा दी जो पहलेसे इसीलिए नियत थे। तव वे योद्धा नाना प्रकारके आयुधोसे सज्जित होकर नागकुमारके मारनेके लिए चले। उनको भीतर आते हुए देख व्यालने द्वारपालोसे पूछाः—ये किसके सेवक है? द्वारपालने श्रीधरकी शत्रुताका हाल सुनाकर कहाः—ये उसी शत्रुके सेवक है। तव तो व्याल यद्यपि उसके पास उस समय कोई आयुध नही था, तथापि उन योद्धाओको भीतर जानेसे रोकने लगा। परन्तु वे पॉच लाख योद्धा भला इस एककी क्यो सुने और क्यों खड़े हो? व्यालने देखा कि वे नही मानते। तव हाथीके वॉधनेका स्तंभ उखाड़कर घोर सिहनाद करता हुआ उन योद्धाओपर टूट पड़ा। भयानक युद्ध हुआ। युद्धके कलकल शब्दको सुनकर नागकुमार भी वाहर आया। परन्तु जवतक वह वाहर आया, तवतक व्यालने समस्त योद्धाओका संहार कर डाला। नागकुमारको व्यालका शूरवीरपना देख वड़ा आश्चर्य हुआ। आखिर वह उससे प्रसन्न हो आलिगनकर हाथ पकड़कर घरके भीतर ले गया। इधर जव श्रीधरने यह सुना कि मेरे सव योद्धा मारे गये तब अतिक्रोधित होकर अपनी समस्त सेना लेकर नागकुमारसे लड़नेको निकल पड़ा। यह देख नागकुमार भी व्याल सहित लड़नेको सन्मुख हो गया। जव दोनो ही लड़नेको सन्मुख हुए, तव नयंधर मंत्रीने राजासे निवेदन किया कि महाराज, इन दोनोमेसे किसी एकको वाहर निकाल देना चाहिए। राजाने कहाः—अच्छा श्रीधरको निकाल दो। मंत्रीने फिर निवेदन किया कि महाराज, श्रीधर कोई वड़ा पुण्यात्मा नही है। जो वह वाहर निकल जायगा तो कुछ न कुछ आपकी निदा ही होगी। और नागकुमार पुण्यवान् है, सर्वप्रिय

है, जहाँ जायगा प्रशंसा और पूजा पावेगा। सो उसे ही निकालना चाहिए। राजा भी इस नीतिपर सम्मत हो गया। तब मंत्रीने नागकुमारको बुलाकर कहा—क्या घरमें ही शूर बनते हो? यदि सच्चे शूर हो तो बाहर देशान्तरमें जाकर शूरता दिखलाओ। यहाँ पिताके समान बड़े भाईसे लड़नेमें तुम्हारी बड़ाई नहीं होगी। तब कुमारने कहा—वही मेरे मारनेके लिए उद्यत हुआ है, मेरा इसमें क्या अन्याय है? यदि वह रणभूमि छोड़कर अपने घर बैठे, तो मैं परदेश चला जाऊँगा। अन्यथा वह आकर लड़े। तब नीतिज्ञ नयंधर मंत्रीने श्रीधरके पास जाकर कहा—अरे मूढ़, क्या तू अपनी शक्ति नहीं जानता है? जिसके एक सेवकने तेरे पाँच लाख योद्धा मार डाले हैं, भला उसके साथ तू कैसे युद्ध कर सकता है? इसलिए व्यर्थ अपने प्राण मत खो, जा अपने घर जा। इत्यादि अनेक वचनोंसे समझाकर मंत्रीने श्रीधरको युद्ध करनेसे रोका।

रणभूमिसे लौटाकर प्रतापंधरने (नागकुमारने) परदेश जानेकी तैयारी की। माताको समझा बुझाकर अपनी दोनों स्त्रियाँ और व्यालके साथ वह नगरसे निकल पड़ा। क्रमसे चलते हुए कितने ही दिनोंमें उत्तर मथुराके नगरके बाहर उसने डेरा डाला। व्याल तो नीलगिरि हाथीको पानी पिलानेके लिए ले गया और नागकुमार भद्रा नामके हाथीपर चढ़कर थोड़ेसे सेवकोंको साथ ले, नगरकी शोभा देखनेके लिए चला। राजमार्गमें जाते हुए एक जगह एक देवदत्ता नामकी वेश्याके घरकी शोभा देखकर वह खड़ा हो गया। तब वेश्याने योग्य सत्कारके साथ उसे अन्दर बुलाया। जब थोड़ी देरतक नृत्यादिक देखकर वेश्याको योग्य पुरस्कारसे संतोषित कर नागकुमार चलने लगा; उस समय वेश्याने कहा—महाराज, राजभवनकी ओर न जाइए। कुमारने पूछा—क्यों? वेश्याने कहा—कुंडलपुरके राजा जयवर्मा अपनी रानी गुणमतीकी पुत्री सुशीलाको सिंहपुरके राजा हरिवर्माको देनेके लिए ले जा रहे थे, सो यहाँके राजा दुष्टवाक्यने (व्यालके मंत्रीने) उसे छीन ली है। परन्तु वह कन्या दुष्टवाक्यको नहीं चाहती, इसीलिए उसने इस कन्याको अपने राजभवनके बाहर कारागारमें बंद कर रक्खी है। जब वह किसी राजा या राजवंशीको देखती है तो वह चिल्लाती और कहती है "मुझे बचाइए, मुझे बचाइए" सो यदि आप इस मार्गसे जाओगे, तो वह चिल्लावेगी और आप

सकरुण हो उसे छुड़ानेकी चेष्टा करेंगे, तो व्यर्थ ही झगड़ा बढ़ जावेगा। इससे यही अच्छा हो कि आप इस मार्गसे न जावें। कुमार वेश्यासे "अच्छा नही जॉयगे" ऐसा कहकर उसी मार्गसे गये। उस कन्याने इन्हें देखते ही चिल्लाकर कहा कि हे भाई, दुष्टवाक्यने अन्यायसे पकड़कर मुझे यहाँ कैद कर रक्खा है। इसलिए किसी तरह मुझे छुड़ाओ तव कुमारने यह कहकर कि हे वहिन, रोदन मतकर, मै तुझे अभी छुड़ाता हूँ। कारागारके रक्षक सेवकोंको हटाकर सुशीलाको कैदसे निकाली और उसे अपने रक्षकोंको सौंप दी। दुष्टवाक्य यह समाचार सुनकर अपनी समस्त सेना ले नागकुमारसे युद्ध करनेके लिए चला। दोनोका घोर युद्ध हुआ। किसी सेवकने इस युद्धके समाचार व्यालसे जाकर कहे। तव व्याल नीलगिरि हाथीपर चढ़कर दुष्टवाक्यके सन्मुख आया। परन्तु दुष्टवाक्यने यह जानकर कि वह उसका स्वामी है, हथियार छोड़कर नमस्कार किया। पश्चात् व्यालने अपने स्वामी नागकुमारके चरणोंको नमस्कार करके दुष्टवाक्यका सव वृत्तान्त सुनाया। फिर नागकुमार वड़ी विभूतिके साथ राजभवनमे प्रवेश करके सुखपूर्वक रहने लगा। सुशीला सिंहपुर भेज दी गई।

एक दिन नागकुमार क्रीड़ा करनेके लिए व्यालके साथ वाहर उद्यानमें गया। वहाँ कितने ही कुमार हाथमें वीणा लिए हुए वैठे थे। नागकुमारने उन्हे देखकर पूछा—आप कौन है? कहाँसे आये है? कुमारोंमेसे एकने कहा–महाराज, मै सुप्रतिष्ठित नगरके राजा कविका पुत्र हूँ। कात्तिवर्मा मेरा नाम है। वीणा वजानेमें मै कुशल हूँ। ये पॉचसौ मेरे शिष्य है। काश्मीर नगरके राजा नंदन, रानी धरिणीकी पुत्री त्रिभुवनरति वीणा वजानेमें अतिशय चतुर है। उसने प्रतिज्ञा की है कि वीणा वजानेमें जो कोई उसे जीतेगा, वही उसका पति होगा। उसकी ऐसी प्रतिज्ञाके समाचार सुनकर मै शास्त्रार्थ करनेके लिए उस देशमे गया था, परन्तु उससे हारके लौट आया हूँ। यह वृत्तान्त सुन नागकुमार उन्हे विदाकर आप काश्मीरको उस राजपुत्रीसे शास्त्रार्थ करनेको चलने लगा। व्यालको वही रहनेके लिए कहा, परन्तु वह नही माना और साथ हो लिया। वहॉका सर्वाधिकार दुष्टवाक्यको ही दिया गया।

नागकुमारने काश्मीरमे जाकर त्रिभुवनरतिसे शास्त्रार्थ किया । और उसमें विजय पाकर वह उसके साथ विवाह करके वहीं सुखपूर्वक रहने लगा ।

एक दिन नागकुमार अपने स्थानपर बैठा था । इतनेमें ही अनेक देशोंमें परिभ्रमण करनेवाला एक वणिक् आया । नागकुमारने उससे पूछा-क्यों भाई, तूने कहीं कोई कौतुक भी देखा है ? वणिक्ने कहा-महाराज, रम्यक वनमें एक त्रिशृंग (तीन शिखरवाला) पर्वत है । उसके ऊपर एक संसारका तिलकभूत भूतिलक नामका चैत्यालय है । उस चैत्यालयके सन्मुख एक व्याधा प्रतिदिन मध्याह्न समयमे आकर पुकारता है । परन्तु मै उसके पुकारनेका कारण कुछ नहीं जानता । इस कौतुकको सुनकर नागकुमार त्रिभुवनरतिको वहीं छोड़ आप उस पर्वतके ऊपर गया । श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा स्तुतिकर बैठा ही था कि जोरसे उसे रोनेकीसी अवाज सुनाई दी । कुमारने भीलके पास जाकर पूछा-तू क्यों रोता है ? उसने निवेदन किया-महाराज, मै इसी वनके समस्त भीलोंका स्वामी हूँ । रम्यक मेरा नाम है । मेरी स्त्रीको भीम राक्षस हठात् ले गया है, और काल नामकी गुफामें रहता है । मै उसे जीत नहीं सकता इसीलिए रोता हूँ । कुमारने कहा;-अच्छा वह गुफा मुझे दिखा, कहाँ है ? तब भीलने वह गुफा दिखलाई । कुमारने व्यालको साथ लेकर उस गुफामें प्रवेश किया । इन्हें आते हुए देखकर भीम नामका राक्षस विनीत हो सत्कार करनेके लिए सम्मुख आया । और नमस्कारकर चन्द्रहास, खड्ग, नागशय्या-निधि, और कामकरंडक ये भेट देकर उसने कहा--लीजिए महाराज, इनके योग्य आप ही है । मैने श्रीकेवलीके मुखसे सुना था कि भीलकी पुकार सुनकर नागकुमार इसी गुफामें आवेंगे । इसीलिए मै भीलकी स्त्रीको लाया था । अब आप ले जाकर उसे दे दीजिए । ऐसा कहकर वह भीलकी स्त्री भी कुमारके सामने खड़ी कर दी । नागकुमार प्रत्युत्तरमें यह कहकर कि ' जब मै स्मरण करूँ, तब चंद्रहासादिक लाना ' चंद्रहासादिक उसीको सौंपकर बाहर आया, और भीलको उसकी स्त्री सौंपकर पूछा;-क्यों तूने कोई कौतुक भी देखा है ? भीलने कहा--हाँ, कांचनगुफामें प्रातःकाल, मध्याह्न और सांयकालको तूर्यनाद होता है । परन्तु क्यों होता है ? यह किसीको ज्ञात नहीं है । कुमारने कहा- वह गुफा कहाँ है ? मुझे दिखाओ ।

तब भीलने गुफा दिखाई। नागकुमारने व्यालके साथ उस गुफामें प्रवेश किया। कुमारको आते हुए देखकर सुदर्शन नामकी यक्षिणी सामने आई। उसने नमस्कार करके नागकुमारको आसनपर बिठाया और निवेदन कर कहाः— महाराज, विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक वलका नगर है। वहाँके राजा विद्युत्प्रभ रानी विमलप्रभाका जितशत्रु नामका एक पुत्र है। उसने एक बार इसी गुफामें मुझ समेत चार हजार विद्या बारह वर्षतक सिद्ध की। परन्तु जिस समय विद्या सिद्ध हुई, उसी समय उसने देव दुंदुभिका शब्द सुना। तब यह किसका शब्द कहाँ होता है? इसका निर्णय करनेके लिए उसने आलोकिनी विद्या भेजी। उसने आकर जितशत्रुसे कहा कि सिद्धविवर गुफामें श्रीमुनिसुव्रत मुनिको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। वहाँ देव आकर उत्सव मना रहे हैं। उन्हींकी बजाई हुई दुंदुभिका यह शब्द है। तब जितशत्रु श्रीकेवलीकी वंदना करनेके लिए गया और केवली भगवान्‌की नाना प्रकारसे पूजा स्तुति कर उसने जिनदीक्षा माँगी। तब हम सबने मिलकर जितशत्रुसे कहा—तुमने बारह वर्ष बड़े बड़े कष्ट सहकर हमको सिद्ध किया है, इसलिए तुम्हें थोड़े दिनतक हमारा सुखफल भोगकर पीछे दीक्षा ग्रहण करना चाहिए। परन्तु वैराग्यकी तीव्र इच्छाको जब वह किसी तरह भी न रोक सका, तब अन्तमें हम सबने कहा—यदि आप नहीं मानते है, तो इतना तो अवश्य ही कीजिए कि हमें किसीको सौंपकर दीक्षा लीजिए। यह सुन जितशत्रुने केवली भगवान्से पूछा—महाराज, इनका स्वामी कौन होगा? तब भगवानने कहा—आगामी कालमें कांचनगुफामें नागकुमार आवेगा, ये सब उसकी सेवा करेंगी, ऐसा सुनकर वह तो दीक्षित हो गया और चार घातिया कर्म नष्टकर केवलज्ञान प्राप्तकर सिद्ध हुआ और हम तबसे आपकी प्रतीक्षा कर रही है। अब आप आ गये, सो अच्छा हुआ। हम सबको स्वीकार कीजिए। "अच्छा मैनें तुम्हे स्वीकार किया। अब जब मै तुम्हें स्मरण करूँ, तब मेरे पास आना।" ऐसा कहकर नागकुमार उस गुफासे निकलकर बाहर आया। और फिर उसी भीलसे उसने पूछाः—भाई, तू ऐसे बड़े वनका स्वामी है। तूने और भी ऐसे अनेक कौतुक देखे होंगे। यदि देखे हों, तो बतला। तब भीलने एक वैताल नामकी गुफा दिखाकर कहा—इस वैताल गुफाके दरवाजेपर तलवारको फिराता हुआ एक वैताल रहता है। और जो

कोई इस गुफामें प्रवेश करता है, वह उसीका घात करता है। यह सुनकर नागकुमार उसे देखनेके लिए गुफामें प्रवेश करनेको उद्यमी हुआ। परन्तु दरवाजेमें पैर रखते ही उस वैतालने घात किया। जिसे चतुर नागकुमारने बचाकर तत्काल ही पैर पकड़कर उसे पृथ्वीपर दे मारा। जिसके पीछे ही नागकुमारने सामने निधि और एक सिंहासन देखा। तथा वैताल प्रगट होकर आया और "मैंने पहले सुना था कि जो कोई वैतालको आकर पछाड़ेगा वही इन निधियोंका स्वामी होगा" यह निवेदन करके उन निधियोंकी स्वामिनी विद्याको देकर वह स्वयं दास हो गया। इस तरह उस वैतालको सेवक बना नागकुमार बाहर आये और उस भीलसे फिर पूछने लगे:—क्यों भाई, तूने कोई और भी कौतुक देखा है? यदि देखा हो तो बतला। भीलने निवेदन किया;—और ऐसा कोई कौतुक नहीं देखा। तब नागकुमार श्रीजिनेन्द्रदेवको नमस्कार कर उस वनसे निकला।

मार्गमें किसी गिरिनामक पर्वतके समीप वटवृक्षके नीचे नागकुमार बैठा था कि इनके बैठते ही उस वृक्षके अंकुर निकल आये। नागकुमार उनको हिलाने लगा। इतनेहीमें उस वृक्षके रक्षकने आकर नागकुमारका नाम पूछा और निवेदन किया:—महाराज, इसी गिरिकूट नगरमें वनराज राजा राज्य करता है। उसकी अवनमना रानीसे एक लक्ष्मीमती नामकी सुन्दरी कन्या है। एक दिन राजाने किसी अवधिज्ञानी मुनिसे पूछा था कि महाराज, मेरी इस कन्याका स्वामी कौन होगा? तब श्रीमुनिने कहा था कि जिसके दर्शनमात्रसे ही गिरि नामके पर्वतके समीपके वटवृक्षके अंकुर निकलने लगेंगे, वही इस कन्याका पति होगा। यह वृत्तान्त सुन उस राजाने उसी समयसे उस पुरुषके तलाश करनेके लिए मुझे यहाँ स्थापित किया है। सो आप ठहरिए। मैं अपने महाराजको आपके आनेका वृत्तान्त सुनाता हूँ। ऐसा कहकर वह वृक्षरक्षक अपने महाराजके पास गया और कुमारके आनेके समाचार कहे। तब राजा नागकुमारके सम्मुख आया और प्रणाम कर बड़ी धूमधामसे अपने नगरमें ले गया। पश्चात् उसने इस कुमारको अपनी कन्या लक्ष्मीमती विधिपूर्वक परणा दी। नागकुमार यहाँ ही आनन्दपूर्वक रहने लगा।

एक दिन गिरिकूट नगरके उद्यानमें जय विजय नामके दो मुनि पधारे। नागकुमार उनके दर्शनोंके लिए गया।

नमस्कार करके पूछाः-भगवन्, वनराजके कुलमें मुझे संदेह है। क्या यह श्रेष्ठ कुल है? तब जय नामके मुनि बोले-इसी आर्यक्षेत्रमें पुंडवर्धन नामके नगरका राजा अपराजित रानी सत्यवती और वसुंधरा सहित राज्य करता था। उसके भीम महाभीम नामके दो पुत्र थे। कारण पाकर उस अपराजितने तो भीमको राज्य देकर जिनदीक्षा ग्रहण की और घोर तप कर मोक्ष प्राप्त किया। इधर महाभीमने भीमको अपने नगरसे निकाल दिया। तब भीमने वहाँसे निकलकर यह नगर बसाया। महाभीमके भीमाङ्क नामका पुत्र हुआ और भीमाङ्कके सोमप्रभ। इस तरह महाभीमका नाती (पौत्र) सामप्रभ तो पुंडवर्धनका वर्त्तमान नरेश है और यह वनराज भीमका नाती यहाँका राजा है। सो यह सोमवंशी उत्तम कुल है। इसमें संदेहकी जगह नहीं है। नागकुमार यह कथा सुनकर अतिप्रसन्न हुआ और नमस्कार कर अपने स्थानपर आया।

एक दिन नागकुमारने एक सुन्दर शिलामें खुदी हुई वनराजकी वंशपट्टावली देखकर व्यालको आज्ञा दीः-तुम पुडवर्धन नगरमें जिस तरहसे हो सके, वनराजका राज्य स्थापित करके आओ। व्याल बहुत अच्छा कहकर विदा हुआ। थोड़े दिनोंमे पुंडवर्धनमें पहुँचा। वहाँके राजाके समीप गया और कहने लगाः-राजन्, जायंधरिने [जयंधरके पुत्र नागकुमारने] मुझे आपके पास भेजा है। और संदेशा कहला भेजा है कि तुम अपना समस्त राज्य वनराजको समर्पण करके वनराजकी आज्ञानुसार रहो, नहीं तो अच्छा नहीं होगा। सोमप्रभने कहाः-क्या नागकुमार मेरा शासक है? व्यालने कहा-इसमें भी क्या तुमको संदेह है? राजाने क्रोधित होकर कहाः-अच्छा, तो वह वनराजके साथ साथ युद्धमें सामने आवे और वहाँपर वनराजको मुझसे राज्य दिलावे। व्यालने कहाः-अब तक तो आप उनके अनुचर है। इसके उत्तरमे सोमप्रभने अत्यन्त क्रोधित होकर सेवकोंको आज्ञा दी कि इसको यहाँसे निकाल दो। राजाकी आज्ञानुसार व्यालको अर्द्धचन्द्राकार देकर (गर्दन पकड़कर) निकालनेके लिए जो शूर उठे थे, व्यालने उनको भूमिमे पछाड़ दिया। यह देख क्रोधित हो राजा भी हाथमें तलवार लेकर मारनेके लिए उठा। परन्तु व्यालने उसे ज्योंका त्यों पकड़कर बाँध लिया और उसे नगरमे अपने

स्वामी नागकुमारके राज्यका आज्ञापत्र स्थापन कर दिया। उसी समय अपने श्वसुर वनराजके साथ नागकुमारने पुंड-वर्धन नगरमे आकर राजभवनमे प्रवेश किया और सोमप्रभके बंधन छोड़कर कहाः-वनराजकी आज्ञामे रहो। परन्तु सोमप्रभने कहाः-अब मै गृहस्थाश्रमसे तृप्त हो गया हूँ, मुझे क्षमा कीजिए। इस तरह मन वचन कायसे क्षमा कराकर वहाँसे विदा हुआ और यमधर मुनिके समीप उसने अनेक जनोके साथ जिनदीक्षा ले ली। फिर द्वादशांगका पाठी तथा सकलसंघका आधारभूत होकर विहार करते हुए प्रतिष्ठपुरमें आया। बाहर उद्यानमे ठहरा। उस प्रतिष्ठपुरका राज्य अछेद्य और अभेद्य करते थे। इनके पिताका नाम जयवर्मा और माताका नाम जयावती था। जयवर्माने एक दिन अपने उद्यानमे आये हुए पिहितास्रव नामके मुनिसे पूछाः-महाराज, मेरे दोनो पुत्र कोटीभट है। वे अपना राज्य स्वतंत्र करेगे अथवा किसीके सेवक होकर उसकी आज्ञानुसार करेंगे? मुनिने कहा-जो पुंडवर्धन नगरसे सोमप्रभको निकालकर वहाँका राज्य वनराजको देगा, वही इन दोनोंका स्वामी होगा। यह वृत्तान्त सुन राजा जयवर्माको वैराग्य हुआ, इसलिए उसने उन दोनो पुत्रोको राज्य देकर मुनिव्रत अंगीकार कर लिया। घोर तपकर अच्छी गतिका आश्रय लिया। इधर अछेद्य और अभेद्य दोनों ही राज्य करने लगे। एक दिन अपने उद्यानमे श्रीसोमप्रभ मुनिराजको आया सुनकर ये दोनो उनकी वन्दना करनेके लिए गये। वहाँ उन मुनिके पूर्वके सब वृत्तान्तको सुनकर और यह जानकर कि इन सोमप्रभका राज्य वनराजको देनेवाले नागकुमार जो मेरे स्वामी होंगे, पुंडवर्धन नगरमे हैं, राज्यका भार अपने मन्त्रियोंको सौंपकर वे दोनो अपने स्वामीके दर्शन करनेके लिए पुंडवर्धन नगरमें आये। वहाँ नागकुमारके दर्शनसे प्रसन्न हुए और अपने वृत्तान्त कहकर स्वयं सेवक हो गये।

एक दिन अपनी रानी लक्ष्मीमतीको अपनी श्वसुराल ही छोड़कर नागकुमारने व्यालादिकके साथ जालांतिक नामके वनमे प्रवेश किया। किसी वटवृक्षके नीचे विश्राम किया। इसके बैठते ही इसके पूर्वपुण्योदयसे उस वनके समस्त विषरूप आम्रफल अपने परिवार सहित अमृतफलरूप परिणत हो गये। उन विषफलोंको अमृतफल परिणत हुए देखकर पाँच लाख योद्धाओंने आकर नागकुमारको नमस्कार किया और निवेदन कियाः--देव, हमने एक दिन एक अवधिज्ञानी

मुनिसे पूछा था कि हम किसके सेवक होंगे। तब मुनिने कहा था कि जाङ्गातिक वनके विषफल जिसके प्रतापसे अमृत रसरूप परिणत होंगे, अथवा जिसको अमृतरस देंगे, उन्हीकी तुम सेवा करोगे। सो उनके वचन सुनकर हम तबसे यहाँ ही रहते है। श्रीमुनिने जिनके लिए कहा था, वे आप ही है; इसलिए अब आप हमारे स्वामी और हम आपके सेवक है। यह सुन कुमारने प्रेमालापसे उनको संतुष्टकर अपना सेवक बनाया। तदनंतर नागकुमार अंतरपुर नगरको गये। वहाँके राजा सिंहरथ बड़ी विभूतिके साथ उन्हे अपने नगरमे ले गये। वहाँ वे सुखपूर्वक कुछ समयतक रहे। एक दिन सिंहरथने निवेदन किया:—देव, सोरठ देशमे गिरिनगरका राजा हरिवर्मा राज्य करता है। उसकी रानी मृगलोचनासे एक गणवती नामकी कन्या है। हरिवर्माने प्रतिज्ञा की है कि मै इस पुत्रीको अपने भानजे नागकुमारको दूँगा, परन्तु उस कन्याको सिंधुदेशके स्वामी चंडप्रद्योतने जो कि वह स्वयं कोटीभट और अतिप्रचंड है तथा जिसके साथ जय, विजय, सूरसेन, प्रवरसेन और सुमति ऐसे पांच और भी कोटीभट है, हरिवर्मासे माँगी थी, परन्तु हरिवर्माने कहा—यह कन्या तो मैने नागकुमारको देना कह रक्खी है, तुम्हे कैसे दूँ? इससे चंडप्रद्योतने क्रोधित हो हरिवर्माका नगर घेर लिया है। हरिवर्मा मेरा मित्र है उसने मेरे समीप पत्रद्वारा समाचार भेजे है। इसलिए मै उसकी सहायता करनेके लिए जाता हूँ। जब तक मै न आऊँ, तब तक आप यहाँ ही निवास कीजिएगा। यह सुनकर नागकुमार थोड़ासा हँसे और वहाँ रहना अस्वीकार करके सिंहरथके साथ गिरिनगरको रवाना हुए।

सिंहरथ और नागकुमारको आते हुए सुनकर चंडप्रद्योतने उनके रोकनेके लिए जय और विजय दोनो कोटीभट भेजे। तब नागकुमारने अपने पाँचसौ सहस्रभट योद्धाओको उनके साथ लड़नेकी आज्ञा दी। उन्होंने उन दोनो कोटीभटोको शीघ्र ही पकड़कर अपने स्वामीको लाकर सौप दिये। इससे चंडप्रद्योत अतिशय क्रोधित हुआ और तीन व्यूह रचकर युद्धभूमिमे लड़नेके लिए तैयार हुआ। तब नागकुमारने अपने अछेद्य और अभेद्य कोटीभटोको सूरसेन और प्रवरसेनके सम्मुख तथा व्यालको सुमतिके सम्मुख तैयार करके आप स्वयं चंडप्रद्योतके सम्मुख हुआ।

घोर युद्ध करके उन सबको पकड़ लिया अर्थात् नागकुमारने चंडप्रद्योतको व्यालने सुमतिको और अछेद्य अभेद्यने सूरसेन प्रवरसेनको बाँध लिया। इस तरह नागकुमार विजयी हुए। हरिवर्मा यह सब वृत्तान्त सुनकर नागकुमारके सम्मुख आया। और बहुत सत्कारके साथ उन्हे चंडप्रद्योतादिकके साथ अपने नगरमें ले गया। पश्चात् शुभ मुहूर्त्तमें गणवतीके साथ नागकुमारका विवाह हुआ।। नागकुमारने चंडप्रद्योतको वस्त्र आभूषणादिकसे सन्तुष्ट कर शल्य रहित किया और उसे उसके नगर भेज दिया। आप स्वयं गिरनार पर्वतपर श्रीनेमिनाथजीकी वंदना करनेके लिए गया। श्रीनेमिनाथजीकी भक्तिपूर्वक वंदना करके गिरिनगरको लौटा। मार्गमें किसीने एक विज्ञापनपत्र देकर निवेदन किया कि महाराज, वत्सदेशमें कौशाम्बी नगरीका राजा शुभचन्द्र अपनी सुखवती रानी सहित राज्य करता है। उसके स्वयंप्रभा, कनकप्रभा, कनकमाला, धनश्री, नन्दा, पद्मश्री, नागदत्ता ये सात पुत्री है।

विजयार्द्धकी दक्षिणश्रेणीमें एक रत्नसंचयपुर नामका नगर है। वहाँके राजा सुकंठको उसके परम शत्रु मेघवाहनने रत्नसंचयपुरसे निकाल दिया। इससे वह वहाँसे निकलकर कौशाम्बी नगरीके बाहर एक सुन्दर दुर्लंघ्य कोटसे घिरा हुआ नगर बसाकर वही रहने लगा। इसी सुकंठने कौशाम्बीके राजा शुभचंद्रसे उसकी कन्यायें माँगीं। परन्तु शुभचन्द्रने नही दी। तब क्रोधित हो सुकंठने शुभचन्द्रको मार डाला और कन्याओंको लेना चाहा। परन्तु उन कन्याओंने कहा "तूने हमारे पिताको मारा है, इसलिए जो कोई तेरा शिरः छेदन करेगा, वही हमारा पति होगा।" उन कन्याओंके ऐसे कठोर वचन सुनकर सुकंठने उन सबको बंदीखानेमें डाल दिया। उनमेसे नागदत्ता नामकी कन्याने उस कारागारसे किसी तरह भागकर कुरुजागल देशके हस्तिनागपुरके राजा अभिचन्द्रसे जो कि उसके चाचा है, सब वृत्तान्त कहा है। जिसे सुनकर अभिचन्द्रने उसे आपके समीप भेजा है। आशा है आप उनका उद्धार करेगे। नागकुमारने यह सब कथा सुनकर अपनी रानी गणवतीको तो अपने मामाके यहाँ भेज दिया और आप स्वयं पूर्वसाधित विद्याओंको बुलाकर आकाशमार्गके द्वारा कौशांबी नगरीमें पहुँचा। वहाँके राजा सुकंठके समीप एक दूत भेजा। उस दूतने सुकंठकी सभामे जाकर कहा—हे सुकंठ विद्याधर, तुम्हारे लिए

नागकुमारने आज्ञा दी है कि शुभचन्द्रकी कन्याओंको शीघ्र ही छोड़कर मेरे पास भेज दो। नही तो अपने कियेका फल पाओगे। इसका फल प्रतिकूल हुआ अर्थात् सुकंठने क्रोधित हो उस दूतको अपनी सभामे निकलवा दिया और आप नागकुमारके साथ युद्धकी इच्छा कर आकाशमें आया। नागकुमार भी सामने आया और थोड़ी ही देरमे उसने अपने महायुध चन्द्रहास खड्गसे सुकंठका शिर धड़से अलग कर दिया। पिताकी यह दशा देखकर सुकंठका पुत्र वज्रकंठ नागकुमारके शरणागत हुआ। तब नागकुमार शरणमें आये हुए उस राजपुत्रको साथ लेकर रत्नसंचयपुर आये। पश्चात् उसके शत्रु मेघवाहनको मारकर और उसे वहाँका राज्य देकर उसीकी छोटी बहिन रुक्मिणी अभिचन्द्रकी पुत्री चन्द्राभा और शुभचन्द्रकी सात कुमारी इन सबके साथ विवाह करके हस्तिनागपुरमे सुखपूर्वक रहने लगे।

इधर महाव्याल पटनामे सुखसे रहता था। उसने सुना कि पांड्रदेशमें दक्षिण मथुराके राजा मेघवाहन रानी जयलक्ष्मीकी पुत्री श्रीमतीने प्रतिज्ञा की है कि जो कोई मुझे नृत्य करनेमे मृदंग बजाकर प्रसन्न करेगा, वही मेरा पति होगा। तथा श्रीमतीकी धायकी पुत्री कामलता साक्षात् कामदेवको भी अच्छा नहीं समझती है। यह सुनकर महाव्याल मथुरामें पहुँचा और साधारण एक दूकानपर बैठ गया। उसी दिन मथुराके नरेश मेघवाहनके भागिनेय (भानजा) कामाङ्क नामके कोटीभटने अपने मामा मेघवाहनसे कामलता माँगी। मेघवाहनने देना स्वीकार नही किया तथा कामलताको भी यह कामाङ्क स्वीकार नही था। इसलिए उक्त कोटीभट इस अबला कामलताको बलपूर्वक ले जाने लगा। जब वह महाव्याल कोटीभटके सामनेसे निकला तो कामलता इसे देखकर मोहित हो गई। और चिल्लाकर कहने लगी—"मेरी रक्षा करो! मेरी रक्षा करो!" यह सुनकर महाव्यालने कामाङ्कसे कहा—अरे! इस कन्याको बलपूर्वक कहाँ लिये जाता है? इसे छोड़! शीघ्र छोड़! कामाङ्कने कहा—क्या तू छुड़ावेगा? महाव्यालने कहा:—"हाँ, छुड़ाता हूँ देख" ऐसा कहकर हाथमें तलवार ले सामने खड़ा हो गया। उधर कामाङ्क भी लड़नेको तैयार हुआ। दोनोंमें खब युद्ध हुआ। अन्तमे महाव्यालने कामाङ्कको मार डाला। मेघवाहन यह सब वृत्तान्त सुनकर महाव्यालसे भयभीत

हुआ और सत्कार करनेके लिए सामने आया। फिर बड़े उत्सवसे अपने महलमें ले गया और आदरपूर्वक कामलता उसे व्याह दी। तब महाव्याल कामतलाके साथ सुखपूर्वक मथुरामें ही रहने लगा।

मालवदेशमें उज्जयनी नगरीका राजा जयसेन अपनी जयश्री नामकी रानीके साथ सुखसे राज्य करता था। उसके एक मेनकी नामकी कन्या थी, जो किसीको भी स्वीकार नहीं करती थी और न किसीको सुन्दर ही समझती थी। धीरे धीरे यह समाचार महाव्याल तक पहुँचे। वे सुनते ही उज्जयनी आये। मेनकीने उन्हें देखकर कहाः–तुम तो मेरे भाई हो। इससे महाव्याल संतोषित होकर उज्जयनीसे हस्तिनागपुर आये। और व्यालसे नागकुमारका रूप एक सुन्दर चित्रपटमें लिखाकर फिर उसे उज्जयनी ले जाकर मेनकीको दिखाया। मेनकी देखते ही उसपर मोहित हो गई। फिर क्या था? महाव्याल शीघ्र ही हस्तिनागपुर आये और व्यालको अग्रेसर करके अपने स्वामी नागकुमारसे मिले। कुमारको अपना सब वृत्तान्त सुनाकर उनके सेवक हुए। महाव्यालने मेनकीके समाचार भी कहे। तब नागकुमार उज्जयनी आकर विधिपूर्वक मेनकीके साथ विवाह करके सुखपूर्वक रहने लगे।

एक दिन महाव्यालसे मेघवाहनकी पुत्री श्रीमतीकी प्रतिज्ञाकी कथा सुनकर नागकुमारने दक्षिण मथुराको प्रस्थान किया। मथुरामें पहुँचकर नृत्य समयमें श्रीमतीको मृदंग बजाकर प्रसन्न किया और अन्तमें उसके साथ विवाह करके वे सुखसे वहीं रहने लगे।

एक दिन नागकुमारके सभास्थानमें देशान्तरमें भ्रमण करता हुआ एक वणिक् आया। नागकुमारने उससे पूछाः–भाई, तुम अनेक देशोंमें फिरते हो। तुमने कहीं कोई आश्चर्यकारक कौतुक भी देखा है या नहीं? वणिक्ने उत्तर दिया–देव, समुद्रके मध्यभागमें एक तोपावलि द्वीप है। उसमें एक सुन्दर सुवर्णमय चैत्यालय है। उस चैत्यालयके आगे प्रतिदिन मध्यान्हके समयमें पहरेदारोंसे रक्षित पाँचसौ कन्यायें रुदन करती हैं–पुकारती हैं। परन्तु उनके रोने–पुकारनेका क्या कारण है? सो अभी तक नहीं जाना गया है। यह नया कौतुक सुनकर नागकुमार अपनी विद्याओंके प्रभावसे चारों कोटीभटों सहित तोपावलि द्वीपके सुवर्णमय चैत्यालयमें पहुँचे। श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा स्तुति

करके वहीं बैठ गये। जब मध्यान्हका समय हुआ तो वे कन्यायें पुकारने लगीं। नागकुमारने उनको बुलाकर पुकारनेका कारण पूछा। तब उनमेसे धरणिसुन्दरी नामकी एक कन्या कहने लगी;–इसी द्वीपमें एक धरणितिलक नामका नगर है। उसमे एक रक्ष नामका विद्याधर है। जिसकी हम पॉचसौ कन्यायें है। हमारे पिताके भगिनीपुत्र (भानजा) वायुवेगने जो कि अतिकुरूप है, हमारे पितासे हमे मॉगा। परन्तु पिताने उसको देना स्वीकार नहीं किया। तब उस दुष्टने राक्षसी विद्याका साधन करके हमारे पितासे युद्ध किया। और उस प्रभावसे युद्धस्थलमें हमारे पिताको मारकर हमारे दोनो भाई रक्ष महारक्षको कैद करके तहखानेमे डाल दिया। इसके पश्चात् हमारे साथ वह विवाह करनेको उद्यत हुआ–परन्तु हमने कह दिया कि तूने हमारे पिताका वध किया है, इसलिए जो तुझे मारेगा, वही हमारा पति होगा। तब वायुवेगने यह कहकर कि "छः महीनेके भीतर ही मेरे प्रतिमल्लको जो मुझसे लड़ सके, मेरे लिए ढूंढो" हमको वंदीखानेमें डाल दिया है। यहॉ इस चैत्यालयमे श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा स्तुति करनेके लिए अनेक देव विद्याधर आते है, इसलिए हम पुकारती है कि कदाचित् कोई हमारा उपकार करेगा। यह सुनकर नागकुमारने वायुवेगके सेवकोको जो कि उन कन्याओंका पहरा दे रहे थे, निकाल दिया और उन कन्याओंको अपने सेवकोंकी रक्षामे सौंपकर आप स्वयं वायुवेगसे युद्ध करनेके लिए तैयार हुआ। वायुवेग भी लड़नेके लिए सम्मुख आया। दोनोंमें घोर युद्ध हुआ। अन्तमे बहुत समय बीतनेपर नागकुमारने अपने चन्द्रहास खड्गसे वायुवेगका काम तमाम किया। वंदीखानेमें पड़े हुए रक्ष महारक्षको छुड़ाकर उसको वहाँका राज्य दिया और उन कन्याओंके साथ विवाह किया। इतनेमें ही पॉचसौ सहस्रभट योद्धा आकर नागकुमारको प्रणामकर सेवक हुए। नागकुमारने उनसे पूछा;–क्या कारण है कि तुम विना ही प्रयोजन स्वयं आकर मेरे सेवक हुए हो? उन्होने कहा:–हमने एक दिन किसी अवधिज्ञानीसे पूछा था कि महाराज, हमारा स्वामी कौन होगा? तब मुनिने कहा था कि जो वायुवेगको मारेगा, वही तुम्हारा स्वामी होगा। सो तबसे अबतक हम यहॉ ही रहते है। आज आपने वायुवेगको मारा, इसलिए हम सब आपके सेवक हुए है।

नागकुमार वहाँसे चलकर काँचीपुरमें पहुँचे । काँचीपुरमे वल्लभनरेन्द्र नामका राजा राज्य करता था । उसने नागकुमारको अपनी कन्या देकर सत्कार किया ।

नागकुमार वहाँसे चलकर कलिंग देशके दंतपुर नामके नगरमे पहुँचे । वहाँ राजा चन्द्रगुप्त राज्य करता था । उसकी चन्द्रमती नामकी रानीसे मदनमंजूषा पुत्री थी । चन्द्रगुप्तने नागकुमारको वड़ी विभूतिके साथ नगरमें प्रवेश कराया और अपनी मदनमंजूषा कन्या अर्पण की ।

तदनन्तर नागकुमार ऊड देशके त्रिभुवनतिलकपुर नामके नगरमे गये । वहाँ राजा विजयधर रानी विजयावती सहित राज्य करता था । उसने भी नागकुमारको वड़ी धूमधामके साथ नगरमे प्रवेश कराया और अपनी लक्ष्मीमती नामकी कन्या विवाही । लक्ष्मीमती नागकुमारको सबसे प्रिय लगी, इसलिए वे उसके साथ वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे ।

एक दिन उस नगरके वाहरी उद्यानमे पिहितास्रव मुनि पधारे । सो नागकुमार अपने श्वसुर विजयंधर सहित मुनिकी वंदना करनेके लिए गये । भक्तिपूर्वक मुनिकी वंदना की, धर्म श्रवण किया । उसके पीछे मुनिसे निवेदन किया:-महाराज, लक्ष्मीमतीके ऊपर मेरा सबसे अधिक स्नेह है, इसका क्या कारण है? मुनिमहाराज कहने लगे;-

इसी द्वीपके अवंति [मालव] देशमे उज्जयनी नगरी है । वहाँ राजा कनकप्रभ रानी कनकप्रभा सहित राज्य करता था। उसके सुवर्णनाभि नामका एक पुत्र था । सुवर्णनाभिने बहुतसा दान दिया था। जिन पूजनादिक की थी। इससे अन्तमें वह समाधिमरणसे शरीर छोड़ महाशुक्र नामके दशवे स्वर्गमे वड़ी ऋद्धिका धारक देव हुआ । अनेक प्रकारके सुख भोगे । वहाँसे चयकर वह ऐरावत क्षेत्र आर्यखडके वीतशोकपुर नगरमे जहाँ कि राजा महेन्द्रविक्रम राज्य करता था, धनदत्त नामके वैश्यके घर धनश्री नामकी धनदत्तकी स्त्रीसे नागदत्त नामका पुत्र हुआ । उसी नगरमें एक दूसरा वैश्य वसुदत्त रहता था । उसकी स्त्रीका नाम नागमती और पुत्रीका नाम नागवसु था । नागवसु नागदत्तको विवाही गई । एक दिन नगरके वाहरके उद्यानमे श्रीगुप्ताचार्य नामके मुनि पधारे । राजा महेन्द्र विक्रम अपनी प्रजासहित मुनिकी वंदना करनेके लिये गया । नागदत्त भी गया । सबने वड़ी भक्तिसे मुनिकी वंदना

की, धर्मश्रवण किया। प्रबुद्ध होकर नागदत्त पंचमीके दिन उपवास करनेका व्रत ले, अपने घर आया। उपवास करने लगा। एक दिन उपवासकी रात्रिको उसको कोई महापीड़ा हुई। उसके पिता आदिक कुटुम्बी लोगोंने उपवास भंग करनेके लिए अनेक उपाय किये। परन्तु नागदत्तने व्रत नहीं छोड़ा। रात्रिके पिछले पहर समाधिमरणपूर्वक शरीरको छोड़कर वह सौधर्म स्वर्गके सूर्यप्रभ विमानमें देव हुआ। सो भवप्रत्यय (भवसे ही होनेवाले) अवधिज्ञानसे वह अपने सब वृत्तान्त जानकर अपने बंधु जनोंके पास धर्मोपदेश देनेके लिये आया। धर्मोपदेश देकर अपने स्थान स्वर्गलोकमें गया। नागदत्तकी स्त्री नागवसुने व्रतका माहात्म्य देखकर तप अंगीकार किया। बहुत तप किया। परन्तु मध्यमें यह निदान किया कि मैं उसी देवकी जो कि नागदत्तका जीव हुआ है, स्त्री होऊँ। तपके प्रभाव और निदानके कारणसे वह उसी देवकी देवी हुई। पश्चात् स्वर्गसे चयकर देवका जीव तो तू नागकुमार हुआ और देवीका जीव लक्ष्मीमती हुई। यह सुनकर नागकुमारने पञ्चमीके दिन उपवास करनेकी विधि पूछी। श्रीमुनि महाराज कहने लगे कि—

फाल्गुण, आषाढ़ अथवा कार्तिक महीनेकी शुक्ल चतुर्थीके दिन शुद्ध होकर साधुमार्गसे भोजन करके उपवासको स्वीकार करै। व्रतके सम्पूर्ण दिवस समस्त निन्दनीय व्यापारोंको छोड़कर धर्मकथाके विनोदपूर्वक व्यतीत करै। रात्रिमें रागकी करनेवाली शय्याका भी त्याग करै। तथा कषायादिकको छोड़कर धर्म्यध्यानमें तत्पर रहे। षष्ठी (छठ) के दिन यथाशक्ति पात्रोंको दान देकर स्वयं कुटुम्ब तथा अपनी स्त्रियोंके साथ पारणा करै। इस तरह प्रत्येक महीने करै, सो पाँच वर्ष और पाँच महीने करै अथवा केवल पाँच ही महीने करै। अन्तमें व्रतोद्यापन विधान करै। उद्यापनकी विधि इस प्रकार है कि पाँच चैत्यालय अथवा पाँच प्रतिमा बनवावै। तथा पाँच कलश, पाँच चमर, पाँच ध्वजा, पाँच दीपक, पाँच घंटा, पाँच पंच और पाँच आचार्योंके लिए ग्रन्थ लिखाकर देवै। श्रावक श्राविका और आर्यिकाको वस्त्रादिक देवै, तथा यथाशक्ति दान भोजनादिक देकर जैनधर्मकी प्रभावना करै। इसके फलसे स्वर्गादिक सुख मिलकर मोक्ष मिलता है। नागकुमारने इस प्रकार पंचमी व्रतकी विधि सुनकर पंचमीके दिन उपवास करनेकी प्रतिज्ञा ली। तथा उनके साथ लक्ष्मीमतीने भी ग्रहण की। दोनों पतिपत्नी पंचमी व्रतको करते हुए वहीं सुखपूर्वक रहने लगे।

कुछ दिनके वाद नागकुमारके पिता राजा जयंधरने नागकुमारके बुलानेके लिए नयंधर मंत्रीको भेजा। उसने आकर कुमारसे जयंधरके कहे हुए सब समाचार सुनाये और घर चलनेको प्रार्थना की। तब नागकुमार अपनी पहली विवाही हुई समस्त स्त्रियोंके तथा लक्ष्मीमतीके साथ विद्याप्रभावसे सुन्दर विमान बनाकर उसपर सवार होकर आकाश मार्गके द्वारा अपने नगरमें पहुँचा। कुमारका आना सुनकर जयंधर बड़ी विभूतिके साथ सम्मुख आया। कुमारने अपने पिताको प्रणाम किया और नगरमे प्रवेश किया। इसी समय विशालनेत्राने अपने पुत्रसहित जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। नागकुमार समस्त प्रजाका प्रेमपात्र बनकर सुखसे रहने लगा।

एक दिन जयंधर महाराजने दर्पणमें अपना मुख देखते समय यमदूतके समान एक श्वेत बाल देखा। उससे उन्हें बड़ा वैराग्य उत्पन्न हुआ। इसलिए वे प्रतापंधरको (नागकुमारको) राज्य देकर श्रीपिहितास्रव मुनिके निकट अनेक जनोंके साथ दीक्षित हो गये। पृथ्वीने भी श्रीमती आर्यिकाके निकट आर्यिकाके व्रत धारण किये। श्रीजयंधर मुनिने घोर तपकर घातिया कर्मोंको नष्टकर केवलज्ञान प्राप्त किया। आयु शेष होनेपर मोक्ष पधारे। और पृथ्वी शक्त्यनुसार घोर तप करके समाधिपूर्वक शरीर छोड़, स्त्रीलिङ्ग छेद, अच्युत स्वर्गमें देव हुई।

इधर नागकुमारने व्यालको आधा राज्य दिया। अच्छेद्य और अभेद्यको कौशल देश, सीर देश और मालव देश दिया। महाव्यालके लिए गौड़ देश और वैदर्भ देश दिया। सहस्रभटोंके लिए पूर्वके देश दिये और इसी प्रकार और लोगोंको भी यथोचित देश दिये। इस प्रकार नागकुमारको महामंडलेश्वरकी विभूति प्राप्त हुई। अन्तःपुरमें आठ हजार रानियाँ हुई। उनमेंसे लक्ष्मीमती, धरणिसुन्दरी त्रिभुवनरति और गुणवती इन चारको पट्टरानी पद दिया गया। लक्ष्मीमती पट्टरानीसे देवकुमार नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। तथा और और रानियोंसे और भी अनेक पुत्र हुए। इस तरह नागकुमारने अनेक सुख अनेक भोगोपभोगोंके साथ आठसौ वर्ष राज्य किया।

एक दिन वे छतपर वैठे हुए आकाशकी शोभा देख रहे थे। इतनेमें ही एक मेघ सुन्दर दृश्य दिखाकर शीघ्र ही मिट गया। उसे मिटते देख संसारकी सब दशा अनित्य समझ वे संसारके भोगोपभोगोंसे विरक्त हुए। अपने

पुत्र देवकुमारको राज्य दे, व्याल महाव्याल अच्छेद्य अभेद्य चारों कोटीभटो एक हजार सहस्रभटो तथा अनेक मुकुटवद्ध मंडलेश्वरादिकोंके साथ उन्होने अमलमति नामके केवलीके पास जिनदीक्षा ले ली। तथा पृथ्वी आदिक स्त्रीसमुदायने भी पद्मश्री आर्यिकाके समीप जाकर आर्यिकाके व्रत धारण किये। नागकुमारने चौसठ वर्ष पर्यन्त घोर तप किया और घातिया कर्मोको नष्टकर कैलाश पर्वतपर केवलज्ञान उपार्जन कर वहाँसे मोक्ष गये। और व्याल महाव्याल अच्छेद्य अभेद्य ये चारो कोटीभट छयासठ वर्ष तप करके केवली हो कैलाशसे ही मुक्ति पाये। इस तरह नागकुमार श्रीनेमिनाथ तीर्थकरके समयमे हुए और इनकी सम्पूर्ण आयु एक हजार सत्तर १०७० वर्षकी हुई। इनके साथी सहस्रभटादिक मुनि अपने अपने तपके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त पधारे। लक्ष्मीमती आदिक रानियाँ अच्युतस्वर्ग पर्यन्त गई। इस प्रकार एक वैश्यपुत्र केवल पंचमीका ही उपवास करके उक्त विभूतिसे विशिष्ट हुआ। इस तरह मन वचन कायकी शुद्धतापूर्वक जो उपवास करेगा, वह भी ऐसे २ उत्तम उत्तम फल भोग कर अन्तमें मोक्षलक्ष्मी प्राप्त करेगा।

---

(२) भविष्यदत्तकी कथा।

आर्यखंडके कुरुजांगल देशमें एक हस्तिनागपुर नामका नगर है। वहाँका राजा भूपाल रानी प्रियामित्रासहित सुखसे राज्य करता था। उसी नगरीमे एक धनपति नामका वैश्य रहता था, जिसकी स्त्रीका नाम कमलश्री था। एक दिन कमलश्री अपने मकानकी छतपर वैठी हुई दिशावलोकन कर रही थी कि उसकी दृष्टि अकस्मात् एक ऐसी गौपर पड़ी जो कि थोड़े ही समयकी प्रसूता थी और बड़े प्रेमसे अपने बछरेके पीछे पीछे जा रही थी। उसे देखकर कमलश्रीको भी पुत्रकी इच्छा हुई और पुत्रके न होनेसे अति दुःखी हुई। पतिने आकर अपनी प्रियाको उदास देखकर दुःखका कारण पूछा। तो कमलश्रीने अपने पुत्र न होना ही कारण बतलाया। तब सेठ धनपतिने यह विचार

करके कि धर्म सेवन करनेसे इष्ट अर्थकी सिद्धि होती है, धर्म ही सबका मूल कारण है, नगरके बाहर एक सुन्दर रम्य स्थानमे श्रीजिनेन्द्रदेवके विशाल जिनमंदिर बनवाये।

एक दिन कारणवश राजा भी नगरके बाहर शोभा देखनेके लिए निकला। वहाँ अनेक विशाल जिनमंदिरोंको देखकर उसने किसीसे पूछा कि ये जिनमंदिर किसके बनवाये हुए है? उत्तरसे मालूम हुआ कि धनपति श्रेष्ठीके बनवाये है। तब राजाने अतिशय प्रसन्न होकर धनपतिको अपना राजश्रेष्ठी बनाया। धनपति राजश्रेष्ठी होकर सुखसे रहने लगा।

एक दिन स्वामी श्रीधर मुनि आहार लेनेक निमित्त नगरमे आ रहे थे सो सेठ धनपतिने पड़गाहना करके उन्हे भक्तिपूर्वक आहार दिया। श्रीधर मुनिका अन्तरायरहित आहार हुआ। अनन्तर धनपतिने श्रीमुनि महाराजसे निवेदन किया कि महाराज, मेरी स्त्री कमलश्रीके कोई पुत्र होगा या नहीं? श्रीमुनिने कहा—हाँ! तेरे अतिपुण्यवान् गुणवान् पुत्र होगा। कमलश्री यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। थोड़े दिनके पीछे उसके एक पुत्र हुआ। उसके जन्मोत्सवमें राजाने तथा प्रजाने बड़ा उत्सव किया। पुत्रका नाम भविष्यदत्त रक्खा गया। वह दिन दिन द्वितीयाके चन्द्रमाकी तरह बढ़ने लगा और धीरे धीरे विद्याविशारद तथा सर्व कलाओंमें निपुण हो गया।

कर्मकी गति बड़ी विचित्र है। जो आज राजा है, कर्मके वशसे दूसरे ही दिन उसकी रंक अवस्था देख पड़ती है। कमलश्री जैसी निर्दोष शीलवती स्त्रीको पूर्वोपार्जित अशुभोदयसे धनपतिने अपने घरसे निकाल दी। तब वह अपने पिता हरिबल माता लक्ष्मीमतीके निकट आई और वहीं रहने लगी।

धनपति सेठके नगरमें एक वरदत्त नामका वणिक् रहता था। उसकी स्त्रीका नाम मनोहरी था। उसके एक कन्या थी, जिसका नाम सुरूपा था। कमलश्रीके निकालनेपर इस सुरूपाके साथ धनपति सेठने विवाह किया। समयानुसार उसके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम बंधुदत्त रक्खा गया। यह पिताका बड़ा प्यारा हुआ। बंधुदत्त सब कलाओंमे निपुण होकर क्रमसे युवावस्थाको प्राप्त हुआ। तब धनपति बंधुदत्तके विवाहकी तैयारी करने लगा।

परन्तु बंधुदत्तने कहा कि नहीं मै इस तरह विवाह नहीं करता। मै अपने कमाये हुए द्रव्यसे विवाह करूँगा। ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करके पाँचसौ वणिक् पुत्रोंको साथ लेकर बंधुदत्त द्वीपान्तरको चलने लगा। उसी समय भविष्यदत्तने भी यह समाचार सुने कि बंधुदत्त द्वीपान्तर जाता है। तब उसने अपनी मातासे सविनय पूछा कि मै भी बंधुदत्तके साथ द्वीपान्तर जाऊँ ? माताने कहा कि वह अतिशय दुष्ट है ? उसके साथ जाना अच्छा नहीं है। परन्तु भविष्यदत्तने फिर भी जानेके लिए हठ किया तब माताने समझाया कि तेरे पास द्रव्य नहीं है, कुछ सामान नहीं है, तू द्वीपान्तर कैसे जा सकेगा ? भविष्यदत्तने कहा कि अच्छा सामान वगैरह नहीं है तो अपने पिताके पाससे मॉंग लूँगा, परन्तु परदेश जाऊँगा। ऐसा कहकर उसने पिताके पास जाकर द्रव्य तथा सामानादिकी याचना की। परन्तु पिताने साफ जवाब दे दिया कि इस विषयमें मै कुछ नहीं जानता। तेरा भाई बंधुदत्त ही जाने। लाचार भविष्यदत्त बंधुदत्तके पास गया। तब बंधुदत्तने कपटपूर्वक अपने भाईको प्रणाम किया और कहा कि क्यो भाई, आज कैसे पधारे ? भविष्यदत्तने कहा कि मेरी इच्छा तुम्हारे साथ द्वीपान्तर जानेकी है। परन्तु विना कुछ सामानके जा नहीं सकता, इसलिए थोड़ासा सामान मुझे दो कि जिसकी सहायतासे मै तुम्हारे साथ चल सकूँ। बंधुदत्तने कहा कि भाई, सामानकी तो वात ही क्या है, तुम मेरे भी स्वामी हो। जो तुमको चाहिए, सो ले जाओ। ऐसा कहकर उसने थोड़ासा सामान भविष्यदत्तको भी दिया। तब सामानको लेकर भविष्यदत्तने भी किसी अच्छे मुहूर्त्तमे बंधुदत्तके साथ यात्रा की।

चलते चलते एक दिन किसी भयानक वनमे डेरा किया। वहाँ आधी रातके समय बहुतसे भीलोने आकर सब सामान लूटना प्रारम्भ कर दिया। तब बंधुदत्त आदि सबके सब भीलोके भयसे भाग गये। परन्तु भविष्यदत्तने बड़े साहसके साथ उन भीलोके साथ युद्ध किया। और अन्तमे उसहीकी विजय रही, अर्थात् भविष्यदत्तने अपना सब माल छुड़ाकर भीलोको भगा दिया। इससे भविष्यदत्तकी बड़ी प्रशंसा हुई। सब मिलकर वहाँसे चले और बहुधान्यखेट नगरमे पहुँचे। उस नगरमे प्रभावती नामकी एक प्रसिद्ध वेश्या थी। सो भविष्यदत्त उस वेश्याको कुछ किराया देकर

उसीके घर ठहर गया। पश्चात् बंधुदत्त सब सामान किरायेके जहाजोंपर लादकर जिस समय चलने लगा, उस समय भविष्यदत्तको भी वेश्याके यहाँसे बुलवा लिया। और सब जहाजमें बैठकर आगेको चले। कितने ही दिनोंमें तिलकद्वीपमें पहुँचे। वहाँ जल और लकड़ी भरनेके लिए जहाज खड़े किये गये। सब जहाजसे उतर कर अपना अपना काम करने लगे। कोई रसोई करने लगा, कोई पानी भरकर जहाजमें रखने लगा, कोई सामान रखने लगा। इसी बीचमें भविष्यदत्तने वनमें घूमते हुए एक सुन्दर सरोवर देखा। उसमें स्नान कर वह श्री जिनेन्द्रदेवकी स्तुति करनेको बैठ गया।

इधर जहाजवाले भोजनादिकसे निवृत्त होकर काष्ठ जल आदिका संग्रह करके जहाज चलनेकी तैयारी करने लगे। अनेकों कहा कि भविष्यदत्तने कहाँ है? यहाँ देख नहीं पड़ता। बंधुदत्तने इससे प्रसन्न होकर अपने सेवकोंको आज्ञा दी कि इस जंगलमें सिंह व्याघ्रादिकका बहुत भय है, इसलिए शीघ्र ही जहाज चलाओ। आज्ञा पाकर जहाज चलने लगे। थोड़ी देरमें भविष्यदत्त लौटकर आया, परन्तु जहाज न दीख पड़े। तब माताकी दी हुई शिक्षा स्मरण हुई। माताने कहा था कि यह तेरा भाई दुष्ट है, तू इसके साथ मत जा। सो उसका फल आज पाया। वह अपनेको असहाय और अशरण देखकर एकत्व, अनित्यत्व, अन्यत्व, अशरणत्व आदि बारह भावनाओंका चिन्तवन करता हुआ उस वनके चारों ओर भ्रमण कर रहा था कि अकस्मात् उसने एक वटवृक्षके नीचे, नीचेको जाती हुई सीड़ियाँ देखीं और यह समझकर कि यहाँ बावड़ी है, नीचे जल भरा होगा, वह सीड़ियोंपरसे पानी पीनेकी इच्छासे नीचे उतरने लगा। थोड़ी ही दूर गया था कि एक ओर पृथ्वीके नीचे ही एक ऊजड़ पड़ा हुआ शहर दीख पड़ा। उस नगरके ईशान कोनमें एक परम पुनीत सुन्दर जिनमंदिर दीख पड़ा। भविष्यदत्त श्रीजिनालयको देखकर प्रसन्न होकर उसके दरवाजेपर पहुँचा। परन्तु उसके कपाट बंद देखकर बाहर ही बैठकर स्तुति करने लगा। उसकी भक्तियुक्त सच्ची स्तुतिके प्रभावसे थोड़ी ही देरमें वे कपाट स्वयं ही खुल गये। भविष्यदत्तने भीतर जाकर डेढ़सौ धनुप ऊँची चन्द्रकान्त रत्नमयी

प्रतिमा विराजमान देखी। प्रसन्न चित्त होकर भक्तिपूर्वक दर्शन स्तुति की। उसको ऐसे अपूर्व चैत्यालयके दर्शन प्रथम ही हुए थे। दर्शनादिक करके वह उसी चैत्यालयकी दालानमें एक ओर बैठ गया।

इसी बीचमें एक और कथा है। सो इस प्रकार है कि इसी द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती नामका देश है। उसमें पुंडरीकिणी नगर सबसे सुन्दर है। उस नगरके बाहर श्री यशोधर तीर्थंकरका समवशरण आया। उसमें अच्युत नामके सोलहवें स्वर्गके इन्द्र विद्युत्प्रभने गणधर स्वामीसे पूछा कि प्रभो, मेरा पूर्व भवका मित्र धनमित्र कहाँ उत्पन्न हुआ है और उसकी स्थिति कैसी है? गणधर देवने कहा कि इसी द्वीपके भरत क्षेत्रमें एक हस्तिनागपुर नगर है। वहाँके प्रधान वैश्य धनपतिकी स्त्री कमलश्रीसे उत्पन्न हुआ भविष्यदत्त तेरा पूर्व जन्मका मित्र है। और वह इस रामय तिलकद्वीपके हरिपुर नगरमें श्री चन्द्रप्रभके जिनालयमें बैठा है। उस हरिपुर नगरमें अरिंजयके पूर्व भवका शत्रु कौशिकका जीव राक्षस हुआ है, सो उसने पूर्व भवके वैरसे हरिपुर नगरकी सब प्रजा राजा रानी समेत मारकर केवल भविष्यानुरूपा शेष रक्खी है। सो उस भविष्यानुरूपासे विवाह करके बारह वर्ष पीछे तेरा मित्र भविष्यदत्त अपने कुटुम्बसे मिलेगा।

मित्रकी ऐसी कथा सुनकर उस इन्द्रने एक अमितगीत देवको तत्काल ही हरिपुरको भेजा और आज्ञा दी कि भविष्यदत्त भविष्यानुरूपाका परस्पर दर्शन जिस तरह हो सके, वही करो। अमितगतिने चन्द्रप्रभके चैत्यालयमें पहुँचकर देखा कि भविष्यदत्त सो रहा है। तब उसने समीपवाली दीवालकी ऐसी जगहपर जहाँ कि भविष्यदत्तको उठते ही दृष्टि पड़े, ये वाक्य लिख दिये—“भविष्यदत्त! इस नगरके राजा अरिंजय रानी चन्द्राननासे उत्पन्न हुई भविष्यानुरूपा पुत्रीके साथ जो कि यहाँके राजभवनमें अकेली ही रहती है और एक राक्षस जिसकी रक्षा करता है, विवाह करके बारह वर्ष पीछे तुम अपने कुटुम्बसे मिलोगे”। ऐसा लिखकर देव तो अपने स्थान चला गया। इधर भविष्यदत्तने उठते ही उक्त लिखे हुए वाक्य देखकर राजभवनकी ओर चलनेका उद्यम किया। तलाश करते हुए राजभवनके पास पहुँचा। एक झरोखेमेंसे भविष्यानुरूपाको देखकर उसने कहा कि भविष्यानुरूपे, किवाड़ खोल, भविष्यानुरूपाने कि-

वाड़ खोलकर पूछा कि तुम कौन हो ? भविष्यदत्तने कहा—मैं एक वैश्यका पुत्र हूँ। मार्ग चलता हुआ यहाँ आया हूँ।
तब राजपुत्रीने वणिक्‌पुत्रको सत्कार करके स्नान भोजनकी सब व्यवस्था कर दी। पश्चात् जब भविष्यदत्त स्नान भोजनसे
छुट्टी पा चुके, तब भविष्यानुरूपाने कहा—एक राक्षसने यहाँकी सब प्रजा और राजाको मार डाला है और वही यहाँपर
मेरी रक्षा करता है। ये चित्र विचित्रके दास दासी उसने मेरे लिए ही भेजे है और ये ही सब मेरे भोजनादिकका प्रबंध
करते है। वह छःमहीने पीछे आकर मुझे एक वार देख जाता है। अब वह आगामी सप्ताहमें आनेवाला है। सो जबतक वह न आवे,
तबतक तुम यहाँसे चले जाओ। भविष्यदत्तने कहा—नहीं, मैं जाना नहीं चाहता। मैं देखना चाहता हूँ कि वह कैसा प्रतापी है ?
ऐसा कहकर भविष्यदत्त वहाँ ही रहा और वह भविष्यानुरूपा कन्या भी संयम सहित रही। अपने समयपर वह राक्षस आया।
भविष्यदत्तको देखते ही वह इसके पैरोंपर पड़ गया और भविष्यानुरूपाको अर्पण करके बोला कि मैं आपका सेवक हूँ।
आप जब स्मरण करेंगे, तब मैं हाजिर होऊँगा। ऐसा कहकर वह तो अपने स्थानपर चला गया। और भविष्यदत्त
भविष्यानुरूपा दोनों पति पत्नी होकर सुखसे रहने लगे।

इधर भविष्यदत्तकी माता कमलश्री पुत्रके वियोगमें अतिशय दुःखित हुई। उस दुःखकी शांति करनेके लिए
उसने सुव्रता आर्यिकाके समीप पंचमीका व्रत लिया और उसे यथारीति पालती हुई दिन व्यतीत करने लगी।

इधर भविष्यदत्तको भविष्यानुरूपाके साथ रहते हुए बारह वर्ष हो गये। तब एक दिन भविष्यानुरूपाने अपने
पतिसे पूछा कि नाथ, जैसे मेरे पिता माता भाई बहिन कोई नहीं है—मैं अकेली हूँ सो इस तरह क्या आप भी
अकेले ही हो ? भविष्यदत्तने कहा—नहीं, मेरे माता पिता आदि कुटुम्ब सब हस्तिनागपुरमें है। पत्नीने कहा—तो वहाँ
चलनेका कोई उपाय करना चाहिए। तब भविष्यदत्तने चलनेका विचार किया। अच्छे अच्छे रत्नोंकी राशि समुद्रके
किनारे लगाकर और ऊँची ध्वजायें फहराकर वहाँ ही भविष्यानुरूपाके साथ रहने लगा।

भविष्यदत्तका भाई बंधुदत्त जो व्यापार करनेके लिए गया था, अनेक व्यापार कर जहाजोंमें बहुतसा माल
खजाना लादकर लौट रहा था कि मार्गमें सबका सब माल चोरोंने लूट लिया। जहाज खाली होनेसे चलनेमें असमर्थ

हुए, तब पाषाण भरकर ही लौटा और वहीं आ पहुँचा, जहाँ कि भविष्यदत्त रत्नराशि लगाये ध्वजा फहराये निवास कर रहा था। बंधुदत्त दूरहीसे ध्वजा सहित महारत्नराशिको देखकर किनारेपर आया। आते ही भविष्यदत्तके दर्शन हुए। बाँसके विडेके समान अभेद्य कपट हृदके भविष्यदत्तने बाहरमें बड़ा शोक दिखलाया और कहा—भाई, मैं क्या करूँ, जब जहाज बहुत दूर निकल गये, तब तुम्हारा स्मरण आया। तुमको जहाजमें न देखकर मुझे मूर्छा आ गई, अत्यन्त दुःख हुआ। मैंने बहुत चाहा कि जहाजोंको लौटाऊँ, परन्तु वायुका ऐसा वेग हुआ कि जहाज किसी तरह न लौट सके। तुम्हारे विना मुझे यथोचित फल भी मिल गया। मेरा सब द्रव्य लुट गया। भविष्यदत्तने यह सब सुनकर सबको धैर्य बँधाया। और उन सबको नगरमें ले आया। सबको स्नान भोजन कराकर मार्गका परिश्रम दूर किया। दूसरे दिन उस महारत्नराशिको जहाजमें भरकर और भविष्यानुरूपाको जहाजमें विठाकर जब भविष्यदत्त स्वयं जहाजपर चढ़ने लगा तब भविष्यानुरूपाने कहा कि नाथ, मैं करुणमुद्रिका (मुँदरी) और रत्नप्रतिमा भूल आई हूँ, सो ला दीजिए। तब भविष्यदत्त अपनी प्रियाकी उन प्रिय वस्तुओंको लेनेके लिए लौट पड़ा।

इधर बंधुदत्तने भविष्यानुरूपाको अकेली देखकर उसपर मोहित हो अपने सब साथियोंसे कहा कि जिस जहाजमें जो वस्तु है, वह उसीकी है जो उस जहाजका नेता है मेरी नहीं है। सब अपनी अपनी सँभालो। मुझे तो इस कन्या और इतने द्रव्यसे ही सन्तोष है। ऐसी आज्ञा देकर उस दुष्टने सब जहाज आगे बढ़ा दिये। भविष्यानुरूपा अपने पतिको न देखकर मूर्छित हुई, अत्यन्त शोक किया। इसी समय बंधुदत्तने आकर अनेक प्रकारके कामोत्पादक विकारोंके द्वारा घोर उपसर्ग दिया, जिससे भविष्यानुरूपा अतिदुःखी हुई। अन्तमें विचार किया कि कदाचित् यह महापापी बलात्कार शील भंग कर देगा, तो महाअनर्थ हो जायगा। इससे समुद्रमें पड़ जाना अच्छा है। ऐसा विचार कर वह महाशीलवती समुद्रमें पड़ना ही चाहती थी कि उसके शीलके प्रभावसे जलदेवताका आसन कंपायमान हुआ। अवधिज्ञान द्वारा सब समाचार जानकर जलदेवता शीघ्र ही वहाँ आई और सब जहाजों समेत बंधुदत्तको जलमें

डुबानेको तैयार हुई । जहाज डूबने लगे । बंधुदत्त चुप हुआ सामने पुतलीकी तरह खड़ा रहा । जहाजके अन्य वणिक्पुत्रोने आकर भविष्यानुरूपासे विनती की;-हे महासती, क्षमा कर ! क्षमा कर ! ! तब भविष्यानुरूपाने सबको क्षमा किया अर्थात् उस देवीद्वारा सबको बचाया । परन्तु पतिके वियोगमें वह फिर भी रोने लगी । तब उस देवीने कहा;-सुन्दरी, तू दुःख मत कर, तेरा पति दो महीनेमें तुझसे मिलेगा । यह सुनकर कुछ ढाढस बॉध चुप हो रही । कई एक दिनोमे वे सब हस्तिनागपुर पहुँचे । बंधुदत्त अपने घर गया। पितासे जाकर कहाः-मै तिलकद्वीपको गया था। उस द्वीपके हरिपुर नगरमे भूपाल राजा राज्य करता है । उसकी रानी स्वरूपासे यह कन्या उत्पन्न हुई थी। एक दिन राजा अपने कुटुम्ब सहित क्रीड़ा करनेके लिए किसी भयानक वनमे गया था । मै भी उसके साथ था । वहॉ एक ऐसा भयानक सिंह राजाके सामने आया कि उसे देखते ही सब कुटुम्बके लोग भाग गये। परन्तु मैने उस सिंहको मार डाला, इससे राजाने प्रसन्न हो मेरे लिए यह कन्या दी । सो मै विवाह निमित्त आपके पास लाया हूँ। इसने अपने माता पिताके वियोगसे मौन धारण कर लिया है । अब आपके विचारमें आवे, सो कीजिए । बंधुदत्तके ऐसे वाक्य सुनकर धनपति आदि सब कुटुम्बने मिल भविष्यानुरूपाको अनेक तरहसे समझाया । परन्तु वह इस अपूर्व जंजालको देख कुछ न कह सकी, केवल मौन धारण कर ही बैठ रही । बंधुदत्तको आया सुन कमलश्रीने आकर भविष्यदत्तकी खबर पूछी। बंधुदत्तने कहाः-वह बहुधान्यखेटमें प्रभावती वेश्याके घर रहता है । कमलश्री यह सुन और भी दुःखित हुई ।

इसी नगरमे एक दिन श्रीविनयंधर केवली भगवान् विहार करते हुए आये । कमलश्री दर्शनके लिए गई । वन्दना नमस्कार कर पूछा-महाराज, भविष्यदत्त कब आवेगा ? भगवान्ने कहाः-वह एक महीनेमे आवेगा । सुनकर कमलश्रीको बहुत संतोष हुआ ।

इधर भविष्यदत्त मुद्रिका आदि लेकर समुद्रके किनारे आया । परन्तु भविष्यानुरूपाको न देख मूर्छित हो गया। बड़ी कठिनतासे सचेत हुआ । सचेत होते ही अपने आत्माका स्वरूप चितवन करने लगा और फिर अपने राजभवनको लौट वहीं रहने लगा । इसके दो महीने पीछे फिर एक दिन अच्युत स्वर्गके इन्द्रको चिंता हुई कि मेरा मित्र

किस दशामें है ? तब अवधिज्ञानसे उसकी उक्त दशा जान उसने मणिभद्रदेवको भेजा और आज्ञा दी कि भविष्यदत्तको उसके मातापिताके घर पहुँचा दो। देवने भविष्यदत्तको सुन्दर विमानमें विठा नाना प्रकारके रत्नादिकों सहित रात्रिहीमें हरिवलके द्वारपर, जहाँ कि इसकी ननसार थीं और जहाँ इसकी माता कमलश्री रहती थी, उतार दिया। भविष्यदत्तने माता नाना मामा आदिसे मिल सबको संतुष्ट कर फिर भविष्यानुरूपाकी बात पूछी। कमलश्रीने बंधुदत्तका वृत्तान्त बतलाकर कहाः—वह मौन धारण कर रहती है। तब भविष्यदत्तने प्रातःकाल ही अपनी माताको अपनी अँगूठी भविष्यानुरूपाको दिखानेके लिए भेजी और आप स्वयं राजाके दरबारमें गया। राजासे सबका सब वृत्तान्त कहा। राजाने भविष्यदत्तको तो अपने ही महलमें परदेमें छुपा रक्खा। और धनपति तथा बंधुदत्तके साथ जो जो गये थे, उन वणिकों तथा बंधुदत्तको बुलाकर सबसे भविष्यदत्तकी खबर पूछी। बंधुदत्तने कहाः—महाराज, वह बहुधान्यखेटमें प्रभावती वेश्याके घर रहता है। साथ जानेवाले वणिकोंने भी बंधुदत्तकी हाँमें हाँ मिला दी। तब धनपतिने कहा-ये सब भविष्यदत्तको चित्तसे नहीं चाहते हैं। उसको देख भी नहीं सकते है, इसलिए इनका वचन प्रमाण नहीं है। तब तो राजाने चिल्लाकर कहाः—भविष्यदत्त, यहाँ आओ। राजाकी आज्ञा पाते ही भविष्यदत्तने परदेसे निकल राजा और पिता दोनोंको नमस्कार किया। योग्य स्थानपर बैठकर समस्त सभाके बीचमें अपना सब वृत्तान्त कहा। राजाने सुनकर बंधुदत्त और धनपतिको कैद करनेकी आज्ञा दी। परन्तु भविष्यदत्तने राजासे प्रार्थना करके सबको छुड़ा दिया।

भविष्यानुरूपा मुद्रिकाको देखकर समझ गई कि मेरा पति आ गया। हर्षसे उसका शरीर पुलकित हो गया। मौन अवस्थाको छोड़ वह बातचीत करने लगी। राजाने भविष्यानुरूपाको अपने घर बुलवाई और पुत्रीके समान सत्कार किया। तथा भविष्यदत्तको अपनी एक स्वरूपा नामकी और भी पुत्री देकर आधा राज्य दे दिया। अब भविष्यदत्त राजा हो दोनों स्त्रियोंके साथ भोगोपभोगोंका सेवन करता हुआ तथा माता पिताकी भक्ति करता हुआ सुखपूर्वक रहने लगा।

समयानुसार भविष्यानुरूपा गर्भवती हुई। दोहदोंमें इच्छा हुई कि हरिपुरके श्रीचन्द्रप्रभचैत्यालयके दर्शन करूँ। परन्तु अशक्य जान उसने अपने पतिसे यह इच्छा प्रगट नहीं की और इच्छा पूर्ण न होनेसे स्वयं कृश होने लगी। इन्हीं दिनोंमें एक विद्याधरने आकर भविष्यानुरूपाको नमस्कार किया और कहाः-चलो, सब मिलकर हरिपुरमें श्रीचन्द्रप्रभचैत्यालयके दर्शन करें। विद्याधरके कहनेसे राजा भूपाल, भविष्यदत्त और भविष्यानुरूपा आदिक भव्य पुरुष श्रीचन्द्रप्रभचैत्यालयके दर्शन करनेके लिए गये। आठ दिन तक वहाँ रहे। बड़ी भक्तिसे श्रीचन्द्रप्रभचैत्यालयकी तथा वहाँके और और चैत्यालयोंकी पूजा की। जब अपने नगरको चलनेकी तैयारी करने लगे, तब अमितगति और गगनगति दो चारण ऋद्धिके धारक मुनि आकाश मार्गमें नीचे उतरे। सबने उनकी वंदना की। भविष्यदत्तने वन्दनाकर विनयसहित पूछा-हे मुनिराज, इस विद्याधरने अकस्मात् आकर भविष्यानुरूपाको नमस्कार किया और यहाँ दर्शनके लिए लाया, इसका क्या कारण है? मुनिने कहा-

इसी द्वीपके आर्यखंडमें पल्लव देश है। उसमें कांपिल्य नगर है। वहाँका राजा महानन्द रानी प्रियमित्रा सहित राज्य करता था। उसके मंत्रीका नाम वासव था। उसकी केशनी स्त्रीसे वंक और सुवंक दो पुत्र तथा एक अग्निमित्रा नामकी पुत्री हुई थी। वासवने अग्निमित्र नामके एक पुरोहितको उसे विवाह दी। एक दिन महानन्द राजाने अग्निमित्र पुरोहितको किसी अन्य राजाके समीप बहुतसी भेंट देकर भेजा। पुरोहित भेंट लेकर गया, परन्तु बहुत दिन बीतनेपर भी नहीं आया। राजाको उसके न आनेकी चिंता हुई। एक दिन उसी नगरके उद्यानमें सुदर्शन मुनि आये। राजाने वन्दनाके लिए जाकर पूछा-महाराज, अग्निमित्र पुरोहित भेंट देकर अभीतक वापिस क्यों नहीं आया? श्रीमुनिने कहाः-उसने भेंटमें भेजा हुआ सब द्रव्य किसी वेश्याको खिला दिया है। अब तुम्हारे भयसे नहीं आता है परन्तु पाँच दिनमें आ जावेगा। पाँच दिन पीछे पुरोहित आया। आते ही राजाने उसे उसकी स्त्री सहित कारागारमें (कैदमें) डाल दिया। अग्निमित्र और अग्निमित्राको कारागार जाते हुए देख सुवंकको वैराग्य हुआ, इसलिए उसने श्रीसुदर्शन मुनिके समीप जिनदीक्षा ले ली। केशनी सुव्रता आर्यिकाके समीप आर्यिका हो गई। आयु समाप्त होनेपर

सुवंक सौधर्म स्वर्गमें इन्दुप्रभ नामका देव हुआ और केशनी स्त्रीलिङ्ग छेदकर उसी स्वर्गमें रविप्रभ देव हुई। पश्चात् इन्दुप्रभ सौधर्म स्वर्गसे चयकर इसी क्षेत्रके विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणीमें अंवरतिलकपुर नगरके राजा पवनवेग रानी विद्युद्वेगाके मनोवेग पुत्र होकर क्रम क्रमसे बढ़ने लगा। एक दिन वह सिद्धकूट चैत्यालय गया। वहाँ श्रीजिनेन्द्र देवकी वन्दना स्तुति करनेके पीछे एक चारण मुनिकी वन्दना की, धर्मश्रवण किया। अन्तमें अपना पूर्व भव पूछा। मुनिने जैसा कुछ ऊपर लिख चुके है, उसी तरहसे कह सुनाया। जिसे सुनकर मनोवेगने फिर पुछा:-मेरी माताका जीव जो रविप्रभ देव हुआ था, वह अब कहाँ है? मुनिने कहा-उस समय वह भविष्यानुरूपाके गर्भमें है। और भविष्यानुरूपाको हरिपुरके श्रीचन्द्रप्रभचैत्यालयके दर्शन करनेकी इच्छा हुई है। ऐसा सुन यह मनोवेग भविष्यानुरूपाके गर्भमें रहनेवाले अपनी पूर्व भवकी माताके जीवके मोहसे तुम सबको यहाँ लाया है। ऐसा कह वे चारण मुनि तो आकाशमार्गसे चले गये और भविष्यदत्तादिक अपने नगरको लौट आये। भविष्यानुरूपाके अनुक्रमसे चार पुत्र हुए; जिनका सुप्रभ, कनकप्रभ, सोमप्रभ और सूर्यप्रभ ऐसा नाम पड़ा। भविष्यदत्तकी दूसरी स्वरूपा रानीसे धरणिपाल पुत्र और धारिणी पुत्री हुई। भविष्यदत्त अपने पुत्रोंको शिक्षा देते हुए राज्य करने लगे।

एक दिन उसी नगरके उद्यानमें विपुलमति और विपुलबुद्धि मुनि आये। वनपालने मुनिके आनेकी खबर राजाको दी। सुनकर राजा भूपाल भविष्यदत्त आदिक सब ही मुनिकी वंदना करनेके लिए गये। नमस्कारादिक कर धर्मश्रवण किया। फिर भविष्यदत्तने पूछा;-महाराज, मेरे तथा भविष्यानुरूपाके ऐसे पुण्यका क्या कारण है? भविष्यानुरूपाके साथ मेरा अधिक स्नेह क्यों है? अच्युत स्वर्गके इन्द्रका स्नेह मुझपर क्यों है? राजा अरिजय और राक्षसके वैरका क्या कारण है? और कमलश्रीके दुर्भाग्यका क्या कारण है? भविष्यदत्तके ऐसे प्रश्न सुनकर विपुलमति नामा मुनि कहने लगे-इसी द्वीपके ऐरावत क्षेत्रस्थ आर्यखंडमें एक सुरपुर नगर है। उसका राजा वायुकुमार रानी लक्ष्मीमती सहित राज्य करता था। मन्त्री वज्रसेन था। उसके उसकी स्त्री श्रीसे कीर्तिसेना नामकी एक कन्या थी। सो वज्रसेनने वह कन्या अपने भानजेके लिए दे दी; परन्तु वह उसको चाहता नहीं था। इसलिए कीर्तिसेना अपने

पिताके घर ही पंचमीका व्रत करती हुई रहने लगी। उसी नगरमें एक और अतिधनी वैश्य रहता था, जिसका नाम धनदत्त था। उसकी स्त्रीका नाम नंदिभद्रा और पुत्रका नाम नंदिमित्र था। धनदत्तका सब कुटुम्ब मिथ्यादृष्टि था; किन्तु उसी नगरके एक और जैनमतके धारण करनेवाले धनमित्रने समझा बुझाकर उसे अणुव्रत दिला दिये।

एक दिन ग्रीष्म ऋतुमें अनेक उपवास करनेके पीछे पारणाके निमित्त समाधिगुप्ति मुनि आये। मुनिका शरीर पसीनेसे भीग रहा था, सो नंदिभद्राने उन्हें देखकर घृणा की। मुनिसे घृणा करनेके कारण उसे दुर्भग नामके नामकर्मका बंध हुआ। पश्चात् नंदिमित्रने समाधिगुप्त मुनिके समीप जिनदीक्षा ग्रहण की। तपकर अच्युत स्वर्गमें इन्द्र हुआ। कीर्तिसेनाने पंचमीका व्रत बड़ी भक्तिसे किया, उसका उद्यापन कराया। एक दिन श्रीसमाधिगुप्त मुनि उसी नगरके बाहर एक वृक्षकी कोटरमें विराजमान थे। सो कीर्तिसेना अपने पिताके साथ बड़ी विभूतिसे उन मुनिकी वन्दना करनेके लिए आई।

मार्गमें एक कौशिक नामका तापसी पंचाग्नि तपता हुआ बैठा था। सो उनमेंसे किसीने इसकी प्रशंसा की। तब वज्रसेनने कहा–यह तापसी मूर्खप्रायः पशुके समान है, इसलिए प्रशंसाके योग्य नहीं है। अपनी ऐसा निन्दा सुन तापसीको बहुत ही क्रोध आया। परन्तु कुछ कर नहीं सकता था, इसलिए चुप हो रहा। उस तापसीको कुपित हुआ देख, धनमित्र और कीर्तिसेनाने मीठे वचनोंसे उसका क्रोध शान्त किया। सब मुनिकी वन्दना कर अपने अपने घर आये। कीर्तिसेनाने जो पंचमीके उपवास किये थे, धनमित्रने उनकी अनुमोदना तथा प्रशंसा की। पश्चात् आयु पूरी होनेपर धनदत्त मरकर धनपति सेठ हुआ। नंदिभद्रा मरकर कमलश्री हुई। वज्रसेन मरकर अरिंजय राजा हुआ और कौशिक तापसी मरकर राक्षस हुआ। धनमित्र जैनी था, परन्तु परिणामोंकी विचित्रतासे विराधक होकर मरा। तथापि पंचमी उपवासकी जो अनुमोदना की थी, उसके पुण्यके प्रभावसे उसने यह तुम्हारी पर्याय पाई है। और कीर्तिसेना मरकर भविष्यानुरूपा हुई। कीर्तिसेनाका पति मरकर बंधुदत्त हुआ। उक्त सम्बन्ध तुम्हारे स्नेहका कारण है।

अपने पूर्व भव सुनकर भविष्यदत्त बहुत प्रसन्न हुआ। मुनिसे पंचमीके व्रतकी तथा उद्यापनकी विधि पूछी।

श्रीमुनिने विस्तारसे उसके करनेका विधान बतलाया, जिसका निरूपण नागकुमारकी कथामें कर चुके हैं। विशेष इतना ही है कि नागकुमारकी कथामें शुक्लपंचमीका उपवास कहा था और यहाँ कृष्णपंचमीका उपवास कहा है।

भविष्यदत्तने पंचमीका विधान सादर स्वीकार किया तथा भविष्यानुरूपा आदिने भी उसे ग्रहण किया। भविष्यदत्तने बहुत दिनतक राज्य करके अन्तमें अपने पुत्र सुप्रभको राज्य दे पिहितास्रव मुनिके निकट अनेक राजा प्रजाके साथ दीक्षा ग्रहण की। धनपतिने भी दीक्षा धारण की। कमलश्री भविष्यानुरूपा आदिकने सुव्रता आर्यिकाके समीप दीक्षा ले ली। भविष्यदत्त मुनि यथोक्त (शास्त्रानुसार) तप करके अन्तमें प्रायोपगमन सन्यास धारण कर शरीरको छोड सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुए। धनपति आदिक भी तप करके अपने अपने पुण्यके योग्य स्थानोंमें उत्पन्न हुए। कमलश्री और भविष्यानुरूपा दोनों ही तपके प्रभावसे शुक्र महाशुक्र विमानोंमें देव हुई। अब वहाँसे आकर इसी द्वीपके पूर्वविदेह क्षेत्रमें राजपुत्र होकर मोक्षको जावेंगी।

इस तरह दूसरेके किये हुए उपवासकी अनुमोदनासे ही एक वैश्यने ऐसा उत्तम फल पाया, तो जो स्वयं मन वचन कायकी शुद्धता पूर्वक उपवास करेगा, वह क्या उत्तम फल नहीं पावेगा ? अवश्य पावेगा।

(३-४) पूतिगन्ध और दुर्गन्धाकी कथा।

इसी भरतक्षेत्रके आर्यखंडमें अंग देश है। उसमें एक चंपापुर नामका नगर है। वहाँके राजा मघवा रानी श्रीमतीसे श्रीपाल, गुणपाल, अवनिपाल, वसुपाल, श्रीधर, गुणधर, यशोधर, रणसिंह ऐसे आठ पुत्र हुए और सबसे पीछे रोहिणी नामकी एक अतिशय रूपवती पुत्री हुई। एक समय रोहिणीने अष्टाह्निकाकी अष्टमीका उपवास किया। और दूसरे दिन जिनालयमें जाकर श्रीजिनेन्द्रदेवका अभिषेक किया। पश्चात् अभिषेकका गंधोदक लाकर सभामें बैठे हुए अपने पिताको दिया। पिताने गंधोदक लेकर पूछाः-बेटी, तू आज मलीनमुख और शृंगाररहित क्यों है? रोहिणीने कहाः-मैं कलकी उपोषित (उपासी) हूँ, इसलिए। तब राजाने कहा-तो पुत्री, अब तू जाकर पारणा कर।

आज्ञानुसार पुत्री पारणाके लिए चलने लगी, उस समय उसका लज्जासहित यौवनयुक्त शरीर देख राजाने मंत्रियोंसे पूछाः-यह कन्या किसको देनी चाहिए? इसके योग्य वर कौन है? तब मतिसागर मंत्रीने कहाः-सिंधुदेशका राजा अतुलरूपका धारी है, इसलिए वही इसके योग्य है। श्रुतसागर मंत्रीने कहाः-पल्लवदेशका राजा अर्ककीर्ति सर्वगुणसम्पन्न है, इसलिए यह उसके योग्य है। विमलबुद्धिने कहाः-सोरठदेशका राजा जितशत्रु अनुपम गुणोंका धारक है, इसलिए रोहिणी उसको देना चाहिए। सुमतिने कहा-मेरी समझमें तो सबसे अच्छी स्वयंवरविधि है, इसलिए वही करनी चाहिए। सुमतिकी बात सबको रुचिकर हुई। एक बड़ी स्वयंवरशाला बनाई गई और सब क्षत्रियोंको आमंत्रण दिया गया। जिन जिन क्षत्रियोंको बुलाया था, वे सब आये और योग्य स्थानपर बैठे। रोहिणी सोलह शृंगारकरके अपनी धायको साथ ले रथपर सवार हो, स्वयंवरशालामें आई। वहाँ धायने रोहिणीको क्रमसे सब क्षत्रिय दिखाने प्रारम्भ किये। इशारा करके कहने लगीः-हे पुत्री, देख, यह कोशल देशके महामंडलेश्वर राजा श्रीवर्माका पुत्र महेन्द्र है। यह अंगदेशका राजा अंगद है। यह डाहलदेशका स्वामी वज्रबाहु है। इस तरह उस धायने अनेक क्षत्रिय दिखाये। एक जगह एक दिव्य आसनपर बैठे हुए अशोक कुमारको देखकर धाय बोलीः-हे पुत्री, यह हस्तिनागपुरके स्वामी कुरुवंशीय राजा वीतशोक, रानी विमलाका पुत्र अशोक है। यह सर्व गुणोंका स्वामी है। अशोककी ऐसी प्रशंसा सुनकर रोहिणीने वरमाला उसीके कंठमें डाल दी। अशोकके कंठमें पड़ती हुई वरमालाको देख दुर्मति नामके मंत्रीने अपने स्वामी महेन्द्रसे कहाः-देव, आप महामंडलेश्वरके पुत्र हैं, अतिरूपवान् और युवा हैं। आपको छोड़कर इस कन्याने अशोकके कंठमें वरमाला पहनाई, यह क्या योग्य है? कन्या इस विषयमें क्या जानती है? मेरी समझमें तो राजा मघवाने पहलेसे ही लड़कीको सिखाकर रक्खी होगी। उसीकी सलाहसे रोहिणीने अशोकके कंठमें वरमाला पहनाकर आपका अपमान किया है। इसलिए आपको संग्राममें मघवा और अशोक दोनोंको मार कन्या लेना चाहिए। यह सुन महामति मन्त्रीने कहाः-दुर्मते, क्या इस समय तुमको यह मन्त्र देना चाहिए? तुम दुर्मति अर्थात् मिथ्यामतिवाले हो, इसलिए ऐसी सलाह देते हो। तुम्हें याद है कि पहले भरतचक्रवर्त्तिका पुत्र अर्ककीर्ति स्वयंवरमें क्या सुलोचनाको ले सका था? यह मन्त्र देना योग्य नहीं है। इस तरह महामति मन्त्रीके समझानेपर भी महेन्द्रने दुर्मतिकी बातोंमें

आके संग्राम करनेका दुराग्रह नहीं छोड़ा। और जो क्षत्रिय आये थे, वे भी इसीकी ओर ही गये। फिर भी महामतिने कहा:- देखो, स्वयंवरका धर्म ऐसा ही है कि कन्या जिसके कंठमें माला डाले, वही उसका पति होता है। इसलिए इस समय युद्ध करना अनुचित है और जो युद्ध करना ही है, तो पहले अपना मंत्री भेजो, जो कि आपके लिए कन्याकी याचना करे। मंत्रीकी याचनासे यदि उसने वह कन्या आपको दे दी, तो झगड़ेकी कोई बात ही न रही और जो कदाचित् नहीं दी, तो फिर जो आपकी इच्छा हो, सो करना। महामतिके इस तरह समझानेसे मघवाके पास एक अतिचतुर दूत भेजा गया। उसने मघवासे जाकर कहाः-राजन, आप और अशोक दोनोंपर महेन्द्र आदिक क्षत्रिय रुष्ट हुए हैं। इसलिए अपनी कन्या महेन्द्रको देकर सुखसे चिरकालतक जीवन व्यतीत करो, नहीं तो कन्याके निमित्तसे रणमें मरणका शरण लेना पड़ेगा। दूतके ऐसे कठोर वचन सुनकर अशोकने कहा-रे दूत, स्वयंवरका ऐसा ही धर्म है कि कन्या जिसके कंठमें माला डालती है, वही उसका स्वामी होता है। जान पड़ता है कि तेरे सब स्वामीरूपी पतंग अब मेरे बाणके मुखरूपी अग्निमें पड़ना चाहते हैं। अच्छा पड़ने दो, हानि ही क्या है? तू यहाँसे जा और कह दे कि संग्रामके मैदानमें सबका प्रताप देख लिया जायगा। दूतने जाकर ज्योंकी त्यों सब वार्ता कह सुनाई। तब महेन्द्रादिक सब क्षत्रियोंने दूतकी वार्ता सुन रणभेरी बजवाई और सब शस्त्रोंसे सज्जित हो रणभूमिमें आ गये। इधरसे मघवा अशोक आदिक भी व्यूहके सन्मुख प्रतिव्यूहके क्रमसे आ जमे। अपने पति और पिताको अपने निमित्त रणमें गया देख रोहिणीने जिनालयमें जाकर प्रतिज्ञा की कि यदि मेरे निमित्तसे पिता और पतिमेंसे किसीका भी मरण होगा तो मेरे आहार शरीरका त्याग है। इस तरह रोहिणी सन्यास धारण कर जिनालयमें बैठी। इधर दोनों सेनाओंका परस्पर महायुद्ध हुआ। दोनों ओरसे बहुतसी सेना मारी गई। बहुत देर पीछे महेन्द्रकी सेना पीछे हटकर कटने लगी। तब सेनाका भग होते देखकर महेन्द्र स्वयं लड़नेको तत्पर हुआ। महेन्द्रके शस्त्रोंसे अशोककी सेना दबने लगी। अपनी सेना दबती हुई देखकर अशोक महेन्द्रके सामने आया। दोनोंमें तीनों लोकोंको चमत्कार करनेवाला युद्ध बहुत देरतक होता रहा। अन्तमें महेन्द्रको भागना ही पड़ा। परन्तु उसी समय अशोकको चोल पॉड्य चेरम आदि क्षत्रियोंने घेर

लिया। देखकर रोहिणीके भाई श्रीपालादिकने चोलादिकके सम्मुख होकर उनको भगा दिया। चोलादिकको भागते देख महेन्द्र फिर आया और श्रीपालादिकके सम्मुख हुआ। उसके घोर युद्धसे श्रीपालादिकको भागना पड़ा परन्तु अशोकने इतनेमें महेन्द्रको आ दबाया। दोनोका फिर घोर युद्ध होने लगा। अशोकने महेन्द्रकी ध्वजा छेद सारथिको मारकर कहा:-रे महेन्द्र, इस बाणसे अपने शिरकी रक्षा कर! रक्षा कर! और एक बाण छोड़ा, जो महेन्द्रके कंठमें जाके छिद गया। महेन्द्र मूर्छा खाकर पड़ गया। उस समय अशोकने उसका शिरच्छेद करना चाहा, परन्तु मघवाने रोक दिया। थोड़ी देरमें महेन्द्र सचेत होकर फिर लड़नेको उद्यत हुआ। परन्तु महामति मन्त्रीने यह कहकर कि अब लड़कर व्यर्थ अपना शिर शत्रुके हाथ देना उचित नहीं है, युद्ध बन्द करवाया।

युद्ध समाप्त हुआ। मघवाने विजयके नगाड़े बजवाये तथा विजयपताका फहराई। मघवाके विपक्षी राजा जो कि महेन्द्रकी पक्षमे थे, कितने ही तो अपने देशको लौट गये और कितने ही संसारको नश्वर जान मुक्तिरमणीसे पाणिग्रहण करनेके लिए दीक्षित हो गये। इधर अशोक और रोहिणीका विवाह बड़ी धूमधामके साथ हुआ। अशोक थोड़े दिनतक रोहिणीके साथ अपने नगरमे गया। पिता पुत्रका आगमन सुनकर सम्मुख आया। अशोकने पिताको नमस्कार किया और दोनो आनन्दके नक्कारे बजवाते नगरमें गये। माताने तथा अनेक पुण्य स्त्रियोंने जो शेषाक्षत फेके, उन्हे अशोकने सादर स्वीकार किये। अशोकके साथ रोहिणीका भाई श्रीपाल आया था, सो अशोकने उसे अपनी भगिनी प्रयुंगुसुन्दरी अर्पण की और उसको अपने नगरमें भेज दिया। आप स्वयं युवराजके पदसे विभूषित हो सुखपूर्वक रहने लगा।

एक दिन राजा वीतशोक आकाशकी शोभा देख रहे थे कि अकस्मात् एक अति स्वेतवर्ण (सफेद) सुन्दर मेघ दिखाई पड़ा और फिर तत्काल ही नष्ट हो गया। इससे संसारकी क्षणभंगुर अवस्थाका अनुमानकर वे वैराग्यको प्राप्त हो गये। अशोकको राज्य देकर एक हजार राजाओंके सहित उन्होने यमधर आचार्यके निकट दीक्षा ले ली। और घोर तपके द्वारा केवलज्ञान उपार्जनकर मुक्ति प्राप्त की। इधर अशोक रानी रोहिणीसहित सुखसे राज्य करने लगे।

समयानुसार रोहिणीके वीतशोक, जितशोक, नष्टशोक, विगतशोक, धनपाल, स्थितपाल, और गुणपाल ये सात पुत्र हुए। वसुंधरी अशोकवती लक्ष्मीवती और सुप्रभा ये चार पुत्रियाँ हुई और अन्तमे एक लोकपाल नामका पुत्र हुआ। इस प्रकार रोहिणी बारह बालकोकी माता हुई।

एक दिन अशोक और रोहिणी दोनो प्रोषधोपवास करके अपने महलकी छतपर बैठे हुए दिशावलोकन कर रहे थे। उसी समय अनेक स्त्रीपुरुष अपना अपना वक्षस्थल (छाती) कूटते रोते हुए राजमार्गसे जाते दिखलाई दिये। तब रोहिणीने अपनी पंडिता वासवदत्तासे पूछा-माता, यह क्या कोई अपूर्व नाटक है? यह सुन वासवदत्ता रुष्ट हो बोली:-पुत्री, जान पड़ता है, अपने रूप ऐश्वर्यादिकके गर्वसे तुझे अब ऐसा ही सूझने लगा है। रोहिणीने कहा-सो क्या आपके कहनेका अर्थ मै नही समझी? यदि मेरी कोई भूल हो तो बतलाओ, मै उसे छोड़नेका प्रयत्न करूँगी, भूल जाऊँगी। वासवदत्ताने फिर पूछा:-पुत्रि, तो क्या तू इस विपदको सर्वथा नही जानती है? रोहिणीने कहा:-नही। तब पंडिताने रोहिणीके ऐसे सरल परिणाम देखकर कहा:-बेटी, इनका कोई सम्बन्धी मर गया है, इसलिए ये ऐसा शोक कर रहे है।

दैवयोगसे उस समय रोहिणीका छोटा पुत्र लोकपाल खेलते खेलते महलसे गिर पड़ा। इससे सबके सब हाय हाय करने लगे। और माता पिता (रोहिणी अशोक) दोनो ही अवाक् हो रहे। परन्तु बालकको चोट नही आई। उसे नगरकी रक्षा करनेवाले नगर देवताने बीचमे ही हंसशय्यापर धारण कर लिया था। यह देख सब लोग आनन्द मनाने लगे। माता पिताको भी बड़ा हर्ष हुआ।

इस घटनाके दूसरे ही दिन इसी नगरके उद्यानमें रौप्यकुम्भ और स्वर्णकुम्भ नामके दो मुनि पधारे। जिनके समाचार वनपालने राजाको सुनाये। राजाने वनपालको यथायोग्य इनाम देकर नगरमे आनन्दभेरी बजवाई। फिर अपने परिवार सहित बड़े उत्साहके साथ मुनिकी वंदनाके लिए गमन किया। वहाँ पहुँचकर शक्तिपूर्वक मुनिकी पूजा वंदना करके धर्मश्रवण किया। अनन्तर मुनिसे पूछा:-महाराज, इस नगरमे कल दिन अनेक मनुष्योको

क्यों शोक हुआ ? रोहिणी रानी शोकको क्यों नहीं जानती है ? मैंने किस पुण्यके उदयसे यह जन्म पाया है ? और मेरे पुत्र पुत्रियोंके पूर्व भव कौन कौनसे है ? राजाके ऐसे प्रश्नोंको सुनकर रौप्यकुम्भ मुनि कहने लगेः—राजन्, प्रथम ही शोकका कारण सुनो—इसी नगरकी पूर्व दिशाकी ओर बारह योजन चलकर एक नीलाचल नामका पर्वत है। एक समय यमधर मुनि उस पर्वतकी एक शिलाके ऊपर आतापयोग धारण करके बैठे थे। सो उनके माहात्म्यसे उस पर्वतपर रहनेवाले एक भीलको हरिणकी शिकार न मिल सकी, इसलिए वह भील उन मुनिसे द्वेष करने लगा। एक दिन वे मुनि एक महीनेका उपवास पूर्ण होनेपर उसी पर्वतके समीपवाली अभयपुरी नामकी नगरीमें आहार लेनेके लिए गये थे कि उनकी अनुपस्थितिमें (गैरहाजरीमें) उस दुष्ट भीलने वह शिला जिसपर कि मुनि बैठते थे, खैरके अंगारोंसे तप्त कर रक्खी और जब मुनि आते हुए देख पड़े, तब उस शिलापरसे सब अंगार झाड़ बुहारकर साफ करके आप अलग हो गया। श्रीमुनि उस साक्षात् अग्निके समान तप्त शिलापर सन्यासकी प्रतिज्ञा धारणकर आ विराजे। शान्तचित्त हो घोर उपसर्ग सहन किया, जिससे कि शीघ्र ही केवलज्ञानरूपी सूर्य प्रकाशमान होकर उसी समय वे मुक्तिको पधारे। इधर उस भीलको सातवें दिन उदुंबर कोढ़ हुआ, जिससे उसका सब शरीर कुथित हो गया और अन्तमें वह मरकर सातवें नरक गया। फिर वहाँसे निकलकर त्रसस्थावरादिकोंमें दीर्घकालतक भ्रमण करके इसी नगरमें रहनेवाले अंबर नामके ग्वालेकी गांधारी स्त्रीसे दण्डक नामका पुत्र हुआ। एक दिन घूमता फिरता हुआ वह अंबर ग्वाला नीलाचल पर्वतपर गया था। सो वहाँ दावाग्निमें जल मरा। उसकी खबर पाकर उसके कुटुम्बी जन इकट्ठे होकर राजमार्गसे गये थे। यही उनके शोकका कारण है।

राजन्, अब रोहिणी शोकको क्यों नहीं जानती, इस विषयको भी सुन। इसी द्वीपके हस्तिनागपुरमें पहले किसी समयमें राजा वसुपाल राज्य करता था। उसकी रानीका नाम वसुमती था। उसी नगरके एक सेठका नाम धनमित्र और उसकी स्त्रीका नाम धनमित्रा था। उनके एक अतिदुर्गंधस्वरूप अतिदुर्गंधा नामकी पुत्री थी। सो दुर्गंधस्वरूप होनेसे उसके साथ कोई भी विवाह करनेको राजी नहीं होता था। उसी नगरमें एक और सुमित्र नामका

वणिक् रहता था। उसकी स्त्री वसुकान्तासे एक श्रीषेण पुत्र था। जो रातदिन सातों व्यसनोंमें लीन रहता था। एक दिन उसे कोतवालने चोरी करते हुए पकड़ लिया। इस अपराधमें राजाने उसे शूलीकी आज्ञा दे दी। चांडाल उसे शूली देनेके लिए ले जा रहा था कि उसे मार्गमें धनमित्रने देखकर कहाः—यदि तू मेरी पुत्री दुर्गंधाके साथ विवाह करे, तो तुझे शूलीसे छुड़ा दूं। श्रीषेणने प्रत्युत्तरमें कहाः—सेठजी, मर जाऊँगा, परन्तु आपकी पुत्रीके साथ विवाह नहीं करूँगा। परन्तु श्रीषेणके कुटुम्बी जनोंने उसकी प्राणरक्षाके मोहसे इतना आग्रह किया कि, उसे दुर्गंधाके साथ विवाह करना स्वीकार करना पड़ा। धनमित्र सेठने राजासे प्रार्थना करके श्रीषेणको शूलीसे बचा लिया और उसके साथ दुर्गंधाका विवाह कर दिया। श्रीषेणने दुर्गंधाके साथ विवाह तो कर लिया, परन्तु उसकी दुर्गंधको सहन न कर सका। इसलिए रात्रिमें ही कहीं भाग गया। माता पिताने दुर्गंधासे कहा–तू धर्म सेवन कर, जिससे पाप कटै। दुर्गंधाकी इतनी दुर्गंध थी कि भिक्षुक (भीख मॉगनेवाले) उसके हाथसे सुवर्ण तक नहीं लेते थे। एक दिन संयमश्री आर्यिका चर्या मार्गसे उसके घर आई। दुर्गंधाने उनका पड़िगाहन किया। आर्यिकाने इसका अत्यन्त दुर्गंधमय शरीर देखकर चिन्तवन किया कि यह स्वयं कुछ व्याधियुक्त नहीं है। सुगंधि दुर्गंधि होना तो पुद्गलका विकार है। ऐसा आत्मा कोई नहीं है जो सुगंधि दुर्गंधि रूप परिणत होता हो। इसलिए इसके समीप बैठनेमें कोई दोष नहीं है। इस प्रकार निर्विचिकित्सा गुणको प्रकट करती हुई आर्यिका उसके निकट खड़ी हो गई। तब दुर्गंधाने अन्तराय रहित आहार देकर प्रार्थना की–हे आर्यिके, तेरी उपस्थितिमें तेरे प्रसादसे मुझे सुख होता है, इसलिए अब तू मुझे मत छोड़, अर्थात् मुझे छोड़कर मत जा। इसके ऐसे निवेदन करनेपर आर्यिकाके चित्तमें इसके दुःखपर दया आई, इसलिए वह वहीं रहने लगी। एक दिन उसी नगरके बाह्योद्यानमें श्रीपिहितास्रव मुनि आये। वनपालने यह समाचार राजाको दिये। राजा प्रजा सहित मुनिकी वंदना करनेके लिए गया। दुर्गंधा भी उस आर्यिकाके साथ वंदना करनेके लिए गई। राजादिक तो वंदना नमस्कार कर धर्म श्रवण करके अपने नगरको लौट आये और दुर्गंधाने वंदना करके मुनिसे पूछाः–मै किस पापके उदयसे

ऐसी दुर्गंधियुक्त हुई हूँ ? मुनि कहने लगे;–सोरठ (गुजरात) देशमें एक गिरिनगर है । उसका राजा भूपाल और रानी स्वरूपवती थी । उसी नगरका एक सेठ गंगदत्त और उसकी स्त्रीका नाम सिंधुमती था । एक समय जब कि वसंत ऋतु अपनी निराली छटा और अपूर्व शोभा दिखा रहा था, राजाने क्रीड़ा करने और वसंतकी शोभा देखनेको नगरके वाह्योद्यानमें चलनेका विचार किया और साथ चलनेके लिए गंगदत्त सेठको भी बुलवाया। सेठ अपनी स्त्री सहित घरसे निकल ही रहा था कि आहार लेनेके लिए अपने सम्मुख आते हुए गुणसागर मुनि दिखलाई दिये । सो उसने उन मुनिका पड़िगाहन कर लिया, परन्तु देरसे जानेमें राजाका डर था, इसलिए उसने अपनी स्त्रीसे कहा:–प्रिये, तू मुनिको आहार देना, मैं जाता हूँ । सिंधुमती अपने पतिके भयसे कुछ न कह सकी और मुनिको आहार देनेके लिए रह गई । सेठके राजाके साथ चले जानेपर सिंधुमतीने दुःखी होकर विचारा कि यह मुनि मेरी जलक्रीड़ा करनेमें विघ्न करनेवाला हुआ । यह न आता और न मेरे सुखमें बाधा पड़ती । अब मैं इसे देखती हूँ । इस प्रकार क्रोध करके उसने घोड़ेके लिए रक्खी हुई कड़ुवी तुंबीका आहार दे दिया । मुनि आहार लेकर वसतिकामें पहुँचे। उनके शरीरमें बड़ी भारी दाह उत्पन्न होने लगी । अतिशय पीड़ा हुई । परन्तु मुनिने शान्त चित्त हो सहन की और सन्यास धारण कर शरीर छोड़ अच्युत नामका सोलहवाँ स्वर्ग प्राप्त किया ।

उधर जलक्रीड़ा करके जिस समय राजा नगरको लौटा, उसी समय श्रावक लोग मुनिके शव शरीरको विमानमें रखकर दाहक्रियाको ले जाते हुए मिले । राजाने उस विमानको देखकर पूछा;–यह कौनसे मुनिका शव है ? किसीने कहा:–श्रीगुणसागर मुनि एक महीनेका उपवासकर पारणाके लिए नगरमें गये थे, सो गंगदत्तसेठकी स्त्री सिंधुमतीने उन्हें घोड़ेके लिए रक्खी हुई कड़ुवी तुंबीका आहार दे दिया, जिससे उनका शरीर छूट गया। राजाके साथ गंगदत्त सेठ भी था, सो उसे यह सुनकर बड़ा वैराग्य हुआ। तत्काल ही उसने भोगोंसे उदास होकर जिनदीक्षा ले ली। और राजाने क्रोधित होकर सिंधुमतीको नाक कान रहित करके गधेपर चढ़ा अपने शहरसे निकलवा दिया। पीछे सिंधुमतीको कुछ समयमें कुष्टरोग हो गया, जिससे उसका शरीर

गल गया। मरकर छठे नरकमे गई। वहाँ अनेक प्रकारके दुःखोंको सहन करती हुई आयुको पूरीकर निकली और किसी जंगलमे कुत्ती हुई। वहाँ दावाग्निसे मरकर फिर तीसरे नरक गई। वहाँसे निकलकर फिर कौशाम्बी नगरीमे शूकरी हुई। वहाँ अजीर्ण रोगसे मरकर कौशल देशके अन्तर्गत नंदिग्राममे चूही हुई। वहाँ तृषा वेदनासे (प्याससे) मरकर जोंक हुई। एक भैसने जल पीनेके लिए भीतर प्रवेश किया था, सो यह जोंक उसीके शरीरमें लग गई। पश्चात् जब भैंस पानी पीकर बाहर आई, तब जोंक खूब रुधिर पीकर भारी होनेके कारण धूपमें गिर पड़ी। उसी समय एक कौवा उसे चोंचमे दबाकर निगल गया। मरकर उज्जयनी नगरीमे चांडालिनी हुई। वहाँ भी अजीर्ण ज्वरसे मरकर अहिछत्रपुरमे किसी धोबीके घर गधी हुई। वहाँसे मरकर हस्तिनागपुर नगरमें एक ब्राह्मणके घर कपिला गाय हुई। और वहाँ किसी कीचड़मे फँसनेसे मरकर तू उत्पन्न हुई है। दुर्गंधाने अपनी दुर्गंधिका कारण और पूर्व भव सुनकर फिर पूछा—हे नाथ, अब कृपाकर इस दुर्गंधिके दूर होनेका कोई उपाय बतलाइए। मुनिने कहाः—हे पुत्री, सत्ताईसवे दिन जो रोहिणी नक्षत्र आता है, उस नक्षत्रमें उपवास करना चाहिए। उससे ही यह दुर्गंधि दूर हो जायगी। उपवास करनेकी विधि इस प्रकार है कि जिस दिन कृत्तिका नक्षत्र हो, उस दिन स्नान करके श्रीजिनेन्द्र-देवकी पूजा करके एकाशन करै। और उस दिन जब भोजन कर चुके, तब अपने आत्माको साक्षी बनाकर उपवास करनेकी प्रतिज्ञा करै। यह रोहिणीव्रत अगहन महीनेमें ही करना चाहिए। उपवासके दिन श्रीजिनेन्द्रदेवका अभिषेक कर। वह दिन धर्म ध्यानमें ही बितावे। दूसरे दिन जिनेन्द्रदेवकी पूजा तथा स्वाध्याय आदि करके अपनी शक्तिके अनुसार पात्रदान दे और पीछे पारणा करै। यह रोहिणीव्रत उत्तम मध्यम जघन्यके भेदसे तीन प्रकार है। सात वर्षका उत्तम, पाँच वर्षका मध्यम और तीन वर्षका जघन्य है। इसकी उद्यापनाविधि इस प्रकार है कि अगहन महीनेमे रोहिणी नक्षत्रके दिन जिनप्रतिमा बनवाकर प्रतिष्ठा करावै और घी आदिके पाँच पाँच कलशोंसे पृथक् २ पंचामृता-भिषेक करै। तथा पाँच अक्षतके पुंजोसे, पाँच प्रकारके फूलोसे, पाँच पात्रोंमे अलग अलग रक्खे हुए नैवेद्यसे, पाँच दीपोसे, पंचांग धूपसे और पाँच प्रकारके फलोंसे श्रीजिनेन्द्रकी पूजा करै। पाँच पाँच उपकरण सहित उस प्रतिमाको

चैत्यालयमे विराजमान करै और पाँच आचार्योंको पॉच पाँच पुस्तकें देवै। मुनियोंकी यथाशक्ति पूजा करै। आर्यिका-ओंको और श्रावक श्राविकाओंको वस्त्र देवे। तथा अपनी शक्तिके अनुसार अभयदानकी घोषणा करके अन्नदान औपधदान शास्त्रदान आदि करके जिनमतकी प्रभावना करना चाहिए। तथा उसी दिन चैत्यालय वा जिनमंदिरमे पॉच वर्णके अक्षतोंसे ढाई द्वीपका विधान मॉड़कर पूजा करनी चाहिए। यदि इस प्रकार उद्यापन करनेकी शक्ति न हो तो द्विगुणित उपवास करने चाहिए। इस व्रतके करनेसे भव्य जीवोंको इस लोक और परलोक दोनोंहीमें सुख मिलता है। इस प्रकार रोहिणी व्रतका विधान सुनकर दुर्गंधाने उसके पालन करनेकी प्रतिज्ञा ली। और फिर मुनिसे पूछा;- महाराज, इस अपार संसारमे मेरे समान दुर्गंध शरीरवाला कोई और भी हुआ है कि नही? उन्होंने कहा;-हॉ! हुआ है, सुन।

कलिंग देशके एक वड़े जंगलमे ताम्रकर्ण और श्वेतकर्ण नामके दो हाथी रहते थे। दोनो एक हथिनीके पीछे लड़कर मर गये। सो ताम्रकर्ण तो चूहा हुआ और श्वेतकर्ण मार्जार (बिलाव) हुआ। बिलावने चूहेको मारा, सो चूहा मरकर नौला हुआ और वह बिलाव मरकर सर्प हुआ। इस नौलेने सर्पको मारा, तब सर्प मरकर कुक्कट हुआ और नौला मरकर मच्छ हुआ। फिर दोनो ही मरकर कपोत हुए। कपोत बिजलीसे उसी हस्तिनागपुरमें जब कि राजा सोमप्रभ रानी कनकप्रभा सहित राज्य करता था, एक रविस्वामी पुरोहितके उसकी स्त्री सोमश्रीसे सोमशर्मा और सोमदत्त नामके दो यमज (एक साथ) पुत्र हुए। सोमशर्माको सुकान्ता और सोमदत्तको लक्ष्मीमती स्त्री मिली। जब इनका पिता रविस्वामी मर गया, तब राजाने पुरोहितका पद छोटे पुत्र सोमदत्तको दिया। सोमदत्त राज्यमान्य होकर सुखमे रहने लगा। इधर पापी सोमशर्मा सोमदत्तकी स्त्री लक्ष्मीमतीके साथ कामक्रीड़ा करने लगा। धीरे २ यह वृत्तान्त सोमदत्तके पास पहुँचा। सो वह संसारकी ऐसी भयानक अवस्था देख संसारसे पार करनेवाली दिगम्बर मुद्रा धारणकर मुनि हो गया। द्वादशाङ्गका पाठी श्रुतकेवली होकर एकविहारी हुआ। विहार करता हुआ एक दिन हस्तिनागपुरके वाह्य उद्यानमे आया। उन्हीं दिनोंमें सोमप्रभ राजाने मगधदेशके राजाके समीप उसकी

मदनावली कन्या और व्यालसुन्दर हाथीके माँगनेके लिए अपना दूत भेजा था, तथा " न जाने वह सरलतासे देगा या नहीं " ऐसा विचारकर राजाने स्वयं वहाँ जानेके लिए कूच किया था। सो चलते समय राजाने प्रथम ही श्रीसोमदत्त मुनिको देखा। जब सोमदत्तने जिनदीक्षा ग्रहण की थी, उस समय राजाने पुरोहितका पद सोमशर्माको ही दे दिया था। सो इस समय राजाने सोमशर्मा पुरोहितसे पूछाः-प्रस्थान समय यदि प्रथम ही दिगम्बर मुनिके दर्शन हों तो क्या फल होता है? तब दुष्ट सोमशर्माने अपने भाईके जन्मान्तरके वैर भावके कारण राजासे कहाः-महाराज, प्रथम ही दिगम्बरका देखना अपशकुन करनेवाला है, इसलिए आज प्रस्थान करना उचित नहीं है। इस समय घर लौटकर फिर गमन करना उचित होगा। राजा पुरोहितके ऐसे वचन सुनकर ऊँचे स्वरसे " अरे यह बहुत बुरा हुआ, बड़ा अपशकुन हुआ " ऐसा कह कानपर हाथ रखकर क्षणभर स्तब्ध हो रहा। ऐसी विपरीतता देख शकुनशास्त्रके जाननेवाले एक विश्वदेव पंडितने कहा-अरे पुरोहित, बतला तो सही किस शास्त्रमें लिखा है कि दिगम्बर अपशकुनकारक है? पुरोहितजीके होश उड़ गये, सिवाय मौनावलम्बनके और कुछ उपाय न सूझ पड़ा। तब विश्वदेवने राजासे कहाः-महाराज, प्रत्येक कार्यके आरम्भमे दिगम्बरके दर्शन कल्याणकारक होते हैं। देखिए, शकुनशास्त्रमें क्या लिखा है;—

श्रमणस्तुरगो राजा मयूरः कुञ्जरो वृषः ।
प्रस्थाने वा प्रवेशे वा सर्वे वृद्धिकराः स्मृताः ॥

भावार्थ-प्रस्थान करते समय अथवा किसी नगरादिमे प्रवेश करते समय यदि दिगम्बर मुनि, राजा, घोड़ा, मयूर, हाथी और बैल मिलें, तो जानना चाहिए कि उस काममें उसकी वृद्धि होगी और राजन्! जो आपको मेरे शकुनमें संदेह हो, तो आप पाँच दिनतक यहाँ ही ठहरें। जो वह दूत मदनावली कन्या और व्यालसुन्दर हाथीको लेकर न आवे, तो फिर मैं शकुनका जाननेवाला नहीं। तब राजाने विश्वदेवकी बातपर विश्वास करके वहीं डेरा दे दिये। पाँचवें दिन वह दूत कन्या और हाथीको लेकर राजाके समीप आया। तब तो राजाने विश्वदेवपर अति संतुष्ट हो, उसे पुरोहितका पद दे, आनन्दके साथ नगरमें प्रवेश किया। पश्चात् उस कन्याके साथ विवाह करके राजा

सुखसे रहने लगा। उधर पापी सोमशर्माने अपने पुरोहितपदके चले जानेसे श्रीसोमदत्त मुनिसे कुपित हो रात्रिमें उनका घात कर डाला। सो श्रीमुनिराज तो समतापूर्वक शरीर छोड़कर सर्वार्थसिद्धि पहुँचे। और इधर राजाने किसी तरहसे यह जानकर कि सोमशर्माने मुनिका घात किया है, उसे गधेपर चढ़ा, शहरसे बाहर निकलवा दिया। वह बड़े दुःखोसे मरकर सातवे नरक गया। वहाँसे निकलकर स्वयंभूरमण नामके सबके अन्तके समुद्रमे महामत्स्य (सबसे बड़ा मच्छ) हुआ। फिर मरकर छठे नरक गया। आयु पूर्ण होनेपर वहाँसे भी निकला और एक भयानक वनमें सिंह हुआ। उस पर्यायको छोड़कर फिर पाँचवें नरक गया। वहाँसे निकलकर वाघ हुआ। वहाँसे मरकर चौथे नरकमें पहुँचा। वहाँसे निकलकर दृष्टिविष सर्प हुआ, जो कि मरकर तीसरे नरकमे पहुँचा। वहाँसे निकलकर भेरराड जातिका पक्षी हुआ; मरकर दूसरे नरकमे पहुँचा। वहाँसे आकर शूकर (सूअर) हुआ, जो कि मरकर प्रथम नरकमें पहुँचा। फिर वहाँसे निकलकर मगधदेशके अंतर्गत सिंहपुरके राजा सिंहसेन और रानी हेमप्रभाका पुत्र हुआ। इसका शरीर महादुर्गंधिस्वरूप था, इसलिए इसका नाम दुर्गंधकुमार रक्खा गया।

एक दिन उसी नगरके निकट श्रीविमलवाहन केवली पधारे। उनकी वंदना करनेके लिए राजा प्रजा सभी जन गये। दुर्गंधकुमार भी गया। वहाँपर अनेक देव केवलीकी वंदनाके लिए आये थे, सो उनमेंसे कुछ असुरकुमारोंको देखकर मूर्छित हो गया। तब राजाने दुर्गंधकुमारके मूर्छित होनेका कारण केवली भगवानसे पूछा। उन्होंने पहली कथा जो कि सोमशर्मा पुरोहित, व्यालसुंदर हाथी, मदनावली कन्या और सोमदत्त मुनि आदिके सम्बन्धसे लेकर अब तक हुई थी, सबकी सब सुनाकर कहा;—असुरकुमारोंने इस दुर्गंधकुमारको नरकोंमें अनेक प्रकारके दुःख दिलवाये थे, इसलिए यह इन्हे देखकर मूर्छित हो गया है। तब राजाने फिर हाथ जोड़कर पूछा;—देवाधिदेव, इसकी दुर्गंधि दूर होनेका क्या उपाय है? श्रीकेवलीने प्रत्युत्तरमे कहाः—यदि यह रोहिणी व्रतको विधिपूर्वक करेगा, तो इसकी दुर्गंधि दूर हो जायगी। इस प्रकार केवलीकी वंदनाकर अनेक प्रश्नादिक पूछ सब अपने अपने घर लौट आये। दुर्गंधकुमारने

रोहिणीव्रतको विधिपूर्वक सात वर्षतक पालन किया और अन्तमे बड़े उत्सवके साथ उद्यापन किया। सो इस व्रतके माहात्म्यसे इसका पूर्ण शरीर अतिशय सुगंधिमय हो गया और इसका नाम सुगंधकुमार पड़ गया।

कुछ दिन पीछे कारणवश राजाको विषयभोगोंसे वैराग्य उत्पन्न हुआ, इसलिए इस सुगंधकुमारको राज्य दे, उसने श्रीविमलवाहन केवलीके निकट जिनदीक्षा ले ली और घोर तपसे क्रमशः अष्टकर्मोका नाशकर मुक्ति प्राप्त की। इधर सुगंधकुमारने बहुत काल तक राज्य कर अपने पुत्र विनयको राज्य दे समयगुप्ताचार्यके निकट जिनदीक्षा ली और घोर तप करके अच्युतस्वर्ग प्राप्त किया। वहाँसे चयकर जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह क्षेत्रके पुष्कलावती देशको शोभायमान करनेवाली पुंडरीकिणी नगरीके राजा विमलकीर्तिके उसकी पद्मश्रीरानीसे अर्ककीर्ति नामका पुत्र हुआ। यह अर्ककीर्ति राजपुत्र अपने मित्र मेघसेनके साथ दिन दिन बढ़ता हुआ क्रमशः सब कलाओंमे निपुण हो गया।

एक दिन उसी नगरमे उत्तरमथुरासे सेठ वसुदत्त अपनी स्त्री लक्ष्मीमति और पुत्र मुदितके साथ आया तथा दक्षिणमथुरासे सेठ धनमित्र अपनी स्त्री सुभद्रा और पुत्री गुणवतीके साथ आया।

वसुदत्तके पुत्र मुदितके साथ धनमित्रकी पुत्री गुणवतीका विवाह पक्का हो गया। विवाहकी तैयारियाँ हुई। दोनो वर कन्या विवाह मंडपमे वेदीके निकट बैठे। इस समय राजपुत्रके मित्र मेघसेनकी दृष्टि गुणवती कन्यापर पड़ी। देखते ही वह मोहित हो गया। और राजाके पुत्र अर्ककीर्त्तिसे बोला;-मित्र, तुम्हारे जैसे राजपुत्रको मित्र पाकर भी जो मुझे यह सुन्दरी कन्या न मिल सकी तो तुम्हारे साथ मित्रता होनेसे क्या लाभ? अपने मित्रकी ऐसी बात सुनकर अर्ककीर्तिने उस वणिक्‌की कन्याको हठपूर्वक हर ली। यह सुनकर अर्ककीर्त्तिके पिता विमलकीर्त्ति राजाने क्रोधित हो आज्ञा दी;-तुम दोनो मेरे राज्यसे निकल जाओ। तब अर्ककीर्ति वहाँसे निकलकर वीतशोकपुरमे पहुँचा। वहाँ राजा विमलवाहन रानी सुप्रभा सहित राज्य करता था। उसके जयवती, वसुकान्ता, सुवर्णमाला, सुभद्रा, सुमती, सुव्रता, सुतंद्रा और विमला इस प्रकार आठ कन्याये थी। राजा विमलवाहनने एक दिन किसी अवधिज्ञानीसे पूछा था कि उन कन्याओका पति कौन होगा? सो श्रीमुनिने कहा था कि जो कोई चंद्रकवेधको निशाना लगावेगा, वही इन

कन्याओंका पति होगा। राजाने उन कन्याओंका पति ढूँढनेके लिए स्वयंवर मंडपकी रचना की और उसमें एक चन्द्रकवेध स्थापन किया। अनेक देशोंके राजा राजपुत्र आये। सबने चन्द्रकवेधमें निशाना मारनेका प्रयत्न किया, परन्तु इस कार्यको कोई भी पूरा न कर सका। इस स्वयंवरमें अर्ककीर्ति भी पहुँच गया था। सो उस निशानेको मारकर उन आठ कन्याओंके साथ विवाह करके सुखसे वहीं रहने लगा।

एक दिन राजा विमलवाहन अर्ककीर्ति आदि अनेक जन विमलपर्वतपर निर्वाणक्षेत्रकी पूजा वन्दना करनेके लिए गये। वहाँ जाकर आनन्दसे पूजा वन्दना आदि करके रात्रिको सबने वहीं डेरा दिये। जब सब लोग सो गये, तब एक चित्रलेखा विद्याधरी अर्ककीर्तिको उड़ाकर ले गई और सिद्धकूटके सम्मुख जाकर रख दिया। यह विद्याधरी इस अर्ककीर्तिको वहाँसे क्यों उठा लाई? क्यों यहाँ लाकर रक्खा? इसकी संक्षेप कथा इस प्रकार है कि:—

विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तरश्रेणीमें एक मेघपुर नगर है। वहाँ राजा वायुवेग राज्य करता था। उसकी गगनवल्लभा रानीसे एक वीतशोका कन्या थी। एक दिन राजा वायुवेग मेरुपर्वतपर चैत्यालयोंकी वंदना करनेके लिए गया था, सो वहीं किसी अवधिज्ञानीसे उसने पूछा:—मेरी पुत्रीका पति कौन होगा? तब मुनिने कहा:—जिसके दर्शन करनेसे सिद्धकूटके किवाड़ खुल जाँयगे, वही इस कन्याका पति होगा। सुनकर राजाने सन्देह किया कि विद्याधरोंमें तो ऐसा कोई भी नहीं है, फिर यह कैसे हो सकेगा? परन्तु फिर मुनिके वचन अन्यथा नहीं होते हैं, कोई न कोई आवेगा, ऐसा विचार करके चुप हो रहा। इधर उस कन्याकी एक सखीने अर्ककीर्त्तिकी प्रशंसा सुनी, सो वह विमल पर्वतपर सोते हुए अर्ककीर्तिको उठा लाई।

जिस समय उस विद्याधरीने अर्ककीर्त्तिको सिद्धकूट चैत्यालयके सामने बिठाया, उसी समय उसके देखते ही चैत्यालयके कपाट खुल गये। राजाको खबर हुई। राजाने सत्कारपूर्वक अर्ककीर्त्तिको अपने नगरमें ले जाकर अपनी कन्या विवाही। अर्ककीर्त्ति वीतशोकाके साथ विवाह करके वहाँ सुखसे रहने लगा। वहाँ रहकर अनेक विद्या सिद्ध कर लीं।

एक दिन वह वीतशोकाको वहीं छोड़कर वीतशोकपुर जानेके लिए चल पड़ा। और कुछ दिनमें आर्यखंडके

अजनगिर नगरमें पहुँचा। वहाँके राजा प्रभंजनके रानी नीलांजनासे सात पुत्री थीं, जिनका नाम मदनलता, विद्युल्लता सुवर्णलता, विद्युत्प्रभा, मदनवेगा, जयावती और सुकान्ता था। एक दिन ये सातों ही पुत्री अपने उद्यानके बागमें क्रीड़ा करके नगरको लौट रहीं थीं कि बंधन तोड़कर भागा हुआ एक हाथी मारनेके लिए इनके सामने आया। हाथीको सामनेसे आता हुआ देखकर इनके रक्षक परिजन आदि सब लोग भाग गये। पुत्रियाँ अकेली रह गईं और हाहाकार करने लगीं। यह सुनते ही अर्ककीर्तिने हाथीको पकड़कर किसी बंधनसे बाँध दिया। राजा ये समाचार सुनकर अर्ककीर्तिके पराक्रमपर प्रसन्न हुआ, इसलिए उसने अपनी उन सातों पुत्रियोंका विवाह अर्ककीर्तिके साथ कर दिया। अर्ककीर्त्ति कुछ दिन वहाँ रहकर वीतशोकपुर पहुँचा और वहाँ अपने मित्रमंडलसे मिलकर सबके साथ अपने नगरमें पहुँचा। वहाँ वह अपनी विद्याके प्रभावसे ऐसा अदृश्य वेश धारण करके कि जिससे वह किसीको भी न देख पड़े और उसे सब कुछ देख पड़े, राजकीय मंडपमें पहुँचा। वहाँ उसने सुपारियोंको बकरीकी लैंड़ी बना दी, पानोंको आकके पत्ते कर दिये, कस्तूरी केशर आदिक जो सुगंधित पदार्थ थे उन्हें विष्ठा कर दिया। और इसी तरह स्त्रियोंको डाढ़ी मूँछ लगा दीं, पुरुषोंके कुच (स्तन) लगा दिये। हाथियोंको शूकर, घोड़ोंको गधा, पानीको गौका मूत्र और अग्निको शीतल कर दिया। इस प्रकार नाना प्रकारकी क्रीड़ायें कीं जिनसे कि राजा विमलकीर्त्तिको बड़ा आश्चर्य हुआ। दूसरे दिन अर्ककीर्त्ति भिल्लका रूप धारण कर नगरके सब गाय भैंस आदिक पशुओंको ले जाने लगा। यह देख ग्वालियोंने बड़ा हल्ला (कोलाहल) मचाया, जिसको सुन राजाने उस भीलको जीतकर गाय भैंस छुड़ानेके लिए अपनी सेना भेजी। उस सब सेनाको अर्ककीर्त्तिने अपनी विद्याके बलसे मूर्छित करके जमीनपर सुला दी। जब राजाने यह सुना कि मेरी सब सेना भूमिपर सो चुकी है, तब तो वह अतिक्रोधित हुआ और अपनी और सेना लेकर स्वयं उस भीलसे लड़नेके लिए रणसंग्राममें गया। इधर तो राजा विमलकीर्त्ति और उधर भीलका रूप धारण किए हुए इनका पुत्र अर्ककीर्त्ति, दोनोंमें बड़ा युद्ध हुआ। अन्तमें अर्ककीर्त्तिके मित्र मेघसेनने राजा विमलकीर्त्तिसे कहाः—राजन्, आप किसके साथ लड़ते हैं? यह आपका पुत्र अर्ककीर्त्ति है। विमलकीर्त्ति पुत्रको ऐसा प्रतापी देखकर अत्यन्त हर्षित हुआ। उधरसे

अर्ककीर्त्तिने आकर अपने पिताको नमस्कार किया। चरणोंपर अपना मस्तक रक्खा। पिता पुत्र दोनों परस्पर मिले। दोनोंने बड़े आनन्दके साथ नगरमें प्रवेश किया। पश्चात् अर्ककीर्त्ति जिनके साथ पहले विवाह किया था, उन सब स्त्रियोंको बुलाकर सुखपूर्वक रहने लगा।

एक दिन राजा विमलकीर्त्ति दर्पणमें अपना मुख देख रहे थे कि उनकी दृष्टि एक स्वेत बालपर पड़ी। उसे यमका दूत जानकर वे भोगोंसे उदास हो गये तथा अर्ककीर्त्तिको राज्य दे, उन्होंने सुव्रताचार्यके समीप जिनदीक्षा ले ली और कर्मसमूहको नाशकर मोक्ष प्राप्त किया। इधर अर्ककीर्त्ति सकलचक्रवर्त्ती हुआ। बहुत कालतक सुखसे राज्यकर अन्तमें वह भी अपने पुत्र जितशत्रुको राज्य दे, चार हजार भव्य पुरुषोंके साथ शीलगुप्ताचार्यके समीप मुनि हो गया। घोर तप करके सोलहवें अच्युत स्वर्गका इन्द्र हुआ, जो कि वर्त्तमान समयमें वहांका सुख भोग रहा है। अपनी आयुको पूरण करके वहाँसे च्युत होगा और इसी हस्तिनागपुरमें राजा वीतशोकका पुत्र अशोक होगा और हे पुत्री, तू इस भवमें पुण्य करके यह शरीर छोड़ स्वर्गकी देवी होगी और वहाँसे आकर चंपापुरके राजा मघवाके रोहिणी नामकी पुत्री होगी। जो हस्तिनागपुरके राजा वीतशोकके पुत्र अशोककी पट्टरानी होगी। पूतिगंधा श्रीपिहितास्रव मुनिके मुखसे ऐसे अपने भवान्तर आदिके वचन सुनकर नमस्कार करके अपने घरको लौटी। फिर उसने इस रोहिणी व्रतको मन वचन कायसे पालकर अन्तमें बड़े उत्सवसे उद्यापन किया। सो व्रतके प्रभावसे उसका शरीर सुगंधित हो गया। तब इसने एक आर्यिकाके निकट दीक्षा ले ली। घोर तप करके सन्यासमरणपूर्वक शरीर छोड़ा, जिससे कि अच्युतेन्द्रके प्रतिनियत विमानमें जो कि ईशान स्वर्गमें है अच्युत स्वर्गके इन्द्रकी नियोगिनी देवी हुई। वहाँसे चयकर अच्युतेन्द्रका जीव तो तू अशोक हुआ है और वह देवी अपनी आयुको पूर्णकर यह रोहिणी हुई है। हे राजन्, रोहिणी व्रतसे जो तीव्र पुण्यका बँध हुआ है, उसीके प्रभावसे यह शोक करना नहीं जानती है।

इसके पश्चात् मुनिराज बोले—राजन्, अब अपने पुत्र पुत्रियोंके भवान्तर सुनः—

इसी जम्बूद्वीपमें उत्तर मथुराका राजा शूरसेन राज्य करता था। उसकी विमला रानीसे एक पुत्री उत्पन्न हुई

थी, जिसका नाम पद्मावती था । उसी उत्तर मथुरामें एक अग्निशर्मा ब्राह्मण रहता था, जिसकी स्त्रीका नाम सावित्री था । इस ब्राह्मणके सात पुत्र हुए, जिनके क्रमसे शिवशर्मा, अग्निभूति, श्रीभूति, वायुभूति, विषभूति, सोमभूति और सुभभूति ऐसे नाम पड़े । एक दिन ये सातों ही पुत्र भिक्षा माँगनेके लिए पाटलिपुत्र (पटना) पहुँचे । वहाँके राजाका नाम सुप्रतिष्ठ और रानीका नाम कनकप्रभा था । इनके पुत्रको जिसका कि नाम सिंहरथ था, कोई पुरुष एक पद्मावती कन्या देनेके लिए लाया । सो उसके साथ राजपुत्रका विवाह बड़े धूमधामसे हुआ । इस विवाहकी अतिशय विभूतिको देखकर इन सातो पुत्रोंके हृदयपर बड़ा असर हुआ । सातों ही विचार करने लगे कि भिक्षाभोजन करते हुए जीवित रहनेसे क्या लाभ है ? अच्छा हो कि यदि हम वास्तविक भिक्षाभोजन ही करें । ऐसा विचार करके श्रीसीमंधर मुनिके निकट सातोंहीने मुनिव्रत स्वीकार कर लिये । और अन्तमें समाधिसहित शरीर छोड़कर वे सब सौधर्म स्वर्गमें देव हुए । तथा जिस पूतिगंधका वर्णन पहले कर चुके हैं, उसके पिताका एक भल्लातक नामका दासीपुत्र था । सो वह भी श्रीपिहितास्रव मुनिके उपदेशसे जैनधर्म स्वीकार करके अन्तमें समाधिपूर्वक शरीर छोड़कर उसी सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ । और अब वे आठों ही देव (सात ब्राह्मण पुत्रोंके जीव और एक भल्लातकका जीव) सौधर्मस्वर्गसे च्युत होकर क्रमसे तेरे आठ पुत्र हुए हैं ।

तदनन्तर मुनिराज बोले—तेरी पुत्रियोंके भव इस प्रकार हैं,—

इसी जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह क्षेत्रमें विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक अलका नगरी है । वहाँके राजाका नाम मरुदेव और उसकी रानीका नाम कमलश्री था । उसके पद्मावती, पद्मगंधा, विमलश्री और विमलगंधा नामकी चार कन्यायें थीं । एक दिन ये चारों ही पुत्रियाँ गगनतिलक चैत्यालयके दर्शन करनेको गई थीं । सो वहाँ उन्होंने श्रीसमाधिगुप्त मुनिके समीप पंचमीके व्रत करनेकी प्रतिज्ञा ली और थोड़े दिनतक उसका पालन किया । दैवयोगसे बीचमें ही उनके ऊपर वज्र पड़ा कि जिससे वे मरकर स्वर्गमें देवी हुईं । व्रतका उद्यापन करनेका भी उन्हें अवसर नहीं मिला । फिर वहाँसे आकर ये तेरी पुत्रियाँ हुई हैं ।

राजा अशोकने श्रीरौप्यकुम्भ मुनिके मुखसे अपने सब प्रश्नोंके उत्तर सुनकर उन दोनों मुनियोंको नमस्कार किया और फिर अपने नगरमें आकर चिरकालतक राज्य किया। पश्चात् अपनी चारों पुत्रियोंका विवाह राजा श्रीपालके पुत्र भूपालके साथ कर दिया।

एक दिन राजा अशोक आकाशमें मेघमालाकी छटा देख रहे थे कि अकस्मात् एक मेघपटल उनकी दृष्टिगत होकर विलीन हो गया। उसे देखकर संसारका स्वभाव ऐसा ही क्षणभंगुर जान वे भोगोंसे उदास हो गये। और अपने पुत्र वीतशोकको राज्य देकर आप श्रीवासुपूज्य बारहवें तीर्थंकरके समवसरणमें अनेक भव्य जीवोंके साथ दीक्षित हो गये। ये अशोक मुनि श्रीवासुपूज्यस्वामीके गणधर हुए। रोहिणी रानीने कमलश्री आर्यिकाके समीप आर्यिकाके व्रत धारण करके घोर तप किया और अन्त समयमें सन्यास धारण किया। जिसके प्रभावसे स्त्रीलिंगको छेदकर उन्होंने सोलहवें अच्युत स्वर्गमें देवकी पर्याय पाई। श्रीअशोक मुनि अष्टकर्मोंको शुक्लध्यानसे जलाकर मुक्त हुए। उसी समयसे लेकर भव्य जीव जब रोहिणी व्रतका उद्यापन करते हैं तब श्रीवासपूज्यस्वामीके सिंहासनपर राजा अशोक, रानी रोहिणी, उनके आठ पुत्र और चार पुत्रियोंकी मूर्ति उसी सिंहासनपर खुदवाते हैं। तथा उन्हींके चारित्रकी लिखाई हुई पुस्तकें भी प्रदान करते हैं।

इस प्रकार पूतिगंध राजपुत्र और दुर्गंधा वैश्यपुत्रीने अपना शरीर सुगंधित करनेकी इच्छासे तथा भोगोपभोगोंकी लालसासे नियत समयतक प्रोषधोपवास किया था, इसलिए उन्हें ऊपर लिखी हुई भोगोपभोगकी सामग्री ऐश्वर्य सुख आदिक मिले। इसी प्रकार और और भव्य जीव जो कि केवल कर्मके क्षय करनेके लिए नियत समयतक प्रोषधोपवास करते हैं, क्या वे ऐसी भोगोपभोगकी सामग्री भोगते हुए तथा स्वर्गोंके सुखोंका अनुभव करते हुए मोक्ष नहीं पावेंगे? अवश्य ही पावेंगे।

---

(५) नन्दिमित्रकी कथा[1]।

ईसी भरतक्षेत्र-आर्यखंडके पुंडवर्द्धन देशमे एक कोटिक नगर है। वहाँ राजा पद्मधर रानी पद्मश्रीसहित राज्य करता था। उस नगरमे सोमशर्मा पुरोहितकी सोमश्री ब्राह्मणीसे एक पुत्र हुआ। सोमशर्माने उसकी जन्म कुंडलीमे लग्न आदि देखकर किसी चैत्यालयके ऊपर इस अभिप्रायसे ध्वजा चढ़ाई कि मेरा यह पुत्र जिनदर्शनमे मान्य होगा। उस पुत्रका नाम भद्रबाहु रक्खा। वह दिनोदिन बढ़ने लगा। जब सात वर्षका हुआ तो सोमशर्माने उसका यज्ञोपवीत (जनेऊ) विधान करके वेद पढ़ाना प्रारंभ कर दिया।

एक दिन भद्रबाहु अपने बराबरवाले लड़कोके साथ नगरके बाहर खेलने गया था। वहाँपर गेदके ऊपर गेद रखनेका खेल हो रहा था। किसीने एक गेदके ऊपर दो गेदे रक्खी, किसीने तीन रक्खी। इस तरह सब लड़के अधिकाधिक गेदे रखनेका प्रयत्न कर रहे थे। उस समय भद्रबाहुने एकपर एक इस तरह तेरह गेदे रख दी। यह वह समय था जब कि श्रीजम्बूस्वामी अन्तिम केवली मोक्ष पधार गये थे और जिनागमके अनुसार पॉच श्रुतकेवली होने चाहिए, उनमेसे तीन हो चुके थे और चौथे श्रीगोवर्द्धन श्रुतकेवली कई हजार मुनियोके साथ विहार कर रहे थे। उस दिन वे विहार करते हुए वहॉसे आ निकले जहॉ कि भद्रबाहु आदि सब लड़के खेल रहे थे। श्रीगोवर्द्धन श्रुतकेवली अष्टांग निमित्तशास्त्रके (ज्योतिःशास्त्रके) परम ज्ञाता थे, सो भद्रबाहुको देखकर उसके लंक्षणोसे उन्होने जान लिया कि यह अन्तिम श्रुतकेवली होनेवाला है। इन मुनियोके समूहको अपने निकट आया देख सब लड़के भाग गये। केवल एक भद्रबाहु ही रह गया। भद्रबाहुने श्रीगोवर्द्धनके समीप आकर नमस्कार किया। उन्होने पूछाः-वत्स, तेरा क्या नाम है? और तू किसका पुत्र है? भद्रबाहुने कहाः-मै सोमशर्मा पुरोहितका पुत्र हूँ और भद्रबाहु मेरा नाम है। मुनिराजने फिर प्रश्न कियाः-वत्स, तू हमारे पास पढ़ेगा? भद्रबाहुने कहाः-हॉ

1 यह कथा भद्रबाहुचरित्रके आधारसे लिखी गई है।

अवश्य पढूँगा। तब श्रीमुनिराज भद्रबाहुको साथ लेकर उसके पिताके घर गये। अपने पुत्रके साथ इन्हे आते हुए देखकर सोमशर्मा पुरोहित अपने आसनसे उठा और हाथ जोड़कर सामने आया। श्रीमुनिराजको ऊँचे आसनपर बिठलाया और बोला:-महाराज, अकारणबंधु मुनिराजोंका आगमन आज मेरे घर कैसे हुआ? श्रीगोवर्द्धन मुनिराजने कहा-यह तुम्हारा पुत्र हमारे समीप पढ़ना चाहता है। यदि इसमें तुम्हारी सम्मति हो तो हम इसे ले जाकर पढ़ावें। यह सुनकर पुरोहितने कहा:-महाराज, इसके जन्मलग्नमें ही ऐसे ग्रह पड़े हुए हैं, जिनसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह जैनधर्मका ही उपकार करनेवाला होगा। ये जन्ममुहूर्तके गुण कभी अन्यथा नहीं हो सकते, इसलिए मैं इसे आपको समर्पण करता हूँ। फिर इसके विषयमें जो आप योग्य समझें, सो करें। उसी समय भद्रबाहुकी माताने आकर श्रीमुनिराजके चरणारविन्दोंको नमस्कार किया और मोहवश निवेदन किया-महाराज, इसे दीक्षा नहीं देना। मुनिराजने उससे कहा-बहिन, तू विश्वास रख, मैं इसे पढ़ाकर फिर तेरे समीप ही भेज दूँगा। इस तरह उसका समाधानकर भद्रबाहुको साथ लेकर मुनिराज वहाँसे विदा हुए। उन्होंने इसका पालन पोषण, वस्त्र भोजनादिकके द्वारा श्रावकोंसे कराया और विद्या पढ़ाना स्वयं प्रारम्भ किया। भद्रबाहु तीक्ष्णबुद्धि होनेसे थोड़े ही दिनोंमें सकल विद्या, दर्शन, शास्त्र आदिकमें पारगामी हो गया। जब उसने सकल दर्शन (सब मतके ग्रन्थ) पढ़ लिये और यह अच्छी तरह श्रद्धान कर लिया कि सब दर्शनोंमें जिनदर्शन ही सार है और सब असार हैं, तब उन्हीं मुनिराजसे दीक्षा ग्रहण करनेकी याचना की। परन्तु श्रीगुरुवर्यने आज्ञा दी कि पहले तुम अपने नगरमें जाओ और वहाँ अपनी विद्या अपना पाण्डित्य प्रकाश करके जिनधर्मका उद्योत करो। पश्चात् अपने माता पितासे मिलकर उनकी आज्ञा लेकर हमारे पास आओ। तब भद्रबाहु श्रीगुरुसे विदा होकर अपने नगर आया। अपने माता पितासे मिला। उनके सामने उसने अपने गुरुके गुणोंकी बड़ी प्रशंसा की। पहुँचनेके दूसरे ही दिन राजा पद्मधरके राजभवनके द्वारपर जाकर जब ब्राह्मणोंसे शास्त्रार्थ करनेका घोषणापत्र लगाया। उसमें इसने सब ब्राह्मणोंको तथा अन्य अन्य वादियोंको हरा दिया। राजदरबारमें तथा नगरमें जैनमतका प्रभाव प्रगट किया। इस तरह भद्रबाहु जैनमतकी प्रभावना कर अपने माता पिताकी आज्ञा

ले फिर अपने गुरुकेपास आया और उनसे जिनदीक्षा ग्रहण की। थोड़े दिनमें श्रीभद्रबाहु मुनि सकल श्रुतज्ञानके पारगामी अर्थात् श्रुतकेवली हुए। श्रीगोवर्द्धन आचार्यने उन्हे अपने आचार्य पदपर नियुक्त किया। और आपने घोर तपकर सन्यास विधिसे शरीर छोड़ स्वर्गलोकको प्रयाण किया। इधर स्वामिभक्तिपरायण श्रीभद्रबाहुस्वामी तपमे लवलीन हो विहार करने लगे।

उस समय पटनामे राजा नन्द अपने बंधु, सुबंधु, कवि और सकटाल इन चारो मंत्रियोके सहित राज्य करता था। एक वार राजा नंदपर उसके किसी शत्रुने वहुतसी सेना भेजकर सीमा दाब ली। तब सकटाल मन्त्रीने राजासे निवेदन किया:-महाराज, शत्रुओंका समूह चढ़ता चला आता है, क्या उपाय करना चाहिए? राजाने कहा:-तुम ही इस विषयमे निपुण हो। जो तुम्हारी सम्मति होगी, वही उपाय किया जायगा। सकटालने कहा:-महाराज, शत्रुका वल अधिक है, इसलिए युद्ध करनेका समय नही है। उचित है कि कुछ भेट देकर वह शान्त कर दिया जावे। राजाने कहा-जो तुम करोगे, वही प्रमाण है। यदि तुम्हारी सम्मति द्रव्य देकर शान्त करनेकी है तो वही करो। तव राजाकी आज्ञानुसार सकटालने शत्रुको वहुतसा द्रव्य देकर अपनी सीमासे हटाकर लौटा दिया।

इसके पश्चात् एक दिन राजा नन्द अपना भंडार (खजाना) देखनेको गया। खजाना खाली देखकर उसने खजाञ्चीसे पूछा-अरे! यहाँसे सब द्रव्य किधर गया? खजाञ्चीने कहा-महाराज, सकटाल मन्त्रीने शत्रुको देकर पूरा कर दिया है। इस घटनासे राजाने क्रोधित होकर सकटालको उसके कुटुम्बसहित तहखानेमे डलवा दिया। और उस तहखानेके ऊपर केवल इतना छोटा द्वार रक्खा कि जिसमे एक सरावा [सकोरा] जा सकता था। प्रति-दिन उसी द्वारसे थोड़ासा अन्न और थोड़ासा जल राजाकी ओरसे दिया जाता था। जिससे सकटाल और उसके कुटुम्वका पालन वड़ी कठिनतासे होता था। पहले ही दिन जव भोजन आया तव सकटालने उसे देखकर क्रोधित हो कहा:- मेरे कुटुम्बमेसे जो कोई इस नन्दवंशको वंशरहित करनेकी शक्ति रखता हो, वही इस अन्न जलको ग्रहण करै। सकटालकी वातको कौन टाल सकता था? सबने उसीसे कहा-तुम ही इस कार्यके योग्य हो और हम किसीमे

यह शक्ति नहीं है, जो इस भारी कामको कर सके, इसलिए तुम ही इस अन्न जलको ग्रहण करो । सब कुटुम्बकी सम्मतिसे इस अन्न जलको केवल सकटाल ही खाने पीने लगा। और कुटुम्बी जन सब बिना अन्न जलके तड़प तड़पके मर गये, केवल सकटाल ही जीवित रहा ।

दैवयोगसे शत्रुओंने राजा नन्दपर फिर धावा किया । तब उसे फिर सकटाल याद आया । सेवकोंसे पूछा:—क्या कोई सकटालके कुटुम्बमें जीवित है ? परिचारकोंमसे किसीने कहा-महाराज, जो अन्न जल दिया जाता है, तहखानेमेंसे कोई उसे ग्रहण अवश्य करता है, इससे जान पड़ता है कि उनमें कोई न कोई अवश्य ही जीवित है । राजाकी आज्ञासे तहखाना खोला गया और उसमेंसे सकटाल जो जीवित था, निकाल लिया गया । राजाने उससे कहा;-शत्रु चढ़ आया है, किसी तरहसे शान्त करो । तब सकटालने किसी उपायसे शत्रुको शान्त कर दिया ।

उसके बाद राजाने सकटालसे मंत्रित्वका पद ग्रहण करनेको कहा. परन्तु सकटालने राजाकी आज्ञा न मानकर सत्कारगृहकी अध्यक्षताका काम स्वीकार किया ।

एक दिन सकटाल नगरके बाहर वायुसेवन करता हुआ इधर उधर टहल रहा था कि अकस्मात् उसकी दृष्टि एक चाणिक्य नामके ब्राह्मणपर पड़ी, जो कि दाभा की जड़ उखाड़ उखाड़कर फेंक रहा था । सकटालने प्रणामकरके पूछा—भूदेवजी, आप ये क्या करते हैं ? चाणिक्यने कहा—ये दाभ मेरे छिद गई थी, इसलिए इनको जड़ मूलसे उखाड़कर जलानेका प्रयत्न कर रहा हूँ । इसके बिना मेरा चित्त शान्त नहीं होगा । सकटालने चाणिक्यका ऐसा प्रबल क्रोध देखकर अपने मनमें यह विचार कर कि नन्दकुलका नाश यह अवश्य ही कर सकेगा, चाणिक्यसे प्रार्थना की कि महाराज, आप हमारे यहाँ पधारे और प्रतिदिन भोजन किया करे । चाणिक्य यह प्रार्थना स्वीकार करके सकटालके साथ नगरमे आया । पश्चात् सकटाल इसको बड़े आदरसे प्रतिदिन भोजन कराने लगा ।

एक दिन भोजनालयके अधिकारीने सकटालकी आज्ञासे चाणिक्यका आसन बदल दिया अर्थात् उच्च आसनके बदले मध्यका आसन दिया । चाणिक्यने पूछा-आज आसन क्यों बदला गया ? अधिकारीने कहा-राजाकी आज्ञा

है कि यह अग्रासन किसी दूसरेको दिया जायगा। तब चाणिक्य मध्य आसनपर ही भोजन करने लगा। दूसरे दिन
सबेरे अन्तका आसन चाणिक्यको दिया गया। चाणिक्य वहीं बैठकर भोजन करने लगा। क्रोध बिलकुल नहीं
दिखलाया। दूसरे दिन भोजनालयके अधिकारीने भोजनालयमें प्रवेश करते हुए चाणिक्यको रोका और कहा:—महाराज,
मैं क्या करूँ? राजाने आपका भोजन बंद कर दिया है। अब चाणिक्यको क्रोध आया और वह नगरसे निकलकर
बाहर जाने लगा। मार्गमें चाणिक्यने चिल्लाकर कहा—जो कोई मेरे परम शत्रु राजा नन्दका राज्य लेना चाहता हो वह
मेरे पीछे पीछे चला आवे। चाणिक्यके ऐसे वाक्य सुनकर एक चन्द्रगुप्त नामका क्षत्रिय जो कि अत्यन्त निर्धन था,
यह विचारकर कि इसमें मेरा क्या बिगड़ता है, चाणिक्यके पीछे हो लिया। चाणिक्य चन्द्रगुप्तको लेकर नन्दके किसी
प्रबल शत्रुसे जा मिला। और किसी उपायसे नन्दका सकुटुम्ब नाश करके उसने चन्द्रगुप्तको वहाँका राजा बनाया।
चन्द्रगुप्तने बहुत कालतक राज्य करके अपने पुत्र बिन्दुसारको राज्य दे, चाणिक्यके साथ जिनदीक्षा ग्रहण की। उसके
पश्चात् क्या हुआ? सो चाणिक्य महामुनिकी कथासे जो आराधनाकथाकोशमें लिखी है, जान लेना चाहिए।

बिन्दुसार भी अपने पुत्र अशोकको राज्य दे महामुनि हुआ। अशोकके भी एक पुत्र हुआ, जिसका नाम
कुनाल रक्खा गया। कुनालकी बाल्यावस्था थी। अभी वह पठन पाठनमें ही लगा हुआ था कि
इसी समय राजा अशोकको अपने किसी शत्रुपर चढ़ाई करके जाना पड़ा। जो मन्त्री नगरमें रह गया था, उसके
लिए राजाने पत्रमें एक लिखी हुई आज्ञा भेजी कि अध्यापकको चावल बैंगन आदि देकर उसको संतुष्टकर
कुमारको अच्छी तरह पढ़ाना। राजाका यह पत्र पढ़नेवालेने इस तरह पढ़ा कि उपाध्यायको चावल बैंगन आदिसे
संतुष्ट कर कुमारको अन्धा कर देना[1]। राजाकी आज्ञा जैसी पढ़ी गई थी, वैसी ही काममें लाई गई। कुमारके नेत्र
फोड़ दिये गये। थोड़े दिन पीछे शत्रुको जीतकर राजा अशोक वापिस आया। अपने पुत्रकी ऐसी दशा देख अति-
शोक किया। थोड़े दिन बाद कुनालका विवाह किसी चन्द्रानना नामकी कन्यासे कर दिया गया, जिससे कि एक

१ यहाँ "अध्यापयताम्" की जगह "अन्धापयता" पढ़ लिया, इससे कुमारको अन्धा बनना पड़ा।

चन्द्रगुप्त नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा अशोक अपने पोते चन्द्रगुप्तको राज्य दे दीक्षित हुआ। अब अशोकके पीछे चन्द्रगुप्त राज्य करने लगा।

एक दिन नगरके बाहरी उद्यानमें कोई अवधिज्ञानी मुनि पधारे। वनपालने मुनिके आनेकी खबर राजाको दी। राजा चन्द्रगुप्त मुनिकी वंदना करनेके लिए उद्यानमें आया। श्रीमुनिको नमस्कार कर उनके समीप बैठ गया। धर्म श्रवण करनेके पश्चात् राजाने मुनिसे अपने पूर्व भव पूछे। श्रीमुनि कहने लगे-।

जम्बूद्वीपके आर्य खंडमे एक अवंति (मालव) देश है। जिसके वैदेश नगरमें राजा जयवर्मा रानी धारिणी सहित राज्य करता था। उसी नगरके निकटवर्ती पलासकूट ग्राममे देविल वैश्यके उसकी स्त्री पृथिवीसे एक पुत्र हुआ, जिसका नाम नंदिमित्र पड़ा। नंदिमित्र अत्यन्त पुण्यहीन था, सो इसको माता पिताने निकाल दिया। नदिमित्र यहाँसे निकलकर वैदेश नगरमे पहुँचा। नगरके बाहर एक वटवृक्षके नीचे विश्राम लेनेके लिए बैठ गया। नंदिमित्रके बैठनेके पहले ही वहाँपर एक लकड़ी बेचनेवाला अपना बोझा उतारकर विश्राम ले रहा था। उसको देखकर नंदिमित्रने कहा-भाई, मैं तेरे इस लकड़ीके बोझेसे चारगुणा बोझा प्रतिदिन ला दिया करूँगा, क्या तू मुझे उसके बदले भोजन दिया करेगा? काष्ठकूटने कहा-अच्छा, दिया करेंगे। परस्पर ऐसी बातचीत होनेपर काष्ठकूट लकड़ीका बोझा नंदिमित्रके सिरपर रखाकर अपने घर पहुँचा। जाकर काष्ठकूटने अपनी स्त्री जयघंटाको समझा दिया कि देख, इसको पेटभर भोजन कभी नहीं देना। उस दिनसे नंदिमित्रको भोजन तो थोड़ा दिया जाता था। और उससे काष्ठका भार बड़ा मँगाया जाता था। उस भारको काष्ठकूट बाजारमे बेच लाता था। इस तरह काष्ठकूटने लकड़ी लाना छोड़ दिया। प्रति दिन उसीसे मँगाया करता था। एक बार किसी पर्वके दिन जयघंटाने अपने मनमें विचार किया कि इस नंदिमित्रके प्रभावसे मेरे घरमें लक्ष्मी हुई है और मैंने इसे कभी पेटभर भी अन्न नहीं दिया। इसलिए आज इसको यथेष्ट भोजन कराना चाहिए। ऐसा विचार कर जयघंटाने दूध घी शक्करके अच्छे अच्छे पदार्थ बनाकर उसे उसकी इच्छानुसार भोजन कराया और अन्तमे ताम्बूल दिया। ताम्बूल खाकर जब नंदिमित्र स्वस्थ हुआ तो काष्ठकूटसे पाहिननेके

लिए वस्त्र माँगने लगा। तब तो काष्ठकूटने अपनी स्त्रीसे पूछा—क्या तूने आज इसको पूरा भोजन दिया है? उस स्त्रीने अपने सब समाचार कह सुनाये। जो बात यथार्थ थी सो कह दी, इससे काष्ठकूट अतिशय क्रोधित हुआ। उसने उसी अपराधसे अपनी स्त्रीके दंडोंसे मार जमाई। नंदिमित्रने यह कृत्य देखा तो यह विचारकर कि इसने मेरे कारणसे ही इसको मारा है, इसलिए इसके घर रहना योग्य नहीं है, वहाँसे निकल गया। दूसरे दिन एक काठका भारी बोझ लाकर बाजारमें बेचनेके लिए खड़ा हुआ। यद्यपि और बेचनेवालोंके बोझ इससे छोटे थे, तथापि लोग उन्हींको खरीद कर ले जा रहे थे। इसका बोझ बड़ा होनेपर भी इसकी कोई बात भी नहीं पूछता था। वहीं खड़े खड़े इसको दो पहर हो गये। बेचारा भूखसे व्याकुल होगया। इतनेमें ही उसी मार्गसे एक मासोपवासी विनयगुप्त मुनि आहार लेनेके लिए आ रहे थे। इनको देखकर नंदिमित्रने विचारा—अरे! यह मुझसे भी दरिद्र वस्त्रादिकसे रहित है। यह कहाँ जाता है? सो देखना चाहिए। ऐसा विचार कर अपने भारको वहाँ छोड़ वह श्रीमुनिराजके पीछे हो लिया। कुछ दूर चलकर मुनिका पड़गाहन वहाँके राजाने किया। ऊँचे आसनपर बिठाकर राजाने उनके चरणकमल प्रक्षालन किये। और साथमें नंदिमित्रको देखकर राजाने समझा कि वह भी कोई श्रावक है। इसलिए एक दासीके द्वारा उसके भी पादप्रक्षालन कराये और भोजन दिया। राजाने श्रीमुनिराजको निरन्तराय भोजन दिया। इसलिए उसके घर पंचाश्चर्य हुए। नंदिमित्रने यह सब देख अपने मनमें चितवन किया कि यह कोई देव है। मैं भी ऐसा ही होऊँ, तो अच्छा। और उन मुनिके साथ ही साथ गुफामें चला गया। वहाँ श्रीमुनिराजसे निवेदन किया—हे नाथ, मुझे अपने समान बना लीजिए। मुनिने देखा कि यह भव्य है और अल्प आयुवाला है, इसलिए जिनदीक्षा दे दी। तथा पञ्चनमस्कार मंत्र पढ़ा दिया। इसके पारणा करनेके दिन श्रावकोंमें विशेष उत्कंठा हुई। कोई कहने लगा—इनको आज मैं भोजन दूँगा। दूसरा कहने लगा—नहीं, मैं दूँगा। श्रावकोंके ऐसे क्षोभको देखकर इसके कापोती लेश्याका प्रादुर्भाव हुआ। मनमें विचारा कि यदि एक उपवास और अधिक कर डालूँ, तो देखूँ कैसा क्षोभ होता है? ऐसा विचार उसने दूसरे दिन श्रावकोंको क्षोभित करनेके लिए उस दिन उपवास कर डाला। अब दूसरे दिन राजश्रेष्ठी

आदिके नगरके बड़े बड़े जनोंने आकर उसकी वंदना की और प्रार्थना की–महाराज, आज मैं पड़गाहन करूँगा। नंदिमित्रने कहा–भाई, मैं आज भी उपवास करूँगा। तब श्रेष्ठी आदिकने कहा–महाराज, ऐसा करना उचित नहीं है। तब नंदिमित्रने कहा–अब तो मैंने उपवास ग्रहण कर लिया है। राजश्रेष्ठीने राजसभामें जाकर इस नये तपस्वीकी (नंदिमित्रकी) बड़ी प्रशंसा की। इसके गुण वर्णन किये। इसकी ऐसी प्रशंसा सुनकर पट्टरानीने कहा–अच्छा, कल मैं पड़गाहन करूँगी। दूसरे पारणाके दिन वह पट्टरानी सकल अन्तःपुरके साथ उद्यानमें गई। जाकर गुरुशिष्यको नमस्कार किया। नंदिमित्रने रानीको आया देख अपने मनमें चितवन किया कि मुझमें आजके उपवास करनेकी शक्ति विद्यमान है। इसलिए आजका तो उपवास ही करना चाहिए। कल दिन राजा आवेगा, तब ही पारणा करूँगा। ऐसा चिंतवन कर अपने गुरुसे कहने लगा–स्वामिन्, मैं आज भी उपवास करूँगा। ऐसा सुन रानीने उनके चरणोंपर गिर निवेदन किया–महाराज, आज उपवास नहीं करना चाहिए। तब नंदमित्रने कहा–अब तो उपवास करनेकी प्रतिज्ञा ले चुका। क्या ग्रहण किया उपवास छोड़ दूँ? गुरु महाराजने भी कहा–प्रतिज्ञाभंग करना उचित नहीं है। तब पट्टरानी लौटकर अपने घर चली गई और नंदिमित्र पञ्चनमस्कारमंत्रके चितवन करनेमें मग्न हुआ। जब रात्रिका पिछला पहर हुआ तब श्रीगुरुने नंदिमित्रसे कहा–नंदिमित्र, अब तेरी आयु केवल अंतर्मुहूर्तकी रह गई है, इसलिए सन्यास धारण कर। तब नंदिमित्रने "बहुत अच्छा" कहकर गुरुकी आज्ञानुसार क्रमसे सन्यास धारण किया। और अन्तमें वह शरीरको छोड़ सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ।

इधर नगरमें कोलाहल मच गया कि नंदिमित्र मुनिका स्वर्गवास हो गया। सो राजा प्रजा सबने आकर सुवर्णवृष्टि आदि की। प्रजाने उसके शवकी दग्धक्रिया की। इधर जब इसकी दग्धक्रिया हो रही थी, उसी समय नंदिमित्रका जीव जो कि देव हुआ था अपने परिवार विमानादिक विभूतिसे आकाशको व्याप्त करता हुआ अपनी नियोगिनी देवाङ्गनाओं सहित एक विमानमें आ बैठा। और उसने अपना वैसा धारण किया जैसा रूप कि वह नंदिमित्रकी गृहस्थावस्थामें था, और उस शवके सामने नृत्य करने लगा।

इसको देख सब लोगोंको आश्चर्य हुआ। तथा सबने जान लिया कि यह मरकर देव हुआ है। व्रतका साक्षात्
माहात्म्य देखकर अनेक भव्य जनोंने दीक्षा ग्रहण की और अनेकोंने विशेष अणुव्रत धारण किये। राजा जयवर्माने अपने
पुत्र श्रीवर्माको राज्य दे अनेक भव्योंके साथ श्रीविनयगुप्त मुनिके निकट दीक्षा ले ली। सबको यथोचित गतिकी प्राप्ति
हुई। श्रीमुनिराज कहने लगे-राजन, नंदिमित्रका जीव जो देव हुआ था, वह वहाँसे चयकर तू हुआ है। चन्द्रगुप्त अपने
ऐसे पूर्व भव सुन प्रसन्न हो मुनिराजको नमस्कार कर नगरमें लौट आया और सुखसे राज्य करने लगा।

राजा चन्द्रगुप्तने किसी रात्रिके पिछले पहरमें नीचे लिखे हुए सोलह स्वप्न देखे—१ सूर्यका अस्त होना,
२ कल्पवृक्षकी शाखा टूटना, ३ आते हुए विमानका लौटना, ४ बारह फणोंका सर्प, ५ चन्द्रमामें छिद्र, ६ काले हाथियोंका
युद्ध, ७ खद्योत, ८ सूखा सरोवर, ९ धूम, १० सिंहासनके ऊपर बैठा हुआ बंदर, ११ सुवर्णके पात्रमें खीर खाता हुआ
कुत्ता, १२ हाथीके सिर चढ़ा हुआ बन्दर, १३ कूड़ेमें कमल, १४ मर्यादाको उल्लंघन करता हुआ समुद्र, १५ तरुण बैलोंसे
जुता हुआ रथ, और १६ तरुण बैलोंपर चढ़े हुए क्षत्रिय।

स्वप्न देखनेके दूसरे दिन श्रीभद्रबाहुस्वामी अनेक देशोंमें परिभ्रमण करते हुए सकल संघके साथ उसी नगरके
उद्यानमें पधारे और आहार लेनेके लिए नगरमें आये। सब श्रावकोंने आदरपूर्वक उन मुनियोंका पड़गाहन किया।
श्रीभद्रबाहुस्वामी भी किसी श्रावकके पड़गाहनेपर उसके यहाँ पधारे। जहाँ श्रीभद्रबाहुस्वामी पधारे थे वहाँ एक छोटे
बालकने "बोलह बोलह" ऐसा व्यक्त शब्दोंमें कहा। आचार्य महाराजने यह शब्द सुनकर पूछा-कितने वर्ष ?
बालकने कहा-"बारह वर्ष" श्रीआचार्यको इन शब्दोंसे भोजनमें अन्तराय हुआ, इसलिए वे विना आहार लिये
उद्यानमें चले गये।

राजा चन्द्रगुप्तने भी सुना कि उद्यानमें श्रीमुनिराज पधारे हैं, अतः राजा कुटुम्बसहित मुनिराजकी वंदना करनेके
लिए आया। वंदना नमस्कार आदिक करनेके पश्चात् राजाने श्रीमुनिराजसे अपने देखे हुए सोलह स्वप्नोंका फल पूछा।
श्रीमुनिराजने कहा-राजन्, तेरे सब स्वप्नोंका फल यही है कि आगे दुःख अधिक होगा और समय बुरा आवेगा।

पृथक् पृथक् स्वप्नोंका फल—राजन्, पहले स्वप्नमें जो सूर्यको अस्त होता देखा है, वह सूचित करता है कि सकल पदार्थोंका प्रकाश करनेवाला जो परमागम (जिनागम) है, उसका अस्त होगा। (२) दूसरे स्वप्नमें जो कल्पवृक्षकी डालीका टूटना देखा है, उसका फल यह है कि अबसे क्षत्रिय लोग न तो राज्य करेंगे और न दीक्षा ग्रहण करेंगे। (३) आये हुए विमानके लौट जानेका फल यह है कि आजसे यहाँपर देव तथा चारण मुनियोंका आगमन नहीं होगा। (४) बारह फणोंके सर्पसे जानना चाहिए कि यहाँ बारह वर्षका दुष्काल पड़ेगा। (५) चंद्रमंडलमें छिद्र होनेसे समझना चाहिए कि जैनमतमें संघ आदिका भेद हो जायगा। (६) काले हाथियोंके युद्धसे जान पड़ता है कि अबसे यहाँपर यथेष्ट वर्षा नहीं होगी। (७) खद्योतके देखनेका फल यह जान पड़ता है कि परमागम (जिनागम) का उपदेश कुछ दिनोंतक रहेगा। (८) मध्यमें सूखा सरोवर सूचित करता है कि आर्यखंडके मध्यदेशमें धर्मका विनाश होगा। (९) धूमका देखना कहता है कि अबसे दुर्जन और धूर्त्त अधिक होंगे। (१०) सिंहासनपर बंदरका बैठना स्पष्ट कह रहा है कि आगे नीच कुलवालोंका राज्य होगा। (११) सोनेके पात्रमें कुत्तेका खीर खाना बतलाता है कि आगे राजसभाओंमें कुलिंगियोंकी पूजा होगी। (१२) हाथीपर बंदरको बैठना सूचित करता है कि राजकुमार नीच कुलवालोंकी सेवा करेंगे। (१३) कूड़ेमें कमलके देखनेसे विदित होता है कि राग द्वेष सहित भेषी कुलिंगियोंमें तपादिककी क्रिया देख पड़ेगी। (१४) समुद्रकी मर्यादा उल्लंघन होना जो देखा है वह सूचित करता है कि राजा षष्ठांश भागसे अधिक कर लेंगे। (१५) तरुण बैलों सहित रथ दिखलाता है कि बालक तप करेंगे और वृद्धावस्थामें उस तपमें दोष लगावेंगे। (१६) तरुण बैलोंपर चढ़े हुए क्षत्रिय द्योतन करते हैं कि क्षत्रिय लोग कुधर्ममें लीन होंगे।

इस प्रकार अपने सोलह स्वप्नोंके फल सुनकर राजा चन्द्रगुप्तने अपने पुत्र सिंहसेनको राज्य देकर दीक्षा ले ली। स्वामी भद्रबाहुने अपने संघमें जाकर सब शिष्योंको बुलाकर कहा;—जो यति यहाँ रहेगा, उसका व्रत भंग हो जायगा, ऐसा निमित्तज्ञानसे मालूम होता है, इसलिए सबको दक्षिण दिशाकी ओर चलना उचित है। श्रीभद्रबाहुकी आज्ञा-

इन्होंने कहा:-बहिन, तू अकेली है, और मैं अकेला हूँ। इसमें लोकापवाद होनेका भय है। इसलिए मैं यहाँ भोजन नहीं ले सकता। ऐसा कह मुनि अपने आश्रमको फिर लौट गये, और जाकर गुरुको सब समाचार सुनाये। गुरुने आज भी यही कहा कि बहुत अच्छा किया। पाठक जान गये होंगे कि यह सब देवमाया थी और चन्द्रगुप्तको इसकी कुछ भी खबर न थी। चौथे दिन श्रीचन्द्रगुप्त फिर आहार लेनेके लिए दूसरी ओर गये। वहाँ एक नगर देख उन्होंने किसी एक गृहस्थके घर आहार लिया। आहार लेकर अपने आश्रममें आकर फिर गुरुसे आहार प्राप्तिके सब समाचार कहे। श्रीगुरुने फिर भी वही उत्तर दिया:-बहुत अच्छा किया। इस प्रकार श्रीचन्द्रगुप्त मुनि यथेष्ट चर्या और अपने गुरु स्वामी भद्रबाहुकी शुश्रूषा (वैयावृत्य) करते हुए उसी गुफामें रहने लगे। पश्चात् कुछ दिनोंमें श्रीभद्रबाहुस्वामी अपनी पर्याय पूरी होनेपर स्वर्गलोक पधारे।

श्रीचन्द्रगुप्तने अपने गुरुका मृतक शरीर किसी ऊँचे स्थानकी एक शिलापर रख उनके चरणकमलोंका चित्र उस गुफाकी एक दिवालपर खोद दिया और उनका आराधन करते हुए वहीं रहने लगे।

वहाँ श्रीविशाखाचार्य अपने शिष्योंसहित चोलदेशमें सुखसे निवास करने लगे और यहाँ रामिल्लाचार्य, स्थूलभद्राचार्य और स्थूलाचार्य अपने शिष्योंसहित पटनाहीमें रहते थे। पटना प्रान्तमें महादुष्काल पड़ा। परन्तु तो भी वहाँके श्रावक वहाँ रहनेवाले मुनियोंको भक्तिपूर्वक श्रेष्ठ अन्न देते रहे।

एक दिन एक मुनि भोजन करके नगरसे उद्यानकी ओर आ रहे थे, सो मार्गमें कितने ही दुष्काल पीड़ित भूखे मनुष्योंने उन मुनिका उदर (पेट) फाड़ डाला और उसमेंका सब अन्न निकालकर खा गये। मुनियोंको ऐसा उपद्रव होते देख श्रावकोंने संघके आचार्यसे निवेदन किया-महाराज, अब आपको अधिक उपद्रव होता है, इसलिए आप लोग रात्रिमें अपने अपने पात्र लेकर हमारे घर आया कीजिए। हम उनको अन्नसे भर दिया करेंगे, सो आप लोग उनको अपनी वसतिकामें ले आना, और जब भोजन करनेका समय होवे, तब वसतिकाके दरवाजे बंदकरके झरोखोंके प्रकाशमें एक दूसरेको हाथपर रखकर भोजन कर लेना। श्रावकोंके अनुरोध करनेसे उस दिनसे सब

साधुओंने वैसा ही करना प्रारंभ कर दिया। एक दिन रात्रिके समय एक क्षीण शरीरवाला यति, जो लंबाईमें वेतालके समान देख पडता था और जिसके एक हाथमें पिच्छि कमंडलु और दूसरे हाथमें कुत्ते बिल्ली आदिके भयसे एक दंड (लकड़ी) भी था, जा रहा था। उसको देख एक गर्भिणी स्त्रीका डरसे गर्भपात हो गया। इस महा अनर्थको देख श्रावकोंने उस संघसे फिर निवेदन किया--महाराज, आप लोग एक श्वेत कम्बल बड़ी कंधेपर इस तरहसे रखकर कि जिससे गुह्य भाग तथा कटि प्रदेश ढक सके, हम लोगोंके घर आया करें। जो आप ऐसा न करेंगे तो बड़ा अनर्थ होगा। श्रावकोंके कहनेसे वे वस्त्र लेकर ही आहारको जाने लगे। तबसे इनका नाम "अर्द्ध-कर्पटि तीर्थ" पड़ा। इस प्रकार उन्होंने सुखसे रहकर दुष्कालके बारह वर्ष पूरे किये।

यहाँ विशाखाचार्यने यह जानकर कि अब बारह वर्ष बीत गये, दुर्भिक्ष नहीं रहा, उत्तरकी ओरको विहार किया। और मार्गमें भद्रबाहु गुरुकी वंदनाके लिए उसी गुफाको संघ सहित गये। तो देखा कि वहाँ चन्द्रगुप्त मुनि अपने गुरुके चरण कमलोंका आराधन कर रहे हैं। दूसरे मुनिका साथ न होनेसे उन्हें यह ज्ञान नहीं हुआ कि केशोंका दूसरी बार लोच किया जाता है, इसलिए उनके केशोंने लम्बी जटाओंका रूप धारण कर लिया था। जटा नीचे तक लटकती थी। विशाखाचार्यके सघको आया जान चन्द्रगुप्तने सन्मुख आकर सबकी वंदना की। परन्तु सब संघने यही समझकर कि यहाँ निर्जन स्थानमें यह केवल कंद मूलादि खाकर ही जीवित रहा होगा, इसलिए वंदना करनेके योग्य नहीं है, किसीने प्रतिवंदना नहीं की। संघने श्रीभद्रबाहुस्वामीके शरीरकी क्रिया की। उस दिन सबने उपवास किया।

दूसरे दिन विशाखाचार्य पारणाके लिए सघसहित किसी गाँवको जाने लगे। तब चन्द्रगुप्तने उनको जानेसे रोका और कहा--महाराज, पारणा करके जाना। विशाखाचार्यने कहा--यहाँ कोई ग्राम नहीं है, लोगोंका निवास नहीं है, यहाँ पारणा कैसे हो सकेगा? तब चन्द्रगुप्तने कहा:--महाराज, आप इसकी चिंता न करें। जब मध्यान्हका समय हुआ चन्द्रगुप्तने नगरका मार्ग बताया, सब आश्चर्य करते हुए उधरहीसे चले। सामने ही एक सुन्दर नगर दिखाई

पडा, जहाँ कि सब मुनियोंने प्रवेश किया, सो उस नगरके श्रावकोंने उन्हें बड़े उत्साहसे पड़गाहन किया। सबका अन्तराय रहित आहार हुआ। आहार लेकर सब मुनि फिर उसी गुफामें आये। दैवयोगसे एक ब्रह्मचारी उस नगरमें अपना कमंडलु भूल आया था, सो उसके लेनेके लिए फिर उसी मार्गसे गया। परन्तु उसे नगर ग्रामका कहीं भी पता न लगा। तब तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। यहाँ वहाँ ढूँढनेपर कमंडलु एक जगह वृक्षके नीचे रक्खा हुआ मिल गया। तब ब्रह्मचारीने गुफाको लौटकर विशाखाचार्यसे ये सब समाचार कहे। वे ऐसी विचित्र कथा सुनकर समझ गये कि यह ग्राम नगर आदि चन्द्रगुप्तके पुण्योदयसे उसी समय हो जाते हैं। तब उन्होंने चन्द्रगुप्तकी बड़ी प्रशंसा की। उसके केश लोच कराकर प्रायश्चित्त दिया। असंयत (संयम रहित देव) के हाथसे दिया हुआ आहार लिया था सो अपने और सब संघने भी प्रायश्चित्त किया।

यहाँ जब दुर्भिक्ष दूर होकर चारों ओर सुकाल फैल गया, तब रामिल्लाचार्य और स्थूलभद्राचार्यने अपनी आलोचना की। स्थूलभद्राचार्य सबमें वृद्ध थे, सो उन्होंने अपनी आलोचना स्वयं करके सब संघसे बार २ कहा—अब दुष्काल बीत गया, इसलिए वस्त्रादिक छोड़ देने चाहिए क्योंकि मुनियोंके शरीरपर ये अच्छे नहीं लगते हैं। यह बात और मुनियोंको अच्छी नहीं लगी। क्योंकि वे चाहते थे कि अब ऐसे कठिन व्रत कौन अंगीकार करेगा? इसलिए उन दुष्ट मुनियोंने रात्रिमें एकान्त स्थान पाकर हितरूप उपदेश देनेवाले स्थूलभद्राचार्यको मुक्के घूँसोंसे मारा जिससे उनके प्राण प्रातःकाल ही छूट गये और वे स्वर्ग लोक पधारे। पीछे सब ऋषियोंने मिलकर उनकी दग्ध क्रिया की, और सब वहीं सुखसे रहने लगे।

समय पाकर श्रीविशाखाचार्य मुनि इसी नगरमें पधारे जहाँ कि ये स्थूलभद्राचार्यके मारनेवाले मुनि रहते थे। इनको भ्रष्ट हुए देख संघके मुनि प्रतिवंदना करनेमें प्रतिकूल हो गये। यह बात भ्रष्ट मुनियोंको बहुत बुरी लगी। जिदमें आकर वे सर्वथा अलग रहनेको तैयार हो गये, और उसी समयसे अपने नये मतका प्रतिपादन करने लगे। उन्होंने उपदेश दिया कि भगवान् भी आहार लेते हैं, मोक्ष स्त्रीको भी होता है इत्यादि।

इन नये मतके चलानेवालोने एक राजपुत्रीको जिसका नाम स्वामिनी था, पढ़ाया। पश्चात् वह कन्या सोरठ देशके वल्लभीपुरके राजा वप्रपादको विवाही गई। राजा वप्रपादकी वह सबसे प्यारी रानी हुई। उसने अपने गुरुको वल्लभीपुरमें बुलवाया। जब वे आये तो वह रानी राजाको साथ लेकर सत्कारके लिए लेनेको सम्मुख गई। राजाने इन्हे देखकर रानीसे कहा--देवी, ये तेरे गुरु कैसे है ? न तो ये पूरे वस्त्रधारी है और न नग्न ही है। इन दोनो प्रकारोसे यदि ये मुनि किसी एक भेदको स्वीकार करें अर्थात् या तो नग्न ही हो जायँ, या पूर्ण वस्त्र धारण कर लेवे तो हमारे नगरमे प्रवेश कर सकेगे, नही तो नहीं। रानीने राजाकी ऐसी इच्छा देख मुनियोसे निवेदन किया--या तो आप पूर्ण वस्त्र पहन ले या नग्न हो जॉय। तब उन्होने श्वेत वस्त्र पहनना स्वीकार कर लिया। तबसे इनका नाम श्वेताम्बर रक्खा गया। पश्चात् रानी स्वामिनीने अपनी पुत्री जखलदेवी इन साधुओके पास पढ़ाई, जो युवती होनेपर करहाट नगरके राजा भूपालको विवाही गई। यह भी उस राजाकी अतिवल्लभा हुई। और उसने भी अपने गुरु अपने नगरमे बुलवाये। जब वे गुरु नगरके वाहर आपहुँचे, तब रानीने राजा भूपालसे कहा--देव, मेरे गुरु यहॉ पधारे है। आपको आधी दूरतक उनके सत्कारके लिए चलना चाहिए। रानीके वहुत अनुरोधसे राजा चलनेको तैयार हुआ। परन्तु वाहर जाकर उसने देखा कि सब मुनि दंड कम्बल लिये बैठे है। उन्हें ऐसी अवस्थामे देखकर राजाने कहा--देवी, देख तो तेरे गुरुओका सब भेष ग्वालियेके समान है। ये नगरसे निकाल देनेके योग्य है। इस तरह राजा उनकी वहुतसी अवज्ञा (निन्दा)करके नगरमे वापिस लौट गया। तब रानीने मुनियोसे निवेदन किया--महाराज, आपका इस तरह यहॉ निर्वाह नही होगा। इसलिए अच्छा हो कि आप निर्ग्रन्थ (दिगम्बर) हो जावे। तब वे मुनि अपना मत अवलंबन करते हुए ही दिगम्बर हो गये। अर्थात् दिगम्बर होकर भी अपने कल्पित मतके अनुयायी बने रहे। और वहाँ उन्होंने अपने संघका नाम "जाल्पसंघ" रक्खा।

इधर श्रीचन्द्रगुप्त मुनिने कठिन तप किया। और अन्तमे सन्यास धारणकर शरीर छोड़, स्वर्गमें देव पर्याय पाई। इस प्रकार नंदिमित्रने कापोती लेश्यारूप परिणामोसे उपवास किया था, सो उसके प्रभावसे वह स्वर्गोके सुख

भोग राजा चन्द्रगुप्त हुआ और तपकर फिर स्वर्ग गया। जो कोई जन, मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक उपवास करेगा सो क्या ऐसी और इससे उत्कृष्ट महिमाको प्राप्त न होगा? अवश्य ही होगा। इसलिए अपने कल्याणकी इच्छा करनेवालोंको निरन्तर उपवास करना उचित है।

---

(६) जांबवतीकी कथा।

द्वारावती नगरीमे कृष्ण बलभद्र दोनों भाई राज्य करते थे। एक दिन वे श्रीनेमिनाथ तीर्थंकरकी वंदना करनेके लिए सकुटुम्ब गिरनार पर्वतपर गये। वंदना स्तुति करके अपने कोठेमें बैठे और धर्मश्रवण करने लगे। इधर श्रीकृष्णकी पट्टरानी जांबवतीने वरदत्त गणधरको नमस्कार करके अपने पूर्व भव पूछे। श्रीगणाधीश कहने लगे:—

इसी जंबूद्वीपके अन्तर्गत अपरविदेहक्षेत्रमे एक पुष्कलावती देश है। उसमें एक वीतशोकपुर नगरनिवासी देविल नामके वैश्यकी देवलमती स्त्रीसे एक यशस्विनी पुत्री थी। वह वहांके मन्त्रीके पुत्र सुमित्रको विवाही गई थी। दैवयोगसे सुमित्रका देहान्त हो गया। इसलिए यशस्विनी बहुत दुःखित हुई। एक जिनदेव नामके सेठने धर्मोपदेश देकर उसको सम्यक्त्व ग्रहण कराया। यशस्विनीने उस समय तो सम्यक्त्व धारण कर लिया परन्तु मरनेके समय छोड़ दिया इसलिए वह मर कर आनन्दपुर नगरके राजा अन्तरके मेरुनन्दना रानी हुई। मेरुनन्दनाके अस्सी पुत्र हुए। चार हजार वर्षतक भोगोपभोगोंको अनुभव किया। अन्तमें आर्त्तध्यानसे मृत्यु हुई। जिससे बहुत कालतक संसारमें परिभ्रमण करना पड़ा। अन्तमें इसी जम्बूद्वीपके ऐरावत क्षेत्रमे विजयपुर नगरके राजा बंधुषेण रानी बंधुमतीके बंधुजसा पुत्री हुई। उसने छोटी ही अवस्थामें श्रीमती नामकी आर्यिकाके समीप प्रोषध करनेकी प्रतिज्ञा ली, और कारणवश कन्या अवस्थामें ही मर गई। मर कर धनदत्तकी वल्लभा स्वयंप्रभा हुई। उस पर्यायको भी छोड़कर इसी जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती देशके अन्तर्गत पुंडरीकिणी नगरीके राजा वज्रमुष्टि रानी सुप्रभाके सुमति नामकी कन्या हुई। इसने सुदर्शना

आर्यिकाके समीप दीक्षा ग्रहण की और आयु पूरी होनेपर पाँचवें ब्रह्मस्वर्गके इन्द्रकी देवीकी पर्याय पाई। वहाँसे चयकर विजयार्द्धपर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें जम्बूपुर नगरके राजा जंबव रानी सिंहचन्द्राके तू जांबवती हुई है। सो इस भवमें तप करके स्त्रीवेद छेद देव होगी। वहाँसे चयकर मंडलेश्वर होगी और उसी पर्यायसे मोक्ष पावेगी। इस प्रकार एक विवेकरहित बालिकाने प्रोषधके प्रभावसे ऐसी ऐसी उत्तम पर्याय और विभूतियाँ प्राप्त की। यदि बुद्धिमान् मनुष्य प्रोषध करे तो क्या उत्तमोत्तम फल नहीं पावे? अवश्य ही पावे।

---

[७] ललितघटकी कथा।

इसी जम्बूद्वीपके वत्सदेशमें एक कौशाम्बी नगरी है। वहाँके राजा हरिध्वज रानी वारुणीके श्रीवर्द्धनादिक बत्तीस पुत्र हुए। उसी राजाके मन्त्रीके पाँचसौ पुत्र थे। इन सब राजाके पुत्रों और मन्त्रीके पुत्रोंकी परस्पर गाढ़ मित्रता थी। इसलिए सब एक ही जगह एक ही साथ आते जाते उठते बैठते थे। सब ही सुन्दर थे इसलिए लोग इनसे ललितघट कहने लगे।

एक दिन सबके सब मिलकर श्रीकान्त पर्वतपर शिकार खेलनेके लिए गये। वहाँ जाकर ज्यो ही इन्होंने हिरणों-पर बाण छोड़े, त्यों ही इनके धनुष् टूट गये। और सब पृथ्वीपर गिर पड़े। उठकर सब इधर उधर ढूँढने लगे कि यह क्या और किसका कौतुक है समीप ही? श्रीअभयघोष मुनिको देखा। उनको देखकर अनेकोंने क्रोध दिखलाया और कहा—इसीने हमारे धनुष् तोड़े है, हमको भूमिपर गिराया है। इत्यादि कहकर कुछ अनर्थ करने लगे। परन्तु श्रीवर्द्धनने सबको समझाकर रोक दिया। पश्चात् सबने जाकर मुनिको प्रणाम किया। मुनिने आशीर्वादमें कहा—तुम्हारे धर्मवृद्धि हो। यह सुन श्रीवर्द्धनने धर्मका स्वरूप पूछा। तब श्रीमुनि महाराजने यथार्थ धर्मका स्वरूप निरूपण कर सुनाया। धर्मका स्वरूप सुन श्रीवर्द्धनकुमारने पूछाः—मेरी आयु कितने वर्षकी शेष है? श्रीमुनिने कहाः—तुम्हारी सबकी

आयु केवल एक महीनेकी शेष रही है। यदि तुमको इसमें कुछ संदेह हो तो इसका निवारण इन बातोंसे कर लेना चाहिए। एक तो यह कि जब तुम यहाँसे नगरको लौटोगे तो मार्गमें एक भयानक सर्प मिलेगा। जिसके बहुतसे फन होंगे और मार्गको रोककर पड़ा होगा। यदि तुम उसको ताड़ना करोगे तो वह अदृश्य हो जायगा। वहाँसे आगे चलकर मार्गमें बैठा हुआ एक बालक मिलेगा। वह तुमको देखकर अपना शरीर बढ़ावेगा और भयानक राक्षसका स्वरूप धारण कर तुमको निगलनेके लिए सामने आवेगा; परन्तु तुम्हारी तर्जनासे वह भी अदृश्य हो जायगा। फिर जब तुम नगरमें प्रवेश करोगे और अपने मकानकी ओर जाने लगोगे तो कोई अंधी स्त्री अपने महलकी ऊपरकी गच्चीपर खड़ी होकर बालककी विष्टा नीचे डालेगी और वह श्रीवर्द्धनके मस्तकपर पड़ेगी। तथा आगामी रात्रिको तुम्हारी माताओंको स्वप्न होगा कि तुम्हें किसी राक्षसने निगल लिया है। यह कहकर मुनिने कहा;—जो मार्गकी ये बातें सत्य निकले तो मेरा कहा हुआ आयुका प्रमाण भी सत्य ही जानना।

श्रीमुनि महाराजकी कही हुई ऐसी अपूर्व घटनाको सुनकर सबके हृदयमें एक तरहका कौतुक हुआ, इसलिए परीक्षा करनेके लिए उत्सुक होकर तत्काल ही सबके सब नगरको चल दिये। जैसा मुनिने कहा था, सब वैसा ही हुआ। मुनिके वचनोंमें सबको श्रद्धान हो गया, इसलिए अपने अपने माता पिताओंकी आज्ञा लेकर सबोंने उन्हीं श्रीअभयघोष मुनिके निकट दीक्षा ले ली। पश्चात् सबके सब यमुना नदीके किनारेपर प्रायोपगमन सन्यास धारण कर विराजमान हुए। एक महीना पूर्ण होते ही अकाल वृष्टि हुई। जिससे नदीका बड़ा भारी पूर आया और उसमें वे सबके सब बह गये। सबने समाधिपूर्वक ही शरीर छोड़ा, इससे सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र पर्याय पाई। जहाँसे एक बार आकर ही मोक्ष जावेंगे।

इस प्रकार वे कुमार शिकारी आदि होनेपर भी अन्त समयमें उपवास करनेसे ऐसे (सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्र) हुए तो दूसरा जो कोई जिनभक्त अपनी शक्तिके अनुसार मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक उपवास करेगा, वह क्या ऐसी ही उत्कृष्ट विभूतिको प्राप्त नहीं होगा ? अवश्य ही होगा।

(८) अर्जुन चांडालकी कथा।

जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह क्षेत्रमे एक पुष्कलावती देश है। उसमे पुंडरीकिणी नगरी है। वहाँका राज्य राजा वसुपाल और राजा श्रीपाल करते थे। एक दिन नगरके बाहर शिवंकर उद्यानमे श्रीभीमकेवलीका समवसरण हुआ; और उसमे खचरवती, सुभगा, रतिसेना और सुसीमा ये चार व्यंतरी श्रीकेवलीके दर्शन करनेके लिए आई। उन्होने दर्शन स्तुति करके श्रीकेवलीसे पूछाः—देवाधिदेव, हमारा पति कौन होनेवाला है? भगवानने कहाः—इसी पुंडरीकिणी नगरीमे पहले चंड नामका एक चांडाल हुआ था, जिसे वसुपाल राजाने विद्युद्वेग चोरके साथ लाक्षाघरमें डालकर मरवा दिया था। उसका अर्जुन नामका पुत्र उदंबर कुष्टसे (एक प्रकारके कोढ़ रोगसे) पीड़ित हो रहा है, इसीलिए उसको कुटुम्बियोंने घरसे निकाल दिया है। वह सुरगिरि पर्वतकी कृष्ण नामकी गुफामे सन्यास धारण कर बैठा है। वही आजसे पाँचवे दिन शरीर छोड़कर तुम्हारा पति होगा। यह सुनकर वे चारों व्यंतरियाँ उसी गुफामे गई, जहाँ वह चांडाल सन्यास धारण किये बैठा था। वहाँ उस चांडालसे कहाः—हे अर्जुन, तू पाँचवे दिन इस शरीरको छोड़कर हमारा पति होगा, ऐसा श्रीभीमकेवलीने कहा है, इसलिए तू परिषहोसे पीड़ित होकर भी अपने परिणाम संक्लेशरूप नही करना। इस तरह उसे समझाकर वे वही बैठ गई। दैवयोगसे उसी गुफामे क्रीड़ा करनेके लिए कुवेरपाल नामका राजपुत्र आया और उन व्यंतरियोको देखकर क्रोधित हो कहने लगाः—यह चांडाल है, कुष्ठी (कोढ़ी) है, इसलिए इस निकृष्टको छोड़कर तुम मुझमे प्रीति करो। राजकुमारकी ऐसी बाते सुन देवियोने कहाः—अरे राजपुत्र, तू यह क्या कह रहा है? तू मनुष्य है, हम देवी है। यदि तुझे देवियोंसे भोग करनेकी इच्छा है, तो धर्ममें तत्पर हो। हम तो व्यन्तरी है, यदि तू धर्म करेगा तो तुझे सौधर्मादि स्वर्गोंकी अतिशय सुन्दरी वहुतसी देवियाँ मिलेगी। देवियोकी ऐसी वात सुनकर राजपुत्र तो चला गया, परन्तु थोड़ी ही देर पीछे नागदत्तका पुत्र भवदत्त वही क्रीड़ा करनेके लिए आया। उन देवियोको देख उसने भी उसी तरहसे कहा, जैसा कुवेरपाल राजपुत्रने कहा था। व्यन्तरियोंने उसको भी वही उत्तर

दिया, जो राजपुत्रको दिया था। परन्तु इस उपदेशका असर भवदत्तपर न हो सका और वह कामज्वरसे मरकर अपने पिताके बनवाये हुए नागभवनमें उत्पल नामका व्यंतर हुआ। अर्जुन चांडाल सन्याससे मरकर उन्हीं देवियोंके विमानमें सुरदेव नामका देव हुआ। अपने समस्त परिवारको लेकर श्रीभीमकेवलीकी वंदना करनेके लिए आया। उसको देख उपवासका साक्षात् फल जान व्रतकी ऐसी महिमा समझ समस्त समवसरणके जीव प्रोपधोपवास करनेकी प्रतिज्ञा करने लगे।

इस प्रकार अनेक प्राणियोंका घात करनेवाला चांडाल भी उपवासके प्रभावसे देव हुआ तो और भव्य जीव जो उपवास करेंगे, क्यों न श्रेष्ठ फल पा सकेंगे?

इति श्रीकेशवानन्दिदिव्यमुनिशिष्यश्रीरामचन्द्रमुमुक्षुविरचित पुण्याश्रवकथाकोपकी सरल भाषा टीकामें
उपवासफलाष्टक नामका तीसरा अष्टक पूर्ण हुआ।

अथ दानफलषोड़शक।

(१) राजा श्रीषेणकी कथा।

जम्बूद्वीप–भरतक्षेत्र आर्यखण्डमे एक रमणीक मलय नामका देश है। उसके रत्नसंचयपुर नगरके राजाका नाम श्रीषेण और रानियोंका नाम सिंहनंदिता और अनंदिता था। सिंहनंदितासे इन्द्र और अनंदितासे उपेन्द्र ऐसे दो पुत्र थे। उसी नगरमें एक सात्यकी ब्राह्मण रहता था, जिसकी स्त्रीका नाम जम्बू और पुत्रीका नाम सत्यभामा था। नगरमें सब राजा प्रजा सुखसे समय व्यतीत करते थे। उन्हीं दिनोंमे मगध देशके अचल ग्राममे एक धरणीजड़ ब्राह्मण रहता था, जिसकी स्त्री अग्निलासे दो पुत्र थे। एकका नाम चन्द्रभूति और दूसरेका नाम अग्निभूति। तथा एक कपिल नामका दासीपुत्र था जो कि अतिबुद्धिमान, निपुण और रूपवान् था। धरणीधर जब अपने दोनों पुत्रोंको वेद पढ़ाता था, उस समय वह

भी ध्यानसे सुना करता था। सो कपिल समस्त वेद पुराणादिकका पाठी हो गया। परन्तु इस दासीपुत्रका वेदपारगामी होना धरणीधरको अच्छा न लगा, इसलिए उसने उसको अपने घरसे निकाल दिया। कपिल अपने पिताके घरसे निकलकर यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहनकर रत्नसंचयपुर नगरमें पहुँचा। किसी तरह सात्यकी ब्राह्मणसे उसकी भेट हुई। सात्यकीने देखा कि कपिल जैसा मनोज्ञ और रूपवान है, वैसा गुणी भी है, इसलिए उसने अपनी कन्या सत्यभामाका विवाह उसके साथ कर दिया। दोनो आनन्दसे रहने लगे। परन्तु कपिल ब्राह्मण संध्या वंदनादिक नित्यकर्मोंमे बहुत शिथिल रहता था, तथा कामी भी अधिक था, इसलिए सत्यभामाके चित्तपर इसके कुलका संदेह सदा बना रहता था।

इधर धरणीजड़ने सुना कि कपिल किसी धनाढ्यके यहाँ विवाहा गया है और वहाँ इसकी अच्छी प्रतिष्ठा है, इसलिए उससे कुछ द्रव्य लाना चाहिए। ऐसा विचार कर धरणीजड़ रत्नसंचयपुर पहुँचा और कपिलने इसका सत्कार किया और सब जगह प्रसिद्ध कर दिया कि ये मेरे पिता है। धरणीजड़ भी कपिलके घर आनन्दसे रहने लगा।

एक दिन जब कि कपिल किसी कामके लिए कहीं बाहर गया था, कपिलकी स्त्री सत्यभामाने धरिणीजड़को बहुतसा धन देकर पूछा—श्वसुरजी, सच कहिए कपिलकी क्या जाति है? धरिणीजड़ने यथार्थ कह दिया कि वह दासीपुत्र है। यह सुनकर सत्यभामाने दरबारमें जाकर राजासे अपने पतिका सब समाचार कहा कि यह यथार्थमें दासीपुत्र है। परन्तु यहाँ उच्च कुलीन बनकर इसने मेरे साथ विवाह कर लिया है। जब राजाको साक्षी आदिसे निर्णय हो गया कि सचमुच कपिलने अन्याय किया है, तब उन्होने उसे गधेपर चढ़ा पीछे ढोल बजवाते हुए सब शहरमे फिरा देशसे बाहर निकलवा दिया। सत्यभामा राजमहलमे ही रहने लगी।

एक दिन श्रीअनन्तगति और अरिंजय दो चारणमुनि आहार लेनेके लिए राजमहलमें पधारे। राजाने दोनोंका पड़गाहन किया। मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक शुद्ध आहार दिया। और उसकी दोनो रानियो और सत्यभामा ब्राह्मणीने उस दानकी अनुमोदना की।

एक दिन एक अनन्तमती नामकी वेश्याके लिए राजाके दोनो पुत्र इन्द्र और उपेन्द्र परस्पर लड़ने लगे।

राजाने दोनोंको लड़नेसे रोका, परन्तु न किसीने माना और न लड़ना छोड़ा, इसलिए उनसे दुःखी होकर राजाने, उसकी दोनों रानियोंने और सत्यभामा ब्राह्मणीने विषपुष्प सूँघ लिया, जिससे सबके सब सदाके लिए सो गये। राजाने श्रीमुनिराजको आहार दिया था और इन तीनोंने उसकी अनुमोदना की थी, इसलिए राजा तो धातकीखंड द्वीपके पूर्व मंदराचलकी (पूर्वमेरुकी) उत्तम भोगभूमिमें आर्य हुआ और सिंहनदिता रानी उसकी आर्या हुई। अनिंदिताका जीव स्त्रीत्वको नाशकर उसी भोगभूमिमे आर्य हुआ और ब्राह्मणीका जीव उसकी पत्नी आर्या हुई। इस तरह चारो जीव उसी उत्तम भोगभूमिमे उत्पन्न हुए। पानकांग जो श्रीखंड आदि पानक वस्तु देवें, तूर्यांग जो वाद्यविशेष देवें, भूषणाङ्ग जो नाना प्रकारके भूषण देवे, ज्योतिरंग जो अनेक प्रकारके प्रकाश देनेकी शक्ति रखते हों, गृहांग जो इच्छानुसार मकान प्रदान करें, भाजनांग जो थाली लोटा आदि पात्र देवे, दीपांग जो दीपक देवें, माल्यांग जो हार माला आदि देवे, भोजनांग जो नाना प्रकारके भोजन व्यंजन देवें और वस्त्रांग जो अनेक प्रकारके वस्त्र देवें। इस प्रकार दश तरहके कल्पवृक्ष होते है। सो ये चारों जीव इन कल्पवृक्षोंके फलोंका उपभोग करते हुए सब तरहकी आधि व्याधि दुःखादिकसे रहित केवल सुखका ही अनुभव करने लगे। तीन पल्यतक बराबर सुखोंका अनुभव किया। आयु पूर्ण होनेपर राजा श्रीषेणका जीव सौधर्म स्वर्गके श्रीप्रभ विमानमें श्रीप्रभ नामका देव हुआ। वहाँके अनेक सुख भोगकर आयु पूर्ण होनेपर इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमे विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके रथनूपुर नगरके राजा अर्ककीर्ति रानी रश्मिमालाके अमिततेज नामका पुत्र हुआ। उसने विद्याधर कुलमें उत्पन्न होनेसे अनेक विद्या साधन की। चक्ररत्नका स्वामी हुआ। जिसके संबन्धसे नौ निधि और तेरह रत्न मिले। बहुत काल तक छः खंडका राज्य किया। अन्तमे सब परिग्रह छोड़ घोर तप किया, जिसके फलसे वह आनत स्वर्गके नंदभ्रमण विमानमें मणिचूड़ नामका देव हुआ। पश्चात् जब आयु पूरी हो गई, तब वहाँसे चयकर इसी भरतक्षेत्रके पूर्व विदेहक्षेत्रमें वत्सकावती देशमें प्रभाकरीपुर नगरके राजा स्तिमितसागर रानी वसुंधराके अपराजित पुत्र हुआ, जिसने बलदेवकी पदवी पाई। चिरकाल तक राज्य करके अन्तमें मुनिव्रत धारण किये। सन्यास मरणकर अच्युत स्वर्गमे देव हुआ। वहाँसे चयकर इसी द्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमे मंगलावती देशके

अन्तर्गत रत्नसंचयपुरके महाराज तीर्थंकरपदके धारक क्षेमंधर रानी हेमचित्राके वज्रायुध नामका पुत्र हुआ। सकल-चक्रवर्ती होकर चिरकालतक राज्य किया। अन्तमें सकलव्रती होकर शरीर छोड़ा और उपरिम ग्रैवेयकके प्रथम सौमनस विमानमें अहमिन्द्र हुआ। वहाँसे भी चयकर इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें पुष्कलावती देशके पुंडरीकिणी नगरीके तीर्थंकर पदके धारक महाराज अभ्ररथ रानी मनोहरीके मेघरथ नामका पुत्र हुआ। उसने महामंडलेश्वर राजा होकर भी अन्तमें सब विभूति जीर्ण वस्त्रवत् छोड़कर जिनमुद्रा धारणकर सन्याससे शरीर छोड़ा, जिससे सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुआ। वहाँसे चयकर इसी भरतक्षेत्रके आर्यखंडमें कुरुजांगल देशके हस्तिनागपुरमें राजा विश्वसेन रानी ऐराके श्रीशान्तिनाथ सोलहवें तीर्थंकर हुए। जिनका गर्भ कल्याणक और जन्म कल्याणक इन्द्रने बड़े समारोहसे किया। कामदेव और चक्रवर्त्तीका पद प्राप्त किया। स्वयं दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्त कर अनेक जीवोंको मोक्ष मार्ग बतलाकर अन्तमें वे मुक्तिलक्ष्मीमें सदाके लिए रत हुए। सिंहनंदिता, अनिंदिता और सत्यभामा ब्राह्मणीके जीव दोनो लोकोंके सुखोंका अनुभव कर अन्तमें मुक्त हुए।

इस कथामें केवल दान देनेका ही फल संक्षेपसे दिखाया गया है। इसका सविस्तार वर्णन श्रीशान्तिनाथ चरित्रमें किया गया है।

इस प्रकार एक मिथ्यादृष्टिने केवल एक बार ही दान देकर उसके फलस्वरूप बारह भवतक अनुपमेय अनेक सुखोंका अनुभव किया और अन्तमें वह अजर अमर मुक्त हुआ। यदि सम्यग्दृष्टि नवधा भक्तिसे दान देवे, तो क्या वह मुक्तिवल्लभ (मोक्ष लक्ष्मीका स्वामी) नहीं होगा? अवश्य होगा।

(२) राजा वज्रजंघकी कथा।[1]

इसी जम्बूद्वीपके अपरविदेहमें गंधिल देशकी उत्तरश्रेणीमें एक अलकापुर नगर था। वहाँके राजा अतिबल रानी

[1] यह कथा आदिपुराणमें प्रसिद्ध है।

मेनाहरीके एक महाबल पुत्र था। सो राजा अतिबल महाबलको राज्य देकर महामुनि हो गये। उन्होंने घोर तपश्चरण करके केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्तमे मुक्ति भवनकी राह ली।

इधर महाबल विद्याधर चक्रवर्त्ती होकर महामति, संभिन्नमति, शततमति, और स्वयंबुद्ध इन चार मन्त्रियोके साथ राज्य करने लगा।

एक दिन जब कि राजाके यहाँ कोई बड़ा भारी उत्सव[1] हो रहा था, स्वयंबुद्ध मन्त्रीने कहा;–राजन्, आपका यह सब विभव ऐश्वर्य धर्मसे हुआ है। इन सबका मूलकारण धर्म है, इसलिए ऐसे उत्सवके समय कोई न कोई धर्म अवश्य करना चाहिए। स्वयंबुद्धके कह चुकनेपर शेष तीनो मन्त्रियोने जो कि तीनो ही शून्यवादी[2] थे, राजासे कहा;–महाराज, धर्मका चितवन तो तब किया जा सकता है, जब कोई धर्मी हो। परन्तु जब कोई धर्मी (धर्मका आधारभूत) ही नहीं है, तब धर्म कहाँ रह सकता है? सबसे प्रथम तो यह सिद्ध होना चाहिए कि जीव परलोकसे आता है और परलोकको जाता है या नहीं? अर्थात् जन्म लेनेसे पहिले जीव था या नहीं? और मरनेके पीछे जीवित रहेगा या नहीं? इस-प्रकार जब जीवकी पहली पिछली अवस्था सिद्ध हो जाय, तब परलोकका चिंतवन करना उचित होगा। हे राजन्, जीव कोई पदार्थ ही नहीं है, फिर धर्म किसके लिए और क्यो करना चाहिए? इस प्रकार तीनों मन्त्रियोंने क्रमसे कहा और तीनोने जीवके अस्तित्वका खंडन कर दिया। तब स्वयंबुद्ध मन्त्रीने जिनका कोई भी खंडन न कर सके ऐसी युक्तियो और प्रमाणोसे उन मन्त्रियोके कहे हुए वचनोंका खंडन करके जीवका अस्तित्व बड़ी योग्यताके साथ निरूपण किया। स्वयंबुद्धने जीवके अस्तित्व सिद्ध करनेमें दृष्टान्तरूप एक ऐसी कथा कही, जो देखी सुनी और अनुभव की हुई थी। वह इस प्रकार है–

१ यह उत्सव महाराज महाबलके जन्म दिवसका था। २ इनमेसे एक भूतवादी दूसरा बौद्ध और तीसरा ब्रह्मवादी था। आदपुराणमे इनका एक अच्छा शास्त्रार्थ लिखा है।

पूर्वकालमें इसी गद्दीका स्वामी एक अरविंद नामका राजा हुआ था। उसकी रानीका नाम विजया था। उसके हरिश्चन्द्र और कुरुविंद नामके दो पुत्र थे। एक दिन महाराज अरविन्दको बड़ा भारी दाहज्वर उत्पन्न हुआ। सब शरीर जलने लगा। तब उसने अपने पुत्र हरिश्चन्द्रसे कहा:-पुत्र, मेरा शरीर जला जा रहा है, मुझे किसी शीत प्रदेशमें ले चल। तब हरिश्चन्द्रने अपने पिताका शीत उपचार करनेके लिए जल बरसानेवाली विद्या भेजी। परन्तु वह जलवर्षिणी विद्या भी उसका कुछ शीतोपचार न कर सकी। उसे अत्यन्त दुःख होने लगा। दैवयोगसे उस समय उसके समीप ही दो छिपकलियाँ आपसमें लड़ने लगीं। अतिशय क्रुद्ध होकर एकने दूसरेपर ऐसी चोट की कि उसके रुधिर बहने लगा और उसकी दो चार बूँदे राजाके शरीरपर पड़ीं, जिससे उसे कुछ थोड़ीसी शान्ति प्राप्त हुई। राजा अरविन्दके अतिरौद्र परिणाम थे, इसलिए उसे विभंगावधि ज्ञान पहले ही हो चुका था। उसके द्वारा उसे विदित हो गया कि अमुक वनमें हरिणोंका निवास है। सो उसने अपने पुत्रको आज्ञा दी:-अमुक वनमेंसे हरिणोंको मारकर उनके रुधिरसे एक बड़ी वापिका भरो। उसमें क्रीड़ा करनेसे मेरा यह रोग दूर हो जायगा। अन्यथा जीवित रहनेका दूसरा कोई उपाय नहीं है। हरिश्चंद्र पिताकी भक्तिवश वनमें जा हरिणोंको पकड़ने लगा। वहाँ एक मुनि महाराज विराजमान थे, वे उसे रोककर कहने लगे-अरे, इस व्यर्थ महापापको क्यों अपने शिरपर रखता है? तेरे पिताकी आयु थोड़ी रह गई है, वह मरकर नरक जानेवाला है। तब राजकुमारने पूछा;-महाराज, मेरा पिता ऐसा ज्ञानी है, वह भी क्या नरक जायगा? मुनिराज बोले;-तेरा पिता अपने ज्ञानसे पापके कारणोंको तो जानता है, परन्तु पुण्यके कारणोंको नहीं जानता। तुझे विश्वास न हो तो जाकर उससे पूछ कि वनमें इस समय हरिणोंके सिवाय और कौन है? यदि मुझे इस वनमें बैठा हुआ जान लेवे तो वास्तवमें तेरा पिता ज्ञानी हो सकता है, अन्यथा नहीं। हरिश्चंद्रने तदनुसार अपने पितासे जाकर पूछा। उसने कहा-मैं नहीं कह सकता कि वनमें और कौन है! हरिश्चन्द्रको मुनिवचनोंमें श्रद्धान हो गया। पीछे उसने पिताकी आज्ञा पूरी करनेके लिए एक वापिका लाखके रससे भरवा दी। तब अरविंदने आनन्दके साथ उसमें क्रीड़ा की। पश्चात् उसीमें जलको जब वह पीने लगा, तब मालूम हो गया कि वह तो लाखका पानी

है। अतः चिल्लाकर कहने लगा—अरे, इसने मेरे घाव कर दिये! घाव कर दिये! और क्रोधित हो, हाथमें छुरी ले, हरिश्चन्द्रके मारनेके लिए दौड़ा, परन्तु दौड़ते समय ठोकर खाकर अपनी छुरीपर गिर पड़ा और मरकर नरकमें पहुँचा।

इतना कह स्वयंबुद्ध कहने लगा—इस कथाको नगरके सब वृद्ध पुरुष जानते और कहते है। तथा और भी सुनिए—इसी गद्दीका स्वामी एक दंडक राजा हुआ था, जिसकी रानीका नाम सुन्दरी और पुत्रका नाम मणिमाली था। दण्डक राजा मरकर अपने खजानेमें सर्प हुआ था। जब मणिमाली खजानेमें कुछ लेनेके लिए जाता तब वह सर्प कुछ भी बाधा नहीं देता था, परन्तु जब कोई दूसरा पुरुष उसके भीतर जाता, तो वह उसको काटने दौड़ता था। एक दिन राजा मणिमालीने एक रतिचरण नामके अवधिज्ञानीसे इस सर्पका वृत्तान्त पूछा। मुनि महाराजने कहा—तेरा पिता दण्डक मरकर यह सर्प हुआ है, इसलिए खजानेमें किसी दूसरेको नहीं जाने देता। तब राजा मणिमालीने उस सर्पको बहुत प्रकारसे समझाया। जिससे उसने अणुव्रत ग्रहण कर लिये। पीछे आयुका अन्त होनेपर वह सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। वहाँ जब उसने अवधिज्ञानसे पूर्व भवकी सब बात जान ली, तब उसी समय आकर दिव्य वस्त्र दिव्य आभरणादिकसे मणिमालीका सत्कार किया। ये आभरणादिक जो कि महाराज महाबलने धारण किये है, क्या वे ही आभरण नहीं है? क्या इन कथाओंसे भी जो कि आप लोगोंके अनुभवगोचर हुई है, यह सिद्ध नहीं होता कि जीव मरकर कहीं दूसरी जगह जन्म लेता है? अथवा मैं एक कथा और कहता हूँ, जो कि आपकी देखी हुई और अनुभव की हुई है। वह यह कि इन महाराज महाबलके पिताके पितामह महाराज सहस्रबल अपने पुत्र शतबलको राज्य देकर दीक्षित हुए और अष्ट कर्मको नाशकर मोक्ष पधारे। महाराज शतबल भी अपने पुत्र अतिबलको राज्य दे दीक्षित हुए और आयु पूर्ण होनेपर माहेन्द्र नामके चौथे स्वर्गमें देव हुए। और महाराज अतिबलने इन वर्त्तमान महाराज महाबलको राज्य दे मुनिव्रत धारण किये। एक बार जब महाराज महाबलकी कुमारावस्था थी, तब हम चारो ही (मन्त्री) इनके साथ खेलनेके लिए मेरुपर्वतपर गये। जिनालयमें जाकर श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा स्तुति की। पूजा करनेके पीछे जब ये मंदिरसे निकल रहे थे, तब एक माहेन्द्र स्वर्गके देवने इन महाराजको

देखकर "तुम मेरे नाती हो" ऐसा कह दिव्य वस्त्रादिक दिये थे। उस समय इन सबने उसको देखा था। और जब शतबलके पिता सहस्रबलको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था और देवोंका समूह उनकी पूजा करनेके लिए आया था, तब हम सबने उसको देखा था। इन प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे क्या यह सिद्ध नहीं होता है कि जीव कोई पदार्थ है और वह जन्मसे पहले तथा मरनेके पश्चात् भी जीवित रहता है? इस प्रकार स्वयंबुद्धने अनेक तरहसे जीवकी सिद्धिका निरूपण किया। कोई भी उसकी युक्तियोंका खंडन न कर सका और न उसके प्रश्नोंका उत्तर ही दे सका। तब महाबलने एक जयपत्र लिखकर स्वयंबुद्धको दिया। परन्तु उन्हें स्वयं धर्ममें निष्ठा नहीं हुई। धीरे धीरे ज्यों ज्यों काल जाने लगा, त्यों त्यों वृद्धावस्था बढ़ने लगी।

एक दिन स्वयंबुद्ध मन्त्री सुमेरु पर्वतपर वंदना करनेके लिए गया। वहाँ भक्तिपूर्वक श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा करके जब वह अपने नगरको लौटने लगा, तब विदेह क्षेत्रकी सीता नदीके उत्तर तटकी ओर कच्छा देशके अरिष्टपुर नगरमे विराजमान श्रीयुगंधर तीर्थंकरके समवसरणसे लौटते हुए दो चारण मुनि आकाशमार्गमे उतरे, जिनका नाम आदित्य-गति और अरिंजय था। स्वयंबुद्धने दोनों मुनिराजोंको नमस्कार कर पूछा–महाराज, राजा महाबल धर्मग्रहण क्यों नहीं करता है? श्रीमुनिने कहा–इसका कारण उसके पूर्व भवसे ज्ञात होगा, इसलिए उसके पूर्व भवोंका वृत्तान्त सुनो;–

इसी गंधिलदेशके आर्य खंडमें सिंहपुर नगरके राजा श्रीषेण रानी सुंदरीके दो पुत्र थे। एकका नाम जयवर्मा और दूसरेका श्रीवर्मा था। जब महाराज श्रीषेणने जिनदीक्षा ली तो उसने यह विचार कर कि बड़ा पुत्र जयवर्मा राज्य करनेके योग्य बुद्धिमान् नहीं होगा, छोटे पुत्र श्रीवर्माको राज्य दिया। अपने छोटे भाईको राज्य देनेसे जयवर्माको वैराग्य उत्पन्न हुआ, इसलिए उसने स्वयंप्रभाचार्यके समीप जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। वह उस समय केशलोच करके किसी बिलमें रखता था कि एक सर्पने उसे डँस लिया। उसी समय एक महीधर विद्याधर अपने विमानमें बैठकर कहीं जा रहा था, सो उसे देखकर जयवर्माने निदान किया कि मैने जो यह तप किया है, इसके प्रभावसे मै विद्याधर होऊँ। इसी निदानसे जयवर्माका जीव राजा महाबल हुआ है। सो निदानके दोषसे वह भोगादिक सामग्रीको नहीं छोड़ सकता है।

एक बात और है। कल रात्रिको उसने एक स्वप्न देखा है कि महामति आदिक तीनों मंत्रियोंने उसे एक बड़े कीचड़में डाल दिया है और तुमने उस कीचड़से निकालकर स्नान कराया है। और फिर सिंहासनपर विराजमान करके उसकी पूजा की है। यह स्वप्न सुनानेके लिए इस समय वह तुम्हारी खोज कर रहा है। अपने स्वप्नको वह तुमसे कहे, इसके पहले ही तुम उसे सुना देना। ऐसा करनेसे उसे विश्वास हो जावेगा और वह धर्मग्रहण कर लेगा। यह भी स्मरण रहे कि अब उसकी आयु केवल एक महीनेकी शेष रह गई है। स्वयंबुद्ध मंत्री इस प्रकार मुनिराजके कहे हुए वचनोंको सुन उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अपने नगरमें आया और राजासे मिलते ही उसने वह स्वप्न जो राजाने रात्रिमें देखा था, ज्योंका त्यों सुनाया। यह भी जतला दिया कि आपकी आयु केवल एक महीनेकी रह गई है। सुनकर राजा महाबल परम उदासीन हो गया। अपने पुत्र अतिबलको राज्य दे उसने जितने जिनमंदिर थे, उन सबमें अष्टाह्निकाकी पूजा कराई। और श्रीसिद्धकूटपर जाकर सब स्वजन परिजनको विदाकर सर्व परिग्रहका त्याग किया। भगवानके उपदेशानुसार केशोंका लौंचकार वह परम दिगम्बर हो गया। बाईस दिनतक प्रायोपगमन सन्यास धारण किया। अन्तमें शरीर छोड़, दूसरे ईशान स्वर्गके स्वयंप्रभ विमानमें ललितांग नामका महाऋद्धिका धारक देव हुआ। उसके स्वयंप्रभा, कनकमाला, कनकलता और विद्युल्लता ये चार महादेवियाँ हुई। ललितांग देवकी आयु दो सागरकी और देवियोंकी आयु पाँच पाँच पल्यकी थी। सो पाँच पाँच पल्य पीछे अन्यान्य देवी आकर उत्पन्न होती थीं, परन्तु उनके नाम यही स्वयंप्रभादि होते थे। जब इस देवकी आयु पाँच पल्य ही शेष रही, उस समय जो देवी उत्पन्न हुई, उनमेंसे एक स्वयंप्रभा देवी उसे अतिशय प्रिय हुई। उसके साथ आनन्दसे क्रीड़ा करते हुए जब ललितांगकी आयु छः महीनेकी रह गई और मरणके चिन्ह (मालाका मुरझाना आदि) दीखने लगे, तब वह बहुत दुःखी हुआ। दूसरे देवोंने बहुत समझाया, परन्तु उसका चित्त शान्त न हुआ। व्याकुल परिणामोंसे ही शरीर छोड़ वह यहाँ पूर्व विदेहक्षेत्रके पुष्कलावती देशमें उत्पलखेटपुरके राजा वज्रबाहु रानी वसुंधराके वज्रजंघ नामका पुत्र हुआ। और स्वयंप्रभा वहाँसे चयकर उसी देशकी पुंडरीकिणी नगरीके राजा वज्रदन्त रानी लक्ष्मीमतीके श्रीमती पुत्री हुई और क्रमसे यौवनावस्थाको प्राप्त हुई।

एक दिन राजा वज्रदंत अपनी सभामें बैठा था कि दो पुरुषोंने आकर निवेदन किया—महाराज, आपके पिता भगवान् यशोधर तीर्थंकरको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। दूसरेने कहाः—महाराज, आपकी आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है। उसी समय एक और किसी सखीने आकर खबर दी;—महाराज, देवोंका आगमन देख, आपकी पुत्री श्रीमती मूर्छित हो गई है। तब महाराज सखीसे यह कहकर कि 'शीतल वस्तुओंके द्वारा उसका शीतोपचार करो' पहले श्रीयशोधर तीर्थंकरके समवसरणमें उनकी वंदनाके लिए गये। वहाँ उन्होंने बड़ी भक्ति और विशुद्ध परिणामोंसे श्रीकेवली भगवानकी पूजा और स्तुति की। तब विशुद्ध परिणामोंके होनेसे उन्हें देशावधि ज्ञान हो गया। वहाँसे लौटकर वे फिर दिग्विजय करनेको निकले और थोड़े ही दिनमें समस्त छः खंडको जीत लौट आये। इधर श्रीमती मूर्छारहित हो मौनव्रतसे रहने लगी। एक दिन उसकी पंडिताने मौनका कारण पूछा। उसने कहा;—देवोंका आगमन देख मुझे अपने पहले भवोंकी स्मृति हो आई थी और इसीलिए मैं मौनव्रतसे रहती हूँ। तब पंडिताने कहा—पूर्व भवान्तरोंकी कथा संक्षेपरूपमें मुझसे कहो। श्रीमती कहने लगी;—पंडिते, धातकीखंड द्वीपमें जो पूर्व मंदराचल है, उसके पश्चिम विदेहक्षेत्रमें एक गंधिल नामका देश है, जिसके पाटली ग्राममें एक नागदत्त नामका वैश्य रहता था। उसकी स्त्रीका नाम वसुमती था। उसके पाँच पुत्र थे जिनका नाम क्रमसे आनन्दी, नंदिमित्र, नंदिसेन, वरसेन, और जयसेन था। पुत्रोंके पीछे दो पुत्रियाँ और हुईं, जिनका नाम मदनकान्ता और श्रीकान्ता था। उन सबके पीछे मैं आठवीं पुत्री जब माताके गर्भमें आई, तब ही मेरे पिताका देहान्त हो गया। पश्चात् जब मैंने जन्म लिया तो मेरे सब भाई और दोनों बहिनें मर गईं। इतनेसे ही शान्ति नहीं हुई। कुछ ही दिनमें मेरी नानी और मा भी इस संसारसे चल बसीं। तब मेरा नाम निर्नामिका रक्खा गया। एक दिन मैं बहुत दुःखी होकर वनमें गई। वहाँ एक अम्बरतिलक पर्वत था। उसपर चढ़कर मैंने देखा कि श्रीपिहितास्रव मुनि पाँचसौ चारण मुनियोंके साथ विराजमान हैं। मैंने उनसे नमस्कार कर पूछा कि मैं किस कारणसे ऐसी दुःखित और कुटुम्बरहित हुई हूँ? श्रीमुनिराज बोले—इसी देशमें एक पलालकूट ग्राम था। उसमें एक देवल नामका ग्रामकूटक रहता था जिसके वसुमति नामकी स्त्री और नागश्री नामकी कन्या

थी। नागश्रीकी क्रीड़ा करनेकी जगहपर एक पुराना वटवृक्ष था। एक दिन श्रीसमाधिगुप्त मुनि उसी वटवृक्षकी कोटरमें (खोखटमें) बैठकर परमागमका अध्ययन कर रहे थे। उन्हें जोरसे पढ़ते हुए देख नागश्री जो कि वहाँ खेल रही थी अप्रसन्न हुई और उनका पढ़ना बंद करनेके लिए उसने एक सड़े हुए कुत्तेको उस वटवृक्षके नीचे लाकर पटक दिया। श्रीमुनिराजने यह देख नागश्रीसे कहा—पुत्री, इस कार्यसे तूने अपनी ही आत्माको अनन्त दुःखका कारण बना लिया है। यह सुन नागश्रीको कुछ भय हुआ, इसलिए उसने उस मरे हुए कुत्तेको वहाँसे हटा दिया और श्रीमुनिराजको नमस्कार कर क्षमा माँग अपने घर गई और कुछ दिनोंमें आयुके अन्त होनेपर मरकर निर्नामिका हुई है। तूने जो मुनिराजसे क्षमा प्रार्थना की थी और अपने परिणाम शान्त रक्खे थे, उसीके प्रभावसे तू मनुष्य योनिमें उत्पन्न हुई है। श्रीमुनिराजके मुखसे अपने पूर्व भव सुन मैंने कनकावली, मुक्तावली आदि बहुतसे व्रत धारण किये। पश्चात् आयु पूरी करके मैं सौधर्म स्वर्गके श्रीप्रभविमानमें ललितांग देवकी नियोगिनी स्वयंप्रभा देवी हुई। वहाँपर जब मेरी छः महीनेकी आयु शेष रह गई थी, तब ललितांग देव वहाँसे च्युत हुआ था। परन्तु अब वह कहाँ उत्पन्न हुआ है, यह मुझे विदित नहीं है। इतना कह, फिर श्रीमतीने कहा—यदि इस भवमें भी मुझे वही वर मिलेगा तो विषयभोग सेवन करूँगी और जीवित रहूँगी, अन्यथा नहीं। यही मेरी प्रतिज्ञा है। अपनी पंडिताको यह सब सुना श्रीमती ललितांग देव और स्वयंप्रभाका चित्र एक पटपर चित्रित करके उसको देखती हुई रहने लगी।

वज्रदंत चक्रवर्ती छहों खंड पृथिवीको जीतकर जब अपने नगरमें आया, तब श्रीमतीकी पंडिता ललितांग और स्वयंप्रभाका चित्रपट लेकर इस अभिप्रायसे निकली कि कदाचित् इसे देखकर चक्रवर्तीके साथ आये हुए क्षत्रियोंमेंसे किसीको जातिस्मरण हो जाय। और ललितांगके जीवका पता लग जावे फिर उस चित्रपटको महापूत जिनालयमें जो कि अति उत्कृष्ट और पूज्य गिना जाता था और जिसमें बहुधा सब लोग आते थे, चौड़ी जगहमें लटका दिया और आप ऐसे स्थानमें बैठ गई कि जहाँसे वह चित्रपट और उसका देखनेवाला अच्छी तरहसे देख पड़ता था।

इधर चक्रवर्ती जब महलमें पहुँचे तो श्रीमती अपने पिताको नमस्कार कर उनके समीप बैठ गई। वज्रदंतने उसे

उदासमुख देख कहा–पुत्री, तू चिन्ता मत कर, तुझसे तेरे पतिका मिलाप अवश्य होगा। कदाचित् तुझे यह शङ्का हो कि मुझे यह कैसे मालूम हुआ तो उसका समाधान यह है कि तेरे और मेरे दोनोंके गुरु एक ही थे, जिनका नाम पिहितास्रव था। श्रीमतीने पूछा–कैसे? चक्रवर्तीने कहा–मैं अबसे पाँच भव पहले इसी पुंडरीकिणी नगरीमें अर्द्धचक्रीका पुत्र चन्द्रकीर्ति हुआ था। उस भवमें एक मेरा मित्र था, जिसका नाम जयकीर्ति था। दोनोंने श्रावकोंके व्रत बड़ी प्रीति और भक्तिसे पाले। पश्चात् प्रीतिवर्द्धन नामके उद्यानमें श्रीचन्द्रसेनाचार्यके समीप दीक्षा ग्रहण की और उन्हींके निकट सन्यास धारण कर चौथे माहेन्द्रस्वर्गमें देव हुए। फिर वहाँसे चयकर चन्द्रकीर्त्तिका जीव पुष्करद्वीपके पूर्व मंदराचलके पूर्व विदेहक्षेत्रमे मंगलावती देशके अन्तर्गत रत्नसंचयपुर नगरके राजा श्रीधर रानी मनोहरीके वलदेव पदका धारक श्रीवर्मा नामका पुत्र हुआ और जयकीर्तिका जीव वहाँसे चयकर उसी राजाकी दूसरी श्रीमती रानीके विभीषण पुत्र हुआ, जिसको नारायणकी पदवी मिली। महाराज श्रीधर इन दोनोंको राज्य देकर आप श्रीसुधर्म मुनिके समीप दीक्षित हुए। घोर तप करके मुक्ति पधारे। रानी मनोहरी अपने पुत्र श्रीवर्माके अतिमोहसे आर्यिकाके व्रत धारण न कर सकी। घरमें ही श्राविकाके व्रत पालकर उसने सन्यासपूर्वक शरीर छोड़ा, जिसके प्रभावसे स्त्रीलिंग छेदकर ईशान स्वर्गके श्रीप्रभविमानमें ललितांग देव हुई।

इधर नारायण विभीषण और वलदेव श्रीवर्मा दोनों ही सुखसे राज्य करने लगे। जब वासुदेवकी आयु पूरी हो चुकी और वे प्राणान्त हो गये, तब श्रीवर्मा (वलदेव) उनके अत्यन्त गाढ़ स्नेहसे पागल सदृश हो गया। उस समय उसकी माताके जीव ललितांग देवने आकर वहुत कुछ समझाया। जिससे श्रीवर्माको ज्ञान उत्पन्न हो गया, इसलिए वह अपने पुत्र भूपालको राज्य देकर दश हजार राजाओंके साथ श्रीयुंगधर स्वामीके निकट दीक्षित हो गया। और आयु पूर्ण होनेपर सन्याससहित शरीर छोड़कर सोलहवें अच्युत स्वर्गका इन्द्र हुआ। सो अवधिज्ञानसे ललितांग देवके उपकारका स्मरण करके कृतज्ञता दिखलानेके लिए उसे अपने स्वर्गमें ले गया। वहाँ उसकी पूजा स्तुतिसे योग्य सत्कार किया गया।

ललितांग देव वहाँसे चय इसी द्वीपमे मंगलावती देशके विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तरश्रेणीमे गंधर्वपुर नगरके राजा वासव रानी प्रभावतीके महीधर नामका पुत्र हुआ। महाराज वासवने उसे राज्य दे श्रीअरिंजय आचार्यके समीप अनेक भव्य जीवोंके साथ दीक्षा ग्रहण की और अनुक्रमसे मुक्ति पाई। रानी प्रभावतीने पद्मावती आर्यिकाके निकट दीक्षा ग्रहण की और समाधिमरणसे शरीर छोड़ स्त्रीलिंग छेद सोलहवें अच्युत स्वर्गमे प्रतीन्द्रका पद पाया।

एक समय पुष्करद्वीपमे पश्चिम मंदाराचलके पूर्व विदेहक्षेत्रमें वत्सकावती देशके अंतर्गत प्रभाकरी नगरीमें श्रीविनयंधर भट्टारकको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। सब देव उनकी पूजा करनेके लिए आये। और उसी समय राजा महीधर उसी मंदराचलके चैत्यालयोंकी पूजा वंदना करनेके लिए आया। उसे देख अच्युत स्वर्गके इन्द्रने कहा–महीधर, क्या तुम मुझे जानते हो? महीधरने कहा–नहीं। तब अच्युतेन्द्र बोला–जिस भवमें तुम मनोहरी हुए थे और मै तुम्हारा पुत्र श्रीवर्मा हुआ था। तथा तुमने जब मनोहरीकी पर्याय छोड़ ललितांग देवकी पर्याय धारण की थी, उस समय मुझे समझाया था, इसलिए वहाँसे च्युत हो मैने अच्युतेन्द्रकी पर्याय पाकर तुम्हारा उपकार स्मरण करनेके लिए अपने स्वर्गमें लाकर तुम्हारा एक वार पूजन सत्कार किया था। मैं वही अच्युतेन्द्र हूँ। अच्युतेन्द्रके मुखसे अपने पूर्व भव सुनकर महीधरको जातिस्मरण हुआ, इसलिए उसने अपने पुत्र महीकंपको राज्य दे श्रीजगन्नन्दनाचार्यके समीप दीक्षा ग्रहण की। पश्चात् समाधिसहित शरीर छोड़ चौदहवे प्राणत स्वर्गमें इन्द्र हुआ। वहाँसे चयकर धातकीखंडद्वीपके पूर्व मंदराचल पर्वतके पश्चिम विदेह क्षेत्रमे गंधिल देशके अन्तर्गत अयोध्या नगरके राजा जयवर्मा रानी सुप्रभाके अजितंजय पुत्र हुआ। जयवर्माने चिरकाल तक राज्य करके उसे राज्य दे अभिनन्दन मुनिके निकट दीक्षा ले ली। और अष्ट कर्मोंका नाश कर मुक्ति प्राप्त की। इधर रानी सुप्रभाने सुदर्शना आर्यिकाके समीप आर्यिकाके व्रत धारण किये और घोर तपकर स्त्री पर्याय छेद अच्युत स्वर्गमे देवकी पर्याय पाई।

एक दिन महाराज अजितंजयने अभिनन्दन केवलीकी मन वचन कायकी शुद्धिसे पूजा की, जिसके प्रभावसे

उनके पूर्व पापास्रवजन्य कर्म शान्त और नष्ट हो गये। इससे उनका नाम पिहितास्रव पड़ गया। पीछे महाराज पिहितास्रवको (अजितंजयको) सकलचक्रवर्तीकी विभूति भी प्राप्त हो गई।

एक दिन अच्युत स्वर्गके इन्द्रने आकर अजितंजय चक्रवर्तीको कुछ उपदेश दिया और समझाया। जिसका फल यह हुआ कि उन्होंने अपने पुत्रको राज्य दे बीस हजार राजपुत्रोंके साथ श्रीमंदरधैर्य मुनिके समीप जिनदीक्षा धारण की। तपके प्रभावसे चारण ऋद्धि प्राप्तकर चारण मुनि कहलाये। वे पिहितास्रव चारणमुनि जब कि पाँचसौ चारण मुनियोंके साथ अम्बरगिरि पर्वतपर विराजमान थे, तब तूने (जब कि तेरी निर्नामिका पर्याय थी) उनकी वंदना की थी। और अच्युतेन्द्रका जीव महाराज यशोधर तीर्थंकर रानी वसुमतीके मै (वज्रदन्त) उत्पन्न हुआ। सो पिहितास्रवका जीव जब कि ललितांग था, उस समय उसने मुझको जब कि मै श्रीवर्मा बलदेव था समझाया था इसलिए पिहितास्रव मेरे भी गुरु हुए।

श्रीप्रभविमानमें एक सरीखे पुण्यके धारक तुम समेत बाईस ललितांग हुए थे। तब मैने (अच्युतेन्द्रके जीवने) अपने स्वर्गमे ले जाकर उन सबका पूजन सत्कार किया था। क्यों तुझे याद है न? श्रीपिहितास्रव भट्टारकके केवल कल्याण और निर्वाण कल्याणके समय मैने, तूने तथा ललितांग आदि देवोंने अंबरगिरि पर्वतपर उनकी पूजा की थी। क्यों स्मरण है? और भी सुन; तेरे ललितांग देवने, तूने (स्वयंप्रभाने), ब्रह्मस्वर्गके इन्द्रने, लांतव स्वर्गके इन्द्रने और मैने मिलकर श्रीयुगंधर तीर्थंकरका चरित्र उनके गणधरसे पूछा था। गणधरने कहा था कि जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमे एक वत्सकावती देश है। उसके सुसीमा नगरमे राजा अजितंजय अपनी स्त्री सत्यभामा सहित राज्य करता था। उसके अमितगति नामका मंत्री तथा प्रहसित और विकसित नामके दो पुत्र थे। दोनोहीको शास्त्रका अधिक अभिमान था। इससे दोनो ही उद्धत हो रहे थे। एक दिन उस नगरमे श्रीमतिसागर मुनि पधारे। सो सब लोग उनकी वंदना करनेके लिए गये। और ये दोनो भी गये। तब राजाको साक्षी बनाकर दोनोंने उन मुनियोंके साथ शास्त्रार्थ (विवाद) किया। परन्तु जब मुनिसे हार गये, तब दोनोहीने उनके शिष्य होकर

दीक्षा ले ली। पश्चात् दोनो ही समाधिमरणसे शरीर छोड़ महाशुक्र स्वर्गमे देव हुए। वहाँसे चय धातकीखंडके पश्चिम विदेह क्षेत्रमे पुष्कलावती देशकी पुंडरीकिणी नगरीके राजा धनंजयकी दो रानियोंसे दो पुत्र हुए। रानी जयावतीसे महाबल और जयसेनासे अतिबल। दोनो ही क्रमसे बलदेव और वासुदेव (बलभद्र नारायण) हुए। महाराज धनंजय इन दोनो पुत्रोंको राज्य दे दिगम्बर मुनि हो गये और घोर तप कर अष्ट कर्मोंको नष्ट कर मोक्ष पधारे। वे दोनों अर्द्धचक्रीकी विभूति प्राप्त कर सुखसे राज्य करने लगे। जब अतिबल नारायणका देहान्त हो गया, तब महाबलने श्रीसमाधिगुप्त मुनिके निकट दीक्षा धारण की। और घोर तप कर प्राणत स्वर्गमे पुष्पचूल नामकी देवकी पर्याय पाई। फिर वहाँसे चयकर धातकीखंड द्वीपके पूर्व मंदराचल पर्वतके पूर्व विदेह क्षेत्रमे वत्सकावती देशके अन्तर्गत प्रभावती नगरीके राजा महासेन रानी वसुंधराके जयसेन पुत्र हुआ। पिताके अनन्तर राजगद्दीपर बैठा। सकल चक्रवर्ती हुआ। छह खंड पृथ्वी वशमें कर सुखसे राज्य करने लगा। अन्तमे एक दिन उसने श्रीसीमंधरके निकट दीक्षा ग्रहण कर ली और दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवन किया, जिससे तीर्थंकर प्रकृतिका बंध किया। अन्तमें वह प्रायोपगमन सन्याससे शरीर छोड़ उपरिम ग्रैवेयकमे अहमिन्द्र हुआ। वहाँसे चय पुष्कर द्वीपके पश्चिम मंदराचल पर्वतके पूर्व विदेह क्षेत्रमे मंगलावती देशके रत्नसंचयपुर नगरके राजा अजितंजय और देवी वसुमतीके ये श्रीयुगंधरस्वामी हुए जिनके गर्भ जन्म आदि कल्याणक इन्द्रने स्वयं आकर किये थे। इतनी कथा कह राजा वज्रदंतने अपनी पुत्री श्रीमतीसे पूछा;–क्यों श्रीमते, यह कथा श्रीगणधरदेवने कही थी, तुझे स्मरण है कि नहीं? श्रीमतीने कहा;–यह तो सब कुछ मुझे याद है। परन्तु आप कृपाकर यह बतलाइए कि मेरा पति (ललितांगका जीव) वहाँसे चयकर कहाँ उत्पन्न हुआ है? वज्रदंत कहने लगे,–उत्पलखेतपुर नगरके राजा वज्रबाहु रानी वसुंधरीके (मेरी बहिनके) घर जो वज्रजंघ नामका पुत्र है, वही तेरा पति है। राजा वज्रबाहु कल प्रभात ही मुझे देखनेके लिए यहाँ आवेंगे। साथमें वज्रजंघ भी आवेगा। सो तेरी पंडिता चित्रपटको लेकर मंदिरमे बैठी है, उसे देख उसको पूर्व भवका स्मरण होगा और वह उस पंडितासे पूर्व भवका

सब वृत्तान्त कहेगा। इससे बेटा, तू चिन्ता मत कर और महलमें जा वस्त्राभूषण पहन शरीरका शृंगार कर। इस तरह कन्याको समझाकर विदा किया।

दूसरे दिन वासव और दुर्दन्त दो विद्याधर उसी पवित्र चैत्यालयके दर्शन करनेको आये। सो उस विचित्र चित्रपटको देख लोगोंको आश्चर्य दिखानेके लिए वासव कपटकर झूठमूठ मूर्छित हो गया। लोगोंने इसको अकस्मात् मूर्छित हुआ देख कहा–अरे, यह क्या हुआ? यह क्या हुआ? पश्चात् जब थोड़ी देर पीछे वासवने सचेत होनेकी लीला दिखलाई, तब लोगोंने पूछा;–भाई, क्यों मूर्छित हुआ था? वासवने कहा;– मै इससे पहले भवमे अच्युत स्वर्गका इन्द्र था और यह मेरी देवी थी। यह देवी वहाँसे आकर कहाँ उत्पन्न हुई है, यह तो मै नही जानता, परन्तु इसको देख मुझे पूर्व भवका स्मरण हो आया है। और इसी कारण मुझे मूर्छा आ गई थी। अच्युत स्वर्गका नाम सुनते ही बुद्धिमती पंडिता समझ गई कि यह कोई मायावी है। फिर क्या था, वह उस मायावीकी हँसी उड़ाने लगी और डपटकर बोली:–अरे जा रे धूर्त, यह तेरी वल्लभा नही है, किसी औरको ही तलाश कर। थोड़ी देर पीछे चैत्यलयके समीप राजा वज्रबाहुके डेरे लगे और वज्रजंघ चैत्यालयके देखनेके लिए भीतर गया। सो प्रथम ही उस चित्रपटपर उसकी दृष्टि पड़ी। उसे देखते ही जातिस्मरण होनेसे वह मूर्छित हो गया। थोड़ी देरमे सचेत होनेपर पंडिताने पूछा;–अभी आपको क्या हो गया था? वज्रजंघने सब ज्योंका सो वृत्तान्त, जो कि पंडिताके हृदयमे श्रीमतीके द्वारा अंकित था, कह सुनाया। तब पंडिताने भी प्रसन्न हो उसे श्रीमतीका सब वृत्तान्त सुनाया और श्रीमतीसे आकर कुमार वज्रजंघके आगमनके तथा उसके पूर्व भवके सब वृत्तान्त कहे। इसकी खबर राजा वज्रदंत चक्रवर्तीको भी दी गई। तब वे वज्रबाहुको लेनेके लिए उनके सम्मुख गये और बड़ी विभूतिसे उनको अपने नगरमे ले आये। और श्रीमती तथा वज्रजंघका जब गुप्तरीतिसे परस्पर निरीक्षण हो चुका, तब दोनोंका विवाह कर दिया गया।

वज्रदंत चक्रवर्तीने अपने पुत्र (श्रीमतीके बड़े भाई) अमिततेजके लिए राजा वज्रबाहुसे वज्रजंघकी छोटी बहिन अनुंधरी माँगी। वज्रबाहुने भी देना स्वीकार कर लिया। पश्चात् अनुंधरी और अमिततेजका विवाह भी आनन्दके

साथ हो गया। वज्रबाहु और वज्रदंतमें परस्पर अतिप्रेम बढ़ गया। दोनों कुछ दिनतक वहीं रहे। पश्चात वज्रबाहुने अपने पुत्र वज्रजंघ, पुत्रवधू श्रीमती और श्रीमतीकी पंडिताको ले अपने नगरको गमन किया। पंडिता थोड़े दिनमें श्रीमतीके समीप पुंडरीकिणी नगरीको लौट आई। कालान्तरमें श्रीमती और वज्रजंघके वीरबाहु आदिक इक्यावन पुत्र उत्पन्न हुए। वज्रबाहु इन सबके विवाहादिक करके सुखसे दिन व्यतीत करने लगे।

एक दिन वज्रबाहु आकाशकी शोभा देख रहे थे। अकस्मात एक बादलको विलीन होता देख उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ। सांसारिक भोगोंको इसी तरह अथिर जान अपने पुत्र वज्रजंघको राज्यभार सौंप आप अपने सब पोते (नाती) और पाँचसौ क्षत्रियो समेत श्रीदमधर मुनिके निकट दीक्षाधारी हुए और घोर तपश्चरण कर ध्यानरूपी अग्निसे समस्त कर्मरूपी काष्ठको जला नित्यनिरंजन पदको प्राप्त हुए।

एक दिन वज्रदत चक्रवर्ती अपनी सभामें विराजमान थे, इतनेमें एक मालीने एक सुन्दर मुकुलित कमल लाकर भेट किया। उसमें एक मरे हुए भ्रमरको (भौंराको) देख महाराज विचारने लगे—देखो, केवल एक नासिका इन्द्रीके वशीभूत होनेसे इस भ्रमरकी जान चली गई है, फिर मैं तो रात्रि दिवस पञ्चेन्द्रियके भोगोपभोगोंमें लीन हो रहा हूँ। कभी तृप्ति ही नहीं। जो मैं इनको स्वयं न छोड़ दूँगा, तो एक दिन मेरा भी यही हाल होगा। ऐसा विचार संसारसे उदास हो वे अपने पुत्र अमिततेजको राज्य देने लगे परन्तु उसने कहा—पिताजी, जिस कारण आप इस राज्यको छोड़ते है, मैं भी उसी कारणसे इसे छोड़कर आपके साथ क्यों न चलूँ? वज्रदन्तके बहुत समझानेपर भी राज्यको झूठन समान जान उसने स्वीकार नहीं किया तब वे दूसरे पुत्रोंको राज्य देने लगे परन्तु वे सब अमिततेजके ही अनुयायी निकले। जो उत्तर अमिततेजसे मिला था वही सब पुत्रोंसे उन्हें मिला। निदान अमिततेजके पुत्र पुंडरीकको जो कि वज्रजंघका भानजा था, राज्य देकर अपने एक हजार पुत्रों, बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओ और साठ हजार स्त्रियोके साथ श्रीयशोधर तीर्थंकरके चरणकमलोंके निकट महाराज वज्रदन्तने दीक्षा धारण की और क्रमसे केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया। और भी सब यथायोग्य गतिको प्राप्त हुए।

इधर वज्रदन्तके शत्रु लोग पुंडरीकको बालक जान उसकी कुछ भी परवाह न कर देशमें बाधा उपद्रव करने लगे। तब वज्रदन्तकी रानी लक्ष्मीमतीने शत्रुओंके उपद्रव करनेके समाचार लिख गंधर्वपुर नगरके राजा चिन्तागति और मनोगति विद्याधरोंके द्वारा वज्रजंघके समीप पत्र पहुँचाया। वह वज्रदन्तका वैराग्य सुनकर आश्चर्ययुक्त हो शत्रुओंको जीतनेके लिए अपनी चतुरंगिनी सेनासहित नगरसे निकल पुंडरीकिणी नगरीकी ओर रवाना हुआ। मार्गमें एक सर्प नामके तालावके किनारेपर डेरा डाला। सब लोगोंकी रसोई बनने लगी। वहींपर दो चारणमुनि जिनका नाम दमवर और सागरसेन था, आहार लेनेके लिए आकाशमार्गसे पधारे। राजा वज्रजंघ और श्रीमतीने उन्हें पड़गाहन किया। और नवधा भक्तिसे अन्तरायरहित आहार दिया, जिसके पुण्यके प्रभावसे पंचाश्चर्य हुए। उसी समय उस जंगलके व्याघ्र, शूकर, बंदर, नकुल ये चार जीव आकर श्रीमुनिको नमस्कार कर उनके समीप बैठ गये। वज्रजंघने यह कौतुक देख श्रीमुनिराजको नमस्कार किया और समीप ही बैठकर पूछा;-महाराज, मेरे मंत्री मतिवर, पुरोहित आनन्द, सेनापति अकंपन, और राजश्रेष्ठी धनमित्र हैं। इनके ऊपर मेरा अधिक प्रेम क्यों है? इन व्याघ्रादिकके उपशान्त होनेका क्या कारण है? और आपपर मेरा अधिक स्नेह क्यों है? इस प्रकार वज्रजंघने तीन प्रश्न किये। तब श्रीदमवर मुनि कहने लगे;-

जम्बूद्वीप पूर्व विदेह क्षेत्र वत्सकावती देश प्रभाकरी नगरीका राजा अतिगृद्ध महालोभी था। उसने अपनी नगरीके निकट जो एक पर्वत था, उसमें बहुतसा धन रख छोड़ा था। सो उस कारण रौद्रध्यानपूर्वक मृत्यु होनेसे वह पंकप्रभा नामके चौथे नरकमें पहुँचा। फिर वहाँ अपनी आयु पूर्ण करके वह प्रभाकरी नगरीके निकटवाले पर्वतपर व्याघ्र हुआ।

एक दिन उसी नगरके राजा प्रीतिवर्द्धनने शत्रुओंके ऊपर चढ़ाई करनेके लिए घरसे प्रस्थान करके नगरके बाहर डेरा दिया। पास ही एक वृक्षकी कोटरमें (खोखरमें) श्रीपिहितास्रव मुनि विराजमान थे, जो कि एक महीनेका उपवास किये थे। जिस दिन उनके पारणेका दिन हुआ, एक निमित्तज्ञानीने राजा प्रीतिवर्द्धनसे कहा;-महाराज, यदि ये मुनि आपके घर आहार लेवें, तो आपको प्रचुर धनका लाभ हो। यह जान राजाको

आहार देनेकी इच्छा हुई। परन्तु नगरको छोड़ मुनि महाराज यहाँ डेरोंमें कैसे पधारेंगे, यह भी चिन्ता हुई। सोच विचार कर एक उपाय किया कि नगरके मार्गोंमें कीचड़ करा दी और ऊपरसे फूल बिछा दिये, जिससे मुनि नगरमें न जाने पावे। श्रीमुनि महाराज आहार लेनेको निकले, परन्तु नगरका मार्ग रुका हुआ देख डेरोंकी ओर ही चले। तब राजाने ही उनका पड़गाहन किया। और नवधा (नौ प्रकारकी) भक्तिसे अन्तरायरहित आहार दिया। आहार देनेके महापुण्यसे राजाके यहाँ पंचाश्चर्य हुए। पश्चात् श्रीमुनिराजने कहा;–राजन्, इस सामनेवाले पर्वतमें बहुत द्रव्य रक्खा है, जिसकी रक्षा एक व्याघ्र करता रहता है। सो तेरी प्रयाणभेरीकी आवाजको सुनकर उस सिंहको इस समय जातिस्मरण हुआ है। राजाने बीचमें ही प्रश्न किया–महाराज, वह व्याघ्र कौन है? और उसे जातिस्मरण क्यों हुआ है? तब मुनिराजने उस व्याघ्रके पूर्व भव कह सुनाये। जिससे राजाको मालूम हो गया कि वह पहले इसी नगरीका राजा था, जिसने अपना बहुतसा धन इस पर्वतमें गाड़ रक्खा था। श्रीमुनि फिर कहने लगे–उस व्याघ्रने अभी समाधिमरण (सन्यास) धारण किया है, सो वह तुझे अपना पहला गढ़ा हुआ धन दिखा देगा। यह सुनकर राजा बहुत संतोषित हुआ। श्रीमुनिराजको नमस्कार कर उस पर्वतपर जा उसने उस व्याघ्रको बहुत समझाया और व्रतोंमे दृढ़ किया। तब व्याघ्रने उस राजाको वह सब धन दिखला दिया। राजाने वहाँसे धन निकलवा अपने खजानेमे पहुँचा दिया। पश्चात् उस व्याघ्रने सन्यास धारण कर अठारहवे दिन शरीर छोड़ा और ईशान नामके दूसरे स्वर्गके दिवाकरप्रभ विमानमे दिवाकर देव हुआ। राजा प्रीतिवर्द्धनने जो मुनिराजको आहार दिया था, उसकी अनुमोदना उस राजाके मन्त्री पुरोहित और सेनापतिने भी की थी। इससे वे तीनों ही जम्बूद्वीपकी उत्तरकुरु भोगभूमिमें उत्पन्न हुए। और राजा प्रीतिवर्द्धनने उन्हीं पिहितास्रव मुनिके निकट दीक्षा ले अष्ट कर्मका नाश कर मोक्ष प्राप्त किया। तथा उस राजाके मन्त्रीका जीव भोगभूमिसे चयकर ईशान स्वर्गके कांचन विमानमे कनकप्रभ देव हुआ। सेनापतिका जीव उसी स्वर्गमें प्रभंकर विमानमें प्रभाकर देव हुआ और पुरोहितका जीव भी भोगभूमिसे आकर उसी दूसरे स्वर्गके रुचित विमानमें प्रभंजन देव हुआ। इस प्रकार ये तीनो और एक व्याघ्रका जीव उसी दूसरे स्वर्गमें

उत्पन्न हुए। सो हे राजन, जब तू ललितांग देव था, तब ये चारों ही तेरे परिवारके देव थे। वहाँसे चयकर ये तेरे मन्त्री आदिक उत्पन्न हुए है। दिवाकरप्रभ देवका जीव मतिसागर श्रीमतीके यह मतिवर मन्त्री हुआ है। प्रभाकर देव अपराजित आर्यवेगाके यह अकंपन सेनापति हुआ है। कनकप्रभ देव श्रुतकीर्ति और अनन्तमतीके यह आनन्द पुरोहित हुआ है और प्रभंजन देव सेठ धनदेव स्त्री धनदत्ताके यह धनमित्र राजश्रेष्ठी हुआ है। और राजन्, जब तू इस भवसे आठवे भवमे आदिनाथ (ऋषभदेव) तीर्थंकर होगा, तब यह मतिवर मन्त्री तेरा (ऋषभदेवका) पुत्र भरत होगा, अकंपन सेनापति बाहुबलि होगा, आनन्द पुरोहित वृषभसेन होगा और धनमित्र अनन्तवीर्य होगा। इस प्रकार ये चारों ही तेरे पुत्र होगे, जो कि चारो ही चरमशरीरी (तद्भवमोक्षगामी) होंगे। राजन्, यह तेरे पहले प्रश्नका उत्तर हुआ। अब इन व्याघ्र शूकर आदि जीवोके पूर्व भव ध्यान देकर सुन;—

इसी देशके हस्तिनापुरमे एक धनदत्त नामका वैश्य रहता था। उसकी धनमती स्त्रीसे उग्रसेन नामका पुत्र था। वह एक दिन चोरी करते पकड़ा गया। कोटपालने उसकी लात घूँसे मुक्कोंसे खूब खबर ली। इससे उग्रसेन मर गया और यह व्याघ्र हुआ है। तथा इसी देशके विजयपुरमें एक आनन्द नामका वणिक् था। उसकी वसन्तसेना स्त्रीसे हरिकान्त नामका पुत्र था। वह इतना अभिमानी था कि किसीको भी नमस्कार नहीं करता था। एक दिन दो चार मनुष्योने पकड़कर उसे माता पिताके पैरोपर डाल दिया। इससे हरिकान्त अपना मानभंग समझकर एक शिलापर सिर पटककर मर गया और यह शूकर हुआ है। इसी देशके धान्यपुर नगरमें एक धनदत्त वणिक था। उसकी वसुदत्ता भार्यासे नागदत्त पुत्र था, जो कि महा मायावी (कपटी) था। एक दिन उसने अपनी बहिनके सब भूषण लेकर एक वेश्याको दे दिये। बहिनके मांगनेपर हमेशा वह उत्तर दे देता था कि लाता हूँ। इसी बीचमें वह मर गया, और यह बंदर हुआ है। तथा इसी देशके सुप्रतिष्ठ नगरके राजाने एक चैत्यालय बनवाया था, जिसमें सुवर्णकी ईंटें लगवाई जाती थीं। वे ईंटें ऊपरसे मिट्टी जैसी काली थीं, परन्तु थीं सुवर्णकी। मजदूर लोग उन्हें ढो रहे थे। यह बात उस नगरके पूरी कचौरी बेचनेवाले एक हलवाईको, जो कि महालोभी था, मालूम हुई। उसने एक मजदूरसे

यह कहकर कि मुझे पैर धोनेके स्थानपर बिछानेके लिए दो चार ईंटोंकी आवश्यकता है कुछ पूरी देकर ईंट ले ली, और उससे कह दिया कि ईंट रोज दे जाया कर और बदलेमें पूरी ले जाया कर। इस तरह वह वणिक् उस मजदूरसे एक ईंट प्रतिदिन लेने लगा। एक दिन हलवाईको किसी दूसरे ग्राम जाना पड़ा, इसलिए वह अपने बेटेसे ईंट लेनेके लिए कह गया। परन्तु किसी कारणसे उसका बेटा उस दिन ईंट न ले सका। जब वह हलवाई लौटकर घर आया और उसे यह मालूम हुआ कि लड़केने आज ईंट नहीं ली है, लोभके वश हो उसने अपने पुत्रको मारे लकड़ियोंके दम निकाल दिया, और एक बड़ी भारी पत्थरकी शिला उठाकर अपने पैरपर पटक ली, जिससे उसके भी पैर टूट गये। वह उसी दुःखसे मरकर यह नकुल हुआ है। ये सभी निकटभव्य हैं और इसीलिए सब उपशान्त हुए हैं। राजन्, तूने जो यह दान दिया है, उसकी अनुमोदना इन सबने की है। इसी पुण्यसे इस लोक और परलोकमें ये तेरे साथ सुख भोगेंगे। जब तू तीर्थंकर होगा तब ये सब तेरे अनन्त, अच्युत, वीर, और सुवीर नामके धारक चरमशरीरी पुत्र होंगे। और हम दोनों तेरे अन्तके युगल पुत्र थे, इसलिए हमपर तेरा प्रेम है। इस प्रकार वे मुनिराज राजा वज्रजंघके तीनों प्रश्नोंका उत्तर देकर विहार कर गये। और महाराज वज्रजंघ पुंडरीकके यहाँ पहुँचे। शत्रुओंको दबाकर उन्होंने वहाँका राज्य स्थिर किया। फिर अपने नगरको लौटकर वे सुखसे राज्य करने लगे।

एक दिन जब रात्रिको राजा वज्रजंघ रानी श्रीमतीसहित अपने शयनागारमें सो रहे थे तब शयनागारका अधिकारी सूर्यकान्त धूपके घड़ेमें कालागुरु (सुगंधित द्रव्य विशेष) डालकर चला गया और वहाँके झरोखे खोलना भूल गया। जिससे उस घड़ेका धुआँ मकानमें भर गया, और उससे वे दोनों स्त्री पुरुष (राजा वज्रजंघ और रानी श्रीमती) घुटकर मर गये। वे श्रीमुनिराजको आहार दान देनेके प्रभावसे दोनों ही उत्तरकुरु भोगभूमिमें स्त्री पुरुष हुए। और वे व्याघ्र, शूकर, बन्दर, न्योला आदि भी उसी मकानमें उसी धुएँसे मरकर उसी भोगभूमिमें आर्य हुए।

इधर वज्रजंघके मंत्रियोंने वज्रजंघके शरीरका अग्निसंस्कार किया। और उसके पुत्र वज्रबाहुको राज्य दे मतिवर मन्त्री, अकंपन सेनापति, आनन्द पुरोहित और धनमित्र राजश्रेष्ठीने दीक्षा ग्रहण की। और तप करके चारों ही अधोग्रैवेयकमें अहमिन्द्र हुए।

इधर भोगभूमिमें रहनेवाले वज्रजंघ और श्रीमतीको एक दिन सूर्यप्रभ नामके कल्पवासी देवके दर्शन हुए। जिससे दोनोंको जातिस्मरण हुआ। दैवयोगसे उसी समय वहाँ दो चारणमुनि आकाश मार्गसे पधारे। सो वज्रजंघके जीव आर्यने उन दोनों मुनियोंको नमस्कार कर पूछा;-महाराज, आपको देखकर आपपर मेरा प्रेम क्यों हुआ है? प्रीतंकर मुनिने कहा-आर्य, जब तू महाबल राजा था, तब तेरा एक स्वयंबुद्ध मंत्री था। वह तप कर सन्याससे शरीर छोड़ सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। और वहाँसे चयकर पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुंडरीकिणी नगरीके राजा प्रियसेन रानी सुन्दरीसे मैं प्रीतंकर हुआ। यह मेरा छोटा भाई प्रीतिदेव है। तपके प्रभावसे हम दोनोंको चारणऋद्धि और अवधिज्ञान प्राप्त हुआ है। सो तुमको सम्यक्त्व ग्रहण करानेके लिए आये हैं। इस प्रकार उपदेश देकर उन छहों जीवोंको सम्यक्त्व ग्रहण करा वे मुनि वहाँसे विहार कर गये। उक्त छहों जीव उत्तर भोगभूमिके सुख भोगते हुए सुखसे रहने लगे। तीन पल्यकी आयु पूर्ण कर शरीर छोड़ सब ईशान स्वर्गमें देव हुए। वज्रजंघका जीव श्रीप्रभ विमानमें श्रीधर देव हुआ, श्रीमतीका जीव स्वयंप्रभ विमानमें स्वयंप्रभ देव हुआ, व्याघ्रका जीव चित्रांगद विमानमें चित्रांग देव हुआ, शूकरका जीव नंद विमानमें मणिकुंडल देव हुआ, वानरका जीव नंद्यावर्त्त विमानमें मनोहर देव हुआ और नकुलका जीव प्रभाकर विमानमें मनोरथ देव हुआ। इस तरह इनका आपसमें सम्बन्ध है।

एक दिन जब श्रीप्रभ पर्वतपर श्रीप्रीतंकर मुनिराजको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, तब श्रीधर आदिक देव उनकी वंदना करनेके लिए आये। वंदना स्तुति करके श्रीधरने पूछा;-भगवन्, मैं जब महाबल राजा था, तब मेरे जो महामति आदिक मन्त्री थे, वे मर कर कहाँ उत्पन्न हुए हैं। केवली महाराजने कहा;-उनमेंसे महामति और संभिन्नमति ये दोनों निगोदमें गये हैं और शतमति दूसरे शर्कराप्रभा नरकमें गया है। यह सुन श्रीधर देव शतमतिके जीवको समझानेके लिए दूसरे नरकमें गया। वहाँ उसको अनेक तरह समझाया। पश्चात् शतमतिका जीव दूसरे नरकसे निकलकर पुष्कर द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें मंगलावती देशके रत्नसंचयपुर नगरमें राजा महीधर रानी सुन्दरीके जयसेन नामका पुत्र हुआ। वह युवा होनेपर जब अपना विवाह करने लगा, तब श्रीधर देवने फिर आकर

समझाया और उसे भोगोंसे उदास कराया, जिससे जयसेनने मुनिव्रत धारण किये और समाधिमरणसे शरीर छोड़ पाँचवें ब्रह्म स्वर्गका इन्द्रपद प्राप्त किया। पश्चात् स्वर्गसे चयकर पूर्व विदेह क्षेत्रके वत्सकावती देशमें सुसीमा नगरीके राजा सुदृष्टि रानी सुन्दरीके सुविधि नामका पुत्र हुआ। उसका विवाह अभयघोष चक्रवर्तीकी मनोरमा नामकी कन्याके साथ हुआ। कुछ दिनोंमें श्रीमतीका जीव जो स्वयंप्रभ देव हुआ था, स्वर्गसे चयकर राजा सुविधि और मनोरमाके केशव नामका पुत्र हुआ। तथा चित्रांगद विमानसे चयकर चित्रांग देव उसी देशके विभीषण नामके मांडलिक राजा और प्रियदत्ता रानीके वरदत्त नामका पुत्र हुआ। तथा शूकरका जीव, जो कि नंद विमानमें मणिकुंडल देव हुआ था, उसी देशके एक नंदिसेन मांडलिक राजाके यहाँ उसकी अनन्तमती रानीसे वरसेन नामका पुत्र हुआ। वन्दरका जीव जो कि नन्द्यावर्त्त विमानमें मनोहर देव हुआ था, उसी देशके एक रतिसेन मांडलिक राजाके घर चन्द्रमती रानीसे चित्रांगद नामका पुत्र हुआ। नकुलका जीव जो प्रभाकर विमानमें मनोरथ देव हुआ था, उसी देशके मांडलिक राजा प्रभंजनकी रानी चित्रमालासे शान्तमदन नामका पुत्र हुआ। और वरदत्त वरसेन चित्रांगद और शान्तमदन ये चारों ही राजा सुविधिके मित्र हुए।

एक दिन अभयघोष चक्रवर्ती, सुविधि, वरदत्त, वरसेन आदिक राजाओंके साथ श्रीविमलवाहन जिनेन्द्रदेवकी वंदना करनेके लिए गये। वहाँ समवसरणकी विभूति देख संसारके सुखोंसे विरक्त हो उन्होंने अपने पाँच हजार पुत्रों, अठारह हजार अन्य क्षत्रियों और दश हजार स्त्रियोंके साथ जिनदीक्षा धारण की और घोर तप कर मुक्ति प्राप्त की और सुविधि वरदत्त आदिक छहों जीवोंने विशेष अणुव्रत धारण किये। जिनमेंसे सुविधिने समाधिमरणसे शरीर छोड़ा। इसलिए वह सोलहवें अच्युत स्वर्गमें इन्द्र हुआ। केशव वरदत्त आदिकने भी दीक्षा धारण की। सो आयु पूर्ण होने-पर केशवका जीव तो अच्युत स्वर्गमें प्रतीन्द्र हुआ और शेष वरदत्तादिक चारों राजाओंके जीव उसी अच्युत स्वर्गमें सामानिक जातिके देव हुए। इस प्रकार ये छहों जीव अच्युत स्वर्गमें इकट्ठे हुए। पश्चात् अच्युतेन्द्रका जीव वहाँसे चयकर इसी द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती देशके अन्तर्गत पुंडरीकिणी नगरीमें तीर्थंकर पदवीके धारक महाराज

श्रीवज्रसेन रानी श्रीकान्ताके वज्रनाभि नामका पुत्र हुआ । और केशवका जीव जो प्रतीन्द्र हुआ था उसी पुंडरीकिणी नगरीमे राजश्रेष्ठी कुबेरकी भार्या अनन्तमतीके धनदेव पुत्र हुआ । वरदत्त वरसेन आदिक चारो जीव जो सामानिक देव हुए थे, उन्हीं महाराज वज्रसेन श्रीकान्ताके विजय वैजयन्त जयन्त और अपराजित नामके पुत्र हुए । तथा मतिवर आदिक मन्त्रियोके जीव जो ग्रैवेयकमे उत्पन्न हुए थे, श्रीवज्रसेन तीर्थंकरके बाहु, महाबाहु, पीठ और महापीठ नामके पुत्र हुए । भगवान् वज्रसेन चिरकाल तक राज्य कर अपने पुत्र वज्रनाभिको राज्य दे एक हजार राजपुत्रोके साथ तप कल्याणको प्राप्त हुए ।

एक दिन राजा वज्रनाभि अपनी सभामे विराजमान थे कि दो पुरुष साथ ही साथ कुछ संदेशा लेकर उनके समीप आये । एकने निवेदन किया:-महाराज, आपके पिता श्रीवज्रसेन तीर्थंकरको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है । दूसरेने कहा;-आपकी आयुधशालामे चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है । दोनो समाचार सुनकर वज्रनाभिने पहले केवली भगवानकी पूजा की और फिर चक्रवर्ती होनेका उत्सव मनाया । धनदेव श्रेष्ठीपुत्र जो कि केशवका जीव हुआ था, वह इस चक्रवर्तीके गृहपति रत्न हुआ । वज्रनाभिने अपने विजयादिक आठो भाइयोको अपने समान ही विभूति ऐश्वर्य आदिका स्वामी बना चिरकालतक राज्य किया और अन्तमे अपने पुत्र वज्रदन्तको राज्य दे पॉच हजार पुत्रों, विजयादिक भाइयो, धनदेव, सोलह हजार मुकुटबद्ध राजाओ और पचास हजार स्त्रियोंके साथ अपने पिता श्रीवज्रसेन केवलीके निकट दीक्षा ग्रहण की । दर्शनविशुद्धि आदिक सोलह भावनाओका चिन्तवन किया, जिससे उन्होने तीर्थंकर नामकर्मका बंध किया । पश्चात् आयु पूर्ण होनेपर श्रीप्रभाचल पर्वतपर प्रायोपगमन सन्याससे शरीर छोड़ा और उग्र तपके प्रभावसे सर्वार्थसिद्धि विमानमे अहमिन्द्रका पद पाया । विजयादिक आठो भाई और धनदेव भी उग्र तप कर सर्वार्थसिद्धि विमानमे अहमिन्द्र हुए । इस प्रकार दशो जीव एक ही विमानमे उत्पन्न हुए । और सुखसे काल व्यतीत करने लगे । जिस समय ये सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न हुए, उस समय भरतक्षेत्रमे जघन्य भोगभूमिका समय धाराप्रवाहसे चल रहा था ।

भरतक्षेत्रमें सदा एकसा समय नहीं रहता। यहाँ सदा उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालका चक्र फिरा करता है। जिनमेंसे इस समय उत्सर्पिणी काल वर्तमान है। उत्सर्पिणी अवसर्पिणी दोनोंके ही छह छह भेद हैं। अवसर्पिणी कालके आरंभमें चार कोड़ाकोड़ी सागरका सुपमसुपम काल होता है। उसके प्रारंभमे मनुष्योंका शरीर उदय होते हुए सूर्यके समान कान्तिमान् तथा छह हजार धनुष ऊँचा होता है और उनकी आयु तीन पल्यकी होती है। उस समय वहाँ पानकांग, तूर्यांग, भूषणांग, ज्योतिरंग, गृहांग, भाजनांग, दीपांग, माल्यांग, भोजनांग और वस्त्रांग ऐसे दश प्रकारके कल्पवृक्ष होते है। वहाँके जीवोंको भोगोपभोगकी सामग्री इन्हीं कल्पवृक्षोंसे मिलती है। वे जीव तीन दिन पीछे बदरीफलके समान अल्प आहार लेते है। उनके भाई बहिनका संकल्प नहीं है। प्रत्येक गर्भसे स्त्री पुरुष दो ही जीव उत्पन्न होते है और वे दंपती भावको प्राप्त होकर संसारके सुखोंका अनुभव करते है। जिस दिन वे होते है, उससे इक्कीसवे दिन ही यौवनावस्थाको प्राप्त हो जाते है। उनके किसी प्रकारकी आधि व्याधि नहीं होती। कभी ज्वरादिक रोग नहीं होते। इष्ट वियोग अनिष्ट संयोगादिकके दुःख भी नहीं होते। स्त्रियोंकी आयु जब नौ महीनेकी शेष रह जाती है, तब उनके गर्भ रहता है और एक लड़का और एक लड़की उत्पन्न कर प्रसूति होनेके पश्चात् वे तत्काल ही एक जृम्भा (जँभाई) लेती है, जिससे उनका प्राणान्त हो जाता है और मरकर नियमसे देवगतिको प्राप्त होती है। पुरुषोंको स्त्रीकी प्रसूति होनेके पश्चात् ही एक छींक आती है, जिससे वे भी उस शरीरको छोड़कर देव गतिको प्राप्त होते है।

सुपमसुपम कालके पीछे दूसरा सुपम काल आता है। जिसकी मर्यादा तीन कोड़ाकोड़ी सागरकी है। इस कालकी प्रारम्भिक दशामें मनुष्योंकी ऊँचाई चार हजार धनुषकी और आयु दो पल्यकी होती है। शरीरकान्ति और वर्ण पूर्ण चन्द्रमाके समान होता है। इस कालके प्रारम्भमें जीवोंको पैंतीस दिनमें यौवनावस्था प्राप्त होती है। वे दो दिन पीछे अर्थात् तीसरे दिन बहेड़ेके समान आहार लेते है। उनकी शेष दशा सब सुपमसुपम कालके समान होती है।

सुपम कालके अनन्तर दो कोड़ाकोड़ी सागरका सुपमदुःपम काल आता है। उस कालके आरम्भके मनुष्योंके

शरीरकी ऊँचाई दो हजार धनुष होती है। शरीरका वर्ण प्रियगुंके समान लाल होता है। उनकी एक पल्यकी आयु होती है। वे उनंचासवे दिन यौवनावस्थाको प्राप्त होते है और एक दिनका व्यवधान देकर अर्थात् तीसरे दिन आँवलेके समान आहार लेते है। उनकी शेष दशा पहले दूसरे कालके समान है।

तीसरे कालके पश्चात् ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरका चौथा काल आता है, जिसकी दुःषमसुषम संज्ञा है। इस कालके आरम्भमे मनुष्योकी ऊँचाई पाँचसौ धनुषकी और आयु एक कोटि पूर्वकी होती है। वे प्रतिदिन एक वार भोजन करते है। उनका वर्ण पाँचो प्रकारका होता है।

इस दुःषमसुषम कालके पश्चात् पाँचवाँ इक्कीस हजार वर्षका दुःषम काल आता है। उसके प्रारम्भ कालमें मनुष्योकी ऊँचाई सात हाथकी और एकसौ वीस वर्षकी आयु होती है। वे प्रतिदिन भोजन करते है, परन्तु अनियमित अर्थात् नियमरहित एक दो चार वार करते है। शरीरका वर्ण मिश्रित होता है।

पंचम कालके पश्चात् इक्कीस हजार वर्षका छट्ठा दुःषमदुःषम वा अतिदुःषम काल आता है। इसके प्रारम्भमे मनुष्य नग्न रहते है। मत्स्यादिकका मांस ही उनका भोजन होता है। वे धूमके (धुआँके) समान काले होते है। उनका शरीर दो हाथका और आयु वीस वर्षकी होती है। छट्ठे कालके अन्तमे मनुष्योका शरीर एक हाथका होता है और आयु केवल पन्द्रह वर्षकी ही होती है।

दूसरे कालके आदिमें जो वर्त्ताव और जैसी दशा होती है, वही प्रथम कालके अन्तमे जानना चाहिए अर्थात् द्वितीय सुषम कालके आदिमे जितनी आयु तथा शरीरकी ऊँचाई आदि होती है, उतनी ही प्रथम सुषमसुषम कालके अन्तमे होती है।

इस प्रकार अवसर्पिणीके छहों काल पूर्ण होनेपर फिर उत्सर्पिणी कालका प्रारम्भ होता है। इस कालमे पहले छट्ठा अतिदुःषम काल, फिर पाँचवाँ दुःषम, चौथा दुःषमसुषम, तीसरा सुषमदुःषम, दुसरा सुषम और पहला सुषमसुषम काल आता है। इनकी मर्यादा पहले कहे अनुसार ही जानना चाहिए।

इस प्रकार अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी दोनों दश कोड़ाकोड़ी सागरके होते हैं। और दोनों मिलाकर वीस कोड़ाकोड़ी सागरका एक कल्पकाल माना गया है।

अवसर्पिणीके तृतीय कालके अन्तमें जब उसकी स्थिति केवल पल्यके अष्टमांश (आठवें भाग) भाग रह जाती है, तब कुलकर उत्पन्न होते है। इस अवसर्पिणी कालके अन्तमें चौदह कुलकर हुए। उनमें सबसे पहले कुलकर प्रतिश्रुति हुए, जिनकी देवीका नाम स्वयंप्रभा था। उनका शरीर अठारहसौ धनुषका, आयु पल्यके दशवें भाग और शरीरकी कान्ति कनकवर्ण (सुवर्णके समान) थी। उनके समयमें ज्योतिरंग जातिके कल्पवृक्षोंके मन्द होनेसे, जो कि अपनी अपरिमित प्रभासे सबको प्रकाशित करते थे, सूर्य चन्द्रमा दिखाई पड़ने लगे। जैसे सूर्यकी प्रभामें तारे नहीं देख पड़ते है, उसी प्रकार पहले ज्योतिरंगकी प्रभाके सामने ये कभी दिखाई नहीं पड़ते थे। जब अकस्मात् सूर्य चन्द्रमाको देखकर लोगोंको भय हुआ, तब उन्हें प्रतिश्रुतिने समझाया और कहा कि कालकी हीनता होनेसे ऐसा हुआ है, इससे तुम्हें डरना नहीं चाहिए। पहले किसीको किसी प्रकारका दंड नहीं दिया जाता था, परन्तु प्रतिश्रुतिने "हा!" ऐसे दंडका प्रचार किया था।

प्रतिश्रुति कुलकरके पश्चात् जब पल्यका अस्सीवाँ भाग बीत चुका, तब दूसरे कुलकर सन्मति हुए। उनकी पत्नीका नाम यशस्वती था। उनके शरीरकी ऊँचाई तेरहसौ धनुष, आयु पल्यके सौवें भाग और शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान थी। उनके समयमें तारे, ग्रह, नक्षत्र आदि दिखाई पड़नेसे लोगोंको जो भय हुआ था, उसे उन्होंने समझाकर निवारण किया था।

पश्चात् जब पल्यका आठसौवाँ भाग वीत गया, तब क्षेमङ्कर नामके तृतीय कुलकर हुए। उनकी पत्नीका नाम सुनन्दा, ऊँचाई आठसौ धनुष, आयु पल्यके हजारवें भाग और शरीरका वर्ण सुवर्णके समान था। उनके समयमें लोगोंको सिंह सर्पादिक भयानक मालूम पड़ने लगे, सो उन्होंने उनका भय निवारण किया और समझा दिया कि कालकी हीनतासे ये जीव अब भक्षक हो जावेंगे इनसे अलग रहना अच्छा है।

क्षेमंकरके पश्चात् जब पल्यका आठ हजारवाँ भाग बीत गया, तब क्षेमंधर नामके चौथे कुलकर हुए । इनकी स्त्रीका नाम विमला था । इनका शरीर सातसौ पचहत्तर धनुष, आयु पल्यके दश हजारवें भाग और शरीर सुवर्णके समान था । उनके समयमें रात्रिमें अंधकार होनेसे लोग डरे थे । सो उस डरको इन्होंने दीपक जलानेकी शिक्षासे दूर कर दिया था ।

क्षेमंधरके पीछे पल्यका अस्सी हजारवाँ भाग बीतनेपर सीमंकर पांचवें कुलकर हुए । उनकी स्त्रीका नाम मनोहरी था । उनका शरीर साडेसातसौ धनुष, आयु पल्यके लाखवें भाग और शरीर सुवर्णके समान था । उनके समयमें कल्पवृक्षोंके अपनानेमें झगडा हुआ था अर्थात् जब कल्पवृक्षोंसे थोड़ी वस्तु मिलने लगी थी, तब यह वृक्ष मेरा है, ऐसा झगड़ा होने लगा था । उसे सीमंकरने सबकी मर्यादा (सीमा) बाँधकर मिटाया । इन पाँचों ही कुलकरोंने " हा ! " इस दंडनीतिसे ही शासन किया ।

इनके पीछे जब पल्यका आठ लाखवाँ भाग बीत गया, तब छट्ठे कुलकर सीमंधर हुए । उनकी पत्नीका नाम यशोधरिणी था । उनका शरीर सातसौ पच्चीस धनुष, आयु पल्यके दश लाखवें । भाग और शरीर सुवर्णके समान था उन्होंने अपनी अपनी नियमित सीमामें शासन करना सिखलाया और " हा ! " और " मा ! " अर्थात् " मत कर " इन दोनो नीतियोंसे शासन किया ।

इनके पश्चात् जब पल्यका अस्सी लाखवाँ भाग और बीत गया, तब विमलवाहन सातवें कुलकर हुए । इनकी पत्नीका नाम सुमति, शरीरकी ऊँचाई सातसौ धनुष, आयु पल्यके एक करोड़वें भाग और शरीरका रंग सुवर्णके समान था । इन्होंने घोड़े रथ हाथी आदि सवारियोंपर चढ़ना सिखलाया ।

इनके पश्चात् जब पल्यका आठ करोड़वाँ भाग और बीत चुका, तब चक्षुष्मान् आठवें कुलकर हुए । इनकी पत्नीका नाम धारिणी, शरीरकी ऊँचाई छःसौ पिचहत्तर धनुप, आयु पल्यके दश करोड़वे भाग और शरीरका वर्ण

प्रियंगुके समान था। इनके समयमे लोग अपने अपने पुत्रोका मुख देखने लगे और उनसे डरने लगे। चक्षुष्मानने सबका भय दूर कर उनको समझा दिया कि ये तुम्हारे पुत्र है। तुम इनका पालन पोषण करो।

इनके पश्चात् जब पल्यका अस्सी करोड़वॉ भाग बीत चुका, तब नौवें कुलकर यशस्वी हुए। इनकी पत्नीका नाम कान्तमाला था। इनका शरीर लाल वर्णका साढ़े छःसौ धनुष ऊँचा था, तथा आयु एक पल्यके सौ करोड़वे भाग थी। इन्होने पुत्र पुत्रियोके नामकरणकी विधि बतलाई।

इनके पश्चात् जब पल्यका आठसौ करोड़वॉ भाग बीत चुका, तब अभिचन्द्र नामके दशवें कुलकर उत्पन्न हुए। इनकी स्त्रीका नाम श्रीमती, शरीरका परिमाण छहसौ पचीस धनुष, तथा वर्ण सुवर्णमय था। इनकी आयु पल्यके सहस्रकोटिवें भाग थी। इन्होने चन्द्रमाको दिखलाकर बच्चोको क्रीड़ा करना सिखलाया। इन चारो कुलकरोने "हा!" "मा!" रूप लज्जाके शब्द कहकर दंडनीति प्रचलित रक्खी।

इनके पश्चात् जब पल्यका आठ हजारकरोड़ अर्थात् अस्सी अरबवॉ भाग बीत चुका, तब ग्यारहवे कुलकर चन्द्राभ हुए, जो कि चंद्रमाके समान (शुभ्र) थे। इनकी पत्नीका नाम प्रभावती, शरीरका परिमाण छहसौ धनुष, और आयु एक पल्यके दशसहस्रकोटि अर्थात् एक खरबवें भाग थी। इन्होने पिता पुत्रके व्यवहारका प्रचार किया अर्थात् लोगोको सिखलाया कि यह तुम्हारा पुत्र है, तुम इसके पिता हो। और इन्होंने "हा!" "मा!" और "धिक्!" इन तीन नीतियोसे दोषी लोगोको दण्ड देनेकी प्रथासे शासन किया।

इनके पश्चात् जब पल्यका अस्सीसहस्रकोटि अर्थात् आठ खरबवॉ भाग बीत चुका, तब मरुदेव नामके बारहवे कुलकर हुए। इनकी पत्नीका नाम अनुपमा, शरीरकी ऊँचाई पॉचसौ पिचहत्तर धनुष और वर्ण सुवर्णके सदृश था। इनकी आयु एक पल्यके एक लक्षकोटि अर्थात् दश खरबवें भाग थी। इन्होंने लोगोको तालाब नदी समुद्र उपसमुद्रोंमे जो कि तृतीय कुलकरके सामने ही देख पड़े थे, नाव जहाज आदि डालकर पार जाना तैरना आदि सिखलाया। और प्रजाको उन्हीं "हा, मा, और धिक्" इन तीन नीतियोंसे दण्ड दिया।

इनके पीछे जब पल्यका आठ लक्षकोटि अर्थात् अस्सी खरबवाँ भाग बीत चुका, तब तेरहवें प्रसेनजित कुलकर हुए। इनका समस्त शरीर प्रस्वेदजलसे (पसीनेसे) भीगा हुआ था। शरीरकी ऊँचाई साढ़े पाँचसौ धनुष और आयु एक पल्यके दश लक्षकोटिवें भाग अर्थात् एक नीलवें भाग थी। शरीरका वर्ण लाल था। प्रसेनजितके पिता अमितमतिने प्रसेनाजितका विवाह किसीकी कन्याके साथ शास्त्रविहित विधिसे किया था। तदुक्तम्;—

प्रसेनाजितमायोज्य प्रस्वेदलवभूषितम्। विवाहविधिना धीरः प्रधानविधिकन्यया ॥

अर्थात् धीरजवान् अमितमतिने पसीनेसे शोभायमान प्रसेनाजितका विवाह प्रधानविधिकी कन्याके साथ विधिपूर्वक किया। इसका कारण यह था कि तब तक तो पतिपत्नी दोनो साथ साथ (एक ही गर्भसे बहिन भाईके समान) उत्पन्न होते थे, परन्तु यह प्रसेनाजित् अपनी माताके गर्भसे अकेला ही उत्पन्न हुआ था। इसके आगे जुगल उत्पत्तिका अभाव है। तदुक्तम्;—

एकमेवासृजत्पुत्र प्रसेनाजितमत्र सः। युग्मसृष्टेरिहवोर्ध्वमितोऽभ्युपनिनीषया ॥

अर्थात—प्रसेनजितके पिता अमितमतिने प्रसेनजितको अकेला ही उत्पन्न किया। मानो उनकी यही मनोकामना थी कि इस अवसर्पिणी कालमें अब आगे युगलसृष्टिका अर्थात जुगलधर्मका क्रम न हो। प्रसेनजितने स्नानादिक कर्म-का उपदेश दिया तथा उन्हीं हा! मा! धिक्! नीतियोंसे दण्ड दिया।

इनके पीछे जब पल्यका अस्सी लाख करोड़ अर्थात् आठ नीलवाँ भाग बीत चुका, तब नाभि राजा चौदहवें कुलकर उत्पन्न हुए। उनकी पत्नीका नाम मरुदेवी था। इनका शरीर पाँचसौ पच्चीस धनुष ऊँचा था। और आयु एक कोटिपूर्वकी[1] थी। इनके शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान थी। इन्होंने भी "हा! मा! धिक्!" इन तीन

(१) पूर्वांगवर्षलक्षाणामशीतिश्चतुरुत्तरा। तद्वर्गित भवेत्पूर्वं तत्कोटी पूर्वकोट्यसौ ॥ १ ॥

भावार्थ—चौरासी लाख वर्षका एक पूर्वांग होता है। और पूर्वांगका वर्ग अर्थात् ७०५६०००००००००० वर्षका एक पूर्व होता है। ऐसे एक करोड़ पूर्वकी आयु थी।

नीतियोंसे ही प्रजाको दण्ड दिया। इनके समयमे कल्पवृक्ष सब लोप हो चुके थे। केवल राजा नाभिके घरमे ही शेष रहे थे। गाँव नगरादिकके बांउर गेहूँ जौ उड़द मूँग मसूर चने आदिके बहुतसे वृक्ष स्वयं उत्पन्न हुए, जिनको काटने पीसने खाने आदिकी क्रिया नाभि राजाने बतलाई। इन्हीके समयमे बच्चोंके नाभिनाल [नाल] आने लगा, जिसके काटनेका उपाय राजा नाभिने बतलाया, इसीलिए उनका नाभि ऐसा नाम प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार ये चौदह कुलकर हुए।

इधर वज्रनाभिका जीव सर्वार्थसिद्धिमे अहमिन्द्रके सुख भोग रहा था। जब उसकी आयु छः महीनेकी रह गई, तब कल्पवासियोंके विमानोंमें घंटानाद, ज्योतिषी देवोंके विमानोंमें सिहनाद, भवनवासी देवोंके भवनोमे शंखनाद और व्यन्तरोंके निवास स्थानोमे भेरीका शब्द स्वयं होने लगा। तथा समस्त देवोंके सिंहासन कंपायमान हुए और मुकुट नम्रीभूत हो गये। सब देव जब इसका कारण चर्म चक्षुओंसे भी जाननेको असमर्थ हुए, तब उन्होंने अवधिज्ञानरूपी तृतीय नेत्र प्रकाश किया। जिससे उन्होंने जान लिया कि भरतक्षेत्रमे राजा नाभिके घर मरुदेवीके गर्भमे श्रीआदिनाथ तीर्थंकर अवतार लेगे। तब चारों प्रकारके देवोंने आकर उत्सव किया। और इन्द्रने राजा नाभि और मरुदेवीके रहनेके लिए विनीत खंडके मध्यप्रदेशमे एक सुन्दर नगरकी रचना की, जिसका नाम अयोध्या रक्खा। यह नगर नाना प्रकारके रत्नोंसहित अनेक प्रकारके बाग बगीचोंसे सुशोभित हुआ। नगरमे नाभिको राजगद्दीपर बैठाया। इनकी यथोचित सेवा करनेके लिए देव देवियोंको नियुक्त किया। कुबेरको आज्ञा दी गई कि वह राजा नाभिके घर प्रातःकाल, मध्यान्हकाल और सायंकाल तीनों समय पञ्चाश्चर्य करै। रत्नोंकी वर्षा, पुष्पोंकी वर्षा, गन्धोदककी वर्षा, दुंदुभि बजना और जय जय शब्द होना, इन्हे पंचाश्चर्य कहते हैं। तथा पद्म महापद्म तिगिछ केसर पुंडरीक सरोवरके कमलोंमें रहनेवाली श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी इन छः देवियोंको तीर्थंकरकी माताका शृंगार करनेके लिए नियुक्त किया। इसी प्रकार रुचिकगिरि पर्वतपर निवास करनेवाली विजया, वैजयंता, अपराजिता नन्दा, और नन्दिवर्द्धिनी देवियोंको मंगलस्वरूप आठ पूर्णकुम्भोंको लेकर प्रतिसमय खड़ी रहनेके लिए, उसी रुचिकपर्वतपर

रहनेवाली सुप्रतिष्ठा, सुप्रणिधा, सुप्रबोधा, यशोधरा, लक्ष्मीमती, कीर्तिमती, वसुंधरा और चित्रा देवियोको दर्पण धारण करनेके लिए, इला, सुरा, पृथ्वी, पद्मावती, कांचना, नवमी, सीता और भद्रा देवियोको जानेके लिए, लबूपा, मित्रकेशी, पुण्डरीका, वारुणी, दर्पणा, श्री, ह्री और धृति देवियोको चामर धारण करनेके लिए, चित्रा, कांचनचित्रा शिरःसूत्रा और माणी देवियोको दीपक जलानेके लिए, रुचका, रुचकाशा, रुचकान्ति, और रुचकप्रभा इन चार देवियोंको तीर्थकरका जन्मोत्सव करनेके लिए रसोई करनेके लिए तांबूल देनेके लिए और शय्या आसनके लिए, और अपर पर्वतपर रहनेवाली सुमाला, मालिनी, सुवर्णदेवी, सुवर्णचित्रा, पुष्पचूला, चुलावती, सुरात्रि, शिरसा, इत्यादिक देवियोंको अन्यान्य यथोचित कार्योंके लिए नियत किया। इस तरह मरुदेवी सुखपूर्वक रहने लगी। जब छः महीने वीत चुके, तब वह पुष्पवती हुई। अनेक देवाङ्गनाओने आकर अनेक तीर्थोंके जलसे उनका चतुर्थ स्नान कराया। उसी रात्रिको मरुदेवी अपने पतिके साथ शयन कर रही थी कि पिछली रात्रिको उसने हाथी वैल आदिके सोलह स्वप्न देखे। प्रातःकाल ही उठकर मुखप्रक्षालन दर्शनादिक नित्यक्रियाके अनन्तर अपने पतिके पास जाकर उसने अपने देखे हुए सोलह *स्वप्न कहे। तब राजा नाभिने निमित्तज्ञानसे सोलह स्वप्नोका फल कहा, जिसको सुनकर मरुदेवी अतिप्रसन्न और सन्तुष्ट हुई। आषाढ़ कृष्णा द्वितीयाको सर्वार्थसिद्धिका अहमिन्द्र वहाँसे चयकर श्रीमरुदेवांके गर्भमें अवतीर्ण हुआ अर्थात् आषाढ़ वदी द्वितीयाको श्रीआदिनाथका गर्भकल्याणक हुआ। उस दिन इन्द्रकी आज्ञासे समस्त देवोने तथा स्वयं इन्द्रने आकर गर्भकल्याणकका उत्सव बड़ी धूमधामसे किया।

इसके पीछे देवाङ्गनाये अनेक प्रकारसे सेवा करने लगी, जिससे मरुदेवीके दिन बड़े सुखसे कटने लगे। जब नौ महीने वीत गये, तब उन्होने चैत्रकृष्ण नवमीको तीन लोकके गुरु श्रीआदिदेवको उत्पन्न किया। तीर्थकरके जन्म

*१ श्वेत हाथी, २ श्वेत वैल, ३ सिंह, ४ लक्ष्मी, ५ मालायुग्म (दो माला), ६ चन्द्र, ७ सूर्य, ८ मीनयुग्म (दो मछली), ९ कुम्भयुग्म (दो घड़े), १० निर्मल सरोवर, ११ समुद्र, १२ सिंहासन, १३ विमान, १४ हर्म्य, १५ रत्नराशि और १६ अग्नि ये सोलह स्वप्न देखे। इनका फल यही है कि देवाधिदेव त्रिलोकपूज्य श्रीतीर्थंकर देव उत्पन्न होंगे।

होते ही भवनवासी देवोंके घर शंखका, व्यन्तरोंके विलास स्थानमें भेरीका, ज्योतिषियोंके यहाँ सिंहनादका और कल्पवासियोंके घंटाका शब्द होने लगा। सब देवों तथा इन्द्रोंके मुकुट नम्रीभूत होकर सबके आसन कंपायमान हुए। तब इन्द्रने अवधिज्ञानसे श्रीआदिदेवका जन्म हुआ जान इन्द्रकी आज्ञासे समस्त देव अपने अपने वाहनोंपर सवार होकर अयोध्या नगरीमें आये। सौधर्म इन्द्रने अपनी इन्द्राणीको तीर्थंकरदेवको लानेके लिए प्रसूतिघरमें भेजा। वह अपनी मायासे मरुदेवीको कुछ मूर्छित कर एक वैसा ही मायामयी बालक उस जगह रखकर श्रीजिनेन्द्रदेवको बाहर ले आई और उन्हे हाथ जोड़ नमस्कार करते हुए, तथा देखनेके लिए जिसने हजार नेत्र कर लिये है ऐसे इन्द्रको सौंप दिये। सो उसने उन्हें गोदमें लेकर आपको धन्य माना। पश्चात् इन्द्र ऐरावत हाथीपर सवार होकर अपनी समस्त विभूतिके साथ श्रीजिनदेवको सुमेरु पर्वतपर ले गया। और वहाँके पाण्डुक वनकी ईशान दिशामें जो शुभ्र अर्द्धचन्द्राकार पाण्डुक शिला सुशोभित है, उसपर रत्नजड़ित सिंहासनपर विराजमान करके बारह योजन ऊँचे, आठ योजन चौड़े, एक योजन मुखवाले कई करोड़ घड़ोंसे पाँचवे क्षीरसागरका जल लाकर सौधर्म और ईशान इन्द्रने अभिषेक कराया। यह श्रीजिनेन्द्रके अनन्त बलका माहात्म्य था, जो तत्काल उत्पन्न होनेपर भी वे इतना जल पड़नेसे किञ्चित् भी व्याकुल नहीं हुए। स्नान कराकर इंद्राणीने श्रीजिनेन्द्रको समस्त आभूषणोंसे अलंकृत किया। और फिर वहाँसे उसी विभूतिके साथ उन्हे ऐरावत हाथीपर विराजमान कर इन्द्र अयोध्या आये। वहाँ पिताके रत्नमय आँगनमें सुवर्णमय सिंहासनपर श्रीजिनेन्द्रदेवको विराजमान कर इन्द्रने स्वयं नृत्य करना प्रारम्भ किया। उस अनुपम सभाका वर्णन कौन कर सकता है कि जहाँ श्रीजिनेन्द्रदेव तो दर्शक थे और इन्द्र स्वयं नर्तक था इस तरह इन्द्रने भगवानको रिझाया और उनका नाम वृषभ (वृषभदेव वा वृषभनाथ) इसलिए रक्खा कि वृष धर्मको कहते है और धर्म इन्हींसे शोभायमान होगा। पश्चात् इन्द्र जिनेन्द्रदेवको उनके पिताको सौंप समस्त देवोंके सहित अपनी जगहको प्रस्थान कर गया।

श्रीऋषभदेवके बाल्यावस्थामें ही निम्नलिखित दश अतिशय विद्यमान थे। १ निःस्वेदत्व अर्थात् शरीरमें पसीना नहीं आना, २ निर्मलत्व अर्थात् शरीर अत्यन्त निर्मल होना, ३ शुभ्र रुधिरत्व अर्थात् रुधिरका वर्ण शुभ्र दुग्धके समान होना,

४ वज्रवृषभनाराच संहनन, ५ समचतुरस्र संस्थान, ६ सुरूपवान, ७ सुगन्धमय शरीर, ८ लक्षणयुक्त शरीर ९ अनन्त वल और १० प्रियहितवादित्व अर्थात् प्रिय और हितकारी वाणी। ये दश अतिशय सहज स्वाभाविक थे। तथा मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान ये तीनों ज्ञान उनके परिपूर्ण विद्यमान थे। इस प्रकार श्रीजिनेन्द्रदेव दिनोंदिन वढ़ते हुए सुखसे समय व्यतीत करने लगे।

इधर कल्पवृक्षोंके लोप होनेसे सव प्रजा दुःखित होने लगी। क्षुधासे पीड़ित होकर दुर्वल हुई। यद्यपि नगरके वाहर अनेक जातिके ईख गेहूँ जौ मटर आदिके वृक्ष खड़े थे, जो स्वयं उत्पन्न हुए थे। परन्तु उनको काममे लाना कोई भी नहीं जानता था। तव महाराज नाभि एक दिन अपनी वहुतसी प्रजाको साथ लेकर महाराजा वृषभदेवके यहाँ आये और उनको नमस्कार कर बोले;–महाराज, कोई ऐसा उपाय वतलाइए जिससे समस्त प्रजाको खानेके लिए अन्नादि मिले और उनकी क्षुधा शान्त हो। इसके उत्तरमे महाराज वृषभदेवने वतलाया कि जो गन्ने (ईख–पुंढेक्षु) स्वयं उत्पन्न हुए है, उनको यन्त्र अर्थात् कोल्हूमे पेलकर उसके रसको पिओ जिससे भूख दूर हो जायगी। तव श्रीवृषभदेवकी आज्ञानुसार सव प्रजा वैसा ही करके संतुष्ट हुई।

इस प्रकार जव प्रजा सव तरहसे सुखी हो गई, तव एक दिन उसने फिर महाराज वृषभदेवके समीप आकर निवेदन किया:–महाराज, क्या आपके पीछे परम्परासे चलनेवाला आपका वंश इक्ष्वाकु कहा जावे? इसके उत्तरमे महाराज वृषभदेवने भी तथास्तु कहा। तवसे वह वंश इक्ष्वाकु कहलाया।

श्रीवृषभदेवके शरीरका वर्ण तप्त सुवर्णके समान था। उनकी ध्वजामे वृषभ अर्थात् वैलका चिन्ह था। शरीरकी ऊँचाई पाँचसौ धनुष और आयु चौरासी लाख पूर्व्वकी थी। धीरे धीरे भगवानको यौवनावस्था प्राप्त हुई, जिसे देख इन्द्रने आकर उनसे निवेदन किया;–महाराज, आप अपना विवाह करना स्वीकार कीजिए? श्रीवृषभदेवके भी चारित्रमोहनीय कर्मका उदय था, इसलिए अपना विवाह करना स्वीकार कर लिया। तव महाराज कच्छ और

महाकच्छकी पुत्री यशस्वती और सुनन्दाके साथ उनका विवाह कर दिया गया। और उक्त दोनों स्त्रियोंके साथ वे सुखपूर्वक रहने लगे।

थोड़े दिनके पश्चात् रानी यशस्वतीसे भरत पुत्र हुए। राजा अतिगृद्धके जीवने नरकसे निकलकर सिंहकी पर्याय पाई। (यह वही सिंह था, जिसने पर्वतमें रक्खे हुए धनकी रक्षा की थी और फिर उसे राजा प्रीतिवर्द्धनको बतला दिया था)। सिंह सन्यासपूर्वक शरीर छोड़कर ईशान स्वर्गमें दिवाकरप्रभ देव हुआ। वहाँसे चयकर मतिवर मंत्री हुआ। फिर अधोग्रैवेयकका अहमिन्द्र होकर वज्रनाभिका छोटा भाई बाहु हुआ। वह बाहु उग्र तप करके सर्वार्थसिद्धि गया और फिर वहाँसे चयकर भरत हुआ। राजा प्रीतिवर्द्धनका मंत्री दानकी अनुमोदनासे उत्तम भोगभूमिमे आर्य हुआ। वहाँसे मरकर क्रमसे कनकप्रभ देव, आनन्द पुरोहित, अधोग्रैवेयकका अहमिन्द्र और वज्रनाभिका छोटा भाई पीठ हुआ। यह पीठ घोर तप करके सर्वार्थसिद्धि विमानमें होकर फिर भरतका छोटा भाई वृषभसेन हुआ। पुरोहितका जीव भोगभूमिके आर्य, प्रभंजन देव, धनमित्र, अधोग्रैवेयकके अहमिन्द्र, महापीठ और सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्रकी पर्यायें प्राप्तकर अन्तमें वृषभसेनका छोटा भाई अनन्तवीर्य हुआ। व्याघ्रके जीवने भोगभूमिमे आर्य चित्रांग देव, वरदत्त, अच्युत स्वर्गमें देव, विजय और सर्वार्थसिद्धिमे अहमिन्द्र इस प्रकार पाँच पर्यायें पाईं। अन्तमें सर्वार्थसिद्धिसे चयकर वह भरतका छोटा भाई अनन्त हुआ। वराहका जीव उत्तम भोगभूमिमे आर्य होकर क्रमसे मणिकुंडल देव, राजपुत्र वरसेन (सुविधिका मित्र), अच्युत स्वर्गमें देव, वैजयन्त और सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ। अन्तमे सर्वार्थसिद्धिसे चयकर भरतका छोटा भाई अच्युत हुआ। वन्दरका जीव उत्तम भोगभूमिमे आर्य होकर क्रमसे मनोहर देव, चित्रांगद, अच्युत स्वर्गमें देव, जयन्त, और सर्वार्थसिद्धिमे अहमिन्द्र हुआ। फिर वहाँसे च्युत होकर भरतका छोटा भाई वीर हुआ। नकुल दान देनेकी अनुमोदनासे उत्तम भोगभूमिमे आर्य होकर मनोरथ, शान्तमदन, अच्युत स्वर्गमें देव, अपराजित और सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ। वहाँसे चयकर भरतका छोटा भाई वीरके पीछे सुवीर हुआ। इस प्रकार वृषभदेवके यशस्वती रानीसे भरत और उनके छोटे भाई वृषभसेन आदि निन्यानवे पुत्र

हुए । और वह पंडिता मनुष्यलोक और स्वर्गलोक दोनोंके अनेक सुख भोगकर भरतकी बहिन ब्राह्मी हुई । राजा प्रीतिवर्द्धनका सेनापति दानकी अनुमोदनासे उत्तम भोगभूमिका आर्य होकर प्रभाकर देव, महाराज वज्रजंघका अकंपन सेनापति, अधोग्रैवेयकका अहमिन्द्र, वज्रजंघ, नाभिका छोटा भाई सुबाहु और सर्वार्थसिद्धिका अहमिन्द्र हुआ । वहाँसे चयकर श्रीवृषभनाथकी नन्दा रानीसे सबसे पहले कामदेव बाहुबली हुए । तथा वज्रजंघकी बहिन जो कि पुंडरीककी मा थी, मनुष्य भव और स्वर्गलोकके नाना प्रकारके सुखोंका अनुभव करती हुई बाहुबलीकी छोटी बहिन सुन्दरी हुई । इस प्रकार श्रीवृषभदेवके एकसौ एक पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं ।

एक दिन श्रीवृषभदेवने अपनी दोनों पुत्रियोंको अपने दोनों ओर बिठाया । और जो दक्षिण (दायें) हाथकी ओर बैठी थी, उसको दक्षिण (दाये) हाथसे अकरादि वर्ण अर्थात् " अ आ इ ई उ ऊ " इत्यादि स्वर तथा " क ख ग घ ङ " इत्यादि व्यञ्जन सिखलाये, और दूसरी पुत्रीको जो कि वाम पार्श्वकी ओर (बायीं ओर) बैठी थी, उसको बाये हाथसे " इकाई दहाई सैकड़ा हजार " इत्यादि अङ्कविद्या सिखलाई । इसी प्रकार उन्होंने भरत आदिक समस्त पुत्रोंको भी पढ़ा लिखाकर समस्त कलाओंमे निपुण कर दिया ।

इस प्रकार थोड़े दिन बीत चुकनेपर एक दिन राजा नाभि फिर अपनी प्रजाको लेकर महाराज ऋषभदेवके पास आए और बोले;—महाराज, अब ईखके रस पीनेसे क्षुधा शान्त नहीं होती, इसलिए कोई अन्य उपाय बतलाइए । तब श्रीवृषभदेवने अठारह कोड़ाकोड़ी सागरसे जो कर्मभूमि नष्ट हुई थी, उसकी रचना फिरसे बतलाई । ग्राम नगरकी रचना करना, घर बनाना आदिक बतलाया । क्षत्रिय वैश्य शूद्र वर्ण स्थापन किये और उनको खेती करना वाणिज्य करना, सेवा वृत्ति करना, इत्यादि जीवनके उपाय बतलाए । इस प्रकार भगवानने कर्मभूमिकी रचनाका प्रारम्भ किया, इसलिए उन्हे युगका कर्ता अथवा सृष्टिका कर्ता कहते है । जब समस्त कर्मभूमिकी सृष्टिका निर्माण करते हुए श्रीऋषभदेवके बीस लाख पूर्व जो कि कुमारावस्थाके थे, वे पूर्ण हो गये, तब इन्द्रने आकर आषाढ़ वदी पड़िवाको उन्हें राज्यपट्ट बाँधा । पश्चात् श्रीऋषभदेवने श्रेयांसके बड़े भाई सोमप्रभ क्षत्रियको राज्याभिषेकपूर्वक राज्यपट्ट बाँधकर

हस्तिनागपुरका राज्य दिया और प्रगट किया कि तुम्हारा वंश कुरुवंश कहलावेगा। अबसे जो तुम्हारे वंशमें उत्पन्न होंगे, वे सब कुरुवंशी कहलावेंगे। तथा अकंपनको राज्यपट्ट बाँधकर उसे वाराणसीका (बनारस या काशीका) राज्य दिया और प्रगट किया कि तुम्हारे वंशका नाम अग्रवंश होगा। इत्यादि अनेक राज्यवंश स्थापन करके भगवानने "हा! मा! धिक्!" इन तीन नीतियोंसे प्रजाका शासन करते हुए त्रेसठ लाख पूर्व राज्य किया। पश्चात् जब केवल एक लाख पूर्वकी आयु शेष रह गई, तब उन्हें वैराग्य उत्पन्न करानेके लिए इन्द्रने श्रीऋषभदेवकी सभामें एक ऐसी नीलांजना नामकी अप्सराका नृत्य कराना प्रारम्भ किया कि जिसकी आयु केवल अन्तर्मुहूर्तकी बाकी थी। वह नीलांजना नर्तिनी श्रीऋषभदेवके सामने अनेक तरहके हाव भावसहित नृत्य करने लगी। परन्तु अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् ही आयु पूर्ण हो जानेसे वह उसी रंगभूमिमें विलयमान हो गई। इन्द्रने झट उसी समय एक दूसरी वैसी ही नीलांजना बना दी। उसके बनानेमें इन्द्रने इतनी शीघ्रता की कि न तो उस नीलांजनाका लोप होना किसीको ज्ञात हुआ और न तान ही बिगड़ने पाई। परन्तु भगवानको यह बात मालूम हो गई। ऐसी दिव्य सभामें ही उसका विलय और मरण होता देखकर उन्हें परम वैराग्य उत्पन्न हुआ। वे तत्काल ही बारह भावनाओंका चिंतवन करने लगे। उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर जय जय कहते हुए उनकी स्तुति की, और कहा;-महाराज, आपने यह विचार बहुत अच्छा किया। लोकका कल्याण इसीसे होगा। ऐसा कहकर वे अपने स्थानपर चले गये। पश्चात् भरतको आयोध्या, बाहुबलीको पोदनपुर, वृषभसेनको पुरिमतालपुर, और शेष कुमारोंको काश्मीरका राज्य देकर श्रीऋषभदेव मांगलिक (कल्याण करनेवाला) स्नान करके तथा मांगलिक आभूषण अलंकारोंसे सज्जित होकर देवोंकी बनाई हुई सुदर्शन पालकीपर सवार हुए। उस पालकीको सात पैड़तक भूमिगोचरियोंने उठाई, सात पैंड़ विद्याधरोंने उठाई और प्रयाग नामके वनमें इन्द्रने ले जाकर रक्खी। वहाँ श्रीऋषभदेवने पालकीसे उतरकर एक बड़े मण्डपमें प्रवेश किया, जो कि कुवेरने पहलेसे ही बना रक्खा था। उसमें पूर्व दिशाके सम्मुख खड़े होकर उन्होंने कच्छ आदिक चार हजार क्षत्रियोंके साथ दीक्षा ग्रहण की। प्रथम ही श्रीऋषभदेवने उन समस्त क्षत्रियोंके साथ "नमः सिद्धेभ्यः" कहकर पंचमुष्टी लोच किया और छः

महीनेका उपवास ग्रहण किया । इस प्रकार वे चैत्रकृष्ण नवमीके दिन निर्ग्रन्थ अर्थात परिग्रहरहित दिगम्बर मुनि हुए । और छः महीनेका प्रतिमायोग धारण कर विराजमान हुए । उनके तपःकल्याणक होनेसे प्रयाग तीर्थ कहलाया । समस्त देवोंने तथा इन्द्रोंने भगवानके निःक्रमण कल्याणकी पूजा की । और उनके केशोंका क्षीरसमुद्रमें प्रवाह किया । इसके पश्चात् सब देव अपने अपने स्थानको चले गये ।

भगवान् छः महीनेतक प्रतिमायोगसे ही विराजमान रहे । कच्छ महाकच्छादिक और समस्त क्षत्रिय दो महीनेतक तो उनके साथ उपवासित रहे । परन्तु आगे वे क्षुधा तृषाका दुःख न सह सके और इसलिए फलादिक खाने और जलादिक पीनेके लिए उद्यमी हुए । यदि उस समय श्रीऋषभदेव प्रतिमायोगमें विराजमान न हुए होते तो वे सबको आहार लेनेकी विधि बतलाते । परन्तु वे मौन धारण किये हुए थे, इसलिए उसे विधिको नहीं बतला सके, और कच्छादिकको स्वयं यह विधि मालूम नहीं थी । इसलिए वे सब भ्रष्ट होने लगे । वनदेवताने उनको दिगम्बर वेशसे च्युत होते हुए रोका तो भी अनेकोंने भौतिक आदिक नाना प्रकारके सन्यासियोंके वेश धारण कर लिये ।

कुछ दिन पीछे कच्छ और महाकच्छके पुत्र नमि और विनमि आये और श्रीऋषभदेवके चरणकमलोंपर पड़कर कहने लगे;-नाथ, हमारे लिए भी कोई देश दीजिए । परन्तु महाराज तो मौन धारण किये हुए विराजमान थे, उनके लिए यह एक उपसर्ग ही हुआ, इसलिए उसे दूर करनेके लिए धरणेन्द्रने आकर उन दोनों राजकुमारोंसे कहा;-महाराजने आपके लिए विजयार्द्धका राज्य दिया है, आप मेरे साथ आइए, मैं आपको वहाँ ले जाकर आपका राज्य देता हूँ । ऐसा कहकर धरणेन्द्र उन्हें विजयार्द्ध पर्वतपर ले गया और उनको वहाँके राजा बना दिये ।

क्रमशः काल व्यतीत होनेपर जब श्रीऋषभदेवके छः महीने पूरे हो गये, तब उन्होंने आहार लेनेके लिए नगरमें प्रवेश किया । परन्तु तबतक आहार देनेकी विधि किसीको भी मालूम नहीं थी, इसलिए श्रीऋषभदेव जिस जिस नगरमें प्रवेश करते थे, उस नगरके राजा व स्वामी कन्या रत्नादिक भेट करने लगे, किसीने भी विधिपूर्वक आहार नहीं दिया । उस समय भरत महाराज भी उनके समीप आये और चरणकमलोंमें पड़कर निवेदन किया;-महाराज,

इस प्रकार आप प्रत्येक नगरमें क्यों फिरते हैं ? अपने नगरमें आकर पहिलेके समान राज्य कीजिए। परन्तु महाराज तो मौनावलम्बी थे, इसलिए कुछ उत्तर नहीं दिया। इससे भरतका चित्त बहुत खेदखिन्न हुआ और अन्तमें वे अपने नगरको लौट गये।

श्रीऋषभदेवने आहार लेनेके लिए छः महीने तक परिभ्रमण किया, परन्तु कहीं भी आहार न मिल सका। अन्तमें वे भ्रमण करते हुए वैशाख शुक्ला द्वितीयाके दिन दोपहर पीछे हस्तिनागपुरके बाहरके उद्यानमें पहुँचे और वहाँ प्रतिमायोगसे विराजमान हुए। वहाँके राजा सोमप्रभके भाई श्रेयांसने उसी रात्रिके पिछले पहर अपने घरमें कल्पवृक्षका प्रवेश आदि अनेक शुभ स्वप्न देखे। प्रातःकाल ही उसने अपने भाई सोमप्रभसे अपने स्वप्न देखनेके समाचार कहे। तब सोमप्रभने उन स्वप्नोंका फल कहा कि कोई महात्मा तेरे घर आवेंगे। इसके पश्चात् वैशाख शुक्ला तृतीयाको मध्यान्हके समय श्रीऋषभदेवने आहार लेनेके लिए नगरमें प्रवेश किया। उनको देखनेसे लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। लोग उनको बड़े कौतुकसे देखने लगे। श्रीऋषभदेव गमन करते हुए राजमहलके सामने गये। इनको सामने आते हुए देखकर सिद्धारक नामके द्वारपालने महाराज सोमप्रभसे जाकर निवेदन किया :- महाराज, श्रीऋषभदेव सामने आ रहे हैं। तब सोमप्रभ और श्रेयांस दोनों भाई उनके सम्मुख आये। श्रीऋषभदेवके दर्शन करनेहीसे श्रेयांसका जातिस्मरण हुआ जिससे उन्हे पूर्व भवके सब कार्य स्मरण हो आये। उनमें यह भी स्मरण हो आया कि मुनिको आहार देनेके लिए इस प्रकार स्थापन करते हैं, इस तरह आहार देते हैं। आहार देनेकी विधि जान श्रेयांसने श्रीऋषभदेवको आहारके लिए पड़गाहन किया। और सप्त[1] गुणोंसे भूषित होकर नवधा[2] (नौ प्रकारकी) भक्तिसे सबसे प्रथम होनेवाले श्रीआदिदेव परमेश्वरको आहार दिया। भगवानने तीन अंजलि इक्षुरस अर्थात् ईखका रस ग्रहण किया। और

१-ऐहिक सुखकी इच्छा नहीं रखना १, क्षमा २, निष्कपटता ३, ईर्षारहित होना ४, हर्ष-विषाद नहीं करना ५-६, अभिमान नहीं करना ७, ये सात दाताके गुण हैं। २-पडिगाहन १, उच्च स्थान २ पादोदक ३, अर्चन ४, प्रणाम ५, मन वचन कायकी शुद्धि ६-७-८ और आहारशुद्धि ९।

उससे प्रगट कर दिया कि यह अक्षयदान है। उसी समय राजा श्रेयांसके घर पञ्चाश्चर्य हुए और उस दिनकी तृतीया 'अक्षयतृतीया' कहलाई।

श्रीऋषभदेवकी चर्या कल्याणके साथ पूर्ण हुई। राजा श्रेयांसने उनको आहार दिया, यह सुनकर भरतको बहुत सन्तोष हुआ और वे स्वयं राजा श्रेयांसके यहाँ गये। उनका राजा सोमप्रभ और श्रेयांसने बड़ा सत्कार कर उन्हें अपने महलोंमें ले जाकर सुवर्ण सिंहासनपर विराजमान किया। भरतने राजा श्रेयांससे पूछा:–आपने महाराज ऋषभदेवका चित्त कैसे जाना? उत्तरमें राजा श्रेयांस कहने लगे,–इस भवके आठवें भवमें (आठ भव पहले) श्रीऋषभदेवका जीव वज्रजंघ नामका राजा था और उस समय मैं अर्थात् मेरा जीव उन महाराज वज्रजंघकी देवी श्रीमती था। उस समय हम दोनोंने अर्थात् पति पत्नीने सर्प नामके सरोवरके किनारेपर दो चारण मुनियोंको आहार दिया था। उस आहार दानके फलसे राजा वज्रजंघ तो भोगभूमिमें आर्य हुए और वहाँसे चयकर श्रीधर देव, सुविधि राजा, अच्युत स्वर्गमें इन्द्र, वज्रनाभि चक्रवर्ती, और सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र होकर ये श्रीऋषभदेव हुए हैं। और वज्रजंघकी देवी श्रीमतीका जीव वहाँसे शरीर छोड़कर भोगभूमिमें आर्या, स्वयंप्रभ देव, राजा सुविधिका पुत्र केशव, अच्युत स्वर्गमें प्रतीन्द्र, धनदेव और सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र होकर मैं राजा श्रेयांस हुआ हूँ। मुझे मुनिके दर्शन होनेसे जातिस्मरण हो आया और इसीलिए मुनिके आहार देनेकी विधि मैंने जानी। महाराज भरत यह कथा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। राजा श्रेयांसकी बहुत प्रशंसा की। और थोड़े दिन वहाँ रहकर अपने घर लौटे आये।

इधर श्रीवृषभनाथ स्वामीने एक हजार वर्ष पर्यन्त तपश्चरण किया। एक दिन वे पुरिमतालपुर नगरके उद्यानमें वट (बड़) वृक्षके नीचे विराजमान थे। वहाँ शुक्लध्यानमें लीन हुए। और उसके प्रभावसे फाल्गुण कृष्णा एकादशीको ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया[1] कर्मोंको नष्ट किया, जिससे उसी समय श्रीभगवानके दिव्य केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। उनका शरीर ऐसा ज्योतिःस्वरूप प्रकाशमान हो गया, मानो स्फटिक

१ ये चारों कर्म आत्माके गुणोंको घात करनेवाले हैं, इसलिए इनका नाम घातिकर्म है।

कोठे थे। इन कोठोंके बाद बहुतसी जगह छोड़कर चारों ओर स्फटिकमयी सुन्दर वेदी बनी हुई थी। उस वेदीके मध्य भागमें एकपर दूसरा और दूसरेपर तीसरा इस तरह मनोहर तीन सिंहासन शोभा बढ़ा रहे थे। उनपर अपने शरीरकी अपरिमित प्रभासे समवसरणको शोभित करते हुए श्रीकेवली भगवान् चार अंगुल ऊँचे अन्तरीक्षमें विराजमान थे। उस समवसरणमें जितने शाल थे और जितनी वेदियाँ थीं, उन सबमें प्रत्येक दिशामें एक एक इस तरह चारों दिशाओंकी ओर चार चार गोपुर अर्थात् बड़े बड़े दरवाजे थे। और प्रत्येक गोपुरके समीप आठ मंगलद्रव्य रक्खे हुए थे, नौ निधि रक्खी हुई थीं, तथा प्रत्येक गोपुर सौ सौ तोरणोंसे शोभायमान था। सबसे बाहरी शालका जो गोपुर था, वह सुवर्णमय अर्थात् सोनेका बना हुआ था। उसके पश्चात् छः गोपुर चाँदीके बने हुए थे और उनके पश्चात् दो गोपुर नाना प्रकारके रत्नोंसे मिली हुई चाँदीके बने हुए अपनी निराली ही शोभा दिखा रहे थे। बाहरी तीन गोपुरोंपर ज्योतिष्क देव रक्षक थे और फिर दो गोपुरोंकी रक्षाका भार यक्ष जातिके देवोंपर था। और उसके बाद दो गोपुरोंपर नागकुमार जातिके देव तथा भीतरी दोनों गोपुरोंपर कल्पवासी जातिके देव बैठे हुए थे। बाह्य गोपुरके मध्य मार्गमें मानस्तम्भ शोभायमान था। दूसरे और तीसरे गोपुरके मध्य भागमें केवल आकाश ही था। चतुर्थ गोपुरके मध्य मार्गके दोनों बाजुओंकी ओर दो धूपघटोंसे शोभित दो नृत्यशाला शोभायमान थीं। उन नृत्यशालाओंके बाद फिर आकाश और उसके बाद दो शाल अर्थात् कोट थे कि जिनका वर्णन ऊपर लिखा जा चुका है। उन कोटोंके बाद नौ स्तूप और स्तूपोंके बाद फिर आकाश था। उक्त रचनाके अनुसार उस समवसरणमें नौ गोपुर सुशोभित थे। यह एक दिशाकी रचना दिखाई गई है, परन्तु पाठकोंको इसी तरह चारों दिशाओंकी समझ लेनी चाहिए।

श्रीभगवान् ऋषभदेवकी यक्षिणी चक्रेश्वरी और यक्ष गोमुख हुआ। चार घाति या कर्मके नष्ट होनेसे भगवानके दश अतिशय उत्पन्न हुए। १ चारसौ कोश पर्यन्त कहीं भी दुर्भिक्ष नहीं था अर्थात् जहाँ समवसरण विराजमान था, वहाँसे चारों दिशाओंकी ओर सौ सौ कोश पर्यन्त सब जगह सुभिक्ष (सुकाल) ही था। चारसौ कोशके अन्दर कहीं भी दुष्काल नहीं पड़ता था। २ दूसरा अतिशय 'गगन-गमनता' अर्थात् आकाशमें निराधार गमन करना था। ३

पर्वतसे उदय होते हुए करोड़ सूर्योंका विंब स्फुरायमान हो। वह पृथ्वीसे पाँच हजार धनुष ऊँचा आकाशमें निराधार स्थित रहा। समस्त देवोंके तथा इन्द्रोंके आसन कंपायमान हुए, जिससे अवधिज्ञान द्वारा सबने जान लिया कि श्रीभगवानके केवलज्ञान हुआ है। पश्चात् इन्द्रकी आज्ञासे कुवेरने आकर समवसरणकी रचना की, जिसका वर्णन संक्षेपसे इस प्रकार है।

समवसरणमें ग्यारह भूमियाँ थीं। पृथ्वीसे पाँच हजार धनुष ऊँची एक शिला निर्माण की, जो चारों दिशाओंकी ओर लम्बी चौड़ी गोलाकार थी और जिसमें बीस हजार सीढ़ी नीचेसे ऊपरतक सुन्दररूपसे लगी हुई थीं। वह सुन्दर शिला हरित नील वर्णस्वरूप अतिशय शोभायमान थी। शिलाके ऊपर एक ऐसे शालकी (कोटकी) रचना की कि जिसमें रत्नमयी चार गोपुर (बाहरके बड़े दरवाजेका नाम गोपुर है) थे। उन गोपुरोंकी अन्तरालवर्ती भूमिमें पाँच पाँच बड़े बड़े महलोंका अन्तर देकर सुन्दर जिनालय शोभायमान थे। उनके आगे एक सुवर्णमयी (सोनेकी) ऐसी सुन्दर वेदी बनी हुई थी कि जिसके मनोहर चार गोपुर थे। वेदीके आगे चलकर गहरी स्वच्छ जलसे भरी हुई खातिका अर्थात् खाई बनी हुई थी। खाईके आगे एक और वैसे ही चार गोपुरसहित सुवर्णमयी वेदिका बनाई गई थी। वेदिकाके सामने एक मनोहर वन था। उस वनके वृक्षोंमें तथा उनके अन्तरालमें सुन्दर बेलें फैल रही थीं, और वनके मध्य भागमें एक सुवर्णमयी शाल बनाया गया था। इस शालके भीतरी ओर एक सुन्दर उपवन बना हुआ था। उसके भीतर एक सुवर्णमयी वेदी और वेदीके बाद ध्वजाओंका समूह फहरा रहा था। ध्वजाओंके बाद एक रजतमय अर्थात् चाँदीका शाल (कोट) था और उस शालके भीतरी ओर अनेक कल्पवृक्ष शोभायमान् थे। कल्पवृक्षोंके पश्चात् भी एक सुवर्णमयी वेदी बनी हुई थी। उस वेदीके अन्दर अनेक जातिके भवन बने हुए थे। इन भवनोंके बाद बहुतसा अन्तर छोडकर स्फटिकमयी (स्फटिकमणिका बना हुआ) सुन्दर स्वच्छ शाल शोभायमान था। इस स्फटिकमयी शालके बाद बारह कोठे बने हुए थे। मनुष्य तिर्यंच देव आदि श्रोताजनोंके बैठनेके लिए ये ही बारह

१-१ मुनि, २ कल्पवासिनी देवी, ३ आर्यिका, ४ ज्योतिष्कोंकी देवी, ५ व्यन्तरी, ६ भवनवासिनी देवी, ७ भवनवासी देव, ८ व्यन्तर, ९ ज्योतिष्क, १० कल्पवासी, ११ मनुष्य और १२ तिर्यञ्च ये क्रमसे बारह कोठोंमें बैठते थे।

तीसरा अतिशय 'अप्राणिवधता' था। इस अतिशयके प्रभावसे भगवानके समवसरणमें कोई जीव किसी भी जीवका घात नहीं कर सकता था। ४ चौथे अतिशयका नाम 'भुक्तेरभावता' अर्थात् भोजनका अभाव होना था। श्रीभगवान् सदा निराहार रहते थे। ५ पाँचवाँ अतिशय 'उपसर्गाभावता' अर्थात् उपसर्गका अभाव होना था। भगवानको कभी किसी प्रकारका भी उपसर्ग नहीं होता था। ६ छट्ठा अतिशय 'चतुरास्यता' अर्थात् चारों दिशाओंमें भगवानके चार मुख देख पड़ते थे। ७ सातवाँ अतिशय 'सर्वविद्येश्वरता' अर्थात् समस्त विद्याओंके जानकार थे। ८ आठवाँ अतिशय 'अच्छायता' अर्थात् श्रीभगवानके परम औदारिक शरीरकी छाया पड़ती नहीं थी। ९ नौवाँ अतिशय 'अपक्ष्मकंपता' अर्थात् भगवानके पलकोंकी टिमिकार नहीं लगती थी। १० दशवाँ अतिशय 'समप्रसिद्धनखकेशता' अर्थात् भगवानके नख केश सदा समान ही रहते थे, कभी बढ़ते नहीं थे। इस तरह ये दश अतिशय घातिकर्मके क्षय होनेसे हुए थे।

भगवानके इन दश अतिशयोंके सिवाय चौदह अतिशय देवकृत थे। १ पहला अतिशय 'सर्वमागधीभाषा' अर्थात् सबकी अपनी अपनी मातृभाषाका होना था। भगवानकी अनक्षरमयी दिव्यध्वनि भी समवसरणमें आये हुए समस्त श्रोताजनोंकी निज मातृभाषामें परिणत होती थी। २ दूसरा अतिशय 'सर्वजनमैत्री' अर्थात् समवसरणमें आये हुए सब जीवोंके सर्वथा मैत्रीभाव ही था, चाहे उनमें जातीय वैर क्यों न हो। ३ तीसरा अतिशय 'सर्वर्तुकफलदाद्युपयुता-सभामही' अर्थात् समवसरण समस्त ऋतुओंके फल पुष्प आदिकोंसे शोभित रहता था। ४ चौथा अतिशय 'रत्नमयीमही' अर्थात् समवसरणकी समस्त भूमि रत्नमयी (रत्नोंसे जटित अथवा रत्नोंकी बनी हुई) थी। ५ पाँचवाँ अतिशय 'विहारानुकूलमारुत' अर्थात् विहार करनेके योग्य शीतल मंद सुगंध समीर चलना था। ६ छट्ठा अतिशय 'मरुत्कुमाराणां धूल्याद्युपशान्तिनयनं' अर्थात् वायुकुमार देवों द्वारा धूलिकी शान्ति होना था। वायुकुमार जातिके देव सदा धूलिको शान्त रखते थे, धूल उड़ने नहीं पाती थी। ७ सातवाँ अतिशय 'तडित्कुमाराणां गंधोदकवर्षणं' अर्थात् मेघकुमार जातिके देव समवसरणमें गंधोदककी वर्षा करते थे। ८ आठवाँ अतिशय 'पुरः पृष्ठतश्च पादन्यासे सप्तकमलकरण' अर्थात् भगवानके गमन करनेमें जहाँ उनका पैर पड़ता था, वहाँ उनके पैरके नीचे आगे पीछे दोनों जगह सात सात कमलोंकी

रचना देव करते थे। ९ नौवाँ अतिशय 'पृथिव्या हर्षः' अर्थात् पृथिवीको हर्ष होना था। १० दशवाँ अतिशय 'जनमोदन' अर्थात् मनुष्योंको आनन्द होना था। आ समवसरणमें आये हुए समस्त जीव सदा आनन्दमें मग्न रहते थे। ११ ग्यारहवाँ अतिशय 'गगननिर्मलता' अर्थात् आकाश सदा निर्मल रहता था। १२ बारहवाँ अतिशय 'सुराणां परस्पराह्वानं' अर्थात् देवोंका परस्पर बुलाना था। समस्त देव हर्षित होकर भगवानके दर्शन पूजन स्तुति आदि करनेके लिए सदा एक दूसरेको बुलाते थे। १३ तेरहवाँ अतिशय 'धर्मचक्र' अर्थात् भगवानके गमन करते समय सबसे आगे धर्मचक्र चलता था, तथा भगवानकी स्थित अवस्थामें वह समवसरणके सामने ठहरा रहता था। और १४ चौदहवाँ अतिशय अष्ट मंगलद्रव्य थे। इस प्रकार दश अतिशय देहज अर्थात् शरीरसे उत्पन्न हुए, दश अतिशय घातिकर्मके क्षय होनेसे हुए, और चौदह अतिशय देवोपनीत, सब मिलकर भगवानके चौंतीस अतिशय थे। इनके सिवाय उनके सिंहासन, छत्रत्रय (तीन छत्र), दुंदुभि, पुष्पवृष्टि, चामर, भामण्डल, दिव्यध्वनि और अशोकवृक्ष ये आठ प्रातिहार्य थे। चौंतीस अतिशय और आठ प्रातिहार्य ऐसे ब्यालीस गुण और चार अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य, अनन्त दर्शन और अनन्तसुख ये सब मिलकर छयालीस गुण हुए। इन छयालीस गुणोंसे भूषित भगवान समवसरणमें विराजमान थे। समस्त देव भगवानकी पूजा करनेके लिए आये और यथायोग्य पूजा स्तुति करके अपने अपने स्थानको चले गये।

अथानन्तर-पुरिमताल नगरका राजा वृषभसेन भी बड़ी विभूतिके साथ समवसरणमें आया और संसाररूपी पर्वतको वज्रके समान अर्थात् संसारके परिभ्रमणको नाश करनेवाले श्रीजिनेन्द्र देवकी पूजा स्तुति करके उसने विरक्त होकर अपने पुत्र अनन्तसेनको राज्य दे दिया और स्वयं श्रीजिनेन्द्रदेवके पादमूलमें दीक्षित हुआ। वृषभसेनके अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ और वह श्रीवृषभदेवका प्रथम गणधर हुआ।

इधर अयोध्या नगरमें महाराज भरत अपनी सभामें विराजमान थे। उनके चारों ओर बड़े बड़े शूर वीर तथा मन्त्री पुरोहित आदि बैठे हुए थे। इतनेमें तीन पुरुष महाराज भरतसे कुछ निवेदन करनेके लिए बाहरसे आये।

एकने कहा:-महाराज, आपकी महारानी सुन्दरीके पुत्र हुआ है। दूसरेने कहा;-आपकी आयुधशालामे चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है और तीसरेने कहा;-ऋषभदेवको केवलज्ञान प्राप्त हुआ है। महाराज भरतने ये तीनो शुभ समाचार एक ही साथ सुनकर विचार किया कि संतानवृद्धि अर्थात् पुत्रादिक होना और राज्यकी वृद्धि अर्थात् चक्ररत्न उत्पन्न होनेसे छहो खण्डका राज्य मिलना, ये दोनो ही धर्मके प्रभावसे उत्पन्न होते है, इसलिए सबसे पहिले भगवानके केवलज्ञान होनेका उत्सव मनाना चाहिए। ऐसा विचार कर वे इन्द्रकीसी लीलाके साथ अर्थात् अनेक प्रकारकी सेना बाजे गाजे चमर छत्र आदि विभूतिके साथ वंदना करनेके लिए निकले। समवसरणमे जाकर उन्होने श्रीजिनेन्द्रदेवके चरण कमलोकी पूजा तथा स्तुति की। इसके बाद वे गणधरादिक अन्य मुनियोकी वंदना करके मनुष्योंके कोठेमे जा बैठे। राजा सोमप्रभ और श्रेयांस ये दोनो भाई जयको राज्य देकर श्रीभगवानके पादमूलमें दीक्षित हुए। तथा महाराज भरतके छोटे भाई अनन्तवीर्य भी भगवानके पादमूलमे दीक्षित हुए। ये तीनो ही अर्थात् सोमप्रभ श्रेयांस और अनन्तवीर्य अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान प्राप्त कर भगवान् ऋषभदेवके गणधर हुए। श्रीऋषभदेवकी ब्राह्मी और सुन्दरी दोनो पुत्रियॉ कुमारी अवस्थामे ही अनेक स्त्रियोके साथ दीक्षित हुई और दोनो ही आर्यिकाओमें मुख्य कहलाई। महाराज भरत भगवानके मुखसे निकलती हुई अमृतके समान दिव्यध्वनिको सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और नमस्कार कर अपने घर लौट आये। पुत्र होनेका उत्सव मनाया और पुत्रजात कर्म अर्थात् पुत्रजन्मकी क्रिया की। उसके पीछे चक्ररत्नकी पूजा करके वे किसी शुभमुहूर्त्तमे दिग्विजय करनेके लिए निकले। मार्गमें प्रयाण भेरीके शब्दोंसे दशो दिशा व्याप्त हो रही थीं। साथमे चारों ओर छहो प्रकारकी सेना चल रही थी। जिनके पैर तलोकी धूलि उड़कर आकाशमे इस तरह छा गई थी जिससे सूर्य भी आच्छादित हो गया था। कुछ दिनोमें वे कटकसहित गंगाके किनारे पहुँचे और अच्छा स्थान देखकर ठहर गये। वहॉसे गंगा नदीके किनारे २ चल वहॉ पहुँचे, जहॉ कि गंगा नदी समुद्रमे जाकर मिली है। वहॉ पहुँचनेपर इनको यह चिन्ता हुई कि समुद्रके भीतर जो मागध द्वीप है, उसके स्वामी मागधामरको किस तरह जीत सकेंगे? उनके विजय करनेका क्या उपाय है? इस चिन्ताने महाराज भरतको कुछ खिन्न कर

दिया था। परन्तु रात्रिके पिछले भागमें उन्होंने स्वप्नमें किसीको यह कहते सुना:-भरतेश्वर, तुम रथपर सवार होकर समुद्रमें प्रवेश करो। तुम्हारा रथ बारह योजन जाकर ठहर जायगा और फिर वहाँसे तुम उस द्वीपके रहनेवालोंपर बाणोंकी वर्षा कर सकोगे। यह स्वप्न देख प्रातःकाल ही भरतने वैसा ही किया। रथ बारह योजनपर जाकर ठहर गया, तब उन्होंने अपना बाण छोड़ा। उस द्वीपका स्वामी मागधामर महाराज भरतके नामका बाण देख और कुछ आश्चर्य करके उस बाणके आनेमें कुछ आक्षेप करने लगा। चतुर मंत्रियोंने उसको समझाकर शान्त किया और भरतके चक्रवर्ती होनेके समाचार समझाये। तब राजा मागधामर बहुतसी भेट लेकर भरतके सामने आया। महाराज भरतने भी उसको अपना सेवक बनाकर वापिस लौटा दिया। इसके बाद महाराज भरतने लवणसमुद्र और उपसमुद्रके बीचवाले उपवनके मार्गसे पश्चिम दिशाको चलना प्रारम्भ किया। चलते चलते वैजयन्त नामके गोपुरके समीप पहुँचे और उसको पारकर वरतनु नामके द्वीपके अधिपति वरतनुको उसी तरह विजय किया, जैसे मागधामरको किया था। वहाँसे फिर पश्चिम दिशाकी ओर गमन किया और वहाँपर पहुँचे, जहाँ सिंधु नदी समुद्रमें मिलती है। समुद्रके किनारेपर डेरा दिया। वहाँ प्रभास नामके द्वीपके अधिपति राजा प्रभासको जीता। वहाँसे चलकर सिंधु नदीकी तराईका रास्ता लिया और उत्तर दिशाकी ओर चलकर विजयार्द्ध पर्वतके समीप डेरा दिया। महाराज भरत वहीं रहे। परन्तु उनके सेनापतिने कृतकमल और विजयार्द्धको जीतकर अपनी समस्त सेना म्लेच्छ खंडकी ओर भेज दी। और आप स्वयं चक्रीके अश्व रत्नपर (रत्नरूप घोड़ेपर) सवार हो, विजयार्द्ध पर्वतकी तमिश्रा गुफाके समीप पहुँचा। वहाँ घोड़ेका मुख पश्चिम दिशाकी ओर किये हुए गुफाके द्वारपर पहुँचकर उसने दंड रत्नको बड़े जोरसे मारा और तत्काल ही घोड़ेको बहुत तेज गतिसे लौटा लाया। सेनापतिके ऐसा करनेका यह कारण था कि उस गुफामें महा ज्वालास्वरूप ऊष्मा भरी थी, जिसकी लपट दरवाजा खुलते ही दरवाजेके बाहर निकली। यदि सेनापति घोड़ेको एकदम नहीं भगाता, तो वह उसी ज्वालामें जल मरता। और घोड़ेको शीघ्र भगानेके लिए ही उसका मुंह पश्चिमकी ओर किया गया था। वह ज्वाला धीरे २ छह महीनेमें शान्त हुई।

द्वारकी शिलाको हटाकर वह सेनापति पश्चिम म्लेच्छ खंडकी ओर गया और वहाँके समस्त राजाओंको युद्धमें जीत उन सबको साथ लिये हुए उसी विजयार्द्धकी गुफाके पास भरत महाराजसे आ मिला। चक्रवर्तीने उक्त राजाओंको अपने आधीन और आज्ञाकारी जान प्रसन्नतापूर्वक विदा कर दिये। इसके पश्चात् सेनापतिने तमिश्रा गुफामें प्रवेश किया। वहाँ अंधकार अधिक था, इस कारण कांकणी रत्नसे सूर्य चन्द्रमा लिखकर उनके प्रकाशकी सहायतासे वह उत्तर म्लेच्छ खंडमें पहुँचा। प्रथम ही मध्य खंडमें प्रवेश करके वहाँ उसने अपना सम्पूर्ण कटक चर्म रत्नपर स्थापित किया और ऊपर छत्र रत्न रख दिया। ऐसा करनेसे दोनोंका आकार मुर्गीके अंडे जैसा हो गया। पश्चात् वर्त आदि म्लेच्छ राजाओंके साथ युद्ध होने लगा। जब ये लोग हारने लगे, तब उन्होंने अपने कुलदेव मेघकुमारोंकी शरण ली। वे आकर चक्रवर्तीके कटकपर उपसर्ग करने लगे; परन्तु उन रत्नोंको भेदनेमें असमर्थ होकर वे सेनापतिसे लड़ने लगे। सेनापतिने घोर युद्ध करके उनको हरा दिया और समस्त राजाओंके राज्यचिन्ह छीन मेघोंसरीखा नाद किया। इससे प्रसन्न हो भरत महाराजने जय सेनापतिका नाम मेघेश्वर रख दिया। इस प्रकार तीन उत्तर म्लेच्छ खंडोंको जीतकर चक्रवर्तीने विद्याधरोंको जीतना प्रारंभ किया।

राजा नमि विनमि स्वयं आकर अपने भानजे भरत महाराजको अपनी पुत्री सुभद्रा देकर सेवक हो गये। पश्चात् चक्रवर्तीने हिमवत् कुमारोंको जीतकर वृषभ पर्वतपर अपना नाम लिखा। वहाँसे चलकर नाट्यमालकी विजय किया और फिर विजयार्द्ध पर्वतके समीप आकर उस पर्वतकी कांडप्रपात नामकी गुफाका दरवाजा खोला। अपनी समस्त सेनासहित उसी दरवाजेसे वे आर्य खंडमें पहुँचकर पूर्व म्लेच्छ खंडमें गये और वहाँ भी अपना झंडा स्थापन कर फिर आर्य खंडमें कैलाश पर्वतके समीप आ निकले। वहाँ देवाधिदेव श्रीवृषभदेवकी पूजा स्तुति करके वे अपनी राजधानीको लौटे। उस समय उन्हें अयोध्यासे निकले साठ हजार वर्ष बीत चुके थे। इतने दिनोंके बाद उन्होंने फिर अयोध्यामें प्रवेश किया परन्तु उनका चक्र रत्न नगरमें प्रवेश न कर सका। वह गोपुरके बाहर ही रुक गया। इसका कारण यह था कि चक्रवर्तीकी सेनाके चलते समय सबसे आगे चक्र ही रहता है। उसका यह नियम है कि जिस नगरमें चक्रवर्तीकी आज्ञाका

उल्लंघन करनेवाला रहता है, उस नगरमें वह प्रवेश नहीं करता, जबतक कि वह आज्ञा न मानने लगे। चक्रके रुकनेसे समस्त सेना रुक गई। भरतने इसके रुकनेका कारण पूछा। तब मन्त्रीने निवेदन किया:—महाराज, आपके भाई आपकी आज्ञामे नहीं है, इसीलिए चक्र रुका है। यह सुनकर चक्रवर्तीने नगरके बाहर ही छावनी डाल अपने भाइयोके समीप आज्ञा भेजी कि मै राजा हूँ, आप लोग मेरी आज्ञामें रहें। इस आज्ञाको बाहुबलीको छोड़ और सब भाइयोने मान ली, साथ ही वे सब भाई अपने पिता श्रीऋषभदेवके समीप जाकर दीक्षित हो गये; परन्तु बाहुबलीने उस आज्ञाके उत्तरमें कहा:—भरत यदि मेरे बाणदर्भकी शय्यापर शयन करे तो मै उसको बड़ी कृपाके साथ अयोध्याकी थोड़ीसी जगह रहनेके लिए दूँगा, अन्यथा नहीं। दूतने आकर जब यह सब भरतसे कहा, तब वे युद्ध करनेके लिए तैयार हुए। दोनो ओरसे सेना तैयार हो गई;। परन्तु सेनायुद्ध रोककर दोनो भाइयोको ही बल आजमानेकी सम्मति दी गई। तदनुसार दोनोके दृष्टियुद्ध, मल्लयुद्ध और जलयुद्ध इस प्रकार तीन युद्ध हुए। और तीनोंमे भरतकी हार हुई। परन्तु अन्तमे बाहुबलीने विरक्त होकर भरतको प्रणाम किया और क्षमा मॉगकर अपने पुत्र महाबलीको उन्हे सौप उनके रोकनेपर भी श्रीऋषभदेवके पास जा दीक्षा ले ली। थोड़े ही दिनोमे वे सकल आगमके पारगामी हो एकविहारी हुए और किसी महाअरण्यमे प्रतिमा योग धारण कर विराजमान हुए। उसी योगमे स्थिर हुए उनको बहुत दिन हो गये, इसलिए शरीरपर बेल लता आदि चढ़ गई। कभी कभी कोई विद्याधरी उनके शरीरपर चढ़ी हुई लताओको हटा देती थी। बाहुबलीने जब योग धारण किया था, उससे एक वर्ष पीछे महाराज भरत श्रीऋषभदेवके दर्शन करनेके लिए गये। और मार्गमे महातपस्वी बाहुबलीके भी दर्शन करते गये। वंदनाके पश्चात् उन्होने पूछा:—भगवन्, अभीतक घोर वीर तपस्वी श्रीबाहुबलीके केवलज्ञान क्यो उत्पन्न नहीं हुआ? श्रीजिनेन्द्रदेवने कहा:—अब तक उनके हृदयमे मान-कषायजनित शल्य लगी गई है। वे अभी तक यही विचार रहे है कि यद्यपि मैने समस्त परिग्रह छोड़ दिया है, तथापि जिस पृथ्वीपर मै खड़ा हूँ, वह भरत चक्रवर्तीकी ही है। जब उनके हृदयसे यह शल्य निकल जायगी तभी केवलज्ञान उत्पन्न होगा। यह सुन भरत चक्रवर्ती बाहुबलीके समीप गये। उनके चरण कमलोको नमस्कार कर अतिशय विनयके

साथ स्तुतिरूपमे उन्हे नाना प्रकारसे समझाकर शल्यरहित किया। शल्य दूर होते ही उन्हे केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। साथ ही गंधकुटी दिव्यसभा आदिक विभूति भी उत्पन्न हुई। तब भरत चक्री भगवान् बाहुबली केवलीकी पूजा करके नगरको लौट आये और बाहुबलीके पुत्र महाबलीको पोदनापुरका राज्य दे आप चक्रवर्तित्वकी महाविभूतिका भोग करते हुए सुखसे कालयापन करने लगे।

चक्रवर्तित्वकी विभूतिका प्रमाण इस प्रकार है,—अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख रथ, चौरासी करोड़ प्यादे, आज्ञाकारी बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा, बत्तीस हजार शरीरकी रक्षा करनेवाले यक्षाधीश, छयानवे हजार रानी, बत्तीस हजार आर्य खंडमे रहनेवाले राजाओंकी पुत्रियाँ, बत्तीस हजार विद्याधरोंकी पुत्रियाँ और बत्तीस हजार म्लेच्छ राजाओंकी पुत्रियाँ, तीन करोड़ कुटुम्बी जन, तीन करोड़ गाये, तीन सौ साठ शरीरवैद्य तथा कल्याणकारी अमृतसे मिले हुए अमृततुल्य भोजन, पानक खाद्य स्वाद्यरूप पदार्थोंके बनानेवाले तीनसौ साठ रसोइये, नौ निधि (निधियोंका आकार गाड़ी जैसा होता है। चतुरस्र अर्थात् चौकोर आठ योजन ऊँची नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी होती है। प्रत्येक निधिमे आठ आठ पहिये रहते है। तथा प्रत्येक निधिके एक हजार यक्ष जातिके देव रक्षक होते है। पहली निधिको कालनिधि कहते है। यह निधि इच्छानुसार पुस्तकोंकी देनेवाली है। दूसरी महाकालनिधि है, यह सोना चाँदी लोहा आदि खनिज पदार्थोंको देती है। तीसरी सुगंधित चावल गेहूँ आदि धान्योंकी देनेवाली पांडुक निधि है। चौथी निधि माणवक है। यह कवच (बख्तर) तलवार गदा आदि अनेक प्रकारके शस्त्रोंको देती है। पाँचवी नैसर्प निधि है, जो कि बर्तन, चारपाई आसन आदिक वस्तुओंकी देनेवाली है। छट्ठी सर्वरत्न निधि है। यह हीरा पन्ना माणिक आदि समस्त रत्नोंकी देनेवाली है। सातवी शंख निधि है, जो कि वीणा आदिक समस्त बाजोंको देनेवाली है। आठवी निधि पद्म है, यह अनेक तरहके वस्त्रोंको देती है। और नौवी पिंगल निधि है जो कि सब तरहके आभूषणोंको देनेवाली है, चौदह[1]

[1] चौदह रत्नोंकी भी एक एक हजार देव रक्षा करते हैं।

रत्न-चर्म रत्न, छत्र रत्न, चूडामणि नामका मणि रत्न और चिन्तामणि नामका कांकणी रत्न श्रीगृहमें उत्पन्न होते हैं। अयोध्या नामका सेनापति रत्न, अजितजय अश्व रत्न, विजयार्द्ध नामवाला हाथी रत्न और भद्रकुंड स्थापितरत्न अर्थात् रसोइया रत्न, ये चक्रवर्तीके नगरमें उत्पन्न होते हैं। और बुद्धिसागर पुरोहित रत्न, कामवृष्टि अर्थात् इच्छानुसार वस्तु देनेवाला, गृहपति रत्न और सुभद्रा स्त्री रत्न ये तीन रत्न विजयार्द्ध पर्वतपर उत्पन्न होते हैं। सुदर्शन चक्र, सुनन्द खड्ग, दंड रत्न, ये तीन रत्न आयुधशालामें उत्पन्न होते हैं। वज्रकुंडा शक्ति, सिंहाटक भाला, लोहवाहिनी बरछी, मनोजव कणय, भूतमुख खेट, वज्रकांड धनुष, अमोघ बाण, अभेद्य कवच (बख्तर), मनुष्योंको आनन्द देनेवाली जनानन्द नामकी बारह भेरी, जिनकी आवाज बारह योजन तक सुनाई पडती है, जय जय शब्द करनेवाले जयघोष नामके बारह पटहा, गंभीरावर्त नामके चौबीस शंख, वीर और अंगद ऐसे दो कटक, बहत्तर हजार पुर, छयानवे करोड़ ग्राम, पंचानवे हजार द्रोण, चौरासी हजार पत्तन, सोलह हजार खेट,[1] छप्पन अन्तर्द्वीप, सोलह हजार संवाहन, एक करोड़ थाली, सात सौ कुक्षिनिवास, आठ सौ कक्षा, नन्द्यावर्त सेनानिवास, क्षितिसारशालवेष्टित निवासगृह, वैजयन्ती नामका सिंहद्वार, सर्वतोभद्र नामका आस्थान मंडप, दिक्कूट नामका दिशावलोकनगृह (जहाँसे दिशायें देखी जाती हैं), वर्द्धमान नामका वीक्षणागार (जहाँसे सब शोभा देखी जाती है), धर्मान्तिक नामका धारागृह, वर्षाकालगृह, गृहकूट, शय्यागृह, पुष्करावती, कुबेरकान्त नामका भाण्डागार, सुवर्णाग नामका कोष्ठागार, सुरम्य नामका वस्त्रगृह, मेघ नामका स्नानगृह, अवतंस नामका हार, तडित्प्रभ कुंडल, विषमोचनी पादुका, अनुत्तर सिंहासन, अनुल नामके बत्तीस चमर, गृहसिंहवाहिनी नामकी शय्या, रविप्रभ नामका छत्र, नभोवल्लभी बत्तीस पताका, बत्तीस हजार नाट्यशाला, समीप रहनेवाले अठारह हजार म्लेच्छ राजा, एक करोड हल और अजितजय रथ इत्यादि नाना प्रकारकी विभूतियोंका सुखभोग करते हुए महाराज भरत चक्रवर्ती सुखसे काल व्यतीत करते थे।

एक दिन चक्रवर्तीके चित्तमें ऐसा आया कि किसी पात्रके लिए सुवर्णादिक दान देना चाहिए। परन्तु देवें किसको? क्योंकि

[1] पर्वत और नदीके बीचकी भूमिको खेट कहते हैं॥

जो महर्षि थे, वे तो सुवर्णादिक लेना स्वीकार नहीं करते थे, इसलिए गृहस्थोंमें कौन कौन पात्र है यह जाननेके लिए चक्रीने इस प्रकार परीक्षा की कि राजमहलके ऑगणमें धान्यादिक बोकर उनके अंकुरे पैदा कर दिये, तथा चारों ओर पुष्प फैला दिये। पश्चात् उस ऑगणमेंसे क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन तीनों वर्णोंको आमन्त्रण देकर बुलाया। सब लोग आये परन्तु जो उनमें गाढ़ जैनी थे, उन्होंने उन अंकुरों और पुष्पादिकोंके ऊपरसे आना ठीक नहीं समझा, इसलिए वे उस राजांगणके बाहर ही खड़े रहे। यह देखकर चक्रवर्त्तीने कारण पूछा। उन्होंने कहा—तुम्हारे राजांगणमें मार्गशुद्धि नहीं है, इसलिए सेवकने यह बात भरतसे कही। तब उन्होंने मार्गशुद्धि करके उनको भीतर बुलाया। और उनके व्रत अत्यन्त दृढ़ देखकर बहुत प्रसन्नता प्रगट की। और यह कहकर कि " तुम रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन सम्यज्ज्ञान सम्यक्चारित्रके धारण करनेवाले हो। " रत्नत्रय आराधनाका जतलानेवाला यज्ञोपवीत (जनेऊ) उनके कंधेपर डाल दिया। वे ही लोग ब्राह्मण कहलाये। क्योंकि ब्रह्मा अर्थात् भगवान् आदिदेव उनके इष्टदेव थे। " ब्रह्मादिदेवो देवता येषां ते ब्राह्मणा इति। " इस तरह महाराज भरतने ब्राह्मणोंको निर्माण कर उनको बहुतसे ग्रामादिक दे संतुष्ट किया।

एक दिन महाराज भरतने श्रीऋषभदेवसे पूछा:—महाराज, ये ब्राह्मण जो मैंने निर्माण किये है, आगामी कालमें कैसे होंगे? तब भगवान् बोले:—ये श्रीशीतलनाथ तीर्थंकरके पीछे जैनधर्मके द्वेषी हो जावेंगे। यह सुन अपने निर्माण कियेको नाश करना अनुचित जान, महाराज भरत बहुत खेदखिन्न हुए।

महाराज भरतने कैलाश पर्वतपर भूत, वर्तमान, और भविष्यकाल सम्बन्धी तीर्थंकरोंके मणियोंसे जड़े हुए सुवर्णमय बहत्तर जिनमंदिर बनवाये। जिनमें उक्त बहत्तर तीर्थंकरोंके उनके नाम उत्सेध (ऊँचाई) वर्ण यक्ष यक्षियॉ और चिन्हों सहित प्रतिमायें विराजमान कीं। पश्चात् उन्होंने अयोध्या नगरके प्रत्येक द्वारपर भी चौवीस तीर्थंकरोंकी प्रतिमायें विराजमान की। वे समस्त प्रतिमा वंदनमालाके समान सुशोभित हुईं। इनके सिवाय नगरके बाह्य प्रदेशोंमें मंदिरोंके ऊपर पंच परमेष्ठी अर्थात् अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओंकी प्रतिमायें विराजमान कीं। और घोड़पर कर प्रदक्षिणा देते समय " अरहंत जय " ऐसा कहते हुए उन प्रतिमाओंके ऊपर पुष्प बरसाये। सो वह प्रथा

आज पर्यन्त चली आती है। इस प्रकार भरत महाराज यतियोंकी एक मूर्ति ही होकर सुखसे राज्य करते हुए रहने लगे।

उधर श्रीऋषभदेवने १ वृषभसेन, २ कुम्भ, ३ दृढरथ, ४ शत्रुदमन, ५ देवशर्म, ६ धनदेव, ७ नन्दन, ८ सोमदत्त, ९ सूरदत्त, १० वायुशर्म, ११ यशोबाहु, १२ देवशर्म, १३ देवाग्नि, १४ अग्निदेव, १५ अग्निगुप्त, १६ मित्राग्नि, १७ हलधर, १८ महीधर, १९ महेन्द्र, २० वसुदेव, २१ वसुंधर, २२ अचल, २३ मेरुधन, २४ मेरुभूति, २५ सर्वयश, २६ सर्वगुप्त, २८ सर्वप्रिय, २९ सर्वदेव, ३० सर्वविजय, ३१ विजयगुप्त, ३२ जयमित्र, ३३ विजयी, ३४ अपराजित, ३५ वसुमित्र, ३६ विश्वसेन, ३७ सुषेण, ३८ सत्यदेव, ३९ देवसत्य, ४० विजयदेव, ४१ सत्यमित्र, ४२ शर्मद, ४३ विनीत, ४४ संवर, ४५ मुनिगुप्त, ४६ मुनिदत्त, ४७ मुनियज्ञ, ४८ मुनिदेव, ४९ गुप्तयज्ञ, ५० मित्रयज्ञ, ५१ स्वयंभू, ५२ भगदेव, ५३ भगदत्त, ५४ भगफल्गु, ५५ मित्रफल्गु, ५६ प्रजापति, ५७ सर्वसंघ, ५८ वरुण, ५९ धनपाल, ६० मघवाहन, ६१ तेजोराशि, ६२ महावीर, ६३ महारथ, ६४ विशाल, ६५ महाज्वल, ६६ शुचिशाल, ६७ वज्र, ६८ वज्रशाल, ६९ चन्द्रचूल, ७० मेघेश्वर, ७१ महारथ, ७२ कच्छ, ७३ महाकच्छ, ७४ नमि, ७५ विनमि, ७६ बल, ७७ अतिबल, ७८ भद्रबल, ७९ नंदि, ८० महाभोग, ८१ नंदिमित्र, ८२ महानुभाव, ८३ कामदेव, ८४ अनुपम, इन चौरासी गणधरों, तथा चार हजार साढे सातसौ पूर्वधर अर्थात् ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंके जाननेवालों, चार हजार एक सौ पचास शिक्षकों, नौ हजार अवधिज्ञानियों, बीस हजार केवलियों, बीस हजार छः सौ विक्रिया ऋद्धिके धारण करनेवालों, बारह हजार साढे सात सौ विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानके धारण करनेवालों, इतने ही वादियों, साढे तीन लाख श्रावकों, पाँच लाख श्राविकाओं, असंख्यात देव देवियों और अनेक करोड तिर्यंचोंके साथ, एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व विहार किया। अन्तमें कैलाश पर्वतपर योगनिरोध प्रारम्भकर विराजमान हुए।

उधर महाराज भरत चक्रवर्तीने स्वप्नमें देखा कि मेरु पर्वत सिद्धशिला पर्यन्त बढ गया है। अर्ककीर्ति आदिक अन्य कुमारोंने भी सूर्य आदिको स्वप्नमें ऊपर जाते देखा। तब महाराज भरतने प्रातःकाल ही इन स्वप्नोंका फल अपने पुरोहितसे पूछा। उसने निमित्तज्ञानके द्वारा उत्तर दिया कि इन समस्त स्वप्नोंसे श्रीआदितीर्थंकर परमदेवका मुक्ति जाना सूचित होता

है। सुनते ही भरत आदिक कैलाश पर्वतपर गये। वहाँ सबने श्रीवृषभदेवकी पूजा वन्दना की। परन्तु उस समय श्रीवृषभदेव मौन धारण किये थे। इसलिए सबको खेद हुआ। और चौदह दिन तक वहीं रहकर उन्होंने श्रीवृषभदेवकी पूजा की। चौदहवें दिन भगवानका योगनिरोध पूर्ण हुआ और वे माघकृष्णा चतुर्दशीको मोक्ष पधारकर अनन्त सुखके स्वामी हुए।

भगवानके मोक्ष पधारनेसे भरतादिकको दुःख हुआ, परन्तु वृषभसेन आदि गणधरोंने समझाकर उनका शोक दूर कर दिया। तब भरतादिक श्रीवृषभनाथके परम निर्वाण महाकल्याणककी पूजा करके अपने नगरको लौट आये। इस प्रकार इन्द्रादिक समस्त देव भगवानके निर्वाण कल्याणकका उत्सव करनेके लिए आये और यथेष्ट उत्सव करके स्वर्ग लोकको चले गये। वृषभसेनादिक गणधर तपस्या करके यथाक्रमसे मोक्ष पधारे। श्रीऋषभदेवकी दोनों पुत्रियाँ ब्राह्मी और सुन्दरी अच्युत स्वर्गमें देव हुईं। तथा और भी मुनियों व आर्यिकाओंने जो श्रीवृषभदेवसे दीक्षित हुए थे, अपने अपने पुण्यके अनुसार शुभ गति पाई।

एक दिन महाराज भरत अपने शिरपर श्वेत बाल देख संसारके भोगोंसे उदास हुए और अपने पुत्र अर्ककीर्तिको राज्य दे कैलाश पर्वतपर पधारे। वहाँ उन्होंने अष्टान्हिकाकी पूजा बड़ी धूमधामसे की। पश्चात् अपने स्वजन और परिजनोंसे क्षमा प्रार्थना की। और हमारे पिता ही हमारे गुरु हैं, ऐसा मनमें विचार करके अनेक राजाओंके साथ उन्होंने स्वयं दीक्षा ग्रहण की। महाराज भरतको दीक्षा ग्रहण करनेके बाद ही केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। पश्चात् वे भव्य जीवोंके अतुल पुण्यकी प्रेरणासे एक लाख पूर्व विहार करके कैलाशपर्वतसे मोक्ष पधारे।

महाराज भरतका कुमारकाल सत्तर लाख पूर्वका, मांडलिककाल एक हजार वर्षका, विजयकाल साठ हजार वर्षका, राज्यकाल पाँच लाख निन्यानवे हजार नौ सौ निन्यानवे पूर्व तेरासी लाख निन्यानवे हजार नौ सौ निन्यानवे पूर्वांग तेरासी लाख उनतालीस हजार वर्षका और संयमकाल एक लाख पूर्वका था। इस प्रकार उनकी समस्त आयु चौरासी लाख पूर्वकी थी।

महाराज भरतके मोक्ष जानेपर उनकी निर्वाण पूजा करनेके लिए देवादिक आये और यथेष्ट उत्सव मना अपने अपने स्थानको चले गये।

इस प्रकार व्याघ्रादिकोंने जो दान देनेका अनुमोदन किया था, उसके फलसे ऐसे ऐसे उत्तम फल भोगकर मोक्ष पाया तो जो स्वयं सत्पात्रके लिए दान देता है, वह ऐसी उत्तम गतिको क्यों नहीं प्राप्त होगा? अवश्य होगा।

(यह कथा संक्षेपरीतिसे लिखी गई है। इसका विस्तार महापुराणसे जानना चाहिए।)

(३-४) जयकुमार-सुलोचनाकी कथा।

भरत क्षेत्र-आर्य खंड-कुरुजांगल देश-हस्तिनागपुर नगरमें राजा जयकुमार महाराणी सुलोचना सहित राज्य करते थे। एक दिन वे दोनो राजा रानी एक स्थानमें बैठे हुए आकाशकी शोभा देख रहे थे कि राजा जयकी दृष्टि जाते हुए दो विद्याधरोंपर पड़ी। उन्हें देखते ही वह "हा प्रभावती" ऐसा कहकर मूर्छित हो गया, और रानी सुलोचना भी 'एक कबूतरके जोड़ेको देखकर "हा रतिवर" ऐसा कहकर अचेत हो गई। तब कुटुम्बके लोगोंने शीतोपचारादि करके सचेत किये। परन्तु वे दोनो एक दूसरेका मुँह देखते हुए कुछ देरतक अवाक्में हो रहे। यह देख लोगोंको वड़ा कौतुक हुआ। सुलोचना बोली;-हे नाथ, मै जिसका स्मरण करके अभी मूर्च्छित हुई थी, वह रतिवर कहॉ उत्पन्न हुआ है, बतलाइए। तब जयकुमारने कहा;-वह रतिवर मै ही हूँ। और जिसका स्मरण करके मै मूर्च्छित हुआ था, जान पड़ता है, वह प्रभावती तुम हो? सुलोचनाने कहा;-हॉ मैं ही हूँ। तब जयकुमारने कहा;-प्रिये, अपने दोनोके पूर्व भवके वृत्तान्त इन सब लोगोका कौतुक निवारण करनेके लिए कहो। तब सुलोचना कहने लगी:—

जम्बू द्वीप-पूर्व विदेह-पुष्कलावती देशके मृणालपुर नगरमें एक सुकेतु नामका राजा राज्य करता था। उसके

राज्यमे एक श्रीदत्त नामका महाजन और उसकी विमला नामकी स्त्री रहती थी। विमलाके एक रतिकांता नामकी पुत्री और रतिवर्मा नामका भाई था। रतिवर्माकी स्त्री कनकश्रीसे एक भवदेव नामका पुत्र था, जिसे लम्बी गर्दनके कारण लोग उष्ट्रग्रीव कहते थे। उसने एक दिन अपने मामासे कहा:-तुम अपनी पुत्रीका विवाह मेरे साथ कर दो। परन्तु उसने कहा,-रतिकांता तुझे नही मिल सकती। क्योकि तू व्यापारहीन तथा निखट्टू है। तब भवदेव यह कहकर द्वीपान्तरको चला गया:-मै बहुतसा धन कमाकर लाऊँगा, द्वीपान्तर जाता हूँ। वहॉ मुझे १२ वर्ष लगेंगे। जबतक मै न लौटूँ, रतिकांता किसी दूसरेको न देना। मामाने भी इस बातकी स्वीकारता दे दी। परन्तु जब बारह वर्ष बीत गये, और भवदेव नही आया, तब उसने उसी नगरके महाजन अशोकदेव जिनदत्ताके पुत्र सुकान्तके साथ रतिकान्ता व्याह दी। इसके पश्चात् जब उष्ट्रग्रीवने द्वीपान्तरसे आकर रतिकान्ताके विवाहकी बात सुनी, तब अतिशय क्रोधित हो, वह सुकान्तके मारनेके लिए बहुतसे सेवक लेकर चला। उसका घर घेर लिया, परन्तु उसे किसी तरह खबर लग जानेसे वह अपनी स्त्री सहित वहॉसे भाग गया और एक वनमे रम्यातट सरोवरके किनारे पहुँच उसने शक्तिसेन सहस्रभटकी शरण ली। शक्तिसेन शोभानगरके राजा प्रजापाल रानी देवश्रीका सेवक था। इसे बड़ा बनाकर राजाने प्रजाको उपद्रवोसे बचानेके लिए इस स्थानपर नियत किया था। उष्ट्रग्रीवने भी पीछा नही छोड़ा, वह भी पता लगाता हुआ वहॉ जा पहुँचा और शक्तिसेनके शिविरके (फौजके पड़ावके) बाहर ठहरकर बोला-हे शिविरके लोगो, सुनो, मेरा शत्रु तुम्हारे शिविरमे है। उसे मुझे सौप दो, नही तो फिर तुम जानोगे। यह सुनकर सहस्रभट धनुषबाण सहित बाहर आकर बोला;-मै सहस्रभट हूँ। क्या मेरे शरणमे आये हुएकी तू याचना करता है? क्या तुझमे इतनी सामर्थ्य है? तब भवदेव बोला:-हॉ! हॉ! मै भी तो कोटीभट हूँ। तब शक्तिसेनने, कहा;-क्या हर्ज है? मै तुझे मारकर प्रशंसा प्राप्त करूँगा कि सहस्रभटने कोटीभटको मारा। ले शीघ्र ही युद्धके लिए तैयार हो जा। यह सुनते ही उष्ट्रग्रीवके देवता कूच कर गये। डरके मारे वह वहॉसे भाग गया। और सुकान्त रतिकान्तासहित सहस्रभटके पास वही रहने लगा।

एक दिन शक्तिसेनने अमितगति नामके जंघाचारण मुनिको पड़िगाहन करके निरन्तराय आहार दिया। जिसके प्रभावसे वहाँ पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई। इसके पश्चात् शक्तिसेनने उस स्थानको छोड़ सरोवरके दूसरे तटपर डेरा डाल दिया। उस समय एक मरुदत्त नामका सेठ उस दाताके दर्शनोंके लिए वहाँ आया। तब शक्तिसेनने उससे भोजन करनेके लिए प्रार्थना की। मरुदत्तने कहा;-हाँ! मैं आपके यहाँ भोजन करूँगा, परन्तु तब, जब आप मेरा कहना करोगे। शक्तिसेनने कहा;-अच्छा, कहिए मैं अवश्य करूँगा। मरुदत्त बोला-आप यह निदान कीजिए कि मैं इस दानके फलसे दूसरे जन्ममें तुम्हारा पुत्र होऊँ। शक्तिसेनने कहा;-क्या ऐसा निदान मुझसे कराना आपको उचित है? उसने कहा-हाँ? उचित है। आखिर शक्तिसेनने वैसा ही निदान किया। पश्चात् उसकी स्त्री अटवीश्रीने भी निदान कर लिया कि मैं इस दानके अनुमोदनके फलसे आगामी जन्ममें अपने इसी पतीकी स्त्री होऊँ। उसी समय मरुदत्त सेठकी भार्याने भी निदान किया कि इस दानका अनुमोदन मैंने भी किया है, अतएव इसके प्रभावसे मैं भी आगामी जन्ममें अपने इसी पतिकी स्त्री होऊँ। जब परस्पर सब लोग इस प्रकार निदान कर चुके, तब मरुदत्तने संतुष्ट होकर भोजन किया। कालान्तरमें मरुदत्त सेठ मरकर उसी देशकी पुंडरीकिणी पुरीके राजा प्रजापालका कुबेरमित्र राजश्रेष्ठी हुआ। प्रजापालकी रानीका नाम कनकमाला और पुत्रका लोकपाल था। मरुदत्तकी स्त्री धारिणी मरकर कुबेरमित्रकी स्त्री धनवती हुई। तथा शक्तिसेन उसके उदरसे कुबेरकान्त नामका पुत्र हुआ। और अटवीश्री कुबेरमित्रकी बहिन और समुद्रदत्तकी स्त्री कुबेरदत्ताके प्रियदत्ता नामकी पुत्री हुई। उधर उग्रग्रीवने सहस्रभटका मरण सुनकर सुकान्त रतिकान्ताके घरमें आग लगा दी, जिससे वे दोनों मर गये और कुबेरमित्र सेठके घर रतिवर और रतिवेगा नामके कबूतर कबूतरी हुए। परन्तु इस पापको करके उग्रग्रीव भी नहीं बचा। गाँववालोंने क्रोधित होकर उसे भी उस जलते हुए घरमें डाल दिया, जिससे मरकर वह पुंडरीकिणी नगरीके समीप जम्बूग्राममें बिलाव हुआ।

कुबेरमित्र सेठके पुत्र कुबेरकांतको वे दोनों कबूतर बहुत प्यारे लगे। उन्हें वह अपने साथ पढ़ाने लगा। एक दिन सेठके महलके पीछे जो वन था, उसमें एक सुदर्शन नामके चारणमुनि पधारे। कुबेरकांत कबूतरोंके सहित

लौट आया। परन्तु यह बात कबूतरोंके सिवाय
उनकी वंदनाके लिए गया और धर्मश्रवण करके एकपत्नीव्रत लेकर
किसीको मालूम नहीं हुई। कुछ दिन पीछे कुबेरमित्रने अपने पुत्रके विवाहके लिए राजाकी पुत्री गुणवती, यशोवती,
समुद्रदत्त सेठकी पुत्री प्रियदत्ता, तथा और एक हजार आठ दूसरे लोगोंकी कन्यायें माँगी, और कन्याओंके पिताओंने
उन्हे देना भी स्वीकार किया, परन्तु जब विवाहका समय आया और सेठ कुबेरमित्र सब तैयारी करने लगा, तब
कबूतरोंने चोंचमें लिखकर उन्हे समझा दिया कि कुमारको एकपत्नीव्रत है। यह सुन सेठने आश्चर्ययुक्त होकर पुत्रसे
पूछा। परन्तु उसने भी यही कहा, इसलिए उसे बहुत खेद हुआ। आखिर इन सब कन्याओंमें
उसको सबसे प्यारी कौन होगी, इसका निर्णय करनेके लिए उसने एक उपाय किया। नगरके बाहर शिवंकर
उद्यानमें जगत्पाल चक्रवर्तीका बनवाया हुआ जो जिनमंदिर था, उसमें जाकर उसने भगवानकी पूजा की और उसी
दिन गुणवती यशोवती आदि कन्याओंको उपवास करनेके लिए कहा। उपवासके दिन रात्रिजागरण
किया। जब सवेरा हुआ तब एक हजार आठ सोनेकी थालियोंमें खीर परोसकर, एक २
सोनेके कटोरेमें घी भरकर तथा किसी एक कटोरेमें एक रत्न डालकर और प्रत्येक बर्तनके पास
रत्न आभरण तथा विलेपनादि पदार्थ रखकर सब चीजोंको उसने यक्षके आगे रक्खा और कन्याओंसे कहा;-इनमेंसे
तुम सब एक एक थाल आभरणादि सहित ले जाओ और सुदर्शन सरोवरके किनारे खीरका भोजन कर और शृंगार
विलेपनादि करके लौट आओ। तब वे सबकी सब कन्यायें कुबेरमित्रकी आज्ञानुसार सरोवरके किनारे जाकर वहाँसे
भोजन शृंगारादि करके लौट आईं। उस समय एक प्रियदत्ता कन्याने कहा—मामा मुझे घीके कटोरेमें एक रत्न मिला
है। यह सुनते ही सेठने जान लिया, यह कन्या कुबेरकांतकी प्रिया होगी। पश्चात् उसने राजादिकोंसे कहा;-महाराज,
मेरे पुत्रको एकपत्नीव्रत है, इसलिए आप अपनी २ कन्याओंको ले जाइए और किसी दूसरे सुयोग्य वरको दीजिए।
तब राजाने पूछा;-इस पुण्यमूर्ति कुमारने ऐसा व्रत क्यों लिया? और कुमारको बहुत कुछ समझाया, परन्तु वह
अपनी प्रतिज्ञासे नहीं हटा। यह सुन वे सब कन्यायें बोलीं—महाराज, इस जन्ममें इस कुमारके सिवाय हमारा कोई

दूसरा भरतार नहीं है, ऐसी प्रतिज्ञा है, इसलिए हम सब जिनदीक्षा धारण करेंगी। अन्तमें ऐसा ही हुआ, प्रियदत्ताके सिवाय अन्य सब कन्यायोंने अनंतमती आर्यिकाके समीप दीक्षा ले ली। राजादिक उनकी वन्दना करके नगरमें लौट आये। उधर कुवेरकांतके साथ प्रियदत्ताका विवाह आनन्दपूर्वक हुआ। पूर्व भवमें जो मुनियोंको दान दिया था, उस प्रभावसे उसके उद्यानके सम्पूर्ण वृक्ष कल्पवृक्ष हो गये। और घर नवों निधिसे पूर्ण हो गया। धर्मके फलसे क्या नहीं हो सकता? इस प्रकार कुवेरकांत सुखसे काल विताने लगा।

राजा प्रजापाल कुछ वैराग्यका कारण पा अपने लोकपाल पुत्रको राज्य सिंहासनपर आरूढ़ कर और कुवेरमित्र सेठको उसकी रक्षाका भार सौंप दश हजार क्षत्रियोंके सहित अमितगति चारणमुनिके समीप मुनि हो गये और तप करके मोक्षमें गये। कुवेरमित्र सेठ राजा लोकपालको मनमाना नहीं चलने देता था, इस कारण राजाके सम्पूर्ण तरुण मंत्रियोंसे उसका द्वेष हो गया। उन्होंने मिलकर राजाकी एक वकुलमाला नामकी विलासिनीको मूल्यवान् वस्त्र भूषणादि देकर कहा;-थोड़ी भरी हुई नींदमें-जिसमें राजा सुन ले, तू इस तरह आप ही आप कहना कि सेठ तुमसे वयोवृद्ध है और गुणमें भी बड़े हैं, इसलिए आप सिंहासनपर बैठे रहकर उन्हें नीचे बैठाना अनुचित है। विलासिनीने यह बात मान ली और उसी प्रकार कह दिया। राजाने भी सुनकर समझा कि स्वप्न हुआ है। इसलिए सवेरे जब सेठ कुवेरमित्र आयें, तब उनसे विनयपूर्वक कह दिया-जब मैं बुलवाऊँ, तब आप आया कीजिए। उस दिनसे सेठजी अपने घर ही रहने लगे। और राजा नई उमरके मंत्रियोंकी सलाहसे इच्छानुसार चलने लगा।

एक दिन रातको प्रेमकी लड़ाईमें राजाके सिरमें वसुमती रानीके पैरकी चोट लग गई। तब सवेरे ही राजसभामें जाकर उसने मंत्रियोंसे पूछा-जिस पाँवकी ठोकर मेरे सिरमें लगी हो, उस पाँवका क्या करना चाहिए? मंत्रीगण बोले;-महाराज, उस पैरको काट डालना चाहिए। इस उत्तरसे राजा प्रसन्न हुआ और उसी समय उसने कुवेरमित्र सेठको बुलाकर उनसे भी यही प्रश्न किया। सेठने कहा;-महाराज, यदि वह पाँव गुरुका है तो उसकी पूजा करनी चाहिए, गृहलक्ष्मीका (स्त्रीका) हो तो उसे नूपुर (विछुए) आदि अलंकारोंसे भूषित करना चाहिए और

रतिवेगा कबूतरी मरकर उसी दक्षिण श्रेणीके भोगकापुरके राजा वायुरथ और रानी स्वयंप्रभाके प्रभावती नामकी पुत्री हुई। यह अपनी एक हजार वहनोंमें सबसे जेठी थी।

हिरण्यवर्मा और प्रभावतीके सकल कलाओंमें निपुण तथा जवान होनेपर एक दिन वायुरथ प्रभावतीसे वोला:- वेटी, सम्पूर्ण विद्याधरोंके कुमारोंमे तुझे कौन श्रेष्ठ जान पड़ता है, जिसके साथ तेरा विवाह कर दूं। प्रभावती वोली;- पिताजी, मुझे जो कुमार गतियुद्धमें जीत लेगा, उसीके साथ विवाह करूंगी, अन्यके साथ नहीं। इसके पश्चात् प्रभावतीकी एक हजार वहिनोंसे पूछा तो उन्होंने कहा-जो प्रभावतीका वर होगा, वही हमारा होगा, नहीं तो हम जिनदीक्षा ले लेवेंगी। तब वायुरथने मेरुगिरिके पास सब विद्याधरोंको एकत्र किये और पांडुक वनमें स्वयंवरके लिए खडे होकर प्रभावतीने घोषणा की कि सौमनस वनमें ठहर कर मोती और रत्नोंकी मालाको छोड़नेपर जमीनपर गिरते २ मेरुकी तीन प्रदक्षिणा देकर जो कोई इस मालाको ग्रहण कर लेगा, वही जीतेगा। ऐसा कह उसने अपने कहे अनुसार माला डाली और अनेक विद्याधरोंको उसमें हरा दिया। पीछे हिरण्यवर्माने अपनी शीघ्र गतिसे उस मालाको झेलकर, प्रभावतीको जीत उसके करकमलों द्वारा डाली हुई वरमाला पहिन ली। लोगोंको इससे बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके पश्चात् वह उक्त एक हजार कुमारियोंके साथ भी पाणिग्रहण करके सुखसे काल व्यतीत करने लगा और राजा आदित्यगति उसे राज्य दे मुनि हो अविनाशी मोक्ष लक्ष्मीके स्वामी हुए।

हिरण्यवर्मा दोनो श्रेणियोंको जीत विद्याधरोंका स्वामी हो बड़ी विभूतिसे प्रभावतीके साथ सुखोंका अनुभव करने लगा। दानके अनुमोदनके फलसे प्रभावतीके सुवर्णवर्मादि अनेक पुत्र हुए। वहुत काल राज्य करके एक दिन वह प्रभावतीके सहित पुंडरीकिणी नगरीके जिन मंदिरकी वन्दनाके लिए गया था, सो उस नगरीके देखते ही दोनोंको जातिस्मरण हो गया। तब अपने नगरको लौटकर उसने अपने पुत्र सुवर्णवर्माको राज्य दे दिया और चारणऋद्धिके धारक गणधरमुनिके निकट अनेक पुरुषोंके साथ दीक्षा लेकर वह कुछ समयमें स्वयं चारणऋद्धि और सकल शास्त्रका धारण करनेवाला हो गया। इधर प्रभावतीने अनेक स्त्रियोंके साथ सुशीला आर्यिकाके समीप जिनदीक्षा ले ली।

यदि बालकका हो तो उसे मिठाई खिलाकर प्रसन्न करना चाहिए। यह उचित उत्तर सुनकर राजा बहुत संतुष्ट हुआ, और कुबेरमित्र श्रेष्ठीसे प्रतिदिन राजसभामें आनेकी इच्छा प्रगट करके सुखसे राज्य चलाने लगा।

एक दिन सेठानी धनवती कुबेरमित्रके बाल कंघेसे साफ कर रही थी। उसने सिरमें दो चार सफेद बाल देख उससे कहाः—नाथ, आपके बाल पक गये हैं। सुन कुबेरमित्रने संसारकी क्षणभंगुर दशाओंका विचार करके उसी समय अपने पुत्र कुबेरकांतको राजा लोकपालके आधीन कर अनेक लोगोंके साथ वनमें भद्रबाहुके समीप जिनदीक्षा ले ली। और कुछ कालमें मुक्ति प्राप्त की। इधर कुबेरकांतके कुबेरदत्त, कुबेरमित्र, कुबेरदेव, कुबेरप्रिय, और कुबेरकन्द नामके पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। एक दिन उसने अमितगति अंगचारण मुनिको आहारके लिए पड़गाहे, जिन्हें कि उसने पूर्व जन्ममें आहार दिया था। सो अन्तरायरहित आहारके होनेसे पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई। उस समय पुष्पवृष्टि आदि देख-कर वे दोनों कबूतर आनन्दसे नृत्य करने लगे। उन्हें देखकर कुबेरकांतने कहा—हे रतिवर, और हे रतिवेगा, मैं इस पुण्यका हजारवाँ हिस्सा तुम्हें दे दूँगा। यह सुन कबूतरयुगल स्नेहसे उसके पावोंपर पड़ गये। तब कुबेरकांतने उन्हें उनके योग्य आभूषणोंसे सजा दिया। सो एक दिन उन आभूषणोंसे सजे हुए वे दोनों कबूतरकबूतरी विपुलावती नदीके किनारे रेतके ऊपर क्रीड़ा कर रहे थे, उस समय उन्हें आकाशमें दिव्य विमानपर जाते हुए दो विद्याधर दिखाई दिये। उन्हें देख उन दोनोंने निदान किया कि मुनिदानकी अनुमोदनासे हम ऐसे विद्याधरयुगल होवें। इसके पश्चात् एक दिन वे जम्बू ग्रामके चैत्यालयके आगे लोगोंके बिखेर हुए चावलोंको चुन रहे थे कि एकाएक उस बिलावने जो कि पूर्व जन्ममें उग्रश्री था, आकर रतिवरको मुँहमें दबा लिया। यह देख रतिवेगाने रतिवरके तीव्रमोहसे बिलावको चोंचें मारना शुरू किया। जिससे क्रोधित हो बिलावने उसे छोड़ रतिवेगाको दबा लिया। इतनेमें लोगोंने आकर उनको छुड़ा लिया। दोनों कंठगतप्राण हो तड़फने लगे। तब लोग उन्हें उठाकर वसतिकामें ले आये। और वहाँ एक आर्यिकाने उन्हें पंचनमस्कार मंत्र दे दिया। जिसे स्मरण करके २ रतिवर कबूतर तो प्राण छोड़ विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें सुसीमा नगरके राजा आदित्यगति और रानी शशिप्रभाके अतिशय रूपवान् हिरण्यवर्मा पुत्र हुआ और

एक दिन गुणधर महामुनि पुंडरीकिणी नगरीके शिवंकर उद्यानमे आकर विराजमान हुए। उनकी वन्दनाके लिए राजा गुणपाल अपने परिवारसहित आया। वन्दना कर धर्मोपदेश सुन उसने हिरण्यवर्मा मुनिका अतिशय सुन्दररूप देखकर पूछा;–भगवन्, ये मुनि कौन है? और किस कारण संसारसे विरक्त हो गये हैं? गुणधर मुनिने कहा;–राजन्, ये पूर्व जन्ममे इसी नगरीके कुवेरकांत सेठके घर रतिवर नामके कबूतर थे। सो वहाँ मुनियोंके दानकी अनुमोदना करके उस पुण्यके प्रभावसे हिरण्यवर्मा विद्याधर चक्रवर्ती हुए थे। अब इस नगरीको देखकर पूर्व भवका स्मरण हो जानेसे इन्हे वैराग्य हो गया है और इसीसे इन्होने परम दिगम्बरी दीक्षा धारण की है। यह सुन राजा गुणपालको धर्मके फलमें गाढ़ श्रद्धान उत्पन्न हुआ और इस कारण उस दिनसे वह धर्ममे अधिक तत्पर हो गया। उसी समय सुशीला आर्यिका भी सब आर्यिकाओंके सहित उसी नगरमें एक स्थानपर आकर ठहरी। सो राजा उनकी भी वन्दना करके नगरमे लौट आया। पश्चात् कुवेरकांत सेठकी स्त्री प्रियदत्ता मुनियोंकी वन्दना करके आर्यिकाओंके पास गई। उसने ज्यो ही उनकी वन्दना की कि प्रभावती उसे पहचानकर प्रेमपूर्वक बोली;–प्रियदत्ते, सुखसे तो है? उसने कहा;–हे आर्ये, आपने मुझे कैसे पहचान लिया? तब प्रभावतीने अपना सब हाल उसे कह सुनाया और फिर पूछा–तुम्हारा पति कुवेरकांत कहाँ है? प्रियदत्ता कहने लगी;–हे प्रभावती, एक दिन एक सुरूपवती आर्यिकाको आहार देकर मैने पूछा;–हे माता, तू ऐसी मनोहर रूपवती तरुण अवस्थामे किस कारण आर्यिका हो गई है? और तू कौन है? तब वह बोली;–मै विजयार्द्ध-दक्षिणश्रेणी–गांधारपुरके राजा गंधराज और रानी मेघमालाकी रतिमाला नामकी पुत्री और मेघपुरके राजा रतिवर्माकी प्रिया हूँ। एक दिन मेरा पति मुझे यहाँके जिनमंदिरोंकी वंदना करानेको लिवा लाया था, सो मैने उस समय तेरे पति कुवेरकांतको देखकर अपने पतिसे पूछा:–ये कौन है? तब उन्होंने कहा:–मेरा मित्र कुवेरकांत श्रेष्ठी है। यह सुन मैं तेरे पतिपर अतिशय आसक्त हो गई। जिनदेवकी पूजाके पीछे मै उसके साथ संयोग करनेके लिए वनमे क्रीड़ा करनेके मिस गई। और वहाँ "हे नाथ, मुझे साँपने डस ली" ऐसा कहकर मूर्छित हो गई। तब मेरा पति विह्वल सरीखा हो मुझे निर्विष करनेके लिए स्वयं प्रयत्न करने लगा; परन्तु जब मेरी मूर्च्छा नही

गई, तब कुबेरकांतके समीप जाकर उसने कहा–मित्र, मेरी प्रियाको अच्छा कर दो। तब वह मेरे पतिको किसी वृक्षकी जड़ लानेके लिए भेज स्वयं मंत्र पढ़ पढ़कर फूँकने लगा। परन्तु मै यथार्थमें बहाना बनाकर मूर्छित हुई थी, इसलिए पतिके जाते ही एकांत पाकर उठ बैठी और बोली:–सेठजी, मुझे सर्पने नहीं काटा है। मै तुमपर अतिशय आसक्त हूँ, इसलिए यह तुमसे मिलनेका उपाय किया था। सो अब संभोगदान देकर मेरी रक्षा करो। तब कुबेरकांत यह कहकर कि "हे बहिन, मै तो नपुंसक हूँ। तू शीलवती पतिव्रता होकर रह" वहाँसे चला गया। पश्चात् मेरा पति आ गया, सो मै उसके साथ अपने नगरको चली गई। उस समय पतिने जाना कि सेठके मंत्रसे यह अच्छी हो गई है।

फिर एक दिन तुझे पुत्रके साथ रथपर चढ़कर जिनमंदिरको जाती हुई देख मैने पतिसे पूछा–ये कौन जा रही है? पतिने कहा:–मेरे मित्रकी वल्लभा प्रियदत्ता है। तब मैने फिर कहा:–तुम्हारा मित्र तो नपुंसक है, फिर उसके पुत्र कहाँसे हुआ? पतिने कहा:–मेरे मित्रने एकपत्नी व्रत धारण कर रक्खा है, इसलिए अन्य स्त्रियोंने द्वेपसे उसे ऐसा प्रसिद्ध कर रक्खा है। यथार्थमे वह नपुसक नहीं है। यह सुन मै अपने मनमे अपनी वारंवार निन्दा करती हुई अपने नगरको चली गई।

एक दिन अपनी वर्षगाँठकी रातको मै अपनी बुरी चेष्टाका स्मरण कर करके विषण्ण अर्थात् उदासीन बैठी हुई थी। यह देख पतिने उदास होनेका कारण पूछा और उस समय मैने उनसे अपने सब चरित्र सत्य सत्य कह दिये। उन्हे सुन पतिने कहा:–संसारी जीवोको ऐसी ही बुरी परणति हुआ करती है। इसमे कुछ आश्चर्य नहीं है। अब संक्लेश मत कर। तब मैने कहा:–चाहे जो हो, अब तो मै सबेरे ही जिनदीक्षा ले लूँगी। यह सुन उन्होंने कहा:–अच्छा, तो मै भी तेरे ही साथ दीक्षा लूँगा। पश्चात् दूसरे दिन पुत्रको राज्य सौंपकर हम दोनो बहुतसे पुरुप स्त्रियोंके साथ दीक्षित हो गये। बस, यही मेरी दीक्षाका कारण है।

प्रियदत्ता उस सुरूपवती आर्यिकाकी सुनाई हुई उक्त कथा कहकर बोली–प्रभावती, इसके पश्चात् रतिमाला और

रतिवर्माकी दीक्षाका हाल सुनकर मेरे पति (कुबेरकांत) उनके पास गये और उन्हें नमस्कार करके अपने पुत्र कुबेरप्रियको राजा गुणपालकी रक्षामे सौंपकर कुबेरदत्तादि चारो पुत्रों तथा और भी कई पुरुषोंके सहित दीक्षित हो गये और घोर तप करके मुक्तिको प्राप्त हो गये । इस प्रकार कुबेरकांतके समाचार सुनाकर प्रियदत्ता अपने घर लौट गई ।

वह विलाव जिसने रतिवर और रतिवेगाको मुँहमे दवाया था, मरकर पुंडरीकिणी नगरीके कोटपालका विद्युद्वेग नामका प्यादा हुआ था । उसदिन उसकी स्त्री प्रियदत्ताके साथ मुनिकी वंदनाको आई थी । सो वह देरसे लौटकर घर गई, इससे विद्युद्वेगने क्रोधित होकर पूछाः–इतना विलम्ब कहाँ लगाया ? तब उसने हिरण्यवर्मा और प्रभावतीका सुना हुआ चरित्र सब कह सुनाया, जिससे उसे जातिस्मरण हो गया । मुनि और आर्यिकाको अपने पूर्वभवके वैरी जानकर वह स्त्रीसे बोला–प्रिये, उन्हें चलकर मुझे दिखला दे, सो स्त्रीने साथ ले जाकर दिखला दिया । तब रातको वह पापी वहाँ गया और दोनोको अर्थात् हिरण्यवर्मा और प्रभावती आर्यिकाको एकत्र बाँधकर श्मशानमे ले गया । और एक जलती हुई चितामे डालकर गर्वसे बोलाः–मै वही भवदत्त (उग्रग्रीव) हूँ जिसने तुम दोनोको शोभा नगरमे जलाकर मारा था और जम्बू ग्राममें गला दवाकर माराथा । इसके पश्चात् उन दोनो तपस्वियोंने शान्त चित्तसे शरीर छोड़ा । सो हिरण्यवर्मा तो सौधर्म स्वर्गके कनकप्रभ विमानेम सौधर्म इन्द्रका अन्तः परिषद्य कनकप्रभ देव हुआ और प्रभावती उसी कनकप्रभ देवकी कनकप्रभा देवी हुई । वहाँ दोनोंने चिरकालतक सुख भोगे और फिर आयु पूरी करके कनकप्रभ देव तो ये राजा मेघेश्वर (जयकुमार) हुए हैं और वह देवी कनकप्रभा मै सुलोचना हुई हूँ । इस प्रकार सुलोचनाने अपने भवांतर कहे । सुनकर सब लोग प्रसन्न हुए ।

देखो, एक वार मुनिको आहार देनेस शक्तिसेनने ऐसे अनुपम वैभवको पाया और कबूतर कबूतरी उस दानकी अनुमोदनासे जयकुमार सुलोचना हुए । तब फिर जो कोई भव्य मन वचन कायकी शुद्धतापूर्वक मुनिदान करे, तो क्यों न अपूर्व सुखोका स्वामी हो ? अवश्य हो ।

---

(५) सुकेतु श्रेष्ठीकी कथा।

जम्बू द्वीप-पूर्व विदेह-पुष्कलावती देश-पुंडरीकिणी नगरीमे वसुपाल नामका राजा राज्य करता था। वहाँ एक जैनधर्ममे अतिशय श्रद्धालु सुकेतु नामका वैश्य अपनी स्त्री धारिणीसहित रहता था। वह एक वार व्यापारके लिए द्वीपान्तर जानेको घरसे निकलकर शिवंकर उद्यानमे नागदत्त श्रेष्ठीके वनवाये हुए नागभवनके निकट प्रस्थान करके ठहरा था। सो धारिणी मध्याह्नके समय उसके लिए घरसे रसोई तैयार करके वहाँ ले गई। सुकेतु अतिथिसंविभाग व्रत धारण किये था, इसलिए वह मुनियोंके आनेकी वाट देखने लगा। इतनेमें गुणसागर मुनि अपनी प्रतिज्ञाके पूरी होनेपर चर्याके लिए वहाँसे निकले। सुकेतुने उनका विधिपूर्वक पड़िगाहन करके अंतरायरहित आहार दिया जिसके प्रभावसे पंचाश्चर्य हुए। तथा सुकेतुके अधिक निर्मल परिणामोंके कारण साढ़े तीन करोड़ रत्नोंकी वर्षा हुई। नागदत्त श्रेष्ठीने यह कहकर कि "ये रत्न मेरे नागभवनके आँगनमें वरसे है, इसलिए मेरे है" उन्हे अपने घर ले गया। परन्तु वे रत्न थोड़ी देरमे आप ही आप जहाँके तहाँ चले गये। तव नागदत्त फिर इकट्ठे करके उन्हे ले गया। परन्तु आश्चर्यकी वात है कि वे वहीके वही फिर पहुँच गये। यह देख क्रोधित हो नागदत्तने उन रत्नोंको फोड़नेका विचार करके एक रत्नको शिलापर दे मारा, किन्तु वह फूटा नही, उलटा लौटकर उसके लिलाटमे जोरसे लगा। यह देख देवोने हँसी करके उसका नाम माणिनागदत्त रख दिया। तव नागदत्त अतिशय क्रोधित हो महाराज वसुपालके समीप जाकर बोला;–हे देव, मैने जो भवन नामका नागभवन वनवाया है, उसके आगे रत्नोंकी वर्षा हुई है। सो आपको उन्हे अपने भंडारमे मँगाकर रखना चाहिए। राजाने कहा–ऐसा अकारण द्रव्य मुझे नही चाहिए। परन्तु नागदत्त माना नही, पैरोंपर पड़ गया। तव राजाने उसके अधिक आग्रहसे उन्हें अपने भँडारमे मँगाकर रख लिये। परन्तु थोड़ी ही देरमे वे वहीके वही पहुँच गये। राजाने पूछा;–ऐसा क्यों हुआ? तव किसीने कह दिया कि सुकेतु श्रेष्ठीके दिये हुए मुनिदानके प्रभावसे ये रत्न वरसे है, इसीलिए शायद ऐसा हुआ होगा। तव राजाने विना

विचारे हाय ! मैने यह क्यो किया, इस प्रकार पश्चात्ताप करते हुए सुकेतुको बुलाया । सो वह पंचरत्न और कल्पवृक्षोके फूल लेकर आया । महाराजकी नजर किये । उन्होंने कहा;–मैने जो विना सोचे विचारे अकृत किया है, सेठजी ! उसे क्षमा करके सुखसे अपने घर रहिए । तव-श्रेष्ठीने कहा;–महाराज, आप मेरे स्वामी हैं । क्षमा करनेकी कौनसी वात है । रत्नोकी क्या वड़ी वात है ? प्रयोजन हो तो, जितने चाहे उतने रत्न इस सेवकके घरसे मॅगा लीजिए । राजाने कहा;–तुम्हारे घरमें रक्खे हुए क्या मेरे नही है ? जव आवश्यकता होगी, तव मॅगा लूॅगा । श्रेष्ठी प्रसन्न होकर अपने घर आया और सुखसे रहने लगा ।

राजा सुकेतुपर इतना प्रसन्न हुआ कि जो कोई सुकेतुकी प्रशंसा करता था । उससे वह प्रसन्न होता था, और मणिनागदत्तकी जो स्तुति करता था उससे द्वेष करता था एक दिन राजाने सुकेतुकी वहुत प्रशसा की, परन्तु उसे जिनदेव नामका एक श्रेष्ठी सह न सका । इसलिए वोला–महाराज, सुकेतुके रूप गुणकी प्रशंसा करते है, अथवा ऐश्वर्यकी करते है ? यदि रूप गुणकी प्रशंसा करते है, तो कीजिए । और जो धन वैभवकी करते हों, तो पहले मेरे साथ धनवाद कराइए पीछे जो जीतै, उसीकी प्रशंसा कीजिए । यह सुन, सुकेतुने कहा:–ऐश्वर्यका क्या घमंड करता है, चुप रह । जिनदेवने कहा;–पुरुषको कोई कीर्तिका काम करना चाहिए, इसलिए मैने प्रार्थना की है कि तुम मेरे साथ धनवाद करो । सुकेतु वोला;–जैनीको वाद करना उचित नही है । तथापि जिनदेवने आग्रह नहीं छोड़ा और सुकेतुको धनवाद स्वीकार करना पड़ा । दोनोंने परस्पर प्रतिज्ञापत्र लिखकर राजाके हाथ सौंप दिये कि जो हारेगा, जीतनेवाला उसकी लक्ष्मी ले लेगा । पश्चात् दोनोंने अपने २ घर जाकर मैदानमे सारे धनका ढेर लगाया । और राजादिकोंने दोनोके धनकी परीक्षा कर सुकेतुको विजयपत्र दे दिया । क्योंकि धनभंडार उसीके यहॉ अधिक था । तव जिनदेव वोला कि यथार्थमें मै जीता हूॅ । क्योंकि सुकेतु सरीखे सखाकी सहायसे आज अनंत संसारके करनेवाले मोह महारिपुको मैने जीत लिया है । ऐसा कहकर सवसे क्षमा मॉग सुकेतुके रोकनेपर

भी जिनदेवने संसार-देह-भोगोंसे विरक्त हो जिनदीक्षा ले ली। तब सुकेतु जिनदेवके पुत्रको उसकी सम्पूर्ण लक्ष्मी दे दानादिक सत्कार्य करता हुआ सुखमें रहने लगा।

मणिनागदत्त सुकेतुके वैभवको देख नहीं सकता था, इसलिए उसने एक दिन अपने नागालयमें तपश्चरण-पूर्वक नागोंका आराधन किया। पहले नागदत्तका पुत्र भवदत्त एक अर्जुन नामके चांडालको संबोधन करती हुई यक्षीको देखकर कामज्वरसे पीड़ित होकर मर गया था और उस नागालयमें उत्पल नामका देव हुआ था। सो नागदत्तके आराधनसे प्रसन्न हो वह बोला–हे नागदत्त, यह कायक्लेश क्यों करता है ?

नागदत्त—तुम्हारा आराधन करता हूँ ?

उत्पलदेव—किसलिए ?

नागदत्त—जिस लक्ष्मीसे मैं सुकेतुकी लक्ष्मीको जीत सकूँ, वह मुझे तुम्हारे प्रसादसे मिल जावे, इसलिए।

उत्पल—तुम पुण्यहीन हो, इसलिए तुम्हें उसकी लक्ष्मी नहीं दे सकता हूँ।

नागदत्त—पुण्यहीन हूँ, इसीलिए तो तुम्हें आराधन करता हूँ, नहीं तो तुम्हारी आराधनाका प्रयोजन ही क्या था ?

उत्पल—लक्ष्मीको छोड़कर और जो कुछ तुम कहोगे, सो करूँगा।

नागदत्त—तो सुकेतुको मार डालो।

उत्पल—निर्दोष पुरुषको नहीं मार सकता। उसे कुछ दोष लगाकर अलबत्तह मार डालूँगा।

नागदत्त—किसी भी उपायसे मारो, परन्तु मारो। बस उसके मरनेसे मैं संतुष्ट हो जाऊँगा।

उत्पल—तो मैं वन्दरका रूप धारण करता हूँ। मुझे साँकलसे बाँधकर तुम सुकेतुके निकट ले चलो। वह जब पूछे कि यह वन्दर क्यों ले आये ? तब तुम कहना कि मैं वनमें गया था, वहाँ मुझे यह वन्दर दिखलाई दिया। देखते ही इसने पूछा कि क्या देखते हो ? मैंने कहा–तू वन्दर होकर मनुष्य सरीखा बोलता है! इसने कहा–मैं वन्दर नहीं हूँ, पुण्यदेवता हूँ। मेरा स्वभाव उलटा है। मैंने कहा–सो कैसा ? तब यह बोला–जो मेरा स्वामी होता है, वह

जो कुछ आज्ञा करता है, उसे मै कर लाता हूँ। परन्तु यदि वह कुछ आज्ञा नहीं देता है, तो मै उसे मार डालता हूँ। और इसी विरुद्ध स्वभावसे किसीका आश्रय नही लेकर मै वनमें रहता हूँ। इसकी उक्त आश्चर्यजनक बातें सुन इसे आपके पास ले आया हूँ, यदि आपमें आज्ञा देते रहनेकी सामर्थ्य है, तो इसे रख लो, नही तो मै छोड़े देता हूँ।

उत्पलकी बातें सुन नागदत्तने वैसा ही किया और आखिर सुकेतुने उस बन्दरको अपने यहाँ रख लिया। रखते देर नही हुई कि वह बोला;–स्वामिन, आज्ञा कीजिए। सुकेतुने कहा,–इस नगरके बाहर अनेक जिनमंदिरोंसे युक्त एक रत्नमयी नगर बनाओ। बन्दरने कहा;–मुझे छोड़ दीजिए, अभी जाकर बनाता हूँ। सुकेतुने छोड़ दिया। तब उसने बाहर जाकर थोड़े ही समयमें मनुष्योंको कौतुक उत्पन्न करनेवाला वैसा ही नगर तैयार कर दिया। और लौटकर फिर आज्ञा माँगी। तब सुकेतु ऐसा कहकर कि "मै राजाके समीप जाकर आता हूँ, तब तक तू ठहर" राजाके पास गया, और बोला;–देव, मैने एक नगर बनवाया है, वहाँ आप राज्य कीजिए। राजाने कहा;–तुम्हारे पुण्यके उदयसे वह नगर बना है, सो अब वहाँका राज्य तुम्हीं करो। यह सुन सुकेतु राजाका आभार मानता हुआ घर आया। आते ही बन्दर बोला;–स्वामिन्, आज्ञा दीजिए। सुकेतु बोला;–अच्छा सब नगरको ले जाकर मेरे उस नवीन नगरमें ठहराओ। बातकी बातमें उसने ऐसा ही कर दिखाया। और सुकेतुको उसकी स्त्री धारिणी सहित राजभवनमें ले जाकर सिंहासनपर बैठाय फिर आज्ञा माँगने लगा। तब सुकेतुने कहा;–गंगाजल लाकर धारिणीसहित मेरा राज्याभिषेक करके राज्य मुकुट पहनाओ। बन्दरने वैसा ही किया और फिर आज्ञा माँगने लगा। सुकेतु बोला;–नागदत्तादि सब लोगोंको महल मकान देकर उनको अक्षय धनधान्यादिसे पूर्ण कर दो। उसने तत्काल ही वैसा भी कर दिया, और फिर आज्ञा माँगी। तब सुकेतुने खिसियाकर कहा;–अच्छा, मेरे राजमहलके आगे एक खंभा गड़ाकर उसकी जड़से एक साँकल बाँध उस साँकलके सिरपर एक कुंडलमें अपना सिर फँसाकर जबतक मैं नहीं रोकूँ, तबतक खंभेके ऊपर चढ़ और नीचे उतर। बेचारे बन्दरने इस आज्ञाके अनुसार दो तीन दीनतक खंभेपर वह कसरत की, परन्तु जब सुकेतुने नहीं रोका, तब थककर वह वहाँसे भाग गया।

सुकेतु सेठ वहुत समयतक राज्य करके एक दिन अपने सिरमें श्वेत वाल देख संसारसे विरक्त हो गया। इसलिए वह अपने पुत्रको राज्य दे राजा वसुपालसे अपनेको छुड़ा अर्थात् आज्ञा ले मणिनागदत्तादि वहुत लोगोंके साथ भीम भट्टारकके निकट दिगंवर मुनि हो गया। और तपस्या करके मोक्षको प्राप्त हुआ। वारिणी भी तप कर अच्युत स्वर्गमे देव हुई। माणिनागदत्तादि यथायोग्य गतियोंको प्राप्त हुए। सुकेतुके घरसे निकलते ही वह देवमयी नगर लोप हो गया।

इस प्रकार एक वारके दानके फलसे सुकेतुको देवदुर्लभ सुख प्राप्त हुए। और अन्तमें मोक्ष प्राप्त हुआ। इसलिए सव लोगोंको दानधर्ममे तत्पर होना चाहिए।

---

(६) आरंभक ब्राह्मणकी कथा।

आर्य खंडके पद्मपुर नगरमे शंखदारुक नामके ब्राह्मणका पुत्र आरंभक वड़ा भारी विद्वान् भद्र मिथ्यादृष्टि था। वहुतसे विद्यार्थियोंको पढ़ाता हुआ वह सुखसे रहता था। एक दिन चर्याके लिए आते हुए एक महामुनिको पड़िगाहन करके उसने अन्तरायरहित आहार दिया। उस पुण्यके फलसे आयुके अंतमे मरकर वह भोगभूमिमे उत्पन्न हुआ। फिर वहाँसे स्वर्ग और स्वर्गसे चयकर धातकी खंडमे चक्रपुरके राजा हरिवर्मा और रानी गांधारीके व्रतकीर्ति पुत्र हुआ। वहाँ तपकर स्वर्ग गया। फिर वहाँसे चयकर जम्बू द्वीप-पूर्व विदेह-मंगलावती देश—रत्नसंचयपुरके राजा अभयघोष तथा रानी चन्द्राननाके पयोवल पुत्र होकर तप करके प्राणत स्वर्गमे देव हुआ। और फिर वहाँसे चयकर इस भरत क्षेत्रके पृथ्वीपुरके राजा जयंधर और रानी विजयाका पुत्र जयकीर्ति हुआ। जयकीर्ति तपस्या करके अनुत्तर स्वर्गमे देव हुआ और वहाँसे च्युत होकर अयोध्याके राजा जितशत्रुके (अजितनाथके पिताके) भाई विजयसागर और रानी विजय-सेनाके सगर नामका दूसरा चक्रवर्ती हुआ। सो भरतके समान छह खंडका राज्य करता हुआ सुखसे रहने लगा। उसके साठ हजार पुत्र हुए। वे प्रतिदिन जव उससे आज्ञा माँगते थे कि हम लोग क्या करे। तव चक्रवर्ती कह

देते थे कि हमको क्या दुःसाध्य है, जिसकी आज्ञा करें। परन्तु आखिर एक दिन पुत्रोंके आग्रहसे उन्होंने आज्ञा दे दी कि कैलाशके चारों तरफ एक जलकी खाई खोदो। तदनुसार सब पुत्रोंने मिलकर दंड रत्नसे खाई खोदी। और बड़े पुत्र जान्हवीका बेटा भगीरथ तथा किसी अन्यका बेटा भीमरथ ये दोनों दंड रत्न लेकर गंगाका जल लानेके लिए गये। इतनेमें दंड रत्नकी चोटसे क्रोधित हो धरणेन्द्रने इतर सब पुत्रोंको भस्म कर दिये।

महाराज सगरने पहले कभी किसी पुरुषको पंचनमस्कार मंत्र दिया था, उसके फलसे वह शरीर छोड़ सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ था। सो अपने आसनके कंपायमान होनेसे वह ब्राह्मणका वेष धर सगरके समीप आया और भोगासक्त जान उन्हें संबोधित कर चला गया। तब राजा सगर विरक्त हो भगीरथको राज्य दे दीक्षा ले तपस्या कर मोक्षको गये।

एक दिन भगीरथने धर्माचार्यकी वन्दना करके पूछाः—भगवन्, मेरे पिता तथा काकाओंने कैसा समुदायकर्म उपार्जन किया था; जिससे उन सबकी एक साथ मृत्यु हुई। तब मुनिराज कहने लगेः—वे सब कई भव पहले अवंती ग्राममें साठ हजार कुटुम्बी थे। एक बार वे सबके सब मुनिकी निंदा करते थे, सो एक कुम्हारने (कुंभकारने) उन्हें रोका, पश्चात् एक दिन जब कुम्हार कहीं दूसरे गाँवको चला गया, तब बहुतसे भीलोंने मिलकर उन कुटुम्बियोंको मार डाला। मरकर सबके सब शंख कौड़ी आदि अनेक योनियोंमें जन्म लेकर अयोध्या नगरीके बाहर गिजाई (लाल रंगके कीड़े) हुए। और वह कुंभकार मरकर किन्नर होकर अयोध्याका मंडलेश्वर राजा हुआ। सो उसके हाथीके पाँव तले पड़कर वे सबके सब कीड़े मर गये। और दूसरे जन्ममें तपस्वी होकर ज्योतिर्लोकमें देव हुए। फिर वहाँसे चयकर ये सगर चक्रवर्तीके साठ हजार पुत्र हुए। अयोध्याका मंडलेश्वर राजा तपःपूर्वक शरीर छोड़ स्वर्ग गया और वहाँसे आकर तू हुआ है। यह सुन, भगीरथने अपने पुत्रको राज्य दे मुनि होकर मोक्ष प्राप्त किया।

इस प्रकार एक मिथ्यादृष्टि ब्राह्मण एक बार मुनिदान देकर ऐसी गतिको प्राप्त हुआ। यदि सम्यग्दृष्टि दान करे, तो उन्हें क्यों न सब कुछ सुलभ हो जावे?

(७) नल नीलकी कथा ।

आर्य खंड–किष्किधापुरके वानरवंशी राजा सुग्रीवके नल नील नामके दो भाई थे। ये सुग्रीवादि सब रामचन्द्रके सेवक थे। रामचन्द्र और रावणका जिस समय सीताके लिए युद्ध हुआ था, उस समय नल नील दोनो उनके सेनापति थे। उस युद्धमे नल नीलने रावणके हस्त प्रहस्त नामके सेनापति मारे थे। उनके जन्मान्तरके विरोधकी कथा इस प्रकार है,—

भरत क्षेत्रके कुशस्थल ग्राममे एक ब्राह्मणके इंधक पल्लव नामके दो मूर्ख पुत्र थे। जैनियोके संसर्गसे उन्होने एक वार मुनिको आहार दान दिया था। कुछ दिन पीछे दोनोने दो कुटुम्बियोके साझेमे व्यापार किया और उसमें लाभ भी उठाया, परन्तु हिस्सा करते समय झगड़ा हो जानेसे कुटुम्बियोने उन्हे मार डाला। सो मरकर दोनो भोगभूमिमे उत्पन्न होकर वहाँसे स्वर्ग गये और स्वर्गसे चयकर ये नल नील हुए। पश्चात् वे दोनो कुटुम्बी मरकर कालंजर वनमे शशा हुए। फिर वहाँमे अनेक योनियोमे भ्रमण कर तापसीके व्रत धारण कर ज्योतिषी देव हुए और आखिर विजयार्द्धकी दक्षिणश्रेणीमे राजा अग्निकुमार तथा रानी अश्विनीके हस्त प्रहस्त हुए।

इस प्रकार सम्यक्त्वरहित मूर्ख ब्राह्मण भी एक वार मुनिदानके फलसे भोगभूमि और स्वर्गके सुख भोगकर नल नील हुए और फिर जिनदीक्षा धारण कर मोक्षको गये। तो फिर सम्यग्दृष्टि जीव दान करके मुक्तिफल क्यों नही पावेगे ? अवश्य पावेगे।

---

(८) लव अंकुशकी कथा।

अयोध्या नगरीमे राम और लक्ष्मण बलभद्र नारायण राज्य करते थे। रामचन्द्रकी सीता महाराणी गर्भवती हुई। जब पिताकी आज्ञा पालन करनेके लिए भरतको राज्य देकर राम लक्ष्मण वनवासको निकले थे तब वनमेसे रावण

सीताका हरण कर ले गया था और पीछे राम लक्ष्मण रावणको मारकर उसे अयोध्या ले आये थे। सो लोग कहने लगे कि रावणके घर सीता वहुत दिन रही और फिर रामचन्द्र उसे अपने घर ले आये, यह अनुचित्त किया। इसी लोकापवादके भयसे सीताको रामचन्द्रने घरसे निकाल एक वनमें भिजवा दी।

वहाँ हाथी पकड़नेके लिए पुंडरीकिणी नगरीका राजा वज्रजंघ आया था। वह सीताको वहिन मानकर अपने घर ले गया था। वहाँ सीताके लव और अंकुश नामके युगल पुत्र उत्पन्न हुए। युवा होनेपर वज्रजंघने उनका विवाह कर दिया। पश्चात अपनी भुजाओंके जोरसे उन दोनोंने अनेक राजाओंको जीतकर महामंडलेश्वरकी पदवी प्राप्त की। और कुछ दिनोंमें नारदके मुँहसे अपने पिता और काकाके समाचार पा उन्होंने अयोध्यापर चढ़ाई की औरलड़ाईमें अपने पिता काकाको एक प्रकारसे हरा दिया। राम लक्ष्मणको इससे बड़ा कौतुक हो रहा था, उसी समय नारदने राम लक्ष्मणसे कह दिया कि वे उनके पुत्र थे। तव वे स्नेहसे पुत्रोंको हृदयसे लगाकर नगरमें ले गये। खूब आनन्द मनाया। फिर उन्हें युवराजपद दे दिया।

पीछे विभीषणादि प्रधान पुरुषोंके कहनेसे रामचन्द्रने परीक्षाके लिए सीताको अग्निकुंडमें प्रवेश करनेकी आज्ञा दी। उसके निश्चल पातिव्रतके प्रभावसे वह कुंड कमलयुक्त सरोवर हो गया। तव सीता संसारको अपनी विशुद्धता वतला विरक्त हो गई। और वहीं महेन्द्र उद्यानमें सकलभूषण मुनिके समवसरणमें पृथ्वीमती आर्यिकाके निकट उसने दीक्षा ले ली। रामचन्द्र अतिशय मोहके कारण अपने परिवारसहित सीताको रोकनेके लिए समवसरणमें गये; परन्तु वहाँ भगवानके दर्शनमात्रसे उनका मोह नष्ट हो गया। इसलिए भगवानकी पूजा करके वे धर्मश्रवणके लिए अपने कोठेमें जा वैठे। तव विभीषणने केवली भगवानसे रामचन्द्रादिके पूर्व भव पूछ लव अंकुशके पुण्यके अतिशयका कारण पूछा। भगवान् कहने लगे,—

आर्य खंड-काकंदीपुरके राजा रतिवर्द्धन और रानी सुदर्शनाके प्रीतिंकर हितंकर नामके दो पुत्र थे। एक वार सर्वगुप्त नामके एक राजपुरोहितको राजाने कैद करके जेलमें भेज दिया था, उसकी स्त्री विजयावली छोड़नेकी प्रार्थना

करनेके लिए राजाके समीप गई। परन्तु राजाका मनोहर रूप देख उसपर आसक्त हो प्रार्थना करना भूल बोली—महाराज, कृपा करके मुझे ग्रहण कीजिए। राजाने कहा—तू मेरी बहिनके बराबर है। तब वह अप्रिय उत्तर सुन क्रोधित हो वहाँसे चली गई। कुछ दिनोंमे सर्वगुप्तको कैदसे छुट्टी दे राजाने फिर पुरोहित पदपर नियुक्त कर दिया। तब विजयावलीने उससे बात बनाकर कहा:—तुम्हारे पीछे राजा मेरा शीलभंग करना चाहता था। उसे मैने बड़ी कठिनाईसे बचाया है सो इससे और पूर्वके अपकारसे वह पुरोहित राजासे मन ही मन रुष्ट हो गया और धीरे २ अन्य राजपुरुषोंको मिलाने लगा। फिर एक दिन मौका पाकर राजाको सब लोगोंके साथ उसने राजभवनको घेर लिया। तब राजा और उसके दोनों पुत्र अपने जनानेसहित किसी तरह नगर छोड़ चले गये। और काशीपुरके राजा काशिपुके यहाँ जा पहुँचे। इसने उन्हें बड़े सत्कारसे अपने यहाँ ठहराया। पीछे राजा रतिवर्द्धनने काशीनाथकी सेना लेकर काकंदीपुरपर चढ़ाई की और युद्धमे पुरोहितको बाँध अपना राज्य ले लिया। कुछ दिन प्रजाका पालन करके दोनों पुत्रों सहित उन्होंने जिनदीक्षा ले ली। सो वे पुत्र दुर्धर तप करके नवमें ग्रैवेयकमे उत्पन्न हुए। वहाँसे चयकर शाल्मलीपुरमे रामदेव नामके ब्राह्मणके वसुदेव और वासुदेव नामके पुत्र हुए। वे दोनों पात्रदान दे उसके फलसे भोगभूमिमे उत्पन्न हुए। वहाँसे ईशान स्वर्गमे उत्पन्न हुए और अब ये रामचन्द्रके लव अंकुश नामके पुत्र हुए है।

इस प्रकार एक बार भी सत्पात्रके दानसे वसुदेव वासुदेव ब्राह्मण लव अंकुश जैसे चरमशरीरी महापुरुष हुए, फिर सम्यग्दृष्टि श्रावक यदि सत्पात्रोंको दान देवे तो क्या ऐसे महत्फलको नहीं पावे? अवश्य पावे।

(९) राजा दशरथकी कथा।

अयोध्या नगरीमे राजा दशरथ राज्य करते थे। उन्होंने एक दिन महेन्द्र उद्यानमे आये हुए सर्वभूतहितशरण्य-मुनिकी वन्दना कर समीप बैठ अपने पूर्व भव पूछे। तब मुनिराज कहने लगे,—

इसी आर्य खडके कुरुजांगल देशके हस्तिनापुर नगरमे एक उपास्ति नामका राजा था। उसने एक वार मुनिदानका निषेध किया, इसलिए तिर्यंच गतिमे असंख्यात भव तक परिभ्रमण करके वह चन्द्रपुरके राजा चन्द्र और राणी धारिणीके धारण नामका पुत्र हुआ। इस भवमे उसने भक्तिसहित मुनिदान दिया, इसलिए मरकर देवकुरु भोगभूमिमे उत्पन्न हुआ, वहाँसे स्वर्ग गया और स्वर्गसे चयकर जम्बू द्वीप-पूर्व विदेह-पुष्कलावती देश-पुंडरीकिणी नगरीके राजा अभयघोष रानी वसुधाके नंदिवर्धन नामका पुत्र हो तपस्या करके स्वर्ग गया। फिर वहाँसे आकर जम्बू द्वीप-अपर विदेह-विजयार्द्ध शशिपुर नगरके राजा रत्नमालीके सूर्य नामका पुत्र हुआ।

एक वार रत्नमालीने सिंहपुरके राजा वज्रलोचनपर चढ़ाई की। उसी समय एक देवने आकर उसे रोका। उसके कारण पूछनेपर देवने कहाः-इसी विजयार्द्धमे गांधारके राजा श्रीभूतिके एक सुभूति नामका पुत्र और उपमन्यु नामका मंत्री था। एक वार राजाने कमलगर्भ भट्टारकके उपदेशसे जो व्रत ग्रहण किये थे, उन्हें उस मंत्रीने छुड़ा दिये। उस पापसे मरकर वह हाथी हुआ। उसे राजाने अपना पट्टबंध हाथी बना लिया। एक वार उस हाथीको श्रीकमलगर्भ मुनीश्वरके दर्शनसे जातिस्मरण हो आया, इसलिए वह श्रावकके व्रत ग्रहण कर मरनेपर सुभूतिकी स्त्री योजनगंधाके अरिंदम नामका पुत्र हुआ और फिर उन्हीं मुनिके समीप दीक्षा ले तपस्या कर मैं सतार स्वर्गमे देव हुआ हूँ। तथा राजा श्रीभूति वह पर्याय छोड़ मंदर वनमे हिरण और फिर कांभोज देशमे कलिंजम नामका भील हो पापकर्मके करनेसे दूसरे नरक गया। वहाँ जाकर मैंने उसे उपदेश दिया वहाँकी आयु पूरी कर अब तू रत्नमाली हुआ है। क्या ते नरकके दुःख भूल गया? जो अब फिर अपने हितको भूल लड़ाई करनेको उद्यत हुआ है। यह सुन रत्नमाली अपने पुत्रको राज्य दे रत्नतिलक मुनिके निकट बडे पुत्र सूर्यके साथ मुनि हो गया। तप कर दोनो शुक्र स्वर्गमे देव हुए। पश्चात् हे राजन्, वहाँसे चयकर सूर्यचरका जीव तो तू हुआ, रत्नमालीका जीव राजा जनक हुआ, अरिंदमका जीव राजा कनक हुआ और अभयघोपका (नन्दिवर्धनके पिताका) जीव तप कर ग्रैवेयकमे उत्पन्न हुआ था, सो वहाँसे चयकर मै (सर्वभूतहितशरण्य मुनि) हुआ हूँ। यह सुन राजा दशरथ मुनिकी वन्दना कर अपने नगरको लौट आया और अपराजिता आदि पट्टरानियों,

रामचन्द्रादि पुत्रों तथा अन्य बन्धुओं सहित महाविभूतिका भोग करता हुआ, सुखसे रहने लगा।

इस प्रकार राजा धारण मिथ्यादृष्टि होकर भी सत्पात्रदानके फलसे इस प्रकार विभूतिको प्राप्त हुआ। फिर अन्य सम्यग्दृष्टि जीव मुनियोंको दान देवें तो क्यों न इच्छित सुख संपदाको पावे? अवश्य ही पावें।

[१०] श्रीभामंडलकी कथा।

विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीके रथनूपुर नगरमें सीता देवीके भाई विद्याधरचक्री प्रभामंडल (भामंडल) सुखसे राज्य करते थे। अयोध्यामें एक कदंब नामका वैश्य था। उसकी अंविका स्त्रीसे अशोक और तिलक नामके दो पुत्र थे। सो पिता पुत्र तीनों सीतात्यजन अर्थात् सीताका वनोवास सुन संसारसे विरक्त हो द्युति भट्टारकके निकट दीक्षा ले मुनि हुए और कुछ दिनोंमें सम्पूर्ण आगमके पाठी हो गये। एक वार वे ताम्रचूलपुरके चैत्यालयकी वन्दनाको जाते थे; परन्तु मार्गमें पचास योजनकी सीतार्णव नामकी अटवीके पड़ जानेसे और वर्षा ऋतु समीप आ जानेसे चातुर्मासिक योग धारण कर वे ठहर गये। उसी समय भामंडल वहाँसे स्वेच्छाविहार करनेके लिए निकले, सो मुनियोंको उक्त उपसर्ग सहित देखकर वहीं ठहर गये। और समीप ही ग्रामादि बसा उन्होंने आहारदानादि देकर उपसर्ग निवारण किया। इस तरह अनंत पुण्यका संग्रह कर भामंडलने वहुत काल तक राज्य किया। एक दिन वे रातको अपनी सुंदरमाला रानीसहित सो रहे थे कि अकस्मात् बिजलीके पड़नेसे उनका देहान्त हो गया और उत्तम भोगभूमिमें जाकर उत्पन्न हुए।

देखो, रानी और सम्यक्त्वहीन भामंडलने मुनिदानके फलसे उत्तम भोगभूमि जैसी उत्तम गति पाई, फिर सम्यग्दृष्टि जीव यदि मुनिदान करे तो क्यों न अच्छी गति पावे? अवश्य ही पावे।

[११] सुसीमा पट्टराणीकी कथा ।

आर्य खंडके सुराष्ट्र देशमें एक द्वारावती नगरी है । वहाँ वलभद्र नारायण राजा पद्म और श्रीकृष्ण राज्य करते थे । श्रीकृष्णनारायणके सत्यभामा, रुक्मिणी, जांववती, लक्ष्मणा, सुसीमा, गौरी, पद्मावती और गांधारी ये आठ पट्टरानियाँ थीं । एक दिन वलभद्र और नारायण दोनों उर्जयन्ति गिरिपर (गिरनारपर) श्रीनेमिनाथ भगवान्‌की वन्दना करनेके लिए गये । और नमस्कार कर अपने कोठेमें बैठ धर्मश्रवण करने लगे । अवसर पाकर सुसीमा देवीने वरदत्त गणधरसे नमस्कार कर अपने पूर्व भव पूछे । तब गणधर भगवान् कहने लगे,–

धातकी खंड–पूर्व विदेह–मंगलावती देशके रत्नसंचय पुरका राजा विश्वसेन जिसकी रानीका नाम अनुंधरा और मंत्रीका सुमति था, अयोध्याके राजा पद्मसेनके द्वारा युद्धमें मारा गया । रानी अनुंधरी पतिकी मृत्युसे वहुत दुःखी हुई । तब सुमतिने उसे समझा बुझाकर व्रत धारण करा दिये । जिससे आयुके अन्तमें मरकर वह विजयद्वारके रहनेवाले विजय यक्षकी ज्वलनवेगा देवी हुई । पश्चात् उस पर्यायको पूरीकर वहुत काल तक भ्रमण करने बाद जम्बू द्वीप पूर्व विदेह–रम्यावती देशके शालिग्राममें यक्षि नामके ग्रामकूटककी स्त्री देवसेनाके यक्षादेवी नामकी पुत्री हुई । वह एक दिन पूजाकी सामग्री लेकर यक्षकी पूजा करनेके लिए गई, सो वहाँ धर्मसेन मुनिके पास धर्मश्रवण करके उसने मुनियोंको आहारदान दिया । पश्चात् एक दिन जब वह विमलाचल पर्वतपर अपनी सखियोंके साथ क्रीड़ा करनेको गई थी, और वहाँ अकालवृष्टिके कारण एक गुफामें छुप रही थी, तब सिंहने आकर उसे भक्षण कर ली । मरकर हरिवर्ष क्षेत्रमें उत्पन्न हुई, वहाँसे ज्योतिर्लोकमें उत्पन्न हुई और फिर पुष्कलावती देशके वीतशोकपुरके राजा अशोक और श्रीमतीके श्रीकांता नामकी पुत्री हुई । वह कन्या अवस्थामें ही जिनदत्ता आर्यिकासे दीक्षा ले तपकर महेन्द्र स्वर्गके इन्द्रकी इन्द्राणी हो अब तू नारायणकी पट्टरानी सुसीमा हुई है । अब तू इस भवमें तप कर कल्पवासी देव होवेगी और फिर वहाँसे चयकर मंडलेश्वर राजा हो घोर तपकर मोक्षको प्राप्त करेगी । अपने भवान्तर सुनकर सुसीमाको अतिशय हर्ष हुआ ।

इस प्रकार एक विवेकहीन यशादेवी मुनिदानके फलसे मोक्षकी पात्र हुई, फिर और विवेकी सम्यग्दृष्टि पुरुष दान करके मनोवांछित फल पावें, इसमें कहना ही क्या है ?

(१२) गांधारी पट्टरानीकी कथा।

उसी दिन भगवन् नेमिनाथके समवसरणमें श्रीवरदत्त गणधरसे गांधारी रानीने भी अपने भवान्तर पूछे। तब गणधरदेव कहने लगे,—

अयोध्याके राजा रुद्रदासकी रानी विनयश्री श्रेष्ठ मुनिदानके प्रभावसे उत्तरकुरु भोगभूमिमें उत्पन्न हो चन्द्रमाके रोहिणी देवी हुई। फिर वहाँसे चयकर विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें गगनवल्लभपुरके राजा विद्युद्वेग रानी विद्युन्मतीके विनयश्री नामकी पुत्री हुई और निसालोकपुरके राजा महेन्द्रविक्रमको परणाई गई। महेन्द्रविक्रम एक चारणमुनिके निकट धर्मश्रवण कर, पश्चात् हरिवाहन पुत्रको राज्य दे दिगम्बर हो गये और विनयश्री आर्यिका हो गई। सो तप करके सौधर्म इन्द्रकी देवी हो तू नारायणकी पट्टरानी हुई है। अब आगे तू भी तप करके स्वर्ग और मनुष्य भवके सुख भोग मोक्ष प्राप्त करेगी। यह सुन गांधारी बहुत प्रसन्न हुई।

इस प्रकार एक विवेकरहित स्त्री एक वार मुनिदानके फलसे गांधारी पट्टरानी जैसे पदको प्राप्त हुई, तब अन्य विवेकी जीव मुनिदान करें, तो क्यों न सब प्रकारके सुखोंको पावें? अवश्य पावें।

[१६] गौरी पट्टरानीकी कथा।

इसके पश्चात् भगवान् नेमिनाथके समवसरणमें गौरीने भी अपने पूर्व भव पूछे। तब श्रीवरदत्त गणधर बोले,— भरतक्षेत्रके इभपुर (गजपुर) नगरके धनदेव वैश्यकी स्त्री यशस्विनीको एक वार एक विद्याधरको आकाश-

मार्गसे जाते हुए देखकर जातिस्मरण ज्ञान हो गया । सखियोंने पूछा, तब वह बोली,—धातकी खंड—अपर विदेहके अरिष्टपुर नगरमें आनन्द श्रेष्ठीकी भार्या नन्दा अमितगति और सागरचन्द्र मुनिको दान देकर उसके फलसे देवकुरु भोगभूमिमें उत्पन्न हुई । और वहाँसे ईशान इन्द्रकी इन्द्राणी होकर अब मैं यशस्विनी हुई हूँ । मुझे इस प्रकार अपने भवान्तर स्मरण आये हैं । इसके पीछे यशस्विनीने सुभद्राचार्यके समीप प्रोपधोपवास ग्रहण किये, जिसके फलसे वह सौधर्म इन्द्रकी देवी हुई और फिर वहाँसे चयकर कोशाम्बी नगरीमें समुद्रदत्त वैश्यकी सुमित्रा स्त्रीके गर्भसे धर्ममती नामकी पुत्री हुई । वही धर्ममती जिनमती आर्यिकाके समीप दीक्षा ले तपकर शुक्रेन्द्रकी प्रिया हो अब तू नारायणकी पट्टराणी हुई है । अब पहली पट्टरानियोंके समान तू भी स्वर्गके तथा मनुष्य भवके सुख भोगकर मोक्ष प्राप्त करेगी । यह सुनकर गौरीको बहुत संतोष हुआ ।

देखो, इस तरह एक मूर्ख स्त्री भी मुनिदानके फलसे जब ऐसे वैभवको प्राप्त हो गई, तब दूसरे बुद्धिमान् जन मुनिदानके प्रभावसे इच्छित फलोंको पावेंगे, इसमें सन्देह ही क्या है ?

(१४) पद्मावती पट्टरानीकी कथा ।

रानी पद्मावतीने भी समवसरणमें अपने भव पूछे । तब गणधर भगवान् बोले,—अवन्ति देशकी उज्जयनी नगरीके राजा अपराजित् और रानी विजयाके एक विनयश्री नामकी पुत्री हुई । वह हस्तशीर्षपुरके राजा हरिषेणको परणाई गई । उसने एक वार वरदत्त मुनिको आहार दान देकर बहुतसा पुण्य उपार्जन किया । पश्चात् एक दिन वह शयन-गृहमें सोती थी, सो कालागरु आदि सुगंधित पदार्थोंकी धूपके धुएँसे अपने पतिसहित घुटकर मर गई और हैमवत क्षेत्रमें उत्पन्न हुई । वहाँसे चन्द्रमाकी देवी होकर फिर मगध देशके शाल्मलिखंड ग्राममें देविल ग्रामकूटककी विजयदेवीके उदरसे पद्मा नामकी पुत्री हुई । उसने वरधर्म योगीके उपदेशसे अज्ञातफलभक्षणका अर्थात् विना जाने हुए फलके खानेका त्याग कर दिया ।

एक दिन चंडदान भील उस गाँवके सब लोगोंको बाँधकर अपनी पल्लीमें (ग्राममें) ले गया। इन सबके साथ पद्मा भी कैद होकर गई। पीछे जब उस भीलको राजगृहके राजा सिंहरथने मार डाला, तब वे सब लोग वहाँसे भागकर एक अटवीमें जा पहुँचे। परन्तु वहाँ विना जाने हुए किंपाक फलका (इन्द्रायणका) भक्षण करके सबके सब मर गये, केवल एक पद्मा जीती रही सो वहाँसे अपने घर लौट आई। क्योंकि उसे अनजाने फलके त्यागका व्रत था। उसके पीछे वह बहुत समयतक जीती रही। और अन्तमें मरकर हैमवत क्षेत्रमें उत्पन्न हुई। फिर उस पर्यायको भी पूरी करके स्वयंप्रभाचलनिवासी स्वयंप्रभ देवकी देवी हुई और बहुत काल तक सुख भोगकर जयंतपुरमें विमलश्री नामकी कन्या हुई। वह भद्रिलपुरके राजा मेघवाहनके साथ व्याही गई। सो एक मेघघोष पुत्रको पाकर पद्मावती आर्यिकासे दीक्षा लेकर आर्यिका हो गई। और तप कर सहस्रार स्वर्गके इन्द्रकी देवी हो अब तू नारायणकी प्रिया हुई है। आगे तू भी अन्य रानियोंके समान मोक्ष पावेगी। यह सुनकर पद्मावती बहुत प्रसन्न हुई।

इस प्रकार एक विवेकहीन मिथ्यादृष्टि स्त्री भी सत्पात्रदानके फलसे इस प्रकार मोक्षकी अधिकारिणी हुई, तो अन्य पुरुष इसके फलसे मोक्षके पात्र क्यों न होवेंगे? अवश्य होवेंगे।

---

(१५) धन्यकुमारकी कथा।

अवंती देशकी उज्जयनी नगरीमें राजा अवनिपाल राज्य करता था। उस समय वहाँ एक धनपाल नामका धनवान् वैश्य था। उसकी स्त्री प्रभावतीके देवदत्त आदि सात पुत्र थे। उनमेंसे कई एक विद्याभ्यास करते थे और कई एक व्यापार करते थे। प्रभावती एक दिन चतुर्थ स्नान करके अपने पतिके साथ शयन करती थी कि रात्रिके पिछले पहरमें उसने ऊँचा सफेद बैल, कल्पवृक्ष, चन्द्रादि पदार्थोंको स्वप्नमें अपने घरमें प्रवेश करते हुए देखे। उसने सवेरे अपने पतिसे उनकी वार्ता कही। पतिने स्वप्नका फल विचारकर कहा:—प्रिये, तेरे गर्भसे वैश्य कुलमें प्रधान

और अपनी कीर्तिसे तीनो जगतको धवल करनेवाला महात्मा पुत्र उत्पन्न होगा। यह सुन वह अतिशय प्रसन्न हुई और नौ महीने व्यतीत होनेपर उसके गर्भसे एक सुन्दर पुत्रने अवतार लिया।

उस भाग्यवान् पुत्रका नाल गाड़नेके लिए जो जमीन खोदी गई, उसमें द्रव्यसे भरा हुआ एक कड़ाहा निकला। इसी प्रकार उसके स्नान करानेके लिए जो जगह खोदी गई, वहाँसे भी बहुतसा धन निकला। तब धनपालने राजाको इस धनके मिलनेकी सूचना दी। परन्तु उन्होने कह दिया कि वह धन तुम्हारे पुत्रके प्रभावसे मिला है, अतएव उसका स्वामी भी वही है। इससे संतुष्ट होकर श्रेष्ठीने घर आ पुत्रका जन्मोत्सव खूब धूमधामसे किया। और नगरके सम्पूर्ण जिनमंदिरोंमे अभिषेकादि करके दीन अनाथोको सुवर्ण आदिका दान दे प्रसन्न किया। इस पुत्रके जन्मसे मातापिता अपने वर्गमे धन्य हुए इस कारण उसका नाम धन्यकुमार रक्खा गया।

वह धन्यकुमार अपनी बालक्रीड़ासे बंधुओको संतुष्ट करके जैनोपाध्यायके निकट विद्याभ्यास कर सम्पूर्ण कलाओमे कुशल हो गया। वह बड़ा उदार और भोगी था, इस कारण उसके देवदत्तादि सातो भाई कहते थे कि हम लोग कमानेवाले है और यह गमानेवाला है। यह बात एक दिन प्रभावतीने सुनकर अपने पतिसे कहा:—धन्यकुमारको किसी व्यापारके काममें लगाओ तो अच्छा हो। तब श्रेष्ठीने अच्छे मुहूर्तमे सौ रुपया देकर पुत्रको बाजारमे बैठा दिया और समझा दिया कि यह द्रव्य देकर कोई वस्तु खरीदना, फिर उसे बेचकर दूसरी खरीदना, फिर तीसरी खरीदना, इस प्रकारसे जब तक भोजनका समय न होवे, तब तक खरीद बिक्री करते रहना और फिर आखिरमें जो वस्तु खरीदो, उसे मजदूरके हाथ देकर भोजनके लिए घर चले आना। यह कहकर श्रेष्ठी तो घर चले आये, और धन्यकुमार अपने अंगरक्षको सहित दूकानमें बैठा। इतनेमे कोई पुरुष एक चार बैलोंकी गाड़ीमे लकड़ी भरके बेचनेको आया। सो कुमारने वे रुपये देकर उस गाड़ीको खरीद ली, पश्चात उसे बेचकर एक भेड़ खरीदी और उसे बेचकर पलँगके पाये खरीद कर वह भोजनके लिए घर आ गया। उस दिन पुत्रको पहले पहल व्यापार करके आया जान माताने बड़ा भारी उत्सव मनाया। यह देख बड़े पुत्र बोले,—बड़ा आश्चर्य है कि यह पहले ही दिन सौ रुपया खोकर आ गया है, तो भी

धन्यकुमारके रूपादि अतिशयको देखकर किसी वैश्यने धनपालसे निवेदन किया;—मैं अपनी पुत्री धन्यकुमारको देना चाहता हूँ। धनपालने कहा:—बड़े पुत्रको दो। तब वह बोला;—यदि दूँगा, तो धन्यकुमारको दूँगा, अन्यको कदापि नहीं दूँगा। यह समाचार पा उस दिनसे सातों भाई धन्यकुमारसे द्वेष रखने लगे; परन्तु यह बात धन्यकुमारको मालूम नहीं हुई।

एक दिन वे सब मिलकर उद्यानकी एक बावड़ीमें धन्यकुमारको क्रीड़ा करनेके लिए ले गये। वे सब बावड़ीमें क्रीड़ा करने लगे। धन्यकुमार उनका कौतुक देखता हुआ बावड़ीके तटपर बैठ रहा। इतनेमें एकने आकर उसे पीछेसे बावड़ीमें धकेल दिया। धन्यकुमार "णमो अरहंताणं" कहता हुआ गिर पड़ा। तब वे मनके सब ऊपरसे बहुतसे पत्थर डाल उसे मरा समझ संतुष्ट हो चले गये। उधर जलदेवताने धन्यकुमारको जल निकलनेके द्वारसे बाहर निकाल दिया। निकलकर वह नगरके बाहर आया, और वहाँसे "भाइयोंके द्वेषसे अब यहाँ रहना ठीक नहीं है" ऐसा सोच देशांतरको चल दिया।

रास्तेमें एक किसानको हल जोतते हुए देख धन्यकुमार यह विचार करने लगा कि "सम्पूर्ण विद्याएँ मैंने सीखीं, परन्तु यह एक अपूर्व ही देखी इसे भी सीखना चाहिए" उसके समीप गया। उसके प्रभावशाली रूपको देखकर किसानको अचंभा हुआ। महापुरुष जानकर उसने प्रार्थना की;—प्रभो, मैं किसान हूँ, परन्तु कुटुम्ब मेरा शुद्ध है। और मेरे निकट दही भात तैयार है, क्या आप भोजन करेंगे? कुमारने भोजन करना स्वीकार किया। तब किसान उन्हें हलके पास बिठाकर आप पत्तल बनानेके लिए पत्ते लानेको गया। उसके चले जानेपर कुमारने हलकी मूठ पकड़कर बैलोंको हाँकना शुरू किया। थोड़ीसी जमीन खुदी थी कि एक सोनेसे भरा हुआ घड़ा हलमें उलझ आया। उसे देख कुमारने सोचा, पूरा पड़ा ऐसे विद्याभ्याससे, जिसमें पहले ही यह उपद्रवकी जड़ निकली। यदि यह इसे देख लेगा, तो मेरे साथ अनर्थ करेगा। इस विचारके होते ही वह उस द्रव्यके कलशको मिट्टीके नीचे जैसाका तैसा

छुपा हल छोड़ स्वस्थतासे एक ओर बैठ रहा । इतनेमें किसान पत्ते लेकर आ गया । उसने एक गड्ढेमे रक्खे हुए पानीके घड़े तथा दही भातको निकाला और धन्यकुमारके पाँव धोकर पत्तलमे परोस प्रेमसे भोजन कराया ।

भोजनके बाद धन्यकुमार राजगृहका रास्ता पूछकर चल पड़ा । इधर किसान आकर हलका फाल ज्यो ही जमीनमें दबाया कि वह कलश उसमें फिर उलझ गया । उसे देख किसान यह निश्चय करके धन्यकुमारके पीछे लगा " यह कलश उसी महाभाग्यका है, इसलिए मुझे लेना उचित नही है, उसीको लौटा देना चाहिए । " थोड़ी दूर चलकर कुमार उसे आता हुआ देख एक वृक्षकी छायामे बैठ गया । उसने जाकर नमस्कार किया और कहा;-आप अपने द्रव्यको छोड़कर क्यो चले आये ? कुमारने उत्तर दिया;-भाई, मेरे पास द्रव्य कहाँसे आया ? मै ऐसे ही आया था और तेरा दिया हुआ भोजन कर ऐसे ही जाता हूँ । फिर वह द्रव्य मेरा कैसे ? किसान बोला:-इस खेतको मेरे परदादाने जोता, दादाने जोता, बापने जोता और अब तक मै जोतता रहा हूँ । परन्तु यह द्रव्य किसीको अब तक क्यो नही मिला ? आज आप आये, तब ही मिला, इसलिए यह आपका ही है । तब कुमारने यह सोचकर कि इस विवादसे क्या प्रयोजन है ? कहा;-भाई, खैर मेरा ही वह द्रव्य सही, परन्तु आज मै यह सब तुम्हे दे देता हूँ । सो तुम इसे यत्नके साथ भोगना । तब किसान आभारपूर्वक उस द्रव्यको ग्रहण कर और यह कहकर कि मै अमुक गाँव और अमुक शहरका एक पामर प्राणी हूँ, जिस समय सेवककी जरूरत हो, मुझे सूचना देना । मै अवश्य ही सेवामे हाजिर होऊँगा, अपने ग्रामको चला गया ।

धन्यकुमारने वहाँसे आगे चलकर एक स्थानमे अवधिबोध मुनिको देखकर नमस्कार किया और धर्मश्रवण करके पूछा;-भगवन्, मेरे भाई मुझसे द्वेष क्यो करते है ? माता अधिक स्नेह क्यो करती है ? और किस पुण्यके फलसे मै ऐसा हुआ हूँ ? मुनिराज बोले,—

मगध देशके भोगवती ग्राममे कामवृष्टि नामका ग्रामपति (मालगुजार) था । उसके मृष्टदाना नामकी भार्या और सुकृतपुण्य नामका नौकर था । कुछ दिनोमे मृष्टदाना गर्भवती हुई और कामवृष्टिकी मृत्यु हो गई । पीछे ज्यों २ गर्भ

बढ़ने लगा, त्यों त्यों कुटुम्बी जन मरने लगे। और जब बालक उत्पन्न हुआ, तब माताकी माता अर्थात् नानी चल वसी। पश्चात् सुकृतपुण्य नौकर तो ग्रामपति हो गया और मृष्टदाना बड़े कष्टसे दूसरेके घर पेट पालती हुई बालककी जीवनरक्षा करने लगी। इन अशुभ उदयोंके आनेसे उसने पुत्रका नाम अकृतपुण्य रख दिया। यह सुनकर धन्यकुमारने पूछा:— नाथ, किस पापके फलसे वह बालक उत्पन्न हुआ? कृपा करके यह भी समझाइए। मुनि बोले;—

भूतिलक नगरमें एक धनपति नामका विपुल धनका स्वामी वैश्य रहता था। उसने एक बड़ा भारी जिनमंदिर बनवाया, जो कि नाना प्रकारके मणिमयी कंचनमयी उपकरणोंसे सुशोभित था। उन उपकरणोंको देखकर एक व्यसनीका मन चल गया। इसलिए वह मायाचारी ब्रह्मचारी बनकर अतिशय कायक्लेशादि करके देश भरमें क्षोभ उत्पन्न करता हुआ भूतिलक नगरमें आया। धनपति सेठ बड़े सत्कारसे उसे अपने जिनमंदिरमें ले गया। कुछ दिनके पश्चात् उन सम्पूर्ण उपकरणोंका उसे रक्षक बनाकर धनपति सेठ तो द्वीपान्तरको चला गया। इधर ब्रह्मचारी महाराजने अपनी तृप्तिके लिए थोड़े ही दिनोंमे वे सब उपकरणादि हजम कर डाले। भरपूर व्यसन सेवन किये। पापका फल भी जल्दी मिल गया। अर्थात् थोड़े ही समयमें जिनप्रतिमा विलोपनके पापसे उसको कुष्ट रोग उत्पन्न हुआ, जिससे उसका सारा शरीर गलने लगा। उस रोगमें सड़ते हुए वह मृत्युकी बाट देख रहा था कि धनपति सेठ देशान्तरसे लौटकर आ पहुँचा। उसे देखकर मायाचारी सोचने लगा कि यह क्यों आ गया, वहीं क्यों नहीं मर गया? लौटकर नहीं आता तो अच्छा होता। इस प्रकारके रौद्रध्यानमें ही उसका शरीर छूट गया और वह सातवें नरकमें जा पहुँचा। वहाँके घोर दुःख सहते हुए आयु पूरी करके फिर वह स्वयंभूरमण समुद्रमें महामत्स्य हुआ। उस पर्यायको पूरी कर फिर सातवें नरकमें गया। छ्यासठ सागरतक नरकका दुःख भोग अनेक त्रस स्थावर योनियोंमें जन्म ले वह जीव जिसकी कथा चल रही है, अन्तमें अकृतपुण्य हुआ।

अकृतपुण्य एक दिन सुकृतपुण्यके चनोंके खेतपर गया और बोला;—हे सुकृतपुण्य, मैं तुम्हारे चने लुन दूँगा इसके बदलेमें क्या तुम मुझे कुछ देओगे? तब “ इसके पिताके प्रसादसे मैं ग्रामपति हुआ हूँ और आज यह हमसे

भिक्षा माँगता है ! विधि बड़ा विचित्र है । " ऐसा विचार कर वह दुःखी होता हुआ अपनी थैलीमेंसे कुछ द्रव्य निकाल कर उसे दिया, परन्तु वह द्रव्य उसके हाथमें पड़ते ही अंगार हो गया । तब अकृतपुण्य बोला;- सबको तो चने देते हो और मुझे अंगार क्यों ? क्या तुम्हें ऐसा करना उचित है ? सुकृतपुण्यने कहा;—अच्छा भाई, मेरा अंगार मुझे दे दो, और तुमसे इस राशिमेंसे जितने लेते बनें, चने भरकर ले जाओ । तब वह एक पोटलीमें चने बाँधकर घर ले आया । उन्हें देखते ही माताने पूछा-इन्हें कहाँसे लाया ? पुत्रने उनके लानेके सब समाचार कहे । सुनकर उसे बड़ा दुःख हुआ कि मेरे सेवकने भी सेवकपना छोड़ दिया । इसलिए वह पुत्रको लेकर और उन्हीं चनोंका पाथेय (कलेवा) बना यहाँसे चल दी । कुछ दिनमें अवन्ती देशके सीमवाक ग्रामके बलभद्र नामके ग्रामपतिके घर प्रार्थना करके ठहर गई । ग्रामपतिने उसको अपना घर पूछा, परन्तु उसने कुछ उत्तर न दिया । परन्तु ग्रामपतिके बहुत आग्रह करनेपर अन्तमें मृष्टदानाने अपनी सब दुःखकथा उससे कह दी । तब ग्रामपतिने कहा-अच्छा, तुम मेरे यहाँ रसोई बनाया करो और यह बालक हमारे बछड़े चराया करेगा । इसके बदलेमें मैं तुम दोनोंको भोजन वस्त्र दिया करूँगा । यह बात मा बेटोंने स्वीकार कर ली । तब ग्रामपतिने अपने घरके पास एक फूसकी झोपड़ी बनवा दी और वे दोनों उसकी सेवा करते हुए अन्न वस्त्र पा उसमें रहने लगे।

बलभद्रके सात पुत्र थे। उन्हें प्रतिदिन खीरका भोजन करते हुए देखकर बालक अकृतपुण्य अपनी मातासे खीर माँगता था। और इसपर वे सातों उसे मारते थे। परन्तु जब बलभद्र देख पाता था, तब उसकी रक्षा करता था। एक दिन खीर माँगते २ बालकके मुँहमें फैन आ रहा था। उसे देख बलभद्रने पूछाः-यह बालक दुर्बल क्यों हो रहा है? माताने कहाः-खीर न मिलनेपर रोनेसे। सुनकर बलभद्रके दया आई और दूध, घी, चावल देकर कहाः-घरपर खीर बना आज इस बालकको प्रसन्नतासे भोजन कराओ। माताने ऐसा ही स्वीकार किया। घर जाकर पुत्रसे कहाः-बेटा, आज तुझे खीर खिलाऊँगी, इसलिए बछड़ा चराकर जल्दी आ जाना। पुत्रने "ऐसा ही करूँगा" कहकर जंगलकी राह ली। इधर माताने प्रेमसे खीर बनाई। पीछे दो पहर होनेपर पुत्र लौटकर आ गया, तब माता उसे घरकी रखवाली सौंपकर

पानी भरनेको गई और कह गई कि यदि कोई मुनि भोजनके लिए आवे तो उन्हे जाने नही देना। उन्हे भोजन कराकर अपन दोनों भोजन करेगे। तदनुसार पुत्रने मासोपवासका पारणा करनेके लिए आये हुए एक मुनिराजको देख उन्हे वस्त्रादिरहित कोई महाभिक्षुक जान उनके सन्मुख जाकर कहा;—हे पितामह, मेरी माताने आज खीर बनाई है, सो तुम्हें भी उसका भोजन करावेगे। इसलिए जब तक वह न आ जावे, थोड़ी देर ठहरो। तब मुनि यह कहकर कि "यह हमारा धर्म नही है," जाने लगे। परन्तु बालक तत्काल ही उनके चरणोसे लिपट गया और बोला;—पितामह, अतिशय अपूर्व खीरका भोजन करके जानेमें तुम्हारी क्या हानि है? इतनेमें मृष्टदाना भी आ गई। घड़े उतारकर उसने अन्तरीय वस्त्रको कंधेपर डाला (कंधेला मारा) और हे भगवन् हे परमेश्वर तिष्ठ! इस प्रकार यथोक्त विधिसे उसने पड़िगाहन किया। पश्चात् बलभद्रके घरसे उष्ण जल लाकर अतिशय विशुद्ध चित्तसे उसने मुनिराजको आहार दिया। अकृतपुण्य भी उस आहारदानसे हर्षित हुआ। बोला;—मेरे घर आज मुनिदेवने आहार किया, इसलिए मै धन्य हूँ।

वे मुनिराज अक्षीणमहानस ऋद्धिके धारी थे। इसलिए उन गरीबोंकी वह रसोई उस दिन मुनिके आहारके प्रभावसे ऐसी अटूट हो गई कि चक्रवर्तीका कटक भी भोजन कर जावे, पर क्षीण न हो। मुनिराजके चले जानेपर मृष्टदानाने अपने पुत्रको और फिर बलभद्रको सकुटुम्ब भोजन कराया। इसके पश्चात् उस गॉवके समस्त लोगोंको बर्तन भर भरकर खीर दी, परन्तु वह कम न हुई।

दूसरे दिन अकृतपुण्य खीरका भोजन करके जंगलको बछड़े चरानेके लिए गया। वहॉ एक वृक्षकी छायामें सो गया। इधर वक्त होनेपर बछड़े घर आ गये। परन्तु पुत्रको नहीं आया देख माता रोने लगी। तब बलभद्र उसके कहनेसे अपने दो तीन सेवको सहित बालकके ढूंढनेके लिए निकला। उधरसे वत्सपाल लौट रहा था कि इन्हें देख डरके मारे भागा और पर्वतपर चढ़ गया। वहॉ एक गुफाके द्वारपर जाकर बैठा। उस गुफामे जिन्हें आहार दिया था, वे ही मुनि विराजमान थे। उनपर उसकी बड़ी भारी श्रद्धा-भक्ति हुई। जब वहॉ बैठे हुए श्रावक

मुनिको नमस्कार करके और “ णमो अरहंताणं ” कहते हुए वहाँसे चलने लगे, तब वह भी “ णमो अरहंताणं ” कहता हुआ उनके साथ चल पड़ा। थोड़ी दूर गया था कि एक विकराल व्याघ्रने पकड़ लिया। सो “ णमो अरहंताणं ” इस महामंत्रका स्मरण करते हुए ही उसने प्राण छोड़ दिये। और सौधर्म स्वर्गमें बड़ी भारी ऋद्धिका धारी देव हुआ। भवप्रत्यय अवधिके बलसे यह देवपर्याय अपने पूर्व भवमें किये हुए दानादिके फलसे पाई जानकर वह जिनपूजादि सत्कृत्य करता हुआ सुखसे काल यापन करने लगा।

उधर सबेरे बलभद्रके साथ मृष्टदानाने जाकर अपने पुत्रका कलेवर देख बहुत शोक किया। तब उस पुत्रके जीव देवने आकर उसे समझाया और शोक दूर किया। उस समय वह अपने मनमें यह निदान करके कि आगेके जन्ममें यही देव मेरा पुत्र हो आर्यिका हो गई। और कुछ दिनमें समाधिसहित मरकर सौधर्म स्वर्गमें देवी हुई। पश्चात् बलभद्र भी संसारसे विरक्त हो गया और अन्तमें मरणकर उसी स्वर्गमें देव हुआ।

सौधर्म स्वर्गके दिव्य सुखोंको बहुत कालतक भोगकर बलभद्रका जीव तुम्हारा पिता धनपाल हुआ, मृष्टदानाका जीव तुम्हारी माता प्रभावती हुई, और अकृतपुण्यके जीवने तुम्हारी पर्याय पाई है। तथा बलभद्रके जो पहिले सात लड़के थे, वे ही अब धनपालके साथ पुत्र हुए है। वे पुत्र उस जन्ममें जिस तरह तुम्हे दुःख देते थे, उसी प्रकार अब भी द्वेष करते है। माता जैसे पहले प्यार करती थी, उसी तरह अब भी करती है। इस प्रकार मुनि महाराजके मुखसे अपने पूर्व भव सुन उन्हें नमस्कार कर धन्यकुमारने प्रसन्नतासे आगेको गमन किया।

क्रम क्रमसे चलते हुए कुछ दिनमें धन्यकुमार राजगृह नगरीके पास पहुँचा। वहाँ एक सूखे हुए वृक्षोंका वन था। उसका स्वामी एक कुसुमदत्त नामका वैश्य था, जो राजाके सम्पूर्ण मालियोंका नायक था। कुसुमदत्तने एक बार इस वनको सूखा जानकर काट डालनेका विचार किया परन्तु एक अवधिज्ञानी मुनिसे पूछनेपर उसने जाना कि कोई पुण्यात्मा पुरुष उस वनमें जावेगा, तो उसी समय वह हरा भरा और फल फूलोंसे शोभित हो जावेगा। इसलिए तबसे कुसुमदत्त उस वनकी रक्षा करता रहता था। सो उस दिन ज्यो ही धन्यकुमारने उस वनमें प्रवेश किया, त्यो

ही वहाँके सूखे सरोवर निर्मल जलसे परिपूर्ण और वृक्षादि हरे भरे तथा फलफूलसहित हो गये। धन्यकुमारने जिनदेवका स्मरण करके एक सरोवरमेंसे थोड़ासा जल पिया और एक वृक्षकी छायामें बैठकर वह विश्राम करने लगा। उधर वनको हरा भरा देख, कुसुमदत्तको आश्चर्य हुआ। मुनि महाराजके वचनोंका स्मरण करके उसने उन्हें मन ही मनमें नमस्कार किया और फिर वनमें प्रवेश करके धन्यकुमारको देखा। प्रणाम करके पूछा;-आप कहाँसे आये? उसने कहा;-मैं वैश्य हूँ। देशान्तरसे आ रहा हूँ। कुसुमदत्तने कहा;-मैं भी जैनी वैश्य हूँ। आप मेरे पाहुने हैं, मेरे घर चलिए। तब धन्यकुमार उसके साथ हो लिया। कुसुमदत्त सत्कारपूर्वक उसे अपने घर ले आया, और अपनी स्त्रीसे बोला;-ये मेरे भानजे हैं। स्त्री बहुत प्रसन्न हुई। उसने समझा कि यह मेरा जामाता (दामाद) होगा, इसलिए स्नान भोजनादिसे उनका खूब ही सत्कार किया। उसी समय कुसुमदत्तकी पुत्री पुष्पवती धन्यकुमारका रूप लावण्य देखकर उनपर अतिशय आसक्त हो गई।

एक दिन पुष्पवतीने धागा और बहुतसे फूल धन्यकुमारके सामने लाकर रख दिये। उन्होंने उन फूलोंकी एक अतिशय सुन्दर माला बनाकर तैयार कर दी। पुष्पवती वहाँके राजा श्रेणिक और रानी चेलिनीकी पुत्री गुणवतीके लिए प्रतिदिन माला बनाकर ले जाया करती थी। सो उस दिन वह धन्यकुमारकी बनाई हुई मालाको लेकर राजमहलमें गई। गुणवतीने पूछा;-पुष्पवती; तुम तीन दिनसे क्यों नहीं आई। उसने कहा:-मेरे पिताके भानजे आये हुए हैं उनके सत्कारादि करनेके कारण मुझे आनेका अवकाश नहीं मिला। ये बातें हो ही रही थीं कि गुणवतीकी दृष्टि उस नवीन मालापर गई। उसे आश्चर्यके साथ देखकर पूछा;-पुष्पवती, और आज यह माला किसकी बनाई हुई ले आई है? यह तो तेरी बनाई हुई नहीं जान पड़ती। बड़ी सुन्दर माला बनी है। तब पुष्पवतीने कहा-उन्हीं धन्यकुमारकी बनाई हुई है। तब गुणवतीने हँस कर कहा;-तब तो तुझे बहुत अच्छा वर मिला है। यह सुनकर पुष्पवती लज्जित होकर चली गई।

एक दिन धन्यकुमार किसी धनीकी चित्र विचित्र दूकान देख वहाँ जा बैठा। उस दिन उसे व्यापारमें बहुत

भारी नफा हुआ। इसलिए वह धनी बोला;-मैं अपनी पुत्रीका विवाह तुम्हारे साथ करूँगा, क्योंकि तुम कोई बड़े पुण्यात्मा हो। दूसरे दिन कुमार शालिभद्र नामके प्रसिद्ध वैश्यकी दूकानपर जा बैठा। उस दिन उसे भी बहुत नफा हुआ। इसलिए वह भी बोला-मैं अपनी महाभगिनी पुत्री सुभद्रा तुम्हें दूँगा। फिर एक दिन वहाँके राजश्रेष्ठीने कीर्तिपुर नगरमें घोषणा करा दी कि जो वैश्यका पुत्र एक दिनमें एक कौड़ीसे एक हजार दीनार कमा सकता हो, उसे मैं अपनी पुत्री धनवती ब्याह दूँगा। यह घोषणा धन्यकुमारने सुनी। उसने उसी समय श्रेष्ठीके यहाँ जाकर कौड़ी ले, उससे मालालंबन तृण खरीदे किये। पश्चात् वे तृण मालीको देकर उसने फूल लिये और उनकी एक अतिशय सुन्दर माला गूँथकर तैयार की। उसे उद्यानको हवा खानेके लिए जाते हुए राजकुमारोंको दिखलाई। और उनके पूछनेपर उसका एक हजार दीनार मूल्य बतलाया। एक कौतुकी राजकुमार उसे एक हजार दीनार देकर ले गया। धन्यकुमारने वह द्रव्य ले जाकर श्रेष्ठीको सौंप दिया, और उसने की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार अपनी पुत्री धन्यकुमारको भेट कर दी। इस प्रकार धन्यकुमारकी नाना प्रकारसे प्रशंसा सुन उसके रूप यौवनको देख गुणवती अतिशय आसक्त हो गई, और कुमारकी विरहचिन्तामें दिनपर दिन क्षीणशरीर अर्थात् दुर्बल होने लगी।

एक दिन धन्यकुमारने राजमंत्री आदिके पुत्रोंको द्यूतक्रीड़ामें (जूआमें) हरा दिया और राजाका पुत्र अभयकुमार अपने विज्ञानके (चतुराईके) मदमें अतिशय गर्वित हो रहा था, सो चन्द्रकवेधको बेध करके उसे भी जीत लिया; परन्तु इन सब बातोंसे वे सबके सब धन्यकुमारसे द्वेष करने लगे और उसके मार डालनेकी चिन्ता करने लगे।

यहाँ गुणवतीके दिनपर दिन दुर्बल होते जानेका कारण जानकर राजा श्रेणिकने अभयकुमारादिके साथ सलाह की कि धन्यकुमारको कन्या देनी चाहिए अथवा नहीं? अभयकुमारने कहा;- नहीं, क्योंकि उसका कुल ज्ञात नहीं है अर्थात् कोई यह नहीं जानता है कि धन्यकुमार किसी ऊँच कुलका है, अथवा नीच कुलका? श्रेणिकने कहा-यदि ऐसा होगा, अर्थात् धन्यकुमारके साथ गुणवतीका विवाह नहीं किया जावेगा, तो वह मर जावेगी। तब अभयकुमारने कहा:-जब तक वह जीता है, तब तक कुमारी दुःखी रहेगी। और जब तक वह निरपराधी है, तब तक उसका मारना

ठीक नहीं है। इसलिए कोई उपाय करके उसे मार डालना चाहिए। और वह उपाय यही है कि नगरके बाहर जो राक्षसका मन्दिर है, उसमें पहले बहुतसे मनुष्य जाकर मर गये हैं। इसलिए ऐसी घोषणा करा देनी चाहिए कि जो पुरुष उस राक्षसभवनमें प्रवेश करेगा, उसे आधा राज्य और अपनी गुणवती पुत्री दूँगा। इस घोषणाको सुनकर घमंडसे वह वहाँ अवश्य जावेगा और मारा जावेगा। राजाने यह बात स्वीकार कर ली। और सब लोगोंके निषेध करनेपर भी धन्यकुमार उस राक्षसभवनमें गया। परन्तु उसके दर्शन करते ही वह राक्षस उपशान्तचित्त हो गया। उसने सम्मुख आकर नमस्कार किया और धन्यकुमारको दिव्य सिंहासनपर बैठाकर कहा;—हे स्वामिन्, इतने दिन तक आपका भांडागारिक (खजांची) बनकर मैं प्रसन्नतासे इस द्रव्यकी रखवाली करता रहा हूँ। अब आप आ गये। इसलिए यह सब धनभंडार स्वीकार कीजिए। मैं आपका सेवक हूँ। जिस समय आप स्मरण करेंगे, मैं हाजिर होऊँगा। इतना कह राक्षस तो अदृश्य हो गया। धन्यकुमार रात्रिभर वहीं रहा। उधर जब कुमारकी राक्षसमन्दिरमें जानेकी बात सुनी, तब ऐसी प्रतिज्ञा करके कि जो गति उनकी होगी, वही हमारी होगी, गुणवती आदिने भी वह रात जिस तिस तरहसे व्यतीत की।

प्रातःकाल हुआ। धन्यकुमार मन्दिरमेंसे निकलकर नगरकी ओरको रवाना हुआ। उन्हें देख राजा तथा नगरनिवासियोंको बड़ा भारी कौतुक तथा आश्चर्य हुआ। पश्चात् राजा अभयकुमारादि पुत्रोंके साथ उसे लेनेके लिए आधी दूर सम्मुख गये। उन्हें राजमहलमें ले जाकर बड़ा भारी सत्कार किया और अवसर पाकर पूछा—आपका कुल क्या है? तब धन्यकुमारने कहा:—मैं उज्जयनीके एक वैश्यका पुत्र हूँ और तीर्थयात्राकेलिए निकला हूँ। इससे राजाको संतोष हुआ और उसने गुणवती आदि सोलह कन्याओंके साथ धन्यकुमारका विवाह करके अपना आधा राज्य दे दिया। तब धन्यकुमार उस राजमहलके आसपास नगर बनाकर उसीमें राज्य करता हुआ सुखसे दिन काटने लगा।

उधर उज्जयनीमें धन्यकुमारके चले आनेपर राजादिकोंको बहुत दुःख हुआ। मातापिताके दुःखका तो कहना ही क्या? उसी समय धन्यकुमारको जो नव निधियाँ प्राप्त हुई थीं, उनके रक्षक देवोंने उन्हें (धन्यकुमारके माता

पिताओंको) माता पुत्रोंसहित उस वसुमित्र श्रेष्ठीके घरसे निकाल दिया। वे सबके सब अपने पहले घरमें आकर रहने लगे। यह देख पुरवासियोंको अचरज हुआ। वे लोग यह भी कहने लगे कि अहो! देखो तो धनपाल कैसा कठोर वज्रहृदय है, जो ऐसे महाभाग्य पुत्रके चले जानेपर भी जीता है। और भी जिसके जीमें जो आया, सो कहकर धनपालकी निंदा की।

कुछ दिनोंके बाद धनपाल श्रेष्ठीके ऐसा अशुभका उदय हुआ कि उन्हें जीविकाकी चिन्ता हो गई। भोजनका भी ठिकाना नहीं रहा। लाचार उसी राजगृही नगरीमें जहाँ कि धन्यकुमार राज्य करता था, धनपाल सेठ अपने भानजे शालिभद्रका पता लगाते हुए निकले। धन्यकुमारके महलके सामने वे शालिभद्रका घर पूछ रहे थे कि धन्यकुमारकी दृष्टि उनपर पड़ी। तत्काल ही समीप आकर वे पिताके चरणोंपर गिर पड़े। यह देख लोग आश्चर्य करने लगे कि इस रास्तागीर बनियेके पैरोंपर इतना बडा राजा क्यों पड़ गया। धनपालने भी कहा:—राजन्, इतने बड़े प्रतापी यशस्वी राजा होकर आप यह क्या करते हैं? आप पृथ्वीपति हैं, और मैं एक मन्दभागी वैश्य हूँ। आप मेरे नमस्कारके योग्य हैं। तब पुत्रने कहा:—नहीं, आप पिता हैं और मैं आपका पुत्र हूँ। यह सुनते ही धनपालका हृदय भर आया। पुत्रको गले लगा लिया। दोनों ही परस्पर मिलापके आनन्दमें रोने लगे। तब मंत्री आदिने बड़ी कठिनाईसे उन्हें रोका। पीछे सबके सब राजमहलमें गये। वहाँ धन्यकुमारने अपनी सब कथा कह सुनाई और अपनी माता आदिके कुशल समाचार पूछे। धनपालने कहा:—सब जीते हैं, परन्तु भोजनके लिए वहाँ किसीको भी कुछ नहीं है। यह सुन धन्यकुमारने तत्काल ही बहुतसे सेवक भेजकर सब कुटुम्बियोंको बुलवा लिये। उनके आगमनके समाचार सुनकर धन्यकुमार बड़ी भारी विभूतिके साथ आधी दूरतक लेनेके लिए गया। मिलते ही पहले माताको नमस्कार किया और पीछे भाइयोंको। उस समय अर्थात् धन्यकुमारके नमस्कार करते समय सातों भाई लज्जासे नीचा मुख करके रह गये। तब धन्यकुमारने कहा:—भाइयो, आप लोगोंके प्रसादसे मुझे यह राज्य मिला है। आप लोग क्यों व्यर्थ लज्जित हो रहे हैं? अब आपके जीमें जो कुछ शल्य हो, उसको

निकाल दीजिए। भाईकी इस प्रकार उदार वाणी सुन वे सब भाई निःशल्य हो गये। पश्चात् सबको नगर तथा महलमें ले गया। और खूब सेवा आदर कर सबको यथायोग्य ग्रामादि दे धन्यकुमार सुखसे रहने लगा।

एक दिन अपनी सुभद्रा स्त्रीका मुख उदास देखकर धन्यकुमारने पूछाः-प्रिये, तुम्हारा मुख विरूप क्यों हो रहा है? सुभद्राने कहा;-मेरा भाई शालिभद्र घरमें वैराग्य भावोंका अभ्यास करता हुआ रहता है, इसका मुझे बड़ा भारी दुःख है। तब धन्यकुमारने कहा;-प्रिये, मैं उन्हें जाकर समझा दूंगा, वे वैराग्य नहीं लेंवेंगे। तुम शोकको छोड़ दो। इसके पीछे धन्यकुमार अपनी ससुराल गया। वहाँ अपने सालेसे पूछा;-आप आज कल मेरे यहाँ क्यों नहीं आते है? वे वोले;-आज कल मैं तपका अभ्यास किया करता हूं, इससे आपके यहाँ नहीं पहुँच पाता। धन्यकुमारने कहा;-यदि आपकी इच्छा तप करनेकी है, तो फिर अभ्यास करनेसे क्या? श्रीऋषभदेव आदि तीर्थंकरोंने क्या तपका अभ्यास किया था? उन्होंने तो विना अभ्यास किये ही ऐसा कठिन तप किया था, जो किसीसे न हो सके। अच्छा आप तो अभ्यास ही किया करें, परन्तु मैं तो अब तप ही ले लेता हूँ। मुझे अभ्यास नहीं करना है। ऐसा कह धन्यकुमारने घर आकर अपने धनपाल नामके बड़े पुत्रको राज्य दिया और राजा श्रेणिक आदि सबसे क्षमा माँगकर श्रीवर्द्धमान भगवानके समवसरणमें माता पिता भाई तथा शालिभद्र आदि बहुतसे लोगोंके साथ जिनदीक्षा ले ली।

कुछ कालमें सम्पूर्ण आगमोंके धारी होकर और बहुत कालतक तपस्या करके तथा अन्तमें सल्लेखना करके प्रायोपगमन विधिसे श्रीधन्यकुमार मुनिने शरीर छोड़ा। और सर्वार्थसिद्धि स्वर्गके सुख प्राप्त किये। धनपालादि अपनी२ तपस्याके अनुसार यथायोग्य गतियोंको प्राप्त हुए।

इस प्रकार वत्सपाल एक वारके मुनिदानके प्रभावसे ही इस प्रकार सुखको प्राप्त हुआ। फिर अन्य लोग क्यों नहीं मुनिदानके फलसे सब प्रकारके सुखोंको पावेंगे?

---

(१६) अग्निला ब्राह्मणीकी कथा ।

आर्य खंड सुराष्ट्र देशके गिरि नगरमें भूपाल राजा राज्य करता था। वहाँ एक सोमशर्मा नामका ब्राह्मण अपनी अग्निला स्त्री और दो पुत्रोंके सहित सुखपूर्वक रहता था। एक पुत्रका नाम शुभंकर और दूसरेका प्रभकर था। पहला पुत्र सात वर्षका था और दूसरा पाँच वर्षका।

एक दिन सोमशर्माके घर श्राद्धका दिन आया। उस दिन उसने बहुतसे ब्राह्मणोंका न्योता किया था। सो पिंडदान करनेके लिए सबके सब सोमशर्माके साथ किसी जलाशयपर गये। इधर दो पहरको गिरनार पर्वतपर रहनेवाले श्रीवरदत्त महामुनि मासोपवासके पारणेको गिरि नगरमें चर्याके लिए आये। उन्हें किसीने नहीं देखा। एक अग्निला ब्राह्मणीकी दृष्टि उनपर पड़ी। अग्निलाको जैनियोंके निरन्तर संसर्गसे जैनधर्मका कुछ बोध हो गया था इसलिए वह मुनिके सम्मुख जाकर उनके चरणोंपर पड़ गई। और बोली;-हे स्वामिन्, मैं ब्राह्मणी हूँ तथापि मेरे माता पिता जैनी हैं। इसलिए मेरे यहाँ आहारकी शुद्धि है। कृपा करके हे परमेश्वर, मेरे घर तिष्ठिए। इस प्रकार यथोक्त विधिसे मुनिकी स्थापना की। वरदत्त मुनि कृपासागर थे। ब्राह्मणीकी भक्तिको देख हर्षित हुए और ठहर गये। तब अग्निलाने बड़े भारी आनन्दके साथ नवधा भक्ति और दाताके सातों गुणसहित मुनिको शुद्ध आहार दान दिया। उस समय उसके हृदयमें अपने पतिका बड़ा भारी डर लग रहा था, तो भी उसे देवगति आयुका बंध हुआ।

मुनि निरन्तराय आहार लेकर अग्निलाके घरसे लौटे और उसी समय पिंडदान करके आते हुए ब्राह्मणोंने घरमें प्रवेश किया। सो मुनिराजको देखकर वे क्रोधरूपी अग्निसे जल उठे। और यह कहकर चलने लगे कि हे सोमशर्मा, तुम्हारी रसोई क्षपणकने (जैन मुनिने) जूठी कर दी, इसलिए ब्राह्मणोंके भोजन करने योग्य नहीं रही। तब सोमशर्मा "महाराजाओ, मैं लक्ष्मीवान् हूँ इसलिए जो आप लोगोंके जीमें आवै, सो प्रायश्चित्त देकर श्राद्धकार्य कीजिए।" ऐसा कहकर ब्राह्मणोंके चरणोंमें पड़ गया। उसकी भक्ति और लक्ष्मी देखकर कई एक लोभी ब्राह्मण बोले–

सोमशर्मा उत्तम ब्राह्मण है, इसलिए विप्रके वचनसे सब ही कुछ शुद्ध है। सो प्रायश्चित्त देकर हमारी समझमें भोजन करना उचित है। यदि न मानो, तो शास्त्रप्रमाण देख लो। इसके सिवाय स्मृतिकार कहते हैं;—

अजाश्वा मुखतो मेध्या गावो मेध्यास्तु पृष्ठत ।
ब्राह्मणाः पादतो मेध्याः स्त्रियो मेध्यास्तु सर्वतः ॥

अर्थात्–बकरी और घोड़ा मुखसे पवित्र है, गाय पूछसे पवित्र है; ब्राह्मण पांवोंसे पवित्र है, और स्त्रियाँ सब ओरसे सब प्रकारसे पवित्र है। इसलिए इसे प्रायश्चित्त देकर बकरी तथा घोड़के मुखसे रसोईको शुद्ध करके भोजन करना चाहिए। परन्तु कोई २ बोले कि अन्यान्य दोषोंका प्रायश्चित्त तो है, परन्तु यतिके भोजन करानेका कोई प्रायश्चित्त हो, तो उसका निरूपण करो। इस प्रकार परस्पर विवाद करके अन्तमें वे सब ब्राह्मण पांवोंमें पड़े हुए भी सोमशर्माको छोड़कर अपने २ घर चले गये।

इसके पीछे सोमशर्माने घरमें जाकर अग्निलाके सिरके बाल पकड़कर यह कहते हुए दंडोंसे उसे मारी कि "मैं उत्तम कुलका ब्राह्मण इस पापिनी जैनीकी पुत्रीके साथ विवाह न करता, तो इतनी विडम्बनामें क्यों पड़ता?" मारके मारे अग्निला मूर्च्छित हो गई, गिर पड़ी। तब सोमशर्मा छोड़कर चला गया। पीछे सचेत होनेपर अग्निला अतिशय दुःखी हुई और छोटे लड़केका हाथ पकड़कर तथा बड़े लड़केको पीछे करके और लोगोंके मुँहसे यह जानकर कि मुनिराज गिरनार पर्वतपर रहते हैं, पर्वतकी ओरको चली। मार्गमें एक भिल्लिनीको देखकर अग्निलाने पूछा;–गिरिनारका रास्ता कौनसा है? भिल्लिनी बोली–माता, तुम्हारा वहाँ क्या प्रयोजन है? अग्निलाने कहाः–इससे तुम्हें क्या? तुम तो मुझे रास्ता बतला दो। भिल्लिनी बोली;–तुम जैसी अकेली स्त्रीसे सिंह व्याघ्रादि हिंसक पशुओंसे भरे हुए इस पर्वतपर कैसे प्रवेश किया जावेगा? अग्निलाने कहा;—वहाँ मेरे गुरु विराजमान हैं। उनके प्रभावसे मेरा सब प्रकारसे कल्याण होगा। कोई डर नहीं है। तुम तो रास्ता बतला दो। तब उस भिल्लिनीने लाचार होकर मार्ग बतला दिया। उसके अनुसार अग्निला पर्वतपर पहुँची। वहाँ एक भीलसे मुनिके विराजमान होनेका स्थान पूछा। दो छोटे २ सुकुमार

बालकोंको साथ लिये हुए उस स्त्रीको देख उस भीलको दया आ गई। इसलिए उसने पर्वतकी कटिमें जो गुफा थी, उसमें विराजमान मुनिको जाकर दिखला दिये। अग्निला मुनिको नमस्कार कर समीप बैठ गई और कहने लगी—भगवन्, स्त्रीका जन्म बड़ा दुःखदायी है। इसलिए इस पर्यायको नष्ट करनेवाली जिनदीक्षा मुझे दीजिए। मुनिराजने कहा;—माता, जान पड़ता है कि तुम क्रोधित होकर यहाँ आई हो। इसलिए तत्काल ही तुम्हें दीक्षा नहीं दी जा सकती और यहाँ तुम्हारे ठहरनेमें लोकनिन्दाका डर है। इसलिए यहाँसे जाकर जबतक तुम्हारा कोई संबंधी न आवे, तबतक किसी वृक्षके नीचे ठहर जाओ। यह सुनकर विनयवती अग्निला वहाँसे उठकर किसी ऊँचे शिखरके वृक्षके नीचे जा ठहरी। वहाँ पुत्रोंने कहा,—हमको प्यास लगी है। तब अग्निलाके पुण्यके प्रभावसे वहाँ एक सूखा तालाब अतिशय मीठे निर्मल जलसे भर गया। सो उसका जल उसने बालकोंको पिलाया। थोड़ी देरमें उन्हें भूख लगी। तब वही वृक्ष कल्पवृक्ष हो गया। सो उसके द्वारा बालकोंने अपनी भूख शान्त की। अग्निला इन सब कौतुकोंको धर्मके फल जान बहुत हर्षित हुई और धर्ममें दृढ़ श्रद्धा करके सुखसे ठहरी।

उधर उसी दिन गिरि नगरमें आग लगी। सो सोमशर्माके घरको छोड़कर राजभवन अन्तःपुर आदि सबके सब घर जलकर भस्म हो गये। सब लोग नगर छोड़कर भागे और बाहर एक जगह इकट्ठे हुए। वहाँ सब बोले;—बड़े आश्चर्यकी बात है कि चारों ओर जिसके आग प्रचंड हो रही है, वह सोमशर्माका घर ज्योंका त्यों खड़ा हुआ है। उसे आँच भी न लगी। यह क्या बात है ?। कहीं यह सब लीला उस क्षपणककी (जैनमुनिकी) न हो। जान पड़ता है, कोई देव क्षपणकके वेशमें सोमशर्माके यहाँ भोजन करनेके लिए आया था। नहीं तो क्या उसका घर बच सकता था ? इस प्रकार विचार करके वे सब ब्राह्मण जिनका सोमशर्माने न्योता किया था, तथा अन्य भी बहुतसे ब्राह्मण उसकी रसोईको पवित्र मान करके सोमशर्माके यहाँ गये और बोले;—तुम पुण्यवान् हो। क्षपणकके वेशमें तुम्हारे यहाँ कोई देव भोजन कर गया है। इसलिए तुम्हारे यहाँकी रसोई अतिशय पवित्र है। हम लोगोंको आहार कराओ। तब सोमशर्माने

उन सबको तथा और भी ब्राह्मणोंको बुलाकर यथेष्ट भोजन कराया। वे मुनि अक्षीणमहानस ऋद्धिके धारी थे। सो
दूध और दहीको छोड़कर (?) वह रसोई सब प्रकारके भोजनोंसहित अटूट हो गई। सम्पूर्ण नगरनिवासियोंने जीम
लिया, परन्तु कम नहीं हुई। इससे सब लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। और सब लोग मुनिदानमें अनुरक्त हो गये।

दूसरे दिन सोमशर्माको चिन्ता हुई। वह दुःखी हो कहने लगाः—हाय! मुझ पापीने उस महासती पुण्यमूर्ति
निरपराधिनी अग्निलाको व्यर्थ ही मारा। न जाने वह कहाँ गई होगी। यहाँ वहाँ देखता हुआ, विलाप करने लगा।
उस समय किसीने कह दिया—तुम्हारी स्त्री गिरिनार पर्वतपर गई है। तब वह कुछ लोगोंके साथ पर्वतको चला। उसे
आता हुआ देखकर अग्निलाने यह सोच कर कि "ये आ रहे हैं, सो मुझे फिर भी कुछ न कुछ
दुःख दिये विना नहीं रहेंगे।" पुत्रोंको वहीं बैठाकर आप वहाँसे गिरकर मर गई। और सोमशर्माके
वहाँ पहुँचनेके पहले ही व्यन्तर लोकके दिव्य महलमें उत्पादशय्यापर अन्तर्मुहूर्तमें नवयौवनसम्पन्न,
धातुरहित, सहज वस्त्र अलंकार मालाओंसे शोभित, सुगंधित निर्मल देह, अणिमा गरिमा आदि आठ
गुणोंसे पुष्ट, जैनी जैनोंमें वात्सल्यभाव रखनेवाली, सम्पूर्ण द्वीपोंके रमणीक पर्वत, नदी, वृक्षप्रदेशोंमें
क्रीड़ा करनेवाली, और अनेक परिवारकी देवियोंसे शोभित, श्रीमान् नेमिनाथ भगवानके शासनकी रक्षा
करनेवाली, कांचिका नामकी यक्षी उत्पन्न हो गई। सो तत्काल ही भवप्रत्यय अवधिज्ञानके बलसे अपनी उत्पत्तिका
कारण जान धर्मानन्दमूर्ति और लोगोंको मन हरण करनेवाली अग्निलाका रूप बनाकर पुत्रोंके पास
जा बैठी। इतनेमें सोमशर्मा वहाँ आया, और उसे अपनी स्त्री जानकर बोलाः—हे प्रिये, मुझ पापीने विना परीक्षा
किये हुए जो कुछ अपराध किया है, वह सब क्षमा करो। तब उसने कहा;—मैं तुम्हारी स्त्री नहीं हूँ। देखो, वह
तुम्हारी स्त्री है। ऐसा कहकर अग्निलाका कलेवर उसे दिखलाया। परन्तु उसे श्रद्धान नहीं हुआ। वह यह कहकर
कि नहीं, तुम्हीं मेरी स्त्री हो, उसका वस्त्र पकड़नेके लिए ज्यों ही समीप गया, त्यों ही वह दिव्य देह ऊपरको
आकाशमें चली गई, और बोली;—कहो, अब मैं तुम्हारी स्त्री कैसे हूँ? तब सोमशर्माने आश्चर्ययुक्त होकर पूछा;—देवी,

तुम कौन हो? कांचिकाने अपनी सब कथा कह सुनाई और समझाया कि इन लड़कोंको लेकर घर जाओ। सोमशर्मा बोला;—अब मुझे घरसे क्या प्रयोजन है? जो तुम्हारी गति हुई है, वही मेरी होगी। यक्षीने कहा—यदि ऐसा करोगे, तो ये बालक मर जावेगे। इसलिए इन्हें लेकर घर जाओ। तब वह बोला;—यह तो मै भी जानता हूँ। इसके पीछे वह अपने घर जाकर, अपने गोत्रजोंको दोनो पुत्र सौंप, जिनधर्मकी भावना भायकर, अपनी स्त्रीके स्वर्गगमनकी बात सब ब्राह्मणोंको सुना, और उन्हें अणुव्रत महाव्रतोंके अनुकूल करके स्वयं पर्वतपर गया और वहाँसे (किसीके बिना जाने) गिरकर मर गया। और अंबिकादेवीका वाहन सिंहजातिका देव हुआ।

पीछे वे शुभंकर प्रभंकर दोनो पुत्र जिनधर्मके अतिशय श्रद्धालु होकर बहुत समयतक चार प्रकारका गृहस्थधर्म पालकर श्रीनेमिनाथ भगवानके समवसरणमे दीक्षित हो गये। और उत्कृष्ट तप करके केवलज्ञानी हो मोक्षलक्ष्मीके स्वामी हुए।

इस प्रकार पराधीन स्त्रीकी जाति अग्निला पतिके डर सहित भी एक बार मुनियोंको आहार देकर स्वर्गके महान् सुखोंको प्राप्त हुई। फिर अन्य स्वतंत्र पुरुष सर्वदा दान करे, तो ऐसा कौनसा सुख है, जो उन्हे प्राप्त न हो?

इति श्रीकेशवनन्दिदिव्यमुनिशिष्यश्रीरामचन्द्रमुमुक्षुविरचित पुण्यास्रवकथाकोषकी परवारवंशोद्भव श्रीनाथूरामप्रेमीकृत सरलभाषाटीकामें दानफलवर्णन-षोडशक समाप्त हुआ।

अथ ग्रन्थप्रशस्तिः ।

यो भव्याब्जदिवाकरो यमकरो मारेभपञ्चाननो, नानादुःखविधायिकर्म्मकुभृतो वज्रायते दिव्यधीः।
यो योगीन्द्रनरेन्द्रवन्दितपदो विद्यार्णवोत्तीर्णवान्, ख्यातः केशवनन्दि देवयतिपः श्रीकुन्दकुन्दान्वयः ॥ १ ॥

शिष्योऽभूत्तस्य भव्यः सकलजनहितो रामचन्द्रो मुमुक्षु-र्ज्ञात्वा शब्दापशब्दान् सुविशदयशसः पद्मनन्द्याह्वयाद्वै।
वन्द्याद्वादीभसिंहात्परमयतिपतेः सोऽव्यधाद्भव्यहेतो-र्ग्रन्थं पुण्यास्रवाख्यं गिरिसमितिमितैर्दिव्यपद्यैः कथार्थैः ॥ २ ॥

चन्द्रादित्यसदाऽम्बर ॥ ३ ॥

सार्द्धैश्चतुःसहस्रैर्या, मितः पुण्यास्रवाह्वयः। ग्रन्थः स्थेयात् सतां चित्ते, चन्द्रादित्यसदाऽम्बर ॥ ३ ॥

कुन्दकुन्दान्वये ख्याते, ख्यातो देशिगणाग्रणी। बभूव संघाधिपः श्रीमान्पद्मनन्दी त्रिरात्रिकः ॥ ४ ॥

वृषाभिरूढो गणपो गुणाद्यतो, विनायकानन्दितचित्तवृत्तिकः।

उमासमालिङ्गितईश्वरोपमस्ततोप्यभून्माधवनन्दिपण्डितः ॥ ५ ॥

सिद्धान्तशास्त्रार्णवपारदृश्वा, मासोपवासी गुणरत्नभूषः। शब्दादिवार्थो विबुधप्रधानो, जातस्तत श्रीवसुनन्दिसूरिः ॥ ६ ॥

दिनपतिरिव नित्यं भव्यपद्माब्धिबोधी, सुरगिरिरिव देवैः सर्वदा सेव्यपादः।

जलनिधिरिव शश्वत् सर्वसत्त्वानुकम्पी, गणभृदजनि शिष्यो मौलिनामा तदीयः ॥ ७ ॥

कलाविलासः परिपूर्णवृत्तो, दिगम्बरालङ्कृतिहेतुभूतः। श्रीनन्दिसूरिर्मुनिवृन्दवन्द्य-स्तस्मादभूच्चन्द्रसमानकीर्तिः ॥ ८ ॥

चार्वाकबौद्धजिनसाङ्ख्यशिवाद्विजानां वाग्मित्ववादिगमकत्वकवित्ववित्तः।

साहित्यतर्कपरमागमभेदभिन्नः, श्रीनन्दिसूरिगगनाङ्गणपूर्णचन्द्रः ॥ ९ ॥

प्रशस्तिका भावार्थ।

भव्यरूपी कमलोंको प्रमुदित करनेवाले सूर्य, यमके धारण करनेवाले, कामदेवरूपी हाथीके लिए पंचानन सिंह, नाना प्रकारके दुःखोंके करनेवाले कर्मरूपी पर्वतोंको नष्ट करनेमें जिनकी दिव्यबुद्धि वज्रके भावको धारण किये है, जिनके चरणोंकी योगीश्वर और राजा वन्दना करते हैं, विद्यारूपी समुद्रको तर करके जो पार पहुँच गये हैं, ऐसे श्री केशवनन्दि भट्टारक श्रीकुन्दाकुन्दान्वयमें प्रसिद्ध हुए ॥ १ ॥ उनके एक सकल जनोंका हित करनेवाला श्रीरामचन्द्र मुमुक्षु नामका भव्य शिष्य हुआ। जिसने निर्मल यशवाले श्रीपद्मनन्दि मुनिसे तथा वंदनीय वादीभसिंह मुनिराजसे व्याकरणशास्त्र पढ़कर भव्यजनोंके लिए यह ५६ सुन्दर पद्यों तथा कथाओंवाला पुण्यास्रवग्रन्थ निर्माण किया ॥ २ ॥ सज्जनोंके हृदयरूपी आकाशमें यह साढ़े चार हजार श्लोकप्रमाण पुण्यास्रवग्रन्थ निरन्तर विराजमान रहो ॥ ३ ॥

श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकी परम्परामें देशीय गणके अग्रगण्य और संघके स्वामी श्रीपद्मनन्दि नामके एक त्रिरात्रिक (?) आचार्य हुए ॥ ४ ॥ पश्चात् उनके शिष्य एक माघनन्दि नामके पंडित हुए, जो महादेवकी उपमाको धारण किये हुए थे। महादेव वृष अर्थात् बैलपर आरूढ़ रहते थे और माघनन्दि वृष अर्थात् धर्ममें आरूढ़ थे। महादेव जिस तरह गणाधीश तथा गुणोद्यत थे, वैसे ही ये देशीयगणके स्वामी तथा गुणप्राप्त करनेमें उद्यत थे। महादेवके चित्तकी वृत्ति विनायक अर्थात् गणेशसे आनन्दित रहती थी, इधर उनकी विनायक अर्थात् विघ्नोंसे आनन्दित रहती थी। महादेव उमाका (पार्वतीका) आलिङ्गन किये रहते थे और माघनन्दि उमा अर्थात् शान्ति अथवा कीर्तिमें निमग्न रहते थे ॥ ५ ॥ शब्दसे जैसे अर्थ उत्पन्न होता है, उसी प्रकार उन माघनन्दि पंडितसे सिद्धान्तशास्त्ररूपी समुद्रके पार देखनेवाले मास मासका उपवास करनेवाले, गुणरूपी रत्नोंसे भूषित और पंडितोंमें प्रधान श्रीवसुनन्दिसूरि नामके आचार्य हुए ॥ ६ ॥ पश्चात् उनके एक मौलिनामके शिष्य हुए, जो भव्यजनरूपी कमलोंको सूर्यके समान प्रफुल्लित करते थे, सुमेरुगिरिके समान देवता जिनकी सर्वदा सेवा करते थे, और समुद्रके समान सम्पूर्ण प्राणियोंपर जो अनुकम्पा करते थे ॥ ७ ॥ पश्चात् उनसे चन्द्रमाके समान कीर्तिके धारण करनेवाले, मुनिगणोंके द्वारा वन्दनीय, कलाविलास, परिपूर्ण वृत्तिवाले, और दिगम्बरियोंके शृङ्गारस्वरूप श्रीनन्दिसूरि या केशवनन्दि नामके आचार्य (ग्रन्थकर्ताके गुरु) हुए ॥८॥ (नवम श्लोकका सम्बन्ध ठीक नहीं बैठता है, श्लोक अशुद्ध जान पड़ता है।)



इसके वाद नवमें दिन राजाने यह आज्ञा दी कि,-घडेमें रक्खे हुए एक कुम्हडा (पैठा) हमारे सामने ले आओ।
तब ब्राह्मणोंने कुछ अवकाश मांगके एक घडेमें एक छोटेसे फलको जो कि झाड़में लगा हुआ था, रखके वढ़ाया और
फिर समयपर ले जाके उसे हाजिर कर दिया।

इस प्रकार सम्पूर्ण विकट प्रश्नोका उत्तर ब्राह्मणोकी ओरसे मिलता गया, तव राजाको सन्देह हुआ कि, इन्हे
अवश्य ही कोई विशेष बुद्धिशाली पुरुष प्रत्युपाय वतलानेवाला मिल गया है! इसलिये उसने अनेक चतुर पुरुषोंको
उस विचक्षण पुरुषका पता लगानेके लिये भेजा।

वे चतुर पुरुष घरसे निकलकर ब्राह्मणोंके गांवके निकट ही पहुँचे थे कि, वहां जामुनके वृक्षोपर अभयकुमार
वहुतसे वालको सहित क्रीड़ा कर रहा था, उसने इन्हे आते हुए देखकर अपने साथियोसे कहा कि, देखो, इन आने-
वालोंसे तुममेसे कोई भी नही वोलना। इतनेमें वे पुरुष उस वृक्षके नीचे आ गये और कहने लगे-भाई, हमको भी
कुछ थोंड़ेसे जामून खिलाओ। कुमारने कहा-कहिये आप लोगोंको गर्म गर्म जामून खिलाऊँ या ठंडे ठंडे? उन्होंने
कहा,-गर्म गर्म खिलाओ, तो अच्छा हो। कुमारने पके पके जामून हाथसे मसलकर नीचे डालना शुरू किये और उन
लोगोंने नीचे पड़ जानेसे जो रेती जामुनमें लग जाती थी, उसे मुहसे फूँक फूँककर खाना शुरू किया यह देख
अभयकुमारने मुसकुराके कहा-देखोजी; होशयारीसे फूँकते जाना, नही तो गर्मीसे मूंछे झुलस जावें? सुनकर वे लोग
वड़े लज्जित हुए और तव उन्होंने ठंडे जामुनकी याचना की। पश्चात् वहांसे लौटके राजासे जाकर उन वालकोकी
कथा सुनाई। सुनकर राजाने उस गांवके ब्राह्मणोके पास आज्ञा भिजवाई कि, उन सव वालकोंको जो कि खेल रहे
थे, हमारे पास ले आओ। परन्तु स्मरण रहै कि, वे न तो मार्गसे आवे न उन्मार्गसे, न गाड़ी घोड़े आदिकी सवा-
रीसे आवें न पैदल, और न रातको और न दिनको। तव ब्राह्मणोने अभयकुमारसहित उन सब वालकोंको एकत्र

करके गाड़ियोंकी धुरीमें छींके बांधके और उनमें बैठाके संध्याके समय राजाके सम्मुख पहुँचा दिये*। उस समय पुत्रके मिलापसे राजा श्रेणिकको बडा भारी आनन्द हुआ। पुत्रने अपनी सब कथा कहके वेचारे ब्राह्मणोंको अभयदान दिलवाया। पश्चात् नन्दश्रीको पट्टरानीका, अभयकुमारको युवराजका पद देकर और जठराग्नि भगवत्को अपना गुरु बनाके [1]वौद्धधर्मका प्रकाश करता हुआ राजा श्रेणिक सुखसे काल व्यतीत करने लगा।

एक दिन राजा श्रेणिकके साम्हने एक झगड़ा उपस्थित हुआ, जिसका सारांश यह है कि;—उसी राजगृह नगरमे समुद्रदत्त शेठके वसुदत्ता और वसुमित्रा नामकी दो स्त्रियाँ थीं, जिनमेसे छोटी वसुमित्राके एक पुत्र था। वह पुत्र दोनोंको इतना प्यारा था कि, दोनो ही उसका लालन पालन करतीं और दूध पिलाया करती थीं। कुछ दिनोके पीछे शेठके मरनेपर उन दोनोमें "यह मेरा पुत्र है" इस प्रकार कहकर झगड़ा शुरू हुआ, और वह यहां तक बढ़ा कि, वे दोनो राजाके पास उसे मिटानेको पहुंचीं। परन्तु राजा अनेक प्रयत्न करनेपर भी उसका फैसला न कर सका। तव अभयकुमारके पास वह झगड़ा आया, और उसने अनेक उपायोसे उसका असली तत्त्व समझना चाहा, परन्तु जव कुछ लाभ नही हुआ, तव अन्तमें अभयकुमारने एक प्रयत्न किया। वह यह कि, उस वालकको धरतीपर लिटाके एक छुरी निकाली और उसे यह कहकर मारनेको तत्पर हुआ कि, अव इन दोनों माताओंको इसके दो टुकड़े करके एक एक सोंप देता हूं, इसके विना यह झगड़ा नही मिट सकता। यह सुनते ही जो उस वालककी असली माता थी, उसने पुकारके और रोके कहा,—"महाराज! मुझे यह पुत्र नहीं चाहिये। इसीको (दूसरीको) सोंप दीजिये। मै

*उक्त च,—मेषश्च वापी करिकाष्ठतैल क्षीराब्धिजम्वालुकवेष्टन च।
घटस्थकुष्माण्डफल शिशूना दिवानिशावर्जसमागम च॥

१ मूल पुस्तकमे सर्वत्र वौद्धके स्थानमे वैष्णवधर्म लिखा गया है। (यथा.—जठराग्निं राजगुरु कृत्वा वैष्णव धर्म प्रकाशयन् सुखेन स्थित।) परन्तु श्रेणिकचरित्रादि अन्य आर्ष ग्रन्थों और इतिहासोसे वौद्धधर्म ही ठीक जँचता है। इस कथाकोषमे न जाने क्यो ऐसा लिखा गया है।

उसके पास ही इसे देख देखके जीऊंगी, परन्तु कृपा करके वध न कीजिये।" इस सच्चे पुत्रस्नेहसे अभयकुमारने तुरन्त जान लिया कि, यही इसकी यथार्थ माता है, अतएव उसी समय वह पुत्र उसे सोंप दिया गया।

दूसरे दिन अभयकुमारके पास एक दूसरा झगड़ा उपस्थित हुआ। वह यह कि, अयोध्या नगरीमें वलभद्र नामका कोई एक गृहस्थ था। उसकी भद्रा नामक स्त्री अत्यन्त रूपवती थी। एक वार उसपर ब्रह्मराक्षसने आसक्त होकर वलभद्रका (उसके पतिका) रूप धारण करके उसके घरमे प्रवेश करना चाहा। परन्तु भद्राने उसकी भावभंगी और गतिसे जान लिया कि, यह कोई दूसरा ही है, और मेरे साथ छल करना चाहता है, अतएव उसने शीघ्रतासे अन्तर्गृह (मझघरे) के किवाड़ दे दिये और इतनेमें उसका असली पति भी आ गया। परन्तु वे दोनो ही इस प्रकारके गुप्त संकेतादिक वतलाते थे कि, वह कुछ निश्चय न कर सकी कि, इनमे असली कौन है। वेचारा वलभद्र भी बड़े विस्मयमे पड़ा। और आखिर उसने इसकी पुकार अभयकुमारसे जाकर की।

दृष्टिभेद, स्वरभेद, और गतिभेदसे जव अभयकुमार इस वातका निश्चय नहीं कर सके कि, इनमें वलभद्र कौन है? क्योंकि उस ब्रह्मराक्षसने इस खूवींसे वेप वदला था कि, दृष्टि आदिसे उसका पहिचान लेना कठिन था, तव उन्होंने एक कोठरीके भीतर दोनोको वन्द करके वाहरसे द्वार लगा दिया, और आज्ञा दी कि, जो कोई चावीके छेदमेंसे निकल आवेगा वही घरका स्वामी होगा, भद्रा उसीको दिलाई जावेगी। तव ब्रह्मराक्षस अपनी मायासे उसी समय वाहर निकल आया। वेचारा वलभद्र नहीं निकल सका। वस! असलीकी पहिचान हो गई। जो कोठरीसे नहीं निकल सका था, उस असली वलभद्रको उसकी स्त्री और घर सोंप दिया गया। इस युक्तिपूर्ण न्यायके करनेसे अभयकुमारकी वड़ी ख्याति हुई।

अयोध्या नगरीमें भरत नामका एक चित्रकार था। एक समय उसने पद्मावतीकी आराधना करके यह वर पा लिया कि, जिस रूपको मनमें विचार करके वह कलम कागजपर रखता था, उस पटपर उसका साक्षात् रूप स्वयमेव

खिच जाता था। इस विद्याको पाकर उसने नाना देशोंमें भ्रमण करके प्रशंसा प्राप्त की, और वह एक अद्वितीय चित्रकार हो गया।

एक वार वह सिन्धुदेशके वैशालीपुर नगरके राजा चेटकके दरवारमें गया। और वहां अपने गुणको दिखलाकर उसने वहांके सम्पूर्ण चित्रकारोंको जीत लिया। उस समय राजाने प्रसन्न होकर उसको एक अच्छी वृत्ति (नौकरी) लगा दी; और वह उससे आनन्द-पूर्वक निर्वाह करके वहीं रहने लगा।

राजा चेटककी सुभद्रादि सात रानियोंसे प्रियकारिणी, मृगावती, सुप्रभा, ज्येष्ठा, चेलिनी और चन्दना नामकी सात पुत्रियां थीं। इनमेंसे पहली चार कन्याओंका विवाह हो चुका था, और शेष तीन कुंवारी थीं। भरत चित्रकारने इन सातोंके चित्रपट खींचके अपने द्वारपर लटका रक्खे थे, वे लोगोको ऐसे रुचे कि, स्वयं लिख लिखके उन्हे अपने अपने द्वारोंपर लटकाये। पश्चात् एक दिन भरतने चेलिनी कन्याका नग्नरूप मनमें धारणकरके उसका चित्र खींचा। सो वह ऐसा ज्योंका त्यों खिच गया कि, उसके गुप्त अंगपर जो तिल था, वह भी वाकी न वचा। इसपरसे राजाको यह विश्वास हो गया कि, इसने अवश्य ही किसी न किसी तरह मेरी कन्याका शील नष्ट किया है, अन्यथा ऐसा चित्र वह कभी नहीं खींच सकता था। और इससे वह अतिशय क्रोधित होकर उसे मारनेके लिये तैयार हुआ, परन्तु तव तक किसीने जाके भरतसे कह दिया कि, तू यहांसे अपने प्राण वचाके शीघ्र भाग जा, अन्यथा महाराज तुझे जीता नहीं छोड़ेंगे। सुनते ही वह वहांसे भाग खडा हुआ और राजगृह नगरीमें जा पहुंचा। वहां उसने राजा श्रेणिकको उस कन्याका चित्रपट दिखाके विह्वल वना दिया। श्रेणिक इस चिन्तामें मग्न हो गया कि, वह मुझे कैसे प्राप्त हो सकती है? यदि राजा चेटकसे उसकी याचना की जावे, तो वह जैनी है, इसलिये मुझे वह अपनी कन्या कभी देना नहीं चाहेगा। और यदि युद्धका विचार किया जावे, तो उसको जीत लेना वड़ा कठिन कार्य है। पिताको इस प्रकार व्याकुल देखके अभयकुमारने उसे धैर्य वँधाया और आप स्वयं एक वड़ा व्यापारी वनके वैशालीपुर गया। वहां चेटकमहाराजसे मिलके संभाषण (वातचीत) की प्रियताके कारण उनका अत्यन्त प्यारा वन गया। इसके

बाद मौका पाकर एक दिन उसने राजमहलके निकट रहनेके लिये एक स्थानकी याचना की, राजाने उसे प्रसन्नतासे पूर्ण की। अभयकुमार वहां रहने लगा और अपने जैनीपन तथा अन्य अनेक उत्तम गुणोके कारण प्रसिद्ध हो गया। अच्छे अच्छे लोगोंसे उसकी रसाई हो गई।

एक दिन उसने अवसर पाके राजाकी उन तीनों कन्याओंके आगे जिनका कि विवाह नहीं हुआ था, राजा श्रेणिकके रूप और गुणोंकी ऐसी प्रशंसा की कि, तीनो ही श्रेणिकपर अत्यन्त आसक्त हो गई, और अभयकुमारसे प्रार्थना करने लगी कि, हमको किसी प्रकारसे उनके पास पहुंचा दो। तब अभयकुमारने अपने रहनेके घरसे एक सुरंग तैयार करवाई और उसमेंसे उन तीनोंको लेके चलने लगा। परन्तु उस समय चन्दना अपनी मुद्रिका और ज्येष्ठा अपना हार भूल आई थी, सो वे दोनो उन चीजोके लिये लौट गई, केवल चेलिनी रह गई। तब अभयकुमार उस अकेलीको ही लेके सुरंगके द्वारा उस नगरसे बाहर हो गया और कुछ दिनोंमें चलके राजगृह पहुंचा। आगमन सुनके राजा श्रेणिक बडी भारी विभूतिके साथ लेनेके लिये आया और बड़े स्नेह सत्कारके साथ चेलिनीका नगर प्रवेश कराया। पश्चात् शुभमुहूर्तमें विवाह करके और उसे पट्टरानीका पद देके राजा श्रेणिक नाना प्रकारके भोगोंका अनुभव करता हुआ सुखसे रहने लगा।

राजा श्रेणिक चेलिनी महारानीको अपना धर्म बहुत सुनाया करते थे, और चाहते थे कि, यह किसी तरह स्वधर्मावलम्बिनी हो जावे, जैनधर्मको छोड़ देवे। परन्तु हजार प्रयत्न करनेपर उसने जैनधर्म नहीं छोड़ा। एक दिन राजगुरु जठराग्निने आके रानीसे कहाः—हे देवि! क्षपणक (जैनगुरु) मरकर स्वर्गलोकमें क्षपणक अर्थात् भिक्षुक ही होते है। चेलिनीने कहा—तुमने यह कैसे जाना? जठराग्नि बोलाः—मुझे बुद्धदेवने[1] बुद्धि ही ऐसी दी है कि, मै उससे ऐसी बातें जान लेता हूं। रानीने कहा,—यदि आप ऐसी बुद्धि रखते है, तो कृपाकरके कल आप मेरे ही महलमें आके भोजन करना स्वीकार करें। तब जठराग्नि यह बात स्वीकार करके वहांसे चला गया।

---

१ यहा भी मूलमे 'विष्णु' पद दिया है। "विष्णुर्मतिमदात्तयाबोधि मया एव।" इति

दूसरे दिन रानीने जठराग्नि, और उनके साथी सब साधुओंको बुलाके बडे सत्कारसे बिठलाया और फिर इस रीतिसे कि उन्हें मालूम न हो, उन सबका एक एक जूता लेकर और उनका चूर्ण बनाके चटनीमे अच्छी तरहसे मिलवा दिया। पश्चात् वह चटनी साधुओंको परोसी गई और वे बड़े प्रेमसे उसे चाट गये। चलते समय जब सबने देखा कि एक एक जूता गायब है, तब रानीसे पूछा। रानीने कहा, आप तो ज्ञानवान् है। ज्ञानसे जान लीजिये, जूते कहाँ गये। जठराग्निने कहा;-महरानी, ऐसा ज्ञान हमारे पास नही है। रानीने कहा-तो फिर आप यह कैसे जान सके कि दिगम्बर क्षपणक स्वर्गमे क्षपणक ही होता है? जठराग्निने कहा-महारानीजी, नहीं जान सकता, परन्तु अब कृपा-करके वे जूते दिला दीजिये। रानीने हँसके कहा-मै कहाँसे दिलाऊँ, जूते तो सब आप लोग ही खा गये है। सुनते ही एक साधुने उसी समय कै (वमन) कर दी। उसमे चर्मके छोटे २ टुकड़े देखकर वे सब साधु बड़े लज्जित हुए और पश्चात्ताप करते हुए अपने स्थानको गये।

एक दिन राजाने कहा-हे देवि, हमारे गुरुमहाराज जब ध्यानका अवलम्बन करते है, तब वे अपनी आत्माको बुद्धभवनमें लेजाते है-और वहाँ सुखमें मग्न हो जाते है। यह सुनके रानीने कहा-तो महाराज उनका वह अविचल ध्यान एक बार नगरके बाहर मुझे दिखलाइये, यदि वह सच्चा ध्यान होगा तो मै आपके धर्मको उसी समय स्वीकार कर लूँगी। तब उस नगरके बाहर मंडपमे वे सब साधु वायुधारण (प्राणायाम) करके बैठ गये और राजा चेलिनीको लेकर उनके दर्शनोंको गया। वहाँ रानी चेलिनीने एक सखीके द्वारा उस मंडपमे आग लगवा दी और आप तमाशा देखने लगी। आगके प्रज्वलित होते ही देखा कि वे सबके सब साधु उस मंडपमेसे निकलकर भाग खड़े हुए। यह देख राजा रानीपर अतिशय कुपित हुआ और बोला-यदि भक्ति नही थी, तो क्या उनको मारनेका प्रयत्न करना तुम्हें उचित था? रानीने कहा-महाराजा, एक कथा सुनिये;—

"वत्स देशमे एक कौशाम्बी नामकी नगरी है। वहाँके राजाका नाम वसुपाल और रानीका यशस्विनी था। नगरीमे दो सेठ अधिक प्रसिद्ध थे, एक सागरदत्त और दूसरा समुद्रदत्त। सागरदत्तकी स्त्रीका नाम वसुमती और

बाद मौका पाकर एक दिन उसने राजमहलके निकट रहनेके लिये एक स्थानकी याचना की, राजाने उसे प्रसन्नतासे पूर्ण की। अभयकुमार वहां रहने लगा और अपने जैनीपन तथा अन्य अनेक उत्तम गुणोंके कारण प्रसिद्ध हो गया। अच्छे अच्छे लोगोंसे उसकी रसाई हो गई।

एक दिन उसने अवसर पाके राजाकी उन तीनों कन्याओंके आगे जिनका कि विवाह नहीं हुआ था, राजा श्रेणिकके रूप और गुणोंकी ऐसी प्रशंसा की कि, तीनो ही श्रेणिकपर अत्यन्त आसक्त हो गईं, और अभयकुमारसे प्रार्थना करने लगीं कि, हमको किसी प्रकारसे उनके पास पहुंचा दो। तब अभयकुमारने अपने रहनेके घरसे एक सुरंग तैयार करवाई और उसमेंसे उन तीनोंको लेके चलने लगा। परन्तु उस समय चन्दना अपनी मुद्रिका और ज्येष्ठा अपना हार भूल आई थी, सो वे दोनो उन चीजोंके लिये लौट गईं, केवल चेलिनी रह गई। तब अभयकुमार उस अकेलीको ही लेके सुरंगके द्वारा उस नगरसे बाहर हो गया और कुछ दिनोंमें चलके राजगृह पहुंचा। आगमन सुनके राजा श्रेणिक बडी भारी विभूतिके साथ लेनेके लिये आया और बड़े स्नेह सत्कारके साथ चेलिनीको नगर प्रवेश कराया। पश्चात् शुभमुहूर्तमे विवाह करके और उसे पट्टरानीका पद देके राजा श्रेणिक नाना प्रकारके भोगोंका अनुभव करता हुआ सुखसे रहने लगा।

राजा श्रेणिक चेलिनी महारानीको अपना धर्म बहुत सुनाया करते थे, और चाहते थे कि, यह किसी तरह स्वधर्मावलम्बिनी हो जावे, जैनधर्मको छोड़ देवे। परन्तु हजार प्रयत्न करनेपर उसने जैनधर्म नहीं छोड़ा। एक दिन राजगुरु जठराग्निने आके रानीसे कहाः—हे देवि! क्षपणक (जैनगुरु) मरकर स्वर्गलोकमें क्षपणक अर्थात् भिक्षुक ही होते हैं। चेलिनीने कहा—तुमने यह कैसे जाना? जठराग्नि बोलाः—मुझे बुद्धदेवने[1] बुद्धि ही ऐसी दी है कि, मै उससे ऐसी बातें जान लेता हूं। रानीने कहा,—यदि आप ऐसी बुद्धि रखते हैं, तो कृपाकरके कल आप मेरे ही महलमें आके भोजन करना स्वीकार करें। तब जठराग्नि यह बात स्वीकार करके वहांसे चला गया।

१ यहा भी मूलमे 'विष्णु' पद दिया है। "विष्णुर्मतिमदात्तयाबोधि मया एव।" इति

दूसरे दिन रानीने जठराग्नि, और उनके साथी सब साधुओंको बुलाके बडे सत्कारसे विठलाया और फिर इस रीतिसे कि उन्हें मालूम न हो, उन सबका एक एक जूता लेकर और उनका चूर्ण बनाके चटनीमें अच्छी तरहसे मिलवा दिया। पश्चात् वह चटनी साधुओंको परोसी गई और वे बड़े प्रेमसे उसे चाट गये। चलते समय जब सबने देखा कि एक एक जूता गायब है, तब रानीसे पूछा। रानीने कहा, आप तो ज्ञानवान् है। ज्ञानसे जान लीजिये, जूते कहाँ गये। जठराग्निने कहा;-महरानी, ऐसा ज्ञान हमारे पास नहीं है। रानीने कहा-तो फिर आप यह कैसे जान सके कि दिगम्बर क्षपणक स्वर्गमे क्षपणक ही होता है? जठराग्निने कहा-महारानीजी, नहीं जान सकता, परन्तु अब कृपा-करके वे जूते दिला दीजिये। रानीने हँसके कहा-मै कहाँसे दिलाऊँ, जूते तो सब आप लोग ही खा गये हैं। सुनते ही एक साधुने उसी समय कै (वमन) कर दी। उसमे चर्मके छोटे २ टुकड़े देखकर वे सब साधु बड़े लज्जित हुए और पश्चात्ताप करते हुए अपने स्थानको गये।

एक दिन राजाने कहा-हे देवि, हमारे गुरुमहाराज जब ध्यानका अवलम्बन करते है, तब वे अपनी आत्माको बुद्धभवनमें लेजाते है-और वहाँ सुखमें मग्न हो जाते है। यह सुनके रानीने कहा-तो महाराज उनका वह अविचल ध्यान एक बार नगरके बाहर मुझे दिखलाइये, यदि वह सच्चा ध्यान होगा तो मै आपके धर्मको उसी समय स्वीकार कर लूँगी। तब उस नगरके बाहर मंडपमे वे सब साधु वायुधारण (प्राणायाम) करके बैठ गये और राजा चेलिनीको लेकर उनके दर्शनोको गया। वहाँ रानी चेलिनीने एक सखीके द्वारा उस मंडपमें आग लगवा दी और आप तमाशा देखने लगी। आगके प्रज्वलित होते ही देखा कि वे सबके सब साधु उस मंडपमेसे निकलकर भाग खड़े हुए। यह देख राजा रानीपर अतिशय कुपित हुआ और बोला-यदि भक्ति नहीं थी, तो क्या उनको मारनेका प्रयत्न करना तुम्हें उचित था? रानीने कहा-महाराजा, एक कथा सुनिये;—

"वत्स देशमे एक कौशाम्बी नामकी नगरी है। वहाँके राजाका नाम वसुपाल और रानीका यशस्विनी था। नगरीमे दो सेठ अधिक प्रसिद्ध थे, एक सागरदत्त और दूसरा समुद्रदत्त। सागरदत्तकी स्त्रीका नाम वसुमती और

समुद्रदत्तकी स्त्रीका नाम सागरदत्ता था । एक वार सागरदत्त और समुद्रदत्त ये दोनो सेठ परस्पर स्नेह वढ़ानेके लिये इस प्रकार वचनवद्ध हो गये कि हम दोनोके पुत्र पुत्रियोका विवाह जव होगा, तव परस्पर ही होगा ।

कुछ काल वीतनेपर सागरदत्त और वसुमतीके एक सर्प्प-पुत्र उत्पन्न हुआ । जिसका कि नाम वसुमित्र रक्खा और दूसरे समुद्रदत्त सेठके नागदत्ता नामकी कन्या हुई, प्रतिज्ञानुसार विवाह योग्य होनेपर दोनो सेठोने उन दोनोका विवाह कर दिया । नागदत्ता यौवनवती हुई । उसे देखकर एक दिन उसकी माता सागरदत्ता रोने लगी कि हाय ! मेरी पुत्रीको कैसा वर मिला ? माताको रोती देख, पुत्रीने पूछा—मा, तू क्यो रोती है ? माताने कहा—वेटी, तेरे भाग्यको देखके रोती हूं । नागदत्ता वोली नही, तुझे चिन्ता नही करनी चाहिए, मेरा भाग्य वुरा नही है । मेरा पति दिनको तो सर्प वनकर पिटारेमे रहता है, परन्तु रात्रिको दिव्य पुरुष होकर मेरे साथ दिव्य भोगोको भोगता है । माताने विस्मित होकर कहा कि यदि ऐसा है तो रातको उसके पिटारेमेसे निकलनेपर वह पिटारा तू मुझे दे देना । पुत्रीने यह वात स्वीकार की और तदनुसार अवसर पाके माके हाथमे उसने वह पिटारा दे दिया । माताने उसे पाकर तत्काल ही जला दिया और उसके जल जानेसे वसुमित्र फिर सर्प न हो सका, मनुष्यरूपमे ही रहने लगा ।"

राजन्, इसी प्रकार ये आपके गुरुमहाराज भी जो कि ध्यानके वलसे वुद्धभवनमे आनन्द करते है, जल जानेसे सदाके लिये वहॉ ठहर जावेगे, ऐसा विचार करके मैने यह आग लगवाई थी, अपराध क्षमा करे । यह तर्क सुनके राजा अपने क्रोधको दवाके और मन ही मन मसूसके रह गया ।

एक दिन राजा शिकार खेलनके लिये जा रहा था कि मार्गमे यशोधर मुनिको तपस्या करते हुए देखकर उसे धर्मद्वेष उत्पन्न हुआ, इसलिये उसने क्रोधित होकर मुनिराजपर कुत्ते छोड़ दिये । परन्तु जव देखा कि मुनिकी तपस्याके प्रभावसे उन कुत्तोनें कुछ भी उपद्रव नही किया, वल्कि नमस्कार करके वे उनके निकट वैठ

गये, तब एक मरे हुए सॉपको उठाकर उसने मुनिराजके गलेमें डाल दिया और साथ ही उन तीव्र-कषाय-जनित परिणामोंसे उसने सातवें नरककी आयु अपने गलेमें डाल ली।

इसके पश्चात् चौथे दिन रात्रिको जब एकान्तमें यह कथा राजाने रानी चेलिनीको सुनाई तब उसने अतिशय दुःखी होकर कहा–महाराज, आपने यह बहुत बुरा कर्म किया, व्यर्थ ही आपने अपने हाथसे दुर्गतिका मार्ग साफ किया। परम निर्ग्रंथ मुनियोंके उपसर्ग पहुँचानेके समान संसारमें कोई दूसरा पातक नहीं है। राजाने कहा–तो क्या वे जिनके गलेमें मैंने सॉप डाला है, उसको अलग करके वहॉसे नहीं जा सके होंगे? रानीने कहा–वे महामुनि स्वयं ऐसा नहीं कर सकते। जबतक उनका उपसर्ग निवारण न होगा, तबतक वे वहॉ ही अचल रहेंगे। यदि ऐसा है, तो मैं अभी देखनेको जाऊँगा, ऐसा कहके राजा उठ खड़ा हुआ और अनेक दीपकोंका प्रकाश कराके सेवकोंके साथ वहॉ गया। देखा, महामुनि जैसेके तैसे तपस्या करते हुए अडोल खड़े हैं, और सॉप उनके गलेमें पड़ा है। उस समय राजाके हृदयमें भक्ति उत्पन्न हुई। इसलिये उसने अपनी रानीसहित मुनिराजका उष्ण जलसे शरीर स्वच्छ करके पूजा की और चरणोंकी सेवा करते हुए शेष रात्रि वहीं बिताई। सूर्योदयके समय प्रदक्षिणा करके रानीने हाथ जोड़के कहा–हे संसारसमुद्रसे पार लगानेवाले भगवान, उपसर्ग दूर हो गया है। हम लोगोंपर अनुग्रह (कृपा) कीजिये। यह सुनकर मुनि ध्यानासन छोड़के बैठ गये और नमस्कारके उत्तरमें दोनोंसे बोले–तुम दोनोंके "धर्मकी वृद्धि होव"। दोनोंको इस प्रकार समान आशीर्वाद दिया गया। इस बातका राजाके चित्तपर बड़ा असर हुआ। वह सोचने लगा–अहो! मुनिराजके हृदयमें कैसी अद्वितीय क्षमा है, जो मुझ अपराधीमें और अपनी परम भक्त रानीमें कुछ भी भेद न रखके एकरूप धर्मवृद्धि देते हैं। इनके चरणोंपर तो अपना सिर काटके चढ़ाना चाहिये। राजा ऐसा विचार कर ही रहा था कि उसे जानकर मुनिराज बोले–राजन्, तूने बहुत बुरा विचार किया है, ऐसी अपघातकी इच्छा तुझे नहीं करनी चाहिये। राजा आश्चर्ययुक्त होके रानीसे बोला–प्रिये, मुनि महोदयने मेरे मनकी इस बातको कैसे जान लिया कि मेरी आत्मघात करनेकी इच्छा है? रानीने कहा–महाराज, मनकी बातका जान लेना तो मुनियोंका एक

साधारण कार्य है, आप तो इनसे अपने पूर्व जन्मोंका भी वर्णन पूछ सकते है और उससे संतोपलाभ कर सकते है। राजाने यह सुनके बड़ी नम्रतासे कहा–प्रभो, कृपाकर कहिये कि मै पूर्व जन्ममे कौन था ? मुनिराज कहने लगे—

इसी आर्यखंडके सूरकान्त देशमे प्रयत्नपुर नामका एक नगर है। वहाँके राजाका नाम मित्र था। मित्रके पुत्र सुमित्र और प्रधानके पुत्र सुपेणमे बड़ी मित्रता थी। सुषेण सुमित्रको अपने साथ जलक्रीड़ा करनेके लिये बड़े स्नेहसे ले जाता था और एक बावड़ीमे स्नान कराता था, परन्तु इससे सुमित्रको बड़ा कष्ट होता था।

कुछ दिनो बाद जब सुमित्र राजा हुआ, तब सुषेण उसके भयसे भागकर तापस हो गया। एक दिन राजसभामें सुपेणको न देखकर सुमित्रने पूछा कि सुपेण कहाँ है? तब लोगोने कहा कि वह तापसी हो गया है सुनके राजा वहाँ गया जहाँ सुपेण था और उसके पाँव पड़के बोला–भाई, मेरा कोई अपराध हो तो क्षमा करो और अब इस वेषको छोड़ दो। परन्तु जब सुपेण किसी प्रकार तपस्या छोड़नेको राजी नही हुआ तब सुमित्र "यदि तप नही छोड़ते हो तो न सही परन्तु मेरे यहाँ आकर भिक्षा तो ग्रहण किया करो" ऐसा निवेदन करके अपने घर गया।

सुपेण मासोपवास करके पारणेके दिन उक्त प्रार्थनाके अनुसार राजाके यहाँ भिक्षा माँगनेके लिये गया, परन्तु उस समय किसी कारणसे राजाका चित्त स्थिर नही था, उसने तापसीको देखा नही; इसलिये उसे वापिस लौट जाना पड़ा। इसके पश्चात् तापसी उपवास करके फिर दूसरे तीसरे पारणेको भी राजाके यहाँ गया, परन्तु कारणवश उसे दोनो दिन फिर भी भूखा लौटना पड़ा। यह देख किसी पुरुपने कहा–यह राजा बड़ा कृपण है। आप स्वयं तो किसीको भिक्षा देता नही है और देनेवालोको भी देनेसे रोक देता है। इस बेचारे तापसीको उसने व्यर्थ भूखे मारा। सुपेण तापसी यह सुनके क्रोधके कारण असावधानतासे विना विचारे वहाँसे चला कि एक पत्थरकी ठोकर खाके गिर पड़ा और उसी ठोकरसे वह मरकर व्यन्तर देव हुआ।

उधर जब राजाने सुना कि तापसीकी मृत्यु हो गई तब आप भी तापसी हो गया और जीवनके अन्तमे शरीर छोड़के व्यन्तर देव हुआ। फिर उस व्यन्तर पर्यायको पूरी करके तू श्रेणिक राजा हुआ और वह सुपेण तापसीका

जाव आगे तेरी इस महारानीसे कुणिक नामका पुत्र होगा। अपने इस प्रकार भवान्तर सुनकर राजाको जातिस्मरण हो गया और "एक जिनदेव ही सच्चा देव है, दिगम्बर मुनि ही सच्चे गुरु है और अहिंसालक्षणयुक्त जिनधर्म ही सच्चा धर्म है।" इस प्रकारका श्रद्धान करके वह उपशम सम्यग्दृष्टि हो गया। पश्चात् अन्तर्मुहूर्तमे मिथ्यात्वका आश्रय लेकर सुखसे रहने लगा।

एक दिन तीन मुनिराज चर्याके लिये महारानी चेलिनीके महलोके द्वारपर पधारे। उन्हे देखकर राजाने कहा—देवि, मुनियोको आहारके लिये पड़गाहो। और उठके उनके सन्मुख गया। रानीने भी सम्मुख आकर नमस्कारपूर्वक कहा—हे तीन गुप्तियोके पालनेवाले मुनीश्वर आइये, तिष्ठिये, यह सुनके वे मुनि वहॉ नही ठहरे और लौटके उद्यानकी ओर चले गये। राजाने पूछा—देवि, मुनिराज आहारके लिये नही ठहरकर क्यों चले गये? रानीने कहा—चलिये, वही मुनियोके पास चले और उनसे उसका कारण पूछे।

राजा और रानी दोनो उसी समय उद्यानमें गये। वहॉ वन्दना करनेके बाद राजाने श्रीधर्मघोष मुनिसे पूछा—आप मेरे द्वारपर क्यो नही ठहरे? मुनि बोले—हम मनोगुप्ति नही पाल सके थे और रानीने 'त्रिगुप्तिगुप्त' ऐसा सम्बोधन देकर हमे ठहराना चाहा था, इसलिये नही ठहरे। वह मनोगुप्ति नही पल सकनेकी कथा इस प्रकार है कि:—

कलिंग देशके दन्तपुर नगरमें राजा धर्मघोष और रानी लक्ष्मीमती थी। राजा धर्मघोष जो कि किसी निमित्तसे संसार-देह-भोगोसे विरक्त होकर दिगम्बर हो गया था एक दिन कोशाम्बी नगरीको चर्याके लिये गया। वहॉ उसे राजाके गरुड़ नामके मंत्रीकी स्त्रीने पड़गाहा। सो भोजन करते समय उस मुनिके हाथमेंसे एक कौर गिर पड़ा और उसको देखनेके लिये धरतीपर दृष्टि जानेसे अकस्मात् उस स्त्रीके पॉवका ॲगूठा उसे दीख गया। जिससे उसके हृदयमें विचार उत्पन्न हुआ कि यह ॲगूठा तो लक्ष्मीमतीके समान है, अतएव स्त्रीका स्मरण हो गया। फिर उसने आहार नही लिया। सो हे राजन्, वह धर्मघोष मुनि मै ही हूॅ। विहार करता हुआ यहॉ आ पहुॅचा

हैं। राजा यह सुनके विस्मित हुआ और फिर उसने दूसरे श्रीजिनपाल मुनिके सम्मुख होकर पूछा। वे कहने लगे–हमसे एक वार वाग्गुप्ति नहीं पली थी, सो उसकी कथा इस प्रकार है:—

भूमितिलक नगरके राजा प्रजापाल और रानी धारिणीकी कन्या वसुकान्ताकी कोशाम्बीके राजा चण्डप्रद्योतने याचना की। परन्तु प्रजापालने उसे अपनी कन्या देना स्वीकार नहीं किया। इसपर चण्डप्रद्योतने चढ़ाई करके भूमितिलक नगरको घेर लिया। उसी समय किलेसे लगे हुए किसी वनमें जिनपाल मुनि ध्यानारूढ़ हैं, वनपालके द्वारा यह बात जानकर राजा प्रजापाल आनन्दित होकर वन्दनाको गया। वन्दनाके पश्चात् किसीने कहा कि हे मुने, राजाको अभयदान दीजिए। तब राजाके पुण्यके प्रभावसे किसी एक देवने कहा कि "डरो मत" सुनकर राजा वहाँसे प्रसन्नचित होकर वड़ी भारी विभूतिके साथ नगरमें आ गया।

राजा चण्डप्रद्योत जो कि चढ़ाई करके आया था, यह जानकर कि प्रजापाल राजा जैनी है, अपनी सेना लौटाकर ले गया। तब प्रजापालने उसके अचानक लौट जानेका कारण अनेक पुरुषोंको भेजकर निर्णय किया और उसे जब जैनियोंके साथ चंडप्रद्योतका इतना वात्सल्य है, यह विदित हुआ तब प्रसन्न होकर उसे नगरमें सन्मानपूर्वक ले आया और अपनी पुत्री उसे व्याह दी।

एक दिन चंडप्रद्योतने अपनी स्त्री वसुकान्तासे कहा–यदि मैं तुम्हारे पिताको जैनी नहीं जानता; तो वड़ा भारी अनर्थ करता। वसुकान्ताने कहा–मेरे पिताको जिनपाल भट्टारकने अभयदान दे दिया था, इसलिये कुछ भी अनर्थ नहीं हो सकता। चंडप्रद्योतने कहा–यदि ऐसा है, तो मैं अवश्य ही उन जिनपाल भट्टारककी वन्दनाको जाऊँगा और तत्काल ही वह उनके निकट गया। वहाँ वन्दना करके उसने पूछा–प्रभो, समपरिणामी अर्थात् सबको समान देखनेवाले यतियोंको क्या ऐसा उचित है कि किसीको अभय प्रदान करें और किसीका विनाश चिंतवन करें? परन्तु मुनि उस समय मौन धारण किये हुए थे, इसलिये उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया। तब वसुकान्ताने कहा–प्राणनाथ, मेरे पिताके पुण्यसे दिव्यध्वनि (देवध्वनि) हुई थी, उसमें मुनिका कोई दोष नहीं था। उन्होंने किसीका

कि वह गिर पड़ा और तेल फैल गया। यह देख तूकारीने कहा–और दूसरा ले जाइए। सो सेठ दूसरा लेनेको गया, परन्तु वह भी गिर गया, और इसी प्रकार तीसरा भी। तब उसे डर हुआ कि शायद अब तैल नहीं मिलेगा, परन्तु तूकारीने कहा–आप भय न करें, जितने घड़ोंकी जरूरत हो, आप उतने ले जाइए, यह सुन सेठने एक और घड़ेको लेकर पूछा–हे माता, मुझसे इतने घड़े फूट गये, परन्तु तुमने क्रोध बिल्कुल नहीं किया, इसका क्या कारण है? तूकारीने कहा कि सेठजी, मै कोपका फल भोग चुकी हूँ, इसलिये क्रोध नहीं करती। सुनो मै अपनी कथा आपको सुनाती हूँः—

"आनन्दपुरमे शिवशर्मा नामका ब्राह्मण है। उसकी कमलश्री नामकी स्त्रीके आठ पुत्र और मै एक भट्टा नामकी पुत्री हूँ। मुझसे यदि कोई "तू" शब्द कहता था, तो बड़ा भारी अनिष्ट हो जाता था, अर्थात् इस शब्दके सुननेसे मुझे बड़ी भारी चिढ़ थी, इस कारण मेरे पिताने नगरभरमें घोषणा करा दी कि भट्टासे कोई भी 'तू' नहीं कहे। इस घोषणासे और मेरी चिढ़से आखिर मेरा नाम तूकारी पड़ गया। और मुझमे क्रोध करनेकी आदत जानकर मेरा विवाह होना मुश्किल हो गया–मेरे साथ कोई भी विवाह करनेको तैयार नहीं हुआ। पश्चात् सोमशर्म्माने मेरी इच्छा की और 'तू' नहीं कहूँगा, ऐसी व्यवस्था करके विवाहपूर्वक मुझे यहाँ ले आया। और व्यवस्थाके अनुसार अपना वचन पालन भी करने लगा। एक दिन सोमशर्मा नटकला देखनेको गया था, सो वहाँसे बहुत रात बीत जानेपर घर आया और कहने लगा–प्रिये, किवाड़ खोलो। परन्तु मैने क्रोधित होके किवाड़ नहीं खोले। जब बहुत देर हो गई, तब उसने कहा कि 'तू' खोलती क्यो नहीं, सो तो बतला? फिर क्या था, 'तू' शब्दके सुनते ही मै अत्यन्त क्रोधित होकर नगरसे निकल गई। उस समय मार्गमें चोरोंने मेरे वस्त्राभरण सब छीन लिये और मुझे एक भीलोंके राजाको सोप दी। वह भिल्लराज मेरा शील भंग करनेको तैयार हुआ, परन्तु वनदेवताने उसे रोककर मेरे शीलकी रक्षा की। तब भिल्लने एक बंजारेको मुझे सोंप दी। बंजारेने भी मुझपर कुदृष्टि की, परन्तु वह भी मेरा शील भंग करनेको समर्थ न हुआ। आखिर वह ँकृमिराग–कम्बलद्वीपको मुझे ले गया और वहाँ पारसकुल नामके किसी पुरुषको

लाभालाभ चिंतवन नहीं किया था। चलिए, अब जिनमन्दिरको चलें। पश्चात् जिनमन्दिरके दर्शन करके वे दोनों अपने स्थानको गये और सुखसे रहने लगे। राजन्, वह जिनपाल मुनि मैं ही हूँ; मुझसे उस समय वाग्गुप्ति नहीं पल सकी थी। राजा श्रेणिकने यह सुनकर पश्चात् तीसरे श्रीमणिमाली मुनिसे आहार न लेनेका कारण पूछा। वे बोले;—

मणिवत देशके मणिवत नगरमें मणिमाली नामका राजा था। उसके गुणमाला नामकी भार्या और मणिशेखर नामका पुत्र था। रानी गुणमाला एक दिन राजाके केशोंको कंघेसे सँवार रही थी, उस समय उसने राजाके सिरमें एक सफेद बाल देखकर कहा–महाराज, देखिए यमराजका दूत आ पहुँचा है। राजाने कहा–कहाँ है? तब रानीने उन्हें वह बाल दिखला दिया। उसे देखकर मणिमालीको बड़ा वैराग्य हुआ, अतएव वे अपने पुत्र मणिशेखरको राज्य देकर अनेक राजाओंके साथ दीक्षित हो गये। पश्चात् समस्त आगमोंके ज्ञाता होकर विहार करते हुए एक समय उज्जयनी नगरीमें आये और वहाँके स्मशानमें मृतकशय्या लगाकर ध्यानारूढ़ हो रहे। उसी समय वहाँ कोई सिद्ध वेतालविद्याकी सिद्धिके लिये मृतक मनुष्योंके कपालोंमें (खोपड़ियोंमें) दूध और चावल लेके नर–कपालोंके ही चूल्हेमें उन्हें पकानेके लिये आया। सो उसने मृतक चोरोंके दो कपालोंको वहींपर मृतकशय्या लगाये हुए उस मुनिके कपालके साथ मिलाकर चूल्हा बनाया। उसने समझा कि यह भी कोई मुर्दा पड़ा हुआ है। और फिर आग जलाके उसपर चावलोंको राँधने लगा। उस समय गर्मीके कारण नसोंके संकोचसे मुनिके हाथ खिंचकर मस्तकपर आये। तथा उनके मस्तकपर आ लगनेसे जिस कपालमें चाँवल रँध रहे थे वह कपाल गिर पड़ा और उसमें भरे हुए दूधके गिरनेसे आग बुझ गई। यह देख वह सिद्ध डरकर भाग गया। पश्चात् दूसरे दिन सूर्यका उदय होनेपर किसी वनमालीने मुनिको देखा और उनकी दशा जिनदत्त नामके सेठसे जाकर कही। सो सेठ स्मशानमें जाकर मुनिको ले आया और अपनी वसतिकामें उन्हें ठहराकर किसी वैद्यसे औषधि पूछी। वैद्यने कहा कि सोमशर्मा भट्टके घर लक्षमूलका तेल है, यदि आप वह ले आवें, तो उससे दग्ध मुनि अवश्य ही नीरोग हो जावेंगे। तब सेठने जाकर सोमशर्माकी भार्या तुकारीसे तेलकी याचना की। उसने कहा–ऊपर अटारीपर तेलके घड़े रक्खे हैं, सो आप उसमेंसे कोई एक ले आवें। तब सेठ घड़ेको लेने गया और घड़ेके गलेमें हाथ देके ज्यों ही उसने उठाया

मुझे वेच दी। वह पारसकुल प्रत्येक पक्षमे शिरामोचन (फस्त खोल) करके अर्थात् रगोंको खोलके मेरा खून कपड़े रँगनेके लिये निकाल लेता था, और पीछे लक्षमूल तैलकी मालिशसे शरीरकी पीड़ाको दूर कर देता था। इस प्रकार दुःखोंको झेलती हुई मै वहाँ रहने लगी। परन्तु कुछ दिन पीछे मेरे भाई धनदेवने जिसे उज्जयिनीके नरेशने पारसके राजाके निकट भेजा था, राज्यकार्य्य करके लौटते समय मुझे देखकर वहाँसे छुड़ा लाया और सोमशर्म्माको मुझे सौंप दी। क्रोधके फलको भोगकर उस समय मैने क्रोधत्याग व्रत ले लिया, और तबसे मै बिल्कुल क्रोध नही करती हूँ।

तूकारीकी यह कथा सुनकर जिनदत्त तैलके घड़ेको ले गया और उससे उसने मणिमाली मुनिको बहुत शीघ्र ही जले हुए घावोंसे रहित कर दिया। इतनेमे वर्षाकाल आ गया। मुनिने उसी नगरीमे वर्षाकाल संबन्धी योगको ग्रहण कर लिया अर्थात् उन्होने चार महीने वहीपर तपस्या करनेका निश्चय किया।

एक दिन जिनदत्त सेठ अपने पुत्रके भयसे रत्नोंसे भरा हुआ एक कलश मुनिके आसनके समीप लाकर गाढ़ गया। परन्तु उस समय गर्भगृहमे छुपे हुए उसके पुत्रने अपने पिताकी इस करतूतको देख लिया, इसलिए एक दिन उसने मुनिकी दृष्टि बचाकर उस कलशको वहाँसे उखाड़कर अन्यत्र धर दिया। इसके बाद मुनि तो अपना योग पूरा करके वहाँसे विहार कर गये और सेठने आकर जब वहाँपर कलशको नही देखा, तब उसने मुनिको लौटानेके लिए अपने सेवक भेजे और आप स्वयं भी उनकी खोजके लिए एक ओर चला, सो मार्गमे मुनिको देखकर उसने ठहराया और बोला—कोई एक कथा कहिए। मुनिने कहा—नही, तुम ही कहो। तब जिनदत्त सेठ अपने अभिप्रायको सूचन करता हुआ अन्योक्तिरूपमे कथा कहने लगा क्योंकि उसे यह शंका हो गई थी कि मुनि ही मेरे रत्नोंके कलशको उड़ा लाये है।

वाराणसी नगरीमे जितशत्रु राजाके धनदत्त नामका एक वैद्य था। उसकी भार्या धनदत्ताके धनमित्र और धनचन्द्र नामके दो पुत्र थे। ये दोनो अपने पिता धनदत्तके पढ़ानेपर किसी तरह नही पढ़े। परन्तु पिताके मरनेपर जब उनकी जीविका दूसरे किसी वैद्यने ले ली, तब वे दोनो अभिमानके वशसे चम्पापुरीमे जाकर शिवभूति नामके एक विद्वान्‌के निकट जाके पढ़े। और वहाँसे अपने नगरको लौटकर आते हुए उन्होने वनमे नेत्रोंकी पीड़ासे दुःखी किसी

एक व्याघ्रको देखा। उस समय बड़े भाईने छोटे भाईके रोकते हुए भी उस व्याघ्रके नेत्रोंमें औषधि लगाई। जिसके लगाते ही पीड़ा दूर होगई, परन्तु इसके बदलेमें वह व्याघ्र उस ज्येष्ठ पुत्रका भक्षण कर गया। सो मुनि महाराज, क्या व्याघ्रको ऐसा करना उचित था? मुनिने कहा—नहीं, उचित नहीं था। मेरी कथा सुनो:—

हस्तिनापुरमें विश्वसेन नामक एक राजा था। उसे किसी वणिकने वलिपलित-विनाशक अर्थात् जिसके खानेसे शरीरमें वलि न पड़े और सफेद बाल न होवे, ऐसा एक आमका बीज लाकर दिया। राजाने वह बीज अपने वन-पाल (माली) को सौंप दिया। और वनपालने उसे बागमें बो दिया। पश्चात् उसके वृक्षमें जिस समय फल लगे, उस समय आकाशमें एक गीध साँपको अपनी चोंचमें दबाये हुए निकला, और अचानक उस साँपके विषकी एक बूँद टपककर एक फलपर आके पड़ गई। उस विषकी उष्णतासे वह फल पक गया, और उसे वनपालने जाकर राजाको भेंट किया। परन्तु राजाने स्वयं उसे नहीं खाया, अपने युवराज कुमारको दे दिया, सो उसके खाते ही कुमार मर गया। तब राजाने क्रोधित होकर उस जरानाशक आम्रवृक्षको कटवा डाला। सो सेठजी, दूसरेके दोषके कारण उस वृक्षको काट डालना क्या राजाको उचित था? सेठने कहा नहीं, उसने अनुचित किया। अब मैं कहता हूँ, सो सुनिए:—

गंगा नदीके प्रवाहमें बहते हुए एक हाथीके बच्चेको विश्वभूत नामके एक तापसने देखकर दयार्द्र (दयासे भींगे) चित्त होके निकाला और पालपोषके बड़ा किया। पश्चात् सम्पूर्ण लक्षणयुक्त होनेपर जब राजा श्रेणिकने उसे ले लिया, तब अंकुशादिककी पीड़ा सहनेमें असमर्थ होके [illegible] वह हाथी भागा और आके तापसके घरमें घुसने लगा। परन्तु उस समय तापसीने उसे रोका, इसलिए उसने क्रोधित होके बेचारे तापसीको मार डाला। सो क्यों महाराज, उसे ऐसा करना उचित था? मुनिने कहा—नहीं। अब मुनि कहते हैं;—

चम्पा नगरीमें देवदत्ता नामकी वेश्याने एक तोतेको पाला था। इतवारके दिन वह वेश्या एक वर्तनमें मदिरा रखके भीतर गई थी कि इतनेमें किसी एक कन्याने आके उसमें विष डाल दिया। उधर देवदत्ता भीतरसे आके जब उसे

पीने लगी, तब उस तोतेने विषके कारण वेश्या मर जावेगी, इस भयसे उस मदिराको गिरा दी। परन्तु इसके बदलेमें मदिराको गिरी हुई देखके वेश्याने क्रोधित होके तोतेको मार डाला। सो हे सेठजी, विना परीक्षा किये क्या उस तोतेको मारना उचित था? सेठने कहा—नहीं था, परन्तु अब मेरी कथा सुनिए;—

वाराणसी नगरीमें सोनेका व्यापार करनेवाला वसुदत्त नामका वड़ी तोंदवाला एक वैश्य था। वह एक दिन दुकानसे रोकड़की थैली लेकर जा रहा था कि इतनेमें एक चोर भागता हुआ आया और सेठजीकी तोंदके सहारेसे खड़ा हो गया। सो उनके वस्त्रमें ऐसा छुप गया कि पीछेसे जो प्यादे उसके पकड़नेको आये, उन्होंने भी नहीं जाना कि चोर कहाँ गया। वे यह समझकर कि सेठजीका पेट ही ऐसा वड़े आकारका है, इसमें चोर-फोर कोई नहीं छुपा है, वहाँसे लाचार होकर चले गये। इसके वाद उनके जानेपर वह चोर उन्हीं सेठजीकी रोकड़की थैली छीनके चलता बना। सो मुनि महाराज, उस चोरको अपने रक्षकके साथ क्या ऐसा करना उचित था? मुनिने कहा—नहीं, मेरी कथा सुनो;—

चम्पा नगरीमें सोमशर्म्मा नामक ब्राह्मणके दो स्त्रियाँ थीं, एकका नाम सोमिल्ला और दूसरीका सोमशर्मा। इनमेंसे सोमिल्लाके एक पुत्र था। उस नगरमें भद्र नामका एक वैल था। उसको सम्पूर्ण नगरवासी खानेको दिया करते थे। एक दिन वह वैल सोमशर्माके घरके दरवाजेपर वैठा था कि मौका पाकर सोमशर्म्माने [दूसरी स्त्रीने] सोमिल्लाके वालकको लाके उसके सींगोंमें पिरो दिया। वालक मर गया। लोगोंने जाना कि वालकको वैलने ही छेदके मार डाला है, इसलिए उसी दिनसे सब लोग वैलका अनादर करने लगे अर्थात् सबने उसे खानेको देना वन्द कर दिया। वेचारा वैल भूख और चिन्ताके मारे क्षीण होने लगा।

एक दिन उसी नगरके जिनदत्त सेठकी स्त्रीको लोगोंने परपुरुषमें अनुरागी होनेका दोष लगाया था, सो वह अपनी शुद्धिके लिए दिव्यगृहमें जाकर तपे हुए लोहेका गोला धारण करनेके लिए तैयार हो रही थी कि इतनेमें वहाँ-पर वैलने आके उस तपे गोलेको दाँतोंसे पकड़कर उठा लिया और शुद्ध हो गया। सो हे सेठजी, लोगोंको क्या निर्दोष वैलका इस प्रकार अनादर करना उचित था? जिनदत्तने कहा नहीं, अब मैं एक कथा सुनाता हूँ;—

पद्मरथ नगरके राजा वसुपालने एक ब्राह्मणको किसी राज्यकार्यके लिए अयोध्याके राजा जितशत्रुके पास भेजा
था। वह मार्गमें एक जंगलमें प्यासके मारे ऐसा दुःखी हुआ कि आगे नहीं जा सका और एक वृक्षके नीचे पड़
गया इतनेमें एक वन्दरने आकर उसे वतला दिया कि अमुक जगह एक जलाशय है। तुम उसमें पानी पीके अपनी
प्यास बुझा लो। तव ब्राह्मणने जलाशयके निकट जाकर पानी पिया। उस समय उसके हृदयमें एक दुष्ट विचार
उत्पन्न हुआ कि न जाने आगे जल मिलेगा कि नहीं, इसलिए यहाँहींसे कुछ प्रबन्ध कर लेना चाहिए। धोखेसे उसने
उस वन्दरको मारकर उसके चमड़ेकी खलीती (थैलिया) वना ली, और फिर उसे पानीसे भरकर साथ रख ली। सो
मुनिराज, क्या बन्दरके साथ ब्राह्मणको ऐसा वर्ताव करना चाहिए था? मुनिने कहा–कदापि नहीं। अब मुनि कथा
कहते हैं;—

कौशाम्बी नगरीमें सोमशर्मा नामका एक ब्राह्मण था। उसकी स्त्री कपिला अपुत्रवती थी। उसके मन बहलानेके
लिए एक दिन ब्राह्मणने एक न्योलेका बच्चा जंगलमेंसे पकड़कर ला दिया था। उसे कपिलाने थोड़े दिनोंमें ऐसा सिखला
लिया कि जो कुछ वह कहती थी, न्योला वही करता था।

कालान्तरमें कपिलाके एक पुत्र उत्पन्न हो गया। सो एक दिन उसे झूलेमें सुलाकर और उसकी रखवाली
न्योलेको सौंपकर कपिला घरके वाहर चावल कूट रही थी। इतनेमें एक साँप झूलेकी ओर झपटा हुआ जा रहा था
कि न्योलेने टुकड़े टुकड़े करके उसको मार डाला और उसके खूनसे अपना मुंह लाल किये हुए वह अपनी माल-
किनके पास गया। उसे इस प्रकार आते देख कपिलाने समझा कि मेरे पुत्रके खूनसे इसने अपना मुंह लाल किया
है, अतएव क्रोधमें आकर उसने एक मूसलसे उसका काम तमाम कर दिया। विचारवान् सेठजी, विना सोचे विचारे
क्या उस कपिलाको ऐसा करना चाहिए था? उसने कहा–नहीं। अब सेठ कथा कहता है;—

कोई बूढ़ा ब्राह्मण बाँसकी एक पोली लकड़ीमें सोना छुपाके गंगाजीको चला था कि एक वटुक (ब्राह्मणका लड़का)
इस वातको ताड़कर उसके साथ हो लिया। मार्गमें पहली रातको दोनोंने एक कुम्हारके घर डेरा किया और सवेरे वहाँसे

उठके फिर चल दिये। थोड़ी दूर चलनेपर वटुक बोला—ओह! यह एक घासका तिनका बिना दिया हुवा मेरे सिरमें उलझा हुआ चला आया, बड़ा पाप हुआ, इसे अब जहाँके तहाँ देकर आना चाहिए। ऐसा कहकर वह लौट पड़ा। ब्राह्मण तो आगे चलकर एक ग्राममें किसी जजमानके यहाँ भोजन करके एक मठमें ठहर गया। इतनेमें वटुक आ गया। ब्राह्मणने अपने जजमानके यहाँ भोजनार्थ जानेको उससे कहा, परन्तु वह रास्तेमें कुत्तोंका डर है यह बहाना बनाकर जानेको तैयार नहीं हुआ। तब कुत्तोंसे बचनेके लिए ब्राह्मणने अपनी वही पोली लकड़ी उसे दे दी, क्योंकि उस वटुकपर उसकी चालाकीसे विश्वास जम गया था। बस, वटुकके हाथमें लकड़ी आई कि वह वहाँसे चम्पत हुआ। बेचारा ब्राह्मण हाथ मलता रह गया। सो मुनिराज, क्या उस वटुकको ऐसा करना उचित था? यतिने कहा—नहीं, मेरी कथा सुनो;—

कौशाम्बी नगरीमें गान्धर्वानीक राजाके यहाँ अंगारदेव नामक एक सुनार था। वह एक दिन राजाका पद्मराग-मणि उज्ज्वल करनेके लिए अपने घर ले गया था। उस दिन चर्याके लिए आये हुए एक मुनिकी भक्तिपूर्वक स्थापना करके वह दुकानके पास बैठा था कि इतनेमें एक मोर उस मणिको निगल गया, परन्तु यह घटना किसीने देखी नहीं। पश्चात् जब सुनारने वहाँ मणिको नहीं पाया, तब उसने मुनिसे ही उस मणिकी याचना की, क्योंकि उसे मुनिपर ही सन्देह हुआ था, अन्य कोई पुरुष उस समय वहाँ आया नहीं था। परन्तु उस समय ध्यानारूढ़ हो मौनसाधन करके मुनिने कुछ उत्तर नहीं दिया तब क्रोधित होकर उसने एक लकड़ी फेंकके मारी। भाग्यकी बात है कि वह लकड़ी मुनिको तो लगी नहीं, उस मयूरके गलेमें जाके लगी, जिसकी चोटसे मयूरने उसी समय मणि उगल दिया। पीछे सुवर्णकार उस मणिको राजाके यहाँ जाके सौंप आया और वैराग्यपरायण [तत्पर] होकर उसी समय मुनि हो गया। सेठजी, सुनारको निर्दोष मुनिके साथ क्या ऐसा करना उचित था? सेठने कहा—नहीं, परन्तु अब मैं कहता हूँ, सो सुनिए;—

कोई एक पुरुष जंगलमें फिर रहा था कि एक बड़े भारी हाथीको अपने पीछे लगा देखकर डरके मारे एक वृक्ष-पर चढ़ गया और उसके सहारेसे उसने अपने प्राण बचाये। हाथी उसे नहीं पाकर वहाँसे चला गया। पीछे वह

पुरुष वृक्षसे उतरकर चलने लगा कि लकड़ीकी खोजमे फिरते हुए लकड़हारोंको देखकर उसने उसी वृक्षको काटनेके लिए बतला दिया, जिसपर कि वह चढ़ा था। सो यति महाराज क्या प्राणरक्षक वृक्षके साथ उसे ऐसा करना चाहिये था? यति बोले–नहीं, अब मै कहता हूँ;—

द्वारावतीमे नारायण राजा थे। उनसे एक दिन मालीने आकर उद्यानमे मेदज मुनिके आनेकी बात कही। तब नारायणने उद्यानमे जाके मुनिको वन्दना की। देखनेसे मालूम हुआ कि उन्हे कोई भयंकर रोग हो गया है, अतएव वैद्यराजको बुलाकर औषधि पूछी। उसने रालकपिष्टपिण्डका प्रयोग करना बतलाया। तब कृष्ण नारायणने मुनिराजको रुक्मणीके महलमे ले जाकर उक्त औषधि की, जिससे कि वे मुनि नीरोगी हो गये। नारायणने पूछा–महाराज, रोग शान्त हो गया? उन्होने कहा–हाँ, कर्मोके उपशम होनेसे उसका शमन हो गया। वैद्य साथमे ही था, अतः वह यह सुनकर बड़ा क्रोधित हुआ कि मैने जो औषधि बतलाई उसका तो कुछ उपकार नही मानता, कर्मोका उपशम बतलाता है, बड़ा कृतघ्नी है।

कालान्तरमे वह वैद्य मरकर एक जंगलमे बन्दर हुआ और एक बार दैवात् उसी जंगलमे मेदज मुनि जा पहुँचे और वहाँ ध्यान लगाकर पर्यंकासनसे आसीन हुए। उन्हे देखकर बन्दरने कुपित होकर एक पैनी लकड़ी उनकी जंघामे मारी, परन्तु मुनिराज उस चोटसे सर्वथा दुःखी और चल नही हुए। तब बन्दर उन्हे इस प्रकार शरीरसे निर्भयत्व देखकर शान्त हो गया और स्वयं पश्चात्ताप करके वह एक औषधि लाया तथा लकड़ीको निकालकर घावपर उसे लगाकर उसने मुनिको अच्छा कर दिया। पीछे जंगलके उत्तम उत्तम फूल लाकर उनसे मुनिराजकी पूजा की और हाथका संकेत करके कहा–भगवान्, उपसर्ग दूर हो गया। मुनिराजने हाथ उठाये और बन्दरने प्रणाम करके अणुव्रत ग्रहण किये। सो सेठजी, वैद्यको क्या ऐसा विना विचारे कार्य करना योग्य था? जिनदत्तने कहा–नही, अब मै कहता हूँ;—

जिनदत्तने इतना कहा ही था कि उसके पुत्र कुबेरदत्तने वह रत्नोका कलश जिसके चुरा लानेका मुनिपर सन्देह

था, लाके पिताके आगे रख दिया और मुनिके सन्मुख होकर वह बोला–मुनिराज आइए, वनमे चलकर मुझे दीक्षा दीजिये।
इसके पश्चात् पिताने भी वैराग्य प्राप्त होकर दीक्षा ले ली। और इस प्रकार दोनो वाप वेटे मुनि होकर विहार करने लगे। सो हे राजन्, मै वही मणिमाली हूँ। उस समय कायगुप्तिके न पलनेसे मै आपके यहाँ आहारको नही ठहरा था, क्यो कि रानीने "तीन गुप्तिके धारण करनेवाले, पधारिये" इस प्रकार कहा था। मणिमाली मुनिकी यह विलक्षण कथा सुनके राजा श्रेणिक "वेदक सम्यग्दृष्टि" हो गया।

कुछ दिनोंके वाद महारानी चेलिनी गर्भवती हुई और उसे दोहला उत्पन्न हुआ। परन्तु उसकी पूर्ति न होनेसे वह (दुवली) होने लगी। राजासे अपनी इच्छा प्रगट नही की। एक दिन जव राजाने वड़े भारी आग्रहसे पूछा, तव रानी ने कहा–हे नाथ, इस पापिनीकी ऐसी इच्छा होती है कि आपके वक्षस्थलको विदारण करके रुधिरका पान करूँ। तव राजाने अपने सरीखा वेसनका पुतला वनाके उससे रानीकी इच्छा पूर्ण की। पश्चात् कुछ दिनोंमें उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका मुख देखनेके लिये राजा गये तो वालक उन्हे देखकर भौहे चढ़ाके और लाल लाल नेत्र करके होठोको दाँतोसे डसने लगा। तव "यह मेरे लिये दुखदाई होगा" ऐसा विचार करके राजाने रुष्ट होके उस वालकको किसी वगीचेमे छुडवा दिया परन्तु रानी राजासे छुपाकर उसे ले आई और धायको सोंप दिया, सो कुणिक नामसे वढ़ने लगा। पश्चात् चेलिनीके क्रमसे वारिषेण, हल्ल, विहल्ल और जितशत्रु नामके पाँच पुत्र और भी हुए। छट्टे गर्भमे रानीको दोहला हुआ कि हाथीपर आरूढ़ होके वर्षा ऋतुमे भ्रमण करूँ। इस दोहलेकी अप्राप्तिमे रानी क्षीण शरीर होने लगी, तव राजाने क्षीण होनका कारण पूछा। रानीने अपने दोहलेका स्वरूप कहा। सुनकर राजाको वड़ी चिन्ता हुई कि, ग्रीष्म ऋतुमे वर्षाकालकी वांछा कैसे पूर्ण की जावे। तव राजाको चिंतित देखके अभयकुमारने कहा कि मै वर्षाकालकी वृष्टि करूँगा। और रातको व्यन्तरादिकोको देखनेके लिये स्मशान भूमिमे गया। वहाँ एक वड़के वृक्षके नीचे अनेक दीपकोंका प्रकाश किये हुए धूप और धुएँसे अनेक व्यन्तरोको अपने

मन्त्रकी शक्तिसे बुलाये हुए और सुगन्धित फूलोंसे मंत्र जपते हुए एक उद्विग्न (जिसका चित्त ठिकाने न हो) पुरुषको देखकर पूछा कि तुम कौन हो और क्या जपते हो? उसने कहा कि:—

विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीके गगनवल्लभ नगरका मैं पवनवेग नामका राजा हूँ। मैं एक दिन जिनमन्दिरोंकी वन्दनाके लिए सुमेरुगिरिपर गया था। वहाँ दालकपुरके राजा विद्याधर चक्रवर्तीकी कन्या सुभद्रा भी उसी समय आई थी। उसके देखनेहीसे मेरे हृदयके कामबाणसे सौ टुकड़े हो गये, अतएव मैं उसे लेकर भागा और इस दक्षिण भरतके ऊपर आकाशमार्गमें जा रहा था कि सुभद्राकी सखियोंके द्वारा मेरा गमन इस ओरको जानकर उसका पिता कुपित होकर पीछे लगा और आखिर मुझे उससे (चक्रवर्तीसे) युद्ध करना पड़ा। परन्तु मैं हार गया। मेरी विद्याका छेदन करके तथा अपनी कन्याको लेकर वह चला गया। और अब मैं यहाँ भूमिगोचरी होकर रहता हूँ। मेरे लिये यह उपदेश था कि बारह वर्षके पीछे इस मंत्रके जापसे फिरसे विद्या सिद्ध हो जावेगी। परन्तु उससे दूने अर्थात् २४ वर्ष जाप करनेसे भी वह मुझे सिद्ध न हुई, अतएव अशान्तचित्त होकर अब मैं अपने घरको जानेकी इच्छा करता हूँ।

यह सुनके अभयकुमारने कहा कि वह मंत्र मुझे तो सुनाओ। पवनवेगने मंत्र सुनाया, तो उसमें जो अक्षर न्यून थे उन्हें पूर्ण करके अभयकुमारने कहा कि अब जाप करो। पवनवेगने शुद्ध मंत्रका जाप किया कि तत्काल ही विद्या सिद्ध हो गई। इसलिये अभयकुमारको उसने तुरन्त उठके नमस्कार किया। और इसके बाद उसीने कुमारकी इच्छानुसार वर्षादिक की, जिससे रानीका दोहला पूर्ण हुआ और उसने गजकुमार नामके पुत्रको जना। इसके बाद कुछ दिनोंके पीछे रानीके मेघकुमार नामके पुत्रने भी अवतार लिया। इस प्रकार सात पुत्रोंकी माता होकर चेलिनी महारानी सुखसे रहने लगी।

एक दिन वनमालीने आकर राजाको सूचना दी कि हे देव, विपुलाचल पर्वतपर भगवान् वर्द्धमानस्वामीका समवसरण आया है। तब राजा श्रेणिक सम्पूर्ण परिजनोंके साथ भगवानकी पूजाके लिये गया और पूजा करके जिन भगवानकी विभूतिके अतिशयको देखकर अधिक परिणामोंकी विशुद्धिसे क्षायकसम्यग्दृष्टि हो गया

और उसी समय तीर्थंकर प्रकृतिका भी उसने बंध किया। इसके बाद उसने गौतम गणधरसे अभयकुमार तथा गजकुमारके पुण्यके अतिशयका कारण पूछा। तब गणधर भगवान् बोले.—

वेणातटाकपुर नामके गाममे रुद्रदत्त नामका एक ब्राह्मण था। एक दिन वह गंगास्नान करनेको जाता था। सो मार्गमे रात्रिको श्रावककी एक वसतिकामे जाकर उसने भोजनकी याचना की। श्रावकने कहा कि रात्रिको भोजन करना उचित नही है। तब ब्राह्मणने भोजन नही किया और उससे और भी बहुतसा धर्म श्रवण करके वह जैनी हो गया। पश्चात् सन्यासपूर्वक मरण करके सौधर्म स्वर्गको गया। और फिर वहाँसे चयकर यह अभयकुमार हुआ है।

एक जंगलमे सुधर्म नामके कोई मुनि ध्यानमे मग्न हो रहे थे। पास ही एक भीलोंका छोटासा गाँव था। गाँवके अतिदारुण नामके एक भीलने आकर उस जंगलमे आग लगा दी। मुनि महाराज उसमे समाधिसहित मरण करके अच्युत स्वर्गको गये। पश्चात् भीलने जब मुनिराजका कलेवर देखा, तो उसका विना जाने जल जानेका बड़ा पश्चात्ताप हुआ। आयुके अन्तमे वह भील मरके उसी जंगलमे हाथी हुआ।

अच्युतस्वर्गका रहनेवाला देव (सुधर्म मुनिका जीव) एक दिन नन्दीश्वर द्वीपकी वन्दना करके स्वर्गलोकको जा रहा था। मार्गमे उसी वनमे हाथीको देखकर उसने दिगम्बर मुनिका वेष धारण कर लिया और जिस मार्गसे हाथी जा रहा था, उसी मार्गमे आके ध्यानमे मग्न होकर बैठ गया। उसे देखकर हाथीको जातिस्मरण हो गया, इसलिए उसने उक्त मुनिको प्रणाम किया, और धर्मका व्याख्यान सुनकर उत्कृष्ट श्रावकके व्रत धारण किये। इसके बाद वह समाधिपूर्वक मरण करके सहस्रार स्वर्गमे देव हुआ और वहाँसे चयकर यह गजकुमार हुआ है।

गौतमस्वामीके मुखसे उक्त भवान्तर सुनकर श्रेणिक राजाके अभयकुमार गजकुमारादिक पुत्रोंको बड़ा वैराग्य हुआ, इसलिए उन्होंने दीक्षा ले ली, साथ ही अभयकुमारकी माता नन्दश्रीने भी आर्यिकाकी दीक्षा ले ली। राजा श्रेणिकको जिन जिन बातोंकी सुननेकी इच्छा थी सो सब सुनकर महारानी चेलिनीके साथ अपने नगरमे आये और महामंडलेश्वरकी विभूति सहित सुखसे काल व्यतीत करने लगे।

एक दिन सौधर्मस्वर्गका सौधर्मेन्द्र अपनी सभामें सम्यक्त्वका स्वरूप निर्णय कर रहे थे कि इतनेमें एक देवने पूछा—क्या इस प्रकारका सम्यक्त्वधारी पुरुष कोई भरतक्षेत्रमें है? इन्द्र महाराजने कहा कि हाँ, ऐसा सम्यग्दृष्टि राजा श्रेणिक है। यह सुनकर दो देव उसकी परीक्षाके लिए भरतक्षेत्रमें आये और राजाके क्रीडाको जानेके मार्गमें एक नदीमें दोनोंने स्वाँग धारण किया। एक तो दिगम्बर मुनिका वेष धारण करके और मछली पकड़नेका जाल बिछाके बैठा तथा दूसरा आर्यिकाका वेष लेकर उस जालमेंसे निकली हुई मछलियोंको कमंडलुमें डालनेके काममें मग्न हुआ। राजाने क्रीडाको जाते हुए उक्त जोड़ेको देखा और समीप जाके नमस्कारपूर्वक पूछा—आप ये क्या कर रहे हैं? "धर्मवृद्धि हो!" ऐसा कहके वेषी यतिने कहा—इस आर्यिकाके गर्भ धारण हुआ है, सो इसे मछलीका मांस खानेकी इच्छा हुई है, अतएव मैं मछलियोंको पकड़ रहा हूँ। राजाने कहा—इस उत्तम वेषको धारण करके ऐसा करना सर्वथा अनुचित है। मायावी यतिने कहा—राजन्, जब प्रयोजन आ पड़ा, तब क्या किया जावे? राजाने कहा—तो भी दिगम्बरोंको अनुचित है। वेषी मुनिने कहा कि राजन, प्रयोजन आ पड़नेपर सब ही साधु तुझ सरीखे हो जाते हैं। राजाने कहा—तब तुम सम्यग्दृष्टि भी नहीं हो, अत्यन्त निकृष्ट हो। यतिने कहा—तो क्या मैं असत्य कहता हूँ? जब तू मुझसे ऐसा कहता है, तब परम यतियोंको गाली देनेके कारण तू अवश्य जैन नहीं है, हम तो जैन हैं ही। राजाने कहा—सम्यक्त्वके संवेगादि लक्षणोंके अभावसे तथा जैन मुनियोंकी अप्रभावना करनेके कारण तुम कैसे जैनी कहला सकते हो? और सुनो—यदि तुम इस पवित्र वेषको धारण करके ऐसा करोगे, तो तुम ही जानोगे! मायावी यतिने कहा—क्या करोगे? राजाने कहा—दर्शनभ्रष्ट होनेके कारण तुम दिगम्बर मुनि नहीं हो सकते, इसलिए मैं तुम्हें गधेपर चढ़ाके निकालूँगा। ऐसा कहकर उन दोनोंको घर लाया। मंत्रियोंने देखके राजासे पूछा हे देव, ऐसे भ्रष्ट मुनियोंके नमस्कार करनेसे सम्यग्दर्शनमें क्या अतिचारका दूषण नहीं लगता? श्रेणिकने कहा—ये वेषधारी जैन हैं, ऐसा जानकर मैंने नमस्कार किया था, इस कारण दर्शनातिचार नहीं हो सकता। हाँ, यदि मेरे चारित्र होता, तो सचमुचमें चारित्रमें अतिचार लगता। तब राजाको इस प्रकार सम्यग्दर्शनमें दृढ़ देखकर वे दोनों देव अत्यन्त प्रसन्न

होकर प्रगट हो गये और नमस्कार करके राजदम्पतिका (राजा-रानीका) गंगाजलसे अभिषेक करके तथा स्वर्गलोकके दिव्य वस्त्राभरणों (कपड़े और गहनों) से पूजन करके स्वर्गलोकको चले गये।

इस प्रकार देवोंसे पूजित राजा श्रेणिकने एक दिन यह सोचकर कि पुत्रको राज्य देकर मैं सुखसे रहूँ, कुणकको राज्य सौंपकर आप एकान्तवास करने लगा। और कुणकने उसके बदलेमें क्या किया कि पिताको (श्रेणिकको) ही लोहके पिंजरेमें कैद कर दिया। माताको बड़े आग्रहसे बचाया, नहीं तो उनकी भी ऐसी ही दशा करता। पिंजरेमें श्रेणिकको बिना नमककी काँजी और कोदोंका भोजन मिलता था और ऊपरसे पुत्रके कड़े वचन सुनना पड़ते थे। खेदकी बात है कि ऐसे प्रतापी राजाको भी कर्मके वशमें पड़कर ऐसे दुःखोंको सहते हुए रहना पड़ता है।

दूसरे दिन राजा कुणिक भोजन कर रहा था, उस समय उसके पुत्रने उसकी थालीमें पेशाव कर दिया। मोहके कारण राजाने पुत्रपर कोप न किया और थालीमेंके भातको एक ओर करके खा लिया। पश्चात् माता चेलिनीसे कहा-क्या मेरे सिवाय ऐसा अपत्यमोही (सन्तानपर ममता करनेवाला) कोई दूसरा पुरुष है? माताने दुःखी होके कहा-बेटा, तू कितना मोही है? तू अपने पिताके मोहकी बात सुन। एक बार बालकपनमें तेरी अँगुलीमें पीव और रसकी अत्यन्त दुर्गंधियुक्त एक फोड़ा हुआ था उस समय जब किसी भी उपायसे तुझे चैन नहीं मिलती थी, तब तेरा पिता उस अँगुलीको अपने मुखमें डालके रखता था। यह सुनकर कुणिकने कहा-हे मा, पैदा होनेके दिन मुझे जंगलमें डलवा दिया, यह कहाँका पुत्रमोह है? माताने कहा-बेटा, जंगलमें तुझे मैंने छोड़ा था वे तो जंगलसे ले आये थे और राजा भी तुझे उन्होंने ही किया था। फिर उनके पुत्रमोहकी बराबरी कौन कर सकता है? हाय उनके साथ ऐसा बुरा वर्ताव करना क्या तुझे उचित है?

माताकी उक्त बात सुनकर कुणिकको अपने कियेका बड़ा पछतावा हुआ। वह अपनी निन्दा करता हुआ पिताको पिंजरेसे (बंधनसे) छुड़ानेको चला। परन्तु इसका फल बिलकुल उलटा ही हुआ। श्रेणिकको उसके विरूपक मुखके

देखनेसे भय हुआ कि वह इससे भी अधिक दुःख देनेके लिए आ रहा है, अतएव तलवारकी धारपर पड़के वह मर गया और पहले नरकको गया।

कुणिकको पिताकी मृत्युसे बहुत दुःख हुआ। अग्निसंस्कारादि करनेके पश्चात् मृतात्माकी मुक्तिके लिए उसने ब्राह्मणादिकोंको गृह आहारादि दिये। माता चेलिनीने कुणिकको बहुत समझाया, परन्तु उसने जैनधर्म अंगीकार नहीं किया। तब निराश होकर चेलिनीने वर्द्धमानस्वामीके समवशरणमें अपनी बहिन चन्दन नामकी आर्यिकाके निकट दीक्षा ले ली। और अन्तमें समाधिसे शरीर छोड़के स्वर्गलोकमें देव हुई। अभयकुमारादि मुनि तपस्याके अनुसार यथायोग्य गतियोंको प्राप्त हुए।

इस प्रकार राजा श्रेणिकने सातवें नरककी आयु बाँधकरके भी केवल एक वार जिन भगवान्‌के दर्शन और पूजनसे सम्यक्त्वको पाकर उससे तीर्थंकर पदवीका उपार्जन किया और सातवें नरकका बंध न्यून (कम) करके प्रथम नरकको ही पाया। आगामी कालमें श्रेणिक इसी भरतक्षेत्रके 'महापद्म' नामक प्रथम तीर्थंकर होवेंगे। तो फिर दर्शनपूर्वक चारित्रके धारण करनेवाले अन्य भव्यजीव जिनपूजासे क्या त्रैलोक्यनाथ नहीं हो सकते? अवश्य होंगे। अतएव सम्पूर्ण सज्जनोंको भगवान्‌की पूजा करनेमें निरन्तर तत्पर रहना चाहिए[1]।

इति श्रीकेशवनन्दिदिव्यमुनिशिष्यश्रीरामचन्द्रमुमुक्षुविरचित पुण्यास्रवकथाकोषकी सरलभाषाटीकामें प्रथम पूजाफलवर्णनाष्टक समाप्त हुआ।



१ भ्राजिष्णोराराधनाकर्णाटटीकाकथितक्रमेणोल्लेखमात्र कथितेयं कथा। (इति मूलग्रन्थे)। अर्थात् यह कथा भ्राजिष्णु विद्वान्‌की बनाई हुई कर्णाटकभाषाकी टीकाके क्रमसे संक्षेपमात्र यहाँ लिखी गई है।

अथ पंच नमस्कार मंत्र फलाष्टक।

(१) सुग्रीव बैलकी कथा।

अयोध्या नगरीके राजा रामचन्द्र और लक्ष्मण अपने नगरके बाहर बने हुए महेन्द्र उद्यानमें सकलभूषण केवलीकी वन्दनाके लिए गये। सब लोग केवली भगवान्‌की पूजा वन्दना करके बैठे। धर्मश्रवणके अनन्तर राजा विभीषणने पूछा—हे भगवन्, एक हजार अक्षौहिणी सेनाका नायक और रामचन्द्रजीका अत्यन्त प्यारा राजा सुग्रीव किस पुण्यके फलसे हुआ, सो कृपा करके कहिए। भगवान बोले;—

इसी भरतक्षेत्रमें श्रेष्ठपुर नामका एक नगर है। नगरके राजाका नाम छत्रछाया और रानीका श्रीदत्ता था। उस नगरमें पद्मरुचि नामका एक अधिगम सम्यग्दृष्टि सेठ रहता था। उसने एक दिन चैत्यालयसे घरको आते समय मार्गमें एक बैलको दूसरे बैलके साथ लड़कर पड़ते हुए देखा। बैलको आसन्नमृत्यु (मरनेके करीब) जानकर उसने पञ्च नमस्कार मंत्र[1] पढ़के सुनाया। सो उक्त मन्त्रके प्रभावसे वह बैल शरीर छोड़कर राजा छत्रछायाकी रानी श्रीदत्ताके वृषभध्वज नामका पुत्र हुआ और कुछ दिनोंमें राज्यका स्वामी हुआ।

एक दिन राजा वृषभध्वज हाथीपर आरूढ़ होकर लीलासे नगरमें घूम रहा था कि बैलके पड़नेके स्थानको देखकर मूर्छित हो गया। जातिस्मरण होनेसे पूर्व पर्यायकी सुधि हो आई। इसके बाद चुप होके अपने महलमें आया। और उस पुरुषको खोज करनेके लिए जिसने नमस्कार मंत्र दिया था, उसने एक बड़ा भारी विचित्र जिनमन्दिर बनवाया। और उस मन्दिरमें एक जगह पड़ी हुई बैलकी मूर्ति बनवाई, जिसके निकट ही एक पुरुष नमस्कार मंत्र सुना रहा है। और उन दोनों मूर्तियोंके पास एक विचक्षण पुरुषको यह कहकर बैठाया कि जो कोई इस दृश्यको बड़े आश्चर्यसे देखे, उसको मेरे पास ले आना।

१—णमो अरहंताण णमो सिद्धाण णमो आइरीयाण। णमो उवज्झायाण, णमो लोगे सव्वसाहूण।

इसके बाद जब पद्मरुचि सेठ उस मन्दिरमें आया, तो इस दृश्यको देखकर वह बड़ा विस्मित हुआ। इसलिए नियुक्त (नियत किया) पुरुष उसे राजाके समीप ले गया। राजाने पूछा—आप उस बैलको देखकर विस्मित क्यो हुए? सेठ बोला—मैंने इसी प्रकार पड़े हुए एक बैलको पंच नमस्कार मंत्र सुनाया था, सो इसके दर्शनसे उसका स्मरण हो आया है। वह कहाँ उत्पन्न हुआ और यह बात क्या है? इसलिए विस्मित हुआ हूँ। यह सुनते ही राजाने अपना परिचय देकर कहा कि वह मै ही हूँ। उस सेठका बड़ा भारी सत्कार करके वैभवादिकसे उसे अपने समान कर लिया।

वह वृषभध्वज देव और मनुष्य दोनो गतियोके सुखोका बहुत कालतक अनुभव करके सुग्रीव हुआ है, और पद्मरुचि सेठ परपरा गतिसे रामचन्द्र हुए है।

पाठकगणो, इस प्रकार एक पशु भी नमस्कार मंत्रके प्रभावसे ऐसे पदको प्राप्त हो गया फिर अन्य जनोकी तो बात ही क्या है?

(२) बन्दरकी कथा।

भरतक्षेत्रके सौरीपुर नगरमे अन्धकवृष्टि नामका राजा राज्य करता था। उस नगरके बाहर गन्धमादन पर्वतपर तपस्या करते हुए सुप्रतिष्ठ मुनिका सुदर्शन नामके एक देवने घोर उपसर्ग किया, परन्तु मुनि ध्यानसे च्युत न होकर केवलज्ञानको प्राप्त हुए। तब वह राजा केवलीकी वन्दनाको गया और पूजा करके पूछने लगा—हे भगवान्, आपको यह उपसर्ग किस कारणसे हुआ? सर्वज्ञ भगवान बोले;—

जम्बूद्वीप-भरतक्षेत्र-कलिंगदेशके काञ्चीपुर नगरके निवासी सुदत्त और सूरदत्त नामके वैश्य व्यापारमे बहुतसा धन पैदा करके अपने नगरमें आ रहे थे, सो राजकीय कर (टैक्स) लेनेवालोंके भयसे उन दोनोने नगरके बाहर एक स्थानमे वह द्रव्य गाढ़ दिया। परन्तु जमीनमे गाढ़ते समय किसी पुरुषने देख लिया, सो उनके जाते ही वह खोदकर

निकाल ले गया। उसके बाद वे दोनो धन ले जानेकी एक दूसरेपर शंका करके आपसमें खूब लड़े और मरके पहले नरकमें जाकर उत्पन्न हुए। वहाँसे आकर मेढ़े हुए। सो वे भी आपसमें लड़कर मरे और गंगाके किनारे बैल होकर उसी प्रकार भी मरकर सम्मेदशिखरपर वन्दर हुए। अबकी बार दोनोंमें फिर भी युद्ध हुआ और एक वन्दर जो कि मुदत्तका जीव था, मर गया, परन्तु सूरदत्तका जीव कंठगतप्राण हो रहा था कि इतनेमें वहाँसे सुरगुरु और देवगुरु नामके चारण ऋद्धिके धारी मुनि निकले। उन्होंने कंठगतप्राण वन्दरको पंचनमस्कार मंत्र सुनाया, सो उसके फलसे वह शरीर छोड़के सौधर्म स्वर्गमें 'चित्राङ्गद' नामक देव हुआ। फिर वहाँसे चयकर कांचीपुरके राजा जितसेन और रानी सुभद्राके समुद्रदत्त नामका पुत्र हुआ। इसके बाद तपस्या करके अहमिन्द्र हुआ। वहाँसे आकर पोदनपुरके राजा सुस्थिर और रानी लक्ष्मणाके मैं सुप्रतिष्ठ नामका पुत्र हुआ। और वह दूसरा वन्दर बहुत काल तक भ्रमण करता हुआ सिन्धुनदीके तटपर मृगायण तापसीकी विशाला स्त्रीके गौतम नामका पुत्र हुआ। वह गौतम पंचाग्नितपके प्रभावसे जोतिर्लोकमें यह सुदर्शन देव हुआ है। सो कहीं जा रहा था कि मेरे ऊपर इसका विमान आया। सो उस समय पूर्वभवके वैरका स्मरण करके इसने मुझपर उपसर्ग किया।

केवली भगवान्के मुखसे अपनी पूर्वकथा सुनकर सुदर्शनदेव सम्यक्त्वयुक्त हो गया।

देखो, पंचनमस्कार मंत्रके प्रभावसे एक वन्दर भी, इस प्रकार केवललक्ष्मीको प्राप्त हो गया, फिर उसके फलकी और क्या महिमा कही जावे ?

---

(३) विन्ध्यश्री कन्याकी कथा।

वाराणसीके राजा अकम्पन और रानी सुप्रभाकी पुत्री सुलोचना जैनधर्मकी परमभक्त और सम्पूर्ण कलाओंमे कुशल थी। वह विद्याओंका अभ्यास करती हुई सुखसे रहती थी कि इतनेमें अकम्पनके मित्र विन्ध्यपुरके राजा

१ भाषाकारने न जाने क्यों इस कथाको छोड दिया है।

विध्यकीर्ति, रानी पियङ्गुश्रीकी पुत्री विध्यश्री उसके पिताने सुलोचनाको लाके सौंपी और कहा कि इसको पढ़ा लिखा कर सकल कलाओंमें प्रवीण करो। पश्चात् विध्यश्री पुत्री सुलोचनाके पास सुखसे रहने लगी। एक दिन सुलोचनाने उसे महलके उद्यानमें फूल चुननेके लिए भेजी कि वहॉ एक काले सॉपने निकलकर उसे डस लिया। सो सुलोचनाके दिये हुए पंच नमस्कार मंत्रके प्रभावसे गंगाकूट निवासिनी गंगादेवी हुई। सो अपनी उपकार करनेवालीका स्मरण करके उसने सुलोचनाके पास आकर उसकी पूजा की, और फिर अपने स्थानमें जाकर सुखसे काल बिताने लगी।

(४) अर्धदग्ध पुरुष और बकरेकी कथा।

जम्बूद्वीप-भरतक्षेत्र-अंगदेशकी चम्पापुरी नगरीका राजा विमलवाहन और रानी विमलमती थी। इसी नगरीमें एक भानु नामका सेठ था। उसकी स्त्री देविला पुत्रकी इच्छासे सदैव यक्ष और यक्षिणीकी पूजा किया करती थी। एक दिन सुमति नामके दिगम्बर मुनिने देखकर उससे कहा—हे पुत्रि; तेरे एक उत्तम पुत्ररत्न उत्पन्न होगा, तू कुदेवोंकी पूजा करके अपने सम्यक्त्वको मत बिगाड़। इसके बाद कुछ दिनोंमें देविलाके चारुदत्त नामका पुत्र उत्पन्न हुआ और राजमंत्रीके हरिशिख, गोमुख, वराहक, परंतप और मरुभूति आदि पुत्रोंके सहित बालक्रीड़ा करता हुआ बढ़ने लगा।

चम्पापुरीके पास मन्दारगिरि नामका एक पर्वत है। उसपर यमधर नामके मुनि तपस्या करके मोक्ष प्राप्त हुए थे। इस कारण वहॉ प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष (अगहन) महीनेमें मेला लगता था। सो एक बार राजा और मंत्रि आदि प्रतिष्ठित पुरुष वहॉको जा रहे थे। उन्होंने चारुदत्तको लौटा दिया। तब वह अपने मित्रोंके साथ नदीके किनारेके बगीचेमें क्रीड़ा करनेको चला गया। वहॉ टहल रहा था कि उस कदम्बवृक्षकी शाखामें बँधा हुआ एक मूर्छित पुरुष दिखलाई दिया। तब उसने विमानके ऊपर ठहरी हुई उस पुरुषकी दृष्टिके भावको

१-२ अनयो वृत्तयो कथा चारुदत्तचरित्रादेवोद्ध्रियते। इन दोनों वृत्तोंकी कथा चारुदत्तचरित्रसे उद्धृत की जाती है।

जानके विमानकी शोध की। विमानमें तीन गुटिका (गोली) मिली। जिनमेंसे पहली कीलोच्छेदिनी गुटिकाके प्रभावसे उस पुरुषको बंधनसे छुड़ाया, दूसरी संजीवनी गुटिकाकी सामर्थ्यसे मूर्छारहित किया और तीसरी व्रणसंरोहिणी गुटिकाके प्रभावसे उसके जो घाव लगे थे, उन्हें भी अच्छे कर दिये। इस प्रकार सब प्रकारसे बंधनरहित तथा सुखी होनेपर वह पुरुष उठा और चारुदत्तको प्रणाम करके बोला;–हे भव्योत्तम, मेरी कथा सुनो। मै विजयार्द्धकी दक्षिणश्रेणीके शिवमन्दिरपुरके राजा महेन्द्रविक्रम तथा मत्स्या रानीका पुत्र हूँ। मेरा नाम अमितगति विद्याधर है। मैं अपने धूमसिंह और गोरिमुंड इन दो मित्रोंके साथ एक बार हीमन्त पर्वतपर गया था। वहाँ मैने हिरण्यरोम नाम क्षत्रिय तापसकी सुकुमारिका नामकी कन्या देखी। वह अपने रूप और सौकुमार्यसे देवाङ्गनाओंको भी जीतती थी। अतः मैने उसपर मोहित होकर उसके पितासे याचना की। तब तापसने प्रसन्नतासे मेरे साथ पुत्रीका विवाह कर दिया। इसके बाद सुकुमारिकाके रूपको देखकर मेरा मित्र धूमसिंह अत्यन्त आसक्त हो गया और इस कारण वह उसको उड़ा ले जानेका उपाय सोचने लगा। परन्तु मुझे यह बात मालूम नहीं थी। मै सुकुमारिकाके साथ क्रीड़ा करनेको यहाँ आया था। सो उस पापीने वेखबरीमे पाकर मुझे कील दिया और आप सुकुमारिकाको लेके चला गया। उसके बाद आपने आकर मुझे छुड़ाया, सो प्रत्यक्ष ही है। इतना कहके अमितगति चारुदत्तका उपकार मानके और नमस्कार करके वहाँसे चला गया।

कुछ दिनोंके पीछे चारुदत्तका विवाह उसके मामा सिद्धार्थकी कन्या मित्रवतीके साथ हुआ, परन्तु वह विवाह सम्बन्धको सर्वथा न समझके दिनरात नाना कलाओ और काव्यशास्त्रोंके अध्ययन (पढ़ने) मे ही मग्न रहता था। एक दिन सबेरे ही चारुदत्तकी सासने अपनी पुत्री मित्रवतीको किये हुए शृंगारविलेपनादि सहित देखकर पूछा–पुत्रि, क्या तू पतिके साथ नही सोती है, जो आज तेरे शरीरपर विलेपनादि शृंगार द्रव्य ज्योंके त्यों दिखाई पड़ते है? मित्रवतीने लज्जित होके धीमी आवाजसे कहा कि वे तो कभी मेरी चिन्ता ही नहीं करते है। निरन्तर पढ़नेमे तथा अनुमान प्रमाणादिकोंकी उधेड़बुनमे लगे रहते है। यह सुनके सुमित्राने चारुदत्तकी माता देविलासे जाके कहा;–तुम्हारा पुत्र पढ़ा हुआ मूर्ख है। वह स्त्रियोसे बातचीत भी नही करता है। गृहस्थाश्रम किसे कहते है? वह यह भी नहीं जानता

है। देविलाको यह बात सुनके दुःख हुआ। उसने अपने देवर रुद्रदत्तको एकान्तमें बुलाके कहा-आप कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे चारुदत्तकी विषयभोगोंकी ओर लालसा बढ़े।

रुद्रदत्त यह सुनके वसन्तमाला वेश्याकी पुत्री वसंततिलकाके पास जो रूपलावण्यादि सब गुणोंमें अद्वितीय थी उससे बोला कि मै चारुदत्तको तुम्हारे यहाँ लाता हूँ, जिस तरह बन सके, तुम उसको वशमे करना। वह चारुदत्तको भुलाके उसके पास पहुँचा गया।

चारुदत्तको वसन्ततिलकाने बड़े सत्कारसे बैठाया, और चौपड़का खेल शुरू कर दिया। खेलते खेलते चारुदत्तने तृपित (प्यासा) होके पानी माँगा, सो वसन्ततिलकाने मोहनीचूर्ण मिला पानी लाके दिया। उसके पीते ही चारुदत्त विह्वल हो गया और महलकी छतपर उसके साथ रमण करने लगा। इसके बाद वह उसमें इतना मग्न हुआ कि छह वर्षमे सोलह करोड़ द्रव्यपर पानी फेर दिया और घरद्वारका कभी नाम भी नहीं लिया। पुत्रको इस प्रकार व्यसनमग्न देखके चारुदत्तका पिता वैराग्यसम्पन्न होकर दीक्षित हो गया। इधर दूसरे छह वर्षोंमें चारुदत्तने सोलह करोड़की और भी धूल उड़ा दी। इसके बाद बारह हजार मुहर सोनेका सिक्का लेकर अपने रहनेका घर गिरवी रख दिया। परन्तु आखिर जब वह भी पूरा हो गया, तब चारुदत्त अपनी स्त्रीके कीमती कपड़े जेवर वगैरह लेके उन्हे बेचके वसन्तमालाके पास द्रव्य भेजने लगा। यह देख वसन्तमालाने अपनी पुत्रीसे कहा—अब इस गतद्रव्य अर्थात् खाली हाथ पुरुषको छोडकर किसी दूसरे आँखोंके अंधे धनिकको देख, क्योंकि वेश्याओंके धर्मशास्त्रमे ऐसा ही कहा है,—

धनमनुभवन्ति वेश्या न पुन पुरुष कदापि धनहीनम्। धनहीने कामदेवेऽपि प्रीति बध्नाति नो वेश्या॥

अर्थात् वेश्या धनका अनुभवन करती है, पुरुषका नही। धनहीन पुरुष कामदेवके समान हो, तो भी वेश्या उससे प्रीति नही लगाती। माके धर्मशास्त्रको सुनके वसन्ततिलकासे रहा नही गया। उसने कहा—इस जन्ममे तो मेरा यही पति है, दूसरा नही हो सकता। और सब पुरुष मेरे भाइयोंके बराबर है।

इसके बाद वसन्ततिलका चारुदत्तको क्षणभर भी अपनेसे अलग नही करती थी, क्योंकि वह अपनी माताके

गया। बारह वर्षमे असीम द्रव्य कमाया। उसको लेकर दोनो घरको लौट रहे थे कि अचानक समुद्रमे जहाज फट गया। बहते हुए लकड़ीके टुकड़ोंका सहारा पाकर बड़ी कठिनतासे दोनो प्राण बचाकर किनारे आ लगे। परन्तु दोनो बिछुड़ गये। चारुदत्तका कुछ पता न लगनेसे सिद्धार्थ अपने नगरको चला गया। इधर चारुदत्तने उदुम्बरावती ग्राममे आके सिद्धार्थकी खबर पाई।

इसके बाद सिन्धुदेशके संवर ग्राममे आकर चारुदत्तने पिताका अठारह करोड़ रुपया जो कि किसीके यहाँ जमा था, लेकर जिनमन्दिरो और जिनशास्त्रोंके जीर्णोद्धार करनेके लिए तथा पूजादि शुभकार्योंके लिए दान कर दिया। और बड़े दानशीलके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसके दानगुणकी प्रशंसा सुनकर वीरप्रभ नामका यक्ष मनुष्यका वेष धारण करके परीक्षा लेनेके लिए आया। और दुःखका बहाना बनाके सिसकता हुआ एक स्थानपर बैठ गया। चारुदत्तने उसे दुःखी देखकर पूछा कि भाई क्यो सिसकता है? यक्षने कहा-मेरे पेटशूलकी बडी भारी पीड़ा है। और यह पीड़ा मनुष्यकी पसलीके सेकसे दूर होती है, सो मिलना बड़ा ही कठिन है, इसलिए अपने भाग्यपर रोता हूँ। आप बड़े दानी सुने जाते है; इससे पसलीकी याचना करता हूँ। यह सुनके चारुदत्त छुरी निकालके और उससे अपनी पसली काटके उसे देने लगा। यह देख यक्षको अत्यन्त आश्चर्य हुआ, उसने बड़ी भक्तिसे चारुदत्तकी पूजा की और छुरीके घावको शीघ्र अच्छा कर दिया।

इसके बाद चारुदत्त भ्रमण करता हुआ राजगृह नगरीमे गया। वहाँ विष्णुदत्त नामक एक दंडीने आकर कहा कि यहाँसे कुछ दूरीपर एक रसकूप है। उसमेसे यदि हम रस निकालें, तो बहुतसा द्रव्य पैदा कर सकेंगे। चारुदत्तने कहा-चलो निकाले, मुझे रसकूप दिखाओ। इसके बाद तपस्वी चारुदत्तको वहाँ ले गया और एक वस्त्रमें बाँधकर तथा हाथमे तुम्बी देकर उसे कुएमे उतार दिया। चारुदत्त तुम्बीको रससे भरकर ऊपर भेजनेके लिए वस्त्रमें बाँध रहा था कि इतनेमे कुएमेसे किसीने कहा;-यह तपस्वी बड़ा धूर्त तथा कपटी है, मुझे इसीने इस कुएमे डाला है, और देख अब तुझे भी मेरा साथी बनानेके प्रयत्नमे है। यह सुनके आश्चर्ययुक्त होके चारुदत्तने पूछा-तुम कौन

चित्तको जान गई थी कि अब यह निर्धन चारुदत्तको मेरे पास नहीं रहने देगी। परन्तु एक दिन चूक ही गई। उसकी माताने एक कुट्टिनीके द्वारा नींद बढ़ानेवाली कोई चीज़ उन दोनोंको खिला दी। पश्चात् जब दम्पति सो गये, तब वसन्तमालाने चारुदत्तको गहने रहित और वस्त्रहीन करके आधी रातके समय कम्बलमे बाँधके पाखानेमे पटक दिया। वहाँ जब विष्टा खानेवाले सुअरने आके उसके मुखका स्पर्श किया, तब चारुदत्तने कुछ चेतमे आके जाना कि यह वसन्ततिलका ही मुझसे स्पर्श कर रही है। अतएव बोला कि प्रिये वसन्ततिलके; जरा उस ओर खिसक। परन्तु वहाँ था कौन जो खिसके? आवाज़ सुनके कोतवाल आ गया। उसने, तू कौन है? यहाँ क्यो पड़ा है? इस प्रकार प्रश्न करके उठाया। और जब जाना कि यह चारुदत्त है, बड़ी निन्दा की। चारुदत्त लज्जित होके वहाँसे अपने घर गया, परन्तु वहाँ द्वारपालने भीतर जानेसे रोका। तब चारुदत्तने पूछा कि तुम क्यो रोकते हो? क्या यह मेरा घर नहीं है? उसने कहा कि घर तो आपका ही है, परन्तु अभी गिरवी रक्खा है, इससे आपका नहीं है। तब चारुदत्तने पूछा--तो मेरी माता कहाँ है? द्वारपालने बतलाया कि अमुक स्थानपर है। तब वह वहाँ गया, उसकी अवस्थाको देखके माता और स्त्री अत्यन्त दुःखित हुई। स्नानादि कराया, इसके बाद चारुदत्तके मामाने कहा कि मेरे पास सोलह करोड़का द्रव्य है, सो तुम उसे लेके काम काज चलाओ और कुछ चिन्ता मत करो। चारुदत्तने कहा--व्यापार अन्य देशोमे अच्छा हो सकता है यहाँ नहीं। पश्चात् द्रव्यादि लेके घरसे निकला। यह देख मोहके कारण उसका मामा सिद्धार्थ भी उसके साथ हो लिया। दोनोंने आलोक देश सीमावती नदीके किनारेसे मूल खरीद किये और दोनो उन्हे स्वयम् मस्तकपर रखके पलाशपुर नगरमे ले गये। वहाँ वृषभध्वजके घर रहके बेचनेसे जो धन कमाया, उससे कपास संग्रह किया। फिर कपासको बैलोपर भरके कंजक नाम किसी वणजारेके साथ चले। मार्गमे भीलोने बैल छीन लिये और कपास जला दिया। फिर मलयागिरिमे रत्नोका उपार्जन किया, सो उन्हे भीलोने छीन लिया। तब दोनो प्रियंगुवेला नगरमे गये। वहाँ चारुदत्तके पिता भानुका सुरेन्द्रदत्त नामका मित्र रहता था। वह इन दोनोको द्वीपान्तरोको व्यापारके लिए ले

हो ? उसने उत्तर दिया—मैं उज्जयनीके एक सेठका पुत्र हूँ, व्यापारमें द्रव्य खोकर मैं इस तपस्वीके पंजेमें फँस गया था। इसने रसका लोभ देकर मुझे इस कुएमें उतारा और आप रस लेके चलता बना। अब मैं इस रसकूपमें पड़के अधमरा होकर जी रहा हूँ, अब तबकी दशा है। यह सुनके चारुदत्त सचेत हो गया। उसने पहली बार तो तुम्बीको भरके कपड़ेसे बाँध दी, और उसे उस दंडीने खीच ली। परन्तु दूसरी वार अपने वदले पत्थर बाँध दिया, जिसे पापी तापसीने आधी दूर खीचके यह समझके कि अबकी वार चारुदत्त लटका हुआ आ रहा है, वस्त्रको बीचमेंसे काट दिया। पत्थर धमसे कुएमें जा पड़ा। इससे चारुदत्तने वणिक्पुत्रसे पूछा कि भाई; मेरे यहाँसे निकलनेका कोई उपाय हो, तो बतलाओ। उसने कहा—यहाँ एक गोह रस पीनेके लिए हमेशह आया करती है, सो तुम लौटते समय उसकी पूछको पकड़के निकल सकते हो। सुनके चारुदत्त प्रसन्न हुआ और उस वणिक्पुत्रको पंचनमस्कार मंत्र देके जिस समय गोह आई, लौटते समय उसकी पूछ पकड़के ऊपरको चला। परन्तु ज्यों ही कुएका ऊपरी भाग कुछ निकट आया, त्यों ही गोह एक छिद्रके संकीर्णमार्गमें प्रवेशकरके जाने लगी, तब चारुदत्तने लाचार होके उसे छोड़ दिया और अन्तरालमें किसी पत्थरको पकड़के वह एकत्व, अन्यत्वादि बारह भावनाओंका चिन्तवन करने लगा। इतनेमें कुएके किनारे बकरियाँ चरनेको आई और उनमेंसे एक बकरीका पैर फिसलके एक गड्ढेमें जा पड़ा। चारुदत्त जहाँ लटक रहा था, वहीं उस गड्ढेका अन्त था, सो उसने चटसे उसका पैर पकड़ लिया। बकरी चिल्लाई, तब उसका रक्षक वहाँ आकर गड्ढेको खोदने लगा। चारुदत्तने कहा—भाई; धीरे धीरे खोदना, मुझे चोट न लग जावे। यह सुन बकरियोंके रक्षकको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने डरते डरते ज्यों त्यों करके चारुदत्तको कुएमेंसे बाहर निकाला।

इसके बाद चारुदत्त वहाँसे चला। जंगलमें एक अजगर मिला, उससे बचकर आगे चला तो एक जंगली भैंसा मारनेको दौड़ा, उससे बचनेके लिए वह एक वृक्षपर चढ़ गया। फिर वहाँसे चलके नदीके किनारे अंग देशसे आये हुए रुद्रदत्त, हरिशिखादिक मित्रोंसे मिला। और उन सातोंके साथ श्रीपुर नगरको गया। वहाँपर एक प्रियदत्त नामक पुरुषने स्नान भोजनादिक कराके इन सबका सत्कार किया और बहुतसा द्रव्य मार्गके खर्चके लिए दिया।

सो इन्होंने उस द्रव्यसे बहुतसी कॉचकी चूड़ियॉ खरीदकर गांधार देशमे ले जाके बेची।

गांधार देशमे किसी पुरुषने रुद्रदत्तको सलाह दी कि यहॉसे कुछ दूरपर एक पर्वत है। वहॉका मार्ग बहुत संकीर्ण (तंग) है, अतएव बकरोंपर चढ़कर उस पर्वतके शिखरपर जाना चाहिए और वहॉ बकरोंकी भाथड़ियोमे (मसकोंमें) बैठके उनको सी देना चाहिए। उस पर्वतपर एक भेरुण्ड नामके भीमकाय (बड़े आकारके) पक्षी आते है, वे उन भाथड़ियोको मांसके पिंड समझके ले उड़ेगे, और रत्नद्वीपमे उन्हें खानेके लिए जमीनपर रक्खेगे। उस समय होशयारीसे भाथड़ी काटके बाहर निकल आना चाहिए और फिर वहॉसे मनमाने रत्न ले आना चाहिए। यह सुनके सातों मित्र बकरे लाकर उस संकीर्ण मार्गपर आये। उस समय चारुदत्त "आप लोग यहॉ थोड़ी देर ठहरें, मैं रास्ता देखके अभी आता हूँ" ऐसा कहकर उस विकट मार्गपरसे चला, जो केवल चार अंगुल चोड़ा और दोनों ओर बड़ी ऊँची घाटियोंसे घिरा हुआ तथा नीचे पातालतक दिखलाता हुआ बड़ा भयानक था। चारुदत्तको वहॉसे वापिस लौटनेमे जब कुछ विलब हुआ, तब रुद्रदत्तादि "न जाने वह अभी तक क्यों नहीं लौटा" इस प्रकार चिन्ताकरके आप भी उसी मार्गपरसे देखनेको चल पड़े। थोड़ी दूर गये थे कि, बीचमे चारुदत्त आता हुआ मिल गया। बड़ी कठिनाई हुई। चारुदत्तने कहा—भाइयो; तुमने बड़ा अन्याय किया। इस समय यदि मै लौटता हूँ, तो मेरा पतन [नीचे गिरना] होता है। और यदि तुम लौटते हो तो तुमारा पतन होता है। अब क्या किया जावे? रुद्रदत्तने कहा— भाई हम लोग लौटते है, हम लोग पुण्यहीन है। यदि हम मर जावेगे, तो क्या? तुम चिरंजीवी रहो। तुम पुण्यवान् हो, तुमसे संसारका बहुत उपकार हो सकता है। इसके उत्तरमे चारुदत्तने यह कहके कि "यदि मै अकेला मर जाऊँगा, तो इसमे तुम्हारा क्या जावेगा, मुझे ही लौटने दो।" पॉवकी अंगुली जमीनपर रोपके शक्तिपूर्वक बकरेको लौटा लिया। यह देख उसकी शक्तिपर मित्रोको आश्चर्य हुआ। पश्चात् बकरेपर सवार होके चारुदत्त सबके साथ पर्वतपर चढ़ा और फिर वहॉ अपने बकरेको बॉधके एक वृक्षके नीचे सो गया।

चारुदत्त जबतक सोया, तबतक रुद्रदत्तने सवारीके छहों बकरे मारडाले और पीछे वह चारुदत्तके बकरेको

मार रहा था कि, इतनेमें चारुदत्तकी आँख खुल गई। उसने रुद्रदत्तके घोर पापकर्मकी बड़ी निन्दा की, और प्राण निकलते हुए बकरेको पंचनमस्कार मंत्र सुनाया। इसके बाद सबके सब उन मरे हुए बकरोंकी भाथड़ियोंके भीतर घुसके और उनका मुँह सींके पड़ गये। इतनेमें भेरुण्डपक्षी आये और उन सब भाथड़ीयोंको एक एक करके ले उड़े। चारुदत्तकी भाथड़ी एक काना भेरुण्ड उठाके उड़ा, उसे अन्य बहुतसे भेरुण्डोंने मिलके उससे छीनना चाही, परन्तु उनकी धींगाधींगीमें वह उसकी चोंचमेंसे छूटके समुद्रमें जा पड़ी। पीछे अन्य भेरुण्डोंको भागते देख करके उस कानेने भाथड़ीको फिर उठा ली और चला, परन्तु फिर भी अन्य पक्षियोंने आके घेर लिया। सो इस प्रकार तीन बार उसने उस भाथड़ीको पटकी और उठाई। चौथी बार रत्नद्वीपके रत्नपर्वतकी चूलिकामें वह भेरुण्ड भाथड़ीको रखके उसके खानेका उद्यम करने लगा, तब भाथड़ी काटके चारुदत्त बाहर निकल पड़ा। भेरुण्ड उड़ गया। और इसी प्रकार अन्य मित्रोंको भी वे पक्षी दूसरे दूसरे स्थानोंपर ले गये।

भाथड़ीमेंसे निकलके चारुदत्त पर्वतपर यहाँ वहाँ भ्रमण कर रहा था कि एक गुफामें मुनि महाराजको देखके उसने नमस्कार किया। मुनिने 'धर्मवृद्धि' देकर कहा—चारुदत्त कुशल तो है? यह सुनके चारुदत्त आश्चर्ययुक्त होके बोला—भगवन्, आपने मुझे पहले कहाँ देखा था, जो मेरा नाम लेकर बोला। मुनि बोले—मैं वही अमितगति हूँ, जिसको तुमने बन्धनसे छुड़ाया था। वहाँसे आके मैने उस विद्याधरसे अपनी स्त्रीको छुड़ाकर, और बहुत काल राज्य करके यह तपस्या ग्रहण की है। मुनिने इस प्रकार अपना स्वरूप कहके सुनाया था कि इतनेमें उक्त मुनिके सिंहग्रीव, और वाराहग्रीव पुत्र अपने अपने विमानों सहित वन्दना करनेके लिए आये। और वन्दना करके बैठ गये। मुनिने कहा—चारुदत्तको [1]इच्छाकार करो। सिंहग्रीव, वाराहग्रीवने इच्छाकार करके पूछा—ये कौन है? तब मुनिने चारुदत्तका सम्पूर्ण परिचय दिया।

इसी प्रस्तावमें दो कल्पवासी देवोंने आकर पहले चारुदत्तको और बादमें मुनिको नमस्कार किया। यह देख

[1] श्रावक जब श्रावकसे मिलता है, तब जुहारादिकी नाई "इच्छाकार" करता है। यह एक शिष्टाचारका शब्द है।

सिंहग्रीवने पूछा कि गृहस्थको मुनिके प्रथम नमस्कार करनेका क्या कारण है? तब उनमेंसे बकरेका जीव मरकर पंच नमस्कार मंत्रके प्रभावसे देव हुआ था सो बोला;—

वाराणसी नगरीमें एक सोमशर्म्मा नामका ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सोमिला था। सोमिलाके भद्रा और सुलसा नामकी दो पुत्री उत्पन्न हुईं। वे दोनों खूब विद्या पढ़कर उसके [विद्याके] गर्वसे कुमारी ही सन्यासिनी हो गईं। उस समय इनकी विद्याकी प्रशंसा सुनके भौतिकपदार्थवादी याज्ञवल्क्य नामक तपस्वी विद्यार्थी वाराणसी नगरीमें आया, और उनसे वाद करनेको तत्पर हुआ। सुलसाको उसने वादमें परास्त किया और आखिर उसके साथ विवाह करके सुखसे रहने लगा। कुछ दिनोंके पीछे, उसके पुत्र उत्पन्न हुआ, परन्तु वे दोनों पापी (मातापिता) उसे पीपलके वृक्षके नीचे डालकर वहाँसे चले गये। बालकको दूसरी वहिन भद्राने पाके उसका नाम पिप्पलाद रखके बढ़ाया और पढ़ाके विद्यासे परिपूर्ण किया। एक दिन उसने भद्रासे पूछा कि मेरा नाम "पिप्पलाद" क्यों पड़ा? तब भद्राने उसका पूर्व वृत्तान्त उसे कह सुनाया। तब पिप्पलादने अपने पिताके पास जाकर उसे वादमें पराजित किया और अपना स्वरूप प्रगट किया कि मै तुम्हारा पुत्र हूँ। उस समय पिप्पलादका मै वाग्वली नामका शिष्य हुआ। मैने अपने गुरुके कहे हुए शास्त्रके समर्थनके लिए एक विवाद किया। परन्तु उसमें हार होनेके कारण रौद्रध्यानपूर्वक मरण करके नरक गया। और अपनी आयु पूर्ण करके वहाँसे निकलकर बकरेकी पर्यायमें आया। और छह वार बकरा होकर छहों वार यज्ञमें होमा गया। पश्चात् सातवी वार टक्क देशमें पुनः बकरा हुआ और मरते समय चारुदत्तके दिये हुए पंचनमस्कार मंत्रके प्रभावसे मै सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ।

इसके वाद दूसरे देवने कहा कि मै पूर्वजन्ममें एक रसकूपमें पड़ा हुआ था। वहाँ चारुदत्तने आकर मुझे पंच नमस्कार मंत्र दिया था, सो उसके फलसे मैं भी मरकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ हूँ।

इस प्रकार ये चारुदत्त हम दोनोंके ही गुरु है, अतएव किये हुए उपकारके स्मरणके लिए पहले हम दोनोंने इन्हें नमस्कार किया है, क्योंकि:—

अक्षरस्यापि चैकस्य पदार्धस्य पदस्य वा। दातारं विस्मरन्पापी किं पुनर्धर्मदेशिनम् ॥

अर्थात् एक अक्षर, आधा पद, अथवा एक पदके देनेवाले गुरुके उपकारको भी जो भूलता है वह पापी है, फिर धर्मोपदेश देनेवाले गुरुके विषयमें तो कहना ही क्या है? देवोंके इस प्रकार उपकारसे भरे हुए वचनोंको सुनकर सब लोग प्रसन्न हुए।

पश्चात् चारुदत्तकी आज्ञासे देवोंने चारुदत्तके रुद्रदत्तादिक मित्रोंको जहाँ थे वहाँसे लाके मिला दिया और कहा—आप लोगोंको जितने द्रव्यकी इच्छा हो हम देवेंगे। चलिए चम्पानगरीको चलें। परन्तु सिंहग्रीवने उन्हें ऐसा नहीं करने दिया, और यह कहकर कि हम ही इनकी इच्छा पूर्ण करेंगे, अपने नगरको ले गया। वहाँ जाकर चारुदत्तने अनेक विद्याएँ साधकर विद्याधर राजाओंकी बत्तीस कन्याओंके साथ विवाह किया। बाद जब उसने अपने नगरको जानेकी इच्छा प्रगट की, तब सिंहग्रीवने कहा कि मेरी गन्धर्वसेना पुत्रीने यह प्रतिज्ञा की है कि मुझे जो कोई वीणा बजानेमें जीतेगा वही मेरा भर्तार होगा। सो उसे आप अपने साथ ले जाइए और वहाँ जो कोई वीणामें प्रवीण राजा हो अर्थात् जो इसे वीणावादमें जीत लेवे, उसके साथ इसका विवाह कर दीजिएगा। ऐसा कहकर गन्धर्वसेना चारुदत्तके साथ कर दी।

चारुदत्त कोट्यावधि द्रव्य सम्पन्न होकर सिंहग्रीवादिक विद्याधरों, अपनी विवाहित स्त्रियों और रुद्रदत्तादि मित्रोंके साथ बड़े विभवसहित अपने नगरको आया। वहाँ अपने गिरवी रक्खे हुए महलको छुड़ाया। और वसन्ततिलका [वेश्याकी पुत्री] वहाँ यह प्रतिज्ञा करके बैठी थी कि संसारमें मेरा एक वही पति है जो मुझे छोड़ गया है, वही मेरी है। सो उसको भी अपनी प्यारी स्त्री बनाई। इस प्रकार बहुत सुखका समय अनुभव करके किसी निमित्तको पाकर अनेक राजाओंके साथ चारुदत्त दीक्षित हो गया। और घोर तपश्चर्यापूर्वक समाधिमरण करके सर्वार्थसिद्धिको प्राप्त हुआ।

पाठको, इस प्रकार एक मिथ्यादृष्टि मनुष्य (रस कूपमें पड़ा हुआ) और एक तिर्यंच (बकरा) भी इस

पंचनमस्कार मंत्रके प्रभावसे स्वर्गादिकके बड़े भारी पदोंको प्राप्त हो गये। यदि सम्यग्दृष्टि श्रावक इस पंचपद मंत्रका ध्यान करें तो क्यों न मनोवांछित पदको पावें? उन्हें सब सुलभ हो जावें।

(५) सर्पसर्पिणीकी कथा।[1]

वाराणसी नगरीमें राजा विश्वसेन राज्य करते थे। उनकी महारानीका नाम वामादेवी (ब्रह्मदत्ता) था। वामादेवीके गर्भसे देवाधिदेव परमेश्वर पार्श्वनाथने अवतार लिया था; यह बात जगत्प्रसिद्ध है। एक वार पार्श्वनाथकुमार हाथीपर चढ़कर वाहर जा रहे थे कि उन्हें एक स्थानमें एक तपस्वी पंचाग्नि तपता हुआ दिखलाई दिया। उसे देखके भगवत्ने एक सेवकसे पूछा-यह कौन है और क्या करता है? सेवकने कहा-देव; यह एक योगी है, और बड़ी कठिन तपस्या करता है। तब तीर्थंकर कुमारने कहा कि अज्ञानियोंका तप संसार बढ़ानेका ही कारण होता है, मोक्ष सुखका नहीं। यह सुनके जन्मान्तरोंका विरोधी वह भौतिक तपस्वी क्रोधसे आगबबूला होकर बोला-कुमार; मैं अज्ञानी क्यों हूँ? आपने मुझे अज्ञानी कैसे जाना? इसके उत्तरमें तीर्थंकरकुमारने हाथीसे उतरकर उसके समीप जाके कहा-यदि आप ज्ञानी है तो इस जलते हुए काष्ठमें क्या है? बतलाइये। तपस्वीने कहा-इसमें कुछ भी नहीं है। कुमारने कहा-अच्छा इसे फाड़कर देखो। तत्काल ही काष्ठ फाड़ा गया तो उसमें आधे जले हुए कंठगतप्राण सर्पयुगल निकले। तब उन्हें कुमारने पंचनमस्कार मंत्र दिया। जिसके प्रभावसे वे उसी समय शरीर छोड़कर धरणेन्द्र और पद्मावती हो गये। परन्तु इस आश्चर्यजनक घटनाका पूर्व भवके वैरी तपस्वीपर कुछ भी असर नहीं हुआ, वह क्रोधकी आगमें जलता हुआ फिर भी पहलेकी तरह तप करने लगा।

१ यह कथा पार्श्वपुराणमेंसे संक्षेपकरके लिखी गई है।

तपस्वीके विषयमे ऊपर कहा गया है कि वह श्रीपार्श्वकुमारका जन्मान्तरोंसे विरोधी था। इसपर दोनोंका "पूर्वमे वैर कैसे बँधा ?" भव्योंके हृदयमें ऐसा प्रश्न उठना स्वाभाविक है। अतएव मैं (आचार्य) वैरका कारण यथास्मरण कहता हूँ;—

इस भरतक्षेत्रके सुरम्य देश, पोदनापुर नगरमे राजा अरविन्द राज्य करते थे। उनकी महारानीका नाम लक्ष्मीवती देवी था। राज्यके मंत्री विश्वभूति ब्राह्मण थे। उनकी स्त्री अनुन्धरीके गर्भसे कमठ और मरुभूति नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए। इन दोनोंमे पहला कमठ कुरूप तथा सुन्दर नहीं था और दूसरा मरुभूति अतिशय प्रिय तथा सुन्दर था। अतएव पिताने मरुभूतिका विवाह एक वसुंधरी नामकी सुरूपवान् कन्याके साथ कर दिया। कमठका विवाह नहीं हुआ।

एक दिन विश्वभूति मंत्री अपने सिरमें सफेद बाल देखकर संसारसे विरक्त हो गये। उन्होंने मरुभूतिको राजाकी शरणमे सौंप दिया, और अपना मंत्रीपद उसे दिलाकर दीक्षा धारण कर ली। थोड़े दिनोंमे मरुभूति राजाका अत्यन्त प्यारा और कृपापात्र मंत्री हो गया।

एक वार राजा अरविन्द मंत्रीको साथ लेकर वज्रवीर्य मण्डलेश्वरपर चढ़ाई करनेको गये। राज्यको एक प्रकारसे सूना जानकर कमठ निरंकुश (स्वच्छंद) हो गया। सिंहासनपर बैठकर अपनेको राजा प्रगट करने लगा और राज्यके कठिन कामोंमें भी हाथ डालना शुरू कर दिया। इतना ही नहीं किन्तु एक दिन वह अपने भाईकी प्यारी स्त्री वसुंधरीको देखकर कामपीड़ित हो गया और बुरे काम करनेको तत्पर हो गया। जिस समय वह कामाग्निमें जलता हुआ उपवनके एक लतागृहमे बैठा था, उसके कलहंस नामके सखाने पूछा कि आपकी आज ऐसी अवस्था क्यों है ? कमठने अपनी हृदयव्यथाकी सब कथा उससे कही। कलहंस कमठके अभिप्रायको जानकर वसुंधरीके निकट आया और बोला—वसुंधरी; वनमे कमठके ऊपर एक बड़ा भारी संकट आया है। यदि तू चलकर उसकी रक्षा न करेगी तो उसका बचना कठिन है। बेचारी वसुंधरी दुष्ट सखाकी धूर्तताको कुछ न समझ सकी और घबड़ाई हुई

कमठके निकट पहुँची। वहाँ कमठने उसे अनेक तरहकी खुशामदकी बातों, कोमल वचनों, और प्रार्थनाओंसे वश कर लिया और फिर वह पापी वसुंधरीसे लतागृहमें रमण करने लगा।

इधर राजा अरविन्द शत्रुको जीतकर अपने नगरमे आये और कमठके सब कामोंको जो उसने उनके बाद किये थे सो जाने। मरुभूतिने भी सब कुछ जान लिया। राजाने मरुभूतिसे मंत्र किया कि कमठने अपनी गैरहाजिरीमे इस प्रकारके अन्याय किये, उसे क्या दंड देना चाहिए? मरुभूति मंत्री यद्यपि जानता था कि कमठ दंड देनेके योग्य है, परन्तु भ्रातृमोहके वशमे पड़कर बोला-राजन, क्या कमठ कभी ऐसे अन्याय कर सकता है? आप दुष्ट लोगोंकी कही हुई बातोंको न मानें, वे लोग सत्य नहीं कहते। यह सुनकर राजा शान्ततासे बोला-तुम खेद मत करो, मै कमठको अवश्य दंड दूँगा; क्योंकि उसपर सब दोष अच्छी तरह निश्चित हो चुके है। इस प्रकार मरुभूतिको समझाकर राजाने उसे घर भेज दिया और कमठको बुलाकर गधेपर चढ़ाके शहरसे निकाल दिया।

कमठ ऐसी दुर्दशासे निकलके जंगलमे जाकर तपस्वी हो गया और सिरपर एक शिला रखकरके तपस्या करने लगा। यहाँ उसके दंडका हाल सुनकर मरुभूतिको बड़ा दुःख हुआ। उसने कमठका पता लगाकर राजाके निकट जाके निवेदन किया-हे देव; कमठ वनमे तपस्या करता है, सो मै वहाँ जाता हूँ और देखकर फिर लौट आऊँगा। राजाने पूछा-वह किस प्रकारका तप करता है? तब मरुभूतिने कहा-वह भौतिकरूप तप करता है। राजाने कुछ विचारकर कहा-यदि ऐसा है तो उसके पास मत जाओ। परन्तु मोहके वशमे पड़के राजाने मना किया तो भी मरुभूति अकेला वनमे गया। और कमठके निकट जाकर बोला-हे तात, मेरे मना करनेपर भी राजाने जो तुझे दंड दिया, वह सब अब क्षमा कर, और पावोंपर पड़ गया। तब कमठने कुपित होकर कहा कि तूने ही यह सब किया है। यह कहकर मस्तककी शिलाको उसपर पटककर उसने प्राण ले लिये। मरुभूति शरीर छोड़कर कूर्च नामके सल्लकी वनमें वज्रघोष नामका बड़ा भारी हाथी हुआ। और इधर कमठकी यह करतूत देखकर साथी तपस्वियोने उसे वहाँसे निकाल दिया।

तब वह जंगली भीलोंमे मिलकर चोरी करने लगा। और एक दिन जहाँ चोरी की थी उस ग्रामके लोगोंद्वारा मारा गया। और उसी वनमे कुर्कुट सॉप हुआ।

यहाँ जब मरुभूति कई दिन तक नहीं आया, तब राजा अरविन्दने वनमें जाकर एक अवधिज्ञानी मुनिसे पूछा कि भगवन्; मरुभूति मंत्रीका क्या हुआ, वह अभी तक क्यो नही आया? मुनिराजने उसका सब हाल सुना दिया। उसे सुनकर राजाको खेद हुआ। नगरमे आकर उन्होंने कुछ दिनों राज्य किया और एक दिन लोप होते हुए बादलोंको देखकर संसार और शरीरको उसीके समान अस्थिर जानकर दीक्षा धारण कर ली।

अरविन्द मुनि कुछ समयमें सम्पूर्ण आगमोंके ज्ञानी हुए। एक बार भ्रमण करते हुए पूर्वोक्त कूर्चक वनमें आये और वेगावती नदीके किनारे एक शिलापर बैठे। वहाँपर एक सुगुप्ति नामका बड़ा भारी व्यापारी अपने डेरे डालकर पड़ा था। सो जिस समय वह मुनि महाराजके निकट धर्म श्रवण कर रहा था उस समय वह वज्रघोष हाथी उसके डेरेको उखाड़कर नष्ट करके मुनि महाराजकी ओर चला। परन्तु उनके दर्शनसे उसे जातिस्मरण होगया, इसलिए उसने सम्मुख आकर नमस्कार किया। नम्रताको देखकर और निकट भव्य जानके मुनिराजने उसे श्रावकके व्रत दिये।

वज्रघोष हाथी श्रावकके व्रत पालता हुआ शान्तिसे रहने लगा और इस अवस्थामें वह बहुत दुबला हो गया। एक दिन पानी पीनेको आये हुए हाथियोंसे विलोड़ित (गँदला-मैला) होकर जब वेगावतीका जल पीने योग्य हो गया तब वज्रघोष उसे पीनेके लिए जाकर कीचड़में फँस गया और निकलनेमें असमर्थ हो गया। तब सन्यास धारण करके अनुप्रेक्षाओंका चिन्तवन करने लगा। इतनेमें कमठका जीव दुष्ट कुक्कुट सॉपने आकर उसे डस लिया। हाथी मरकर यथार्थ चारित्रके प्रभावसे सहस्रार स्वर्गके स्वयंप्रभ विमानमे शशिप्रभ नामका महर्द्धिक देव हुआ। और कुकुट सॉप अन्तमें मरकर परंपरासे अपने कुकर्मोके प्रभावमे पाँचवें धूमप्रभ नरकमें पहुँचकर वहाँके घोर दुःखोंको सहने लगा।

शशिप्रभदेव अपनी सागरोपम आयु पूर्ण करके पुष्कलावती देशके त्रैलोकोत्तमपुरके राजा विद्युन्मति और रानी

विद्युन्मालाके सहस्ररश्मि नामका पुत्र हुआ। कौमार अवस्थामें ही वह समाधिगुप्ति मुनिके निकट दीक्षित हो गया। कुछ कालमें सम्पूर्ण आगमोंके ज्ञाता होकर सहस्ररश्मि मुनि एक दिन हिमवत् पर्वतपर ध्यानारूढ़ विराजमान थे। इतनेमें उन्हें एक अजगरने आकर निगल लिया। यह अजगर और कोई नहीं, उस कुर्कुट सॉपका ही जीव था। धूमप्रभा पृथिवीसे निकलकर उसने अजगरकी पर्याय पाई थी। सहस्ररश्मि मुनि शरीर छोड़कर अच्युत स्वर्गके पुष्कर विमानमें विद्युत्प्रभ नामके देव हुए और अजगर परंपरासे छट्टे नरककी तमःप्रभा पृथिवीमें अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिए गया।

विद्युत्प्रभ देव सागरोपम स्वर्गसुख भोगकर जम्बूद्वीप–अपरविदेह–पद्मदेशके अश्वपुर नामक नगरके राजा वज्रवीर्य और महारानी विजयाके वज्रनाभ नामका प्रतापवान् पुत्र हुआ। वह राज्यासनपर बैठ सकलचक्रवर्ती हुआ। और बहुत काल तक राज्य भोगकर क्षेमंकर मुनिके निकट दीक्षित हो गया। इधर कमठका जीव छट्ठे नरकसे निकलकर एक वनीमें कुरंग नामका भील हुआ। सो शिकारके लिए घूमते हुए उस दुष्टने अपने बाणसे निरपराध वज्रनाभ मुनिको वेध दिया। उसकी पीड़ासे शरीर छोड़कर वे मध्यम ग्रैवेयकके सुभद्र विमानमें अहमिन्द्र उत्पन्न हुए। और इधर भील सातवे नरकमें पहुँचा।

इसके पश्चात् अहमिन्द्र, ग्रैवेयकके भोगोंको चिरकालतक भोगकर अपनी स्थिति पूर्ण होनेपर अयोध्यापुरीके राजा वज्रबाहु और रानी प्रभंकराके आनन्द नामका पुत्र पैदा हुआ। वहाँ महामण्डलेश्वरकी विभूति पाकर कुछ कालमें सागरदत्त मुनिके निकट दीक्षित हो गया। सोलहकारण भावनाओंका चिन्तवन करके और उसके द्वारा तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध करके वे जिस समय क्षीर वनमें प्रतिमायोग धारण किये हुए विराजमान थे उस समय एक सिंहने आकर उन्हें अत्यन्त कष्ट देकर प्राण ले लिये। यह सिंह उसी कमठ दुष्टका जीव था, जो भीलकी पर्याय छोड़कर नरक गया था। वहाँसे निकलकर वह इसी क्षीरवनमें सिंह हुआ था, सो मुनिको देखकर अत्यंत वैर चिन्तवन करके

उसने फिर यह बुरा काम किया। मुनिराज तो इस उपसर्गसे शरीर छोड़कर लान्तव स्वर्गमें इन्द्र हुए और वह सिंह धूमप्रभा नरकमें गया।

लान्तवेन्द्र अपनी आयु पूर्ण करके गर्भकल्याणकोत्सवपूर्वक वैशाखकृष्णा द्वितीयाको महारानी वामादेवी अर्थात् ब्रह्मदत्ता-के गर्भमें आये। और पोषकृष्णा एकादशीको उनका जन्मकल्याणक हुआ। तेईसवें तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ भगवान् हुए। प्रियंगुके फूलके समान श्याम वर्ण, नव हाथके प्रमाण काय और सौ वर्षकी आयु पाई। तीस वर्ष कुमारकालके व्यतीत होनेपर पिता राजा विश्वसेनने उनके विवाहके लिए पाँचसौ कन्याओंको उपस्थित किया परन्तु पार्श्वकुमारने उनमेंसे किसीसे भी विवाह नहीं किया। उन्हें देखकर संसारसे उलटा वैराग्य हो गया। अतएव विमला नामकी पालकीपर बैठ करके नगरसे निकले और एक हजार राजाओंके साथ दीक्षा ग्रहण की, पहले पहल आठ दिनका उपवास लिया। उसके पूर्ण होनेपर चर्याके लिए नगरमें गये सो किसी राजाने भगवानका आव्हा-नन करके क्षीरान्न (खीर) से पारणा कराया। चार महीना कठिन तपस्या करके एक दिन पार्श्व भगवान् उसी वनमें देवदारु वृक्षके नीचे एक शिलापर अष्टोपवास धारण किये हुए ध्यानारूढ़ हो रहे थे। इतनेमें एक संवर नामक ज्योतिष्क देवने आकर उन्हें देखा और पूर्व वैरका स्मरण करके घोर उपसर्ग करना शुरू किया। यह देव कमठका जीव था। उसने सिंहकी पर्यायसे नरकमें जाकर और वहाँसे निकलकर बहुत समय संसारमें भ्रमण किया, पश्चात् मही-पालपुरके राजा नृपालके महीपाल नामका पुत्र हुआ। यह महीपाल पार्श्वनाथ भगवानकी माता ब्रह्मदत्ताका सगा भाई था, जो कि राज्यसिंहासनपर बैठकर और कुछ कालतक राज्य करके अपनी प्यारी स्त्रीके वियोगसे दुःखित होकर तापसी हो गया था। यह वही तापसी था, जिससे पार्श्व भगवानका विवाद हुआ था, और जिसके पंचाग्निकी लकड़ियोंमेंसे अधजले साँप निकले थे। तापसी पर्यायके अन्तमें मरकर कुतपके प्रभावसे वह संवर नामका देव हुआ, जिसने भगवानको देखते ही पूर्व वैरके कारण उपसर्ग करना प्रारंभ किया।

भगवानके अत्यन्त घोर उपसर्गसे धरणेन्द्रका आसन कम्पायमान हुआ। अतएव धरणेन्द्र और पद्मावती दोनों

उनकी रक्षा करनेको उपस्थित हुए। धरणेन्द्रने भगवानके ऊपर अपने विस्तृत फणका मंडप खड़ा कर दिया और पद्मावतीने फणमंडपके ऊपर छत्र लगाया। तब संवरदेवके किये हुए उपसर्गका कुछ फल नहीं हुआ अर्थात् वह कुछ नहीं कर सका। संवरके उपसर्गको जीतकर भगवानने चैत्रकृष्णा चतुर्थीको केवलज्ञान प्राप्त किया। समवसरणकी अति उत्तम रचना हुई। उसकी विभूति देखकर पाँचसौ तापसियोंने कुतपको छोड़कर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। और संवरदेव जिसने उपसर्ग किया था, वह भी सम्यक्त्वयुक्त हो गया। इनके अतिरिक्त और भी हजारों क्षत्रियोंने श्रावकोंके व्रत ग्रहण किये।

श्रीपार्श्व आदिक १० गणधरों, ३५० पूर्वधरों, १०००० शिक्षकों, १४०० अवधिज्ञानियों, १००० केवलज्ञानियों, १००० वैक्रियक ऋद्धिवालों, ७५० मनःपर्ययज्ञानियों, ६०० वादियों, सुलोचना आदि ३६००० आर्यिकाओं, १००००० श्रावकों, ३००००० श्राविकाओं और असंख्यात करोड़ देव देवियों तथा तिर्यंचों सहित अर्थात् इतनी समवसरणकी विभूति सहित चार महीना कम सत्तर वर्ष धर्मोपदेश करते हुए विहार करके सम्मेदशिखरपर्वतपर आरूढ़ हुए। वहाँ केवल एक मास तक योग निरोधकरके शुक्लध्यानका अवलम्बन किया और श्रावणसुदी सप्तमीको परम अतीन्द्रियसुखयुक्त मोक्षको प्राप्त हुए। सो हे भव्य जीवो; देखो, नमस्कार मंत्रके प्रभावसे क्रूर जीव सर्प और सर्पिणी भी धरणेन्द्र और पद्मावती हुए, जिन्होंने कि भगवानके घोर उपसर्गका निवारण कर अनन्त पुण्यका बंध किया; तो फिर अन्य मनुष्यादि सम्यग्दृष्टि जीव नमस्कारमंत्रकी आराधना करके क्या क्या फल नहीं पा सकते? सब कुछ पा सकते हैं। ऐसा जानके पंचनमस्कार मंत्रका निरन्तर जाप करो।

जब कोई रोग हुआ, तब लोगोंने कहा कि तूने मुनिराजकी निन्दा की थी, यह उसीका फल है। वेदवतीको इस बातपर विश्वास हो गया, अतएव मुनिनिन्दाके पापसे छूटनेके लिए उसने श्राविकाके व्रत धारण कर लिये। इसके पीछे वेदवतीके यौवनवती होनेपर राजा शम्भुने उसके साथ विवाह करनेकी इच्छा की,-और उसके पितासे याचना की। परन्तु राजा मिथ्यादृष्टि था, अतएव श्रीभूतिने अपनी श्राविका कन्या उसे देना अस्वीकार किया।

तब राजाने कुपित होकर मंत्रीको मार डाला। वह मरकर स्वर्गलोक गया। और वेदवती कन्या "मेरे निरपराध पिताको राजाने मारा है, अतएव जन्मान्तरमें मैं उसके विनाश करनेका निमित्त होऊँगी" ऐसा निदान करके तपस्यापूर्वक शरीर त्याग किया और स्वर्गमें देवाङ्गना हुई। इसके बाद देवायु पूर्ण करके भरतक्षेत्रके दारुण ग्राममें सोमशर्म्मा ब्राह्मणकी ज्वाला नामकी स्त्रीके सरसा नामकी कन्या हुई। वह यौवनवती होनेपर अतिविभूति नामके एक ब्राह्मण पुत्रको ब्याही गई। परन्तु पतिके साथ थोड़े ही दिन रहकर किसी जारमें आसक्त होकर उसे लेकर देशान्तरमें निकल गई। मार्गमें एक मुनिके दर्शन हुए, सो पापिनीने उनकी निन्दा की। इस महापापके फलसे मरकर उसने तिर्यंच गति पाई। बहुत काल भ्रमण करके वह एक वार चन्द्रपुर नगरके राजा चन्द्रध्वज और रानी मनस्विनीके चित्रोत्सवा नामकी पुत्री हुई। जवान होनेपर मंत्रीके पुत्र कपिलपर आसक्त होकर उसके साथ परदेशको चली गई। परन्तु आखिर मंत्रीपुत्रसे भी नहीं बनी। उसे छोड़कर विदग्धपुरके राजा कुण्डलमंडितकी प्यारी स्त्री बनी। वहाँ पूर्व जन्मके संस्कारके कारण पाकर श्रावकके व्रत ग्रहण किये, और बहुत काल उनका शुद्धचित्तमे पालन किया। आयु पूर्ण करके इस बड़े भारी पुण्य फलसे वह दूसरे जन्ममें सीता सती हुई।

सीताके स्वयंवरादिकका चरित्र पद्मचरित अर्थात् पद्मपुराणसे (रामायणसे) जानना चाहिए। यहाँपर केवल इतना ही कहना है कि एक मूर्ख हथिनीने भी नमस्कार मंत्रके प्रभावसे श्रीमती सीता सती सरीखी उत्तम पर्याय पाई। यदि अन्य सम्यग्दृष्टि मनुष्य महामंत्रका जप करें, तो क्या क्या वैभव न पावें ? इसके प्रभावसे सब कुछ पा सकते हैं।

---

(६) कीचड़में फँसी हुई हथिनीकी कथा।

भरतक्षेत्रके यक्षपुर नामके नगरमें श्रीकान्त नामका राजा राज्य करता था। उसकी रानीका नाम मनोहरी था। इसी नगरमे सागरदत्त वणिक् और रत्नप्रभा नामकी उसकी स्त्री थी। रत्नप्रभाके गुणवती नामकी एक कन्या थी। सागरदत्त उसका विवाह उसी नगरके रहनेवाले नयदत्तके पुत्र धनदत्तके साथ करना चाहता था। परन्तु राजाने आज्ञा दी कि तुम्हे उसका विवाह मेरे साथ करना पड़ेगा। अतएव विवाह नही हो सका।

नयदत्तकी स्त्रीका नाम नन्दना था। उसके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। जिसमेसे एक उक्त धनदत्त था और दूसरेका नाम वसुदत्त था। वसुदत्तको राजाने जंगलमे क्रीड़ा करते समय मार डाला। तव वसुदत्तके सेवकोने गुस्सेमें आकर राजाको भी मार डाला। ये दोनो मरकर हरिण हुए। उधर धनदत्त विदेशको चला गया। अतएव वह गुणवती पुत्री आर्तध्यानसे मरकर जहाँ वे हरिण उत्पन्न हुए थे, वही हरिणी हुई। आखिर उसीपर मोहित होकर वे दोनों हरिण आपसमे लड़कर मर गये, और जंगली सुअर हुए। हरिणी मरकर सूकरी हुई। सो वहाँ भी वे दोनों सूकरीके पीछे लड़कर मरे और हाथी हुए। सूकरी मरकर हथिनी हुई। और इस पर्यायमे भी पूर्व प्रकारसे मरकर भैसा, बन्दर, कुरवक, मेढ़ा, आदि अनेक पर्यायोमे उन दोनोने भ्रमण किया। और वह गुणवती भी क्रमसे उसी जातिकी स्त्री होती गई, तथा उसीके निमित्तसे वे दोनो लड़कर मरते रहे।

एक वार गुणवती गंगा नदीके किनारे हथिनी हुई। सो एक दिन कीचड़मे फँसकर कंठगतप्राणा हो रही थी कि इतनेमें एक सुरंग नामका विद्याधर आया और उसने उसे पंचनमस्कार मंत्र दिया। उसके फलसे हथिनी शरीर छोड़नेपर मृणालपुरके राजा शम्बुके मंत्री श्रीभूतिकी सरस्वती स्त्रीके वेदवती नामकी कन्या हुई। एक दिन मृणालपुरमे चर्याके लिए एक मुनिराज पधारे थे, सो वेदवतीने देखकर मूर्खतावश उनकी निन्दा की। इसके वाद उसके गलेमे

(७) दृढ़सूर्य चोरकी कथा ।



उज्जयनी नगरीमे राजा धनपाल राज्य करता था । उसकी रानीका नाम धनपती था । वसन्तोत्सवमे वसन्तसेना नामकी एक वेश्याने रानीके गलेमें एक अत्यन्त दिव्य सुन्दर हार देखकर विचारा कि " ऐसे हारके पाये विना मेरा जीवन व्यर्थ है "। और इसी चिन्तामे वह अपने घर आकर शय्यापर पड़ रही । एक दृढ़सूर्य नामका चोर उसका यार था, उसने रात्रिको आकर इस चिन्तामे पड़ी हुई देखकर पूछा-प्रिये; क्या मुझपर रुष्ट हो गई हो, जो इस प्रकार निरुत्साह देख पड़ती हो । वेश्याने कहा-नही प्यारे, मै तुमपर रुष्ट नहीं हूं । एक दूसरा ही कारण है । यदि तुम मुझे रानीका दिव्य हार लाकर न दोगे तो मै अब जीऊँगी नही । चोरने कहा-कुछ चिन्ता मत करो, मै अभी लाता हूं । इस प्रकार समझा बुझाकर वह राजमहलमें गया, और रानीके गलेमेंसे हार उतारकर बाहर निकला । उस समय चुराये हुए दिव्य हारकी प्रभा देखकर यमपाश नामके कोतवालने चोरको पकड़ लिया और राजाके सम्मुख उपस्थित किया । राजाज्ञासे वह प्रातःकाल शूलीपर चढ़ाया गया। उस समय धनदत्त नामके सेठ चैत्यालयकी वन्दनाके लिए वहाँसे निकले। उन्हें देखकर चोरने गिड़गिड़ाकर कहा--तुम बड़े दयालु जान पड़ते हो, मै बहुत प्यासा हूँ, कृपाकरके मुझे पानी लाकर पिलाओ । चोरके उपकारकी इच्छा करके सेठने कहा—देख भाई; मुझे बारह वर्षमें मेरे गुरुने एक महाविद्या दी है । यदि मै तेरे लिए पानी लानेको जाऊँगा, तो उसे भूल जाऊँगा, सो यदि लौटकर आनेपर तू उसे मुझे सुनाकर याद दिलानेकी प्रतिज्ञा करे, तो मै अभी पानी लाये देता हूँ । चोरने कहा-अच्छा, मुझे वह विद्या बतला दो, मै याद करता रहूँगा, और आपके आनेपर आपको सुना दूँगा । तब सेठने उसे पंचनमस्कार मंत्ररूपी महाविद्या बतला दी, और वहाँसे चल दिये । इधर दृढ़सूर्य नमस्कार मंत्रका उच्चारण करते करते गतप्राण हो गया और सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ ।

चोरके मर जानेपर चौकीदारोंने राजासे जाकर कहा कि हे देव; धनदत्त सेठने चोरके निकट जाकर कुछ धीरे धीरे सलाह की थी। इसपर राजाने यह अनुमान करके कि सेठके साथ इस चोरकी जरूर साजिश होगी और सेठके घरमें चोरका गुप्त धन भी होगा। इसलिए सेठको पकड़नेके लिए उसने अपने नौकर भेजे। लेकिन सेठके दरवाजेपर बैठे हुए एक पहरेदारने उन्हें घरके भीतर जाने नहीं दिया। परन्तु वे जबरदस्ती भीतर जाने लगे, तब पहरेदारने लकड़ीसे उनकी खूब खबर ली, यहाँ तक कि वे बेहोश हो गये। राजा इस बातकी खबर पाकर क्रोधित हुआ और बहुतसे नौकर और भेजे, परन्तु उन्हें भी उस पहरेदारने मार गिराया। आखिर राजा खुद बड़ी भारी सेनाके साथ वहाँ गया। परन्तु उस पहरेदारका बाल भी बाँका न कर सका। उसने क्षणभरमें पहलेकी तरह, उस बड़ी भारी सेनाको भी जमीनपर गिरा दिया। यह देख राजा डरकर भागने लगा, परन्तु उसने भागने नहीं दिया, और कहा कि हे राजा, यदि तू शरण ले, तो तुझे बचाता हूँ, नहीं तो तेरी रक्षा नहीं है। तब राजा घरमें गया, और सेठके पास जाकर बोला–सेठजी, मुझे बचाओ! बचाओ! राजाको इस हालतमें लाचार देख सेठको अचंभा हुआ। उसने पहरेदारसे पूछा–तू कौन है? और महाराजकी यह दशा तूने किस कारण की? पहरेदारने नमस्कार करके कहा–सेठजी, मैं दृढ़सूर्य नामका चोर हूँ। आपकी कृपासे मैं सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ हूँ। इस समय आपकी रक्षा करनेके लिए मैंने ये सब कौतुक किया है। राजाकी सेनाके जो ये सब लोग पड़े हुए हैं, वे मरे नहीं हैं, किन्तु मेरी मायासे बेहोश हो रहे हैं।

पाठक जान ही गये होंगे कि यह पहरेदार वही चोर है, जिसे धनदत्त सेठने शूलीपर चढ़े हुए पंच नमस्कार मंत्ररूपी महाविद्या दी थी। उसीके प्रभावसे यह देव हुआ, और अपनी पहली हालत विचार करके अपने उपकार करनेवाले सेठको विपत्तिमें फँसा हुआ जानकर मायासे पहरेदार बना और सेठकी रक्षा की।

देखिये! मरणकालमें एक चोर भी विना विचारे अथवा विना महत्त्व जाने ही नमस्कार मंत्रके उच्चारणसे देवपदको प्राप्त हो गया, यदि अन्य सदाचारी पुरुष शुद्ध मनसे इस मंत्रका पाठ करे तो क्यों न स्वर्गादिक सुखोंको प्राप्त होवे? अवश्य ही होवे।

(८) सुदर्शन सेठकी कथा।

भरतक्षेत्र-अंगदेश-चम्पापुरी नगरीमें धात्रीवाहन नामका एक राजा था। उसकी अभयमती नामकी परम रूपवती रानी थी। इस नगरीके मुख्य सेठका नाम वृषभदास और सेठानीका जिनमती था। सेठके यहाँ सुभग नामका ग्वाला नौकर था। एक दिन वह जंगलसे गौवें लेकर घरको लौट रहा था कि रास्तेमें सूरजके डूबनेके वक्त एक मुनि ध्यानारूढ़ विराजमान दिखलाई दिये। उस समय शीत बहुत पड़ रहा था, सो मुनिको देखकर उसने सोचा कि आज इस भीषण शीतमें इनकी रात कैसे बीतेगी? इन्हें बड़ा कष्ट होगा। किसी उपायसे इनका शीत निवारण करना चाहिए। ऐसा विचारकर वह घर आया और थोड़ीसी लकड़ियाँ और आग लेकर मुनिके पास गया। आग जलाकर, रातभर वहीं रहा, और मुनिकी शीत वेदना दूर करता रहा। सवेरा होनेपर मुनिने मौननिसर्जन किया और उसे अत्यन्त निकट भव्य जानकर उपदेश दिया कि हे भव्य, तू उठते बैठते चलते समय पहले "णमो अरहंताणं" आदि मंत्रका उच्चारण किया कर। फिर स्वयं मुनि "णमो अरहंताणं" ऐसा उच्चारण करके आकाशमार्गसे चल दिये। मुनिराजको आकाशमार्गमें जाते देखकर उक्त मंत्रपर ग्वालाकी बड़ी भारी श्रद्धा हो गई। इस कारण वह मुनिराजकी आज्ञानुसार निरन्तर भोजनादि सम्पूर्ण क्रियाओंके पहले णमोकार मंत्रका उच्चारण करने लगा।

एक दिन वृषभदास सेठने पूछा कि तू इस णमोकार मंत्रका उच्चारण निरन्तर क्यों किया करता है? ग्वालाने पूर्वोक्त मुनिकी सब कथा कह सुनाई। उसे सुनकर सेठने अत्यन्त प्रसन्नता प्रगट की और अच्छे अच्छे भोजन वस्त्रादिकसे उसे संतुष्ट किया।

एक दिन सुभग ग्वाला गाय भैंस चराने गया था कि वहाँ जंगलमें सो गया। इतनेमें किसीने आकर कहा—तेरी गाय भैंसे तो गंगाके पार उतर गईं, तू यहाँ क्या करता है? यह सुनकर वह तत्काल उठा और पार जानेके लिए

गंगामें कूद पड़ा। कूदते ही एक तीक्ष्ण काठसे उसका पेट फट गया, और वह मरनेको हो गया। तब उक्त महा मंत्रका उच्चारण करके उसने यह निदान किया कि इस मंत्रके माहात्म्यसे मै अपने सेठके पुत्र उत्पन्न होऊँ। प्राण छोड़कर निदानके अनुसार वह जिनमती सेठानीके गर्भमे आया। उस दिन सेठानीने पिछली रातमे सुदर्शन मेरु, कल्पवृक्ष, देवोका विमान, समुद्र और अग्नि ऐसे पॉच स्वप्न देखे। प्रातःकाल होनेपर जिनमतीने उक्त स्वप्न सेठजीको सुनाये और उनका फल पूछा। तब सेठने कहा—चलो, चैत्यालयको चले, वहॉ मुनिराजसे इनका फल पूछेगे। फिर दोनो जिन मंदिरको गये, और भगवान्‌की पूजा करके संतुष्टचित्त हो सुगुप्ति मुनिके पास आये और वंदना करके वैठ गये। सेठजीके पूछनेपर मुनिराजने कहा कि जिनमतीके गर्भसे सुदर्शनमेरुके दर्शनसे धीर, कल्पवृक्षके देखनेसे लक्ष्मीवान् तथा त्यागी, देव विमानके देखनेसे सुखी, समुद्रके देखनेसे गुणसमुद्र, और अग्निके देखनेसे काम रूप ईधनका जलानेवाला, इस प्रकार परम सौभाग्यशाली पुत्र उत्पन्न होगा। यह सुनकर दम्पति अत्यन्त प्रसन्न हुए और घर आकर सुखसे समय विताने लगे। नौ महीने पूरे होनेपर पौष शुक्ला चतुर्थीको पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम सुदर्शन रक्खा। सुदर्शन अपने पड़ौसी पुरोहितके लडके कपिलके साथ बालक्रीड़ा करता हुआ वढ़ने लगा।

उसी चम्पापुरीमे सागरदत्त नामका एक और सेठ रहता था। उसकी सागरसेना नामकी स्त्रीने एक दिन वृषभदास सेठसे कहा कि यदि मेरे पुत्री उत्पन्न होगी, तो मै उसका विवाह तुम्हारे सुदर्शनके साथ करूँगी। कुछ दिनोमे सागर-सेनाके गर्भसे एक मनोरमा नामकी अत्यन्त रूपवती कन्या उत्पन्न हुई। और वह भी सुदर्शनके समान दिनदूनी रात चौगुनी वढ़ने लगी।

एक दिन न्याय, व्याकरण, काव्यादि समस्त शास्त्रोंमे प्रवीण सुदर्शन कुमार अपने जगन्मनोहारी स्वरूपसे लोगोको मोहित करता हुआ अपने मित्रो सहित राजमार्गपरसे कहीं जा रहा था कि इतनेमें सोलह शृंगार किये हुए और अनेक सखी जनोसे घिरी हुई मनोरमापर उसकी दृष्टि पड़ी। मनोरमा जिनमंदिरके दर्शनोंको जा रही थी। उस अनुपम रूपके देखनेहीसे सुदर्शन कुमार कामवाणसे विद्ध हो गया। अत्यन्त व्याकुल होकर घर आया और किसीसे

विना कुछ कहे सुने शय्यापर जा पड़ा। उसकी यह दशा देखकर उसके मातापिता व्याकुल चित्त हो गये और इसका कारण पूछा, परन्तु उससे संतोषजनक उत्तर नहीं मिला। पीछे सुदर्शनके मित्र कपिलभट्टसे पूछनेपर मालूम हुआ कि कुमार मनोरमापर आसक्त हो गया है, इसी कारण वह इतना बेचैन है। तब वृषभदासने मनोरमाकी याचनाके लिए सागरदत्तके यहाँ जानेका विचार किया।

उधर मनोरमाका भी उस दिन यही हाल हो गया। वह भी सुदर्शन कुमारके रूप लावण्यको देखकर मुग्ध हो गई। सुदर्शनकी विरहरूपी अग्निसे जब उसका सारा शरीर दग्ध होने लगा, तब वह भी घर जाकर चित्तको सम्हाल न सकनेसे शय्यापर जा पड़ी। सखियोंके द्वारा उसके माता पिता भी पुत्रीकी अवस्थासे परिचित होकर चिन्तित हुए। और बहुत सोच विचारके पश्चात् उसका पिता सागरदत्त वृषभदास सेठके घर अपनी इच्छा प्रगट करनेको आया। सुदर्शनका पिता सागरदत्तके घर जानेको तैयार था ही कि सागरदत्तको स्वयं अपने घर आया हुआ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। और पूछा—हे महाभाग, आपका आगमन कैसे हुआ? सागरदत्तने विनयपूर्वक कहा—मेरी पुत्रीके साथ आप अपने कुमारका विवाह कर दीजिए, मैं इसी याचनाके लिए आया हूँ। यह सुनकर वृषभदासने हर्षित चित्त होकर कहा—जो मैं चाहता था, वही प्यारा विचार आपने प्रगट किया, आपको धन्यवाद है, और मुझे यह सम्बन्ध स्वीकार है। पश्चात् दोनों सम्बन्धियोंने उसी समय श्रीधर नामके ज्योतिषीको बुलाकर उसके द्वारा वैशाख शुक्ला पंचमीका शुभ मुहूर्त विवाहके लिए निश्चित करके नियत समयपर मनोरमा और सुदर्शनका मनोवांछित विवाह कर दिया। परस्पर अभूत पूर्व प्रेमसुखका अनुभव करते हुए वे दोनों काल यापन करने लगे और कुछ दिनोंमें उस प्रेमके फल स्वरूप सुकान्त नामके पुत्रको पाकर वे धन्यभाग हुए।

एक दिन नाना देशोंमें विहार करते हुए समाधिगुप्त नामके परम यति चम्पापुरी नगरीके वनमें पधारे। वनमालीके द्वारा उनका आगमन सुनकर राजा मंत्री आदि सम्पूर्ण श्रद्धालु लोग वन्दना करनेको गये। वन्दना और धर्म श्रवणके पश्चात् वृषभदास सेठने सुदर्शन पुत्रको राजाकी शरणमें सोंपकर दीक्षा ले ली, और जिनमती सेठानी भी

आर्यिका हो गई। पश्चात कालान्तरमें दोनो समाधिपूर्वक शरीर छोड़कर स्वर्ग लोकको गये। यहाँ सुदर्शनकुमार घरका मालिक होकर अपने पुत्र सुकान्तको नाना प्रकारकी विद्या पढ़ाता हुआ सबका प्यारा होकर सुखसे रहने लगा। एक समय उसके रूपके अतिशयको सुनकर कपिलभट्टकी स्त्री कपिला अत्यन्त आसक्त हुई और उससे मिलाप करनेके लिए व्याकुल होने लगी। एक दिन सुदर्शनको अपने घरके पाससे जाते हुए देखकर पहचाना और अपनी सखीसे कहा इसको किसी उपायसे छलकर मेरे पास ले आ। सखी जल्दीसे उसके पास गई और बोली—हे सुभग, आपके मित्र बड़े भारी विपत्तिमें पड़े हुए हैं, और आप उनकी खबर भी नहीं लेते, यह क्या बात है? सुदर्शन सेठ आश्चर्यचकित होकर, "हैं कपिलभट्ट बीमार है? मुझे तो किसीने खबर भी नहीं दी, अन्यथा मैं आनेसे नहीं चूकता।" ऐसा कहकर उसीके साथ भट्टके घर आये और पूछा कि मेरे मित्र कहाँ है बतलाओ? सखीने कहा—वे अटारीपर पड़े हैं, आप अकेले वहाँ जाइए। भोले भाले सुदर्शन सेठ अपने मित्रादिकोंको नीचे बैठाकर आप अकेले ऊपर गये। और वहाँ एक पलँगपर चादर ओढ़े हुए किसीको पड़े देखकर बिना जाने उसपर बैठ गये। चादर खींचकर बोले—मित्र, तुझे क्या पीड़ा है? परन्तु वहाँ तो विचित्रतासे कपटजाल ही बिछाया गया था। वह कपिला ही पलँगपर पड़ी हुई थी। चादर खींचते ही उसने इनका वस्त्र पकड़ लिया और उसके हाथ अपने कुच युगलोंपर रखकर नम्रतापूर्वक कहा—प्यारे मैं तुम्हारे संयोगके बिना अधमुई हो रही हूँ, तुम दयालु हो, कृपा करके प्रणय दान देकर मेरी रक्षा करो, नहीं तो मेरा जीना कठिन है। उस समय सुदर्शन सेठ अपने धर्मकी रक्षाका और कोई उपाय न देखकर बोले—मैं तो नपुंसक हूँ, केवल बाहरसे देखनेमें रमणीक दीखता हूँ, परन्तु मुझमें सार बिलकुल नहीं है। यह सुनकर कपिलाने विरक्त होकर लाचारीसे सेठका वस्त्र छोड़ दिया। और इस प्रकार उस दिन बड़ी कठिनतासे अपने ब्रह्मचर्यकी रक्षा करके सेठजी अपने घर आ गये और सुखसे रहने लगे।

एक बार वसन्तके उत्सवमें राजादिक समस्त प्रतिष्ठित पुरुष बाहर बागोंमें क्रीड़ा करने गये। और महारानी अभयमती भी अपनी कपिला सखी और समस्त अन्तःपुरकी स्त्रियों सहित पुष्पक रथपर चढ़कर बागको चली। मार्गमें

उन्होंने एक रथपर बैठी हुई और गोदमें सुकान्त पुत्रको लिये हुए मनोरमाको देखा। पूछा-यह किसकी भाग्यवान् स्त्री है, जिसकी गोदमें बालक बैठा हुआ है? किसीने कहा कि यह सुदर्शन सेठकी स्त्री और सुकान्त कुमारकी माता मनोरमा है। यह सुनकर अभयमतीने कहा-इसको धन्य है, जो ऐसे सुन्दर पुत्रकी माता हुई। परन्तु कपिलाको इससे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा-महारानीजी, मुझे तो किसीने कहा था कि सुदर्शन नपुंसक है! तो फिर उसके यह पुत्र कहाँसे हो गया? अभयमतीने कहा-सुदर्शन सरीखे रूप सौभाग्यशाली पुण्यवान् पुरुषको कहीं ऐसी लज्जाजनक पीड़ा हो सकती है? कभी नहीं। तुझसे किसी दुष्टने ऐसा कह दिया होगा। इसपर कपिलाने नपुंसक कहनेकी सारी गुप्त कथा रानीको कह सुनाई। रानीने कहा-तू मूर्खा है, इसलिए उसने उस समय तेरेसे ठगाई की होगी, यथार्थमें वह ऐसा नहीं है। इसपर कपिला बोली-अच्छा मैं ब्राह्मणी मूर्खा ही सही, परन्तु अब आप तो बड़ी पण्डिता हैं, आपका जीवन भी मैं जब सफल समझूँ जब आप उससे संभोग कर लेवें, अन्यथा व्यर्थ ही है। यह सुनकर रानीने कहा-"इसके साथ सुखका अनुभव करूँगी, तब ही जीऊँगी. अन्यथा प्राण छोड़ दूँगी" ऐसी प्रतिज्ञा करके उद्यानको गमन किया। वहाँ जलक्रीड़ा करनेके बाद वह महलोंमें आकर व्याकुलचित्त हो शय्यापर पड़ गई। यह देख उसकी पण्डिता धायने पूछा-बेटी; तू आज इतनी व्याकुल और चिन्तामें क्यों है? अभयमतीने हृदयका सच्चा हाल कह सुनाया। तब पंडिताने कहा-यह तूने बहुत बुरा विचार किया, क्योंकि सुदर्शन सेठ अखंड एकपत्नीव्रतका धारण करनेवाला है। वह अपनी स्त्रीके सिवाय अन्य स्त्रियोंकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। परस्त्रियोंसे संभोग तो दूर रहे, वह उनकी वार्ता भी नहीं करता। इसके सिवाय राजमहलके सातों दरवाजोंपर पहरेदार भी निरन्तर बैठे रहते हैं, इसलिए किसी प्रकारसे उनको उल्लंघन करके उसका यहाँ लाना भी दुर्घट है। और ऐसा करना अनुचित भी है। सो तू इस व्यर्थ विचारको छोड़ दे। यह सुनकर कामवती अभयमतीने एक लम्बी आह खीचकर कहा-यदि उसका संगम न होगा तो क्या मेरा मरण भी न हो सकेगा? अर्थात् यदि उससे मिलाप न होगा, तो अब मैं जीती नहीं रहूँगी। रानीका इस

प्रकार बड़ा भारी हठ देख पंडिताने पीछेसे कुछ सोच विचारकर दिलासा दी कि मै उपाय करती हूँ, ऐसा कहकर वह एक कुम्हारके घर गई। और उससे पुरुषके आकारके सात मिट्टीके पुतले बनवाये। इसके बाद प्रतिपदाकी रात्रिको उनमेसे एक पुतला कंधेपर रखकर रानीके महलको चली, परन्तु द्वारपर पहुँचते ही द्वारपालने उसे रोका। तब पूछा—क्या मुझे भी महारानीके महलमें जानेकी मनाई है? द्वारपालने कहा—हाँ! इतनी रात्रिको सभीके जानेकी मनाई है। इस समय कोई प्रवेश नहीं कर सकता। पंडिता यह सुनकर भी नहीं मानी और जवर्दस्ती भीतर जाने लगी। तब द्वारपालने एक धक्का देकर उसे बाहर करनी चाही, परन्तु धक्केके लगते ही वह पुतले सहित गिर पड़ी, और हाय! हाय! करके बोली—आज महारानीका उपवास है, वे इस मिट्टीके बने कामदेवकी पूजा करके रात्रिजागरण करेंगी, और उसे तूने पटककर तुड़वा डाला। अब देखना, प्रातःकाल तेरी कैसी दुर्दशा कराती हूँ, तेरा सकुटुम्ब नाश कराऊँगी। ये बातें सुनकर वेचारा द्वारपाल भयभीत होकर उसके पाँवोंपर पड़ गया और गिड़गिड़ाकर बोला—आज तो क्षमा कर, आगे कभी तुझसे छेड़छाड़ नहीं करूँगा। यह सुन पंडिता लौटकर अपने घर गई, और दूसरे दिन दूसरा पुतला लेकर रात्रिको दूसरे दरवाजेसे आई, और वहाँ भी इसी प्रकार फैल करके वहाँके द्वारपालको वश कर लिया। इस प्रकार सातों द्वारपालोंको अपना चेला बनाकर पंडिता आठवें दिन अपना मतलब सिद्ध करनेके लिए चली।

उस दिन सुदर्शन सेठके अष्टमीका उपवास था। अतः वे सूर्यास्तके समय स्मशानभूमिमें जाकर प्रतिमायोग धारण किये हुए विराजमान थे। पंडिताने रात्रिको वहाँ जाकर उनसे कहा—सेठजी; आप धन्य हो, जो आपपर महारानी अभयमती आसक्त हुई है। आप मेरे साथ इसी समय चलें, और राजमहलमें उसके साथ दिव्य भोगोंका अनुभवन करें। संसारमें भोगानुभवन ही सार है। "यह यौवनकी बहार सदा नहीं रहती, यहाँ स्मशानमें बैठकर शरीर शोपण करने (सुखाने)से क्या लाभ होगा?" ऐसे नाना प्रकारके वचनोंसे उसने सेठजीका चित्त चलायमान करना चाहा, परन्तु जब वे धीर वीर मेरुके समान सर्वथा अचल रहे तब चांडालिनी पंडिताने उन्हें उठाकर कंधेपर रख लिया और

राजमहलके द्वारोंका उल्लंघन करके अभयमतीकी सेजपर लाकर रख दिये । द्वारपालोंने यह समझ कि आज भी यह किसी पुतलेको लिये जाती है, चूँ भी नही की ।

अभयमतीने अपनी शय्यापर अपने अभीष्ट (जिसकी इच्छा थी उस) पुरुषको पाकर उसके साथ कामविकारोंकी स्त्रीसुलभ नाना चेष्टाये की, परन्तु परम इन्द्रियजित सुदर्शन, सुदर्शनमेरुके समान तनिक भी विचलित नहीं हुए । तब अभयमतीने खिन्न और विरक्त होकर पंडितासे कहा–इसको वहीं समशानमें ही ले जाकर रख आओ । पंडिताने झरोखोमेसे बाहर देखकर कहा कि सवेरा हो गया है, अब इसे वहाँ कैसे ले जाऊँ ? क्या करूँ ? बड़ी कठिनता उपस्थित है ! अभयमतीने देखा कि अब कोई उपाय नहीं सूझता है, तब सुदर्शनको वहीं शय्याके निकट कायोत्सर्ग खड़ा करके उसने नोचकर अपने शरीरमे बहुतसे नखोंके चिन्ह कर लिये और ऊँचे स्वरसे पुकार २ कर रोना शुरू किया । हाय ! हाय ! मुझ शीलवतीका पवित्र शरीर इस पापीने विध्वंस कर दिया ! हाय ! अब मैं क्या करूँ ? यह सुन किसीने जाकर राजासे कह दिया–महाराज; सुदर्शन सेठने महारानीके महलमें बड़ा अत्याचार किया है । राजा सुनते ही क्रोधसे उन्मत्त (मतवाला) हो गया । अतः बिना सोचे समझे ही उसने सेवकोंको आज्ञा दे दी की उस दुष्टको समशानभूमिमें ले जाकर मार डालो । आज्ञानुसार सेवक लोग निरपराधी सेठकी चोटी पकड़कर घसीटते हुए समशानमें ले गये और वहाँ उन्हे तरवारोंसे मारने लगे । परन्तु ज्यों ही तलवारें उनके कंठपर पड़ीं कि वे फूलोंकी माला हो गई ! इसपर दूसरोंने और भी हथियार चलाये, परन्तु वे भी जिनधर्म और ब्रह्मचर्य्यव्रतके प्रभावसे पुष्पादिकरूप हो गये । किसी साधु पुरुषपर उपसर्ग होता हुआ जानकर एक यक्षने उसी समय वहाँ प्रगट होकर प्रहार करते हुए राजाके नौकरोंको जहाँका तहाँ कील दिया । राजा नौकरोंका यह हाल सुन और भी क्रुद्ध हुआ । उसने जाना कि सुदर्शनने ही अपने मंत्रके प्रभासे यह सब किया है । अतः और भी अनेक सेवकोंको मारनेके लिए भेजा, परन्तु उनकी भी वही दशा हुई अर्थात् वे भी कील दिये गये । तब राजा स्वयं बड़ी भारी सेना लेकर सुदर्शनके मारनेके लिए चला । उधर यक्षने भी अपनी मायासे चतुरंग सेना तैयार कर ली और दोनो ओरके योद्धा रणके मैदानमें व्यूह

प्रतिव्यूहके क्रमसे आ खड़े हुए। दोनों सेनाओंमें संसारको चमत्कृत करनेवाला घनघोर युद्ध होने लगा। बहुत समयके बाद जब दोनों ओरकी सेनाये घिर गई तब यक्ष और राजा दोनो हाथीपर चढ़कर सम्मुख हुए। देवने कहा-राजन्, अब तू मत मर। मै देव हूँ। मुझपर तू विजय नही पा सकेगा। अभी तक समझ जा, और सुदर्शनकी चिन्ताको छोड़ दे। तू उस धर्मात्माको दुःख नही दे सकेगा, इसलिए अपने स्थानपर जा और सुखसे राज्य करे। राजाने इसके उत्तरमे गर्जकर कहा-यदि तू देव है, तो क्या हुआ? देव क्या राजाओंके किंकर नही होते है? युद्ध कर, फिर दिखाता हूँ मै तुझे अपनी भुजाओका पराक्रम, इस तरह दोनोका वचनयुद्ध हो चुकनेपर शस्त्रयुद्ध प्रारंभ हुआ। राजाने बड़े वेगसे बाणोकी बौछार करना शुरू की और यक्षके हाथीको खिन्न करके शीघ्र ही गिरा दिया। तब यक्ष दूसरे हाथीपर चढ़कर उसके सम्मुख आया, और उसके प्रतापको देखकर अत्यन्त आनन्दित होता हुआ पुनः युद्ध करने लगा। अबकी बार राजाका हाथी धराशायी हुआ, और तब वह भी दूसरे हाथीपर चढ़कर फिर लड़ने लगा। पश्चात् यक्षने राजाकी ध्वजा तथा छत्रको छेदकर हाथीको प्राणरहित कर दिया। तब वह रथपर आरूढ़ होकर सम्मुख हुआ और यह देख यक्ष भी अपने हाथीको छोड़कर एक दूसरे रथपर चढ़ दौड़ा। विद्यामयी बाणोसे दोनोमे तीनो लोकोको स्तंभित करनेवाला घनघोर युद्ध हुआ। आखिर बहुत समयके पीछे राजाने यक्षके रथको खंडित कर दिया और उसे जमीनमे डालकर मार डाला। परन्तु देखता है कि मरकर यक्ष एकके दो हो गये। उन्हे भी मारा तो चार हो गये। इस प्रकार दूने दूने होते होते सारी रणभूमि भर गई। तब राजा इस मायासे डरकर भागनेको सोचने लगा, परन्तु भाग नही सका। यक्ष पीछे लग गया। उसने कहा-तू भागके जावेगा कहाँ? आज यदि तू सुदर्शन सेठके शरणमे जावेगा, तो सजीव रह सकता है, नही तो तुझे अभी परलोकको पहुँचाता हूँ। तब राजा दूसरा उपाय न देखकर सेठजीकी शरणमे आया और बोला-सेठजी, मेरी रक्षा करो! रक्षा करो! तब सेठने हाथ उठाकर यक्षको रोका और पूछा आप कौन है? जो हमारे महाराजको कष्ट दे रहे हैं। यक्षने सेठजीको नमस्कार किया और अपना स्वरूप और आनेका कारण प्रगट किया। पश्चात् राजाको

अभयमतीकी कुटिलताका वृत्तान्त कहकर उसकी सम्पूर्ण सेनाको जीवा दी और अन्तमें सेठजीको पुनः नमस्कार करके तथा उनके ऊपर पुष्पवृष्ट्यादि करके वह स्वर्गलोकको चला गया।

उधर जब अभयमतीने जाना कि मेरा भंडाफोड़ हो गया, तब वह वृक्षसे एक कपड़ा बाँधकर, उसमें लटककर अथात् फाँसी लगाकर मर गई। और पाटलीपुत्र (पटना) नगरमें जाकर व्यन्तरी हुई। इधर पंडिताने जब देखा कि रानीकी पूरी दुर्दशा हो गई और अब मेरी बारी आई है। तब वह वहाँसे भागकर उसी पाटलीपुत्र नगरमें देवदत्ता नामकी वेश्याके घर जा रही। और उससे अपनी पूर्वकी सब कथा कह सुनाई। देवदत्ताने उसे सुनकर कपिला और अभयमतीकी खूब हँसी की और स्वयं प्रतिज्ञा की कि यदि मैं सुदर्शन सेठको देख पाऊँ और उसी समय उसके तपको नष्ट न कर डालूँ, तो मेरा नाम देवदत्ता नहीं।

यहाँ राजाने सुदर्शन सेठसे नम्र होकर कहा कि अज्ञानतासे मैंने जो आपका अपराध किया है, उसे क्षमा कीजिए और मैं अपना आधा राज्य आपको समर्पण करता हूँ उसे ग्रहण कीजिए। इसके उत्तरमें सेठने कोमल वचनोंसे कहा–इसमें आपका कोई अपराध नहीं है। मेरे पूर्वकृत कर्मोंका फल मुझे मिला है। और आप जो कृपा करके आधा राज्य मुझे देते हैं, वह भी मैं ग्रहण नहीं कर सकता। क्योंकि जिस समय मुझे आपकी महारानीने स्मशानसे उठाकर मँगवाया था, उस समय मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि इस उपसर्गके पश्चात् जीवित रहूँगा, तो पाणिपात्र (हाथके बर्त्तन) में ही भोजन करूँगा, अर्थात् दिगम्बर मुनि हो जाऊँगा। पश्चात् महाराजने बहुत आग्रह किया, परन्तु दृढ़व्रती सुदर्शनने संसारमें रहना स्वीकार न किया।

उन्होने जिनमन्दिरमें जाकर भक्तिभावसहित भगवत्की पूजा की और पश्चात् विमलवाहन नामके यतिकी वन्दना करके उनसे पूछा--भगवन्, मनोरमाके ऊपर मेरा अत्यन्त मोह क्यों है? कृपाकरके इसका कारण बताइए। मुनि कहने लगेः—

विंध्यदेशके काशीकौशलपुरमें भूपाल नामका राजा और वसुन्धरा नामकी उसकी रानी थी। दोनोंके प्रेमके फलरूप एक लोकपाल नामका पुत्र था। एक दिन राजाने सिंहद्वारपर वहुतसी प्रजाको रोती चिल्लाती देखकर पूछा—ये मेरी प्रजा क्यों दुःखी हो रही है? अनन्तबुद्धि मंत्रीने कहा—महाराज, यहाँसे दक्षिणदिशाकी ओर एक विंध्यगिरि नामका पर्वत है। उसमें एक व्याघ्र नामका भील रहता है, वह ही प्रजाको आकर सताया करता है, इस कारण प्रजा पुकार करती है। यह सुनकर राजाने एक वड़ी भारी सैना सहित अनन्त नामके सेनापतिको पकड़नेके लिए भेजा। परन्तु प्रचंड भीलने अपने वाहुवलसे उसे हरा दिया। तव राजा स्वयं उसपर चढ़ाई करनेको तैयार हुआ। यह देख लोकपाल पुत्रने उन्हें रोका, और यह कहकर कि समर्थ पुत्रके मौजूद होते हुए पिताको इस कार्यके लिए जानेकी आवश्यकता नहीं है, वह भीलपर चढ़ाई करके गया। और शीघ्र ही उसे यमपुरको भेजकर सुचित्त हो गया।

भील मरकर वत्सदेशके किसी एक ग्राममें कुत्ता हुआ और उसकी कुरंगी स्त्री कुत्ती हुई। वे दोनों वहाँसे कोशाम्बी नगरीमें जाकर एक जिनमन्दिरका आश्रय पाकर रहने लगे। कुत्ता अन्तमें पर्याय पूर्ण करके चम्पापुरीमें लोध नामकी जातिविशेषमें सिंहप्रिय और सिंहनीके पुत्र उत्पन्न हुआ। वाल्यावस्थामें ही मातापिता उसे छोड़कर मर गये। पश्चात् कितनेक दिनमें उस पर्यायको भी छोड़कर भील चम्पापुरीमें वृषभदास सेठके सुभग नामका ग्वाला हुआ। जो कि चारण मुनिके द्वारा णमोकार मंत्र पाकर सम्पूर्ण कार्योंमें उक्त मंत्रका उच्चारण किया करता था। सो उसी श्रद्धावान् ग्वालाने मरते समय निदान करके तुम्हारी पर्याय पाई है, अर्थात् तुम पूर्व जन्ममें सुभग ग्वाला थे।

उधर वह कुरंगी भीलनी शरीर छोड़कर वाराणसीमें भैंस हुई। और वहाँसे मरकर चंपापुरीमें सांवल नामक धोवीकी यशोमती स्त्रीके वत्सिनी नामकी कन्या हुई। सो एक आर्यिकाके संसर्गमें पुण्योपार्जनकर आयुके अन्तमें मरण करके तेरी मनोरमा प्रिया हुई।

मुनिराजके मुखसे अपने भवान्तर और मनोरमाके स्नेहका कारण सुनकर सुदर्शन सेठ संतोषित हुआ। पश्चात मनोरमादिक सम्पूर्ण कुटुम्बको छोड़कर और राजादिकोंसे क्षमा कराकर वह वहाँ ही दीक्षित हो गया। यह देख

राजाको बड़ा वैराग्य उत्पन्न हुआ, इसलिए वह भी अपने पुत्रको राज्यभार सौंपकर और सुदर्शन सेठके सुकान्त पुत्रको राज्यश्रेष्ठीका पद देकर सुदर्शनके साथ ही दीक्षित हो गया। पश्चात् उनके अन्तःपुरकी बहुतसी रानियोंने भी आर्यिकाके व्रत धारण किये।

सम्पूर्ण मुनियोंने उसी नगरमें पारणा किया। पश्चात् गुरुवर्यके साथ नाना स्थानोंमें विहार करते हुए सुदर्शन मुनिने सम्पूर्ण आगमोंका ज्ञान लाभ कर लिया और पश्चात् गुरुकी आज्ञापूर्वक एकाकी विहार करना प्रारंभ किया। नाना तीर्थस्थानोंकी वन्दना करके एक बार वे चर्याके लिए पाटलीपुत्र नगरमें गये सो वहाँ अचानक पापिनी पंडिताने देखकर उन्हें पहिचान लिया और देवदत्तासे आकर कहा कि जिसकी कथा मैंने तुमसे कही थी, वह सुदर्शन मुनि ये आ रहा है। देवदत्ताने अपनी पूर्व प्रतिज्ञाको स्मरण करके धोखा देकर मुनिका भोजन करनेके लिए आह्वान किया। निष्कपट मुनि उस पापिनीके जालको नहीं समझ सके, और आहारके लिए ठहर गये। देवदत्ताने उन्हें ले जाकर हठात शय्यापर पकड़कर बैठा लिया और वेश्यासुलभ सैकड़ों चाटुक वचन कहना प्रारंभ किया—प्यारे, तुम अभी तक परम यौवन अवस्थाको धारण किये हुए हो। अभी यह तपस्या तुम्हारे योग्य नहीं है। और तुम्हारा यह सुकुमार शरीर इस कठोर कर्मके योग्य भी नहीं है। मेरे पास अटूट धन है। मेरे साथ कुछ काल रमण करके उसे भोगो और मेरी इच्छाको पूर्ण करो।"

वेश्याका यह प्रलाप सुनकर परम निश्चल और धीर वीर सुदर्शन मुनि बोले;—हे मुग्धे (मूर्खिणी), यह अपवित्र शरीर दुःखोंका घर, वायु, पित्त, कफ इन त्रिदोषोंसे पीड़ित, कृमिकुलसे परिपूर्ण और विनश्वर है। यह सांसारिक भोगोपभोगोंके अनुभवन करनेके लिए नहीं है, किन्तु परलोकसिद्धिकी सहायताके लिए है। अतएव इसे तपस्यामें ही लगाना चाहिए। ये सम्पूर्ण भोगोपभोग अविचारितरम्य और दुःखान्त है। इनसे प्राणीको कभी सन्तोषकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। मोक्षके अतिरिक्त अन्यत्र सुख नहीं है, और वह तपस्याके विना नहीं प्राप्त हो सकती। सो हे मूर्खे, अब तू इस दुष्कृत्यसे अपनेको बचा और कुछ अपना कल्याण कर।

यह सुन देवदत्ताने यह कहकर कि "यह सब पीछे करना और पीछे ही उपदेश देना। अभी वह समय नहीं है।" सुदर्शन मुनिको अपनी सुकोमल शय्यापर लिटा लिया। परन्तु मुनिने उस समय सन्यास धारण कर लिया और प्रतिज्ञा कर ली कि यदि इस उपसर्गका निवारण हो जावेगा, तो आहारादि ग्रहण करूँगा, अन्यथा सर्वथा त्याग है। और नगरीमें प्रवेश करनेकी भी प्रतिज्ञा ले ली। परन्तु वेश्याने उनका पिंड न छोड़ा, उसने तीन दिनतक कामविकारोंकी नाना चेष्टाये की। परन्तु जगज्जयी कामको जीतनेवाले सुदर्शन मुनि मेरुके समान सर्वथा निश्चल रहे। आखिर वेश्या लाचार और निरुपाय होकर रात्रिको उन्हें स्मशान भूमिमे ले जाकर कायोत्सर्ग पूर्वक स्थापन कर आई और अपने घर चली आई।

इतनेमे वह व्यन्तरी जो पूर्वजन्ममे अभयमती थी, वहाँसे कहीं जा रही थी। सो मुनिके ऊपर विमान अटकनेसे नीचे उतरी और सुदर्शनको पहिचानकर बोली—रे सुदर्शन, तेरे प्रेममे फँसकर और तज्जनित आर्तध्यानसे मरकर मैंने यह व्यन्तर पर्याय पाई है। उस समय तो तू किसी देवकी सहायतासे बच गया था, परन्तु बतला, इस समय यहाँ तेरी रक्षा करनेवाला कौन है? यह कहकर नाना प्रकारके उपसर्ग करने लगी। तब मुनिराजके पुण्यप्रभावसे उसी यक्षने आकर रक्षा की। व्यन्तरीके साथ यक्षका सात दिन तक घोर युद्ध हुआ, और आखिर व्यन्तरी हारकर पलायमान हो गई।

यहाँ सुदर्शन मुनि कठिन तपस्याके फलसे केवलज्ञान प्राप्त करके गन्धकुटीरूप समवसरणादिकी विभूतिसे युक्त हुए। उनके केवलज्ञानके अतिशयको देखकर व्यन्तरी सम्यग्दृष्टि हो गई। और पंडिता तथा देवदत्ताने दीक्षा ग्रहण कर ली। उधर मनोरमा केवलज्ञान उत्पन्न हुआ सुनकर वन्दनाको आई और पुत्रादिकोंसे मोह छोड़कर वह भी वन्दनापूर्वक आर्यिका हो गई। उसके साथ और भी अनेक पुरुष और स्त्रियाँ दीक्षित हुई। पश्चात् सुदर्शन मुनि भव्यजनोंके पुण्यकी प्रेरणासे कुछ काल विहार करके पौषशुक्ला पंचमीको मोक्ष पधारे।

धात्रीवाहनादि राजा जो मुनि हो गये थे, उनमेसे अनेक सौधर्म स्वर्गको गये, अनेक ईशानको, इस प्रकार

सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त गये। आर्यिकायें भी सौधर्म, अच्युतादि कल्पस्वर्गोमे देव और कोई कोई देवी अपनी २ तपस्या और परिणामोकी उज्ज्वलताके अनुसार हुई।

सारांश—इस प्रकार एक ग्वाला भी णमोकार मंत्रके प्रभावसे सुदर्शन मुनि होकर अविनाशी सुखको प्राप्त हुआ। अन्य जन इसका पाठ करें, तो क्यों न सम्पूर्ण इच्छित सुखोंको पावें? अवश्य ही पावें।

इति श्रीकेशवानन्दिदिव्यमुनिशिष्यश्रीरामचन्द्रमुमुक्षुविरचितपुण्यास्रवकथाकोपकी सरलभाषाटीकामे पंचनमस्कारमन्त्रफलवर्णन नामका दूसरा अष्टक समाप्त हुआ।

अथ श्रवणफलाष्टक।

(१) वालिमुनिकी कथा।

इसी आर्यखंडके किष्किन्धापुर नामके नगरमें विद्याधरोंके स्वामी वानरवंशी महाराज वालिदेव राज्य करते थे। उन्होने एक दिन किसी महामुनिसे धर्मश्रवण करनेके पश्चात् यह प्रतिज्ञा की कि जिन भगवान्, जिन मुनि, और जैनोपासकों (श्रावको) के सिवाय और किसीको नमस्कार नही करूँगा।

यहाँ लंकापुरीमे जब रावणने सुना कि वालिदेवने इस प्रकारकी प्रतिज्ञा ली है। तब ऐसा समझा कि वालिदेवने मुझे नमस्कार करनेकी अनिच्छासे ऐसा किया है, और कोई कारण नहीं है। इसलिए इसने एक अच्छे विद्वान् शास्त्रज्ञ दूतको किष्किंधापुर भेजा। उसने वहाँ जाकर वालिदेवको सूचना दी कि हे देव, जगद्विजयी रावणने जो आज्ञा की है, उसे सुनिए,—

"आपके और हमारे बीचमें परम्परासे स्नेह चला आता है, इसलिए आपको भी उसी सम्बन्धका पालन करना चाहिए। और हमने आपके पिताको सूर्यके शत्रु अत्यन्त प्रचंड राजा यमको जीतकर उसका राज्य आपको दिया है। उस उपकारका स्मरण करके आपको चाहिए कि अपनी बहिन श्रीमाला हमें दे दें और नमस्कार करके सुखसे राज्य करें।" यह सुनकर वालिदेवने कहा–"रावणकी आज्ञायें सम्पूर्ण उचित हैं, परन्तु वे असंयत अर्थात् अव्रती हैं, इसलिए उन्हें मैं नमस्कार नहीं कर सकता। नमस्कार करनेके सिवाय और सब प्रकारसे मैं आज्ञाका पालन कर सकता हूँ।" दूतने कहा–"नहीं, आपको नमस्कार करना ही पड़ेगा, नहीं तो आपकी हानि होगी।" तब वालिदेवने यह कहकर दूतको विदा कर दिया कि "अच्छा, जो होनेवाला होगा सो होगा, तुम जाओ।"

दूतने उक्त बात रावणसे जाकर निवेदन की, तब उसने अत्यन्त कुपित होकर अपनी सारी सेना समेत आकर किष्किधापुर घेर लिया। वालिदेवको मंत्रियोंने बहुत समझाया कि रावणसे युद्ध करनेमें लाभ नहीं है, परन्तु उन्होंने एक न मानी और अपनी सेनासहित रावणका सामना करनेके लिए कूँच कर दिया। जब दोनों ओरकी सेनायें लड़नेको तैयार हुई, तब दोनों ओरके मंत्रियोंने विचार किया कि इन दोनोंमें एक तो प्रतिवासुदेव है, और दूसरा चरमशरीरी, सो मृत्यु दोनोंकी असंभव है, व्यर्थ ही सेनाका नाश होगा। इसलिए यदि दोनों ही आपसमें युद्ध करके अपनी अपनी हविस निकाल लें, तो अच्छा हो। उक्त विचार दोनों मंत्रियोंने अपने स्वामियोंसे निवेदन किया। यह बात दोनों राजाओंने मान ली और सेनाकी लड़ाई बन्द कर खुद लड़ाईके लिए मैदानमें आये। दोनोंमें घोर युद्ध हुआ और आखिर कुछ समयमें वालिदेवने रावणको बाँध लिया। परन्तु उसी समय संसारकी अनित्यताके विचारने वालिदेवको वैरागी बना दिया। उन्होंने रावणको छोड़ दिया, और क्षमा कराई। फिर अपने भाई सुग्रीवको राज्य दे, उसे रावणके आधीन करके परम वैरागी वालिदेवने दिगम्बर मुनिकी दीक्षा ले ली। वे कुछ ही कालमें सम्पूर्ण आगमोंके पाठी और एकाकी होकर कैलासपर्वतपर प्रतिमायोग धारण करके काल यापन करने लगे।

एक वार रावण रत्नावली नामकी कन्याके विवाहके लिए विमानमें बैठा हुआ आकाशमार्गमे जा रहा था। जब उसका विमान कैलासपर्वतपर जहाँ कि वालि मुनि तपस्या करते थे, पहुँचा, तो वह अटक गया। उसका सबब जाननेके लिए रावणने नीचे उतरकर देखा, तो वाल मुनिको ध्यान लगाये हुए देखे। उन्हें देखकर रावणको यह निश्चय हो गया कि इन्होने क्रोध करके मेरे विमानको अटकाया है। ऐसा निश्चय है कि जिन मन्दिर, जिन मुनि तथा अन्य किन्ही पुण्यात्मा पुरुषोंके ऊपरसे जाता हुआ विमान अटक जाता है, परन्तु रावणने पूर्व वैर होनेसे ऐसा ही समझ लिया। अतः क्रोधित होकर अपने आप बोला—"मै पर्वत सहित इसे (वालि मुनिको) समुद्रमे पटक दूँ" ऐसा विचार करके उसने पर्वतके नीचे प्रवेश किया और अपनी शक्ति तथा विद्याके बलसे पर्वतको उखाड़ा। यह देख वालि मुनिने यह विचारकर कि "रावणकी करतूतिसे ये सुन्दर जिनालय नष्ट हो जावेगे, तथा इस पर्वतके निवासी लाखो जीव भी मर जावेगे।" अपनी कायबलकी ऋद्धिसे बॉयें पॉवका ॲगूठा नीचेको दबाया। रावण उसके भारसे दबकर निकलनेमे असमर्थ हो, चिल्लाने लगा। उसे सुन, विमानमें बैठी हुई मन्दोदरी आदि रानियोने वालिदेवके निकट आ, अपने पतिकी भिक्षा मॉगी। मुनिने दयाकर ॲगूठा ढीला कर दिया। तब रावण निकलकर बाहर आया। मुनिराजके तपके प्रभावसे देवोंके आसन कम्पायमान हुए, अतः उन्होने वहॉ आकर पंचाश्चर्य करके नमस्कार किया। फिर दशाननका "रोतीति रावणः" अर्थात् रोया इसलिए 'रावण' नाम रखकर देव अपने अपने स्थानोको चले गये। और रावण भी अत्यन्त निःशल्य हो, वालिदेवकी वन्दना कर, अपने इच्छित स्थानको चला गया। तथा मुनिराज भी केवली होकर कुछ काल विहार करके मोक्षको पधारे।

एक वार श्रीसकलभूषणकेवलीसे विभीषणने पूछा कि हे भगवान्, इस प्रकार प्रभावशाली वालिदेव किस पुण्यके फलसे उत्पन्न हुए? कृपाकरके मुझे समझाइए। तब केवली भगवान् कहने लगे;—

इसी आर्यखंडमे एक वृन्दारक नामका वन है। उसमे एक मुनि आगमका पाठ किया करते थे और एक हरिण प्रतिदिन उसे सुना करता था। सो वह हरिण आयुके अन्तमे मरकर उस पुण्यके फलसे ऐरावतक्षेत्रके स्वच्छपुर

नगरमें विराहित नामक वणिककी शीलवती स्त्रीके मेघरत्न नामका पुत्र हुआ। फिर वहाँसे आयु पूर्ण कर अणुव्रत धारण करनेके फलसे ईशानस्वर्गमें देव हुआ। देवायु पूर्ण करके पूर्वविदेहके कोकिला ग्राममें कान्तशोक वणिककी रत्नाकिनी स्त्रीके सुप्रभ नामका पुत्र हुआ। वह दीक्षित होकर और बहुत काल तपस्या करके सर्वार्थसिद्धि स्वर्गमें गया, और फिर वहाँसे चयकर बड़े प्रभाववाला वासुदेव हुआ।

सारांश—परमागमके शब्द श्रवणमात्रसे एक दरिद्र पशु भी ऐसा नरसर्वोत्तम पुरुष हो गया। अन्य मनुष्य यदि परमागमका अध्ययन करें, तो क्या न पावें? सर्व सिद्धि पा सकते हैं।

(२) भामण्डलकी कथा।

इसी आर्यखंडमें मिथिला नामकी एक नगरी है। वहाँके राजा जनक और महारानी विदेहीके युगल सन्तान उत्पन्न हुई, एक पुत्र और दूसरी पुत्री। जिस समय यह युगल उत्पन्न हुआ, उसी समय एक धूमप्रभ नामका राक्षस वहाँसे निकला। सो वह अपने पूर्वभवका स्मरण करके पुत्रीको छोड़कर पुत्रको मारनेके लिए वहाँसे उठा ले गया। पीछे जब उसे मारनेको तैयार हुआ, मगर उस बालकका सुन्दर प्रतापशाली मुख देख, उसे दया आ गई, और मारनेके बजाय अपने कुण्डल उसके कानोंमें पहिना दिये, व लघुपर्ण नामकी विद्याको उसे सौंप, कह दिया कि जहाँपर इसका भलीभाँति पालन पोषण हो, वहाँ ही इसे रख आ।

लघुपर्ण विद्या उस दिन अँधेरी रात्रिमें उस पुत्रको लेकर आकाशमार्गसे जा रही थी, कि रास्तेमें जाते हुए विजयार्द्धकी दक्षिणश्रेणिके रथनूपुरनरेश इन्दुगतिकी कुण्डलके उजासमें जगमगाते हुए लड़केके शरीरपर निगाह पड़ी। तब लालायित होकर राजाने पुत्रको लेनेके लिए अपने हाथ फैलाये। लघुपर्णा भी योग्य समझ उसके हाथमें पुत्र

डालकर चल दी। राजा अपने घर आया और रानी पुष्पवतीको यह कहकर कि यह तेरा पुत्र है, उसे सोंप दिया और नगरमें सर्वत्र घोषणा करा दी कि महारानी पुष्पवतीके पुत्र उत्पन्न हुआ है। वहाँ वह बालक धीरे२ पलकर बड़ा हो, सारी विद्याओंमें होशियार बन गया और प्रभामण्डल नामसे संसारमें प्रसिद्ध हुआ।

उधर राजा जनकको पुत्रहरणका बहुत शोक हुआ। बुद्धिमान् मंत्रियों और शहरके लोगोंके समझानेपर उन्होंने बड़ी कठिनतासे उस शोकको भुलाया और पुत्रीका नाम सीता रखकर सुखसे रहने लगे। रानी विदेही भी अपने पतिकी तरह शोकको भूल, पतिकी सेवा करती हुई सुखसे काल बिताने लगी।

एक दिन राजा जनकने स्वदेशमें उपद्रव करनेवाले 'तरंगम' नामके भीलोंके सरदारपर चढ़ाई की, और उसी समय अपने मित्र अयोध्यापुरीके राजा दशरथको सहायताके लिए पत्र लिखा। राजा दशरथने मित्रका मतलब जान, उसी समय उसकी सहायताके लिए कूच करनेको रणभेरी बजवाई। उनका शब्द सुनकर दशरथके पुत्र रामचन्द्र और लक्ष्मणने कारण पूछा और पिताको रोककर खुद दोनों भाई जनककी सहायताके लिए गये। परन्तु मिथिला [जनकपुरी] में जनकसे उनका मिलाप नहीं हुआ, क्योंकि इसके पहले ही जनकने भीलसे लड़ाई करना शुरू कर दिया था। लड़ाई खूब जोरसे हो रही थी। जनकके भाई कनकको भीलराजने बाँध लिया था। उस समय रामलक्ष्मणने युद्धक्षेत्रमें पहुँच, खलबली मचा दी। थोड़े ही समयमें उन्होंने भीलको बाँध लिया और राजा जनकका उसे सेवक बनाया। कनकको तथा और अनेक क्षत्रियोंको जिन्हें भीलने कैद कर लिया था, छोड़ दिये। सब जगह जयजयकार होने लगा।

रामचन्द्रका प्रताप देखकर जनकको बहुत मोह हुआ, अतः "मैं अपनी सीता तुम्हें ही दूँगा।" ऐसा प्रीतिपूर्वक कहकर श्रीरामलक्ष्मणको बड़े सन्मानके साथ विदा किया।

एक समय सीताके रूपकी प्रशंसा सुनकर नारदजी उसके देखनेके लिए आये। परन्तु सीताकी विलासिनी सखियोंने विना पहिचाने, बदशकल होनेके कारण गालियाँ देकर उनका अपमान किया। महामानी नारदजी इस कारण

अत्यन्त कुपित होकर वहाँसे चले गये। उन्होंने कैलास जाकर एक कपड़ेपर सीताका सर्वांग मनोहर चित्र खींचा, और रथनूपुर जाकर बागमें भामंडलके क्रीड़ाभवनके पास ही उस चित्रको रख आप वृक्षकी शाखाओंके पीछे छुपकर बैठ रहे। इतनेमें प्रभामंडल वहाँ आया और उस अपूर्व तस्वीरके रूपको देखकर मूर्छित हो गया। भामंडलकी यह दशा इन्दुगतिने आकर देखी। उसके साम्हने चित्रपट पड़ा देखकर पूछा—इस चित्रपटको यहाँ कौन लाया? तब नारदने उसी समय प्रकट होकर "तुम्हारा कल्याण हो!" यह आशीर्वाद देते हुए कहा—तस्वीर लानेवाला मैं हूँ। यह कन्या युवराजके ही योग्य है इसलिए मैं लाया हूँ। बाद उसका सब हाल कहकर नारदजी वहाँसे चले गये।

अब इन्दुगति इस चिन्तामें पड़े कि वह कन्या कैसे प्राप्त हो? मंत्रियोंसे सलाह कर राजाने अन्तमें यह निश्चय किया कि किसी तरह राजा जनकको यहाँ लाना चाहिए। इस कामको करनेके लिए एक चपलगति विद्याधरको राजाने आज्ञा दी। आज्ञा पा, वह घोड़ेका रूप धारण कर, मिथिलानगरीमें आया। वहाँ जनकने उसे देखकर बाँध लिया। इतनेमें एक भीलने आकर महाराजसे निवेदन किया कि अमुक स्थानमें एक हाथी है। राजा उसी समय उसे पकड़नेके लिए तैयार हुए परन्तु हाथीके भयसे उक्त घोड़ेपर सवार होकर चले। घोड़ा थोड़ी ही दूर चलकर आकाशमार्गमें उन्हें ले उड़ा और जल्दी ही सिद्धकूटपर ले आया। वहाँ जनकको ठहराकर इन्दुगतिको खबर दी कि मैं जनकको ले आया हूँ। तब विद्याधरोंका राजा इन्दुगति खुद जाकर सत्कारपूर्वक उन्हें अपने यहाँ ले आया, और अतिथि सत्कार किया। पश्चात् भामंडलके साथ सीताका व्याह करनेको कहा। जनकने कहा—"मैं सीता रामचन्द्रको देना स्वीकार कर चुका हूँ अतः खेद है कि आपकी इच्छा पूरी नहीं कर सकता। यह सुनकर इन्दुगतिने कहा—"छिः! ऐसी सुन्दर कन्या क्या एक सामान्य भूमिगोचरीको देने योग्य थी? जनकने कहा—"और क्या विद्याधरोंके योग्य थी जो आकाशमें पक्षियोंकी तरह उड़ा करते हैं? देखो! तीर्थंकरादिक लोकोत्तर पुरुष भूमिगोचरी ही हुए हैं। अतः मैंने जो कार्य किया है, वह अनुचित नहीं है" यह सुन, विद्याधरोंके स्वामीने कहा;—"खैर! परन्तु कन्या ही बलवान् और पराक्रमीको ही देना चाहिए, इसलिए ये दो 'वज्रावर्त' और

'सागरावर्त' धनुष देता हूँ, इन्हे जो राजकुमार चढ़ा देवे; उसे ही सीता देना, अन्यको नहीं।" यह बात जनकने स्वीकार की। पश्चात् इन्दुगतिकी आज्ञानुसार एक विद्याधर जनकको जहाँका तहाँ पहुँचा आया, और 'महत्तर' तथा 'चन्द्रवर्धन' विद्याधर उन दोनो धनुषोंको मिथिलापुरीमें ले आये।

रानी विदेही आदि राजपरिवारको यह हाल सुनकर बहुत चिन्ता हुई, परन्तु उन्हें रामचन्द्रके बलका बड़ा भरोसा था, इसलिए कुछ धैर्य हुआ। स्वयंवरमंडप रचा गया, और दोनो धनुप रक्खे गये। उनके तेजको देखकर सम्पूर्ण क्षत्री राजा काँप उठे। परन्तु तत्काल ही रामचन्द्रने वज्रावर्त और लक्ष्मणने सागरावर्त धनुप चढ़ाकर उनका भय दूर कर दिया। जयजयकार होने लगा। चन्द्रवर्धन विद्याधरको दोनों कुमारोंका बल देखकर बड़ा हर्ष हुआ, अतः वह भी अपनी आठ पुत्री लक्ष्मणको देना स्वीकार करके वहाँसे चला गया। और अन्य सब विद्याधर राजाओंने भी प्रसन्न चित्त हो ऐसा ही किया। श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण अयोध्या गये।

इधर जब भामंडलने सुना कि दोनो धनुप चढ़ाये गये और राम तथा सीताका विवाह भी हो गया। तब बहुत घबराया और नाराज हो, एक हजार अक्षौहिणी सेनाके साथ वह मिथिला नगरीकी ओर चला। परन्तु मार्गमें विदग्ध नगरको देखकर उसे जातिस्मरण हो आया। इसलिए ज्योंका त्यों पीछा लौट गया। और इन्दुगतिसे जाकर कहा कि सीता मेरी बहिन है। अभी तक बड़ी भूल हो रही थी।

"अहो! यह संसार कैसा निन्द्य और अविचारी है। जिसमें भाई भी बहिनपर आसक्त होता है और उसके लिए सैकड़ों प्रयत्न करता है। छि! ऐसा संसार बुद्धिमानोंके अनुरागका कारण नहीं है।" इस प्रकार विचार कर इन्दुगति भामंडलको अपना सारे राज्यका भार सोंप 'सर्वभूतशरण्य' मुनिराजके निकट दीक्षित हो गया। मुनिव्रत अंगीकार कर लिये।

सर्वभूतशरण्य गुरु बड़े भारी मुनियोंके संघके साथ विहार करते हुए एक समय अयोध्यानगरीके जंगलमें आये। सो मुनिका आगमन सुनकर राजा दशरथ अपने भाइयों सहित वन्दना करनेके लिए आये। वहाँ इन्दुगतिको देखकर

गुरुवर्यसे पूछा–भगवन्, ये किस कारण संसारसे विरक्त हुए? तब मुनिराजने प्रभामंडल और सीताका सब हाल बयान किया।

इसी समय भामंडलने भी आकर मुनिराजके वचन सुने, और दशरथ, राम व लक्ष्मणको नमस्कार करके वहींपर बैठी हुई सीताको प्रणाम किया। फिर मुनिराजसे अपनेपर इन्दुगति और पुष्पवतीके स्नेहका तथा सीताका चित्रपट देखकर आसक्त होनेका कारण पूछा। मुनिराज कहने लगे;—

दारुण नामक ग्राममे विमुचि नामके ब्राह्मण और मनस्विनी ब्राह्मणीके अतिभूत नामका एक पुत्र था। उसी नगरमे एक रंडाज्वाला नामकी स्त्री रहती थी, सो युवा होनेपर उसकी पुत्री सरसाके साथ उसका विवाह हुआ। एक वार अतिभूति अपने पिताके साथ भिक्षाके लिए दूसरे गॉवको गया था कि सरसा एक कय नामके जारपर आसक्त होकर घरसे निकल गई। मार्गमें दोनोने एक नग्न मुनिराजको देखकर गालियॉ दी, इसलिए उस पापके फलसे दोनो आयुके अन्तमें मरकर तिर्यंच गतिमे उत्पन्न हुए। पश्चात् वहुत काल भ्रमण करके किसी शुभकर्मके फलसे सरसा तो चन्द्रपुरके राजा चन्द्रध्वजकी रानी मनास्विनीके चित्रोत्सवा नामकी पुत्री हुई और कय उसी नगरके प्रधान धूमकेशिकी स्त्री स्वहाके कपिल पुत्र हुआ। दोनो युवा होनेपर एक दूसरेपर पुनः आसक्त हुए और निदान चित्रोत्सवा तथा कपिल दोनों घरसे निकल भागे और विदग्धपुरमें आकर रहने लगे।

उधर अतिभूति ब्राह्मण जब भिक्षा मॉगकर लौटा, तो घरमें सरसाको न देखकर बहुत दुःखी हुआ "जो मेरी स्त्रीकी गति हुई है, सो ही मेरी होगी" ऐसा विचार करके घरसे निकल पड़ा, और अन्तमें आर्तध्यानसे मरकर उसने वहुत काल तक तिर्यंच गतिमे भ्रमण किया। पश्चात् एक वार ताराक्ष सरोवरमें हंस हुआ। सो सरोवरके किनारे तपस्या करते हुए एक मुनिराजके पवित्र वचन सुनकर स्वर्गमे किन्नर देव हुआ, और फिर वहॉसे विदग्धपुरके राजा प्रकाशसिंह और राजा प्रियमतीके कुंडलमंडित पुत्र हुआ और युवा होनेपर राज्यसिंहासनपर बैठा।

कपिलजी जो चित्रोत्सवाको उड़ा लाये थे और विदग्धपुरमें रहने लगे थे, थोड़े ही दिनोंमें ऐसे निर्धन हो गये कि पेट भरनेके लिए लकड़ियाँ बेचनी पड़ी। एक दिन आप तो लकड़ी लेनेको जंगलमें गये थे, राजा कुंडलमंडित आपके घरके पाससे निकला, और चित्रोत्सवाको देखकर उसपर आसक्त हो गया। अतः किसी प्रकार प्रसन्न करके उसे अपने घर ले आया। उधर जब कपिलजी आये और अपनी प्रियाको घरमें नहीं देखा, तब विलाप करने लगे। किसीने कह दिया कि साध्वी होकर चली गई है, इसलिए उसकी खोजमें कुछ दूर तक दौड़ धूप की। परन्तु जब मालूम हुआ कि राजा ले गया है, तब राज्यद्वारपर जाकर शोर मचाया। परन्तु आसक्तचित्त राजाने कुछ सुनाई नहीं की, और तिरस्कार करके उसे निकलवा दिया। आखिर कपिल वहाँसे निकलकर मुनि हो गया और आर्तध्यानके वशसे मरके धूमप्रभ देव हुआ।

राजा कुंडलमंडित और चित्रोत्सवाने एक बार वनसे लौटते हुए मुनिराजसे श्रावकके व्रत ग्रहण कर लिये। पश्चात् कुछ काल तक राज्य करके आयुके अन्तमें शुभ मरणकर दोनों प्रभामंडल और सीता युगल उत्पन्न हुए। प्रभामंडलका चित्त सीतापर आसक्त होनेमें यही पूर्व जन्मका संस्कार कारण है।

विमुचि, मनस्विनी, और ज्वाला ये तीनों पुत्र और पुत्रीके स्नेहसे देशान्तर निकल गये। पश्चात् संवरनगरके उद्यानमें मुनिराजको प्रणाम करके दीक्षित हो गये और तपस्या करके सौधर्मस्वर्गमें देव देवी हुए। स्वर्गके अनन्त सुखोंका अनुभवन करके अन्तमें विमुचि ब्राह्मणका जीव इन्दुगति विद्याधर हुआ, मनस्विनी उसकी रानी पुष्पवती हुई और ज्वाला जनककी रानी विदेही हुई।

इस प्रकार पूर्वस्नेहका कारण सुनके सब ही प्रसन्न हुए। भामंडलने बड़ी धूमधामके साथ नगरमें प्रवेश किया। इसी समय एक पवनवेग नामके विद्याधरने यह बात राजा जनकसे जाकर कही कि भामंडल आपके पुत्र है। राजा जनक सुनते ही प्रसन्नचित्त हो गये। पुत्रको देखनेके लिए विद्याधरके विमानमें बैठ अयोध्यानगरीमें आये। इनके

आनेकी ख़बर पा, राजा दशरथ इनका स्वागत कर नगरमे ले गये। वहाँ राजाओके योग्य ख़ातिर तवज्जह की गई। भामंडलने अपनी विद्याके बलसे पिताको वाल कालकी अनेक लीलाये दिखाकर हर्षित किया।

राजा दशरथके कुछ दिन अतिथि (पाहुना) रहकर प्रभामंडल अपने पितादिकोके साथ मिथिलानगरीमे आये। वहाँका राज्य अपने काका कनकको सौप, आप पिताके साथ रथनूपुर चले गये और सम्पूर्ण गुणोके आधार तथा विद्याधरचक्रवर्ती होकर सुखसे रहने लगे।

सारांश–इस प्रकार मुनिराजके वचन श्रवणमात्रसे एक हंस पक्षी भी ऐसे वड़े विद्याधर चक्रवर्तीकी विभूतिका प्राप्त हो गया। जो भव्य प्रतिदिन जिनवाणीका श्रवण करेगे, वे क्यो न उच्चसे उच्च पद पावेगे ? अवश्य पावेगे।

(३) राजा यमकी कथा।

उण्ड्रदेशके धर्मनगरका राजा यम सम्पूर्ण शास्त्रोका जाननेवाला वड़ा भारी विद्वान् था। उसकी मुख्य रानीका नाम धनमती था। उसके दो संतान थे। एक पुत्र जिसका नाम गर्दभ था, और एक पुत्री जिसका नाम कोणिका था। राजाकी और भी वहुतसी रानियॉ थी, जिनसे पॉचसौ पुत्र उत्पन्न हुए थे। राज्यमंत्रीका नाम दीर्घ था।

एक वार एक निमित्तज्ञानीने आकर कहा कि जो कोई पुरुप कोणिकाको व्याहेगा वह सम्पूर्ण पृथिवीका स्वामी होगा। तब राजा यमने इस डरसे कि कही वह मेरा भी राज्य न छीन ले, कोणिकाको एक भोहरे (भूमिगृह)-मे छुपा रक्खी। केवल एक दो सेवक इसकी खानेपीने आदिकी सार सॅभालके लिए रख दिये थे, वे ही इस विपयको जानते भी थे। उन्हे इस वातकी कठिन आज्ञा थी कि इस विषयको किसीसे न कहे।

एक वार धर्मनगरमे पॉचसौ यतियोके संघसहित श्रीसुधर्माचार्यका आगमन हुआ। सो उनकी वन्दनाके लिए

सम्पूर्ण नगरनिवासी बड़े उत्साहके साथ चले जा रहे थे। उन्हें देखकर राजा यम अपनी विद्याके घमंडमें आकर मुनियोंकी निन्दा करने लगा; और शास्त्रार्थमें हरा देनेके विचारसे उनके पास गया। परन्तु जिस मतलबसे वह वहाँको चला था, उसे भूल गया। वहाँ पहुँचते २ मुनिराजके प्रभावसे उसका घमंड जाता रहा, इसलिए उसने सुधर्मगुरुको नमस्कार किया और धर्मश्रवण कर अपने गर्दभपुत्रको राज्य दे अन्य पाँचसौ पुत्रों सहित वह मुनि हो गया। कुछ कालमें वे सब मुनि (पुत्र) तो सम्पूर्ण आगमोंके पाठी हो गये। परन्तु यम मुनिको पंचनमस्कार मंत्रका उच्चारण भी ठीक २ नहीं आया। यह दशा देख गुरुने बहुत निन्दा की। तब उससे लज्जित हो, यम मुनि अपने इस कर्मकी निर्जराके लिए उपाय पूछ तीर्थक्षेत्रोंकी वन्दनाको अकेले ही निकल पड़े।

मार्गमें एक यव (जव) के खेतके पाससे एक पुरुष गधेके रथपर चढ़ा हुआ जा रहा था। सो वह कभी तो गधेको यव चरानेके लिए उस रथको खेतमें ले जाता था और कभी बाहर ले आता था। यह देखकर यम मुनिने निम्नलिखित खंडश्लोक बनाकर पढ़ा;—

"कड्ढ पुण णिक्खेवसि रे गद्दहा जव पच्छेसि खादिउ'

अर्थात् "रे मूर्ख, तू जवोंको खिलानेके लिए गर्दभको क्यों बार बार निकालता और पैठाता है?" पश्चात् आगे चलकर दूसरे दिन मार्गमें कुछ बालक खेल रहे थे, उनके खेलनेकी एक काठकी कोणिका किसी गड्ढेमें जा पड़ी। बालक उसके ढूँढनेके लिए इधर उधर फिरने लगे। सो उन्हें देखकर यम मुनिने एक दूसरा खंडश्लोक पढ़ा;—

"अण्णत्थ किं पलोवसि तुम्हे एत्थम्मि णिब्बुड्ढि याछिद्दे अच्छइ कोणिया'

अर्थात् "रे मूर्ख बालको, तुम यहाँ वहाँ क्यों ढूँढते फिरते हो, कोणिका बिलमें पड़ी है।" पश्चात् वहाँसे चलकर एक दिन उन्होंने एक मेंढकको अपने डरसे कमलपत्रमें छिपते हुए देखा। परन्तु जिस ओरको वह जाता था, उस ओरसे एक साँप आ रहा था। तब आपने तीसरा खंडश्लोक बनाकर पढ़ा:—

"अम्हादो णत्थि भयं दीहादो भयं दीसते तुम्ह।'

अर्थात् " रे मेंढ़क, तुझे मुझसे भय नही करना चाहिए, परन्तु दीहादि अर्थात् साँपादिसे तुझे भयकी संभावना है। " इस प्रकार तीन खंडश्लोक बनाकर यम मुनिने आगे गमन किया। और अन्य कोई पाठादिके न आनेसे इन्हींका स्वाध्यायादि करना प्रारंभ कर दिया। अर्थात् जिस समय स्वाध्यायका समय होता था, वे इन्हीं तीन खंडश्लोकोंका पाठ किया करते थे। निदान विहार करते हुए वे धर्म नगरके बागमें जा, कायोत्सर्ग ध्यानपूर्वक ठहरे। यह वही नगर था, जहाँ कि ये पूर्वमें राजा थे। इनके आनेकी खबर सुन, गर्दभ राजा और दीर्घ मंत्री ये दोनों यह समझकर कि कहीं ये हमारा राज्य लेनेको न आये हों, मारनेको आये और यम मुनिके पीछे आ खड़े हो गये। दीर्घ मंत्री मारनेके लिए बार बार तल्वार उठाता, परन्तु यह सोचकर कि व्रतीका वध करनेमें बड़ा भारी पाप होता है, फिर रह जाता। और यही हाल गर्दभका था, अर्थात् वह भी इसी प्रकार तलवार उठा शंकितचित्त हो रह जाता था। इसी समय मुनिके स्वाध्यायका समय हुआ, अतएव उन्होंने अपने पूर्वरचित खंडश्लोकोंका पढ़ना प्रारंभ किया और पहले प्रथम खंडश्लोकको पढ़ा। उसे सुनकर गर्दभने दीर्घसे कहा-मंत्रीजी, मुनिने हमको जान लिया। देखो, वे कहते है कि " कड्ढ पुण णिक्खेवीस रे गद्दहा जवं पच्छेसि खादिदुं " अर्थात् " रे गधे, बार बार क्यों तलवार निकालता है, और फिर क्यों भीतर कर लेता है। " पश्चात् मुनिने दूसरे खंडश्लोकका पाठ किया। तब गर्दभने अनुमान करके कहा-मंत्रीजी, मुनि हमारा राज्य लेनेको नहीं आये है, परन्तु हमको मालूम नहीं है, इस-लिए कोणिकाको (पुत्रीको) बतलानेके लिए आये है। देखो, वे कहते है कि " अण्णत्थ किं पलोवसि तुम्हे एत्थमि णिवुड्ढि याछिद्दे अन्छइ कोणिया " " अर्थात् यहाँ वहाँ खोज क्या करते हो, कोणिका विलमें अर्थात् तहखानेमें पड़ी है। " पश्चात् जब मुनिने तीसरा खंडश्लोक पढ़ा, तब गर्दभने विचार किया कि मुनि यह कहते है कि " अम्हादो णत्थि भयं दीहादो भयं दीसते तुम्ह " अर्थात् " मेरा भय कुछ नहीं है, तुझे दीहादि अर्थात् दीर्घादिसे भय करना चाहिए " इससे जान पड़ता है कि ये दीर्घ मेरे साथ कुछ दुष्टता करेगा। बेचारे

मुनि तो दयावान् है, मोहके वश मुझे सचेत करनेको आये है। इस प्रकार श्रद्धान करके वे दोनों मुनिके पैरोंपर गिर पड़े और धर्मश्रवण करके श्रावक हो गये।

यह देख मुनि भी उत्कृष्ट वैराग्यको प्राप्त हुए और उत्तम चारित्रके प्रभावसे अणिमादि सात ऋद्धिधारी हुए। पश्चात् कुछ दिनोंमें घोर तपस्या कर अष्ट कर्मोको खपा मोक्ष चले गये।

सारांश—यह है कि इस प्रकार ऐसे श्रुत-स्वाध्यायसे भी यम मुनि मोक्ष प्राप्त हुए, यदि दूसरे लोग भी श्रेष्ठ शास्त्रोंका अभ्यास करें, तो क्यों न अभीष्ट पदको पावें? अवश्य ही पावें।

(४) सूर्यमित्र और चांडालपुत्रीकी कथा।



अंगदेश—चम्पापुरी नगरीका राजा चन्द्रवाहन और रानी लक्ष्मीमती थी। राजाके पुरोहितका नाम नागशर्मा था। यह खराब स्वभाववाला और मिथ्यादृष्टि था। उसकी त्रिवेदी नामकी एक स्त्रीसे एक नागश्री नामकी गुणवती कन्या उत्पन्न हुई थी।

एक दिन नागश्री बहुतसी ब्राह्मणोंकी कन्याओंके साथ नगरके बाहर वनमें एक नागमन्दिर था, वहाँ नागकी पूजाके लिए गई। वहाँ सूर्यमित्र आचार्य और अग्निभूति भट्टारक ये दो मुनि तपस्या कर रहे थे। सो उन्हें देख नागश्रीने शान्तचित्त हो नमस्कार किया, और धर्मश्रवण करके पाँच अणुव्रत ग्रहण कर लिये। वहाँसे चलते समय सूर्यमित्र मुनिने नागश्रीसे कहा कि हे पुत्री; यदि तेरा पिता इन व्रतोंको छुड़ावे तो एक काम करना कि हमारे व्रत हमको यहाँ ही आकर सौंप जाना। तब नागश्री "ऐसा ही करूँगी" कहकर अपने घरको गई।

१ यह कथा सुकुमालचारित्रसे उद्धृत की गई है।

नागश्रीके साथ जो अन्य ब्राह्मण कन्यायें थीं, उन्होंने आकर यह सब हाल नागशर्मासे कहा। सुनते ही नागशर्मा आगबबूला हो नागश्रीसे बोला;-" मूर्खिणी, तूने बहुत बुरा काम किया। क्या विप्रों (ब्राह्मणों) की कन्याओंको क्षपणकोंका (जैन मुनियोंका) धर्म धारण करना उचित है? कभी नहीं। सो तू यदि अपना भला चाहती है, तो इसी समय उन व्रतोंको छोड़ दे।" तब पिताके आग्रहसे लाचार हो नागश्रीने कहा;-"हे तात, मुनिराजने कहा था कि यदि तेरा पिता व्रत छोड़नेको कहे तो तू आकर मुझे वापिस सौंप जाना। सो यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो अब मैं उन्हें ये व्रत सौंप आती हूँ। ऐसा कहकर वह उद्यानकी ओर चली। और नागशर्मा भी उसके साथ हो लिया।

मार्गमें किसी युवाको (जवानको) बाँधे हुए कुछ लोग मारनेको ले जा रहे थे। उसे देख नागश्रीने पूछा;-पिताजी, इस पुरुषको लोगोंने क्यों बाँध रक्खा है?" पिताने कहा;-"मैं नहीं जानता, चलो कोटवालसे पूछता हूँ।" कोटवालसे पूछनेपर उसने कहा;-" इसी चम्पा नगरीमें अठारह कोड़ द्रव्यका धनी देवदत्त नामका एक वणिक है। उसकी समुद्रदत्ता भार्यासे उत्पन्न हुआ यह इकलौता वसुदत्त नामका पुत्र है। आज यह अक्षधूर्त नामके जुआरीके साथ जुआ खेलकर एक लाख दीनार हार गया था। सो अक्षधूर्तने अपना जीता हुआ धन सख्तीके साथ इससे मांगा, परन्तु पासमें द्रव्य न होनेसे इसने खफा हो छुरीसे उसका गला काट दिया। इसी अपराधमें हम लोग इसे मारनेको लिये जाते हैं। यह सुन नागश्रीने कहा:-हिंसामें यदि इस प्रकार प्राणदंडका दुःख होता है तो पिताजी, मुनिके पास जो मैंने यह अहिंसाव्रत लिया है, उसे क्यों छोड़ूँ? और आप उसे क्यों छुड़ाते हैं? नागशर्माने कहा:-अस्तु, यदि ऐसा है तो चल इस एक व्रतको रख ले, शेष चार व्रतोंको छोड़ आवें। इस प्रकार निश्चय करके दोनों आगे चले।

एक जगह किसी पुरुषको ऊँचा मुख किये हुए शूलीपर चढ़ा देखकर नागश्रीने पूछा-पिताजी, इस बेचारेको क्यों इतना दुःख दिया जा रहा है? पिताने कहा;-"पुत्री, राजा चन्द्रवाहनपर बड़ी भारी सेनाके साथ एक वज्रवीर्य नामका राजा चढ़कर आया था। उसने देशकी सीमापर डेरा डाल चन्द्रवाहनके पास एक दूतके हाथ कहलाया कि

या तो तुम हमारी सेवा स्वीकार करो, अन्यथा रणभूमिमें आकर हमारा सामहना करो। और जो यह न हो सके तो चम्पानगरी हमारे हवाले करो। तब चन्द्रवाहनने "रणभूमिमे साम्हना ही करूँगा" ऐसा कहकर दूतको विदा कर दिया। और साथ ही वल नामके सेनापतिको बड़ी भारी फौजके साथ वज्रवीर्यका मुकाविला करनेको भेजा। उधरसे वज्रवीर्य भी आ पहुँचा। दोनो सेनाओंमे घनघोर युद्ध होने लगा। तब इस तक्षक नामके पुरुषने जो कि राजाका अंगरक्षक था, डरके मारे रणभूमिमे भागकर राजासे आकर झूठमूठ ही कह दिया कि हे देव, वज्रवीर्यने सेनापतिको मार डाला और उसके हाथी आदि भी छीन लिये। यह सुन राजा अत्यन्त चिन्तातुर हुआ। उधर वल सेनापति विजय पा विपक्षीको बाँध नगरकी ओर लौटा। तब उसके आनेके ठाठवाट देखकर राजाने समझा कि यह हमारा विपक्षी ही चढ़कर आ रहा है, इसलिए उसने लड़ाईकी तैयारी की। किलेका द्वार वन्दकर दिया। कोटपर अच्छे अच्छे वीरपुरुषोंको रक्खे और खुद भी हाथीपर चढ़कर इधर उधर सम्हाल करने लगा। राजाको इस प्रकार घबराया देख, वल सेनापतिने प्रगट हो द्वार खुलवाया और सम्मुख जा नमस्कार किया। राजा प्रसन्न हुआ। उसने वज्रवीर्यका बहुत सत्कार किया व एक सूबेका उसे राजा बना दिया, पश्चात् इस तक्षकके असत्यभाषणको याद कर जिससे कि बड़ी चिंता हुई थी, राजाने इसे दंड देनेकी आज्ञा दी है, इसलिए यह शूलीका दुःख भोग रहा है। यह सुन नागश्रीने कहा:-पिताजी, मैने उन मुनीश्वरोंके पास इसी असत्यका त्याग किया है, जो ऐसा दुःखदाई है। सो अब मै सत्याणुव्रतको कैसे छोड़ूँ? पुरोहितने कहा-अच्छा, इसे भी रख, परन्तु बाक़ीके तीन अवश्य ही छोड़ आना चाहिए। ऐसी बातें करते दोनो फिर आगे चले।

एक स्थानमे एक पुरुषको शूलीमे छिदा हुआ देख नागश्रीने पूछा-इसकी यह दुर्दशा क्यों हुई है? नागशर्माने कहा:-मै नहीं जानता, चल चांडालसे पूछें। तब दोनोंने चांडालसे जाकर पूछा तो उसने इस प्रकार उसकी कथा कह सुनाई;—

"इस शहरमे एक वासुदत्त नामका सेठ रहता है। उसके एक वसुकान्ता नामवाली कन्या है। वह बहुत ही

सुन्दर और जवान है। कुछ दिन पहले वह साँपके काटनेसे मुर्देके समान हो गई थी, मरी समझकर लोग उसे मसानमें ले गये, चिता चुनकर लड़कीकी लाश उसपर रक्खी गई, और उसमें आग लगाना ही चाहते थे कि इतनेमें एक युवक पथिक रूपका पुतला वहाँ आया। वसुकान्ताके रूपको देख उसपर आसक्त हो गया। लोगोंने उसके मरनेका कारण बताया। उसने कहाः-यदि इस लड़कीकी मेरे साथ शादी कर दो तो मैं इसे जीवित कर दूँ" सेठने गरुड़नाभिकी बात मान ली। वह सवेरे तक लाशकी रक्षा करनेके लिए कह, वहाँसे चला गया। सेठने एक एक हजार दीनार [सोनेका सिक्का] की चार थैलियाँ लड़कीके चारो तरफ रख दीं, और चार बहादुर जवानोंको बुलाकर कहाः-यदि तुम लोग इसकी रातभर चौकसी करोगे तो हरएकको एक एक थैली दी जावेगी। वे स्वीकार कर वहीं चौकसी करने लगे अन्य सब लोग अपने२ घर गये।

अगले दिन गरुड़नाभिने, जो गारुड़ी विद्याका अच्छा जानकर था, सर्पका विष उतारकर लड़कीको जिन्दा कर दी। सेठने भी अपनी प्रतिज्ञानुसार उन दोनोंका बड़ी धामधूमसे व्याह करवा दिया।

सुबह चार थैलियोंमेसे जब एक थैली नही मिली, तब सेठने कहा-"तुम चारोंमेंसे एक थैली किसीने ले ली है, वह अपने घर जावे और तीन थैलियाँ दूसरे तीन एक एक ले ले। मगर एकने भी थैली लेना स्वीकार नही किया। आखिर चारो राजाके सामने पेश किये गये। राजाने चण्डकीर्ति नामके अपने कोटवालको बुलाकर कहा-"थैलीके चुरानेवाले मनुष्यको ला वरना तेरा सिर कटवा दिया जावेगा।" कोतवाल पाँच दिनकी अन्दर चोर-को पेश करनेका वादा कर चारोंको साथ ले अपने घर गया और उदास हो पलँगपर लेट रहा।

सुमति नामकी कोतवालके एक चतुर लड़की थी। उसने पितासे उदासीका कारण पूछा, पिताने सब हाल कह सुनाया। हँसते हुए लड़कीने चोरको सौपनेका वादा कर पिताको ढाढ़स बँधाया।

लड़कीने चारोंको अपने घर रखनेके लिए पितासे कहा और आप वहाँसे चली गई। कोतवालने चारोंको रख लिए और सुन्दर मकान उनको रहनेके लिए दे दिये। संध्याको एक बड़ी बढ़िया सेज बिछाई, मखमलके गद्दी

तकिये उसकी शोभाको दुगनी करने लगे, झालर निराली ही छटा दिखाने लगी। सेज सजाकर लड़कीन एक युवकको बुलाया। बड़ी ही मधुर और उसके मनको आकर्षण करनेवाली बातें कहीं। अन्तमें उसको युवकने अपने साथ शादी करनेके लिए कहा। लड़कीने अपनी भी शादी करनेकी इच्छा प्रकट कर कहाः-अगर तुम थैली चुरानेवाले चोरको बता दो तो मैं तुमसे शादी कर लूँ क्योंकि मुझे तुम्हारेपर चोर होनेका शक है। उसने उत्तर दियाः-मैं तीनोंको मसानमें छोड़कर वेश्याके यहाँ गया था, सो तीन पहर रात बीते वापिस आया, पीछेसे क्या हुआ मुझे कुछ पता नहीं है। लड़कीने कहाः-अच्छा, मुझे कुछ दिल बहलानेवाली कथा सुनाओ। युवक बोला-मुझे कोई कथा नहीं आती, तुम ही सुनाओ तब सुमतिने इस प्रकार कहना प्रारम्भ कियाः—

पाटलीपुत्रके सेठ धनदत्तकी लड़की सुदामा अपने घरके पीछेवाले तालाबमें पैर धो रही थी, एक मगरके बच्चेने आकर उसका पैर पकड़ लिया। वह डरकर अपनी रक्षाके लिए चिल्लाने लगी इतनेहीमें उसका बहनोई उधर आ निकला। उसने हँसते हुए कहाः-यदि व्याहके दिन फेरे फिरकर मेरे पास आना स्वीकार करो तो मैं तुम्हें बचा लूँ। निष्कपट लड़कीने मान लिया और धनदेवने उसकी मगरसे रक्षा की। कुछ काल बाद उसकी शादी हुई। लड़की अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेको रात्रिमें सिरसे पैरतक गहनेसे लद, धनदेवके घरकी ओर चली। रास्तेमें चोरने उसे आ घेरी और जेवर सौंपनेको कहा। लड़कीने कहाः-मुझे इसी तरह एक जगह जाना है, मैं लौटकर आऊँगी तब तुझे सब जेवर दे दूँगी। चोरने उसकी बातका विश्वास किया। जब वह आगे बढ़ी, आप भी उसके पीछे हो लिया। आगे चलकर एक राक्षस मिला, और उसने लड़कीको खानेके लिए कहा। लड़कीने राक्षसको भी वही बात कही जो चोरसे कही थी। राक्षस भी विश्वास कर उसके पीछे हो लिया। आगे चलकर एक कोतवाल मिला। कोतवालको भी इस ही तरह वचन दे वह धनपालके पास पहुँची। धनपालको उसे ऐसी भयानक रात्रिमें आई देख बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर अपनी कही हुई बात याद कर बोलाः-मैंने तो अपनी साली समझ केवल तुझसे हँसी की थी, तू मेरी बहिनके समान है, जा अपने घर लौट जा। उन तीनोंने (चोर, राक्षस और कोतवालने) भी उसे सत्यवती समझ उसे कुछ नहीं कहा और

आनन्दपूर्वक उसे अपने घर पहुँचा दी। कथा सुनाकर बोली—बताओ उन चारोंमेसे कौन अच्छा था? उसने धनदेवकी प्रशंसा की। तब उसने बहाना कर उसको वहाँसे अपने स्थानमें जानेके लिए रवाना कर दूसरेको बुलाया। दूसरेको भी उक्त प्रकार सब बातें कह चारों (चोर, राक्षस, कोतवाल, धनदेव) मेसे किसको अच्छा होनेके लिए व थैलीके चोरको बता देनेके लिए कहा। उसने तीनोंको छोड़ भेड़ चुराने जाना. थैलीका हाल जाननेसे इनकार किया व चोरको अच्छा बताया। तीसरेको पूछनेपर अपने आपको भेड़ मारनेमें लगा हुआ बता थैलीके चोरको नहीं जानना कहा; और राक्षसको अच्छा बताया। चौथेने कोतवालको अच्छा बताते हुए कहा:—मै लाशपर दृष्टि लगाए बैठा था मुझे नहीं मालूम कि थैली किसने चुराई।

जब चारोंके दिलोंकी बात सुमतिने जान ली तो चोरको अच्छा बतानेवालेको फिर बुलाया और बड़ी ही प्रसन्नतासे कहने लगी:—मै सम्पूर्णतया तुमको चाहती हूँ, मगर यहाँ रहनेसे हमारा काम नहीं चल सकता। यदि तुम मुझे लेकर कहीं चले चलो तो अच्छा है। बाहिर जानेमे धनकी ज़रूरत पड़ेगी सो पॉच हजारका माल तो मेरे पास है, अगर पॉच सात हजारका माल तुम्हारे पास भी हो तो अपना काम अच्छी तरहसे चल जावेगा। संसारमे कामदेव न मालूम क्या २ करवा देता है। मोह जालमे फॅस परिणामका विचार छोड़ तत्काल ही एक हजारकी थैली जो उसने चुराकर रख दी थी, लाकर सुमतिको दे दी। सुमतिने सवेरे जल्दीसे चलनेका वादा कर उसे अपने स्थानमें जानेको भेज दिया और आपने तत्काल ही सब हाल अपने पिता चंडकीर्तिसे जा सुनाया। कोतवालने प्रसन्न होकर लड़कीकी तारीफ़ की और चोरको थैली सहित सवेरे ही राजाके सामने पेश कर दिया। वही यह चोर है। राजाने इसे शूलीका दण्ड दिया है।

तब नागश्रीने कहा:—पिताजी, चोरको जब शूलीका दण्ड मिलता है तो मैने जो चोरी नहीं करनेका व्रत लिया है, उसे क्यों छोड़ूँ? नागशर्माने कहा:—खैर इसे भी रख ले, शेष जो बचे है उन्हे तो अवश्य ही वापिस लौटा देने चाहिए।

थोड़ी दूर जानेपर उन्होने एक स्त्री देखी, जिसकी नाक कटी हुई थी और पुरुषकी चोटीसे उसका गला बँधा हुआ था। नागश्रीने पूछा:—पिताजी, उसकी ऐसी दशा क्यो हुई है? नागशर्मा बोला:—इसी नगरमे मात्स्य नामके सेठकी जैनी नामवाली स्त्री है। उसके गर्भसे नन्द और सुनन्द नामके दो पुत्र हुए थे। नन्द जब व्यापार करने विदेशोंमे जाने लगा तब उसने मामा सूरसेनसे कहा— मामा, मै द्वीपान्तरोमे जाता हूँ। जबतक मै न आऊँ अपनी पुत्री मदालीका व्याह किसीसे न करना मुझसे ही करना। सूरसेनने कहा:–मै तुझको ही अपनी पुत्री दूँगा मगर तुम अवधि नियत कर जाओ। नन्द बारा वर्षमे आनेको कह व्यापार करने चला गया। मगर साढ़े बारा वर्ष बीत जानेपर भी वह लौटकर नहीं आया। तब सूरसेनने सुनन्दके साथ अपनी लड़कीका व्याहना निश्चित कर व्याह मण्डप सजाया। दोनो ओर उत्सव मनाये जाने लगे। लग्न होनेके पाँच दिन पहले नन्द भी वहाँ आ गया। सूरसेनने उसके आनेके समाचार पा अपनी लडकी उसहीको देना चाहा मगर उसने यह कह कर इनकार कर दिया कि आपने उसको मेरे भाईके साथ व्याहनेकी तैय्यारी कर ली, इसलिए अब वह मेरी पुत्रीके समान है। सुनन्दको भी सारा हाल मालूम हो गया और उसने भी मदालीको अपनी माता कह कर व्याह करनेसे इनकार कर दिया। अतः मदाली कँवारी ही अपनी जवानीके दिन काटने लगी।

उसके मकानके पास ही एक बारह क्रोड़की मालियतका स्वामी नागचंद्र नामका बनिया रहता था। उसके बारह स्त्रियाँ थी। मदाली और इसके परस्पर प्रेम हो गया और दोनों आनन्दसे कामसेवन करने लगे। कोतवालको इनका हाल मालूम हो गया। एक दिन कोतवालने किसी तरह इनको एक साथ पकड़ लिया और दोनोंको राजाके सामने पेश किये। राजाने इनके लिए जो आज्ञा दी उसहीके अनुसार यह दण्ड भोग रहे है। तब नागश्रीने कहा:—पर पुरुषके साथ रमण करनेसे जब ऐसी दशा होती है तो मैने पापदृष्टिसे किसी पुरुषकी तरफ न देखनेका जो नियम लिया है उसे क्यो तोड़ूँ? नागशर्माने इसे भी रखनेकी इजाज़त दे दी। शेष रहे हुएको वापिस मुनिके पास जाकर छोड़ आनेके लिए आगे बढ़े।

एक पुरुषको बाँधकर मारनेके लिए ले जाते देख नागश्रीने उसका कारण पूछा। नागशर्माने उत्तरमें कहा:— यह राजा चन्द्रवाहनका 'वीरपूर्ण' ग्वाला है। एक बार राजाके घोड़ोंके चरनेके लिए रक्खाये हुए घासके खेतमें किसीकी गायें भैंसें घुस गईं थीं, इसने उन सबको लाकर राजाके सामने पेश कीं। राजाने प्रसन्न होकर सबको ले लेनेकी इजाज़त दे दी। राजाज्ञाका यह अनुचित फायदा उठाने लगा, और लोगोंको यह कह २ कर कि राजाने मुझे सारे शहरमेंसे अच्छी २ गायें भैंसे चुन चुन कर ले लेनेकी आज्ञा दी है, उत्तम उत्तम गायें भैंसें लोगोंकी लाने लगा। एक बार इस चुनावमें रानीकी एक उत्कृष्ट भैंस भी उसके घर आ गई। इसलिए रानीने राजासे प्रार्थना की कि यह क्या बात है? तब शोध करनेपर यह सब हाल जानकर राजाने इसे मारनेके लिए बँधवाकर भेजा है।

यह सुनकर नागश्रीने कहा—पिताजी, बहुत परिग्रहकी इच्छाके त्यागका व्रत जो मैंने लिया है, मैं उसे कैसे छोड़ूँ? तब पुरोहितने खिन्न होकर कहा:—तो इसको भी रख ले, परन्तु उस मुनिके पास अवश्य चल। मैं उसको धमकाये विना नहीं रहनेका। उसे मैं समझा दूँगा कि ब्राह्मणकी पुत्रियोंको अब आगे जैनी बनानेका उद्योग नहीं करना। ऐसा कहकर चला, और दूरहीसे मुनिको देखकर बोला—अरे दिगम्बर, मेरी पुत्रीको तूने ये व्रत क्यों दिये? सुनकर मुनिने कहा—पुरोहितजी, मैंने अपनी पुत्रीको व्रत दिये हैं, इसमें तुम्हारा क्या गया? नागशर्मा क्रोधित होकर बोला—तो क्या यह तेरी पुत्री है? तब मुनिने "अवश्य ही यह मेरी पुत्री है" कहकर नागश्रीकी ओर देखा। नागश्री प्रणाम करके उनके समीप आ बैठी और ब्राह्मणदेवता लाल पीले होते हुए राजाके पास दौड़ गये और लगे चिल्लाने कि एक यति मेरी कन्याको जबर्दस्ती अपनी बनाना चाहता है। यह सुनकर सब लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा और जैनी तथा अन्यमती सब शहरके लोग वन्दना करने तथा यह कौतुक देखनेको मुनियोंके पास आये। राजाने दोनों मुनियोंको नमस्कार करके सूर्यमित्र मुनिसे पूछा— महाराज, यह किसकी पुत्री है? मुनिराजने कहा—हमारी पुत्री है। सुनते ही ब्राह्मण फिर क्रोधमें भूत होकर बोला—महाराज, इस पुत्रीको मेरी स्त्रीने नागदेवकी पूजा करके पाई थी, यह संसार जानता है, और यह उसे

अपनी बनाना चाहता है, सो कैसे हो सकती है? मुनिराजने कहा:-यदि यह इस ब्राह्मणकी पुत्री है, तो इससे पूछो कि तूने इसे कुछ व्याकरणादि शास्त्र भी पढ़ाये है कि यों ही पुत्री बनाता है? ब्राह्मण बोला;-तो क्या तुमने इसे कुछ पढ़ाया है? यदि पढ़ाया हो, तो कहो। मुनि बोले—हॉ हमने इसे पढ़ाया है। राजाने कहा;-तो कृपा करके इसकी परीक्षा दिलाइए। मुनिने कहा:—अच्छा परीक्षा ले लीजिए। ऐसा कहकर सम्पूर्ण विद्वानोंके बीचमें मुनिने कन्याके मस्तकपर अपना दाहिना हाथ रखकर कहा;-"हे वायुभूते, मैंने राजगृहमें जो तुझे पढ़ाया था, उसमें परीक्षा दे।" नागश्री यह सुनते ही पंडितोंके सम्मुख कोमल, मीठी और गूढ़ अर्थसे भरी हुई वाणीसे अनेक तरहके शास्त्रोंका उच्चारण करने लगी। जिसे सुनते ही सब लोग चकित हो रहे। राजाने हाथ जोड़कर कहा;—महाराज, मेरे हृदयमें बड़ा कौतूहल बढ़ रहा है, कि आपने नागश्रीकी परीक्षाके लिए तो याचना की और आपने वायुभूतिसे परीक्षा दिलाई। इसका क्या कारण है? आचार्य बोले;-जो नागश्री है, वही वायुभूति है। यदि कहो कि कैसे? तो सुनो:—

"वत्सदेश कोशाम्बि नगरीमें राजा अतिबल और महारानी मनोहरी थी। राजपुरोहितका नाम सोमशर्मा था। उसकी काश्यपी नाम स्त्रीसे अग्निभूति और वायुभूति नामके दो पुत्र हुए थे। बहुत उपाय किये, परन्तु ये दोनों ही कुछ विद्या न पढ़े। अन्तमें पिताके मरनेपर राजाने बिना जाने इन दोनोंको पुरोहित पद दे दिया। कुछ दिनोंके बाद अनेक वादियोंका गर्व नाश करनेवाला एक विजयजिव्हा नामका पण्डित कोशाम्बीमें आया और राज्यद्वारपर शास्त्रार्थ करनेका सूचनापत्र टॉग दिया। शास्त्रार्थ करनेका अधिकार पुरोहितको ही था, इसलिए अन्य पंडितोंने उस वाद (शास्त्रार्थ) पत्रको नहीं लिया और राजाने अपने इन दोनों पुरोहितोंको उसके लेनेकी आज्ञा दी। तब इन दोनोंने उसे लेकर फाड़ डाला। राजाने इनको मूर्ख जान उनके पद छीन लिये और सोमिल नामके विद्वान् ब्राह्मणको पुरोहितपद दे दिया।

इस घटनासे अग्निभूति और वायुभूति दोनोंको अपनी मूर्खतापर बड़ा दुःख हुआ और उसी समय उन्होंने विद्या पढ़नेके लिए विदेशोंमें जाना निश्चय किया। उस समय उनकी माताने कहा;-प्यारे बेटो, यदि तुम्हारा विदेश

जानेको आग्रह (हठ) ही है, तो अन्य कहीं न जाओ, राजगृह नगरमें राजा सुबलके पुरोहित मेरे भाई सूर्यमित्र बड़े भारी विद्वान् हैं। तुम उनके पास जाओ, वे बड़े स्नेहसे तुमको पढ़ावेंगे। पुत्रोंने माताकी बात मान ली, और दोनो राजगृह जाकर अपने मामासे मिले; तथा अपना वृत्तान्त उनसे कहा। सूर्यमित्रने सुनकर विचार किया कि ये अपने पिताके निकट अच्छे भोजन और लाड़ चावके कारण जैसे मूर्ख रह गये, उसी प्रकार यदि मैं इन्हें लाड़ प्यारसे रक्खूँगा, तो यहाँ भी ये खेलने कूदनेमें मस्त हो जावेंगे और विद्याध्ययन नहीं कर सकेंगे। इसलिए इनसे अपना असली भेद छुपाना चाहिए। ऐसा निश्चय कर उनसे कहा;—भाइयो, हमारे तो कोई बहिन ही नहीं है, फिर भानजे कहाँसे होंगे ? मैं तुम्हारा मामा नहीं हूँ। परन्तु यदि तुम पढ़ना चाहते हो, तो भिक्षा माँगके अपना उदरनिर्वाह किया करो, मैं पढ़ा अवश्य दिया करूँगा, और तुम्हें थोड़े ही दिनोंमें अच्छा विद्वान् बना दूँगा। सुनकर दोनों भाई लाचार राजी हो गये, और भिक्षा माँग माँगकर पढ़ने लगे।

कुछ दिनोंके पीछे जब सब शास्त्रोंमें निपुण होकर ये अपने घरको लौटने लगे, तब सूर्यमित्रने दोनोंको वस्त्रादिक भेंट देकरके कहा;—मैं तुम दोनोंका यथार्थ ही मामा हूँ, परन्तु स्नेहमें पड़कर तुम पढ़ नहीं सकते थे, इसलिए उस समय मैं तुमसे अजान बन गया था। फिर स्नेह प्रगट करके विदा कर दिये। इस बातसे अग्निभूति तो अत्यन्त हर्षित हुआ। परन्तु वायुभूति क्रोधमें जल गया कि चांडालने हमको भिक्षा मँगवाकर पढ़ाया। अस्तु दोनो घर आये और अपनी विद्या प्रगट कर पुनः पुरोहित पदको पा सुख और लक्ष्मीका लाभ कर रहने लगे।

उधर राजगृहमें एक दिन राजा सुबलने स्नानके समय तैलसे खराब हो जानेके भयसे अपने हाथकी अँगूठी सूर्यमित्रको दे दी। और सूर्यमित्र उसे अपनी अँगुलीमें पहिनकर घर चला गया। भोजनादिक करनेके बाद जब राजभवनको पुनः जानेकी वेला हुई, तब उसको हाथमें अँगूठी न देख बड़ी चिन्ता हुई। फिर उसने परमबोध नामके एक ज्योतिषी बुलाकर पूछा; अँगूठी मिलेगी या नहीं ? उसने कहा—अवश्य मिलेगी। वह तो इतना कहकर चला गया। सूर्यमित्र अपने महलकी छतपर बैठकर चिन्ता करने लगा।

इतनेमे नगरके बाहर एक उद्यानमे प्रवेश करते हुए सुधर्माचार्य नामके दिगम्बर मुनिपर उसकी दृष्टि पड़ी। उनके दर्शनमात्रसे उसे ऐसा जान पड़ा कि ये अवश्य ही ज्ञानवान् महात्मा होंगे, इनसे पूछनेपर मेरी अँगूठीका पता लग जावेगा। ऐसा विचारकर संध्याके समय लोगोंसे छुपकर उनके निकट गया और यहाँ वहाँ घूमने लगा, लज्जा और अभिमानके मारे कुछ पूछ नहीं सका। तब आचार्य महाराजने स्वयं कहा;-"हे सूर्यमित्र, राजाकी अँगूठी खो गई है, जान पड़ता है तू उसके पूछनेको आया है। सुनते ही सूर्यमित्र आश्चर्य कर उनके पाँवोपर पड़ गया। और बोला;-हाँ, मैं अँगूठीकी पूछनेको ही आया हूँ। कृपाकरके बतलाइए वह कहाँ है? मुनिराजने कहा;-तेरे महलके पीछे बागमें जो तालाब है। उसमे खड़ा हुआ तू सूर्यदेवको जल दे रहा था। उस समय तेरी अँगुलीमेंसे निकलकर कमलकी डंडीमे वह अँगूठी गिर पड़ी थी। वह अभी वहाँ ज्योंकी त्यों पड़ी है। सबेर जाकर तू उसे उठा लाना। यह सुनते ही सूर्यमित्र घर गया। सबेरे जब उसने तालाबमे देखा तो मुनिके कहे अनुसार उसे वह अँगूठी कमलकी डण्डीमे पड़ी मिल गई। उसने उसे लेजाकर राजाको सौंपी और आप किसीसे बिना कुछ कहे सुने उक्त ज्ञानको सीखनेकी अभिलाषासे आचार्य महाराजके पास गया। उन्होंने कहाः-यह विद्या जिससे हम सब वस्तुओंको जान और देख सकते है, निर्ग्रन्थ दिगम्बर हुए बिना प्राप्त नहीं होती। तब सूर्यमित्र अपने कुटुम्बी तथा मित्रादिकोंसे यह कहकर कि वह विद्या जिससे अटूट धनकी प्राप्ति हो सकती है, बिना दिगम्बर हुए नहीं मिल सकती इसलिए मै थोड़े दिनोंके लिए दिगम्बर हो जाता हूँ, विद्या सीखकर फिर आ जाऊँगा। वह दिगम्बर मुनि हो गया और आचार्यसे विद्या माँगी। उन्होंने कहाः-बिना क्रियाकलापके पढ़े यह विद्या फल नहीं देती इसलिए पहले क्रियाकलाप पढ़ लो। सूर्यमित्रने यह भी मान लिया और क्रमसे चारों अनुयोग पढ़े। द्रव्यानुयोगके पढ़ते ही उसके नेत्र खुल गये और उसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई। सूर्यमित्र परम तपोधन साधु हो गया। वह घर-द्वार और विद्याकी बात भूल कर गुरु महाराजके साथ चम्पा नगरीमे आया। वहाँ वासुपूज्य भगवानके निर्वाणक्षेत्रकी प्रदक्षिणा करते समय उसे अवधिज्ञान प्राप्त हुआ। फिर

श्रीसुधर्माचार्य गुरु अपना पद सूर्यमित्र मुनिको सौंप एकाविहारी हुए और वाराणसी नगरीमें कर्मोंका नाश कर मोक्षमें गये।

सूर्यमित्र मुनि एक बार आहारके लिए कौशाम्बी नगरीमें आये। उन्हें अग्निभूतिने नवधाभक्तिपूर्वक आहार दिया। जिस समय वे जाने लगे, अग्निभूतिने प्रार्थना की–भगवान्, वायुभूतिके यहाँ चलकर उसे कुछ शिक्षा दीजिए, वह बड़े दुराचारोंमें लवलीन हो रहा है। मुनिने कहा:–वह अति दुष्ट पुरुष है, उसके यहाँ जाना उचित नहीं। परन्तु अग्निभूतिके विशेष आग्रहसे अन्तमें मुनिको वायुभूतिके घर जाना ही पड़ा। मुनिको देखते ही और उसे यह मालूम होते ही कि यह वही सूर्यमित्र है, वायुभूतिने गालियोंकी बौछार करनी शुरू की और मुनिकी मनमानी निन्दा करने लगा। मुनिने विना कुछ कहे सुने उद्यानका रास्ता लिया। अग्निभूतिको उस मुनिनिन्दासे बड़ा भारी वैराग्य हुआ, इसलिए वह उसी समय मुनिके निकट दीक्षित हो गया।

अग्निभूतिकी स्त्री सोमदत्ताको जब यह बात मालूम हुई कि मेरा पति इस कारण दिगम्बर हो गया है, तब वह अपने देवरके पास गई और बोली;–हे वायुभूति, तूने मुनिकी निन्दा की, इस कारण मेरे पतिने तप ले लिया है। परन्तु अभी तक यह बात कोई जानता नहीं है, सो तू जाकर एकान्तमें उन्हें मनाकर लौटा ला। यह सुनते ही वायुभूति और भी क्रोधित हुआ और अबकी उसने वह गुस्सा अपनी भावजपर ही निकाला। उसने अपनी भावजको जोरसे एक लात मारी और उसे घरसे निकाल दी। इस दुःखसे दुःखी हो, सोमदत्ताने निदानबन्ध किया कि अगले भवमें मैं इसके इन्हीं पैरोंको भक्षण करूँगी, तब मेरी छाती ठंडी होवेगी।

उधर वायुभूति सातवें दिन मर कर मुनिनिन्दाजनित पापके फलसे उदम्बरकोढ़ी (कुष्टी) हुआ। फिर उस कुष्टकी पीड़ासे मरकर उसी नगरमें गधी हुआ। फिर सूकरी, फिर कूकरी, और फिर भूखों मरकर चम्पानगरीमें नील चांडालकी कौशाम्बी स्त्रीके जन्मांध पुत्री हुआ। इसके शरीरसे बहुत दुर्गंध आती थी, जिससे लोगोंको बड़ा दुःख होता था।

एक दिन सूर्यमित्र और अग्निभूति चम्पा नगरीके उद्यानमें आये। उस दिन सूर्यमित्रका उपवास था, इसलिए अकेले अग्निभूति आहारके लिए नगरीमें गये। वहाँ एक जामुनके वृक्षके नीचे बैठी हुई उस जन्मकी अंधी और दुर्गंधयुक्ता चांडालीको देखकर अग्निभूतिको करुणा उत्पन्न हो आई और आँखोंमें आँसू आ गये। अग्निभूतिने लौटकर गुरुसे पूछा:—महाराज, उसके देखनेसे मुझे दुःख क्यों हुआ? तब सूर्यमित्र मुनिने उसकी सब कथा कही और साथ ही यह भी कहा कि वह अत्यन्त निकट भव्य है, आज ही मृत्यु होगी, इसलिए तुम जाकर उसे कुछ उपदेश दो। तब उसी समय जाकर अग्निभूतिने उसे उपदेश दिया और पाँच अणुव्रत दे सन्यास ग्रहण कराया। इतनेमें ही वहाँसे नागशर्माकी स्त्री त्रिवेदी नागोंकी पूजा करके बड़े भारी आडम्बर और वैभवके साथ निकली। इसको जानकर चांडाली अगले भवमें व्रतके प्रभावसे त्रिवेदीकी पुत्री होनेका विचार करने लगी। इसी खयालमें वह मर गई और उसकी लड़की नागश्री हुई, जो कि आज नागपूजाके लिए यहाँ आई थी। इस प्रकार हम दोनों सूर्यमित्र और अग्निभूति हैं। और यह वायुभूतिका जीव है।

मुनिराजके मुखसे यह आश्चर्यजनक कथा सुनकर, नागशर्मादिक ब्राह्मणोंकी बुद्धि फिर गई और उसी समय "अहा! जैनधर्म ही एक सच्चा धर्म है" ऐसा कहते हुए उनमेंसे बहुतसे लोग दीक्षित हो गये अर्थात् उन्होंने दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली। नागश्री और त्रिवेदी आदिक ब्राह्मणियोंने आर्यिकाओंके व्रत ग्रहण किये। राजा चन्द्रवाहन अपने लोकपाल पुत्रको राज्य देकर बहुतसे राजाओंके साथ संसार देह भोगोंसे उदास हो, मुनि हो गये। यह देख उनके अन्तःपुरकी रानियाँ भी आर्यिका हो गईं।

इस प्रकार धर्मकी अपूर्व प्रभावना कर श्रीसूर्यमित्र आचार्यने संघसहित वहाँसे विहार किया और कुछ दिनोंमें राजगृह नगरीके बाहर पहुँचकर उद्यानमें ठहरे। उस समय कौशाम्बी नगरीके राजा अतिबल अपने बड़े काका राजा सुबलको देखनेके लिए वहाँ आये हुए थे। वनपालके मुखसे मुनिराजका आना सुनकर वे अतिबल और सुबल श्री मुनिराजोंकी वन्दना करनेको आये। दीप्ति ऋद्धि सहित सूर्यमित्रको देखकर वे बड़े आश्चर्ययुक्त हुए। दीप्ति ऋद्धिके

प्रभावसे मुनियोंके शरीरकी प्रभा सूर्यकीसी प्रकाशमान होती है। तपके प्रभावसे यह ऋद्धि सूर्यमित्रको उसी समय प्राप्त हुई थी। राजा सुबल यह सोचकर कि वह सूर्यमित्र पुरोहित तपके प्रभावसे ऐसा हो गया है, अतिबलको राज्य देकर दीक्षा लेने लगा। परन्तु अतिबलको स्वयं वैराग्य उत्पन्न हो रहा था, इसलिए उसने राज्य करनेसे इन्कार कर दिया। तब मीनध्वज पुत्रको राज्य दे अतिबलादिक बहुतसे राजाओंके साथ सुबलने दिगम्बर दीक्षा धारण की और उनकी रानियोंने आर्यिकाओंके व्रत अंगीकार किये।

उधर नागश्री आर्यिका बहुत कालतक कठिन तपस्या कर अन्तमें एक महीनेका सन्यास ले शरीर छोड़ अच्युत स्वर्गके पद्मगुल्म विमानमें पद्मनाभ नामकी देव हुई। नागशर्मा भी मरकर उसी विमानमें एक देव हुआ। त्रिवेदी ब्राह्मणी पद्मनाभकी अंगरक्षक देव हुई। राजा चन्द्रवाहन, अतिबल और सुबल आरण स्वर्गमें अतिशय विभूतिशाली देव हुए। इनके अतिरिक्त और सब व्रती अपने २ तपकी योग्यतानुसार यथोचित गतियोंको प्राप्त हुए। सूर्यमित्र और अग्निभूति मुनि विहार करते हुए वाराणसी नगरीमें पहुँचे और वहाँ उन्होंने घोर तपके प्रभावसे चार घातिया कर्मोंका घातकर केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्तमें अग्निमंदिरगिरिके शिखरपर चार अघातिया कर्मोंको भी भस्म कर वे मोक्षमें जा विराजे। पद्मनाभ देव उनकी निर्वाणपूजा करनेको आया। और उसे भक्तिपूर्वक तथा यथाविधि करके अपनी आयुका सागरोपम काल सुखसे व्यतीत करने लगा।

अवन्ति देश-उज्जयिनीके राजा वृषभांकके राज्यमें एक सुरेन्द्रदत्त नामका सेठ रहता था। उसकी स्त्री यशोभद्राके पुत्र नहीं था, इसलिए वह अत्यन्त दुःखी रहती थी। एक दिन राज्यकी भेरियोंकी आवाज सुनकर यशोभद्राने पूछा-ये भेरियाँ क्यों बजाई गई? तब सखीने कहा;-एक सुमतिवर्द्धमान नामके मुनि उद्यानमें पधारे हैं, उनकी वन्दना करनेके लिए महाराज जा रहे हैं। यह सुन यशोभद्रा भी मुनिदर्शनकी अभिलाषिणी होकर उद्यानमें गई। और वन्दना करके मुनिसे पूछा-हे भगवान्, क्या कभी मुझ अभागिनीके पुत्र होगा? मुनिनाथने कहा:-तेरे एक बड़ा धर्मात्मा पुत्र होगा, परन्तु उसका मुख देखने मात्रसे तेरा पति दीक्षा ले लेगा और मुनिका दर्शन करते ही तेरा

वह पुत्र भी मुनि हो जावेगा। यह सुनकर वह हर्ष न चिन्ता करती हुई घर आई। हर्ष उसे इस कारण हुआ कि मेरे पुत्र होगा, और दुःख इससे हुआ कि पति मुझे छोड़कर मुनि हो जावेंगे। कुछ दिनोंमें वह गर्भवती हुई। नौ महीने पूरे होनेपर यशोभद्राने इस डरसे कि पतिको पुत्रका दर्शन न हो जावे, एक तहखानेमें पुत्र प्रसव किया। तथापि बात छुपी नहीं रही। एक दासी प्रसूतिके कपड़े धो रही थी उसे एक ब्राह्मणने देख कर जान लिया कि सुरेन्द्रदत्त सेठके पुत्र उत्पन्न हुआ है। उसने आकर सेठजीको आशीर्वाद दिया। तब सुरेन्द्रदत्त सेठ अपने पुत्रका मुँह देखकर और ब्राह्मणको बहुतसा दान देकर उसी समय दिगम्बर मुनि हो गये। इससे भोली यशोभद्राको बहुत दुःख हुआ। अब वह पुत्रकी रक्षाका बहुत ध्यान रखने लगी कि कहीं इसे भी मुनिके दर्शन न हो जावें। बालकका नाम सुकुमाल रखकर उसने स्वर्णमयी अनेकरत्नजड़ित बहुत सुन्दर सर्वतोभद्र एक बड़ा महल बनवाया। और उसके आसपास चाँदीके बत्तीस महल और भी बनवाये। सुकुमालकुमार उन्हीं महलोंमें रात दिन, राजा प्रजा, और सरदी गरमीका भेद जाने बिना विमानोंके देवों समान बढ़ने लगे और कुमार कालको पूरा कर युवावस्थाको प्राप्त हुए। तब यशोभद्राने महलोंके भीतर ही अनेक धनवान् सेठोंकी चित्रा, रेवती, चतुरिका, मणिमाला, पद्मनी, सुशीला, रोहिणी, सुलोचना और सुदामा आदि बत्तीस कन्याओंके साथ सुकुमालका विवाह कर दिया और प्रत्येकको चाँदीका एक महल सौंप दिया। इस प्रकार उन देवांगनाओंके समान स्त्रियोंमें आनन्द करते हुए सुकुमालकुमार सुखसे काल विताने लगे। परन्तु इस बातसे सर्वथा अजान रहे कि संसारका स्वरूप क्या है और उसमें दुःख है कि नहीं? माताने उनके महलोंमें मुनियोंका आना बंद कर दिया था।

एक दिन किसी व्यापारीने राजाको एक रत्नकम्बल लाकर दिखलाया, परन्तु वह इतना बहुमूल्य था कि लेनेसे असमर्थ होकर राजाने उसे फेर दिया। पीछे वह व्यापारी यशोभद्राके यहाँ गया। यशोभद्राने अपने पुत्रके लिए वह बहुमूल्य कम्बल ले लिया। परन्तु सुकुमालने उसे देखकर कह दिया कि यह कर्कश है, मेरे योग्य नहीं। तब यशोभद्राने अपनी बहुओंके लिए उसकी बत्तीस जूतियाँ बनवा दीं। एक दिन सुदामा उन्हें जूतियोंको पहने हुए अपने मह-

लकी छतपर पश्चिम द्वारके मंडपपर गई थी, लेकिन भीतर जाते समय वह उन्हे वहाँ ही भूल गई। इतनेमे एक गीधने मांसपिंडके धोखे उनमेसे एक पादुका उठा ले गया और राजभवनके शिखरपर बैठकर जब उसने देखा कि यह मांस नही है, तो चोंचसे ठोकर मारकर उसे ऑगनमे गिरा दिया। किसीने लेजाकर उसे राजाको दिखलाया। उसे देखकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। राजाने पूछा—यह अमूल्य पादुका किसकी है? तब किसीके बतलानेपर कि यह सुकुमालकी स्त्रीके चरणोकी पादुका है, राजा कौतुकवश सुकुमालको देखनेके लिए गया। सुकुमालकी माता बड़े आनन्दके साथ राजाको अपने महलमे ले गई और सिंहासनपर बैठाकर हाथ जोड़कर बोली;—महाराज, किस लिए दासीके घर पधारे? राजाने कहा:—तुम्हारे पुत्रको देखनेके लिए आया हूँ। सुनते ही यशोभद्राने कुमारको लाकर सन्मुख खड़ा कर दिया। राजाने उसे बड़े प्रेमसे अपने आधे आसनपर बिठलाया। बादमे यशोभद्राने भोजनके लिए प्रार्थना की। राजाने उसे स्वीकार कर कुमारके साथ भोजन किया। फिर राजाने पूछा—तुम्हारे पुत्रको ये तीन पीड़ाएँ क्यो है? एक तो यह जमकर नही बैठ सकता, दूसरे उजेलेमे इसके नेत्रोसे आँसू गिरते है और तीसरे यह भोजन करते समय एक एक चॉवल खाता है। यशोभद्राने कहा:—महाराज, मेरे कुमारको ये पीड़ाएँ नही है, किंतु ये सब उसकी सुकुमारताके भूषण है। यह दिव्य शय्या और दिव्य गद्दीपर ही सोता बैठता है। परन्तु आज आपके साथ सिंहासनपर बैठा है और मैने उसपर मंगलकामनाके लिए सरसो डाले है। उनकी कर्कशतासे यह जमकर नही बैठ सका। दूसरे अभी तक रत्नोके प्रकाशके सिवाय दूसरा प्रकाश इसने देखा ही नही था, आज आपकी आरती उतारनेमे इसे दीपक देखना पड़ा, उसकी तेजीसे इसकी ऑखोमे ऑसू आये। तीसरे इसके भोजनके लिए संध्याको चॉवल धोकर कमलके कोषोमे रख दिये जाते है और दूसरे दिन सबेरे उनका भात बनाया जाता है। परन्तु आज उन चाँवलोमे आप दोनोके भोजनोकी पूर्तिके लिए थोड़ेसे दूसरे चॉवल मिला दिये गये थे, इसलिए कुमार एक २ चॉवल चुन २ कर खाता था। यह सुनकर राजाको बड़ा भारी आश्चर्य और हर्ष हुआ। पश्चात् राजा यशोभद्राके भेट किये हुए वस्त्राभरण और रत्नादि सुकुमालको ही

प्रेमपूर्वक भेट कर और उसे 'अवन्तिसुकुमार' ऐसा अपर नाम देकर अपने घर गया। अवन्तिसुकुमार उत्तम उत्तम भोगोंको भोगता हुआ काल विताने लगा।

अवन्तिसुकुमारके मामा यशोभद्र महामुनिने अपनी तपस्याके प्रभावसे अवधिज्ञान प्राप्त किया था। एक दिन उन्होंने यह विचार किया कि सुकुमालकी आयु बहुत ही थोड़ी रह गई है। और वह सर्वथा भोगोंमे फँसा हुआ है। कोई ऐसा द्वार भी नहीं है कि जिसमें इस भोगोंसे वैराग्य उत्पन्न होवे, इसलिए इसका कुछ प्रयत्न करना चाहिए। अवन्तिसुकुमारके महलके पास एक उद्यानमें जो जिनमन्दिर था, उसमें उन्होंने योग ग्रहण करनेके दिन ही आकर विश्राम किया। वनमालीके मुखसे उनका यह आगमन सुकुमालकी माताको जब मालूम हुआ, तब वह तत्काल ही उनके पास आई और वन्दना करके बोली—हे नाथ, मुझे अपने पुत्रकी बड़ी भारी चिन्ता है। वह आपके शब्द श्रवणमात्रसे ही तप ग्रहण कर लेगा। और कहीं ऐसा हुआ, अर्थात उसने दीक्षा ले ली, तो निश्चय ही मैं मर जाऊँगी इसलिए दया करके आप किसी दूसरे स्थानपर जाकर योग ग्रहण करें। यह सुन मुनिराज बोले—हे माता, आज योगका दिन है। उसमें जीवोंकी विराधना होनेके कारण यहाँसे दूसरी जगह जाना नहीं बन सकता, इसलिए अब चार महीने तो यहीं चातुर्मासिक प्रतिमायोग धारण करके रहना होगा। यशोभद्रा यह सुनकर विवश चिन्तातुर होती हुई वहाँसे चली आई और मुनिराज प्रतिमायोग धारण कर रहने लगे। शास्त्रोंको पढ़ना पढ़ाना और तत्त्व चिन्तवन करते हुए उन्होंने चार महीने पूरे किये। कार्तिककी पूनोको रातके चौथे पहरमें अपने योगकी निवृत्ति करके जब उन्होंने जाना कि सुकुमालकी निद्रा अब टूट गई है और वह इस समय जगता है तब उसके बुलानेके लिए त्रैलोक्यप्रज्ञप्तिका पाठ करना प्रारंभ किया। उसमें अच्युतस्वर्गके पद्मगुल्मविमानस्थ पद्मनाभ देवकी विभूतिका वर्णन सुनते ही अवन्तिसुकुमारको जातिस्मरण हो आया और उसी समय उन्हें ऐसा वैराग्य हुआ कि महलसे उतरनेको कोई दूसरा उपाय न देख उन्होंने बहुतसे वस्त्रोंको एक दूसरेसे बाँधा और उन्हें नीचे तक लटकाकर उनपरसे ही वे नीचे उतर आये और किसीसे बिना कुछ कहे सुने ही मुनिराजके निकट जिनमंदिरमें पहुँचे। उन्होंने वहाँ जाकर मुनिराजको नमस्कार

किया और दीक्षा माँगी। मुनिराजने कहा:-हे भव्य, तूने अच्छा किया, जो ऐसा निर्मल विचार किया। अब तेरी आयुके तीन दिन शेप है, इसलिए जितने कर्मोंकी निर्जरा हो सके कर डाल। तब सुकुमालने सन्यास ग्रहण करनेकी इच्छा प्रगट कर दीक्षा ले ली और प्रातःकाल ही नगरमे निकलकर एक मनोज्ञ और निर्जन स्थानमे शरीरसे मोह छोड़ प्रायोपगमन सन्यास धारण कर अचल ध्यान लगा दिया। पीछे यशोभद्राचार्य भी वहाँसे निकलकर एक जिनालयमें जा विराजे।

इधर जब सुकुमालकी बत्तीसो स्त्रियोने सुकुमालको नही देखा तब रोते पीटते हुए उन्होंने अपनी साससे जाकर कहा। वह सुनते ही शोकके मारे मूर्च्छित हो गई। सचेत होनेपर यह पागलकी तरह इधर उधर खोज करने लगी। पश्चात् महलसे लटकी हुई वस्त्रमालाको देखकर निश्चय किया कि सुकुमाल वहाँसे उतरकर गया है और वह अवश्य ही मुनिराजके पास गया होगा। परन्तु चैत्यालयमे जाकर देखा तो वहाँ मुनिराजको नही पाया। तब यह समझा कि वे ही सुकुमालको ले गये है। परन्तु कही पता नही लगा। राजादिकोने भी सुकुमालके मोहके वशमे पड़कर बड़ी खोज कराई। परन्तु वह भी सब व्यर्थ गई। उस दिन सुकुमालके शोकके कारण सुकुमालकी स्त्री, माता तथा बंधुवर्गादिकोकी तो बात ही क्या? नगरके पशुपक्षियोने भी आहार पानी छोड़ दिया।

इसी समय जब कि उस निर्जन वनमे स्वपरवैयावृत्यनिरपेक्ष, निर्मलचित्त और मोक्षाभिलाषी सुकुमाल महामुनि द्वादशानुप्रेक्षाओका चितवन कर रहे थे, एक गीदड़ी अपने बच्चेके साथ वहाँ आई और उनके दाहिने पैरको निर्दयी होकर खाने लगी, तथा उसका बच्चा बाये पैरको खाने लगा। लेकिन मुनिराज शरीरसे सर्वथा निष्पृह होकर उस घोर वेदनाको सहने लगे।

यह गीदड़ी और कोई नही, वही अग्निभूतिकी स्त्री सोमदत्ता थी, जिसे सुकुमालने अपने वायुभूतिके जन्ममें लात मारी थी और जिसने प्रतिज्ञा की थी कि मै भवान्तरमे तेरे इसी पैरको खाऊँगी। वह दुष्टिनी अनेक कुयोनियोमे भ्रमण करती हुई यह गीदड़ी हुई थी। सुकुमाल मुनि कंकड़, पत्थर और काँटोंकी भूमिपरसे चलकर इस वनमे आये थे,

इससे उनके कोमल पैरोमेसे खून निकलने लगा था। वह खून मार्गमें सब जगह टपकता आया था। उस रुधिरको चाटती हुई वह पापिनी गीदड़ी उनके पास तक आ गई थी।

कठोरहृदया स्याली मुनिराजका पैर ही खाकर संतुष्ट नहीं हुई, किन्तु उसने पहले दिन थोड़ा थोड़ा करके, जिससे कि उन्हें खूब कष्ट होवे, घुटनेतक खाया, दूसरे दिन जंघा तक खाया और तीसरे दिन आधी रातको पेट फाड़के उसमेसे उनकी आँतोंको खींचा। उनके खींचते ही मुनिराजका आत्मा परम समाधिसहित जरा भी परिणामोंमें मलिनता किये विना शरीर छोड़कर चल दिया और उसी समय सर्वार्थसिद्धि स्वर्गमें वे विविध वैभवसम्पन्न प्रभावशाली अहमिन्द्र हुए।

इस प्रकार सुकुमाल स्वामीके घोर उपसर्ग जीतनेके कारण इन्द्रादिक देवोंके आसन कंपायमान हुए और वे सब स्वामीका काल जानकर "जय जय जय" उच्चारण करते हुए नाना प्रकारके तूर्यादि वाजोंके शब्दोंसे दशा व्याप्त करते हुए, जहाँ स्वामीने शरीर छोड़ा था, उन्होंने उस शरीरकी पूजा करके सच्चे हृदयसे स्तवन किया। इनके वाजोंकी आवाज सुनकर माता यशोभद्रा पुत्रका तपग्रहण और सुगतिगमन जानकर शोकको छोड़ अत्यन्त हर्षित हुई और वड़े उत्साहसे पुत्रकी स्तुति करने लगी। प्रातःकाल होनेपर राजादिक गण्यमान्य पुरुषोंको साथ लेकर यशोभद्रा वहाँ गई। वहाँ वह अपने पुत्र सुकुमालका सुकोमल शरीर जो कि आधा पड़ा हुआ था, देखकर शोकके असह्य वेगके कारण मूर्छित हो गई! इसी प्रकार सुकुमाल स्वामीके स्त्री मित्र बांधवादिकोंको भी वहुत शोक हुआ। राजादिकोंको वड़ा भारी आश्चर्य हुआ कि जिस सुकुमालको सिंहासनपरके एक दो सरसों सहन नहीं होते थे, वही सुकुमाल आज सुमेरुके समान अविचल होकर ऐसे भीषण उपसर्गको सहन करनेमें समर्थ हो गया! धन्य सुकुमाल! तुम धन्य हो!

माता यशोभद्राको सचेत होनेपर ज्ञान उत्पन्न हुआ। वह समझ गई कि यह शरीर ऐसा ही क्षणभंगुर है। इससे तपादिक करके जितना कार्य ले लिया जावे, वही आत्माका कल्याण है। मेरा पुत्र धन्य है,

सौधर्म स्वर्गसे सर्वार्थसिद्धि तक गये। यशोभद्रा आर्यिकाने उग्र तप करके अच्युत स्वर्गमें देव पद प्राप्त किया और शेष आर्यिकाएँ पहले स्वर्गसे सोलहवे स्वर्ग तक कोई देव तथा कोई देवी हुई। सारांश यह कि सबहीने अपने २ पुण्यके अनुसार अच्छी २ पर्याये पाई।

इस प्रकार केवल मायाचारसे ही जिनागमको सुनकर सूर्यमित्र पुरोहित कालान्तरमें सर्वज्ञ पदको प्राप्त हो गया और एक क्षुद्र चांडालिनी सुकुमाल होकर सर्वार्थसिद्धि स्वर्गके अहमिन्द्र पदको प्राप्त हुई। तो विचारनेकी बात है कि अन्य भव्य जन भावसहित जिनागमका पठन, अध्ययन, श्रवण करे, तो क्यों न सर्वोच्च पदको पावें ? अवश्य ही पावें।

(५) भीम केवलीकी कथा।

सौधर्म स्वर्गके कनकप्रभ विमानका स्वामी कनकप्रभ देव अपनी कनकमाला देवीके सहित नन्दीश्वर द्वीपकी वन्दनाको सम्पूर्ण देवदेवियोंके साथ गया था। पूजा, वन्दनाके पश्चात् और दूसरे सब देवोंके चले जानेपर वह जम्बूद्वीप-पूर्वविदेह-पुष्कलावतीदेश-पुंडरीकिनी नगरीके बाहर जो जगत्पाल चक्रवर्तीके बनवाये हुए सुवर्णमयी जिनालय थे, उनकी पूजा करनेके लिए गया। वहाँ शिवंकर नामके उद्यानमें उसे बारह हजार मुनियोंके संघसहित सुव्रताचार्यके दर्शन हुए।

मुनिके उस बड़े भारी संघमें एक भीम नामके साधुको देखकर कनकप्रभको मालूम हुआ कि ये हमारे पूर्वभवको शत्रु हैं। इसलिए उन्हें निःशल्य करनेके लिए कनकप्रभने अपनी स्त्रीसहित मनुष्यका रूप धारण करके सम्पूर्ण मुनियोंकी वन्दनाके अनन्तर भीम साधुको नमस्कार कर धर्मका स्वरूप पूछा। उन्होंने कहा—मैं मूर्ख हूँ, इसलिए

अन्य ऋषियोसे पूछो। तब कनकप्रभने कहा–यदि आप मूर्ख है तो मुनि क्यों हुए? भीमने कहा.—मरने पूर्व भा जानकर मैंने यह दीक्षा ले ली है। 'तो वे ही सुनाइए' कनकप्रभके इस प्रकार पूछनेपर भीम मुनि कहने लगे:—

इसी देशके मृणालपुर नगरमें जहाँ कि सुकेत नामका राजा राज्य करता था, एक श्रीदत्त नामका वैश्य था। उसकी विमला नामकी स्त्रीसे एक रतिकान्ता नामकी कन्या हुई थी और विमलाके भाई रतिवर्मके उसकी कनकश्री स्त्रीसे एक भवदेव नामका पुत्र हुआ था। भवदेवकी गर्दन बहुत लम्बी थी, इस कारण उसका दूसरा नाम उष्ट्रग्रीव भी प्रसिद्ध था। उष्ट्रग्रीवने विदेशको जाते समय श्रीदत्तसे कहा कि आप अपनी पुत्री रतिकान्ताको मुझे देनेकी प्रतिज्ञा करें, मै परदेशको जाता हूँ। यदि आप रतिकान्ता मेरे अतिरिक्त अन्य किसीको देवें तो राजाकी दुहाई है। इस प्रकार आग्रह करके और बारह वर्षकी अवधि देकर भवदेव विदेशको चला गया। इधर जब बारह वर्ष बीत गये तब श्रीदत्तने अपनी बेटी रतिकान्ताका विवाह अशोकदेव और जिनदत्ताके पुत्र सुकान्तके साथ कर दिया।

इसके कुछ दिन पीछे भवदेव विदेशसे आया और यह सुनकर कि मेरी इच्छित रतिकान्ता सुकान्तको व्याह दी गई, ईर्षावश उसने अपने कमाये हुए द्रव्यसे बहुतसे सेवक इसलिए रक्खे कि वे सुकान्तको मार डालें। परन्तु किसी तरह इस बातकी खबर पाकर वे दोनों पुरुष स्त्री शक्तिसेन नामके सहस्रभटकी शरणमें जा रहे। उसके भयसे भवदेव भी झख मारकर बैठ रहा। यह शक्तिसेन शोभा नगरके राजा प्रजापालका सेवक था और जगह बदल कर धन्तग नामके जंगलमें रहता था। सुकान्त और रतिकान्ता शक्तिसेनके जीते जी निर्भय होकर रहे। परन्तु ज्यों ही वह कालके गालमें फँसा कि दुष्ट भवदेवने आग लगाकर उन्हें जला दिया। और पीछे गाँवके लोगोंने यह बात जानकर उसे भी उसी अग्निमें झोंक दिया। इस प्रकारसे मरकर सुकान्त और रतिकान्ता पुंडरीकिनी नगरीके कुबेरदत्त श्रेष्ठीके घर पारावत दम्पति (कबूतर-कबूतरी) हुए और वह भवदेव उसी नगरीके निकट जम्बू ग्राममें मार्जार (बिल्ली) हुआ।

एक दिन वे पारावत-दम्पति जम्बू ग्राममें आये थे कि दुष्ट मार्जारने भक्षण करके उनके प्राण ले लिये। मो दानकी अनुमोदनासे मरकर कबूतर तो हिरण्यवर्म विद्याधर चक्रवर्ती और कबूतरी उसकी पट्टरानी प्रभावती हुई। परन्तु कुछ कारण पाकर दोनोंने ही जिनदीक्षा ले ली।

एक बार हिरण्यवर्म मुनि अपने गुरुवर्यके साथ शिवंकर उद्यानमें आकर विराजमान हुए और प्रभावती आर्यिका भी अपनी गुरानीके साथ वहाँ आई। तब उस नगरके राजादिक सम्पूर्ण जन इनकी वन्दनाको आये। उनके साथ एक विद्युद्वेग नामके प्यादेकी स्त्री भी आई। यह विद्युद्वेग उस नगरके लोकपालका सेवक था और कर्मके संयोगसे यथार्थमें उस मार्जारने मरकर ही यह पर्याय पाई थी अर्थात् वह मार्जार जिसने पारावतोंका भक्षण किया था, मरकर विद्युद्वेग हुआ था।

हिरण्यवर्म मुनिका सम्पूर्ण यौवनयुक्त राजरूप देखकर राजा लोकपालने उनके गुरु गुणचन्द्र योगिराजसे पूछा;— भगवान्, ये महात्मा कौन हैं? और किस कारणसे ऐसी वयमें दीक्षित हो गये हैं? योगिराजने कहा—पूर्व भवमें इसी पुंडरीकिनी नगरीके कुबेरदत्त श्रेष्ठीके घर ये कबूतर-दम्पति थे। जन्मान्तरके विरोधी मार्जारने जम्बू ग्राममें इनका भक्षण कर लिया। सत्पात्रदानके अनुमोदनके फलसे ये श्रेष्ठ विद्याधर-दम्पति हुए। पश्चात् एक बार इस नगरीको देख इन्हें जातिस्मरण हो आया और इसीसे इन्होंने दीक्षा ले ली। यह सुनकर राजादिक पुरुष प्रसन्नचित्त होते हुए अपने २ घर गये। प्यादेकी स्त्री भी अपने घर गई और उसने वह सब वृत्तान्त अपने पति विद्युद्वेगको जाकर सुना दिया। सुनते ही विद्युद्वेगको भी जातिस्मरण हो गया और उससे वह मुनि आर्यिकाको अपना वैरी जान उपसर्ग करनेके लिए तत्पर हो गया। रात्रिको उस दुष्टने मुनि और आर्यिका दोनोंको एकत्र बाँध एक श्मशानकी जलती हुई चितामें पटककर जला दिये।

इसके पश्चात् कुछ दिनोंमें वह पापी राजभंडारकी चोरी करता हुआ पकड़ा गया और राजाज्ञासे चतुर्दशीके दिन मारनेके लिए श्मशानमें भेजा गया। परन्तु चंड नामके चांडालने कहा कि आज मेरे त्रसघातका सर्वथा त्याग

है, इसलिए मैं आज इसे नहीं मारनेका। यह सुनकर राजा अत्यन्त कुपित हुआ और उसने आज्ञा दे दी कि इन दोनोंको आज रात्रिभर लाक्षागृहमें (लाखके घरमें) रख सवेरे आग लगा जला देना। आखिर ऐसा ही हुआ। वे दोनों लाक्षागृहमें बन्द कर दिये गये। रात्रि हुई। चोर विद्युद्वेग चांडालसे बोला—भाई, तू मुझे मारकर सुखी क्यों नहीं होता? क्यों मेरे लिए व्यर्थ ही अपने प्राण देता है? चांडालने उत्तर दिया कि जैनधर्मका अतिशय ही ऐसा है। मैंने चतुर्दशीका उपवास किया है और उसमें अहिंसाव्रत ग्रहण किया है, सो मैं मर जाऊँगा, परन्तु दूसरेको नहीं मारूँगा। यह सुनकर विद्युद्वेगको अपनी करणी याद आई। वह अपनी अतिशय निंदा करता हुआ बोला—अहो! मैं इस चांडालसे भी निकृष्ट हूँ, जो मैंने जैनधर्मके परम उपासक मुनि आर्यिकाका वध किया। हाय! मैंने बड़ा बुरा किया। भाई चांडाल, कृपा कर बतला कि मुनि आर्यिकाघाती मुझ पापीकी अब क्या गति होगी? वह बोला—इस महापापके फलसे सातवें नरकके सिवाय अन्यत्र तुझे स्थान नहीं मिलेगा और वहाँ तुझे तेतीस सागर वर्ष पर्यंत महान् दुःखोंका अनुभवन करना होगा। यह सुनकर विद्युद्वेग अतिशय भयभीत हुआ और चांडालके पैरोंपर पड़कर बोला—हे मित्र, मैं इस दुःखसे कैसे छुटकारा पाऊँ? सो कह। तब उसके इस प्रकार कोमल परिणाम देख चांडालने धर्मोपदेश दिया, जिससे कि उसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई। और इस सम्यक्त्वके प्रभावसे उसने जो सातवें नरककी आयु बाँधी थी, उसे छेदकर पहले नरककी चौरासी लाख वर्षकी आयु बाँधकर नारकी हुआ। चंड चांडाल व्रतके प्रभावसे स्वर्गमें देव हुआ।

कालान्तरमें विद्युद्वेगका जीव नरकसे निकलकर पुण्डरीकिनी नगरीमें समुद्रदत्त सेठकी सागरदत्ता भार्याके भीम नामका पुत्र हुआ, सो बहुत ही मूर्ख अक्षरशत्रु हुआ। एक दिन वह शिवंकर नामके उद्यानमें गया था। वहाँ सुगुप्ताचार्य मुनिको देखकर उसने वन्दना की और उनसे धर्मोपदेश श्रवण किया। पश्चात् उस उपदेशके प्रभावसे अणुव्रत ग्रहण करके जब वह अपने घरको आने लगा, तब आचार्य महाराजने कहा कि भीम, जो तुम्हारा पिता इन व्रतोंका छुड़ाना चाहे तो मुझे वापिस सौंप जाना। भीमने यह बात स्वीकार की और आनन्दके मारे

नाचता हुआ अपने घर गया। यह देख पिताने पूछा-तू नृत्य क्यों करता है? उसने कहा-मैंने अमूल्य जैनधर्म पाया है, उसकी प्रसन्नतामें नृत्य करता हूँ। तब पिता बोला-तूने बहुत बुरा किया। हमारे कुलमें आज तक किसीने भी जिनधर्म ग्रहण नहीं किया है, सो या तो तू हमारे घरसे निकल जा, अथवा इस धर्मको छोड़ दे। इसपर भीमने कहा-पिताजी, मुनिने मुझसे चलते समय कहा था कि यदि तेरा पिता व्रतोंको छुड़ावे तो तू यहाँ आकर हमको सौंप जाना। यदि आपकी इच्छा ऐसी ही है तो मैं उन्हें जाकर सौंपे आता हूँ। ऐसा कहकर वह उद्यानकी ओर चला। सब लोग उसके पीछे हो लिये। मार्गमें एक चोरको शूलीपर चढ़ता हुआ देखकर भीमको मूर्च्छा आ गई, उसे जातिस्मरण हो आया। अपने पूर्व भवका सारा वृत्तान्त अपने पितादि कुटुम्बी जनोंको जो कि साथमें थे, कह सुनाया। जिससे उन्हें जीवके अस्तित्वमें जो सन्देह था वह दूर हो गया और सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हुई। सबने उसी समय अणुव्रत ग्रहण कर लिये और भीम मुनि हो गया। सो हे महाभाग, मैं वही महाप्रर्व भीम हूँ।

यह सुनकर वह कनकप्रभ देव जो मनुष्यके रूपमें आया था, बोला:-मुनिराज, यदि आप अपने उन पूर्व भवके वैरियोंको देखें तो क्या करें? मुनिने कहा-उनसे क्षमा कराऊँ, क्योंकि मैंने विना कारण उन्हें दुःख दिया था। तब देवने कहा-तो देखिए यह मैं आपके साम्हने खड़ा हूँ, जिसे आपने अग्निमें दग्ध किया था। वह शरीर छोड़कर मैं देव हुआ हूँ। यह सुनते ही भीम मुनिने एक बड़ी आह खींचकर अश्रुपात करते हुए कहा-जो मैंने अज्ञानतासे विना कारण दुःख दिया था सो क्षमा करो। मैं अपने किये हुए पापका फल पा चुका। तब देव देवी मुनिके चरणोंपर पड़े। मुनिराज ध्यानस्थ हो रहे।

इसके पश्चात् शुक्लध्यानरूपी खड्गसे घातिया कर्मोंका क्षय करके भीम महामुनिने केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्तमें इन्द्रादिक देवोंसे पूज्य होकर वे मेरुगिरिसे मोक्षको पधारे।

इस प्रकार मुनिघाती चोर भी एक चांडालका उपदेश सुनकर परम गतिको प्राप्त हुआ। यदि अन्य भव्य प्राणी जिनवाणीका, पठन श्रवण करें तो क्यों न त्रैलोक्यनाथके पदको पावें? अवश्य ही पावें।

(६—७) चांडाल और शुनीकी कथा।

इसी आर्यखंडकी अयोध्या नगरीमें पूर्णभद्र और मानभद्र नामके दो वैश्य थे। ये दोनों एक माताके उदरमें उत्पन्न हुए सगे भाई थे। एक दिन जिन मन्दिरको जाते हुए मार्गमें एक चांडाल और कुत्तीको देखकर उन्हें अकस्मात् बिना कारण मोह उत्पन्न हुआ, इसलिए जिनवन्दनाके पश्चात् वहाँ एक मुनिराजके दर्शन कर उन्होंने पूछा:—भगवन्, उन दोनोंपर हमारा मोह होनेका क्या कारण है? मुनिराज कहने लगे—

आर्यखंड मगधदेशके शालि नामके ग्राममें सोमदेव विप्र और उसकी अग्निला स्त्रीके अग्निभूति और वायुभूति नामके दो पुत्र थे। वे दोनों एक दिन राजगृहको (दरबारको) जा रहे थे कि मार्गमें बहुतसे लोगोंको उत्साहपूर्वक यात्राके लिए जाते देख उन्होंने पूछा—ये लोग कहाँ जा रहे हैं? तब किसीने कहा कि नन्दिवर्द्धन दिगम्बराचार्यकी वन्दनाको जा रहे हैं। तब 'ओह! क्या कोई हमसे भी अधिक वन्दनीय है?" इस प्रकार घमंड करते हुए वे दोनों वहाँ गये। देखते ही मुनिने, यद्यपि जानते थे, तो भी प्रयोजनसे पूछा—आप कहाँसे आये? उन्होंने कहा—शालि ग्रामसे। मुनिने कहा—नहीं, हम यह नहीं पूछते। यह पूछते हैं कि किस पर्यायसे यहाँ आये हो? विप्रोंने कहा—हम तो यह नहीं जानते हैं यदि आप जानते हैं तो बतलाइए। मुनि बोले—अच्छा, सुनो—

इसी शालि ग्रामकी सीमामें तुम दोनों स्यालकी पर्यायमें थे। वहाँ एक बड़के खोपड़में कोई प्रमादक नामका कुटुम्बी अपने वस्त्रादिक छोड़कर चला गया था। सो उनपर वर्षाका पानी पड़नेसे गीले हो जानेके कारण वे दोनों

श्याल उन्हे खा गये। परन्तु खाते ही शूल उत्पन्न हुआ, और उसके दुःखके कारण मरकर तुम दोनो हुए। पीछे प्रसाङ्क भी मर गया और अपने ही पुत्रके घर पुत्र हुआ। सो संसारकी विचित्र अवस्था देखकर गूँगा हो रहा है, पूर्वभवके स्मरणके कारण किसीसे कुछ कह नहीं सकता है। अकस्मात् उस समय वह गूँगा वहीं उपस्थित था। सो मुनिके वचन सुनकर लोगोने उससे पूछा तो वह मुँह वोलने लगा और अपनी सब कथा ज्योंकी त्यों कहने लगा। यह देख लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। पीछे वह गूँगा वैराग्य प्राप्त हो दिगम्बर हो गया। उसके साथ और भी अनेक लोगोने दीक्षा ले ली। परन्तु अग्निभूति और वायुभूतिके चित्तपर इसका बुरा असर हुआ। मुनिका सामर्थ्य देख उन्हे उलटा कोप हुआ। अतएव रात्रिको वे दोनों सलाह करके मारनेको आये। परन्तु उस समय क्षेत्रपालने उन्हें ज्योंके त्यों कील दिये। सवेरे लोगोंने उनके इस कृत्यको देखकर अतिशय निंदा की और माता पिताने क्षेत्रपालसे प्रार्थना करके उनकी रक्षा कराई।

पश्चात् वे दोनों श्रावक हो गये और अन्त समयमें समाधिपूर्वक मरण करके प्रथम स्वर्गमें देव हुए। पश्चात् वहाँसे चयकर अयोध्या पुरीके श्रेष्ठी समुद्रदत्त भार्या धारिणीके तुम दोनों पूर्णभद्र और मानभद्र पुत्र हुए। और तुम्हारे माता पिताके जीव नरक तिर्यंच योनिमें परिभ्रमणकर चांडाल और कूकरी हुए है। सो उन्हें देखकर पूर्व जन्मके संस्कारसे तुम्हें मोह उत्पन्न हुआ है।

यह कथा सुनकर उन दोनोंने कूकरी और चांडालको जिन भगवान्‌के वचनरूपी अमृतके पानसे परितृप्त किया। और उन्होने भी सन्याससंयुक्त अणुव्रत ग्रहण कर लिये। पश्चात् चांडाल एक महीनेमें सन्यासपूर्वक मरण करके सोलहवें स्वर्गमें नन्दीश्वर नामका महर्द्धिक देव हुआ। और कूकरी शरीर छोड़कर सातवें दिन उसी नगरके राजा भूपालके रूपवती नामकी पुत्री हुई।

रूपवतीके यौवनवती होनेपर उसके पिताने उसका स्वयंवर रचा। उस समय जब कि वह वरमाला लेकर स्वयंवरके लिए तैयार हो रही थी, उसी महर्द्धिक देवने आकर समझाया कि अब तू इस संसार जालमें क्यों फँसती है?

क्या तू पूर्वभवके दुःखोको भूल गई ? तब देवके सम्बोधनसे रूपवतीको अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न हुआ, इसलिए वह आर्यिकाके व्रत धारणकर समाधिपूर्वक मरण करके स्वर्गमे देव हुई।

इस प्रकार एक वार भी वचनोकी भावनासे (पूर्णभद्र मानभद्रके उपदेशसे) चांडाल और-कूकरी दोनो ऐसी उत्तम गतिको प्राप्त हुए। यदि अन्य जन निरन्तर जिनवाणी और जिनधर्मकी सेवा करे तो क्या उच्च पदको नही पावे ? अवश्य ही पावें।

(८) सुकौशल मुनिकी कथा।

अयोध्या नगरीमें कीर्तिधर नामका राजा और सहदेवी नामकी उसकी रानी थी। एक दिन सूर्यग्रहण देखकर राजा संसारसे उदास हो दीक्षा लेनेके लिए जाने लगा। परन्तु उसके कोई पुत्र नही था, इस कारण राज्यमंत्रियोने उसे आग्रह करके दीक्षाके लिए नही जाने दिया। तब राजा उदासीन वृत्तिसे राज्य करने लगा। कुछ दिनोमे सहदेवीके गर्भमे पुत्र आया और इस डरसे कि राजा यह जान लेगे तो दीक्षा ले लेंगे, उसने एक गुप्त घरमे पुत्र प्रसव किया। परन्तु वात छुपी न रही। रानीकी दासी प्रसूतिके कपड़ोंको धो रही थी, उसे एक ब्राह्मणने देख लिया। जिससे वह आनन्दित हो राजाके पास वधाई देनेके लिए आया। तब राजा विप्रको द्रव्यादि दे पुत्रको राज्य सौंप दीक्षित हो गया।

पुत्रका नाम सुकौशल रक्खा गया। वह दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि करके युवावस्थामें महामंडलेश्वर राजा हो गया। यह भी मुनिके दर्शनसे कहीं मुनि न हो जावे, इस डरसे माता सहदेवीने अपनी राजधानीमे मुनियोंका आना ही विलकुल वन्द कर दिया।

एक दिन राजा सुकौशल अपनी माता सहदेवीके साथ महलकी छतपर बैठे हुए हवा खा रहे थे। उस समय कीर्तिधर मुनि जो इनके पिता थे चर्याके लिए नगरमें आते हुए दिखाई दिये। परन्तु द्वारपालने उन्हें नगरमें नहीं आने दिया। वे दूसरी ओरको चले गये। यह देख सुकौशलने अपनी मातासे पूछा-यह कौन पुरुष आता था, जिसे द्वारपालने नहीं आने दिया? माताने कहा-बेटा, यह कोई रंक पुरुष था, तुम्हारे देखने योग्य नहीं था। सहदेवीके ये वाक्य सुनकर सुकौशलकी धात्री (धाय) रोने लगी। बिना कारण रोते हुए देखकर सुकौशलने उससे पूछा-क्यों रोती है? वह बोली;-जिसे तुम्हारी माता रंक और अदर्शनीय कहती है, वे तुम्हारे पूज्य पिता महातपस्वी कीर्तिधर मुनि है। उनके लिए ऐसे अपमानके शब्द सुनकर ही मुझे रोना आया है। यह सुनकर राजा सुकौशल यह कहते हुए वहाँसे उठ खड़े हुए कि जो अवस्था मेरे पिताने धारण की है, उसीको मैं भी धारण करूँगा और उद्यानकी ओर चले। उनके पीछे अन्तःपुरादिके लोग भी गये। वहाँ उक्त मुनिराजके निकट जाकर बोले—हे भगवन्, हे मुनिराज, मुझे दीक्षा दीजिए। सुकौशलके वैराग्यको देख उनकी रानी चित्रमाला छाती पीट पीटकर रोने लगी। परन्तु उसे मुनिराजने रोककर कहा-बेटी, छाती मत पीट। गर्भके बालकको कष्ट होगा। सुकौशलने पूछाः- महाराज, क्या इसके गर्भमें पुत्र है? मुनिराज बोले-हाँ! इसके भाग्यशाली पुत्र होगा। तब सुकौशलने प्रजाजनोंसे कहाः-तुम लोग इसका दुःख न करो कि कोई राजा नहीं है। मेरे पीछे मेरा पुत्र जो कि चित्रमालाके गर्भमें है, तुम्हारा राजा होगा। इसके पश्चात् सुकौशल गर्भका पट्टबंध करके दीक्षित हो गये और सकल आगमोंके पाठी होकर गुरुके साथ तप करने लगे।

एक बार एक पर्वतपर वृक्षके नीचे वर्षाकालका चातुर्मासिक प्रतिमायोग पूर्ण करके सुकौशल मुनि मार्गकी परीक्षाके लिए वहाँसे चले थे कि सामने एक खानेको दौड़ती हुई डरावनी व्याघ्रीको (बाघनीको) देख वे ध्यान धारणकर निश्चल हो गये। यह व्याघ्री सुकौशलकी माता सहदेवी थी। वह अपने पुत्रके शोकसे आर्तध्यानपूर्वक मरण करके इस पर्वतपर व्याघ्री हुई थी। दुष्टाने उस समय ही अर्थात् जब सुकौशल मुनि ध्यानस्थ हो रहे थे, भक्षण करना

प्रारंभ कर दिया। परन्तु मुनिराज कुछ भी नहीं घबराये। शरीरसे ममत्व छोड़ आत्मलीन हो रहे। निदान परम शुक्लध्यानके प्रभावसे उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया और अन्तर्मुहूर्तमें वे शरीर छोड़कर सिद्ध लोकमें जा विराजे।

उस समय "जय! जय! सुकौशल मुनिकी जय हो। जिन्होंने तिर्यंचका घोर उपसर्ग सहन करके मोक्ष लाभ किया" इस प्रकार स्तुति करते हुए आकर देवोंने निर्वाण पूजा की और वादित्रादि बजाये। उनके शब्दोंसे सुकौशल मुनिका उपसर्ग तथा निर्वाणगमन जान, कीर्तिधर मुनिने निर्वाण स्थलपर आकर केवलीकी स्तुति तथा निर्वाण क्रिया की। पश्चात् उस व्याघ्रीको देखकर वे बोले—हे सहदेवि, पूर्व जन्ममें एक दिन सुकौशलके शरीरपर केशरकी ललाई देखकर तुझे मूर्च्छा आ गई थी कि हाय! मेरे पुत्रके यह रक्त किस कारणसे आ गया! और अब इस जन्ममें व्याघ्री होकर तू उसी पुत्रीको खा गई! जिसके वैराग्य शोकसे तूने आर्तध्यानपूर्वक शरीर छोड़ा था। यह हृदयवेधी वचन सुनते ही व्याघ्रीको जातिस्मरण हो गया। अपने घोर कृत्यको स्मरण करके वह पश्चात्ताप करती हुई शिलासे अपना सिर फोड़ने लगी। मुनिराजने उसे परमागमका श्रवण कराकर समझाया, जिससे कि उसने सम्यक्त्वपूर्वक अणुव्रत धारण कर लिये और अन्तमें सन्यासपूर्वक शरीर छोड़कर वह सौधर्म स्वर्गमें देव हुई, जहाँ कि भोगोंकी सामग्री अतिशय रहती है।

इस प्रकार मुनिका भक्षण करनेवाली व्याघ्री भी परमागमके श्रवणसे देव हो गई। यदि संयत प्राणी परमागमका श्रवण, अध्ययन करे, तो क्यों न सम्पूर्ण इच्छित फलोंको पावे? अवश्यमेव पावे।

इति श्रीकेशवनन्दिदिव्यमुनिशिष्यश्रीरामचन्द्रमुमुक्षुविरचित पुण्यास्रवकथाकोषकी सरलभाषाटीकामें श्रवणफलाष्टक नाम तीसरा अष्टक पूर्ण हुआ।

अथ शीलफलाष्टक।

(१-२) राजा मेघेश्वर और रानी सुलोचनाकी कथा।

एक समय सौधर्म इन्द्र अपनी सुधर्मा नामकी सभामें शीलव्रतका वर्णन कर रहा था। उस समय एक रतिप्रभ नामके देवने पूछाः-हे देव, जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें यथावत् शीलव्रतका पालन करनेवाला कोई मनुष्य है या नहीं? तब इन्द्रने कहाः-हाँ! कुरुजांगल देशमें एक हस्तिनापुर नामका नगर है। वहाँका राजा मेघेश्वर यथावत् शीलव्रतका धारण करनेवाला है और उसकी रानी सुलोचना है, सो वह भी अटल शीलव्रतकी धारण करनेवाली है। इस राजाने पूर्वभवमें एक विद्या सिद्ध की थी। सो किसी विद्याधरके जोड़को देखकर जातिस्मरणके कारण वह फिर भी वशीभूत हो गई है। एक दिन राजा अपनी रानीके साथ कैलाशपर्वतपर वन्दनाके लिए गया। समवसरणमें जाकर उसने श्रीऋषभदेवको नमस्कार किया, स्तुति करके बाहर आया। पश्चात् किसी एकान्त स्थानमें उसने अपनी रानीके साथ क्रीड़ा की, इससे विमानके भीतर ही रानीको निद्रा आ गई। तब राजा वनमें क्रीड़ा करने लगा। वहाँ उसकी दृष्टि एक सुन्दर शिलापर पड़ी, सो उसीपर ध्यान लगाकर बैठ गया, जो कि अब भी वहींपर बैठा है। और रानीने भी सोतेसे उठकर राजाको न देखकर कायोत्सर्ग ध्यान धारण कर लिया है। यह सुनकर वह देव उसी समय उन दोनोंकी परीक्षा करनेके लिए वहाँ गया और अपनी देवीको राजाके पास भेजा कि तू तो जाकर किसी तरह राजाका शील भंग कर, मैं रानीके पास जाता हूँ। देवीने राजाके पास जाकर उसे अनेक प्रकारके हावभाव विभ्रमविलास दिखाकर वशीभूत करनेका प्रयत्न किया परन्तु राजाका चित्त चलायमान न हुआ। मणिके दीपककी तरह दृढ़तासे स्थिर ही रहा। इसी प्रकार उस देवने भी रानीके पास जाकर पुरुषोंकी चेष्टारूप अनेक प्रयत्न किये। परन्तु रानीका चित्त भी चलायमान न हुआ। तब दोनोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। पश्चात् उन्होंने भक्तिपूर्वक राजा रानी दोनोंको हस्तिनापुर लेजाकर महागंगाके जलसे स्नान कराया और स्वर्गलोकके वस्त्र आभूषणोंसे भूषित किया। इस तरह राजा रानीकी पूजा करके

देव देवीसहित अपने स्थान गया और राजा रानीके साथ सुखपूर्वक राज्य करने लगा। इस प्रकार यद्यपि वे दोनों राजा रानी महापरिग्रही महारागी थे, तथापि केवल शीलव्रतके प्रभावसे ही देवोंकर पूजित हुए। सारांश जो कोई मनुष्य अखंड शील पालन करता है वह ऐसी ही अनेक महिमाओंको प्राप्त होता है। ऐसा जानकर शीलका सबको पालन करना चाहिए।

---

(३) कुबेरप्रिय सेठकी कथा।

जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें पुष्कलावतीदेश और उसमें पुंडरीकिणी नामकी एक नगरी है। वहाँका राजा गुणपाल और उसकी एक रानी कुबेरश्रीसे वसुपाल और श्रीपाल नामके दो पुत्र थे। रानी कुबेरश्रीका भाई कुबेरप्रिय था, जो रूपमें कामदेवके समान और चरमशरीरी था। उक्त राजाकी एक दूसरी रानी सत्यवती भी थी, जिसका भाई चपलगति राजाका मंत्री था। एक दिन राजाने एक अपूर्व नाटक देखा और बहुत ही प्रसन्न हुआ। पश्चात् अपने यहाँ रहनेवाली उत्पलनेत्रा नामकी वेश्यासे उसने कहा कि ऐसा अच्छा नाटक तो मेरे ही राज्यमें हुआ है। तब उस वेश्याने कहा–महाराज, यह कुछ भारी कौतुक नहीं है, अपूर्व कौतुक तो मैंने देखा है, जो आपसे निवेदन करती हूँ। एक दिन आपकी सभामें बैठे हुए कुबेरप्रिय सेठको देखकर मैं कामदेवकी पीड़ासे अत्यन्त व्याकुल हुई। उसी समय एक अच्छी दूती उक्त सेठके पास भेजी। उस दूतीने जाकर मेरा यह सब हाल सेठसे कहा। परन्तु सेठने उत्तर दिया कि मेरे स्वदारसन्तोष (परस्त्रीत्याग) व्रत है। यह सुनकर मैं लाचार हो गई। एक वार चतुर्दशीके दिन श्मशानभूमिमें वह सेठ योगधारण करके बैठा था। सो मैं उसको वैसी ही अवस्थामें अपने घर ले आई और सोनेके महलमें ले जाकर उसे अनेक चेष्टाएँ दिखाई, परन्तु उस सेठका चित्त चलायमान न कर सकी। आखिर उसको उसी श्मशान भूमिमें पहुँचवा दिया। और मैंने उसी समयसे ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार कर लिया है।

सो हे राजन्, मैं वेश्या होकर भी उस सेठका चित्त चलायमान न कर सकी, यह बड़ा कौतुक और आश्चर्य है। तब राजाने कहा–उस सेठकी सब ही संतान ऐसी ही शील पालनेवाली है, कुशीली नहीं है।

उत्पलनेत्राने ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया है, यह किसीको ज्ञात नहीं था, इसलिए एक दिन नगरके कोतवालका पुत्र उसके घर आया और बोला–शृंगारविलेपनादि करो। परन्तु इतनेमें ही मंत्रीका पुत्र आ पहुँचा। तब वेश्याने उसके भयसे कोतवाल पुत्रको किसी संदूकमें बंद कर दिया और मंत्रीपुत्रके साथ बातचीत करने लगी। इतनेमें ही चपलगति मंत्री आया। उसको आते हुए देखकर उसके डरसे उस मंत्री पुत्रको भी वेश्याने उसी संदूकमें बंद कर दिया। चपलगतिने आकर कहा–हे उत्पलनेत्रे, तू शृंगारादि कर लेना, मैं शामको बहुतसा द्रव्य लेकर आऊँगा। उत्पलनेत्राने कहा–चपलगति, आप जब अपनी बहिन सत्यवतीके विवाहमें मेरा हार ले गये थे, तब आपने कहा था कि सत्यवतीके विवाहमें पीछे तेरा हार दे देवेंगे। सो अब वह हार दे दीजिए। चपलगतिने कहा–अच्छा, तेरा हार दे देंगे। तब उस वेश्याने कहा–हे संदूकमें बैठे हुए देवो, इस विषयमें तुम मेरे साक्षी हो।

दूसरे दिन राजाकी सभामें जाकर उत्पलनेत्राने चपलगतिसे हार माँगा। चपलगतिने कहा–कहाँका हार? मैं नहीं जानता तूने हार किसको दिया था? वेश्याने कहा–यदि खबर ही नहीं है तो कल दिन क्यों कहा था कि मैं तेरा हार दे दूँगा? मन्त्रीने कहा–नहीं, मैंने ऐसा कभी नहीं कहा। तब राजाने कहा–उत्पलनेत्रे, तेरा इस विषयमें कोई साक्षी भी है? उसने कहा–हाँ महाराज, है। राजाने कहा–तो उसको बुलाओ, तभी निर्णय होगा। राजाके कहनेसे संदूक मँगाया गया। तब वेश्याने कहा–हे संदूकमें बैठे हुए देवो, सत्य कहो कि कल चपलगतिने मुझे हार देनेको कहा था या नहीं? तब संदूकमें बैठे हुए उन दोनोंने कह दिया—हाँ! अवश्य ही कहा था। इस कौतुकको देखकर राजाने संदूक खुलवाकर देखा तो उसमें मंत्री पुत्र और कोतवाल पुत्र निकले। उन्हें निकलते हुए देखकर सब सभाके लोगोंने बड़ी हँसी की, जिससे वे दोनों बड़े लज्जित हुए। राजाको इस कौतुकसे वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने सत्यवतीको सेवक भेजा और कहा कि तेरे विवाहमें चपलगति जो उत्पलनेत्राका हार लाया था सो

दे दे। सत्यवतीने वह हार उस सेवकको दे दिया। सेवकने राजाको और राजाने उसी वेश्याको दे दिया। पश्चात् राजाने क्रोधके वशीभूत होकर चपलगतिकी जिव्हा (जीभ) काटनेकी आज्ञा दी, परन्तु कुवेरप्रियने राजासे निवेदन करके चपलगतिकी जीभ नहीं काटने दी। राजाने कुवेरप्रियको मंत्रीपद दिया। कुवेरप्रियके मंत्री होनेसे चपलगतिको ईर्षा और क्रोध उत्पन्न हुआ तथा सत्यवतीने हार दे दिया, इससे उसपर भी वह क्रोध करने लगा और रात दिन इन दोनोका बुरा विचारने लगा।

एक दिन यह चपलगति विमलजला नदीपर क्रीड़ा करनेके लिए गया। वैलोके झुण्डमे वहॉ उसने एक सुन्दर मुद्रिका (अँगूठी) देखी और उठा ली। इतनेमे ही व्याकुलचित्त चितागति नामका विद्याधर वहॉ आकर इधर उधर कुछ ढूँढ़ने लगा। तव चपलगतिने उससे पूछा--भाई, इधर उधर क्या देखते हो? विद्याधरने कहा-मेरी मुद्रिका खो गई है, उसको ढूँढ़ रहा हूँ। यह सुनकर चपलगतिने उसे मुद्रिका दे दी। विद्याधरको संतोष हुआ। उसने चपलगतिसे पूछा-आप कौन है? चपलगतिने कहा-मै कुवेरप्रियका देवपूजक (सेवक) हूँ। विद्याधरने कहा--जो तुम कुवेरप्रियके सेवक हो तो कुवेरप्रिय मेरा मित्र है, उसको यह मुद्रिका दे देना। यह काममुद्रिका है, इसके प्रतापसे मनचाहा रूप वन जाता है। मै उससे फिर कभी यह मुद्रिका वापिस ले लूँगा। ऐसा कहकर वह मुद्रिका दे विद्याधर तो चला गया और चपलगति उसे लेकर वहॉसे लौटा। घर आकर उसने अपने भाई पृथुको सिखाया कि चतुर्दशीके सायंकालके समय तू इस मुद्रिकाको पहनकर सत्यवतीके घर जाना और जब वह तुझे आसनपर बिठा देवे, तव अपने मनमे ऐसा विचार करके कि "मेरा रूप कुवेरप्रियकासा हो जाय" इस अँगूठीको अपने चारो तरफ फिराना, तब तेरा रूप कुवेरप्रियकासा हो जायगा। फिर सत्यवतीके पास ही कामचेष्टा भ्रूविक्षेपादिक करना। उस समय मै राजाके पास रहूँगा, इसलिए अपना काम वन जायगा। चतुर्दशीके दिन पृथुने ऐसा ही किया और चपलगतिने उसी समय राजासे कहा-महाराज, इस समय कुवेरप्रिय सत्यवतीके साथ कामक्रीड़ा करता है। मैने पहले यह वात कई वार सुनी थी, परन्तु वह आज प्रत्यक्ष हो गई। राजाने कहा-नही, कुवेरप्रियने आज उपवास किया है, उसकी यह वात

संभव नहीं हो सकती। चपलगतिने यह कहकर कि महाराज, प्रत्यक्षमे क्या संदेह है? चलिए स्वयं न देख लीजिए। राजाको लेजाकर अपने भाईको कुवेरप्रियके रूपमें दिखला दिया और कहा-महाराज, इन दोनोंको दंड मिलना चाहिए। राजाने कहा-अच्छा तुम्ही इसका दंड दो। चपलगतिने "बहुत अच्छा" कहकर कुवेरप्रियको सिर काटनेका हुक्म दिया और सत्यवतीकी नाक काटनेका। महा न्यायवान् कुवेरप्रियको कल सवेरे मारूंगा, और सत्यवतीकी नाक काटूंगा, ऐसा विचार कर अपने भाईको लेकर वह अपने घर गया और भाईको घर छोड़कर श्मशानभूमिसे कुवेरप्रियको उठा लाया। नगरवासियोंको यह सुनकर बड़ा क्षोभ हुआ। सेठ कुवेरप्रियने प्रतिज्ञा की कि जो मैं इस उपसर्गसे बचूंगा, तो पाणिपात्रमे भोजन करूंगा। तथा ऐसी ही प्रतिज्ञा सत्यवतीने की कि मैं बचूंगी तो आर्यिका हो जाऊंगी। और जो इष्टदेवकी पूजा करनेका घर था, वह उसमे कायोत्सर्ग धारण कर बैठ गई। राजा दुःखसे व्याकुल होकर अपनी शय्यापर पड़ रहा। सवेरे ही चपलगति कुवेरप्रियको केश पकड़कर श्मशानभूमिमे लाया और वहॉं उसके मारनेके लिए चाण्डालको बुलाया। पश्चात् चांडालको तलवार देकर आज्ञा दीः-इसका काम तमाम कर दो। जिस समय उसके मारनेकी आज्ञा हुई, उसी समय उसके परम शीलके प्रभावसे देवोंके तथा असुरोंके आसन कंपायमान हुए और अवधिज्ञानसे कुवेरप्रियपर उपसर्ग जानकर वे शीघ्र ही वहॉं आये। इधर कुवेरप्रियका यह हाल देखकर समस्त नगरके लोग हाहाकार करने लगे और "कुवेरप्रिय! हाय, यह तुम्हारा क्या हाल हुआ?" ऐसा चिल्लाते हुए दुःखी होकर उसकी ओर देखने लगे। चांडालने यह कहकर कि 'अब कुवेरप्रिय, अपने इष्टदेवताका स्मरण कर लो' उसके गलेपर तलवारका प्रहार किया। परन्तु वह तलवार कुवेरप्रियके कंठका स्पर्श करते ही उसके कंठमे सुन्दर हाररूप परिणत हो गई। तब चांडाल "जय जय" शब्द करता हुआ अलग जा खड़ा हुआ। यह देखकर चपलगतिको और भी ईर्षा हुई, इसलिए उसने सेवकों सहित और भी अनेक शस्त्रोंका वार किया। परन्तु वे समस्त शस्त्र कोई फलरूप और कोई पुष्परूप हो गये। देवोंने पंचाश्चर्य किये। यह खबर राजाको भी हुई। इसलिए उसने आकर चपलगतिका काला मुँहकर गधेपर चढ़ाकर देशसे निकलवा दिया और कुवेरप्रियसे क्षमा मॉंगी। कुवेरप्रियने क्षमाकरके कहा-मैं तो दिगम्बरीय दीक्षा धारण करूंगा। राजाने कहा-मैं

भी धारण करूँगा। तव वसुपालको राज्य श्रीपालको यौवराज्य पद और कुवेरप्रियके पुत्र कुवेरकांतको श्रेष्ठी पद देकर उन्होंने अनेक जनोंके साथ जिनदीक्षा ग्रहण की। सत्यवती आदिक अनेक रानियोंने भी आर्यिकाके व्रत धारण किये। उस चांडालने प्रतिज्ञा की कि मैं भी पर्वके दिनोंमे अहिंसाव्रत और उपवास करूँगा। यह वही चांडाल है, जिसने लाक्षागृहमें (लाखके घरमे) विद्युद्वेगके लिए धर्मोपदेश दिया था। कुवेरप्रिय और गुणपाल मुनिने घोर तप करके कैलाशपर केवलज्ञान प्राप्त किया और कुछ काल वाद वहींसे मोक्षमें गये। इस तरह कुवेरप्रिय वहुत परिग्रही होनेपर भी देवोंके द्वारा पूजित हुआ। शीलके प्रभावसे क्या नहीं हो सकता है? अर्थात् सव कुछ हो सकता है।

---

(४) सीताजीकी कथा।

सती सीता रामचन्द्रकी पट्टरानी थीं। जव वे वनवासके दिन पूरे करके सपति वापिस अयोध्यामें आईं तव उनको चौथे स्नानके वाद पिछली रातमें दो स्वप्न आये। प्रातःकाल रामचन्द्रसे सीताने उनका फल पूछा। उन्होंने कहाः—तुम्हारे दो पुत्र होंगे, मगर कुछ कष्ट भी उठाना पड़ेगा। सीताने मंगलकी कामनासे तीर्थयात्रा की, भूखोंको अन्न, नंगोंको कपड़े दिये और रातदिन आनेवाले दुःखके शमनकी भावना करने लगीं।

अयोध्यामें चारों ओर इस वातकी चर्चा होने लगी कि वहुत दिनों तक सीता रावणके यहाँ रही थी। उसको रामचन्द्रने विना सोचे समझे घरमे रख ली है, यह अच्छा नहीं किया। प्रतिष्ठित लोग इकट्ठे होकर रामचन्द्रके पास गये। उक्त वात रामचन्द्रसे कही। रामचन्द्रने लक्ष्मणके मना करनेपर भी कृतान्तवक्त्रको बुलाकर सीताको वनमें जाकर छोड़ आनेकी आज्ञा दी। कृतान्तवक्त्र सेनापति सीताको जंगलमें ले गया और दुःखी हो रामचन्द्रकी आज्ञा उसे सुनाई। सीता सुनते ही मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ी। कृतान्तवक्त्र भी उनके दुःखसे दुःखी हो रोने लगा। कुछ काल वाद सीताने चैतन्य होकर सेनापतिको रोते देख धैर्यके साथ उससे कहने लगीः— भाई, अपना दुःख मैं आप ही भोगूँगी। पूर्वमें कर्म किये उनका फल

प्राणीमात्रको अवश्य भोगना ही पड़ता है। तू जा और स्वामीसे कहना कि जिस भाँति मुझ निरपराधीको जनापवादसे परित्याग किया है ऐसे ही कहीं जैनधर्मको मत छोड़ देना। कृतान्तवक्र उचित या अनुचित आज्ञाओंका पालन करानेवाली दासताको धिक्कार देता हुआ वापिस लौट गया, और सीताकी कही हुई सब बात उसने जाकर रामचन्द्रको कह सुनाई। रामचन्द्र मूर्छित होकर गिर पड़े। लक्ष्मण भी बहुत ही व्याकुल हुए। नगरवासी भी जिन्होंने सीतापर दूषण लगाकर उसे निकलवा दी थी उसकी धर्मनिष्ठा देखकर बहुत दुःखी हुए। मगर मिसल मशहूर है कि "अब पछताये होत क्या? जब चिड़िया चुग गई खेत" के अनुसार सब मन मार कर रह गये। अनेक प्रकारके उपचारों द्वारा रामचन्द्रको चेता कर कृतान्तवक्र-ने उन्हे धैर्य बँधाया। सीताके भण्डारी भद्रकलशको रामने आज्ञा दी कि जिस भाँतिसे सीताकी मौजूदगीमें सदाव्रत दान पुण्य आदि होते रहते थे उस ही भाँति अब करते रहना। इधर सीता भी संसारकी असारताका विचार करती हुई इधर उधर भ्रमण करने लगी। इतनेहीमें कोई राजा जो हाथी पकड़नेके हेतु इस वनमें आया हुवा था, इधरसे आ निकला। सीताके अनुपम रूपको देखकर उसके पास आया और विनीत हो कहने लगा—बहिन, तुम कौन हो और इस वनमें क्यों भटकती फिरती हो? सीताने अपना सब हाल बता उसका परिचय पूछा। राजा बोला:—मैं पुण्डरीकिणी नगरीका सूर्यवंशी राजा हूँ। मेरा नाम वज्रजंघ है। देवी, तू मेरे साथ चल और आनन्दसे भगवताराधना करती हुई अपना समय बिताना, मैं अपनी बहिनसे भी बढ़कर तेरी सेवा करूँगा। सीता उसके साथ चली गई। नौ मास पूर्ण होनेपर सीताने दो पुत्र प्रसव किये। वे दोनों लवांकुश और मदनांकुश नामसे प्रसिद्ध हुए। वज्रजंघने बहुत आनन्द मनाया। सुखसे दोनोंका बचपन बीतने लगा। देश देशान्तरोंमें फिरते हुए एक सिद्धार्थ नामके क्षुल्लक एक बार पुण्डरीकिणी नगरीमें आये। लोग उनके दर्शनोंको जाने लगे। दोनों बच्चे भी सीताके साथ दर्शनको गये। क्षुल्लकको उन्हे देख उनपर मोह हो आया। उन्होंने कई दिनों तक वहाँ रहकर दोनोंको शास्त्र और शस्त्र विद्या सिखाई। दोनो बालक जब जवान हुए, वज्रजंघने अपनी १६ कुमारियोंका लवांकुशके साथ व्याह करवा दिया। मदनांकुशके लिए पृथ्वीपुरके राजा पृथुसे उसकी पुत्री माँगी किन्तु उसने उत्तरमें कहला भेजा—"क्या तुम डूबकर औरोंको भी डुबाना चाहते हो?

जिसके बापका व कुलका कुछ पता नहीं है उसके साथ मैं अपनी पुत्रीका व्याह नहीं कर सकता।" वज्रजंघ कुपित होकर दलबल सहित पृथुपर चढ़ दौड़ा। पृथु भी अपनी सेना सहित युद्ध क्षेत्रमें आ डटा। दोनोंमें घोर युद्ध हुआ। लवांकुश और मदनांकुशने भी शत्रुओंको वे हाथ दिखाए कि बड़े २ सेनापति भी उनकी असाधारण वीरताके लिए दाँतों उँगली दबाने लगे। पृथुकी सारी सेना तितर बितर हो गई। सहसा पृथुकी और लवकी मुठभेड़ हो गई। दोनोंमें थोड़ी देरतक घोर युद्ध हुआ। अन्तमें पृथु हार कर भागने लगा। लवने तिरस्कार करते हुए कहाः-जिसके बाप व कुलका कुछ पता नहीं है उसको बेटी देनेमें तो तुम्हें लज्जा आती थी, क्या आज उसहीको अपना मान प्रतिष्ठा बल पौरुष देते हुए शर्म नहीं आती है? पृथुने बहुत नम्र होकर उनसे क्षमा चाही और अपनी पुत्री कनकमालाका उसने मदनांकुशके साथ व्याह करवा दिया। वज्रजंघ दोनों भाइयों सहित अपनी नगरीमें लौट आया।

कुछ दिन बाद दोनों अपने अपूर्व रणकौशल व बलका प्रभाव देशपर जमानेके लिए ससैन्य वहाँसे रवाना हुए, और अनेक देश नरेशोंको परास्त कर विजय दुंदुभि बजाते हुए पुनः पुण्डरीकिणीको लौट आये।

एक बार नारद मुनि घूमते हुए जहाँ सीता रहती थी वहाँ आ निकले। सीताके पास दोनों युवकोंको बैठे देख बोलेः-तुम दोनों राम और लक्ष्मणके समान पराक्रमी और दक्ष बनो। उन्होंने इनका वृत्तान्त पूछा। कलह फैलानेवाले नारदजीने मर्मभेदी वाक्योंमें सब हाल कह सुनाया। सुनकर दोनों भाई राम लक्ष्मणपर बहुत ही क्रोधित हुए। उन्होंने अपनी सेना ले अयोध्यापर चढ़ाई कर दी। राम लक्ष्मण भी युद्धके मैदानमें आ रहे। घमसान युद्ध होना प्रारम्भ हुआ। प्रभामण्डल, सीता, सिद्धार्थ, नारदादि विमानमें बैठ युद्ध देखने लगे, अपनी अपनी जोड़ी देख दोनों ओरके योद्धा परस्पर भिड़ गये। रामसे लव और लक्ष्मणसे अंकुशने लड़ाई शुरू की। राम लक्ष्मण, दोनों भाइयों-की वीरताको देखकर तारीफ करने लगे और अपने चक्रको विफल होते देख स्थगित हो देखने लगे। उसी समय नारदने आकर दोनों भाइयोंको परिचय कराया। रामने तत्काल सुलहका झण्डा खड़ा करवा दिया और अपने पुत्रोंसे मिलनेके लिए व्यग्र हो उठे। दोनों भाई भी जाकर राम लक्ष्मणके पैरों गिरे। इन्होंने उन्हें अपने गलेसे लगा लिया,

और सब मिलकर अयोध्यामें गये। सीता आदि भी पुनः पुण्डरीकिणीको लौट गये।

एक बार सब मन्त्रियोने कहाः–महाराज, जगत्प्रसिद्ध महासती सीताको बुलाना चाहिए। राम बोलेः–मुझे उसके बुलानेमे कुछ उज्र नही है; किन्तु मैने लोगोंके संशयसे उसे निकाली है। अतः जबतक लोगोंका सन्देह नही मिटेगा मै उसे नही बुलाऊँगा। सुग्रीवादि रामचन्द्रसे यह कहकर पुण्डरीकिणीको गये कि हम उसे यहॉ लाकर उसकी अग्नि परीक्षा करवाएँगे; और सीताको ले आये। एक बड़े भारी मैदानमें भव्य मण्डल सजाया गया। सारी अयोध्याके लोग बुलाये गये। उच्च सिहासनपर राम और लक्ष्मण बैठे। सीता अपराधियोंकी भॉति सामने खड़ी हुई। राम बोलेः–सीता, लोगोंको तुमपर सन्देह है कि तुम रावणके घरमे इतने दिनतक रहकर सती कैसे रही होगी। इस संन्देहको दूर करनेके लिए आज तुम अग्नि परीक्षाके लिए बुलाई गई हो। सामने जो अग्निकुण्ड देखती हो वह इस ही हेतुसे बनवाया गया है। सीता 'बहुत अच्छा' कह वहॉसे अग्निकुण्डके पास पहुँची। धधकती हुई आगकी लपटे उन्नत हो आकाशसे बाते कर रही थीं। हवाके झोकोसे लपटे टकराकर जो आवाज़ निकालती थी वे मानो सीताको सम्बोधन कर कह रही थी कि "सीता, तू बेफिक्र होकर हमारी गोदमे आ जा, तुझे तेरे सत्यके प्रतापसे कुछ कष्ट न होगा।"

सीता उच्च स्वरसे बोलीः–हे अग्नि, तेरा कर्म भस्म करनेका है। संसारके सारे पदार्थोंको तू जलाकर ख़ाक कर देती है। मगर सत्यको तू नहीं जलाती। सत्याश्रयीकी तू सदा रक्षा करती है। अतः हे माता; यदि मैने मन, वचन या कायसे स्वप्नमे भी रामके सिवाय यदि किसी पुरुषका ध्यान किया हो, किसीके रूप यौवनकी प्रशंसा की हो, किसी कारणसे मेरा शरीर रोमाञ्चित हुआ हो तो मुझे भी तू जलाकर भस्म कर देना" यह कहकर सीता अग्निकुण्डमे कूद पड़ी। राम लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये। नगरवासी 'हा ! जानकी, हा ! जानकी' कह चिल्लाने लगे। इसी समय एक घटना हुई उसका प्रसंगवश यहॉ उल्लेख किया जाता है।

विजयार्द्धकी दक्षिणश्रेणीमे गुंजपुर नामका नगर है। वहॉके राजा सिहविक्रमकी रानी श्रीकी कोखसे

सकलभूपण नामका पुत्र हुआ था। सकलभूपणकी आठसौ रानियोंमें किरणमंडला प्रधान थी। किरणमंडलाके पिताकी वहिनका पुत्र हेमसुख था। उसको यह किरणमंडला सोदर (सगी) वहिनके समान प्रिय थी। कुछ दिनोंमें राजा सिंहविक्रम तो साधु हो गये और सकलभूपण राजा हुए। एक दिन जब कि राजा वाहर उद्यानमें क्रीड़ा करने गये थे, सब रानियोंने आकर किरणमंडलासे कहा:-हेमसुखका रूप पटपर लिखकर तो दिखाओ, क्योंकि तुम्हे चित्रविद्या अच्छी आती है। किरणमंडलाने उत्तर दिया;-किसी पुरुपका रूप लिखना अनुचित है। तब सबने कहा;-किसी दुष्ट भावसे लिखना अनुचित है, शुद्ध परिणामोंसे लिखनेमें कोई दोप नहीं है। ऐसी प्रार्थना करनेसे उसने चित्रपट खींचा। इतनेमें राजा आ गया, और उस रूपको देखकर क्रोधित हुआ। सब रानियोंने राजाके पैरों पड़कर उसे शान्त किया। परन्तु कुछ काल वीत जानेपर किसी एक रात्रिको सोते हुए स्वप्नमें किरणमंडलाके मुखसे "हा हेमसुख," ऐसा निकल गया। सुनकर राजाको उसके शीलव्रतमें कुछ संशय हुआ। जिससे वैराग्य उत्पन्न होनेके कारण उसने जिनदीक्षा ले ली। तपके प्रभावसे सकल श्रुत ज्ञानका धारक हो गया। अनेक ऋद्धियों सहित महेन्द्र नामके वागमें (वनमें) प्रतिमायोगसे स्थित हुआ। इधर किरणमंडला आर्त्तध्यानसे मरकर व्यंतरी हुई। उस व्यंतरीने उसी उद्यानमें ध्यान लगाये हुए उक्त मुनिको सात दिन तक घोर कष्ट दिया। जिससे अन्तमें उन्हे तीनों लोकोंका प्रगट करनेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। उनकी पूजा करनेके लिए उस समय इन्द्रादि देव जा रहे थे। इन्द्रका विमान ठीक उस समय जब कि सीता अपनी प्रतिज्ञा सुनाकर कुण्डमें कूदी थी, कुण्डपर पहुँचा। इन्द्रने सतीकी रक्षाके लिए तत्काल ही मेघकेतु देवको आज्ञा दी। देवने अपनी विक्रियासे उस अग्निकुडको एक मनोहर तालाव वना दिया। तालावके मध्य भागमें हजार दलका एक कमल और उस कमलकी मध्यकर्णिकाके ऊपर एक सिंहासन स्थापित किया। उसपर सीताको वैठाकर ऊपरसे मणियोंका मंडप कर दिया। आकाशमार्गसे पंचाश्चर्योंकी वर्षा की। यह देखकर लोगोंको वड़ा आनंद हुआ। रामचन्द्र देवमानवपूजित जानकीके पास आये और कहने लगे-प्रिये, मैने तुम्हे लोगोंके बुरा भला कहनेसे छोड़ी, सो क्षमा करो और अब मेरे साथ यथेष्ट भोग

भोगो। सीताने कहा:-आपके लिए तो क्षमा ही है परन्तु जिन कर्मोंने यह दुःख दिया है, उनके लिए क्षमा कैसे हो सकती है ? उनके नाश करनेके लिए इस असार संसारमें अब तपश्चरण व्रतको ग्रहण करूँगी, यह कह सीताने अपने केश उखाड़ रामके साम्हने फैंक दिये और देवपरिवारसहित उसने समवसरणमें जाकर श्रीजिनेन्द्रदेवकी वन्दनाकर पृथ्वीमाति नामकी आर्यिकासे दीक्षा ले ली। इधर रामचन्द्र भी केशोंका आलिंगन कर मूर्छित हो गये। अन्तःपुरकी रानियोंने शीतोपचारसे सचेत किये। तब वे मोहके वश समस्त परिवार सहित सीताका तप भंग करनेके लिए गये। परन्तु श्रीजिनेन्द्रदेवके दर्शनमात्रसे ही उनका यह मोह शान्त हो गया। आर्त्तध्यानको छोड़कर श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा और स्तुति करके वे मनुष्योंके बैठनेके स्थानमें जा बैठे। धर्म श्रवण किया। पश्चात् राम लक्ष्मणादिक समस्त जनोंने सीतासे क्षमा प्रार्थना की और नगरमें प्रवेश किया। सीताने बासठ वर्षतक तपश्चरण किया और अन्तमें वह तेतीस दिनका सन्यास धारणकर शरीरको छोड़ अच्युत नामके सोलहवें स्वर्गमें स्वयंप्रभ नामकी प्रतीन्द्र हुई। इस तरह जब एक स्त्री-बाला भी देवोंसे पूजित हुई तो और जीव जो कि इस अनुपम शीलव्रतका सेवन करेंगे, सुरपूज्य क्यों नहीं होंगे ? अवश्य होंगे।

---

(५) प्रभावती रानीकी कथा।

वत्सदेशमें एक रौरकपुर नगर है। वहाँ एक उद्दायन नामका राजा राज्य करता था। उसके शुद्ध जैनमतको धारण करनेवाली एक प्रभावती नामकी रानी थी। एक समय राजा किसी शत्रुके ऊपर चढ़ाई करनेको गये, तब रानी प्रभावतीकी धाय मंदोदरी सन्यास धारण कर वहाँसे चली गई। परन्तु थोड़े ही दिनोंमें वह अन्य बहुतसी सन्यासिनियोंके साथ आई और नगरके बाहर ठहरी। प्रभावतीके निकट किसी स्त्रीके द्वारा अपने आनेके समाचार कहला भेजे। उस स्त्रीने जाकर कहा:-मंदोदरी आपको देखनेके लिए आई है और नगरके बाहर ठहरी है। इसके उत्तरमें रानीने कहला भेजा:—वह मेरे ही यहाँ आवे मैं नहीं आ सकती। यह सुनकर मंदोदरी क्रोधित हो स्वयं

उसके घर गई। परन्तु प्रभावतीने इसको न प्रणाम किया, न आसनसे उठी। आसनपर बैठे ही बैठे उसके लिए आसन डलवा दिया। तब मंदोदरीने कहा:-पुत्री, प्रथम तो मै तेरी माता दूसरे फिर तपस्विनी हो गई, फिर भी तूने मुझे नमस्कार क्यो नही किया? प्रभावतीने कहा:-मै सन्मार्ग (जैनमार्ग)को धारण करनेवाली हूँ और तू मिथ्यामार्गको धारण करनेवाली है, इसलिए मैने प्रणाम नही किया। सन्यासिनीने कहा:—शिवप्रणीत (शैवमत) धर्म सन्मार्ग क्यो नही हो सकता? रानीने कहा--नही। इस तरह दोनोका वड़ा शास्त्रार्थ हुआ। और अन्तमे रानीने मंदोदरीको निरुत्तर कर दिया। तव वह क्रोधित हो वहाँसे चली गई और रानीका एक मनोहर चित्र खीचकर उसने उज्जयनीके राजा चन्द्रप्रद्योतको जा दिखाया। चन्द्रप्रद्योत देखते ही आसक्त हो गया। किसी तरह यह भी सुन लिया कि राजा उदायन किसी राजापर चढ़ाई करने गया है, वहाँ नही है। तव वह अपनी समस्त सेना ले रौरकपुर आ पहुँचा। नगरके वाहर अपनी सेनाका पड़ाव डाल दिया और एक अतिचतुर मनुष्य प्रभावती देवीके (रानीके) पास भेजा। उसने उसके आगे अपने स्वामीके रूप सौदर्यके साथ २ अनेक गुणोकी खूब प्रशंसा की। रानीने यह जवाव देकर कि भाई, उसके गुणोसे मुझे क्या? मेरे तो उदायनको छोड़, और सब पुरुष पिता पुत्र भाईके समान है, उस दूतको निकलवा दिया और उस राजाके सेवकोका अपने यहाँ आना सर्वथा वंद कर दिया, वची हुई सेना नगरके दरवाज़े वंद कर, नगरकी रक्षा करनेके लिए किलेपर जा वैठी। चन्द्रप्रद्योतने नगर लेनेका विचार कर, युद्ध प्रारम्भ किया। यह खवर सुन प्रभावती उपसर्ग मिटने तकका अनशन कर अपने इष्टदेवके मंदिरमें जा वैठी। इसी समय कोई देव आकाशसे जाता था, उसने रानीका अवधिज्ञानके द्वारा कष्ट जान चण्डप्रद्योतकी सारी सेना अपनी माया वलसे उज्जयनी पहुँचा दी और आप उसका रूप धारण कर रानीके शीलकी परीक्षाके लिए उद्यत हुआ। उसने अपनी विक्रिया ऋद्धिसे सेना वना ली और मायासे नगरकी रक्षा करनेवाली किलेकी सेनाका नाशकर नगरमे प्रवेश किया। फिर नगरके मध्यभागमे उस जिनमंदिरमे गया जहाँ कि प्रतिज्ञा करके प्रभावती ध्यानस्थ वैठी थी। मंदिरमे जाकर प्रभावतीके सन्मुख अनेक पुरुषविकार भ्रूविक्षेपादिक किये, परन्तु उसका चित्त चलायमान

न हुआ। तब देवने अपनी माया समेट प्रभावतीकी पूजा की और संसारमें घोषणापूर्वक प्रकट करके कि यह महा शीलवती है, अपने स्थान गया।

राजा उद्दायनने लौटकर ये सब समाचार सुने। उसे बड़ा हर्ष हुआ। कुछ काल राज्यकर सुकीर्ति नामके अपने पुत्रको राज्य दे वर्द्धमानस्वामीके समवसरणमें अनेक राजाओंके साथ दीक्षित हो गया। प्रभावती आर्यिका हो गई। राजा उद्दायन तो घोर तप करके अष्ट कर्मोंका नाशकर मोक्षको गया और प्रभावती पाँचवें ब्रह्मस्वर्गमें देव हुई। इस तरह प्रभावती स्त्री होकर भी शीलके प्रभावसे दोनों लोकोंमें देवोंसे पूजित हुई, तो और भी भक्त जन जो इसको धारण करे, क्यों न पूजित होवेंगे ? अवश्य होंगे।

(६) श्रीवज्रकिरण राजाकी कथा।

अयोध्याके राजा दशरथके पराजिता, सुमित्रा, कैका (कैकयी) और सुप्रभा नामकी चार रानियाँ थीं। उनसे चार पुत्र उत्पन्न हुए। पराजितासे रामचंद्र, सुमित्रासे लक्ष्मण, कैकयीसे, भरत और सुप्रभासे शत्रुघ्न। इनमेंसे रामचंद्र तो बलभद्र और लक्ष्मण अर्धचक्री नारायण हुए। समयानुसार दशरथको वैराग्य उत्पन्न हुआ। रामचंद्रको राज्य देकर उन्होंने वनमें जानेकी इच्छा प्रगट की। कैकयीने आकर अपना पहिला वर माँगा। दशरथने कहा:— मेरे दीक्षाके निषेधको छोड़कर और चाहे सो माँग ले। तब उसने बारह वर्षके लिए भरतको राज्य देनेका वर माँगा। राजाको इससे बड़ा आश्चर्य तथा दुःख हुआ और कुछ उत्तर न दे चुप रहे। रामचंद्रको यह बात मालूम हुई। वे पिताके वचन पालन करनेके लिए भरतको राज्य दे अपनी माताको समझाकर लक्ष्मण और सीताके साथ नगरसे बाहर निकले। रात्रिको श्रीजिनालयमें ठहरे। रामचंद्रजीसे मिलनेके लिए अन्य परिजन लोग आये थे, वे भी यहाँ ही सोये। प्रातःकाल ही सीता और लक्ष्मणके साथ रामचंद्रजी मकानकी खिड़कीके रास्तेसे निकलकर सरयू नदी पार हो गये। थोडी दूर जाकर विश्राम लिया। यहाँ भी जो कुटुंबके लोग चले आये थे, उन

सबको लौटा दिया। किसीने रामचंद्रके जानेका वृत्तान्त भरतसे कहा। भरत अपनी मातासहित आये। और रामचंद्रसे वनमें न जानेके लिए निवेदन किया। परन्तु रामचंद्रजी दोनोंको समझा, राज्यकी मर्यादा दो वर्षके लिए और अधिक कर उनको घर लौटाये। आप वहाँसे आगे चले। चित्रकूटके दक्षिणकी ओर छोड़कर मालवदेशमें प्रवेश किया। वहाँके पके हुए धान्य खेतोंको भी निर्जन देख, किसी पुरुषसे निर्जन होनेका कारण पूछा। उसने कहाः-महाराज, इस उज्जयनी नगरीका राजा सिंहोदर अपनी श्रीधरा नामकी रानी सहित राज्य करता है। इसके आधीन दशपुरका (मन्दसौरका) अधिपति एक वज्र किरण नामक वीर है। एक दिन वह वज्रकिरण शिकार खेलने गया था, मार्गमें उसने एक मुनि महाराजको देखकर उनसे बहुतसा विवाद किया; परन्तु अन्तमें जैनधर्मके अखंड तत्त्वोंसे मोहित हो, जिनदेव शास्त्र और गुरुको छोड़, अन्यको नमस्कार नहीं करनेका उसने नियम ले लिया। अपनी अँगूठीमें जिनप्रतिमा जड़ाई। जब कभी उसे सिंहोदरके यहाँ जानेका काम पड़ता था, तब वह जिनप्रतिमाको सन्मुख करके शिर झुकाता था। किसी ये बात सिंहोदरसे कही। सिंहोदरको अतिक्रोध हुआ। उसने वज्रकिरणके बुलानेके लिए आज्ञापत्र भेजा; परन्तु साथ ही उसे यह चिंता लग गई, कि न जाने वज्रकिरण आवेगा या नहीं इसी चिंतामें मग्न हुआ, वह अपनी शय्यापर सोनेके लिये गया। वहाँ रानीने चिंताका कारण पूछा। राजाने वज्रकिरणके बुलानेका सब वृत्तान्त कहा। उसी समय रानीके कर्णफूल चुरानेके लिए एक विद्युदंड नामका असंयत सम्यक्दृष्टि आया था। ये समाचार उसने भी सुने और तत्काल ही उस महलसे निकल, वह वज्रकिरणके पास चला। वज्रकिरण मार्गमें ही मिल गया। चोरने इसको सिंहोदरके क्रोध होनेके सब समाचार कह सुनाये। वज्रकिरण सुनकर अपने नगरको लौट गया और युद्धकी सामग्री इकट्ठी कर अपने किलेके भीतर बैठ गया। जब वज्रकिरणके न आने और युद्धकी सामग्री इकट्ठी कर बैठ रहनेके समाचार सिंहोदरने सुने, वह क्रोधित हुआ। बहुतसी सेना ले उसपर चढ़ाई की, इसलिए ये पके हुए खेत भी विना मनुष्योंके यों ही खड़े हैं। रामचन्द्रने ये सब वृत्तान्त सुने, उस कहनेवाले पुरुषको वस्त्र और कंकण दे, विदा किया; और आप स्वयं दशपुरकी ओर चले। उस नगरके

वाहरके श्रीचन्द्रप्रभस्वामीके चैत्यालयमे प्रवेश किया। जिनालयमे प्रवेश करते समय वज्रकिरणने अपने गढ़परसे देखकर विचार किया कि दोनों कोई उत्तम अपूर्व पुरुष है। ऐसे मनुष्य मैने कभी नही देखे। ऐसा विचार कर वज्रकिरणने इनके पास भोजनकी सामग्री भेजी। रामलक्ष्मणादिकने भोजन किया। फिर लक्ष्मणने भरतके दूतका वेश धारणकर सिंहोदरसे युद्ध किया और सिंहोदरको पकड़ रामके सुपुर्द किया। यह समाचार सुन वज्रकिरणने रामके पास आ नमस्कार किया और निवेदनकर सिंहोदरको छुड़ाया। श्रीरामने उन दोंनोको समान पदवी दे बिदा किये। इस तरह वज्राकिरण बहुत परिग्रहका धारक होकर भी राम लक्ष्मणसे पूजित हुआ। इसी तरह और भी मनुष्य जो व्रतोको धारण करेंगे वे पूजित क्यों नहीं होंगे? अवश्य होंगे।

(७) नीलीबाईकी कथा।

इसी आर्यखंडके लाटदेशमे एक भृगुकच्छ नामका नगर है। वहाँ राजा वसुपाल राज्य करता था। उसी नगरमें एक जिनदत्त सेठ और जिनदत्ता उसकी भार्या थी। जिनदत्ताके नीली नामकी एक रूपवती पुत्री थी। उसी नगरमें एक दूसरे समुद्रदत्त सेठ थे, जिनकी स्त्रीका नाम सागरदत्ता और पुत्रका नाम सागरदत्त था। एक दिन महापूजाके दिनोमें किसी वसतिकामे नीलीवाई सर्व आभरणोसे भूपित कायोत्सर्ग ध्यान कर रही थी। इसके रूप यौवनको देख सागरदत्त उसपर आसक्त हो गया। इसके मिलनेकी निरन्तर चिन्ता करने लगा। इसी चिंतासे वह अतिदुर्वल हो गया। समुद्रदत्तने यह वृत्तान्त सुनकर अपने पुत्रको समझाया कि पुत्र, जिनदत्त जैनी है। इसीलिए जैनीको छोड़कर और किसीको भी वह अपनी कन्या नही देगा। परन्तु पुत्रकी चिंता न मिटी। इसलिए कपटरूपसे वाप वेटे दोनो श्रावक हो गये और जव सागरदत्तका विवाह उक्त कन्याके साथ हो गया, तव फिर वौद्ध हो गये और नीलीका पिताके घर आना जाना भी वंद कर दिया। नीलीके पिताने भी यह सोचकर कि मेरी पुत्री यमधाम पहुँच गई है, सन्तोप धारण किया। इधर नीलीवाई भी श्वसुरके घरमे अपने भर्त्ताकी प्रिया होकर किसी पृथक् घरमे जिनधर्मको

सेवन करती हुई रहने लगी। श्वसुरने विचार किया कि बौद्ध गुरुके दर्शनसे उनके धर्मोपदेशसे काल पाकर यह बुद्धकी भक्त हो जायगी। इसीलिए एक दिन नीलीबाईसे उनके श्वसुरने अपने बौद्ध गुरुओंको भोजनार्थ बुलानेको कहा। उसने श्वसुरकी बात मान उनको निमंत्रण दिया और उन्हींकी जूतीका चूरण बना घी शकरमे मिलाया और उसके सुन्दर पदार्थ बना उन्हे खिला दिये। वे खा पीकर जब जाने लगे, तो पूछा;-हमारी जूती कहॉ गई? नीलीने कहा-क्या आप अपने ज्ञानसे नही जान सकते कि कहॉ गई? यदि आपको इतना ज्ञान न हो तो वमनकर देखिए। आपकी जूती आपहीके पेटमे विराजमान है। वेचारे गुरुने वमन किया और उसमे उसने सचमुच ही जूतीके टुकड़े देखे। लज्जित होकर वह अपने घर गया। इधर श्वसुरके सब ही कुटुम्बीजनोने नीलीके ऊपर क्रोध किया। और सागरदत्तकी बहिन वगैरहने तो क्रोधके वशीभूत होकर नीलीके ऊपर परपुरुषका झूठा कलंक लगा दिया। तब नीली श्रीजिनेन्द्रदेवके सामने यह प्रतिज्ञा करके सन्यास धारणकर कायोत्सर्गसे खड़ी हुई कि यह जो मुझे झूठा कलंक लगा है, वह दूर हो जायगा तो अन्न जल लूंगी वरना नही। इससे नगरके देवताका आसन कंपित हो उठा। उसने रात्रिमे आकर कहा-देवि, महासती, तू इस तरह प्राणत्याग मत कर। मै राजाको मंत्रियोको और नगरनिवासियोको यह स्वप्न देता हूं कि नगरके वाहरके दरवाजे कीलित हो गये है, अब वे किसी महासती स्त्रीके वामचरणके (वाये पैरके) स्पर्श विना नही खुलेंगे। प्रातःकाल ही तू उनको अपने चरणसे स्पर्श करना। तेरे पदस्पर्शसे वे कपाट खुल जॉयगे। इस तरह तेरा कलंक दूर होकर कीर्तिसे संसार व्याप्त हो जायगा। ऐसा कहकर उस देवताने राजा मंत्री आदिकको वैसा ही स्वप्न दिया और आप नगरके बाह्य कपाट देकर वहीं बैठ गया। प्रभात ही राजादिकोने देखा कि नगरके सब दरवाजे बंद है। तब उन्हे रात्रिका स्वप्न याद आया, इसलिए आज्ञा की कि नगरकी समस्त स्त्रियॉ अपने २ पैरसे नगरके फाटकका स्पर्श करें। सब स्त्रियॉ आने लगी और सब ही एक एक लात मारके जाने लगी। परन्तु वे कपाट किसीसे भी न खुल सके। सबके पीछे नीलीबाई बुलाई गई। उसने आकर ज्यो ही चरणस्पर्श किया कि सब कपाट खुल गये!! नीलीका कलंक मिटा। यक्ष तथा राजादिकसे वह सन्मानित हुई। इसतरह अल्पज्ञानधारिणी स्त्री होकर नीली अपने

शीलके प्रभावसे देव पूजित हुई। यदि अन्य ज्ञानीपुरुष शीलरत्नको धारण करें, तो क्यों न आदर पावे?

(८) चांडालकी कथा।

इसी आर्यखंडके सुरम्यदेशमें पोदनापुर नामका एक नगर है। वहाँ राजा महावल अपने पुत्र वलकुमार सहित राज्य करता था। समयानुसार श्रीअष्टान्हिकाका पर्व आया। राजाने अपने राज्यभरमें आज्ञा की कि इन पर्वोंमें कोई जीवघात न करे। राज्यभरमें अहिंसा धर्मकी ध्वजा फहराने लगी। परन्तु राजाका पुत्र वलकुमार अत्यन्त मांसासक्त था। उसने राज्यके एकान्त उद्यानमें ले जाकर राजाके एक मेढ़ेका घात किया और अग्निमें भूनकर उसका मांस खाया। दूसरे दिन अपने मेढ़ेको न पाकर और उसके मारे जानेके समाचार सुनकर राजाने मारनेवालेको तलाश किया। जिस समय वलकुमारने मेढ़ा मारा था, उस समय उस बागके मालीने किसी वृक्षपर चढ़े हुए उसकी सब क्रिया देख ली थी। पश्चात् रात्रिके समय जब माली अपनी स्त्रीसे मेंढे मारे जानेकी बात कह रहा था तब किसी जासूसने सुन ली। और प्रभात ही राजासे जा कहा—महाराज, रात्रिको अमुक मालीसे मेढ़के समाचार इस रीतिसे सुने है। राजाने मालीको बुलवाया। पूछनेपर मालीने भी कह दिया कि हाँ! आपके पुत्रने मेढ़ा मारा है। राजाको बड़ा क्रोध आया। कोतवालको बुलाकर उसने कहा;—मेरी आज्ञा मेरा पुत्र ही नहीं मानता है तो और कौन मानेगा? इसके नव टुकड़े कर डालो। वह कोतवाल भी राजाकी आज्ञानुसार वलकुमारको मारनेके लिए श्मशानमें ले गया। वहाँ चांडालके बुलानेके लिए उसने दूत भेजे, परन्तु चांडालने दूतोंको दूरहीसे देखकर अपनी स्त्रीसे कहा कि इन दूतोंसे कह देना कि चांडाल आज किसी दूसरे गाँव चला गया है और आप घरके किसी कौनेमें छुप रहा। दूतोंने आकर पूछा;—चांडाल कहाँ है? चांडालकी स्त्रीने कहा;—वह आज किसी दूसरे गाँवको गया है। दूतोंने कहा;—अरे! वह पापी बड़ा भाग्यहीन है, जो आज गाँवको

गया है। आज राजकुमार मारा जायगा और उसके मारनेवालेको बहुतसे सुवर्ण रत्न आदिक मिलेंगे। उनके ऐसे वचन सुनकर उस स्त्रीको द्रव्यका लोभ उत्पन्न हुआ। इसलिए वह चांडालके डरसे पूछने तो यही कहती रही कि वह गाँव गया है, परन्तु हाथके इशारेसे बतला दिया कि वह अमुक स्थानपर बैठा है। तब वे चांडालको वहाँ पाकरके श्मशानमें ले गये। वहाँ राजाका पुत्र मारनेके लिए सुपुर्द किया गया। चांडालने कहा;-आज चतुर्दशीका दिन है। आज मेरे जीवघात करनेका त्याग है। मैं आज किसी तरह इस कामको नहीं कर सकता। दूतोंने राजासे निवेदन किया-महाराज; राजकुमारको चांडाल नहीं मारता। राजाने चांडालसे उसका कारण पूछा। चांडालने कहा-महाराजः मुझे एक दिन सर्पने काट खाया और मरा जानकर कुटुम्बी जन मुझे श्मशानमें ले गये। वहाँपर सर्वौषधि ऋद्धिके धारक एक मुनि विराजमान थे। उनके शरीरसे स्पर्श करनेवाली वायुने मेरे शरीरसे स्पर्श कर मुझे जीवित कर दिया। तब उन्हीं मुनिके पास मैंने चतुर्दशीके दिनका अहिंसा अणुव्रत ले लिया। इसलिए आज मैं राजकुमारको नहीं मार सकता। आप जो उचित समझें, सो करें। सुनकर राजाने विचार किया कि क्या चांडालके भी व्रत हो सकते हैं? नहीं, यह झूठ बोलता है। इस तरह क्रोधित हो राजकुमार और चांडाल दोनोंको गाढ़ बंधनमें बंधवाकर उन्होंने सुसुमार नामके हृदे तालाबमें फिकवा दिये। चांडालने अपने प्राण नाशका भय होनेपर भी अहिंसा अणुव्रत नहीं छोड़ा। इसलिए उसके प्रभावसे जलदेवताने आकर जलके बीचमें ही मणियोंके तोरणादि मंडपयुक्त सिंहासन बनाकर उसपर उस चांडालको बिठाया। दुंदुभि बाजे बजाए, धन्य धन्य शब्द किये। इस तरह अनेक प्रातिहार्य किये। राजा ये वृत्तान्त सुनकर भयभीत हुआ। उसने वहाँ जाकर चांडालका पूजन सत्कार किया। अपने छत्रके नीचे बिठाया। स्वयं स्पर्शकर विशेष सम्मानित किया। बलकुमार उसी सुसुमार सरोवरमें डूबकर मर गया और दुर्गतिको गया। इस तरह एक चांडाल भी व्रतके माहात्म्यसे देवपूजित तथा राजपूजित हुआ तो अन्य मनुष्य भी जो ऐसे व्रतोंको धारण करते हैं, वे क्यों पूजित नहीं होंगे? अवश्य होंगे।

इति श्रीकेशवनन्दिदिव्यमुनिशिष्यश्रीरामचन्द्रमुमुक्षुविरचित पुण्यास्रवकथाकोषकी सरलभाषाटीकामें शीलफलाष्टक नाम चौथा अष्टक पूर्ण हुआ।

अथ उपवासफलाष्टकं ।

(१) नागकुमार कामदेवकी कथा ।

इसी आर्यखंडके मगधदेशमे कनकपुर नामका एक नगर है । वहाँका राजा जयंधर रानी विशालनेत्रा, महाप्रतापी पुत्र श्रीधर और मंत्री नयंधर सहित राज्य करता था । एक दिन वह समस्त स्वजन परिजन सहित सभामें बैठा था कि अनेक देशोंमें परिभ्रमण करनेवाला एक वासव नामका वणिक् मित्र नाना रत्नोंकी भेट लेकर आया । उस भेटमें एक मनोहर चित्र भी था । राजाने खोलकर देखा तो एक सुन्दरी कन्याका खिंचा हुआ मनोहर रूप था । राजाने मोहित होकर उस वणिक्से पूछा;-यह किसका चित्र है ? वणिक्ने कहा-आपको पसंद है या नहीं ? आपके चित्तकी परीक्षा करनेके लिए ही इसे लाया हूँ । यह चित्र सोरठ देशके गिरनगरके राजा श्रीवर्मा रानी श्रीमतीकी पृथ्वी नामकी पुत्रीका है । राजाने मोहित होकर बहुतसी भेटके साथ उसी वणिक्को राजा श्रीवर्माके यहाँ उसकी पुत्री माँगनेके लिए भेजा । वह वणिक् बहुतसी उत्तम भेट लेकर राजा श्रीवर्माके दरबारमें पहुँचा । भेट समर्पणकर निवेदन करने लगा:-महाराज, मगधदेशका महामंडलेश्वर राजा जयंधर महाप्रतापी, सर्वकलाकुशल, दानी, भोगी, अतिशय रूपवान् और युवा है । उसने आपकी पुत्रीके साथ विवाह करनेकी इच्छा प्रकटकर मुझे आपके पास भेजा है । श्रीवर्मा यह वृत्तान्त सुनकर प्रसन्न हुआ । उसने अपने कतिपय मंत्रियोंके साथ अपनी पुत्री विवाहके लिए भेज दी । वासव वणिक् भी साथ गया । पृथ्वीका आगमन सुन जयंधरने नगरकी शोभा कराई और आप स्वयं लेनेके लिए सन्मुख आया । बड़ी धूमधामके साथ नगरमें प्रवेश कराया और शुभ मुहूर्त्तमें अग्निसाक्षिक विवाह करके उसको पट्टरानीका पद दिया । परन्तु कुछ दिन पीछे राजा इसको छोड़कर अन्य आठ हजार रानियोंके साथ तथा विशालनेत्राके साथ क्रीड़ा करने लगा ।

इस तरह कुछ काल व्यतीत होनेपर अपनी शोभा बढ़ाता हुआ वसंत ऋतु आया । राजा भी स्वजन परिजन सहित क्रीडा करनेके लिए उद्यानमे गया । रानी विशालनेत्रा सकल अंतःपुरके साथ पुष्पक विमानपर चढ़कर उद्यानको

चलने लगी। उसके पीछे ही नाना वस्त्रालंकारसे सजे हुए सुन्दर हाथीपर चढ़कर पृथ्वी पट्टरानी चलने लगी। इसके चलनेका आडम्बर और विभूति देखकर विशालनेत्राने अपनी सखीसे पूछाः—यह कौन आ रही है? सखीने कहाः—इतने आडंबरसे ये पृथ्वी महारानी आ रही है। विशालनेत्रा यह सुनकर उसका रूप देखनेके लिए वहीं खड़ी रही। उसको खड़ी देखकर पृथ्वीने पूछाः—यह आगे कौन खड़ी है? एक सखीने कहा—ये विशालनेत्रा अग्रमहिषी है। पृथ्वी यह समझकर कि वह उसका नमस्कार लेनेके लिए खड़ी होगी, सीधी जिनमंदिर चली गई। श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा कर पिहितास्रव नामके मुनिको नमस्कार कर उनसे दीक्षा लेनेकी प्रार्थना की। मुनि महाराजने कहाः—पुत्रकी राज्यविभूतिके देखनेके पीछे राजाके साथ तेरा तप हो सकेगा। तब पृथ्वीने पूछाः—महाराज, क्या मेरे पुत्र होगा? श्रीमुनिने कहाः—हाँ! होगा और वह कामदेव महामंडलेश्वर तथा चरमशरीरी होगा। रानीने पूछाः—वह ऐसा ही प्रतापी होगा, यह बात कैसे जानी जा सकेगी? तब मुनिने कहाः—राजभवनके निकटवर्ती उद्यानमें जो चैत्यालय है, उसके कपाट जिन्हें देव भी नहीं खोल सकते हैं, तेरे पुत्रके पैरोंके अँगूठेके छूनेसे ही खुल जाँयगे और उसी समय वह नागवापीमें जो कि उसी चैत्यालयके अतिसमीप है, पड़ जायगा। पड़ते ही नागकुमार देव उसे अपने मस्तकपर धारण करेंगे। फिर बड़ा होकर नीलगिरि नामके हाथीको और एक घोड़ेको वश करेगा पृथ्वी। देवी यह वृत्तान्त सुन प्रसन्न होकर अपने घर गई। उधर राजा जलक्रीड़ाके समय पट्टरानीको न देख खिन्न हो शीघ्र ही घर लौट आया। आते ही पट्टरानीसे न आनेका कारण पूछा। पृथ्वीने श्रीमुनि महाराजका कहा हुआ सब वृत्तान्त सुनाया। जिससे राजा भी प्रसन्न हुआ। कुछ दिनोंके पश्चात् पृथ्वी देवीकी कोखसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसका नाम प्रतापधर रक्खा गया।

एक दिन पृथ्वी रानी अपने पुत्र प्रतापधरको लेकर उसी राजभवनके समीपस्थ उद्यानके मंदिरमें गई। उद्यानका मंदिर जो आजतक किसीसे भी नहीं खुल सका था, प्रतापधरके चरणस्पर्शमात्रसे ही खुल गया। तब रानी बालकको बाहर ही छोड़कर श्रीजिनेन्द्रदेवके दर्शनके लिए भीतर गई। चिरकालसे इस चैत्यालयके कपाट खुले देखकर नगरके

निकटवर्त्ती नागवापीमें जाकर
लोग भी श्रीजिनेन्द्रके दर्शन करनेके लिए व्यग्र हुए। इधर बालक खेलता कूदता हुआ
फिसल पड़ा। बालकको पड़ते हुए देखकर धायने कोलाहल मचाया, जिसे सुनकर बहुत लोग जमा हो गये। परन्तु उस
वापीके रक्षक नागकुमार देवने उस गिरे हुए बालकको पानीके ऊपर ही अपने फणपर धारण कर लिया, जिसे देखकर
बालककी माता 'हाय पुत्र'! कहती हुई उसी वापीमें कूद पड़ी। परन्तु वापीका अगाध जल इसके पुण्य
प्रभावसे जंघा पर्यन्त ही रह गया। उधर अंगरक्षकादिकोंके कोलाहलसे राजाको खबर हुई। वह तत्काल ही शोकाकुल
होता हुआ दौड़ आया; परन्तु अपने पुत्र और पट्टरानीको सब प्रकारसे सकुशल देखकर प्रसन्न हुआ। फिर वहाँसे
पुत्र और पट्टरानी सहित चैत्यालय जाकर श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा कर अपने घर गया। उसी दिनसे इस बालकका
नाम 'नागकुमार' पड़ गया। और थोड़े ही दिनोंमें सकल विद्या कला आदिकमें निपुण हो गया।

एक दिन पंचसुगंधिनी नामकी वेश्याने दरबारमें आकर प्रार्थना की-देव, मेरे किन्नरी और मनोहरी नामकी दो
कन्याएँ है। वे दोनो ही वीणा बजानेका अहंकार रखती है। इसलिए आप नागकुमारको आज्ञा दीजिए कि वह
दोनोकी परीक्षा करे। प्रार्थनानुसार राजाने अपने पुत्रको दोनोकी परीक्षा करनेके लिए आज्ञा दी। तब नागकुमारने
पिताके समीप ही बैठकर अन्यान्य वीणा बजानेमें चतुर पुरुषोंसे भरी हुई सभामें दोनो कुमारियोकी परीक्षा ली।
परीक्षा हो चुकनेपर राजाने पूछा-इन दोनोंमेसे कौनसी विशेष कुशल है? नागकुमारने कहा-छोटी कुशल है। तब
राजाने फिर पूछा-ये दोनो यमज अर्थात् एक साथ उत्पन्न हुई हैं, तुमने कैसे जाना कि यह छोटी
है यह बड़ी है? पुत्रने उत्तर दियाः-महाराज, जब यह छोटी कुमारी वीणा बजाती है तब यह बड़ी उसके मुखकी
तरफ देखती है और जब यह बड़ी बजाती है, तब यह छोटी अपनी दृष्टि नीचे कर लेती है। इस इंगित चेष्टारूप
अनुमानसे जान पड़ता है कि यह छोटी और यह बड़ी है। ये बुद्धिमत्ताके वचन सुनकर सबको आश्चर्य हुआ। और
वे दोनो कुमारी नागकुमारपर आसक्त हो गई। तब नागकुमार पिताकी आज्ञासे दोनोके साथ विवाह करके सुखसे
रहने लगा।

एक दिन राजा अपने स्थानपर सुशोभित था कि किसी सेवकने आकर निवेदन किया:— महाराज, नीलागिरि नामका हाथी अनेक देशोंका नाश करता हुआ नगरके बाहर तालाबके किनारे तक आ पहुँचा है। उससे प्रजाकी रक्षा करनेका प्रयत्न करना चाहिए। तब राजाने अपने श्रीधर नामके पुत्रको इस कामपर नियुक्त किया। और श्रीधर बहुतसी सेना लेकर हाथीको वश करनेके लिए गया; परन्तु उसकी शक्ति तथा उन्मत्तताको देखते ही वह डर गया और पकड़नेमें असमर्थ हो भागकर नगरको लौट आया। तब राजा स्वय उसके पकड़नेके लिए चलने लगा। परन्तु नागकुमार अपने पिताको जानेसे रोककर स्वयं अकेला ही हाथीके पकड़नेके लिए गया। और जो हाथीके पकड़नेकी विधि शास्त्रमें कही है, उसके अनुसार हाथीको पकड़ और उसके कंधेपर चढ़ वह इन्द्रकीसी लीला करता हुआ नगरको लौट आया। राजाने प्रसन्न होकर वह हाथी नागकुमारको दे दिया और वह पिताको नमस्कार कर उसी हाथीपर चढ़ अपने घर गया।

एक दिन एक घोड़ेको यंत्रसे चारा खिलाते हुए देखकर नागकुमारने एक सेवकसे पूछा-इसको यंत्रके द्वारा चारा क्यों खिलाया जाता है? सेवकने कहा:-यह दुष्ट घोड़ा है। जो कोई इसके समीप जाता है, उसीको यह मारता है। यह सुन कुमारने उस घोड़ेके सब बंधन छोड़ दिये और पकड़कर सवार हो लिया। खूब दोड़ाया। फिर अपने घर लाकर राजासे निवेदन किया:-पिताजी, मैंने उस दुष्ट घोड़ेको वशमें कर लिया है। तब राजाने कहा:-यह घोड़ा भी तुम्हारे ही योग्य है। इसको तुम्ही ले जाओ। नागकुमार बहुत अच्छा कहकर घोड़ेको घर ले गया।

नागकुमारकी ऐसी अपूर्व शक्ति और प्रसिद्धि देखकर विशालनेत्रा रानीने अपने पुत्र श्रीधरसे कहा:-पुत्र, तेरा दायद (भागीदार) बहुत प्रबल हो गया है। तू कुछ अपना यत्न कर। तब दुष्ट श्रीधरने नागकुमारके मारनेके लिए पाँच लाख योद्धा इकट्टे किये। वे इसके निरन्तर मारनेका समय देखने लगे। परन्तु इसकी खबर नागकुमारको सर्वथा न मिली।

एक दिन नागकुमार अपने राजभवनकी पश्चिम दिशाके उद्यानकी सुन्दर वापिकामें अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ

जलक्रीड़ा करनेको गया। महारानी पृथ्वी भी विलेपनादिक उवटन करने योग्य पदार्थ लेकर अपनी नियत सखियोंके साथ पुत्रके पास गई। उस समय विशालनेत्रा अपने राजमहलकी छतपर राजाके साथ बैठी थी। उसने महारानी पृथ्वीको जाती हुई देखकर राजासे कहा--महाराज, यह तो देखिए, आपकी परमप्रिया किसी नियत संकेत स्थानपर जा रही है। तब राजा आश्चर्ययुक्त हो वहींसे देखने लगा कि वह कहाँ जा रही है। जाते जाते जब वह उस वापिकाके पास पहुँची, जहाँ कि उसका पुत्र स्नान कर रहा था, तब नागकुमारने उसे देखकर शीघ्र ही वापीसे निकल प्रणाम किया। माताने बड़े प्रेमसे उवटनादिक लगाया। यह देख झूठ बोलनेवाली विशालनेत्राको राजाने खूब ताड़ना की। थोड़ी देरमें पृथ्वी भी लौटकर आ गई। राजाने पूछाः--कहाँ गई थी? पृथ्वीने अपने पुत्रके पास जाकर उवटनादिक लगानेके सब समाचार ज्योंके त्यों कह दिये। तब राजाने विशालनेत्राके क्षुद्र और दुष्ट परिणाम देखकर पृथ्वीसे कहाः--प्रिये, तू अपने पुत्रको बाहर मत निकलने दिया कर। पश्चात् राजा तो चला गया। और पृथ्वी रानी उसके कहनेका इस प्रकार विपरीत अर्थ समझकर चिन्तातुर हुई कि महाराज श्रीधरका प्रताप और यश चाहते हैं, मेरे पुत्रका नहीं। इसीलिए मेरे पुत्रके बाहर आने जानेका निषेध करते हैं। उसी समय नागकुमारने कहींसे आकर अपनी माताको उदास देख चिन्ताका कारण पूछा। माताने कहा--बेटा, राजाने तेरा बाहरका जाना बंद कर दिया, इसीसे मुझे दुःख हुआ है। यह बात नागकुमारको भी बुरी लगी, इसलिए वह पिताको उलटा चिढ़ानेके लिए अपने नीलगिरि नामके हाथीपर चढ़कर अनेक नगरवासियोंके मध्यमें इन्द्रकीसी विभूति करके घरसे निकलकर अपने सुन्दररूपद्वारा अनेक स्त्रीपुरुषोंको मोहित करता हुआ नगरमें भ्रमण करने लगा। इसके देखनेका नगरमें बड़ा कोलाहल हुआ। राजाने कोलाहल होनेका कारण पूछा। किसी सेवकने कहा--नागकुमार नगरमें भ्रमण कर रहा है, उसीका यह सब आडम्बर है। सुनकर राजा क्रोधित हुआ और कहाः--मैंने पृथ्वीसे कहा था कि पुत्रको बाहर मत जाने दिया कर, सो उसने मेरी आज्ञाका उल्लंघन किया। उसके अलंकारादिक छीन लो। इस तरह क्रोधित हो राजाने पृथ्वीके अलंकारादिक सब हरण करा लिये। उसी समय कुमार आया और माताको अलंकार रहित

देखकर कारण पूछा। उसने राजाका यह सब वृत्तान्त सुना दिया। तब कुमारने उसी रातको द्यूत-स्थानमें जाकर वहाँ मंत्री तथा और भी मुकुटबद्ध राजा जो कि उसके पिताके सेवक थे, सबको जीत सबके आभरणादिक अपनी माताके घर ला रक्खे। राजाने मंत्री तथा अपने आधीन राजाओंको इस तरह आभरण रहित देखकर पूछाः—तुम्हारे आभरणादिक कहाँ गये? आज क्यों नहीं पहिने? तब सबने निवेदन किया:—महाराज, सबके आभरणादिक नागकुमारने द्यूतमें जीत लिये हैं। यह सुनकर राजा क्रोधित हुआ और बोला—अच्छा उसको मैं जीतूँगा। नागकुमारको बुलाकर कहाः—तुम मेरे साथ द्यूत खेलो। पुत्रने कहाः—महाराज, आपके साथ खेलना उचित नहीं है। परन्तु उसे आखिर राजा तथा द्यूतमें हारे हुए मंत्री आदिके विशेष आग्रहसे द्यूत खेलना पड़ा। उसमें पुत्रने पिताके सब कोश आदिक जीत लिये। पश्चात् जब राजा देशके विभागकर द्यूतमें रखने लगा, तब नागकुमारने पैरोंपर पड़कर कहाः—बस महाराज, बहुत हो चुका, अब समाप्त कीजिए। अतः द्यूतका खेल पूरा हुआ। नागकुमारने जो कुछ जीता था, उसमेंसे माताके अलंकारादिक माताको दिये और जो जिसके थे सब वापिस दे दिये। राजाने अपने इस पुत्रसे प्रसन्न होकर नगरके बाहर उसके रहनेके लिए एक और नगर बसा दिया। नागकुमार उस नगरमें आनन्दपूर्वक रहने लगा।

इसी अवसरमें प्रसंगवशात् एक दूसरी कथा लिखी जाती है:—

सूरसेन देशमें मथुरा नगर है। वहाँ राजा जयवर्मा राज्य करता था। उसकी जयावती नामकी रानीसे दो पुत्र हुए, जिनका नाम व्याल महाव्याल था। दोनों ही कोटीभट (एक कोटि योद्धाओंके समान बलवाले) थे। इनमेंसे व्यालके तीन नेत्र थे। किसी दिन नगरके पास वनमें यमधर नामके मुनि आये। वनपालने जाकर राजासे निवेदन किया कि महाराज, वनमें मुनि पधारे हैं। राजा मुनिकी वंदनाके लिए परिजन सहित गया। वहाँ श्रीमुनिराजको नमस्कार कर जयवर्माने पूछा;—महाराज, मेरे दोनों पुत्र स्वतन्त्र राज्य करेंगे या किसीकी आज्ञामें रहकर राज्य करेंगे? श्रीमुनिने कहा—जिसके दर्शन करनेसे व्यालके मस्तकका तृतीय नेत्र बंद हो जायगा, यह उसीकी सेवा करता हुआ राज्य करेगा और जो कन्या महाव्यालको न चाहेगी और फिर जिसकी वह स्त्री होगी, उसीकी सेवा

करता हुआ महाव्याल राज्य करेगा । जयवर्मा यह सब वृत्तान्त सुनकर चिन्तवन करने लगा--देखो मेरे पुत्र कोटीभट है, महाप्रतापी है, उनको भी दूसरेका सेवक बनना पड़ेगा । धिक्कार है ऐसे संसारको । ऐसा विचारकर परम वैरागी हो अपने पुत्रोंको राज्य दे उसने जिनदीक्षा ले ली । व्याल महाव्याल भी मंत्रीके पुत्र दुष्टवाक्यको राज्य देकर अपने अपने स्वामीकी तलाश करनेको निकले । कितने ही दिनोंमें पाटलीपुत्र (पटना) नगरमें पहुँचे । लोगोंको मोहित करते हुए, बाजारमें कहींपर बैठ गये । इस नगरमें राजा श्रीवर्मा राज्य करता था । इसकी श्रीमती रानीसे एक गणिकासुन्दरी नामकी पुत्री हुई थी । गणिकासुन्दरीकी सखी त्रिपुरा किसी कारणसे बाजारमें आई थी । सो इन दोनोंका अतिशय रूप देखकर उसने गणिकासुन्दरीसे इनके रूपकी प्रशंसा की । गणिकासुन्दरी भी इनको किसी गुप्तवेशसे देखकर महाव्यालपर आसक्त हो गई । अपनी पुत्रीकी ऐसी अवस्था सुनकर राजाने अनेक इंगित चेष्टाओंसे इन दोनोंको क्षत्रिय निश्चयकर आदरपूर्वक अपने घर बुलाया । महाव्यालको गणिकासुंदरी व्याह दी और गणिकासुंदरीकी धायकी पुत्री ललितसुंदरीको व्यालके साथ व्याह दी । ये दोनों ही उस नगरमें बड़े आनन्दसे रहने लगे ।

एक दिन ललितसुन्दरीने पहलेके वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि एक दिन विजयपुरके राजा जितशत्रुने हम दोनोंके रूपकी प्रशंसा सुनी । हमको हमारे पितासे माँगा । परन्तु हमारे पिताने देना स्वीकार न किया । जितशत्रु यह सुन क्रोधित हुआ । उसने आकर हमारा नगर घेर लिया। परन्तु अन्तमें हारकर अपने नगरको लौट गया । व्यालने छोटे भाई महाव्यालको आज्ञा दी कि तुम जाकर जितशत्रुको समझा दो कि जिससे वह आगे फिर कभी ऐसा न करे । अपने भाईकी आज्ञासे महाव्याल राजा श्रीवर्माका दूत बनकर जितशत्रुके पास पहुँचा और उसको समझाने लगा । जितशत्रु इसको श्रीवर्माका दूत जानकर क्रोधित हुआ और मारनेको दौड़ा । महाव्यालने पकड़कर बाँध लिया और अपने बड़े भाईके पास ले आया । नमस्कार करके इसको सोंप दिया । व्याल पकड़े हुए अपने शत्रुको अपने श्वसुर श्रीवर्माके पास ले गये । श्रीवर्माने वस्त्रालंकारादिकसे भूपित कर, उसको अपने नगरमें भेज दिया । इस तरह दोनों भाई अपनी शूरवीरताको प्रगट करते हुए सुखपूर्वक वहीं रहने लगे ।

व्याल नागकुमारकी कीर्ति सुनकर उसके देखनेके लिए उसके नगरमे पहुँचा। नागकुमार अपने नीलगिरि नामके हाथीपर चढ़ा हुआ वाद्योद्यानसे लौटकर नगरमे प्रवेश कर रहा था कि उसी समय व्यालकी दृष्टि इसपर पड़ी। उसके देखते ही व्यालका तृतीय नेत्र वंद हो गया। तव व्याल, मुनिसे सुना हुआ अपना सव वृत्तान्त कहकर नागकुमारका सेवक हो गया। नागकुमार उसे अपने हाथीपर वैठाकर घर ले गया और द्वारपर छोड़कर आप भीतर गया। व्याल द्वारपर ही वैठ गया। समय देखकर श्रीधरको उसके दूतने जाकर कहाः—महाराज, इस समय नागकुमार अकेला ही अपने महलमे है, इच्छा हो तो समझ लीजिए। यह सुनकर श्रीधरने उसके मारनेके लिए अपने उन योद्धाओको आज्ञा दी जो पहलेसे इसीलिए नियत थे। तव वे योद्धा नाना प्रकारके आयुधोसे सज्जित होकर नागकुमारके मारनेके लिए चले। उनको भीतर आते हुए देख व्यालने द्वारपालोसे पूछाः—ये किसके सेवक है ? द्वारपालने श्रीधरकी शत्रुताका हाल सुनाकर कहाः—ये उसी शत्रुके सेवक है। तव तो व्याल यद्यपि उसके पास उस समय कोई आयुध नही था, तथापि उन योद्धाओको भीतर जानेसे रोकने लगा। परन्तु वे पॉच लाख योद्धा भला इस एककी क्यो सुने और क्यों खड़े हो ? व्यालने देखा कि वे नहीं मानते। तव हाथीके वॉधनेका स्तंभ उखाड़कर घोर सिहनाद करता हुआ उन योद्धाओपर टूट पड़ा। भयानक युद्ध हुआ। युद्धके कलकल शब्दको सुनकर नागकुमार भी वाहर आया। परन्तु जवतक वह वाहर आया, तवतक व्यालने समस्त योद्धाओका संहार कर डाला। नागकुमारको व्यालका शूरवीरपना देख वड़ा आश्चर्य हुआ। आखिर वह उससे प्रसन्न हो आलिगनकर हाथ पकड़कर घरके भीतर ले गया। इधर जव श्रीधरने यह सुना कि मेरे सव योद्धा मारे गये तब अतिक्रोधित होकर अपनी समस्त सेना लेकर नागकुमारसे लड़नेको निकल पड़ा। यह देख नागकुमार भी व्याल सहित लड़नेको सन्मुख हो गया। जव दोनो ही लड़नेको सन्मुख हुए, तव नयंधर मंत्रीने राजासे निवेदन किया कि महाराज, इन दोनोमेसे किसी एकको वाहर निकाल देना चाहिए। राजाने कहाः—अच्छा श्रीधरको निकाल दो। मंत्रीने फिर निवेदन किया कि महाराज, श्रीधर कोई वड़ा पुण्यात्मा नही है। जो वह वाहर निकल जायगा तो कुछ न कुछ आपकी निंदा ही होगी। और नागकुमार पुण्यवान् है, सर्वप्रिय

है, जहाँ जायगा प्रशंसा और पूजा पावेगा। सो उसे ही निकालना चाहिए। राजा भी इस नीतिपर सम्मत हो गया। तब मंत्रीने नागकुमारको बुलाकर कहा—क्या घरमें ही शूर बनते हो? यदि सच्चे शूर हो तो बाहर देशान्तरमें जाकर शूरता दिखलाओ। यहाँ पिताके समान बड़े भाईसे लड़नेमें तुम्हारी बड़ाई नहीं होगी। तब कुमारने कहा—वही मेरे मारनेके लिए उद्यत हुआ है, मेरा इसमें क्या अन्याय है? यदि वह रणभूमि छोड़कर अपने घर बैठे, तो मैं परदेश चला जाऊँगा। अन्यथा वह आकर लड़े। तब नीतिज्ञ नयंधर मंत्रीने श्रीधरके पास जाकर कहा—अरे मूढ़, क्या तू अपनी शक्ति नहीं जानता है? जिसके एक सेवकने तेरे पाँच लाख योद्धा मार डाले हैं, भला उसके साथ तू कैसे युद्ध कर सकता है? इसलिए व्यर्थ अपने प्राण मत खो, जा अपने घर जा। इत्यादि अनेक वचनोंसे समझाकर मंत्रीने श्रीधरको युद्ध करनेसे रोका।

रणभूमिसे लौटाकर प्रतापंधरने (नागकुमारने) परदेश जानेकी तैयारी की। माताको समझा बुझाकर अपनी दोनों स्त्रियाँ और व्यालके साथ वह नगरसे निकल पड़ा। क्रमसे चलते हुए कितने ही दिनोंमें उत्तर मथुरामें नगरके बाहर उसने डेरा डाला। व्याल तो नीलगिरि हाथीको पानी पिलानेके लिए ले गया और नागकुमार भद्रा नामके हाथीपर चढ़कर थोड़ेसे सेवकोंको साथ ले, नगरकी शोभा देखनेके लिए चला। राजमार्गमें जाते हुए एक जगह एक देवदत्ता नामकी वेश्याके घरकी शोभा देखकर वह खड़ा हो गया। तब वेश्याने योग्य सत्कारके साथ उसे अन्दर बुलाया। जब थोड़ी देरतक नृत्यादिक देखकर वेश्याको योग्य पुरस्कारसे संतोषित कर नागकुमार चलने लगा; उस समय वेश्याने कहा—महाराज, राजभवनकी ओर न जाइए। कुमारने पूछा—क्यों? वेश्याने कहा—कुंडलपुरके राजा जयवर्मा अपनी रानी गुणमतीकी पुत्री सुशीलाको सिंहपुरके राजा हरिवर्माको देने लिए ले जा रहे थे, सो यहाँके राजा दुष्टवाक्यने (व्यालके मंत्रीने) उसे छीन ली है। परन्तु वह कन्या दुष्टवाक्यको नहीं चाहती, इसीलिए उसने इस कन्याको अपने राजभवनके बाहर कारागारमें बंद कर रक्खी है। जब वह किसी राजा या राजवंशीको देखती है तो वह चिल्लाती और कहती है "मुझे बचाइए, मुझे बचाइए" सो यदि आप इस मार्गसे जाओगे, तो वह चिल्लावेगी और आप

सकरुण हो उसे छुड़ानेकी चेष्टा करेंगे, तो व्यर्थ ही झगड़ा बढ़ जावेगा। इससे यही अच्छा हो कि आप इस मार्गसे न जावें। कुमार वेश्यासे "अच्छा नही जॉयगे" ऐसा कहकर उसी मार्गसे गये। उस कन्याने इन्हें देखते ही चिल्लाकर कहा कि हे भाई, दुष्टवाक्यने अन्यायसे पकड़कर मुझे यहॉ कैद कर रक्खा है। इसलिए किसी तरह मुझे छुड़ाओ तव कुमारने यह कहकर कि हे वहिन, रोदन मतकर, मै तुझे अभी छुड़ाता हूँ। कारागारके रक्षक सेवकोंको हटाकर सुशीलाको कैदसे निकाली और उसे अपने रक्षकोंको सौंप दी। दुष्टवाक्य यह समाचार सुनकर अपनी समस्त सेना ले नागकुमारसे युद्ध करनेके लिए चला। दोनोका घोर युद्ध हुआ। किसी सेवकने इस युद्धके समाचार व्यालसे जाकर कहे। तव व्याल नीलगिरि हाथीपर चढ़कर दुष्टवाक्यके सन्मुख आया। परन्तु दुष्टवाक्यने यह जानकर कि वह उसका स्वामी है, हथियार छोड़कर नमस्कार किया। पश्चात् व्यालने अपने स्वामी नागकुमारके चरणोंको नमस्कार करके दुष्टवाक्यका सव वृत्तान्त सुनाया। फिर नागकुमार वड़ी विभूतिके साथ राजभवनमे प्रवेश करके सुखपूर्वक रहने लगा। सुशीला सिंहपुर भेज दी गई।

एक दिन नागकुमार क्रीड़ा करनेके लिए व्यालके साथ वाहर उद्यानमें गया। वहॉ कितने ही कुमार हाथमें वीणा लिए हुए वैठे थे। नागकुमारने उन्हे देखकर पूछा—आप कौन है? कहॉसे आये है? कुमारोंमेसे एकने कहा—महाराज, मै सुप्रतिष्ठित नगरके राजा कविका पुत्र हूँ। कात्तिवर्मा मेरा नाम है। वीणा वजानेमें मै कुशल हूँ। ये पॉचसौ मेरे शिष्य है। काश्मीर नगरके राजा नंदन, रानी धरिणीकी पुत्री त्रिभुवनरति वीणा वजानेमें अतिशय चतुर है। उसने प्रतिज्ञा की है कि वीणा वजानेमें जो कोई उसे जीतेगा, वही उसका पति होगा। उसकी ऐसी प्रतिज्ञाके समाचार सुनकर मै शास्त्रार्थ करनेके लिए उस देशमे गया था, परन्तु उससे हारके लौट आया हूँ। यह वृत्तान्त सुन नागकुमार उन्हे विदाकर आप काश्मीरको उस राजपुत्रीसे शास्त्रार्थ करनेको चलने लगा। व्यालको वही रहनेके लिए कहा, परन्तु वह नही माना और साथ हो लिया। वहॉका सर्वाधिकार दुष्टवाक्यको ही दिया गया।

नागकुमारने काश्मीरमे जाकर त्रिभुवनरतिसे शास्त्रार्थ किया । और उसमें विजय पाकर वह उसके साथ विवाह करके वहीं सुखपूर्वक रहने लगा ।

एक दिन नागकुमार अपने स्थानपर बैठा था । इतनेमें ही अनेक देशोंमें परिभ्रमण करनेवाला एक वणिक् आया । नागकुमारने उससे पूछा-क्यों भाई, तूने कहीं कोई कौतुक भी देखा है ? वणिक्ने कहा-महाराज, रम्यक वनमें एक त्रिशृंग (तीन शिखरवाला) पर्वत है । उसके ऊपर एक संसारका तिलकभूत भूतिलक नामका चैत्यालय है । उस चैत्यालयके सन्मुख एक व्याधा प्रतिदिन मध्याह्न समयमें आकर पुकारता है । परन्तु मै उसके पुकारनेका कारण कुछ नहीं जानता । इस कौतुकको सुनकर नागकुमार त्रिभुवनरतिको वहीं छोड़ आप उस पर्वतके ऊपर गया । श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा स्तुतिकर बैठा ही था कि जोरसे उसे रोनेकीसी अवाज सुनाई दी । कुमारने भीलके पास जाकर पूछा-तू क्यों रोता है ? उसने निवेदन किया-महाराज, मै इसी वनके समस्त भीलोंका स्वामी हूँ । रम्यक मेरा नाम है । मेरी स्त्रीको भीम राक्षस हठात् ले गया है, और काल नामकी गुफामें रहता है । मै उसे जीत नहीं सकता इसीलिए रोता हूँ । कुमारने कहा;-अच्छा वह गुफा मुझे दिखा, कहॉ है ? तब भीलने वह गुफा दिखलाई । कुमारने व्यालको साथ लेकर उस गुफामें प्रवेश किया । इन्हें आते हुए देखकर भीम नामका राक्षस विनीत हो सत्कार करनेके लिए सम्मुख आया । और नमस्कारकर चन्द्रहास, खड्ग, नागशय्या-निधि, और कामकरंडक ये भेट देकर उसने कहा--लीजिए महाराज, इनके योग्य आप ही है । मैने श्रीकेवलीके मुखसे सुना था कि भीलकी पुकार सुनकर नागकुमार इसी गुफामें आवेगे । इसीलिए मै भीलकी स्त्रीको लाया था । अब आप ले जाकर उसे दे दीजिए । ऐसा कहकर वह भीलकी स्त्री भी कुमारके सामने खड़ी कर दी । नागकुमार प्रत्युत्तरमें यह कहकर कि ' जब मै स्मरण करूँ, तब चंद्रहासादिक लाना ' चंद्रहासादिक उसीको सौंपकर बाहर आया, और भीलको उसकी स्त्री सौंपकर पूछा;-क्यो तूने कोई कौतुक भी देखा है ? भीलने कहा--हॉ, कांचनगुफामे प्रातःकाल, मध्याह्न और सांयकालको तूर्यनाद होता है । परन्तु क्यो होता है ? यह किसीको ज्ञात नहीं है । कुमारने कहा- वह गुफा कहॉ है ? मुझे दिखाओ ।

तब भीलने गुफा दिखाई। नागकुमारने व्यालके साथ उस गुफामें प्रवेश किया। कुमारको आते हुए देखकर सुदर्शन नामकी यक्षिणी सामने आई। उसने नमस्कार करके नागकुमारको आसनपर बिठाया और निवेदन कर कहाः- महाराज, विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक वलका नगर है। वहाँके राजा विद्युत्प्रभ रानी विमलप्रभाका जितशत्रु नामका एक पुत्र है। उसने एक बार इसी गुफामें मुझ समेत चार हजार विद्या बारह वर्षतक सिद्ध की। परन्तु जिस समय विद्या सिद्ध हुई, उसी समय उसने देव दुंदुभिका शब्द सुना। तब यह किसका शब्द कहाँ होता है? इसका निर्णय करनेके लिए उसने आलोकिनी विद्या भेजी। उसने आकर जितशत्रुसे कहा कि सिद्धविवर गुफामें श्रीमुनिसुव्रत मुनिको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। वहाँ देव आकर उत्सव मना रहे हैं। उन्हींकी बजाई हुई दुंदुभिका यह शब्द है। तब जितशत्रु श्रीकेवलीकी वंदना करनेके लिए गया और केवली भगवान्‌की नाना प्रकारसे पूजा स्तुति कर उसने जिनदीक्षा माँगी। तब हम सबने मिलकर जितशत्रुसे कहा-तुमने बारह वर्ष बड़े बड़े कष्ट सहकर हमको सिद्ध किया है, इसलिए तुम्हें थोड़े दिनतक हमारा सुखफल भोगकर पीछे दीक्षा ग्रहण करना चाहिए। परन्तु वैराग्यकी तीव्र इच्छाको जब वह किसी तरह भी न रोक सका, तब अन्तमें हम सबने कहा-यदि आप नहीं मानते हैं, तो इतना तो अवश्य ही कीजिए कि हमें किसीको सौंपकर दीक्षा लीजिए। यह सुन जितशत्रुने केवली भगवान्‌से पूछा-महाराज, इनका स्वामी कौन होगा? तब भगवानने कहा-आगामी कालमें कांचनगुफामें नागकुमार आवेगा, ये सब उसकी सेवा करेंगी, ऐसा सुनकर वह तो दीक्षित हो गया और चार घातिया कर्म नष्टकर केवलज्ञान प्राप्तकर सिद्ध हुआ और हम तबसे आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं। अब आप आ गये, सो अच्छा हुआ। हम सबको स्वीकार कीजिए। "अच्छा मैंनें तुम्हें स्वीकार किया। अब जब मैं तुम्हें स्मरण करूँ, तब मेरे पास आना।" ऐसा कहकर नागकुमार उस गुफासे निकलकर बाहर आया। और फिर उसी भीलसे उसने पूछाः—भाई, तू ऐसे बड़े वनका स्वामी है। तूने और भी ऐसे अनेक कौतुक देखे होंगे। यदि देखे हों, तो बतला। तब भीलने एक वैताल नामकी गुफा दिखाकर कहा-इस वैताल गुफाके दरवाजेपर तलवारको फिराता हुआ एक वैताल रहता है। और जो

कोई इस गुफामें प्रवेश करता है, वह उसीका घात करता है। यह सुनकर नागकुमार उसे देखनेके लिए गुफामें प्रवेश करनेको उद्यमी हुआ। परन्तु दरवाजेमें पैर रखते ही उस वैतालने घात किया। जिसे चतुर नागकुमारने बचाकर तत्काल ही पैर पकड़कर उसे पृथ्वीपर दे मारा। जिसके पीछे ही नागकुमारने सामने निधि और एक सिंहासन देखा। तथा वैताल प्रगट होकर आया और "मैंने पहले सुना था कि जो कोई वैतालको आकर पछाड़ेगा वही इन निधियोंका स्वामी होगा" यह निवेदन करके उन निधियोंकी स्वामिनी विद्याको देकर वह स्वयं दास हो गया। इस तरह उस वैतालको सेवक बना नागकुमार बाहर आये और उस भीलसे फिर पूछने लगे:—क्यों भाई, तूने कोई और भी कौतुक देखा है? यदि देखा हो तो बतला। भीलने निवेदन किया;—और ऐसा कोई कौतुक नहीं देखा। तब नागकुमार श्रीजिनेन्द्रदेवको नमस्कार कर उस वनसे निकला।

मार्गमें किसी गिरिनामक पर्वतके समीप वटवृक्षके नीचे नागकुमार बैठा था कि इनके बैठते ही उस वृक्षके अंकुर निकल आये। नागकुमार उनको हिलाने लगा। इतनेहीमें उस वृक्षके रक्षकने आकर नागकुमारका नाम पूछा और निवेदन किया:—महाराज, इसी गिरिकूट नगरमें वनराज राजा राज्य करता है। उसकी अवनमना रानीसे एक लक्ष्मीमती नामकी सुन्दरी कन्या है। एक दिन राजाने किसी अवधिज्ञानी मुनिसे पूछा था कि महाराज, मेरी इस कन्याका स्वामी कौन होगा? तब श्रीमुनिने कहा था कि जिसके दर्शनमात्रसे ही गिरि नामके पर्वतके समीपके वटवृक्षके अंकुर निकलने लगेंगे, वही इस कन्याका पति होगा। यह वृत्तान्त सुन उस राजाने उसी समयसे उस पुरुषके तलाश करनेके लिए मुझे यहाँ स्थापित किया है। सो आप ठहरिए। मैं अपने महाराजको आपके आनेका वृत्तान्त सुनाता हूँ। ऐसा कहकर वह वृक्षरक्षक अपने महाराजके पास गया और कुमारके आनेके समाचार कहे। तब राजा नागकुमारके सम्मुख आया और प्रणाम कर बड़ी धूमधामसे अपने नगरमें ले गया। पश्चात् उसने इस कुमारको अपनी कन्या लक्ष्मीमती विधिपूर्वक परणा दी। नागकुमार यहाँ ही आनन्दपूर्वक रहने लगा।

एक दिन गिरिकूट नगरके उद्यानमें जय विजय नामके दो मुनि पधारे। नागकुमार उनके दर्शनोंके लिए गया।

नमस्कार करके पूछाः-भगवन, वनराजके कुलमें मुझे संदेह है। क्या यह श्रेष्ठ कुल है? तब जय नामके मुनि बोले-इसी आर्यक्षेत्रमें पुंडवर्धन नामके नगरका राजा अपराजित रानी सत्यवती और वसुंधरा सहित राज्य करता था। उसके भीम महाभीम नामके दो पुत्र थे। कारण पाकर उस अपराजितने तो भीमको राज्य देकर जिनदीक्षा ग्रहण की और घोर तप कर मोक्ष प्राप्त किया। इधर महाभीमने भीमको अपने नगरसे निकाल दिया। तब भीमने वहाँसे निकलकर यह नगर बसाया। महाभीमके भीमाङ्क नामका पुत्र हुआ और भीमाङ्कके सोमप्रभ। इस तरह महाभीमका नाती (पौत्र) सामप्रभ तो पुंडवर्धनका वर्त्तमान नरेश है और यह वनराज भीमका नाती यहाँका राजा है। सो यह सोमवंशी उत्तम कुल है। इसमें संदेहकी जगह नहीं है। नागकुमार यह कथा सुनकर अतिप्रसन्न हुआ और नमस्कार कर अपने स्थानपर आया।

एक दिन नागकुमारने एक सुन्दर शिलामें खुदी हुई वनराजकी वंशपट्टावली देखकर व्यालको आज्ञा दीः-तुम पुडवर्धन नगरमें जिस तरहसे हो सके, वनराजका राज्य स्थापित करके आओ। व्याल वहुत अच्छा कहकर विदा हुआ। थोड़े दिनोंमे पुंडवर्धनमें पहुँचा। वहाँके राजाके समीप गया और कहने लगाः-राजन्, जायंधरिने [जयंधरके पुत्र नागकुमारने] मुझे आपके पास भेजा है। और संदेशा कहला भेजा है कि तुम अपना समस्त राज्य वनराजको समर्पण करके वनराजकी आज्ञानुसार रहो, नहीं तो अच्छा नहीं होगा। सोमप्रभने कहाः-क्या नागकुमार मेरा शासक है? व्यालने कहा-इसमें भी क्या तुमको संदेह है? राजाने क्रोधित होकर कहाः-अच्छा, तो वह वनराजके साथ साथ युद्धमें सामने आवे और वहाँपर वनराजको मुझसे राज्य दिलावे। व्यालने कहाः-अब तक तो आप उनके अनुचर है। इमके उत्तरमे सोमप्रभने अत्यन्त क्रोधित होकर सेवकोंको आज्ञा दी कि इसको यहाँसे निकाल दो। राजाकी आज्ञानुसार व्यालको अर्द्धचन्द्राकार देकर (गर्दन पकड़कर) निकालनेके लिए जो शूर उठे थे, व्यालने उनको भूमिमे पछाड़ दिया। यह देख क्रोधित हो राजा भी हाथमें तलवार लेकर मारनेके लिए उठा। परन्तु व्यालने उसे ज्योंका त्यों पकड़कर बाँध लिया और उसे नगरमे अपने

स्वामी नागकुमारके राज्यका आज्ञापत्र स्थापन कर दिया। उसी समय अपने श्वसुर वनराजके साथ नागकुमारने पुंड-वर्धन नगरमे आकर राजभवनमे प्रवेश किया और सोमप्रभके वंधन छोड़कर कहा:-वनराजकी आज्ञामे रहो। परन्तु सोमप्रभने कहा:-अब मै गृहस्थाश्रमसे तृप्त हो गया हूँ, मुझे क्षमा कीजिए। इस तरह मन वचन कायसे क्षमा कराकर वहाँसे विदा हुआ और यमधर मुनिके समीप उसने अनेक जनोके साथ जिनदीक्षा ले ली। फिर द्वादशांगका पाठी तथा सकलसंघका आधारभूत होकर विहार करते हुए प्रतिष्ठपुरमें आया। बाहर उद्यानमे ठहरा। उस प्रतिष्ठपुरका राज्य अछेद्य और अभेद्य करते थे। इनके पिताका नाम जयवर्मा और माताका नाम जयावती था। जयवर्माने एक दिन अपने उद्यानमे आये हुए पिहितास्रव नामके मुनिसे पूछा:-महाराज, मेरे दोनो पुत्र कोटीभट हैं। वे अपना राज्य स्वतंत्र करेंगे अथवा किसीके सेवक होकर उसकी आज्ञानुसार करेंगे? मुनिने कहा-जो पुंडवर्धन नगरसे सोमप्रभको निकालकर वहाँका राज्य वनराजको देगा, वही इन दोनोंका स्वामी होगा। यह वृत्तान्त सुन राजा जयवर्माको वैराग्य हुआ, इसलिए उसने उन दोनो पुत्रोंको राज्य देकर मुनिव्रत अंगीकार कर लिया। घोर तपकर अच्छी गतिका आश्रय लिया। इधर अछेद्य और अभेद्य दोनों ही राज्य करने लगे। एक दिन अपने उद्यानमे श्रीसोमप्रभ मुनिराजको आया सुनकर ये दोनो उनकी वन्दना करनेके लिए गये। वहाँ उन मुनिके पूर्वके सब वृत्तान्तको सुनकर और यह जानकर कि इन सोमप्रभका राज्य वनराजको देनेवाले नागकुमार जो मेरे स्वामी होंगे, पुंडवर्धन नगरमे हैं, राज्यका भार अपने मन्त्रियोंको सौंपकर वे दोनो अपने स्वामीके दर्शन करनेके लिए पुंडवर्धन नगरमें आये। वहाँ नागकुमारके दर्शनसे प्रसन्न हुए और अपने वृत्तान्त कहकर स्वयं सेवक हो गये।

एक दिन अपनी रानी लक्ष्मीमतीको अपनी श्वसुराल ही छोड़कर नागकुमारने व्यालादिकके साथ जालांतिक नामके वनमे प्रवेश किया। किसी वटवृक्षके नीचे विश्राम किया। इसके वैठते ही इसके पूर्वपुण्योदयसे उस वनके समस्त विषरूप आम्रफल अपने परिवार सहित अमृतफलरूप परिणत हो गये। उन विषफलोंको अमृतफल परिणत हुए देखकर पाँच लाख योद्धाओंने आकर नागकुमारको नमस्कार किया और निवेदन किया:-देव, हमने एक दिन एक अवधिज्ञानी

मुनिसे पूछा था कि हम किसके सेवक होंगे। तब मुनिने कहा था कि जाङ्गलिक वनके विषफल जिसके प्रतापसे अमृत रसरूप परिणत होंगे, अथवा जिसको अमृतरस देंगे, उन्हीकी तुम सेवा करोगे। सो उनके वचन सुनकर हम तबसे यहाँ ही रहते है। श्रीमुनिने जिनके लिए कहा था, वे आप ही है; इसलिए अब आप हमारे स्वामी और हम आपके सेवक है। यह सुन कुमारने प्रेमालापसे उनको संतुष्टकर अपना सेवक बनाया। तदनंतर नागकुमार अंतरपुर नगरको गये। वहाँके राजा सिंहरथ बड़ी विभूतिके साथ उन्हे अपने नगरमे ले गये। वहाँ वे सुखपूर्वक कुछ समयतक रहे। एक दिन सिंहरथने निवेदन किया:—देव, सोरठ देशमे गिरिनगरका राजा हरिवर्मा राज्य करता है। उसकी रानी मृगलोचनासे एक गणवती नामकी कन्या है। हरिवर्माने प्रतिज्ञा की है कि मै इस पुत्रीको अपने भानजे नागकुमारको दूँगा, परन्तु उस कन्याको सिंधुदेशके स्वामी चंडप्रद्योतने जो कि वह स्वयं कोटीभट और अतिप्रचंड है तथा जिसके साथ जय, विजय, सूरसेन, प्रवरसेन और सुमति ऐसे पांच और भी कोटीभट है, हरिवर्मासे माँगी थी, परन्तु हरिवर्माने कहा—यह कन्या तो मैने नागकुमारको देना कह रक्खी है, तुम्हे कैसे दूँ? इससे चंडप्रद्योतने क्रोधित हो हरिवर्माका नगर घेर लिया है। हरिवर्मा मेरा मित्र है उसने मेरे समीप पत्रद्वारा समाचार भेजे है। इसलिए मै उसकी सहायता करनेके लिए जाता हूँ। जब तक मै न आऊँ, तब तक आप यहाँ ही निवास कीजिएगा। यह सुनकर नागकुमार थोड़ासा हँसे और वहाँ रहना अस्वीकार करके सिंहरथके साथ गिरिनगरको रवाना हुए।

सिंहरथ और नागकुमारको आते हुए सुनकर चंडप्रद्योतने उनके रोकनेके लिए जय और विजय दोनो कोटीभट भेजे। तब नागकुमारने अपने पाँचसौ सहस्रभट योद्धाओको उनके साथ लड़नेकी आज्ञा दी। उन्होंने उन दोनो कोटीभटोको शीघ्र ही पकड़कर अपने स्वामीको लाकर सौंप दिये। इससे चंडप्रद्योत अतिशय क्रोधित हुआ और तीन व्यूह रचकर युद्धभूमिमे लड़नेके लिए तैयार हुआ। तब नागकुमारने अपने अछेद्य और अभेद्य कोटीभटोको सूरसेन और प्रवरसेनके सम्मुख तथा व्यालको सुमतिके सम्मुख तैयार करके आप स्वयं चंडप्रद्योतके सम्मुख हुआ।

घोर युद्ध करके उन सबको पकड़ लिया अर्थात् नागकुमारने चंडप्रद्योतको व्यालने सुमतिको और अछेद्य अभेद्यने सूरसेन प्रवरसेनको बाँध लिया। इस तरह नागकुमार विजयी हुए। हरिवर्मा यह सब वृत्तान्त सुनकर नागकुमारके सम्मुख आया। और बहुत सत्कारके साथ उन्हे चंडप्रद्योतादिकके साथ अपने नगरमें ले गया। पश्चात् शुभ मुहूर्त्तमें गणवतीके साथ नागकुमारका विवाह हुआ।। नागकुमारने चंडप्रद्योतको वस्त्र आभूषणादिकसे सन्तुष्ट कर शल्य रहित किया और उसे उसके नगर भेज दिया। आप स्वयं गिरनार पर्वतपर श्रीनेमिनाथजीकी वंदना करनेके लिए गया। श्रीनेमिनाथजीकी भक्तिपूर्वक वंदना करके गिरिनगरको लौटा। मार्गमें किसीने एक विज्ञापनपत्र देकर निवेदन किया कि महाराज, वत्सदेशमें कौशाम्बी नगरीका राजा शुभचन्द्र अपनी सुखवती रानी सहित राज्य करता है। उसके स्वयंप्रभा, कनकप्रभा, कनकमाला, धनश्री, नन्दा, पद्मश्री, नागदत्ता ये सात पुत्री है।

विजयार्द्धकी दक्षिणश्रेणीमें एक रत्नसंचयपुर नामका नगर है। वहाँके राजा सुकंठको उसके परम शत्रु मेघवाहनने रत्नसंचयपुरसे निकाल दिया। इससे वह वहाँसे निकलकर कौशाम्बी नगरीके बाहर एक सुन्दर दुर्लंघ्य कोटसे घिरा हुआ नगर बसाकर वहीं रहने लगा। इसी सुकंठने कौशाम्बीके राजा शुभचंद्रसे उसकी कन्यायें माँगीं। परन्तु शुभचन्द्रने नहीं दी। तब क्रोधित हो सुकंठने शुभचन्द्रको मार डाला और कन्याओंको लेना चाहा। परन्तु उन कन्याओंने कहा "तूने हमारे पिताको मारा है, इसलिए जो कोई तेरा शिरः छेदन करेगा, वही हमारा पति होगा।" उन कन्याओंके ऐसे कठोर वचन सुनकर सुकंठने उन सबको बंदीखानेमें डाल दिया। उनमेंसे नागदत्ता नामकी कन्याने उस कारागारसे किसी तरह भागकर कुरुजागल देशके हस्तिनागपुरके राजा अभिचन्द्रसे जो कि उसके चाचा है, सब वृत्तान्त कहा है। जिसे सुनकर अभिचन्द्रने उसे आपके समीप भेजा है। आशा है आप उनका उद्धार करेंगे। नागकुमारने यह सब कथा सुनकर अपनी रानी गणवतीको तो अपने मामाके यहाँ भेज दिया और आप स्वयं पूर्वसाधित विद्याओंको बुलाकर आकाशमार्गके द्वारा कौशांबी नगरीमें पहुँचा। वहाँके राजा सुकंठके समीप एक दूत भेजा। उस दूतने सुकंठकी सभामें जाकर कहा—हे सुकंठ विद्याधर, तुम्हारे लिए

नागकुमारने आज्ञा दी है कि शुभचन्द्रकी कन्याओंको शीघ्र ही छोड़कर मेरे पास भेज दो। नहीं तो अपने कियेका फल पाओगे। इसका फल प्रतिकूल हुआ अर्थात् सुकंठने क्रोधित हो उस दूतको अपनी सभामें निकलवा दिया और आप नागकुमारके साथ युद्धकी इच्छा कर आकाशमें आया। नागकुमार भी सामने आया और थोड़ी ही देरमें उसने अपने महायुध चन्द्रहास खड्गसे सुकंठका शिर धड़से अलग कर दिया। पिताकी यह दशा देखकर सुकंठका पुत्र वज्रकंठ नागकुमारके शरणागत हुआ। तब नागकुमार शरणमें आये हुए उस राजपुत्रको साथ लेकर रत्नसंचयपुर आये। पश्चात् उसके शत्रु मेघवाहनको मारकर और उसे वहाँका राज्य देकर उसीकी छोटी बहिन रुक्मिणी अभिचन्द्रकी पुत्री चन्द्राभा और शुभचन्द्रकी सात कुमारी इन सबके साथ विवाह करके हस्तिनागपुरमें सुखपूर्वक रहने लगे।

इधर महाव्याल पटनामें सुखसे रहता था। उसने सुना कि पांड्यदेशमें दक्षिण मथुराके राजा मेघवाहन रानी जयलक्ष्मीकी पुत्री श्रीमतीने प्रतिज्ञा की है कि जो कोई मुझे नृत्य करनेमें मृदंग बजाकर प्रसन्न करेगा, वही मेरा पति होगा। तथा श्रीमतीकी धायकी पुत्री कामलता साक्षात् कामदेवको भी अच्छा नहीं समझती है। यह सुनकर महाव्याल मथुरामें पहुँचा और साधारण एक दूकानपर बैठ गया। उसी दिन मथुराके नरेश मेघवाहनके भागिनेय (भानजा) कामाङ्क नामके कोटीभटने अपने मामा मेघवाहनसे कामलता माँगी। मेघवाहनने देना स्वीकार नहीं किया तथा कामलताको भी यह कामाङ्क स्वीकार नहीं था। इसलिए उक्त कोटीभट इस अबला कामलताको बलपूर्वक ले जाने लगा। जब वह महाव्याल कोटीभटके सामनेसे निकला तो कामलता इसे देखकर मोहित हो गई। और चिल्लाकर कहने लगी—"मेरी रक्षा करो! मेरी रक्षा करो!" यह सुनकर महाव्यालने कामाङ्कसे कहा—अरे! इस कन्याको बलपूर्वक कहाँ लिये जाता है? इसे छोड़! शीघ्र छोड़! कामाङ्कने कहा—क्या तू छुड़ावेगा? महाव्यालने कहा:—"हाँ, छुड़ाता हूँ देख" ऐसा कहकर हाथमें तलवार ले सामने खड़ा हो गया। उधर कामाङ्क भी लड़नेको तैयार हुआ। दोनोंमें खब युद्ध हुआ। अन्तमें महाव्यालने कामाङ्कको मार डाला। मेघवाहन यह सब वृत्तान्त सुनकर महाव्यालसे भयभीत

हुआ और सत्कार करनेके लिए सामने आया। फिर बड़ उत्सवसे अपने महलमें ले गया और आदरपूर्वक कामलता उसे व्याह दी। तब महाव्याल कामतलाके साथ सुखपूर्वक मथुरामें ही रहने लगा।

मालवदेशमें उज्जयनी नगरीका राजा जयसेन अपनी जयश्री नामकी रानीके साथ सुखसे राज्य करता था। उसके एक मेनकी नामकी कन्या थी, जो किसीको भी स्वीकार नहीं करती थी और न किसीको सुन्दर ही समझती थी। धीरे धीरे यह समाचार महाव्याल तक पहुँचे। वे सुनते ही उज्जयनी आये। मेनकीने उन्हें देखकर कहाः— तुम तो मेरे भाई हो। इससे महाव्याल संतोषित होकर उज्जयनीसे हस्तिनागपुर आये। और व्यालसे नागकुमारका रूप एक सुन्दर चित्रपटमें लिखाकर फिर उसे उज्जयनी ले जाकर मेनकीको दिखाया। मेनकी देखते ही उसपर मोहित हो गई। फिर क्या था? महाव्याल शीघ्र ही हस्तिनागपुर आये और व्यालको अग्रेसर करके अपने स्वामी नागकुमारसे मिले। कुमारको अपना सब वृत्तान्त सुनाकर उनके सेवक हुए। महाव्यालने मेनकीके समाचार भी कहे। तब नागकुमार उज्जयनी आकर विधिपूर्वक मेनकीके साथ विवाह करके सुखपूर्वक रहने लगे।

एक दिन महाव्यालसे मेघवाहनकी पुत्री श्रीमतीकी प्रतिज्ञाकी कथा सुनकर नागकुमारने दक्षिण मथुराको प्रस्थान किया। मथुरामें पहुँचकर नृत्य समयमें श्रीमतीको मृदंग बजाकर प्रसन्न किया और अन्तमें उसके साथ विवाह करके वे सुखसे वहीं रहने लगे।

एक दिन नागकुमारके सभास्थानमें देशान्तरमें भ्रमण करता हुआ एक वणिक् आया। नागकुमारने उससे पूछाः— भाई, तुम अनेक देशोंमें फिरते हो। तुमने कहीं कोई आश्चर्यकारक कौतुक भी देखा है या नहीं? वणिक्ने उत्तर दिया—देव, समुद्रके मध्यभागमें एक तोपावलि द्वीप है। उसमें एक सुन्दर सुवर्णमय चैत्यालय है। उस चैत्यालयके आगे प्रतिदिन मध्यान्हके समयमें पहरेदारोंसे रक्षित पाँचसौ कन्यायें रुदन करती है—पुकारती है। परन्तु उनके रोने-पुकारनेका क्या कारण है? सो अभी तक नहीं जाना गया है। यह नया कौतुक सुनकर नागकुमार अपनी विद्याओंके प्रभावसे चारों कोटीभटों सहित तोपावलि द्वीपके सुवर्णमय चैत्यालयमें पहुँचे। श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा स्तुति

करके वहीं बैठ गये। जब मध्यान्हका समय हुआ तो वे कन्यायें पुकारने लगीं। नागकुमारने उनको बुलाकर पुकारनेका कारण पूछा। तब उनमेसे धरणिसुन्दरी नामकी एक कन्या कहने लगी;–इसी द्वीपमें एक धरणितिलक नामका नगर है। उसमे एक रक्ष नामका विद्याधर है। जिसकी हम पॉचसौ कन्याये है। हमारे पिताके भगिनीपुत्र (भानजा) वायुवेगने जो कि अतिकुरूप है, हमारे पितासे हमे मॉगा। परन्तु पिताने उसको देना स्वीकार नहीं किया। तब उस दुष्टने राक्षसी विद्याका साधन करके हमारे पितासे युद्ध किया। और उस प्रभावसे युद्धस्थलमें हमारे पिताको मारकर हमारे दोनो भाई रक्ष महारक्षको कैद करके तहखानेमे डाल दिया। इसके पश्चात् हमारे साथ वह विवाह करनेको उद्यत हुआ–परन्तु हमने कह दिया कि तूने हमारे पिताका वध किया है, इसलिए जो तुझे मारेगा, वही हमारा पति होगा। तब वायुवेगने यह कहकर कि "छः महीनेके भीतर ही मेरे प्रतिमल्लको जो मुझसे लड़ सके, मेरे लिए ढूंढो" हमको वंदीखानेमें डाल दिया है। यहॉ इस चैत्यालयमे श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा स्तुति करनेके लिए अनेक देव विद्याधर आते है, इसलिए हम पुकारती है कि कदाचित् कोई हमारा उपकार करेगा। यह सुनकर नागकुमारने वायुवेगके सेवकोको जो कि उन कन्याओंका पहरा दे रहे थे, निकाल दिया और उन कन्याओको अपने सेवकोकी रक्षामे सौंपकर आप स्वयं वायुवेगसे युद्ध करनेके लिए तैयार हुआ। वायुवेग भी लड़नेके लिए सम्मुख आया। दोनोंमें घोर युद्ध हुआ। अन्तमे बहुत समय बीतनेपर नागकुमारने अपने चन्द्रहास खड्गसे वायुवेगका काम तमाम किया। वंदीखानेमें पड़े हुए रक्ष महारक्षको छुड़ाकर उसको वहाँका राज्य दिया और उन कन्याओंके साथ विवाह किया। इतनेमें ही पॉचसौ सहस्रभट योद्धा आकर नागकुमारको प्रणामकर सेवक हुए। नागकुमारने उनसे पूछा;–क्या कारण है कि तुम विना ही प्रयोजन स्वयं आकर मेरे सेवक हुए हो? उन्होने कहा:–हमने एक दिन किसी अवधिज्ञानीसे पूछा था कि महाराज, हमारा स्वामी कौन होगा? तब मुनिने कहा था कि जो वायुवेगको मारेगा, वही तुम्हारा स्वामी होगा। सो तबसे अबतक हम यहॉ ही रहते है। आज आपने वायुवेगको मारा, इसलिए हम सब आपके सेवक हुए है।

नागकुमार वहाँसे चलकर कॉंचीपुरमें पहुँचे । कॉंचीपुरमे वल्लभनरेन्द्र नामका राजा राज्य करता था । उसने नागकुमारको अपनी कन्या देकर सत्कार किया ।

नागकुमार वहाँसे चलकर कलिंग देशके दंतपुर नामके नगरमे पहुँचे । वहाँ राजा चन्द्रगुप्त राज्य करता था । उसकी चन्द्रमती नामकी रानीसे मदनमंजूषा पुत्री थी । चन्द्रगुप्तने नागकुमारको बड़ी विभूतिके साथ नगरमें प्रवेश कराया और अपनी मदनमंजूषा कन्या अर्पण की ।

तदनन्तर नागकुमार ऊड देशके त्रिभुवनतिलकपुर नामके नगरमे गये । वहाँ राजा विजयधर रानी विजयावती सहित राज्य करता था । उसने भी नागकुमारको बड़ी धूमधामके साथ नगरमे प्रवेश कराया और अपनी लक्ष्मीमती नामकी कन्या विवाही । लक्ष्मीमती नागकुमारको सबसे प्रिय लगी, इसलिए वे उसके साथ वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे ।

एक दिन उस नगरके बाहरी उद्यानमे पिहितास्रव मुनि पधारे । सो नागकुमार अपने श्वसुर विजयंधर सहित मुनिकी वंदना करनेके लिए गये । भक्तिपूर्वक मुनिकी वंदना की, धर्म श्रवण किया । उसके पीछे मुनिसे निवेदन किया:-महाराज, लक्ष्मीमतीके ऊपर मेरा सबसे अधिक स्नेह है, इसका क्या कारण है? मुनिमहाराज कहने लगे;-

इसी द्वीपके अवंति [मालव] देशमे उज्जयनी नगरी है । वहाँ राजा कनकप्रभ रानी कनकप्रभा सहित राज्य करता था। उसके सुवर्णनाभि नामका एक पुत्र था । सुवर्णनाभिने बहुतसा दान दिया था। जिन पूजनादिक की थी। इससे अन्तमें वह समाधिमरणसे शरीर छोड़ महाशुक्र नामके दशवे स्वर्गमे बड़ी ऋद्धिका धारक देव हुआ । अनेक प्रकारके सुख भोगे । वहाँसे चयकर वह ऐरावत क्षेत्र आर्यखंडके वीतशोकपुर नगरमे जहाँ कि राजा महेन्द्रविक्रम राज्य करता था, धनदत्त नामके वैश्यके घर धनश्री नामकी धनदत्तकी स्त्रीसे नागदत्त नामका पुत्र हुआ । उसी नगरमें एक दूसरा वैश्य वसुदत्त रहता था । उसकी स्त्रीका नाम नागमती और पुत्रीका नाम नागवसु था । नागवसु नागदत्तको विवाही गई । एक दिन नगरके बाहरके उद्यानमे श्रीगुप्ताचार्य नामके मुनि पधारे । राजा महेन्द्र विक्रम अपनी प्रजासहित मुनिकी वंदना करनेके लिये गया। नागदत्त भी गया। सबने बड़ी भक्तिसे मुनिकी वंदना

की, धर्मश्रवण किया। प्रबुद्ध होकर नागदत्त पंचमीके दिन उपवास करनेका व्रत ले, अपने घर आया। उपवास करने लगा। एक दिन उपवासकी रात्रिको उसको कोई महापीड़ा हुई। उसके पिता आदिक कुटुम्बी लोगोंने उपवास भंग करनेके लिए अनेक उपाय किये। परन्तु नागदत्तने व्रत नहीं छोड़ा। रात्रिके पिछले पहर समाधिमरणपूर्वक शरीरको छोड़कर वह सौधर्म स्वर्गके सूर्यप्रभ विमानमें देव हुआ। सो भवप्रत्यय (भवसे ही होनेवाले) अवधिज्ञानसे वह अपने सब वृत्तान्त जानकर अपने बंधु जनोंके पास धर्मोपदेश देनेके लिये आया। धर्मोपदेश देकर अपने स्थान स्वर्गलोकमें गया। नागदत्तकी स्त्री नागवसुने व्रतका माहात्म्य देखकर तप अंगीकार किया। बहुत तप किया। परन्तु मध्यमें यह निदान किया कि मैं उसी देवकी जो कि नागदत्तका जीव हुआ है, स्त्री होऊँ। तपके प्रभाव और निदानके कारणसे वह उसी देवकी देवी हुई। पश्चात् स्वर्गसे चयकर देवका जीव तो तू नागकुमार हुआ और देवीका जीव लक्ष्मीमती हुई। यह सुनकर नागकुमारने पञ्चमीके दिन उपवास करनेकी विधि पूछी। श्रीमुनि महाराज कहने लगे कि—

फाल्गुण, आपाढ़ अथवा कार्त्तिक महीनेकी शुक्ल चतुर्थीके दिन शुद्ध होकर साधुमार्गसे भोजन करके उपवासको स्वीकार करै। व्रतके सम्पूर्ण दिवस समस्त निन्दनीय व्यापारोंको छोड़कर धर्मकथाके विनोदपूर्वक व्यतीत करै। रात्रिमें रागकी करनेवाली शय्याका भी त्याग करै। तथा कषायादिकको छोड़कर धर्म्यध्यानमें तत्पर रहै। षष्ठी (छठ) के दिन यथाशक्ति पात्रोंको दान देकर स्वयं कुटुम्ब तथा अपनी स्त्रियोंके साथ पारणा करै। इस तरह प्रत्येक महीने करै, सो पाँच वर्ष और पाँच महीने करै अथवा केवल पाँच ही महीने करै। अन्तमें व्रतोद्यापन विधान करै। उद्यापनकी विधि इस प्रकार है कि पाँच चैत्यालय अथवा पाँच प्रतिमा बनवावै। तथा पाँच कलश, पाँच चमर, पाँच ध्वजा, पाँच दीपक, पाँच घंटा, पाँच पंच और पाँच आचार्योंके लिए ग्रन्थ लिखाकर देवै। श्रावक श्राविका और आर्यिकाको वस्त्रादिक देवै, तथा यथाशक्ति दान भोजनादिक देकर जैनधर्मकी प्रभावना करै। इसके फलसे स्वर्गादिक सुख मिलकर मोक्ष मिलता है। नागकुमारने इस प्रकार पंचमी व्रतकी विधि सुनकर पंचमीके दिन उपवास करनेकी प्रतिज्ञा ली। तथा उनके साथ लक्ष्मीमतीने भी ग्रहण की। दोनों पतिपत्नी पंचमी व्रतको करते हुए वहीं सुखपूर्वक रहने लगे।

कुछ दिनके वाद नागकुमारके पिता राजा जयंधरने नागकुमारके बुलानेके लिए नयंधर मंत्रीको भेजा। उसने आकर कुमारसे जयंधरके कहे हुए सब समाचार सुनाये और घर चलनेको प्रार्थना की। तब नागकुमार अपनी पहली विवाही हुई समस्त स्त्रियोंके तथा लक्ष्मीमतीके साथ विद्याप्रभावसे सुन्दर विमान बनाकर उसपर सवार होकर आकाश मार्गके द्वारा अपने नगरमें पहुँचा। कुमारका आना सुनकर जयंधर बड़ी विभूतिके साथ सम्मुख आया। कुमारने अपने पिताको प्रणाम किया और नगरमे प्रवेश किया। इसी समय विशालनेत्राने अपने पुत्रसहित जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। नागकुमार समस्त प्रजाका प्रेमपात्र बनकर सुखसे रहने लगा।

एक दिन जयंधर महाराजने दर्पणमे अपना मुख देखते समय यमदूतके समान एक श्वेत बाल देखा। उससे उन्हें बड़ा वैराग्य उत्पन्न हुआ। इसलिए वे प्रतापंधरको (नागकुमारको) राज्य देकर श्रीपिहितास्रव मुनिके निकट अनेक जनोंके साथ दीक्षित हो गये। पृथ्वीने भी श्रीमती आर्यिकाके निकट आर्यिकाके व्रत धारण किये। श्रीजयंधर मुनिने घोर तपकर घातिया कर्मोंको नष्टकर केवलज्ञान प्राप्त किया। आयु शेष होनेपर मोक्ष पधारे। और पृथ्वी शक्त्यनुसार घोर तप करके समाधिपूर्वक शरीर छोड़, स्त्रीलिङ्ग छेद, अच्युत स्वर्गमें देव हुई।

इधर नागकुमारने व्यालको आधा राज्य दिया। अच्छेद्य और अभेद्यको कौशल देश, सीर देश और मालव देश दिया। महाव्यालके लिए गौड़ देश और वैदर्भ देश दिया। सहस्रभटोंके लिए पूर्वके देश दिये और इसी प्रकार और लोगोंको भी यथोचित देश दिये। इस प्रकार नागकुमारको महामंडलेश्वरकी विभूति प्राप्त हुई। अन्तःपुरमें आठ हजार रानियाँ हुई। उनमेंसे लक्ष्मीमती, धरणिसुन्दरी त्रिभुवनरति और गुणवती इन चारको पट्टरानी पद दिया गया। लक्ष्मीमती पट्टरानीसे देवकुमार नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। तथा और और रानियोंसे और भी अनेक पुत्र हुए। इस तरह नागकुमारने अनेक सुख अनेक भोगोपभोगोंके साथ आठसौ वर्ष राज्य किया।

एक दिन वे छतपर बैठे हुए आकाशकी शोभा देख रहे थे। इतनेमें ही एक मेघ सुन्दर दृश्य दिखाकर शीघ्र ही मिट गया। उसे मिटते देख संसारकी सब दशा अनित्य समझ वे संसारके भोगोपभोगोंसे विरक्त हुए। अपने

पुत्र देवकुमारको राज्य दे, व्याल महाव्याल अच्छेद्य अभेद्य चारों कोटीभटो एक हजार सहस्रभटो तथा अनेक मुकुटवद्ध मंडलेश्वरादिकोंके साथ उन्होने अमलमति नामके केवलीके पास जिनदीक्षा ले ली। तथा पृथ्वी आदिक स्त्रीसमुदायने भी पद्मश्री आर्यिकाके समीप जाकर आर्यिकाके व्रत धारण किये। नागकुमारने चौसठ वर्ष पर्यन्त घोर तप किया और घातिया कर्मोको नष्टकर कैलाश पर्वतपर केवलज्ञान उपार्जन कर वहाँसे मोक्ष गये। और व्याल महाव्याल अच्छेद्य अभेद्य ये चारो कोटीभट छयासठ वर्ष तप करके केवली हो कैलाशसे ही मुक्ति पाये। इस तरह नागकुमार श्रीनेमिनाथ तीर्थकरके समयमे हुए और इनकी सम्पूर्ण आयु एक हजार सत्तर १०७० वर्षकी हुई। इनके साथी सहस्रभटादिक मुनि अपने अपने तपके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त पधारे। लक्ष्मीमती आदिक रानियाँ अच्युतस्वर्ग पर्यन्त गई। इस प्रकार एक वैश्यपुत्र केवल पंचमीका ही उपवास करके उक्त विभूतिसे विशिष्ट हुआ। इस तरह मन वचन कायकी शुद्धतापूर्वक जो उपवास करेगा, वह भी ऐसे २ उत्तम उत्तम फल भोग कर अन्तमें मोक्षलक्ष्मी प्राप्त करेगा।

---

(२) भविष्यदत्तकी कथा।

आर्यखंडके कुरुजांगल देशमें एक हस्तिनागपुर नामका नगर है। वहाँका राजा भूपाल रानी प्रियमित्रासहित सुखसे राज्य करता था। उसी नगरीमे एक धनपति नामका वैश्य रहता था, जिसकी स्त्रीका नाम कमलश्री था। एक दिन कमलश्री अपने मकानकी छतपर बैठी हुई दिशावलोकन कर रही थी कि उसकी दृष्टि अकस्मात् एक ऐसी गौपर पड़ी जो कि थोड़े ही समयकी प्रसूता थी और बड़े प्रेमसे अपने बछरेके पीछे पीछे जा रही थी। उसे देखकर कमलश्रीको भी पुत्रकी इच्छा हुई और पुत्रके न होनेसे अति दुःखी हुई। पतिने आकर अपनी प्रियाको उदास देखकर दुःखका कारण पूछा। तो कमलश्रीने अपने पुत्र न होना ही कारण बतलाया। तब सेठ धनपतिने यह विचार

करके कि धर्म सेवन करनेसे इष्ट अर्थकी सिद्धि होती है, धर्म ही सबका मूल कारण है, नगरके बाहर एक सुन्दर रम्य स्थानमे श्रीजिनेन्द्रदेवके विशाल जिनमंदिर बनवाये।

एक दिन कारणवश राजा भी नगरके बाहर शोभा देखनेके लिए निकला। वहाँ अनेक विशाल जिनमंदिरोंको देखकर उसने किसीसे पूछा कि ये जिनमंदिर किसके बनवाये हुए है? उत्तरसे मालूम हुआ कि धनपति श्रेष्ठीके बनवाये है। तब राजाने अतिशय प्रसन्न होकर धनपतिको अपना राजश्रेष्ठी बनाया। धनपति राजश्रेष्ठी होकर सुखसे रहने लगा।

एक दिन स्वामी श्रीधर मुनि आहार लेनेके निमित्त नगरमे आ रहे थे सो सेठ धनपतिने पड़गाहना करके उन्हे भक्तिपूर्वक आहार दिया। श्रीधर मुनिका अन्तरायरहित आहार हुआ। अनन्तर धनपतिने श्रीमुनि महाराजसे निवेदन किया कि महाराज, मेरी स्त्री कमलश्रीके कोई पुत्र होगा या नहीं? श्रीमुनिने कहा—हाँ! तेरे अतिपुण्यवान् गुणवान् पुत्र होगा। कमलश्री यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। थोड़े दिनके पीछे उसके एक पुत्र हुआ। उसके जन्मोत्सवमें राजाने तथा प्रजाने बड़ा उत्सव किया। पुत्रका नाम भविष्यदत्त रक्खा गया। वह दिन दिन द्वितीयाके चन्द्रमाकी तरह बढ़ने लगा और धीरे धीरे विद्याविशारद तथा सर्व कलाओंमें निपुण हो गया।

कर्मकी गति बड़ी विचित्र है। जो आज राजा है, कर्मके वशसे दूसरे ही दिन उसकी रंक अवस्था देख पड़ती है। कमलश्री जैसी निर्दोष शीलवती स्त्रीको पूर्वोपार्जित अशुभोदयसे धनपतिने अपने घरसे निकाल दी। तब वह अपने पिता हरिबल माता लक्ष्मीमतीके निकट आई और वहीं रहने लगी।

धनपति सेठके नगरमें एक वरदत्त नामका वणिक् रहता था। उसकी स्त्रीका नाम मनोहरी था। उसके एक कन्या थी, जिसका नाम सुरूपा था। कमलश्रीके निकालनेपर इस सुरूपाके साथ धनपति सेठने विवाह किया। समयानुसार उसके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम बंधुदत्त रक्खा गया। यह पिताका बड़ा प्यारा हुआ। बंधुदत्त सब कलाओंमे निपुण होकर क्रमसे युवावस्थाको प्राप्त हुआ। तब धनपति बंधुदत्तके विवाहकी तैयारी करने लगा।

परन्तु बंधुदत्तने कहा कि नहीं मै इस तरह विवाह नही करता। मै अपने कमाये हुए द्रव्यसे विवाह करूँगा। ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करके पाँचसौ वणिक् पुत्रोंको साथ लेकर बंधुदत्त द्वीपान्तरको चलने लगा। उसी समय भविष्यदत्तने भी यह समाचार सुने कि बंधुदत्त द्वीपान्तर जाता है। तव उसने अपनी मातासे सविनय पूछा कि मै भी बंधुदत्तके साथ द्वीपान्तर जाऊँ? माताने कहा कि वह अतिशय दुष्ट है! ? उसके साथ जाना अच्छा नही है। परन्तु भविष्यदत्तने फिर भी जानेके लिए हठ किया तव माताने समझाया कि तेरे पास द्रव्य नही है, कुछ सामान नही है, तू द्वीपान्तर कैसे जा सकेगा? भविष्यदत्तने कहा कि अच्छा सामान वगैरह नही है तो अपने पिताके पाससे माँग लूँगा, परन्तु परदेश जाऊँगा। ऐसा कहकर उसने पिताके पास जाकर द्रव्य तथा सामानादिकी याचना की। परन्तु पिताने साफ जवाव दे दिया कि इस विषयमें मै कुछ नही जानता। तेरा भाई बंधुदत्त ही जाने। लाचार भविष्यदत्त बंधुदत्तके पास गया। तव बंधुदत्तने कपटपूर्वक अपने भाईको प्रणाम किया और कहा कि क्यो भाई, आज कैसे पधारे? भविष्यदत्तने कहा कि मेरी इच्छा तुम्हारे साथ द्वीपान्तर जानेकी है। परन्तु विना कुछ सामानके जा नही सकता, इसलिए थोड़ासा सामान मुझे दो कि जिसकी सहायतासे मै तुम्हारे साथ चल सकूँ। बंधुदत्तने कहा कि भाई, सामानकी तो वात ही क्या है, तुम मेरे भी स्वामी हो। जो तुमको चाहिए, सो ले जाओ। ऐसा कहकर उसने थोड़ासा सामान भविष्यदत्तको भी दिया। तव सामानको लेकर भविष्यदत्तने भी किसी अच्छे मुहूर्त्तमे बंधुदत्तके साथ यात्रा की।

चलते चलते एक दिन किसी भयानक वनमे डेरा किया। वहाँ आधी रातके समय वहुतसे भीलोने आकर सव सामान लूटना प्रारम्भ कर दिया। तव बंधुदत्त आदि सवके सव भीलोके भयसे भाग गये। परन्तु भविष्यदत्तने वड़े साहसके साथ उन भीलोके साथ युद्ध किया। और अन्तमे उसहीकी विजय रही, अर्थात् भविष्यदत्तने अपना सव माल छुड़ाकर भीलोको भगा दिया। इससे भविष्यदत्तकी वड़ी प्रशंसा हुई। सव मिलकर वहाँसे चले और वहुधान्यखेट नगरमे पहुँचे। उस नगरमे प्रभावती नामकी एक प्रसिद्ध वेश्या थी। सो भविष्यदत्त उस वेश्याको कुछ किराया देकर

उसीके घर ठहर गया। पश्चात् बंधुदत्त सब सामान किरायेके जहाजोंपर लादकर जिस समय चलने लगा, उस समय भविष्यदत्तको भी वेश्याके यहाँसे बुलवा लिया। और सब जहाजमें बैठकर आगेको चले। कितने ही दिनोंमें तिलकद्वीपमें पहुँचे। वहाँ जल और लकड़ी भरनेके लिए जहाज खड़े किये गये। सब जहाजसे उतर कर अपना अपना काम करने लगे। कोई रसोई करने लगा, कोई पानी भरकर जहाजमें रखने लगा, कोई सामान रखने लगा। इसी बीचमें भविष्यदत्तने वनमें घूमते हुए एक सुन्दर सरोवर देखा। उसमें स्नान कर वह श्री जिनेन्द्रदेवकी स्तुति करनेको बैठ गया।

इधर जहाजवाले भोजनादिकसे निवृत्त होकर काष्ठ जल आदिका संग्रह करके जहाज चलनेकी तैयारी करने लगे। अनेको कहा कि भविष्यदत्तने कहाँ है? यहाँ देख नहीं पड़ता। बंधुदत्तने इससे प्रसन्न होकर अपने सेवकोंको आज्ञा दी कि इस जंगलमें सिंह व्याघ्रादिकका बहुत भय है, इसलिए शीघ्र ही जहाज चलाओ। आज्ञा पाकर जहाज चलने लगे। थोड़ी देरमें भविष्यदत्त लौटकर आया, परन्तु जहाज न दीख पड़े। तब माताकी दी हुई शिक्षा स्मरण हुई। माताने कहा था कि यह तेरा भाई दुष्ट है, तू इसके साथ मत जा। सो उसका फल आज पाया। वह अपनेको असहाय और अशरण देखकर एकत्व, अनित्यत्व, अन्यत्त्व, अशरणत्व आदि बारह भावनाओंका चिन्तवन करता हुआ उस वनके चारों ओर भ्रमण कर रहा था कि अकस्मात् उसने एक वटवृक्षके नीचे, नीचेको जाती हुई सीढ़ियाँ देखीं और यह समझकर कि यहाँ बावड़ी है, नीचे जल भरा होगा, वह सीढ़ियोंपरसे पानी पीनेकी इच्छासे नीचे उतरने लगा। थोड़ी ही दूर गया था कि एक ओर पृथ्वीके नीचे ही एक ऊजड़ पड़ा हुआ शहर दीख पड़ा। उस नगरके ईशान कोनमें एक परम पुनीत सुन्दर जिनमंदिर दीख पड़ा। भविष्यदत्त श्रीजिनालयको देखकर प्रसन्न होकर उसके दरवाजेपर पहुँचा। परन्तु उसके कपाट बंद देखकर बाहर ही बैठकर स्तुति करने लगा। उसकी भक्तियुक्त सच्ची स्तुतिके प्रभावसे थोड़ी ही देरमें वे कपाट स्वयं ही खुल गये। भविष्यदत्तने भीतर जाकर डेढ़सौ धनुष ऊँची चन्द्रकान्त रत्नमयी

प्रतिमा विराजमान देखी। प्रसन्न चित्त होकर भक्तिपूर्वक दर्शन स्तुति की। उसको ऐसे अपूर्व चैत्यालयके दर्शन प्रथम ही हुए थे। दर्शनादिक करके वह उसी चैत्यालयकी दालानमें एक ओर बैठ गया।

इसी बीचमें एक और कथा है। सो इस प्रकार है कि इसी द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती नामका देश है। उसमें पुंडरीकिणी नगर सबसे सुन्दर है। उस नगरके बाहर श्री यशोधर तीर्थंकरका समवशरण आया। उसमें अच्युत नामके सोलहवें स्वर्गके इन्द्र विद्युत्प्रभने गणधर स्वामीसे पूछा कि प्रभो, मेरा पूर्व भवका मित्र धनमित्र कहाँ उत्पन्न हुआ है और उसकी स्थिति कैसी है? गणधर देवने कहा कि इसी द्वीपके भरत क्षेत्रमें एक हस्तिनागपुर नगर है। वहाँके प्रधान वैश्य धनपतिकी स्त्री कमलश्रीसे उत्पन्न हुआ भविष्यदत्त तेरा पूर्व जन्मका मित्र है। और वह इस समय तिलकद्वीपके हरिपुर नगरमें श्री चन्द्रप्रभके जिनालयमें बैठा है। उस हरिपुर नगरमें अरिंजयके पूर्व भवका शत्रु कौशिकका जीव राक्षस हुआ है, सो उसने पूर्व भवके वैरसे हरिपुर नगरकी सब प्रजा राजा रानी समेत मारकर केवल भविष्यानुरूपा शेप रक्खी है। सो उस भविष्यानुरूपासे विवाह करके बारह वर्ष पीछे तेरा मित्र भविष्यदत्त अपने कुटुम्बसे मिलेगा।

मित्रकी ऐसी कथा सुनकर उस इन्द्रने एक अमितगीत देवको तत्काल ही हरिपुरको भेजा और आज्ञा दी कि भविष्यदत्त भविष्यानुरूपाका परस्पर दर्शन जिस तरह हो सके, वही करो। अमितगतिने चन्द्रप्रभके चैत्यालयमें पहुँचकर देखा कि भविष्यदत्त सो रहा है। तब उसने समीपवाली दीवालकी ऐसी जगहपर जहाँ कि भविष्यदत्तको उठते ही दृष्टि पड़े, ये वाक्य लिख दिये—"भविष्यदत्त! इस नगरके राजा अरिंजय रानी चन्द्राननासे उत्पन्न हुई भविष्यानुरूपा पुत्रीके साथ जो कि यहाँके राजभवनमें अकेली ही रहती है और एक राक्षस जिसकी रक्षा करता है, विवाह करके बारह वर्ष पीछे तुम अपने कुटुम्बसे मिलोगे"। ऐसा लिखकर देव तो अपने स्थान चला गया। इधर भविष्यदत्तने उठते ही उक्त लिखे हुए वाक्य देखकर राजभवनकी ओर चलनेका उद्यम किया। तलाश करते हुए राजभवनके पास पहुँचा। एक झरोखेमेंसे भविष्यानुरूपाको देखकर उसने कहा कि भविष्यानुरूपे, किवाड़ खोल, भविष्यानुरूपाने कि-

भविष्यदत्तने कहा—मैं एक वैश्यका पुत्र हूँ। मार्ग चलता हुआ यहाँ आया हूँ।
वाड़ खोलकर पूछा कि तुम कौन हो? भविष्यदत्तने कहा—मैं एक वैश्यका पुत्र हूँ। मार्ग चलता हुआ यहाँ आया हूँ। पश्चात् जब भविष्यदत्त स्नान भोजनसे
तब राजपुत्रीने वणिक्‌पुत्रको सत्कार करके स्नान भोजनकी सब व्यवस्था कर दी। पश्चात् जब भविष्यदत्त स्नान भोजनसे
छुट्टी पा चुके, तब भविष्यानुरूपाने कहा—एक राक्षसने यहाँकी सब प्रजा और राजाको मार डाला है और वही यहाँपर
मेरी रक्षा करता है। ये चित्र विचित्रके दास दासी उसने मेरे लिए ही भेजे हैं और ये ही सब मेरे भोजनादिकका प्रबंध
करते हैं। वह छःमहीने पीछे आकर मुझे एक वार देख जाता है। अब वह आगामी सप्ताहमें आनेवाला है। सो जबतक वह न आवे,
तबतक तुम यहाँसे चले जाओ। भविष्यदत्तने कहा—नहीं, मैं जाना नहीं चाहता। मैं देखना चाहता हूँ कि वह कैसा प्रतापी है?
ऐसा कहकर भविष्यदत्त वहाँ ही रहा और वह भविष्यानुरूपा कन्या भी संयम सहित रही। अपने समयपर वह राक्षस आया।
भविष्यदत्तको देखते ही वह इसके पैरोंपर पड़ गया और भविष्यानुरूपाको अर्पण करके बोला कि मैं आपका सेवक हूँ।
आप जब स्मरण करेंगे, तब मैं हाजिर होऊँगा। ऐसा कहकर वह तो अपने स्थानपर चला गया। और भविष्यदत्त
भविष्यानुरूपा दोनों पति पत्नी होकर सुखसे रहने लगे।

इधर भविष्यदत्तकी माता कमलश्री पुत्रके वियोगमें अतिशय दुःखित हुई। उस दुःखकी शांति करनेके लिए
उसने सुव्रता आर्यिकाके समीप पंचमीका व्रत लिया और उसे यथारीति पालती हुई दिन व्यतीत करने लगी।

इधर भविष्यदत्तको भविष्यानुरूपाके साथ रहते हुए बारह वर्ष हो गये। तब एक दिन भविष्यानुरूपाने अपने
पतिसे पूछा कि नाथ, जैसे मेरे पिता माता भाई बहिन कोई नहीं है—मैं अकेली हूँ सो इस तरह क्या आप भी
अकेले ही हो? भविष्यदत्तने कहा—नहीं, मेरे माता पिता आदि कुटुम्ब सब हस्तिनागपुरमें हैं। पत्नीने कहा—तो वहाँ
चलनेका कोई उपाय करना चाहिए। तब भविष्यदत्तने चलनेका विचार किया। अच्छे अच्छे रत्नोंकी राशि समुद्रके
किनारे लगाकर और ऊँची ध्वजायें फहराकर वहाँ ही भविष्यानुरूपाके साथ रहने लगा।

भविष्यदत्तका भाई बंधुदत्त जो व्यापार करनेके लिए गया था, अनेक व्यापार कर जहाजोंमें बहुतसा माल
खजाना लादकर लौट रहा था कि मार्गमें सबका सब माल चोरोंने लूट लिया। जहाज खाली होनेसे चलनेमें असमर्थ

हुए, तब पाषाण भरकर ही लौटा और वहीं आ पहुँचा, जहाँ कि भविष्यदत्त रत्नराशि लगाये ध्वजा फहराये निवास कर रहा था। बंधुदत्त दूरहीसे ध्वजा सहित महारत्नराशिको देखकर किनारेपर आया। आते ही भविष्यदत्तके दर्शन हुए। बाँसके विडेके समान अभेद्य कपट रखके भविष्यदत्तने बाहरसे बड़ा शोक दिखलाया और कहा–भाई, मैं क्या करूँ, जब जहाज बहुत दूर निकल गये, तब तुम्हारा स्मरण आया। तुमको जहाजमें न देखकर मुझे मूर्छा आ गई, अत्यन्त दुःख हुआ। मैंने बहुत चाहा कि जहाजोंको लौटाऊँ, परन्तु वायुका ऐसा वेग हुआ कि जहाज किसी तरह न लौट सके। तुम्हारे विना मुझे यथोचित फल भी मिल गया। मेरा सब द्रव्य लुट गया। भविष्यदत्तने यह सब सुनकर सबको धैर्य बँधाया। और उन सबको नगरमें ले आया। सबको स्नान भोजन कराकर मार्गका परिश्रम दूर किया। दूसरे दिन उस महारत्नराशिको जहाजमें भरकर और भविष्यानुरूपाको जहाजमें बिठाकर जब भविष्यदत्त स्वयं जहाजपर चढ़ने लगा तब भविष्यानुरूपाने कहा कि नाथ, मैं करुणमुद्रिका (मुँदरी) और रत्नप्रतिमा भूल आई हूँ, सो ला दीजिए। तब भविष्यदत्त अपनी प्रियाकी उन प्रिय वस्तुओंको लेनेके लिए लौट पड़ा।

इधर बंधुदत्तने भविष्यानुरूपाको अकेली देखकर उसपर मोहित हो अपने सब साथियोंसे कहा कि जिस जहाजमें जो वस्तु है, वह उसीकी है जो उस जहाजका नेता है मेरी नहीं है। सब अपनी अपनी सँभालो। मुझे तो इस कन्या और इतने द्रव्यसे ही सन्तोष है। ऐसी आज्ञा देकर उस दुष्टने सब जहाज आगे बढ़ा दिये। भविष्यानुरूपा अपने पतिको न देखकर मूर्छित हुई, अत्यन्त शोक किया। इसी समय बंधुदत्तने आकर अनेक प्रकारके कामोत्पादक विकारोंके द्वारा घोर उपसर्ग दिया, जिससे भविष्यानुरूपा अतिदुःखी हुई। अन्तमें विचार किया कि कदाचित् यह महापापी बलात्कार शील भंग कर देगा, तो महाअनर्थ हो जायगा। इससे समुद्रमें पड़ जाना अच्छा है। ऐसा विचार कर वह महाशीलवती समुद्रमें पड़ना ही चाहती थी कि उसके शीलके प्रभावसे जलदेवताका आसन कंपायमान हुआ। अवधिज्ञान द्वारा सब समाचार जानकर जलदेवता शीघ्र ही वहाँ आई और सब जहाजों समेत बंधुदत्तको जलमें

डुवानेको तैयार हुई । जहाज डूबने लगे । वंधुदत्त चुप हुआ सामने पुतलीकी तरह खड़ा रहा । जहाजके अन्य वणिक्पुत्रोने आकर भविष्यानुरूपासे विनती की;-हे महासती, क्षमा कर ! क्षमा कर ! ! तब भविष्यानुरूपाने सबको क्षमा किया अर्थात् उस देवीद्वारा सबको बचाया । परन्तु पतिके वियोगमें वह फिर भी रोने लगी । तब उस देवीने कहा;-सुन्दरी, तू दुःख मत कर, तेरा पति दो महीनेमें तुझसे मिलेगा । यह सुनकर कुछ ढाढस बाँध चुप हो रही । कई एक दिनोमे वे सब हस्तिनागपुर पहुँचे । वंधुदत्त अपने घर गया। पितासे जाकर कहाः-मै तिलकद्वीपको गया था। उस द्वीपके हरिपुर नगरमे भूपाल राजा राज्य करता है । उसकी रानी स्वरूपासे यह कन्या उत्पन्न हुई थी। एक दिन राजा अपने कुटुम्ब सहित क्रीड़ा करनेके लिए किसी भयानक वनमे गया था । मै भी उसके साथ था । वहाँ एक ऐसा भयानक सिंह राजाके सामने आया कि उसे देखते ही सब कुटुम्बके लोग भाग गये। परन्तु मैने उस सिंहको मार डाला, इससे राजाने प्रसन्न हो मेरे लिए यह कन्या दी । सो मै विवाह निमित्त आपके पास लाया हूँ। इसने अपने माता पिताके वियोगसे मौन धारण कर लिया है । अब आपके विचारमें आवे, सो कीजिए । वंधुदत्तके ऐसे वाक्य सुनकर धनपति आदि सब कुटुम्बने मिल भविष्यानुरूपाको अनेक तरहसे समझाया । परन्तु वह इस अपूर्व जंजालको देख कुछ न कह सकी, केवल मौन धारण कर ही बैठ रही । वंधुदत्तको आया सुन कमलश्रीने आकर भविष्यदत्तकी खबर पूछी। वंधुदत्तने कहाः-वह बहुधान्यखेटमे प्रभावती वेश्याके घर रहता है । कमलश्री यह सुन और भी दुःखित हुई ।

इसी नगरमे एक दिन श्रीविनयंधर केवली भगवान् विहार करते हुए आये । कमलश्री दर्शनके लिए गई । वन्दना नमस्कार कर पूछा-महाराज, भविष्यदत्त कब आवेगा ? भगवानने कहाः-वह एक महीनेमे आवेगा । सुनकर कमलश्रीको बहुत संतोष हुआ ।

इधर भविष्यदत्त मुद्रिका आदि लेकर समुद्रके किनारे आया । परन्तु भविष्यानुरूपाको न देख मूर्छित हो गया। बड़ी कठिनतासे सचेत हुआ । सचेत होते ही अपने आत्माका स्वरूप चितवन करने लगा और फिर अपने राजभवनको लौट वहीं रहने लगा । इसके दो महीने पीछे फिर एक दिन अच्युत स्वर्गके इन्द्रको चिंता हुई कि मेरा मित्र

किस दशामें है ? तब अवधिज्ञानसे उसकी उक्त दशा जान उसने मणिभद्रदेवको भेजा और आज्ञा दी कि भविष्य-दत्तको उसके मातापिताके घर पहुँचा दो। देवने भविष्यदत्तको सुन्दर विमानमें विठा नाना प्रकारके रत्नादिको सहित रात्रिहीमें हरिवलके द्वारपर, जहाँ कि इसकी ननसार थी और जहाँ इसकी माता कमलश्री रहती थी, उतार दिया। भविष्यदत्तने माता नाना मामा आदिसे मिल सबको संतुष्ट कर फिर भविष्यानुरूपाकी वात पूछी। कमलश्रीने बंधुदत्तका वृत्तान्त बतलाकर कहा:-वह मौन धारण कर रहती है। तब भविष्यदत्तने प्रातःकाल ही अपनी माताको अपनी अँगूठी भविष्यानुरूपाको दिखानेके लिए भेजी और आप स्वयं राजाके दरवारमें गया। राजासे सबका सब वृत्तान्त कहा। राजाने भविष्यदत्तको तो अपने ही महलमें परदेमें छुपा रक्खा। और धनपति तथा बंधुदत्तके साथ जो जो गये थे, उन वणिकों तथा बंधुदत्तको बुलाकर सबसे भविष्यदत्तकी खबर पूछी। बंधुदत्तने कहा:-महाराज, वह बहुधान्यखेटमें प्रभावती वेश्याके घर रहता है। साथ जानेवाले वणिकोंने भी बंधुदत्तकी हाँमें हाँ मिला दी। तब धनपतिने कहा-ये सब भविष्यदत्तको चित्तसे नहीं चाहते हैं। उसको देख भी नहीं सकते हैं, इसलिए इनका वचन प्रमाण नहीं है। तब तो राजाने चिल्लाकर कहा:-भविष्यदत्त, यहाँ आओ। राजाकी आज्ञा पाते ही भविष्यदत्तने परदेसे निकल राजा और पिता दोनोंको नमस्कार किया। योग्य स्थानपर बैठकर समस्त सभाके बीचमें अपना सब वृत्तान्त कहा। राजाने सुनकर बंधुदत्त और धनपतिको कैद करनेकी आज्ञा दी। परन्तु भविष्यदत्तने राजासे प्रार्थना करके सबको छुड़ा दिया।

भविष्यानुरूपा मुद्रिकाको देखकर समझ गई कि मेरा पति आ गया। हर्षसे उसका शरीर पुलकित हो गया। मौन अवस्थाको छोड़ वह बातचीत करने लगी। राजाने भविष्यानुरूपाको अपने घर बुलवाई और पुत्रीके समान सत्कार किया। तथा भविष्यदत्तको अपनी एक स्वरूपा नामकी और भी पुत्री देकर आधा राज्य दे दिया। अब भविष्यदत्त राजा हो दोनों स्त्रियोंके साथ भोगोपभोगोंका सेवन करता हुआ तथा माता पिताकी भक्ति करता हुआ सुखपूर्वक रहने लगा।

समयानुसार भविष्यानुरूपा गर्भवती हुई। दोहदोंमें इच्छा हुई कि हरिपुरके श्रीचन्द्रप्रभचैत्यालयके दर्शन करूँ। परन्तु अशक्य जान उसने अपने पतिसे यह इच्छा प्रगट नहीं की और इच्छा पूर्ण न होनेसे स्वयं कृश होने लगी। इन्हीं दिनोंमें एक विद्याधरने आकर भविष्यानुरूपाको नमस्कार किया और कहाः-चलो, सब मिलकर हरिपुरमें श्रीचन्द्रप्रभचैत्यालयके दर्शन करें। विद्याधरके कहनेसे राजा भूपाल, भविष्यदत्त और भविष्यानुरूपा आदिक भव्य पुरुष श्रीचन्द्रप्रभचैत्यालयके दर्शन करनेके लिए गये। आठ दिन तक वहाँ रहे। बड़ी भक्तिसे श्रीचन्द्रप्रभचैत्यालयकी तथा वहाँके और और चैत्यालयोंकी पूजा की। जब अपने नगरको चलनेकी तैयारी करने लगे, तब अमितगति और गगनगति दो चारण ऋद्धिके धारक मुनि आकाश मार्गमें नीचे उतरे। सबने उनकी वंदना की। भविष्यदत्तने वन्दनाकर विनयसहित पूछा-हे मुनिराज, इस विद्याधरने अकस्मात् आकर भविष्यानुरूपाको नमस्कार किया और यहाँ दर्शनके लिए लाया, इसका क्या कारण है? मुनिने कहा-

इसी द्वीपके आर्यखंडमें पल्लव देश है। उसमें कांपिल्य नगर है। वहाँका राजा महानन्द रानी प्रियमित्रा सहित राज्य करता था। उसके मंत्रीका नाम वासव था। उसकी केशनी स्त्रीसे वंक और सुवंक दो पुत्र तथा एक अग्निमित्रा नामकी पुत्री हुई थी। वासवने अग्निमित्र नामके एक पुरोहितको उसे विवाह दी। एक दिन महानन्द राजाने अग्निमित्र पुरोहितको किसी अन्य राजाके समीप बहुतसी भेंट देकर भेजा। पुरोहित भेंट लेकर गया, परन्तु बहुत दिन बीतनेपर भी नहीं आया। राजाको उसके न आनेकी चिंता हुई। एक दिन उसी नगरके उद्यानमें सुदर्शन मुनि आये। राजाने वन्दनाके लिए जाकर पूछा-महाराज, अग्निमित्र पुरोहित भेंट देकर अभीतक वापिस क्यों नहीं आया? श्रीमुनिने कहाः-उसने भेंटमें भेजा हुआ सब द्रव्य किसी वेश्याको खिला दिया है। अब तुम्हारे भयमे नहीं आता है परन्तु पाँच दिनमें आ जावेगा। पाँच दिन पीछे पुरोहित आया। आते ही राजाने उसे उसकी स्त्री सहित कारागारमें (कैदमें) डाल दिया। अग्निमित्र और अग्निमित्राको कारागार जाते हुए देख सुवंकको वैराग्य हुआ, इसलिए उसने श्रीसुदर्शन मुनिके समीप जिनदीक्षा ले ली। केशनी सुव्रता आर्यिकाके समीप आर्यिका हो गई। आयु समाप्त होनेपर

सुवंक सौधर्म स्वर्गमें इन्दुप्रभ नामका देव हुआ और केशनी स्त्रीलिङ्ग छेदकर उसी स्वर्गमें रविप्रभ देव हुई। पश्चात् इन्दुप्रभ सौधर्म स्वर्गसे चयकर इसी क्षेत्रके विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणीमें अंवरतिलकपुर नगरके राजा पवनवेग रानी विद्युद्वेगाके मनोवेग पुत्र होकर क्रम क्रमसे बढ़ने लगा। एक दिन वह सिद्धकूट चैत्यालय गया। वहाँ श्रीजिनेन्द्र देवकी वन्दना स्तुति करनेके पीछे एक चारण मुनिकी वन्दना की, धर्मश्रवण किया। अन्तमें अपना पूर्व भव पूछा। मुनिने जैसा कुछ ऊपर लिख चुके है, उसी तरहसे कह सुनाया। जिसे सुनकर मनोवेगने फिर पुछा:-मेरी माताका जीव जो रविप्रभ देव हुआ था, वह अब कहाँ है? मुनिने कहा-इस समय वह भविष्यानुरूपाके गर्भमें है। और भविष्यानुरूपाको हरिपुरके श्रीचन्द्रप्रभचैत्यालयके दर्शन करनेकी इच्छा हुई है। ऐसा सुन यह मनोवेग भविष्यानुरूपाके गर्भमें रहनेवाले अपनी पूर्व भवकी माताके जीवके मोहसे तुम सबको यहाँ लाया है। ऐसा कह वे चारण मुनि तो आकाशमार्गसे चले गये और भविष्यदत्तादिक अपने नगरको लौट आये। भविष्यानुरूपाके अनुक्रमसे चार पुत्र हुए; जिनका सुप्रभ, कनकप्रभ, सोमप्रभ और सूर्यप्रभ ऐसा नाम पड़ा। भविष्यदत्तकी दूसरी स्वरूपा रानीसे धरणिपाल पुत्र और धारिणी पुत्री हुई। भविष्यदत्त अपने पुत्रोंको शिक्षा देते हुए राज्य करने लगे।

एक दिन उसी नगरके उद्यानमें विपुलमति और विपुलबुद्धि मुनि आये। वनपालने मुनिके आनेकी खबर राजाको दी। सुनकर राजा भूपाल भविष्यदत्त आदिक सब ही मुनिकी वंदना करनेके लिए गये। नमस्कारादिक कर धर्मश्रवण किया। फिर भविष्यदत्तने पूछा;-महाराज, मेरे तथा भविष्यानुरूपाके ऐसे पुण्यका क्या कारण है? भविष्यानुरूपाके साथ मेरा अधिक स्नेह क्यों है? अच्युत स्वर्गके इन्द्रका स्नेह मुझपर क्यों है? राजा अरिंजय और राक्षसके वैरका क्या कारण है? और कमलश्रीके दुर्भाग्यका क्या कारण है? भविष्यदत्तके ऐसे प्रश्न सुनकर विपुलमति नामा मुनि कहने लगे-इसी द्वीपके ऐरावत क्षेत्रस्थ आर्यखंडमें एक सुरपुर नगर है। उसका राजा वायुकुमार रानी लक्ष्मीमती सहित राज्य करता था। मंत्री वज्रसेन था। उसके उसकी स्त्री श्रीसे कीर्तिसेना नामकी एक कन्या थी। सो वज्रसेनने वह कन्या अपने भानजेके लिए दे दी; परन्तु वह उसको चाहता नहीं था। इसलिए कीर्तिसेना अपने

पिताके घर ही पंचमीका व्रत करती हुई रहने लगी। उसी नगरमें एक और अतिधनी वैश्य रहता था, जिसका नाम धनदत्त था। उसकी स्त्रीका नाम नंदिभद्रा और पुत्रका नाम नंदिमित्र था। धनदत्तका सब कुटुम्ब मिथ्यादृष्टि था; किन्तु उसी नगरके एक और जैनमतके धारण करनेवाले धनमित्रने समझा बुझाकर उसे अणुव्रत दिला दिये।

एक दिन ग्रीष्म ऋतुमें अनेक उपवास करनेके पीछे पारणाके निमित्त समाधिगुप्ति मुनि आये। मुनिका शरीर पसीनेसे भीग रहा था, सो नंदिभद्राने उन्हें देखकर घृणा की। मुनिसे घृणा करनेके कारण उसे दुर्भग नामके नामकर्मका बंध हुआ। पश्चात् नंदिमित्रने समाधिगुप्त मुनिके समीप जिनदीक्षा ग्रहण की। तपकर अच्युत स्वर्गमें इन्द्र हुआ। कीर्तिसेनाने पंचमीका व्रत बड़ी भक्तिसे किया, उसका उद्यापन कराया। एक दिन श्रीसमाधिगुप्त मुनि उसी नगरके बाहर एक वृक्षकी कोटरमें विराजमान थे। सो कीर्तिसेना अपने पिताके साथ बड़ी विभूतिसे उन मुनिकी वन्दना करनेके लिए आई।

मार्गमें एक कौशिक नामका तापसी पंचाग्नि तपता हुआ बैठा था। सो उनमेंसे किसीने इसकी प्रशंसा की। तब वज्रसेनने कहा–यह तापसी मूर्खप्राय: पशुके समान है, इसलिए प्रशंसाके योग्य नहीं है। अपनी ऐसी निन्दा सुन तापसीको बहुत ही क्रोध आया। परन्तु कुछ कर नहीं सकता था, इसलिए चुप हो रहा। उस तापसीको कुपित हुआ देख, धनमित्र और कीर्तिसेनाने मीठे वचनोंसे उसका क्रोध शान्त किया। सब मुनिकी वन्दना कर अपने अपने घर आये। कीर्तिसेनाने जो पंचमीके उपवास किये थे, धनमित्रने उनकी अनुमोदना तथा प्रशंसा की। पश्चात् आयु पूरी होनेपर धनदत्त मरकर धनपति सेठ हुआ। नंदिभद्रा मरकर कमलश्री हुई। वज्रसेन मरकर अरिंजय राजा हुआ और कौशिक तापसी मरकर राक्षस हुआ। धनमित्र जैनी था, परन्तु परिणामोंकी विचित्रतासे विराधक होकर मरा। तथापि पंचमी उपवासकी जो अनुमोदना की थी, उसके पुण्यके प्रभावसे उसने यह तुम्हारी पर्याय पाई है। और कीर्तिसेना मरकर भविष्यानुरूपा हुई। कीर्तिसेनाका पति मरकर बंधुदत्त हुआ। उक्त सम्बन्ध तुम्हारे स्नेहका कारण है।

अपने पूर्व भव सुनकर भविष्यदत्त बहुत प्रसन्न हुआ। मुनिसे पंचमीके व्रतकी तथा उद्यापनकी विधि पूछी।

श्रीमुनिने विस्तारसे उसके करनेका विधान बतलाया, जिसका निरूपण नागकुमारकी कथामें कर चुके हैं। विशेष इतना ही है कि नागकुमारकी कथामें शुक्लपंचमीका उपवास कहा था और यहाँ कृष्णपंचमीका उपवास कहा है।

भविष्यदत्तने पंचमीका विधान सादर स्वीकार किया तथा भविष्यानुरूपा आदिने भी उसे ग्रहण किया। भविष्यदत्तने बहुत दिनतक राज्य करके अन्तमें अपने पुत्र सुप्रभको राज्य दे पिहितास्रव मुनिके निकट अनेक राजा प्रजाके साथ दीक्षा ग्रहण की। धनपतिने भी दीक्षा धारण की। कमलश्री भविष्यानुरूपा आदिकने सुव्रता आर्यिकाके समीप दीक्षा ले ली। भविष्यदत्त मुनि यथोक्त (शास्त्रानुसार) तप करके अन्तमें प्रायोपगमन सन्यास धारण कर शरीरको छोड सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुए। धनपति आदिक भी तप करके अपने अपने पुण्यके योग्य स्थानोंमें उत्पन्न हुए। कमलश्री और भविष्यानुरूपा दोनों ही तपके प्रभावसे शुक्र महाशुक्र विमानोंमें देव हुई। अब वहाँसे आकर इसी द्वीपके पूर्वविदेह क्षेत्रमें राजपुत्र होकर मोक्षको जावेंगी।

इस तरह दूसरेके किये हुए उपवासकी अनुमोदनासे ही एक वैश्यने ऐसा उत्तम फल पाया, तो जो स्वयं मन वचन कायकी शुद्धता पूर्वक उपवास करेगा, वह क्या उत्तम फल नहीं पावेगा? अवश्य पावेगा।

(३–४) पूतिगन्ध और दुर्गन्धाकी कथा।

इसी भरतक्षेत्रके आर्यखंडमें अंग देश है। उसमें एक चंपापुर नामका नगर है। वहाँके राजा मघवा रानी श्रीमतीसे श्रीपाल, गुणपाल, अवनिपाल, वसुपाल, श्रीधर, गुणधर, यशोधर, रणसिंह ऐसे आठ पुत्र हुए और सबसे पीछे रोहिणी नामकी एक अतिशय रूपवती पुत्री हुई। एक समय रोहिणीने अष्टाह्निकाकी अष्टमीका उपवास किया। और दूसरे दिन जिनालयमें जाकर श्रीजिनेन्द्रदेवका अभिषेक किया। पश्चात् अभिषेकका गंधोदक लाकर सभामें बैठे हुए अपने पिताको दिया। पिताने गंधोदक लेकर पूछाः–बेटी, तू आज मलीनमुख और शृंगाररहित क्यों है? रोहिणीने कहाः–मैं कलकी उपोषित (उपासी) हूँ, इसलिए। तब राजाने कहा–तो पुत्री, अब तू जाकर पारणा कर।

आज्ञानुसार पुत्री पारणाके लिए चलने लगी, उस समय उसका लज्जासहित यौवनयुक्त शरीर देख राजाने मंत्रियोंसे पूछा:–यह कन्या किसको देनी चाहिए? इसके योग्य वर कौन है? तब मतिसागर मंत्रीने कहा:–सिंधुदेशका राजा अतुलरूपका धारी है, इसलिए वही इसके योग्य है। श्रुतसागर मंत्रीने कहा:–पल्लवदेशका राजा अर्ककीर्ति सर्वगुणसम्पन्न है, इसलिए यह उसके योग्य है। विमलबुद्धिने कहा:–सोरठदेशका राजा जितशत्रु अनुपम गुणोंका धारक है, इसलिए रोहिणी उसको देना चाहिए। सुमतिने कहा–मेरी समझमें तो सबसे अच्छी स्वयंवरविधि है, इसलिए वही करनी चाहिए। सुमतिकी बात सबको रुचिकर हुई। एक बड़ी स्वयंवरशाला बनाई गई और सब क्षत्रियोंको आमंत्रण दिया गया। जिन जिन क्षत्रियोंको बुलाया था, वे सब आये और योग्य स्थानपर बैठे। रोहिणी सोलह शृंगारकरके अपनी धायको साथ ले रथपर सवार हो, स्वयंवरशालामें आई। वहाँ धायने रोहिणीको क्रमसे सब क्षत्रिय दिखाने प्रारम्भ किये। इशारा करके कहने लगी:–हे पुत्री, देख, यह कोशल देशके महामंडलेश्वर राजा श्रीवर्माका पुत्र महेन्द्र है। यह बंगदेशका राजा अंगद है। यह डाहलदेशका स्वामी वज्रबाहु है। इस तरह उस धायने अनेक क्षत्रिय दिखाये। एक जगह एक दिव्य आसनपर बैठे हुए अशोक कुमारको देखकर धाय बोली:–हे पुत्री, यह हस्तिनागपुरके स्वामी कुरुवंशीय राजा वीतशोक, रानी विमलाका पुत्र अशोक है। यह सर्व गुणोंका स्वामी है। अशोककी ऐसी प्रशंसा सुनकर रोहिणीने वरमाला उसीके कंठमें डाल दी। अशोकके कंठमें पड़ती हुई वरमालाको देख दुर्मति नामके मंत्रीने अपने स्वामी महेन्द्रसे कहा:–देव, आप महामंडलेश्वरके पुत्र हैं, अतिरूपवान् और युवा हैं। आपको छोड़कर इस कन्याने अशोकके कंठमें वरमाला पहनाई, यह क्या योग्य है? कन्या इस विषयमें क्या जानती है? मेरी समझमें तो राजा मघवाने पहलेसे ही लड़कीको सिखाकर रक्खी होगी। उसीकी सलाहसे रोहिणीने अशोकके कंठमें वरमाला पहनाकर आपका अपमान किया है। इसलिए आपको संग्राममें मघवा और अशोक दोनोंको मार कन्या लेना चाहिए। यह सुन महामति मन्त्रीने कहा:–दुर्मते, क्या इस समय तुमको यह मन्त्र देना चाहिए? तुम दुर्मति अर्थात् मिथ्यामतिवाले हो, इसलिए ऐसी सलाह देते हो। तुम्हें याद है कि पहले भरतचक्रवर्त्तिका पुत्र अर्ककीर्ति स्वयंवरमें क्या सुलोचनाको ले सका था? यह मन्त्र देना योग्य नहीं है। इस तरह महामति मन्त्रीके समझानेपर भी महेन्द्रने दुर्मतिकी बातोंमें

आके संग्राम करनेका दुराग्रह नहीं छोड़ा। और जो क्षत्रिय आये थे, वे भी इसीकी ओर ही गये। फिर भी महामतिने कहा:—देखो, स्वयंवरका धर्म ऐसा ही है कि कन्या जिसके कंठमें माला डाले, वही उसका पति होता है। इसलिए इस समय युद्ध करना अनुचित है और जो युद्ध करना ही है, तो पहले अपना मंत्री भेजो, जो कि आपके लिए कन्याकी याचना करे। मंत्रीकी याचनासे यदि उसने वह कन्या आपको दे दी, तो झगड़ेकी कोई बात ही न रही और जो कदाचित् नहीं दी, तो फिर जो आपकी इच्छा हो, सो करना। महामतिके इस तरह समझानेसे मघवाके पास एक अतिचतुर दूत भेजा गया। उसने मघवासे जाकर कहा:—राजन, आप और अशोक दोनोंपर महेन्द्र आदिक क्षत्रिय रुष्ट हुए हैं। इसलिए अपनी कन्या महेन्द्रको देकर सुखसे चिरकालतक जीवन व्यतीत करो, नहीं तो कन्याके निमित्तसे रणमें मरणका शरण लेना पड़ेगा। दूतके ऐसे कठोर वचन सुनकर अशोकने कहा—रे दूत, स्वयंवरका ऐसा ही धर्म है कि कन्या जिसके कंठमें माला डालती है, वही उसका स्वामी होता है। जान पड़ता है कि तेरे सब स्वामीरूपी पतंग अब मेरे बाणके मुखरूपी अग्निमें पड़ना चाहते हैं। अच्छा पड़ने दो, हानि ही क्या है? तू यहाँसे जा और कह दे कि संग्रामके मैदानमें सबका प्रताप देख लिया जायगा। दूतने जाकर ज्योंकी त्यों सब वार्ता कह सुनाई। तब महेन्द्रादिक सब क्षत्रियोंने दूतकी वार्ता सुन रणभेरी बजवाई और सब शस्त्रोंसे सज्जित हो रणभूमिमें आ गये। इधरसे मघवा अशोक आदिक भी व्यूहके सन्मुख प्रतिव्यूहके क्रमसे आ जमे। अपने पति और पिताको अपने निमित्त रणमें गया देख रोहिणीने जिनालयमें जाकर प्रतिज्ञा की कि यदि मेरे निमित्तसे पिता और पतिमेंसे किसीका भी मरण होगा तो मेरे आहार शरीरका त्याग है। इस तरह रोहिणी सन्यास धारण कर जिनालयमें बैठी। इधर दोनों सेनाओंका परस्पर महायुद्ध हुआ। दोनों ओरसे बहुतसी सेना मारी गई। बहुत देर पीछे महेन्द्रकी सेना पीछे हटकर कटने लगी। तब सेनाका भंग होते देखकर महेन्द्र स्वयं लड़नेको तत्पर हुआ। महेन्द्रके शस्त्रोंसे अशोककी सेना दबने लगी। अपनी सेना दबती हुई देखकर अशोक महेन्द्रके सामने आया। दोनोंमें तीनों लोकोंको चमत्कार करनेवाला युद्ध बहुत देरतक होता रहा। अन्तमें महेन्द्रको भागना ही पड़ा। परन्तु उसी समय अशोकको चोल पाँड्य चेरम आदि क्षत्रियोंने घेर

लिया। देखकर रोहिणीके भाई श्रीपालादिकने चोलादिकके सम्मुख होकर उनको भगा दिया। चोलादिकको भागते देख महेन्द्र फिर आया और श्रीपालादिकके सम्मुख हुआ। उसके घोर युद्धसे श्रीपालादिकको भागना पड़ा परन्तु अशोकने इतनेमें महेन्द्रको आ दबाया। दोनोका फिर घोर युद्ध होने लगा। अशोकने महेन्द्रकी ध्वजा छेद सारथिको मारकर कहाः-रे महेन्द्र, इस वाणसे अपने शिरकी रक्षा कर! रक्षा कर! और एक वाण छोड़ा, जो महेन्द्रके कंठमें जाके छिद गया। महेन्द्र मूर्छा खाकर पड़ गया। उस समय अशोकने उसका शिरच्छेद करना चाहा, परन्तु मघवाने रोक दिया। थोड़ी देरमें महेन्द्र सचेत होकर फिर लड़नेको उद्यत हुआ। परन्तु महामति मन्त्रीने यह कहकर कि अब लड़कर व्यर्थ अपना शिर शत्रुके हाथ देना उचित नही है, युद्ध बन्द करवाया।

युद्ध समाप्त हुआ। मघवाने विजयके नगाड़े बजवाये तथा विजयपताका फहराई। मघवाके विपक्षी राजा जो कि महेन्द्रकी पक्षमे थे, कितने ही तो अपने देशको लौट गये और कितने ही संसारको नश्वर जान मुक्तिरमणीसे पाणिग्रहण करनेके लिए दीक्षित हो गये। इधर अशोक और रोहिणीका विवाह बड़ी धूमधामके साथ हुआ। अशोक थोड़े दिनतक रोहिणीके साथ अपने नगरमे गया। पिता पुत्रका आगमन सुनकर सम्मुख आया। अशोकने पिताको नमस्कार किया और दोनो आनन्दके नक्कारे बजवाते नगरमें गये। माताने तथा अनेक पुण्य स्त्रियोंने जो शेषाक्षत फेके, उन्हे अशोकने सादर स्वीकार किये। अशोकके साथ रोहिणीका भाई श्रीपाल आया था, सो अशोकने उसे अपनी भगिनी प्रयुंगुसुन्दरी अर्पण की और उसको अपने नगरमें भेज दिया। आप स्वयं युवराजके पदसे विभूषित हो सुखपूर्वक रहने लगा।

एक दिन राजा वीतशोक आकाशकी शोभा देख रहे थे कि अकस्मात् एक अति स्वेतवर्ण (सफेद) सुन्दर मेघ दिखाई पड़ा और फिर तत्काल ही नष्ट हो गया। इससे संसारकी क्षणभंगुर अवस्थाका अनुमानकर वे वैराग्यको प्राप्त हो गये। अशोकको राज्य देकर एक हजार राजाओंके सहित उन्होने यमधर आचार्यके निकट दीक्षा ले ली। और घोर तपके द्वारा केवलज्ञान उपार्जनकर मुक्ति प्राप्त की। इधर अशोक रानी रोहिणीसहित सुखसे राज्य करने लगे।

समयानुसार रोहिणीके वीतशोक, जितशोक, नष्टशोक, विगतशोक, धनपाल, स्थितपाल, और गुणपाल ये सात पुत्र हुए। वसुंधरी अशोकवती लक्ष्मीवती और सुप्रभा ये चार पुत्रियाँ हुई और अन्तमे एक लोकपाल नामका पुत्र हुआ। इस प्रकार रोहिणी वारह वालकोकी माता हुई।

एक दिन अशोक और रोहिणी दोनो प्रोषधोपवास करके अपने महलकी छतपर वैठे हुए दिशावलोकन कर रहे थे। उसी समय अनेक स्त्रीपुरुष अपना अपना वक्षस्थल (छाती) कूटते रोते हुए राजमार्गसे जाते दिखलाई दिये। तव रोहिणीने अपनी पंडिता वासवदत्तासे पूछा-माता, यह क्या कोई अपूर्व नाटक है? यह सुन वासवदत्ता रुष्ट हो बोली:-पुत्री, जान पड़ता है, अपने रूप ऐश्वर्यादिकके गर्वसे तुझे अव ऐसा ही सूझने लगा है। रोहिणीने कहा-सो क्या आपके कहनेका अर्थ मै नही समझी? यदि मेरी कोई भूल हो तो वतलाओ, मै उसे छोड़नेका प्रयत्न करूँगी, भूल जाऊँगी। वासवदत्ताने फिर पूछा:-पुत्रि, तो क्या तू इस विपदको सर्वथा नही जानती है? रोहिणीने कहा:-नही। तव पंडिताने रोहिणीके ऐसे सरल परिणाम देखकर कहा:-वेटी, इनका कोई सम्वन्धी मर गया है, इसलिए ये ऐसा शोक कर रहे है।

दैवयोगसे उस समय रोहिणीका छोटा पुत्र लोकपाल खेलते खेलते महलसे गिर पड़ा। इससे सवके सव हाय हाय करने लगे। और माता पिता (रोहिणी अशोक) दोनो ही अवाक् हो रहे। परन्तु वालकको चोट नही आई। उसे नगरकी रक्षा करनेवाले नगर देवताने वीचमे ही हंसशय्यापर धारण कर लिया था। यह देख सव लोग आनन्द मनाने लगे। माता पिताको भी वड़ा हर्ष हुआ।

इस घटनाके दूसरे ही दिन इसी नगरके उद्यानमें रौप्यकुम्भ और स्वर्णकुम्भ नामके दो मुनि पधारे। जिनके समाचार वनपालने राजाको सुनाये। राजाने वनपालको यथायोग्य इनाम देकर नगरमे आनन्दभेरी वजवाई। फिर अपने परिवार सहित वड़े उत्साहके साथ मुनिकी वंदनाके लिए गमन किया। वहाँ पहुँचकर शक्तिपूर्वक मुनिकी पूजा वंदना करके धर्मश्रवण किया। अनन्तर मुनिसे पूछा:-महाराज, इस नगरमे कल दिन अनेक मनुष्योको

क्यों शोक हुआ? रोहिणी रानी शोकको क्यों नहीं जानती है? मैंने किस पुण्यके उदयसे यह जन्म पाया है? और मेरे पुत्र पुत्रियोंके पूर्व भव कौन कौनसे है? राजाके ऐसे प्रश्नोंको सुनकर रौप्यकुम्भ मुनि कहने लगे:—राजन्, प्रथम ही शोकका कारण सुनो—इसी नगरकी पूर्व दिशाकी ओर बारह योजन चलकर एक नीलाचल नामका पर्वत है। एक समय यमधर मुनि उस पर्वतकी एक शिलाके ऊपर आतापयोग धारण करके बैठे थे। सो उनके माहात्म्यसे उस पर्वतपर रहनेवाले एक भीलको हरिणकी शिकार न मिल सकी, इसलिए वह भील उन मुनिसे द्वेष करने लगा। एक दिन वे मुनि एक महीनेका उपवास पूर्ण होनेपर उसी पर्वतके समीपवाली अभयपुरी नामकी नगरीमें आहार लेनेके लिए गये थे कि उनकी अनुपस्थितिमें (गैरहाजरीमें) उस दुष्ट भीलने वह शिला जिसपर कि मुनि बैठते थे, खैरके अंगारोंसे तप्त कर रक्खी और जब मुनि आते हुए देख पड़े, तब उस शिलापरसे सब अंगार झाड़ बुहारकर साफ करके आप अलग हो गया। श्रीमुनि उस साक्षात् अग्निके समान तप्त शिलापर सन्यासकी प्रतिज्ञा धारणकर आ विराजे। शान्तचित्त हो घोर उपसर्ग सहन किया, जिससे कि शीघ्र ही केवलज्ञानरूपी सूर्य प्रकाशमान होकर उसी समय वे मुक्तिको पधारे। इधर उस भीलको सातवें दिन उदुंबर कोढ़ हुआ, जिससे उसका सब शरीर कुथित हो गया और अन्तमें वह मरकर सातवें नरक गया। फिर वहाँसे निकलकर त्रसस्थावरादिकोंमें दीर्घकालतक भ्रमण करके इसी नगरमें रहनेवाले अंबर नामके ग्वालेकी गांधारी स्त्रीसे दण्डक नामका पुत्र हुआ। एक दिन घूमता फिरता हुआ वह अंबर ग्वाला नीलाचल पर्वतपर गया था। सो वहाँ दावाग्निमें जल मरा। उसकी खबर पाकर उसके कुटुम्बी जन इकट्ठे होकर राजमार्गसे गये थे। यही उनके शोकका कारण है।

राजन्, अब रोहिणी शोकको क्यों नहीं जानती, इस विषयको भी सुन। इसी द्वीपके हस्तिनागपुरमें पहले किसी समयमें राजा वसुपाल राज्य करता था। उसकी रानीका नाम वसुमती था। उसी नगरके एक सेठका नाम धनमित्र और उसकी स्त्रीका नाम धनमित्रा था। उनके एक अतिदुर्गंधस्वरूप अतिदुर्गंधा नामकी पुत्री थी। सो दुर्गंधस्वरूप होनेसे उसके साथ कोई भी विवाह करनेको राजी नहीं होता था। उसी नगरमें एक और सुमित्र नामका

वणिक् रहता था। उसकी स्त्री वसुकान्तासे एक श्रीषेण पुत्र था। जो रातदिन सातों व्यसनोंमें लीन रहता था। एक दिन उसे कोतवालने चोरी करते हुए पकड़ लिया। इस अपराधमें राजाने उसे शूलीकी आज्ञा दे दी। चांडाल उसे शूली देनेके लिए ले जा रहा था कि उसे मार्गमे धनमित्रने देखकर कहाः—यदि तू मेरी पुत्री दुर्गंधाके साथ विवाह करे, तो तुझे शूलीसे छुड़ा दूं। श्रीषेणने प्रत्युत्तरमें कहाः—सेठजी, मर जाऊँगा. परन्तु आपकी पुत्रीके साथ विवाह नहीं करूँगा। परन्तु श्रीषेणके कुटुम्बी जनोंने उसकी प्राणरक्षाके मोहसे इतना आग्रह किया कि, उसे दुर्गंधाके साथ विवाह करना स्वीकार करना पड़ा। धनमित्र सेठने राजासे प्रार्थना करके श्रीषेणको शूलीसे बचा लिया और उसके साथ दुर्गंधाका विवाह कर दिया। श्रीषेणने दुर्गंधाके साथ विवाह तो कर लिया, परन्तु उसकी दुर्गंधको सहन न कर सका। इसलिए रात्रिमें ही कहीं भाग गया। माता पिताने दुर्गंधासे कहा–तू धर्म सेवन कर, जिससे पाप कटै। दुर्गंधाकी इतनी दुर्गंध थी कि भिक्षुक (भीख माँगनेवाले) उसके हाथसे सुवर्ण तक नहीं लेते थे। एक दिन संयमश्री आर्यिका चर्या मार्गसे उसके घर आई। दुर्गंधाने उनका पड़िगाहन किया। आर्यिकाने इसका अत्यन्त दुर्गंधमय शरीर देखकर चिन्तवन किया कि यह स्वयं कुछ व्याधियुक्त नहीं है। सुगंधि दुर्गंधि होना तो पुद्गलका विकार है। ऐसा आत्मा कोई नहीं है जो सुगंधि दुर्गंधि रूप परिणत होता हो। इसलिए इसके समीप बैठनेमें कोई दोष नहीं है। इस प्रकार निर्विचिकित्सा गुणको प्रकट करती हुई आर्यिका उसके निकट खड़ी हो गई। तब दुर्गंधाने अन्तराय रहित आहार देकर प्रार्थना की–हे आर्यिके, तेरी उपस्थितिमें तेरे प्रसादसे मुझे सुख होता है, इसलिए अब तू मुझे मत छोड़, अर्थात् मुझे छोड़कर मत जा। इसके ऐसे निवेदन करनेपर आर्यिकाके चित्तमें इसके दुःखपर दया आई, इसलिए वह वहीं रहने लगी। एक दिन उसी नगरके बाह्योद्यानमें श्रीपिहितास्रव मुनि आये। वनपालने यह समाचार राजाको दिये। राजा प्रजा सहित मुनिकी वंदना करनेके लिए गया। दुर्गंधा भी उस आर्यिकाके साथ वंदना करनेके लिए गई। राजादिक तो वंदना नमस्कार कर धर्म श्रवण करके अपने नगरको लौट आये और दुर्गंधाने वंदना करके मुनिसे पूछाः–मैं किस पापके उदयसे

ऐसी दुर्गंधियुक्त हुई हूँ? मुनि कहने लगे;–सोरठ (गुजरात) देशमें एक गिरिनगर है। उसका राजा भूपाल और रानी स्वरूपवती थी। उसी नगरका एक सेठ गंगदत्त और उसकी स्त्रीका नाम सिंधुमती था। एक समय जब कि वसंत ऋतु अपनी निराली छटा और अपूर्व शोभा दिखा रहा था, राजाने क्रीड़ा करने और वसंतकी शोभा देखनेको नगरके वाह्योद्यानमें चलनेका विचार किया और साथ चलनेके लिए गंगदत्त सेठको भी बुलवाया। सेठ अपनी स्त्री सहित घरसे निकल ही रहा था कि आहार लेनेके लिए अपने सम्मुख आते हुए गुणसागर मुनि दिखलाई दिये। सो उसने उन मुनिका पड़िगाहन कर लिया, परन्तु देरसे जानेमें राजाका डर था, इसलिए उसने अपनी स्त्रीसे कहा:– प्रिये, तू मुनिको आहार देना, मैं जाता हूँ। सिंधुमती अपने पतिके भयसे कुछ न कह सकी और मुनिको आहार देनेके लिए रह गई। सेठके राजाके साथ चले जानेपर सिंधुमतीने दुःखी होकर विचारा कि यह मुनि मेरी जलक्रीड़ा करनेमें विघ्न करनेवाला हुआ। यह न आता और न मेरे सुखमें बाधा पड़ती। अब मैं इसे देखती हूँ। इस प्रकार क्रोध करके उसने घोड़ेके लिए रक्खी हुई कड़ुवी तुंबीका आहार दे दिया। मुनि आहार लेकर वसतिकामें पहुँचे। उनके शरीरमें बड़ी भारी दाह उत्पन्न होने लगी। अतिशय पीड़ा हुई। परन्तु मुनिने शान्त चित्त हो सहन की और सन्यास धारण कर शरीर छोड़ अच्युत नामका सोलहवाँ स्वर्ग प्राप्त किया।

उधर जलक्रीड़ा करके जिस समय राजा नगरको लौटा, उसी समय श्रावक लोग मुनिके शव शरीरको विमानमें रखकर दाहक्रियाको ले जाते हुए मिले। राजाने उस विमानको देखकर पूछा;–यह कौनसे मुनिका शव है? किसीने कहा:–श्रीगुणसागर मुनि एक महीनेका उपवासकर पारणाके लिए नगरमें गये थे, सो गंगदत्तसेठकी स्त्री सिंधुमतीने उन्हें घोड़ेके लिए रक्खी हुई कड़ुवी तुंबीका आहार दे दिया, जिससे उनका शरीर छूट गया। राजाके साथ गंगदत्त सेठ भी था, सो उसे यह सुनकर बड़ा वैराग्य हुआ। तत्काल ही उसने भोगोंसे उदास होकर जिनदीक्षा ले ली। और राजाने क्रोधित होकर सिंधुमतीको नाक कान रहित करके गधेपर चढ़ा अपने शहरसे निकलवा दिया। पीछे सिंधुमतीको कुछ समयमें कुष्टरोग हो गया, जिससे उसका शरीर

गल गया। मरकर छठे नरकमे गई। वहाँ अनेक प्रकारके दुःखोंको सहन करती हुई आयुको पूरीकर निकली और किसी जंगलमे कुत्ती हुई। वहाँ दावाग्निसे मरकर फिर तीसरे नरक गई। वहाँसे निकलकर फिर कौशाम्बी नगरीमे शूकरी हुई। वहाँ अजीर्ण रोगसे मरकर कौशल देशके अन्तर्गत नंदिग्राममे चूही हुई। वहाँ तृषा वेदनासे (प्याससे) मरकर जोंक हुई। एक भैसने जल पीनेके लिए भीतर प्रवेश किया था, सो यह जोंक उसीके शरीरमें लग गई। पश्चात् जब भैस पानी पीकर बाहर आई, तब जोंक खूब रुधिर पीकर भारी होनेके कारण भूपमें गिर पड़ी। उसी समय एक कौवा उसे चोचमे दबाकर निगल गया। मरकर उज्जयनी नगरीमे चांडालिनी हुई। वहाँ भी अजीर्ण ज्वरसे मरकर अहिछत्रपुरमे किसी धोबीके घर गधी हुई। वहाँसे मरकर हस्तिनागपुर नगरमें एक ब्राह्मणके घर कपिला गाय हुई। और वहाँ किसी कीचड़मे फँसनेसे मरकर तू उत्पन्न हुई है। दुर्गधाने अपनी दुर्गंधिका कारण और पूर्व भव सुनकर फिर पूछा—हे नाथ, अब कृपाकर इस दुर्गंधिके दूर होनेका कोई उपाय बतलाइए। मुनिने कहाः—हे पुत्री, सत्ताईसवे दिन जो रोहिणी नक्षत्र आता है, उस नक्षत्रमें उपवास करना चाहिए। उससे ही यह दुर्गंधि दूर हो जायगी। उपवास करनेकी विधि इस प्रकार है कि जिस दिन कृत्तिका नक्षत्र हो, उस दिन स्नान करके श्रीजिनेन्द्र-देवकी पूजा करके एकाशन करै। और उस दिन जब भोजन कर चुके, तब अपने आत्माको साक्षी बनाकर उपवास करनेकी प्रतिज्ञा करै। यह रोहिणीव्रत अगहन महीनेमें ही करना चाहिए। उपवासके दिन श्रीजिनेन्द्रदेवका अभिषेक कर। वह दिन धर्म ध्यानमें ही बितावे। दूसरे दिन जिनेन्द्रदेवकी पूजा तथा स्वाध्याय आदि करके अपनी शक्तिके अनुसार पात्रदान दे और पीछे पारणा करै। यह रोहिणीव्रत उत्तम मध्यम जघन्यके भेदसे तीन प्रकार है। सात वर्षका उत्तम, पाँच वर्षका मध्यम और तीन वर्षका जघन्य है। इसकी उद्यापनाविधि इस प्रकार है कि अगहन महीनेमे रोहिणी नक्षत्रके दिन जिनप्रतिमा बनवाकर प्रतिष्ठा करावै और घी आदिके पाँच पाँच कलशोंसे पृथक् २ पंचामृता-भिषेक करै। तथा पाँच अक्षतके पुंजोसे, पाँच प्रकारके फूलोसे, पाँच पात्रोंमे अलग अलग रक्खे हुए नैवेद्यसे, पाँच दीपोसे, पंचांग धूपसे और पाँच प्रकारके फलोंसे श्रीजिनेन्द्रकी पूजा करै। पाँच पाँच उपकरण सहित उस प्रतिमाको

चैत्यालयमे विराजमान करै और पाँच आचार्योंको पाँच पाँच पुस्तकें देवै। मुनियोंकी यथाशक्ति पूजा करै। आर्यिकाओंको और श्रावक श्राविकाओंको वस्त्र देवे। तथा अपनी शक्तिके अनुसार अभयदानकी घोषणा करके अन्नदान औषधदान शास्त्रदान आदि करके जिनमतकी प्रभावना करना चाहिए। तथा उसी दिन चैत्यालय वा जिनमंदिरमे पाँच वर्णके अक्षतोंसे ढाई द्वीपका विधान माँड़कर पूजा करनी चाहिए। यदि इस प्रकार उद्यापन करनेकी शक्ति न हो तो द्विगुणित उपवास करने चाहिए। इस व्रतके करनेसे भव्य जीवोंको इस लोक और परलोक दोनोंहीमें सुख मिलता है। इस प्रकार रोहिणी व्रतका विधान सुनकर दुर्गंधाने उसके पालन करनेकी प्रतिज्ञा ली। और फिर मुनिसे पूछा;- महाराज, इस अपार संसारमे मेरे समान दुर्गंध शरीरवाला कोई और भी हुआ है कि नहीं? उन्होंने कहा;-हाँ! हुआ है, सुन।

कलिंग देशके एक बड़े जंगलमें ताम्रकर्ण और श्वेतकर्ण नामके दो हाथी रहते थे। दोनों एक हथिनीके पीछे लड़कर मर गये। सो ताम्रकर्ण तो चूहा हुआ और श्वेतकर्ण मार्जार (बिलाव) हुआ। बिलावने चूहेको मारा, सो चूहा मरकर नौला हुआ और वह बिलाव मरकर सर्प हुआ। इस नौलेने सर्पको मारा, तब सर्प मरकर कुक्कट हुआ और नौला मरकर मच्छ हुआ। फिर दोनों ही मरकर कपोत हुए। कपोत बिजलीसे उसी हस्तिनागपुरमें जब कि राजा सोमप्रभ रानी कनकप्रभा सहित राज्य करता था, एक रविस्वामी पुरोहितके उसकी स्त्री सोमश्रीसे सोमशर्मा और सोमदत्त नामके दो यमज (एक साथ) पुत्र हुए। सोमशर्माको सुकान्ता और सोमदत्तको लक्ष्मीमती स्त्री मिली। जब इनका पिता रविस्वामी मर गया, तब राजाने पुरोहितका पद छोटे पुत्र सोमदत्तको दिया। सोमदत्त राज्यमान्य होकर सुखसे रहने लगा। इधर पापी सोमशर्मा सोमदत्तकी स्त्री लक्ष्मीमतीके साथ कामक्रीड़ा करने लगा। धीरे २ यह वृत्तान्त सोमदत्तके पास पहुँचा। सो वह संसारकी ऐसी भयानक अवस्था देख संसारसे पार करनेवाली दिगम्बर मुद्रा धारणकर मुनि हो गया। द्वादशाङ्गका पाठी श्रुतकेवली होकर एकविहारी हुआ। विहार करता हुआ एक दिन हस्तिनागपुरके बाह्य उद्यानमें आया। उन्हीं दिनोंमें सोमप्रभ राजाने मगधदेशके राजाके समीप उसकी

मदनावली कन्या और व्यालसुन्दर हाथीके माँगनेके लिए अपना दूत भेजा था, तथा " न जाने वह सरलतासे देगा या नहीं " ऐसा विचारकर राजाने स्वयं वहाँ जानेके लिए कूच किया था। सो चलते समय राजाने प्रथम ही श्रीसोमदत्त मुनिको देखा। जब सोमदत्तने जिनदीक्षा ग्रहण की थी, उस समय राजाने पुरोहितका पद सोमशर्माको ही दे दिया था। सो इस समय राजाने सोमशर्मा पुरोहितसे पूछाः-प्रस्थान समय यदि प्रथम ही दिगम्बर मुनिके दर्शन हो तो क्या फल होता है? तब दुष्ट सोमशर्माने अपने भाईके जन्मान्तरके वैर भावके कारण राजासे कहाः-महाराज, प्रथम ही दिगम्बरका देखना अपशकुन करनेवाला है, इसलिए आज प्रस्थान करना उचित नहीं है। इस समय घर लौटकर फिर गमन करना उचित होगा। राजा पुरोहितके ऐसे वचन सुनकर ऊँचे स्वरसे "अरे यह बहुत बुरा हुआ, बड़ा अपशकुन हुआ" ऐसा कह कानपर हाथ रखकर क्षणभर स्तब्ध हो रहा। ऐसी विपरीतता देख शकुनशास्त्रके जाननेवाले एक विश्वदेव पंडितने कहा-अरे पुरोहित, बतला तो सही किस शास्त्रमें लिखा है कि दिगम्बर अपशकुनकारक है? पुरोहितजीके होश उड़ गये, सिवाय मौनावलम्बनके और कुछ उपाय न सूझ पड़ा। तब विश्वदेवने राजासे कहाः-महाराज, प्रत्येक कार्यके आरम्भमें दिगम्बरके दर्शन कल्याणकारक होते हैं। देखिए, शकुनशास्त्रमें क्या लिखा है;—

श्रमणस्तुरगो राजा मयूरः कुञ्जरो वृषः ।
प्रस्थाने वा प्रवेशे वा सर्वे वृद्धिकराः स्मृताः ॥

भावार्थ-प्रस्थान करते समय अथवा किसी नगरादिमें प्रवेश करते समय यदि दिगम्बर मुनि, राजा, घोड़ा, मयूर, हाथी और बैल मिलें, तो जानना चाहिए कि उस काममें उसकी वृद्धि होगी और राजन्! जो आपको मेरे शकुनमें संदेह हो, तो आप पाँच दिनतक यहाँ ही ठहरें। जो वह दूत मदनावली कन्या और व्यालसुन्दर हाथीको लेकर न आवे, तो फिर मैं शकुनका जाननेवाला नहीं। तब राजाने विश्वदेवकी बातपर विश्वास करके वहीं डेरा दे दिये। पाँचवें दिन वह दूत कन्या और हाथीको लेकर राजाके समीप आया। तब तो राजाने विश्वदेवपर अति संतुष्ट हो, उसे पुरोहितका पद दे, आनन्दके साथ नगरमें प्रवेश किया। पश्चात् उस कन्याके साथ विवाह करके राजा

सुखसे रहने लगा। उधर पापी सोमशर्माने अपने पुरोहितपदके चले जानेसे श्रीसोमदत्त मुनिसे कुपित हो रात्रिमें उनका घात कर डाला। सो श्रीमुनिराज तो समतापूर्वक शरीर छोड़कर सर्वार्थसिद्धि पहुँचे। और इधर राजाने किसी तरहसे यह जानकर कि सोमशर्माने मुनिका घात किया है, उसे गधेपर चढ़ा, शहरसे बाहर निकलवा दिया। वह बड़े दुःखोंसे मरकर सातवें नरक गया। वहाँसे निकलकर स्वयंभूरमण नामके सबके अन्तके समुद्रमें महामत्स्य (सबसे बड़ा मच्छ) हुआ। फिर मरकर छठे नरक गया। आयु पूर्ण होनेपर वहाँसे भी निकला और एक भयानक वनमें सिंह हुआ। उस पर्यायको छोड़कर फिर पाँचवें नरक गया। वहाँसे निकलकर बाघ हुआ। वहाँसे मरकर चौथे नरकमें पहुँचा। वहाँसे निकलकर दृष्टिविष सर्प हुआ, जो कि मरकर तीसरे नरकमें पहुँचा। वहाँसे निकलकर भेरराड जातिका पक्षी हुआ; मरकर दूसरे नरकमें पहुँचा। वहाँसे आकर शूकर (सूअर) हुआ, जो कि मरकर प्रथम नरकमें पहुँचा। फिर वहाँसे निकलकर मगधदेशके अंतर्गत सिंहपुरके राजा सिंहसेन और रानी हेमप्रभाका पुत्र हुआ। इसका शरीर महादुर्गंधिस्वरूप था, इसलिए इसका नाम दुर्गंधकुमार रक्खा गया।

एक दिन उसी नगरके निकट श्रीविमलवाहन केवली पधारे। उनकी वंदना करनेके लिए राजा प्रजा सभी जन गये। दुर्गंधकुमार भी गया। वहाँपर अनेक देव केवलीकी वंदनाके लिए आये थे, सो उनमेंसे कुछ असुरकुमारोंको देखकर मूर्छित हो गया। तब राजाने दुर्गंधकुमारके मूर्छित होनेका कारण केवली भगवानसे पूछा। उन्होंने पहली कथा जो कि सोमशर्मा पुरोहित, व्यालसुंदर हाथी, मदनावली कन्या और सोमदत्त मुनि आदिके सम्बन्धसे लेकर अब तक हुई थी, सबकी सब सुनाकर कहा;–असुरकुमारोंने इस दुर्गंधकुमारको नरकोंमें अनेक प्रकारके दुःख दिलवाये थे, इसलिए यह इन्हें देखकर मूर्छित हो गया है। तब राजाने फिर हाथ जोड़कर पूछा;–देवाधिदेव, इसकी दुर्गंधि दूर होनेका क्या उपाय है? श्रीकेवलीने प्रत्युत्तरमें कहा:–यदि यह रोहिणी व्रतको विधिपूर्वक करेगा, तो इसकी दुर्गंधि दूर हो जायगी। इस प्रकार केवलीकी वंदनाकर अनेक प्रश्नादिक पूछ सब अपने अपने घर लौट आये। दुर्गंधकुमारने

रोहिणीव्रतको विधिपूर्वक सात वर्षतक पालन किया और अन्तमे बड़े उत्सवके साथ उद्यापन किया। सो इस व्रतके माहात्म्यसे इसका पूर्ण शरीर अतिशय सुगंधिमय हो गया और इसका नाम सुगंधकुमार पड़ गया।

कुछ दिन पीछे कारणवश राजाको विषयभोगोंसे वैराग्य उत्पन्न हुआ, इसलिए इस सुगंधकुमारको राज्य दे, उसने श्रीविमलवाहन केवलीके निकट जिनदीक्षा ले ली और घोर तपसे क्रमशः अष्टकर्मोका नाशकर मुक्ति प्राप्त की। इधर सुगंधकुमारने बहुत काल तक राज्य कर अपने पुत्र विनयको राज्य दे समयगुप्ताचार्यके निकट जिनदीक्षा ली और घोर तप करके अच्युतस्वर्ग प्राप्त किया। वहाँसे चयकर जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह क्षेत्रके पुष्कलावती देशको शोभाय-मान करनेवाली पुंडरीकिणी नगरीके राजा विमलकीर्तिके उसकी पद्मश्रीरानीसे अर्ककीर्ति नामका पुत्र हुआ। यह अर्ककीर्ति राजपुत्र अपने मित्र मेत्रसेनके साथ दिन दिन बढ़ता हुआ क्रमशः सब कलाओमे निपुण हो गया।

एक दिन उसी नगरमे उत्तरमथुरासे सेठ वसुदत्त अपनी स्त्री लक्ष्मीमति और पुत्र मुदितके साथ आया तथा दक्षिणमथुरासे सेठ धनमित्र अपनी स्त्री सुभद्रा और पुत्री गुणवतीके साथ आया।

वसुदत्तके पुत्र मुदितके साथ धनमित्रकी पुत्री गुणवतीका विवाह पक्का हो गया। विवाहकी तैयारियाँ हुई। दोनो वर कन्या विवाह मंडपमे वेदीके निकट बैठे। इस समय राजपुत्रके मित्र मेत्रसेनकी दृष्टि गुणवती कन्यापर पड़ी। देखते ही वह मोहित हो गया। और राजाके पुत्र अर्ककीर्त्तिसे बोला;—मित्र, तुम्हारे जैसे राजपुत्रको मित्र पाकर भी जो मुझे यह सुन्दरी कन्या न मिल सकी तो तुम्हारे साथ मित्रता होनेसे क्या लाभ? अपने मित्रकी ऐसी बात सुन-कर अर्ककीर्तिने उस वणिक्की कन्याको हठपूर्वक हर ली। यह सुनकर अर्ककीर्त्तिके पिता विमलकीर्त्ति राजाने क्रोधित हो आज्ञा दी;—तुम दोनो मेरे राज्यसे निकल जाओ। तब अर्ककीर्ति वहाँसे निकलकर वीतशोकपुरमे पहुँचा। वहाँ राजा विमलवाहन रानी सुप्रभा सहित राज्य करता था। उसके जयवती, वसुकान्ता, सुवर्णमाला, सुभद्रा, सुमती, सुव्रता, सुतंद्रा और विमला इस प्रकार आठ कन्याये थी। राजा विमलवाहनने एक दिन किसी अवधिज्ञानीसे पूछा था कि उन कन्याओका पति कौन होगा? सो श्रीमुनिने कहा था कि जो कोटि चंद्रकवेधको निशाना लगावेगा, वही इन

कन्याओंका पति होगा। राजाने उन कन्याओंका पति ढूंढनेके लिए स्वयंवर मंडपकी रचना की और उसमें एक चन्द्रकवेध स्थापन किया। अनेक देशोंके राजा राजपुत्र आये। सबने चन्द्रकवेधमें निशाना मारनेका प्रयत्न किया, परन्तु इस कार्यको कोई भी पूरा न कर सका। इस स्वयंवरमें अर्ककीर्ति भी पहुँच गया था। सो उस निशानेको मारकर उन आठ कन्याओंके साथ विवाह करके सुखसे वहीं रहने लगा।

एक दिन राजा विमलवाहन अर्ककीर्ति आदि अनेक जन विमलपर्वतपर निर्वाणक्षेत्रकी पूजा वन्दना करनेके लिए गये। वहाँ जाकर आनन्दसे पूजा वन्दना आदि करके रात्रिको सबने वहीं डेरा दिये। जब सब लोग सो गये, तब एक चित्रलेखा विद्याधरी अर्ककीर्तिको उड़ाकर ले गई और सिद्धकूटके सम्मुख जाकर रख दिया। यह विद्याधरी इस अर्ककीर्तिको वहाँसे क्यों उठा लाई? क्यों यहाँ लाकर रक्खा? इसकी संक्षेप कथा इस प्रकार है कि:—

विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तरश्रेणीमें एक मेघपुर नगर है। वहाँ राजा वायुवेग राज्य करता था। उसकी गगनवल्लभा रानीसे एक वीतशोका कन्या थी। एक दिन राजा वायुवेग मेरुपर्वतपर चैत्यालयोंकी वंदना करनेके लिए गया था, सो वहीं किसी अवधिज्ञानीसे उसने पूछा:—मेरी पुत्रीका पति कौन होगा? तब मुनिने कहा:—जिसके दर्शन करनेसे सिद्धकूटके किवाड़ खुल जाँयगे, वही इस कन्याका पति होगा। सुनकर राजाने सन्देह किया कि विद्याधरोंमें तो ऐसा कोई भी नहीं है, फिर यह कैसे हो सकेगा? परन्तु फिर मुनिके वचन अन्यथा नहीं होते हैं, कोई न कोई आवेगा, ऐसा विचार करके चुप हो रहा। इधर उस कन्याकी एक सखीने अर्ककीर्त्तिकी प्रशंसा सुनी, सो वह विमल पर्वतपर सोते हुए अर्ककीर्तिको उठा लाई।

जिस समय उस विद्याधरीने अर्ककीर्त्तिको सिद्धकूट चैत्यालयके सामने बिठाया, उसी समय उसके देखते ही चैत्यालयके कपाट खुल गये। राजाको खबर हुई। राजाने सत्कारपूर्वक अर्ककीर्त्तिको अपने नगरमें ले जाकर अपनी कन्या विवाही। अर्ककीर्त्ति वीतशोकाके साथ विवाह करके वहाँ सुखसे रहने लगा। वहाँ रहकर अनेक विद्या सिद्ध कर लीं।

एक दिन वह वीतशोकाको वहीं छोड़कर वीतशोकपुर जानेके लिए चल पड़ा। और कुछ दिनमें आर्यखंडके

अजनगिर नगरमें पहुँचा। वहाँके राजा प्रभंजनके रानी नीलांजनासे सात पुत्री थीं, जिनका नाम मदनलता, विद्युल्लता सुवर्णलता, विद्युत्प्रभा, मदनवेगा, जयावती और मुकान्ता था। एक दिन ये सातों ही पुत्री अपने उद्यानके बागमें क्रीड़ा करके नगरको लौट रहीं थीं कि बंधन तोड़कर भागा हुआ एक हाथी मारनेके लिए इनके सामने आया। हाथीको सामनेसे आता हुआ देखकर इनके रक्षक परिजन आदि सब लोग भाग गये। पुत्रियाँ अकेली रह गईं और हाहाकार करने लगीं। यह सुनते ही अर्ककीर्तिने हाथीको पकड़कर किसी बंधनसे बाँध दिया। राजा ये समाचार सुनकर अर्ककीर्तिके पराक्रमपर प्रसन्न हुआ, इसलिए उसने अपनी उन सातों पुत्रियोंका विवाह अर्ककीर्तिके साथ कर दिया। अर्ककीर्त्ति कुछ दिन वहाँ रहकर वीतशोकपुर पहुँचा और वहाँ अपने मित्रमंडलसे मिलकर सबके साथ अपने नगरमें पहुँचा। वहाँ वह अपनी विद्याके प्रभावसे ऐसा अदृश्य वेश धारण करके कि जिससे वह किसीको भी न देख पड़े और उसे सब कुछ देख पड़े, राजकीय मंडपमें पहुँचा। वहाँ उसने सुपारियोंको बकरीकी लैंड़ी बना दीं, पानोंको आकके पत्ते कर दिये, कस्तूरी केशर आदिक जो सुगंधित पदार्थ थे उन्हें विष्ठा कर दिया। और इसी तरह स्त्रियोंको डाढ़ी मूँछ लगा दीं, पुरुषोंके कुच (स्तन) लगा दिये। हाथियोंको शूकर, घोड़ोंको गधा, पानीको गौका मूत्र और अग्निको शीतल कर दिया। इस प्रकार नाना प्रकारकी क्रीड़ायें कीं जिनसे कि राजा विमलकीर्त्तिको बड़ा आश्चर्य हुआ। दूसरे दिन अर्ककीर्त्ति भिल्लका रूप धारण कर नगरके सब गाय भैंस आदिक पशुओंको ले जाने लगा। यह देख ग्वालियोंने बड़ा हल्ला (कोलाहल) मचाया, जिसको सुन राजाने उस भीलको जीतकर गाय भैंस छुड़ानेके लिए अपनी सेना भेजी। उस सब सेनाको अर्ककीर्त्तिने अपनी विद्याके बलसे मूर्छित करके जमीनपर सुला दी। जब राजाने यह सुना कि मेरी सब सेना भूमिपर सो चुकी है, तब तो वह अतिक्रोधित हुआ और अपनी और सेना लेकर स्वयं उस भीलसे लड़नेके लिए रणसंग्राममें गया। इधर तो राजा विमलकीर्त्ति और उधर भीलका रूप धारण किए हुए इनका पुत्र अर्ककीर्त्ति, दोनोंमें बड़ा युद्ध हुआ। अन्तमें अर्ककीर्त्तिके मित्र मेघसेनने राजा विमलकीर्त्तिसे कहा:-राजन्, आप किसके साथ लड़ते हैं? यह आपका पुत्र अर्ककीर्त्ति है। विमलकीर्त्ति पुत्रको ऐसा प्रतापी देखकर अत्यन्त हर्षित हुआ। उधरसे

अर्ककीर्त्तिने आकर अपने पिताको नमस्कार किया। चरणोंपर अपना मस्तक रक्खा। पिता पुत्र दोनों परस्पर मिले। दोनोंने वड़े आनन्दके साथ नगरमें प्रवेश किया। पश्चात् अर्ककीर्त्ति जिनके साथ पहले विवाह किया था, उन सब स्त्रियोंको बुलाकर सुखपूर्वक रहने लगा।

एक दिन राजा विमलकीर्त्ति दर्पणमें अपना मुख देख रहे थे कि उनकी दृष्टि एक स्वेत बालपर पड़ी। उसे यमका दूत जानकर वे भोगोंसे उदास हो गये तथा अर्ककीर्त्तिको राज्य दे, उन्होंने मुव्रताचार्यके समीप जिनदीक्षा ले ली और कर्मसमूहको नाशकर मोक्ष प्राप्त किया। इधर अर्ककीर्त्ति सकलचक्रवर्त्ती हुआ। वहुत कालतक सुखसे राज्यकर अन्तमें वह भी अपने पुत्र जितशत्रुको राज्य दे, चार हजार भव्य पुरुषोंके साथ शीलगुप्ताचार्यके समीप मुनि हो गया। घोर तप करके सोलहवे अच्युत स्वर्गका इन्द्र हुआ, जो कि वर्त्तमान समयमें वहांका मुख भोग रहा है। अपनी आयुको पूरण करके वहाँसे च्युत होगा और इसी हस्तिनागपुरमें राजा वीतशोकका पुत्र अशोक होगा और हे पुत्री, तू इस भवमें पुण्य करके यह शरीर छोड़ स्वर्गकी देवी होगी और वहाँसे आकर चंपापुरके राजा मघवाके रोहिणी नामकी पुत्री होगी। जो हस्तिनागपुरके राजा वीतशोकके पुत्र अशोककी पट्टरानी होगी। पूतिगंधा श्रीपिहितास्रव मुनिके मुखसे ऐसे अपने भवान्तर आदिके वचन सुनकर नमस्कार करके अपने घरको लौटी। फिर उसने इस रोहिणी व्रतको मन वचन कायसे पालकर अन्तमें बड़े उत्सवसे उद्यापन किया। सो व्रतके प्रभावसे उसका शरीर सुगंधित हो गया। तब इसने एक आर्यिकाके निकट दीक्षा ले ली। घोर तप करके सन्यासमरणपूर्वक शरीर छोड़ा, जिससे कि अच्युतेन्द्रके प्रतिनियत विमानमें जो कि ईशान स्वर्गमें है अच्युत स्वर्गके इन्द्रकी नियोगिनी देवी हुई। वहाँसे चयकर अच्युतेन्द्रका जीव तो तू अशोक हुआ है और वह देवी अपनी आयुको पूर्णकर यह रोहिणी हुई है। हे राजन्, रोहिणी व्रतसे जो तीव्र पुण्यका बँध हुआ है, उसीके प्रभावसे यह शोक करना नहीं जानती है।

इसके पश्चात् मुनिराज बोले–राजन्, अब अपने पुत्र पुत्रियोंके भवान्तर सुनः—

इसी जम्बूद्वीपमें उत्तर मथुराका राजा शूरसेन राज्य करता था। उसकी विमला रानीसे एक पुत्री उत्पन्न हुई

थी, जिसका नाम पद्मावती था। उसी उत्तर मथुरामें एक अग्निशर्मा ब्राह्मण रहता था, जिसकी स्त्रीका नाम सावित्री था। इस ब्राह्मणके सात पुत्र हुए, जिनके क्रमसे शिवशर्मा, अग्निभूति, श्रीभूति, वायुभूति, विपभूति, सोमभूति और सुभभूति ऐसे नाम पड़े। एक दिन ये सातों ही पुत्र भिक्षा माँगनेके लिए पाटलिपुत्र (पटना) पहुँचे। वहाँके राजाका नाम सुप्रतिष्ठ और रानीका नाम कनकप्रभा था। इनके पुत्रको जिसका कि नाम सिंहरथ था, कोई पुरुष एक पद्मावती कन्या देनेके लिए लाया। सो उसके साथ राजपुत्रका विवाह बड़े धूमधामसे हुआ। इस विवाहकी अतिशय विभूतिको देखकर इन सातों पुत्रोंके हृदयपर बड़ा असर हुआ। सातों ही विचार करने लगे कि भिक्षाभोजन करते हुए जीवित रहनेसे क्या लाभ है? अच्छा हो कि यदि हम वास्तविक भिक्षाभोजन ही करें। ऐसा विचार करके श्रीसीमंधर मुनिके निकट सातोंहीने मुनिव्रत स्वीकार कर लिये। और अन्तमें समाधिसहित शरीर छोड़कर वे सब सौधर्म स्वर्गमें देव हुए। तथा जिस पूतिगंधका वर्णन पहले कर चुके हैं, उसके पिताका एक भल्लातक नामका दासीपुत्र था। सो वह भी श्रीपिहितास्रव मुनिके उपदेशसे जैनधर्म स्वीकार करके अन्तमें समाधिपूर्वक शरीर छोड़कर उसी सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। और अब वे आठों ही देव (सात ब्राह्मण पुत्रोंके जीव और एक भल्लातकका जीव) सौधर्मस्वर्गसे च्युत होकर क्रमसे तेरे आठ पुत्र हुए हैं।

तदनन्तर मुनिराज बोले—तेरी पुत्रियोंके भव इस प्रकार हैं,—

इसी जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह क्षेत्रमें विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक अलका नगरी है। वहाँके राजाका नाम मरुदेव और उसकी रानीका नाम कमलश्री था। उसके पद्मावती, पद्मगंधा, विमलश्री और विमलगंधा नामकी चार कन्यायें थीं। एक दिन ये चारों ही पुत्रियाँ गगनतिलक चैत्यालयके दर्शन करनेको गई थीं। सो वहाँ उन्होंने श्रीसमाधिगुप्त मुनिके समीप पंचमीके व्रत करनेकी प्रतिज्ञा ली और थोड़े दिनतक उसका पालन किया। दैवयोगसे बीचमें ही उनके ऊपर वज्र पड़ा कि जिससे वे मरकर स्वर्गमें देवी हुईं। व्रतका उद्यापन करनेका भी उन्हें अवसर नहीं मिला। फिर वहाँसे आकर ये तेरी पुत्रियाँ हुई हैं।

राजा अशोकने श्रीरौप्यकुम्भ मुनिके मुखसे अपने सब प्रश्नोंके उत्तर सुनकर उन दोनों मुनियोंको नमस्कार किया और फिर अपने नगरमें आकर चिरकालतक राज्य किया। पश्चात् अपनी चारों पुत्रियोंका विवाह राजा श्रीपालके पुत्र भूपालके साथ कर दिया।

एक दिन राजा अशोक आकाशमें मेघमालाकी छटा देख रहे थे कि अकस्मात् एक मेघपटल उनकी दृष्टिगत होकर विलीन हो गया। उसे देखकर संसारका स्वभाव ऐसा ही क्षणभंगुर जान वे भोगोंसे उदास हो गये। और अपने पुत्र वीतशोकको राज्य देकर आप श्रीवासुपूज्य बारहवें तीर्थंकरके समवसरणमें अनेक भव्य जीवोंके साथ दीक्षित हो गये। ये अशोक मुनि श्रीवासुपूज्यस्वामीके गणधर हुए। रोहिणी रानीने कमलश्री आर्यिकाके समीप आर्यिकाके व्रत धारण करके घोर तप किया और अन्त समयमें सन्यास धारण किया। जिसके प्रभावसे स्त्रीलिंगको छेदकर उन्होंने सोलहवें अच्युत स्वर्गमें देवकी पर्याय पाई। श्रीअशोक मुनि अष्टकर्मोंको शुक्लध्यानसे जलाकर मुक्त हुए। उसी समयसे लेकर भव्य जीव जब रोहिणी व्रतका उद्यापन करते हैं तब श्रीवासपूज्यस्वामीके सिंहासनपर राजा अशोक, रानी रोहिणी, उनके आठ पुत्र और चार पुत्रियोंकी मूर्ति उसी सिंहासनपर खुदवाते हैं। तथा उन्हींके चारित्रकी लिखाई हुई पुस्तकें भी प्रदान करते हैं।

इस प्रकार पूतिगंध राजपुत्र और दुर्गंधा वैश्यपुत्रीने अपना शरीर सुगंधित करनेकी इच्छासे तथा भोगोपभोगोंकी लालसासे नियत समयतक प्रोषधोपवास किया था, इसलिए उन्हें ऊपर लिखी हुई भोगोपभोगकी सामग्री ऐश्वर्य सुख आदिक मिले। इसी प्रकार और और भव्य जीव जो कि केवल कर्मके क्षय करनेके लिए नियत समयतक प्रोषधोपवास करते हैं, क्या वे ऐसी भोगोपभोगकी सामग्री भोगते हुए तथा स्वर्गोंके सुखोंका अनुभव करते हुए मोक्ष नहीं पावेंगे? अवश्य ही पावेंगे।

(५) नन्दिमित्रकी कथा[1]।

ईसी भरतक्षेत्र–आर्यखंडके पुंडवर्द्धन देशमे एक कोटिक नगर है। वहाँ राजा पद्मधर रानी पद्मश्रीसहित राज्य करता था। उस नगरमे सोमशर्मा पुरोहितकी सोमश्री ब्राह्मणीसे एक पुत्र हुआ। सोमशर्माने उसकी जन्म कुंडलीमे लग्न आदि देखकर किसी चैत्यालयके ऊपर इस अभिप्रायसे ध्वजा चढ़ाई कि मेरा यह पुत्र जिनदर्शनमे मान्य होगा। उस पुत्रका नाम भद्रवाहु रक्खा। वह दिनोदिन बढ़ने लगा। जब सात वर्षका हुआ तो सोमशर्माने उसका यज्ञोपवीत (जनेऊ) विधान करके वेद पढ़ाना प्रारंभ कर दिया।

एक दिन भद्रवाहु अपने बरावरवाले लड़कोके साथ नगरके बाहर खेलने गया था। वहाँपर गेदके ऊपर गेद रखनेका खेल हो रहा था। किसीने एक गेदके ऊपर दो गेदे रक्खी, किसीने तीन रक्खी। इस तरह सब लड़के अधिकाधिक गेदे रखनेका प्रयत्न कर रहे थे। उस समय भद्रवाहुने एकपर एक इस तरह तेरह गेदे रख दी। यह वह समय था जब कि श्रीजम्बूस्वामी अन्तिम केवली मोक्ष पधार गये थे और जिनागमके अनुसार पाँच श्रुतकेवली होने चाहिए, उनमेसे तीन हो चुके थे और चौथे श्रीगोवर्द्धन श्रुतकेवली कई हजार मुनियोके साथ विहार कर रहे थे। उस दिन वे विहार करते हुए वहाँसे आ निकले जहाँ कि भद्रवाहु आदि सब लड़के खेल रहे थे। श्रीगोवर्द्धन श्रुतकेवली अष्टांग निमित्तशास्त्रके (ज्योतिःशास्त्रके) परम ज्ञाता थे, सो भद्रवाहुको देखकर उसके लक्षणोसे उन्होने जान लिया कि यह अन्तिम श्रुतकेवली होनेवाला है। इन मुनियोके समूहको अपने निकट आया देख सब लड़के भाग गये। केवल एक भद्रवाहु ही रह गया। भद्रवाहुने श्रीगोवर्द्धनके समीप आकर नमस्कार किया। उन्होने पूछाः–वत्स, तेरा क्या नाम है? और तू किसका पुत्र है? भद्रवाहुने कहाः–मै सोमशर्मा पुरोहितका पुत्र हूँ और भद्रवाहु मेरा नाम है। मुनिराजने फिर प्रश्न कियाः–वत्स, तू हमारे पास पढ़ेगा? भद्रवाहुने कहाः–हाँ

---

१ यह कथा भद्रबाहुचरित्रके आधारसे लिखी गई है।

अवश्य पढूँगा। तब श्रीमुनिराज भद्रबाहुको साथ लेकर उसके पिताके घर गये। अपने पुत्रके साथ इन्हे आते हुए देखकर सोमशर्मा पुरोहित अपने आसनसे उठा और हाथ जोड़कर सामने आया। श्रीमुनिराजको ऊँचे आसनपर बिठलाया और बोला:-महाराज, अकारणबंधु मुनिराजोंका आगमन आज मेरे घर कैसे हुआ? श्रीगोवर्द्धन मुनिराजने कहा-यह तुम्हारा पुत्र हमारे समीप पढ़ना चाहता है। यदि इसमें तुम्हारी सम्मति हो तो हम इसे ले जाकर पढ़ावें। यह सुनकर पुरोहितने कहा:-महाराज, इसके जन्मलग्नमें ही ऐसे ग्रह पड़े हुए हैं, जिनसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह जैनधर्मका ही उपकार करनेवाला होगा। ये जन्ममुहूर्तके गुण कभी अन्यथा नहीं हो सकते, इसलिए मैं इसे आपको समर्पण करता हूँ। फिर इसके विषयमें जो आप योग्य समझें, सो करें। उसी समय भद्रबाहुकी माताने आकर श्रीमुनिराजके चरणारविन्दोंको नमस्कार किया और मोहवश निवेदन किया-महाराज, इसे दीक्षा नहीं देना। मुनिराजने उससे कहा-बहिन, तू विश्वास रख, मैं इसे पढ़ाकर फिर तेरे समीप ही भेज दूँगा। इस तरह उसका समाधानकर भद्रबाहुको साथ लेकर मुनिराज वहाँसे विदा हुए। उन्होंने इसका पालन पोषण, वस्त्र भोजनादिकके द्वारा श्रावकोंसे कराया और विद्या पढाना स्वयं प्रारम्भ किया। भद्रबाहु तीक्ष्णबुद्धि होनेसे थोड़े ही दिनोंमें सकल विद्या, दर्शन, शास्त्र आदिकमें पारगामी हो गया। जब उसने सकल दर्शन (सब मतके ग्रन्थ) पढ़ लिये और यह अच्छी तरह श्रद्धान कर लिया कि सब दर्शनोंमें जिनदर्शन ही सार है और सब असार हैं, तब उन्हीं मुनिराजसे दीक्षा ग्रहण करनेकी याचना की। परन्तु श्रीगुरुवर्यने आज्ञा दी कि पहले तुम अपने नगरमें जाओ और वहाँ अपनी विद्या अपना पाण्डित्य प्रकाश करके जिनधर्मका उद्योत करो। पश्चात् अपने माता पितासे मिलकर उनकी आज्ञा लेकर हमारे पास आओ। तब भद्रबाहु श्रीगुरुसे विदा होकर अपने नगर आया। अपने माता पितासे मिला। उनके सामने उसने अपने गुरुके गुणोंकी बड़ी प्रशंसा की। पहुँचनेके दूसरे ही दिन राजा पद्मधरके राजभवनके द्वारपर जाकर जब ब्राह्मणोंसे शास्त्रार्थ करनेका घोषणापत्र लगाया। उसमें इसने सब ब्राह्मणोंको तथा अन्य अन्य वादियोंको हरा दिया। राजदरबारमें तथा नगरमें जैनमतका प्रभाव प्रगट किया। इस तरह भद्रबाहु जैनमतकी प्रभावना कर अपने माता पिताकी आज्ञा

ले फिर अपने गुरुकेपास आया और उनसे जिनदीक्षा ग्रहण की। थोड़े दिनमें श्रीभद्रबाहु मुनि सकल श्रुतज्ञानके पारगामी अर्थात् श्रुतकेवली हुए। श्रीगोवर्द्धन आचार्यने उन्हे अपने आचार्य पदपर नियुक्त किया। और आपने घोर तपकर सन्यास विधिसे शरीर छोड़ स्वर्गलोकको प्रयाण किया। इधर स्वामिभक्तिपरायण श्रीभद्रबाहुस्वामी तपमे लवलीन हो विहार करने लगे।

उस समय पटनामे राजा नन्द अपने बंधु, सुबंधु, कवि और सकटाल इन चारो मंत्रियोके सहित राज्य करता था। एक वार राजा नंदपर उसके किसी शत्रुने बहुतसी सेना भेजकर सीमा दाब ली। तब सकटाल मत्रीने राजासे निवेदन किया:-महाराज, शत्रुओंका समूह चढ़ता चला आता है, क्या उपाय करना चाहिए? राजाने कहा:-तुम ही इस विषयमे निपुण हो। जो तुम्हारी सम्मति होगी, वही उपाय किया जायगा। सकटालने कहा:-महाराज, शत्रुका वल अधिक है, इसलिए युद्ध करनेका समय नही है। उचित है कि कुछ भेट देकर वह शान्त कर दिया जावे। राजाने कहा-जो तुम करोगे, वही प्रमाण है। यदि तुम्हारी सम्मति द्रव्य देकर शान्त करनेकी है तो वही करो। तब राजाकी आज्ञानुसार सकटालने शत्रुको वहुतसा द्रव्य देकर अपनी सीमासे हटाकर लौटा दिया।

इसके पश्चात् एक दिन राजा नन्द अपना भंडार (खजाना) देखनेको गया। खजाना खाली देखकर उसने खजाञ्चीसे पूछा-अरे! यहाँसे सब द्रव्य किधर गया? खजाञ्चीने कहा-महाराज, सकटाल मत्रीने शत्रुको देकर पूरा कर दिया है। इस घटनासे राजाने क्रोधित होकर सकटालको उसके कुटुम्बसहित तहखानेमे डलवा दिया। और उस तहखानेके ऊपर केवल इतना छोटा द्वार रक्खा कि जिसमे एक सरावा [सकोरा] जा सकता था। प्रति-दिन उसी द्वारसे थोड़ासा अन्न और थोड़ासा जल राजाकी ओरसे दिया जाता था। जिससे सकटाल और उसके कुटुम्बका पालन बड़ी कठिनतासे होता था। पहले ही दिन जब भोजन आया तब सकटालने उसे देखकर क्रोधित हो कहा:- मेरे कुटुम्बमेसे जो कोई इस नन्दवंशको वंशरहित करनेकी शक्ति रखता हो, वही इस अन्न जलको ग्रहण करै। सकटालकी बातको कौन टाल सकता था? सबने उसीसे कहा-तुम ही इस कार्यके योग्य हो और हम किसीमे

यह शक्ति नहीं है, जो इस भारी कामको कर सके, इसलिए तुम ही इस अन्न जलको ग्रहण करो। सब कुटुम्बकी सम्मतिसे इस अन्न जलको केवल सकटाल ही खाने पीने लगा। और कुटुम्बी जन सब विना अन्न जलके तड़प तड़पके मर गये, केवल सकटाल ही जीवित रहा।

दैवयोगसे शत्रुओंने राजा नन्दपर फिर धावा किया। तब उसे फिर सकटाल याद आया। सेवकोंसे पूछाः— क्या कोई सकटालके कुटुम्बमें जीवित है? परिचारकोंमसे किसीने कहा-महाराज, जो अन्न जल दिया जाता है, तहखानेमसे कोई उसे ग्रहण अवश्य करता है, इससे जान पड़ता है कि उनमें कोई न कोई अवश्य ही जीवित है। राजाकी आज्ञासे तहखाना खोला गया और उसमेंसे सकटाल जो जीवित था, निकाल लिया गया। राजाने उससे कहा;-शत्रु चढ़ आया है, किसी तरहसे शान्त करो। तब सकटालने किसी उपायसे शत्रुको शान्त कर दिया।

उसके बाद राजाने सकटालसे मंत्रित्वका पद ग्रहण करनेको कहा, परन्तु सकटालने राजाकी आज्ञा न मानकर सत्कारगृहकी अध्यक्षताका काम स्वीकार किया।

एक दिन सकटाल नगरके बाहर वायुसेवन करता हुआ इधर उधर टहल रहा था कि अकस्मात उसकी दृष्टि एक चाणिक्य नामके ब्राह्मणपर पड़ी, जो कि दाभा की जड़ उखाड़ उखाड़कर फेंक रहा था। सकटालने प्रणामकरके पूछा—भूदेवजी, आप ये क्या करते हैं? चाणिक्यने कहा—ये दाभ मेरे छिद गई थी, इसलिए इनको जड़ मूलसे उखाड़कर जलानेका प्रयत्न कर रहा हूँ। इसके विना मेरा चित्त शान्त नहीं होगा। सकटालने चाणिक्यका ऐसा प्रबल क्रोध देखकर अपने मनमें यह विचार कर कि नन्दकुलका नाश यह अवश्य ही कर सकेगा, चाणिक्यसे प्रार्थना की कि महाराज, आप हमारे यहाँ पधारे और प्रतिदिन भोजन किया करे। चाणिक्य यह प्रार्थना स्वीकार करके सकटालके साथ नगरमे आया। पश्चात सकटाल इसको बड़े आदरसे प्रतिदिन भोजन कराने लगा।

एक दिन भोजनालयके अधिकारीने सकटालकी आज्ञासे चाणिक्यका आसन बदल दिया अर्थात् उच्च आसनके बदले मध्यका आसन दिया। चाणिक्यने पूछा-आज आसन क्यों बदला गया? अधिकारीने कहा-राजाकी आज्ञा

है कि यह अग्रासन किसी दूसरेको दिया जायगा। तब चाणिक्य मध्य आसनपर ही भोजन करने लगा। दूसरे दिन
सबेरे अन्तका आसन चाणिक्यको दिया गया। चाणिक्य वहीं बैठकर भोजन करने लगा। क्रोध बिलकुल नहीं
दिखलाया। दूसरे दिन भोजनालयके अधिकारीने भोजनालयमें प्रवेश करते हुए चाणिक्यको रोका और कहा:—महाराज,
मैं क्या करूँ? राजाने आपका भोजन बंद कर दिया है। अब चाणिक्यको क्रोध आया और वह नगरसे निकलकर
बाहर जाने लगा। मार्गमें चाणिक्यने चिल्लाकर कहा—जो कोई मेरे परम शत्रु राजा नन्दका राज्य लेना चाहता हो वह
मेरे पीछे पीछे चला आवे। चाणिक्यके ऐसे वाक्य सुनकर एक चन्द्रगुप्त नामका क्षत्रिय जो कि अत्यन्त निर्धन था,
यह विचारकर कि इसमें मेरा क्या बिगड़ता है, चाणिक्यके पीछे हो लिया। चाणिक्य चन्द्रगुप्तको लेकर नन्दके किसी
प्रबल शत्रुसे जा मिला। और किसी उपायसे नन्दका सकुटुम्ब नाश करके उसने चन्द्रगुप्तको वहाँका राजा बनाया।
चन्द्रगुप्तने बहुत कालतक राज्य करके अपने पुत्र बिन्दुसारको राज्य दे, चाणिक्यके साथ जिनदीक्षा ग्रहण की। उसके
पश्चात् क्या हुआ? सो चाणिक्य महामुनिकी कथासे जो आराधनाकथाकोशमें लिखी है, जान लेना चाहिए।

बिन्दुसार भी अपने पुत्र अशोकको राज्य दे महामुनि हुआ। अशोकके भी एक पुत्र हुआ, जिसका नाम
कुनाल रक्खा गया। कुनालकी बाल्यावस्था थी। अभी वह पठन पाठनमें ही लगा हुआ था कि
इसी समय राजा अशोकको अपने किसी शत्रुपर चढ़ाई करके जाना पड़ा। जो मन्त्री नगरमें रह गया था, उसके
लिए राजाने पत्रमें एक लिखी हुई आज्ञा भेजी कि अध्यापकको चावल बैंगन आदि देकर उसको संतुष्टकर
कुमारको अच्छी तरह पढ़ाना। राजाका यह पत्र पढ़नेवालेने इस तरह पढ़ा कि उपाध्यायको चावल बैंगन आदिसे
संतुष्ट कर कुमारको अन्धा कर देना[1]। राजाकी आज्ञा जैसी पढ़ी गई थी, वैसी ही काममें लाई गई। कुमारके नेत्र
फोड़ दिये गये। थोड़े दिन पीछे शत्रुको जीतकर राजा अशोक वापिस आया। अपने पुत्रकी ऐसी दशा देख अति-
शोक किया। थोडे दिन बाद कुनालका विवाह किसी चन्द्रानना नामकी कन्यासे कर दिया गया, जिससे कि एक

१ यहाँ "अध्यापयताम्" की जगह "अन्धापयता" पढ़ लिया, इससे कुमारको अन्धा बनना पड़ा।

चन्द्रगुप्त नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा अशोक अपने पोते चन्द्रगुप्तको राज्य दे दीक्षित हुआ। अब अशोकके पीछे चन्द्रगुप्त राज्य करने लगा।

एक दिन नगरके बाहरी उद्यानमें कोई अवधिज्ञानी मुनि पधारे। वनपालने मुनिके आनेकी खबर राजाको दी। राजा चन्द्रगुप्त मुनिकी वंदना करनेके लिए उद्यानमें आया। श्रीमुनिको नमस्कार कर उनके समीप बैठ गया। धर्म श्रवण करनेके पश्चात् राजाने मुनिसे अपने पूर्व भव पूछे। श्रीमुनि कहने लगे–।

जम्बूद्वीपके आर्य खंडमे एक अवंति (मालव) देश है। जिसके वैदेश नगरमें राजा जयवर्मा रानी धारिणी सहित राज्य करता था। उसी नगरके निकटवर्ती पलासकूट ग्राममे देविल वैश्यके उसकी स्त्री पृथिवीसे एक पुत्र हुआ, जिसका नाम नंदिमित्र पड़ा। नंदिमित्र अत्यन्त पुण्यहीन था, सो इसको माता पिताने निकाल दिया। नंदिमित्र यहाँसे निकलकर वैदेश नगरमे पहुँचा। नगरके बाहर एक वटवृक्षके नीचे विश्राम लेनेके लिए बैठ गया। नंदिमित्रके बैठनेके पहले ही वहाँपर एक लकड़ी बेचनेवाला अपना बोझा उतारकर विश्राम ले रहा था। उसको देखकर नंदिमित्रने कहा–भाई, मैं तेरे इस लकड़ीके बोझेसे चारगुणा बोझा प्रतिदिन ला दिया करूँगा, क्या तू मुझे उसके बदले भोजन दिया करेगा? काष्ठकूटने कहा–अच्छा, दिया करेंगे। परस्पर ऐसी बातचीत होनेपर काष्ठकूट लकड़ीका बोझा नंदिमित्रके सिरपर रखा-कर अपने घर पहुँचा। जाकर काष्ठकूटने अपनी स्त्री जयघंटाको समझा दिया कि देख, इसको पेटभर भोजन कभी नहीं देना। उस दिनसे नंदिमित्रको भोजन तो थोड़ा दिया जाता था। और उससे काष्ठका भार बड़ा मँगाया जाता था। उस भारको काष्ठकूट बाजारमे बेच लाता था। इस तरह काष्ठकूटने लकड़ी लाना छोड़ दिया। प्रति दिन उसीसे मँगाया करता था। एक बार किसी पर्वके दिन जयघंटाने अपने मनमें विचार किया कि इस नंदिमित्रके प्रभावसे मेरे घरमें लक्ष्मी हुई है और मैंने इसे कभी पेटभर भी अन्न नहीं दिया। इसलिए आज इसको यथेष्ट भोजन कराना चाहिए। ऐसा विचार कर जयघंटाने दूध घी शक्करके अच्छे अच्छे पदार्थ बनाकर उसे उसकी इच्छानुसार भोजन कराया और अन्तमे ताम्बूल दिया। ताम्बूल खाकर जब नंदिमित्र स्वस्थ हुआ तो काष्ठकूटसे पाहिननेके

लिए वस्त्र माँगने लगा। तब तो काष्ठकूटने अपनी स्त्रीसे पूछा–क्या तूने आज इसको पूरा भोजन दिया है? उस स्त्रीने अपने सब समाचार कह सुनाये। जो बात यथार्थ थी सो कह दी, इससे काष्ठकूट अतिशय क्रोधित हुआ। उसने उसी अपराधसे अपनी स्त्रीके दंडोंसे मार जमाई। नंदिमित्रने यह कृत्य देखा तो यह विचारकर कि इसने मेरे कारणसे ही इसको मारा है, इसलिए इसके घर रहना योग्य नहीं है, वहाँसे निकल गया। दूसरे दिन एक काठका भारी बोझ लाकर बाजारमें बेचनेके लिए खड़ा हुआ। यद्यपि और बेचनेवालोंके बोझ इससे छोटे थे, तथापि लोग उन्हींको खरीद कर ले जा रहे थे। इसका बोझ बड़ा होनेपर भी इसकी कोई बात भी नहीं पूछता था। वहीं खड़े खड़े इसको दो पहर हो गये। बेचारा भूखसे व्याकुल होगया। इतनेमें ही उसी मार्गसे एक मासोपवासी विनयगुप्त मुनि आहार लेनेके लिए आ रहे थे। इनको देखकर नंदिमित्रने विचारा–अरे! यह मुझसे भी दरिद्र वस्त्रादिकसे रहित है। यह कहाँ जाता है? सो देखना चाहिए। ऐसा विचार कर अपने भारको वहाँ छोड़ वह श्रीमुनिराजके पीछे हो लिया। कुछ दूर चलकर मुनिका पड़गाहन वहाँके राजाने किया। ऊँचे आसनपर बिठाकर राजाने उनके चरणकमल प्रक्षालन किये। और साथमें नंदिमित्रको देखकर राजाने समझा कि वह भी कोई श्रावक है। इसलिए एक दासीके द्वारा उसके भी पादप्रक्षालन कराये और भोजन दिया। राजाने श्रीमुनिराजको निरन्तराय भोजन दिया। इसलिए उसके घर पंचाश्चर्य हुए। नंदिमित्रने यह सब देख अपने मनमें चितवन किया कि यह कोई देव है। मैं भी ऐसा ही होऊँ, तो अच्छा। और उन मुनिके साथ ही साथ गुफामें चला गया। वहाँ श्रीमुनिराजसे निवेदन किया–हे नाथ, मुझे अपने समान बना लीजिए। मुनिने देखा कि यह भव्य है और अल्प आयुवाला है, इसलिए जिनदीक्षा दे दी। तथा पञ्चनमस्कार मंत्र पढ़ा दिया। इसके पारणा करनेके दिन श्रावकोंमें विशेष उत्कंठा हुई। कोई कहने लगा–इनको आज मैं भोजन दूँगा। दूसरा कहने लगा–नहीं, मैं दूँगा। श्रावकोंके ऐसे क्षोभको देखकर इसके कापोती लेश्याका प्रादुर्भाव हुआ। मनमें विचारा कि यदि एक उपवास और अधिक कर डालूँ, तो देखूँ कैसा क्षोभ होता है? ऐसा विचार उसने दूसरे दिन श्रावकोंको क्षोभित करनेके लिए उस दिन उपवास कर डाला। अब दूसरे दिन राजश्रेष्ठी

आदिके नगरके बड़े बड़े जनोंने आकर उसकी वंदना की और प्रार्थना की–महाराज, आज मैं पड़गाहन करूँगा। नंदिमित्रने कहा–भाई, मैं आज भी उपवास करूँगा। तब श्रेष्ठी आदिकने कहा–महाराज, ऐसा करना उचित नहीं है। तब नंदिमित्रने कहा–अब तो मैंने उपवास ग्रहण कर लिया है। राजश्रेष्ठीने राजसभामें जाकर इस नये तपस्वीकी (नंदिमित्रकी) बड़ी प्रशंसा की। इसके गुण वर्णन किये। इसकी ऐसी प्रशंसा सुनकर पट्टरानीने कहा–अच्छा, कल मैं पड़गाहन करूँगी। दूसरे पारणाके दिन वह पट्टरानी सकल अन्तःपुरके साथ उद्यानमें गई। जाकर गुरुशिष्यको नमस्कार किया। नंदिमित्रने रानीको आया देख अपने मनमें चिंतवन किया कि मुझमें आजके उपवास करनेकी शक्ति विद्यमान है। इसलिए आजका तो उपवास ही करना चाहिए। कल दिन राजा आवेगा, तब ही पारणा करूँगा। ऐसा चिंतवन कर अपने गुरुसे कहने लगा–स्वामिन्, मैं आज भी उपवास करूँगा। ऐसा सुन रानीने उनके चरणोंपर गिर निवेदन किया–महाराज, आज उपवास नहीं करना चाहिए। तब नंदमित्रने कहा–अब तो उपवास करनेकी प्रतिज्ञा ले चुका। क्या ग्रहण किया उपवास छोड़ दूँ? गुरु महाराजने भी कहा–प्रतिज्ञाभंग करना उचित नहीं है। तब पट्टरानी लौटकर अपने घर चली गई और नंदिमित्र पञ्चनमस्कारमंत्रके चिंतवन करनेमें मग्न हुआ। जब रात्रिका पिछला पहर हुआ तब श्रीगुरुने नंदिमित्रसे कहा–नंदिमित्र, अब तेरी आयु केवल अंतर्मुहूर्तकी रह गई है, इसलिए सन्यास धारण कर। तब नंदिमित्रने "बहुत अच्छा" कहकर गुरुकी आज्ञानुसार क्रमसे सन्यास धारण किया। और अन्तमें वह शरीरको छोड़ सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ।

इधर नगरमें कोलाहल मच गया कि नंदिमित्र मुनिका स्वर्गवास हो गया। सो राजा प्रजा सबने आकर सुवर्णवृष्टि आदि की। प्रजाने उसके शवकी दग्धक्रिया की। इधर जब इसकी दग्धक्रिया हो रही थी, उसी समय नंदिमित्रका जीव जो कि देव हुआ था अपने परिवार विमानादिक विभूतिसे आकाशको व्याप्त करता हुआ अपनी नियोगिनी देवाङ्गनाओं सहित एक विमानमें आ बैठा। और उसने अपना वैसा धारण किया जैसा रूप कि वह नंदिमित्रकी गृहस्थावस्थामें था, और उस शवके सामने नृत्य करने लगा।

इसको देख सब लोगोंको आश्चर्य हुआ। तथा सबने जान लिया कि यह मरकर देव हुआ है। व्रतका साक्षात् माहात्म्य देखकर अनेक भव्य जनोंने दीक्षा ग्रहण की और अनेकोंने विशेष अणुव्रत धारण किये। राजा जयवर्माने अपने पुत्र श्रीवर्माको राज्य दे अनेक भव्योंके साथ श्रीविनयगुप्त मुनिके निकट दीक्षा ले ली। सबको यथोचित गतिकी प्राप्ति हुई। श्रीमुनिराज कहने लगे-राजन, नंदिमित्रका जीव जो देव हुआ था, वह वहाँसे चयकर तू हुआ है। चन्द्रगुप्त अपने ऐसे पूर्व भव सुन प्रसन्न हो मुनिराजको नमस्कार कर नगरमें लौट आया और सुखसे राज्य करने लगा।

राजा चन्द्रगुप्तने किसी रात्रिके पिछले पहरमें नीचे लिखे हुए सोलह स्वप्न देखे—१ सूर्यका अस्त होना, २ कल्पवृक्षकी शाखा टूटना, ३ आते हुए विमानका लौटना, ४ बारह फणोंका सर्प, ५ चन्द्रमामें छिद्र, ६ काले हाथियोंका युद्ध, ७ खद्योत, ८ सूखा सरोवर, ९ धूम, १० सिंहासनके ऊपर बैठा हुआ बंदर, ११ सुवर्णके पात्रमें खीर खाता हुआ कुत्ता, १२ हाथीके सिर चढ़ा हुआ बन्दर, १३ कूड़ेमें कमल, १४ मर्यादाको उल्लंघन करता हुआ समुद्र, १५ तरुण बैलोंसे जुता हुआ रथ, और १६ तरुण बैलोंपर चढ़े हुए क्षत्रिय।

स्वप्न देखनेके दूसरे दिन श्रीभद्रबाहुस्वामी अनेक देशोंमें परिभ्रमण करते हुए सकल संघके साथ उसी नगरके उद्यानमें पधारे और आहार लेनेके लिए नगरमें आये। सब श्रावकोंने आदरपूर्वक उन मुनियोंका पड़गाहन किया। श्रीभद्रबाहुस्वामी भी किसी श्रावकके पड़गाहनेपर उसके यहाँ पधारे। जहाँ श्रीभद्रबाहुस्वामी पधारे थे वहाँ एक छोटे बालकने "बोलह बोलह" ऐसा व्यक्त शब्दोंमें कहा। आचार्य महाराजने यह शब्द सुनकर पूछा-कितने वर्ष? बालकने कहा-"बारह वर्ष" श्रीआचार्यको इन शब्दोंसे भोजनमें अन्तराय हुआ, इसलिए वे विना आहार लिये उद्यानमें चले गये।

राजा चन्द्रगुप्तने भी सुना कि उद्यानमें श्रीमुनिराज पधारे हैं, अतः राजा कुटुम्बसहित मुनिराजकी वंदना करनेके लिए आया। वंदना नमस्कार आदिक करनेके पश्चात् राजाने श्रीमुनिराजसे अपने देखे हुए सोलह स्वप्नोंका फल पूछा। श्रीमुनिराजने कहा-राजन्, तेरे सब स्वप्नोंका फल यही है कि आगे दुःख अधिक होगा और समय बुरा आवेगा।

पृथक् पृथक् स्वप्नोंका फल—राजन्, पहले स्वप्नमें जो सूर्यको अस्त होता देखा है, वह सूचित करता है कि सकल पदार्थोंका प्रकाश करनेवाला जो परमागम (जिनागम) है, उसका अस्त होगा। (२) दूसरे स्वप्नमें जो कल्पवृक्षकी डालीका टूटना देखा है, उसका फल यह है कि अबसे क्षत्रिय लोग न तो राज्य करेंगे और न दीक्षा ग्रहण करेंगे। (३) आये हुए विमानके लौट जानेका फल यह है कि आजसे यहाँपर देव तथा चारण मुनियोंका आगमन नहीं होगा। (४) बारह फणोंके सर्पसे जानना चाहिए कि यहाँ बारह वर्षका दुष्काल पड़ेगा। (५) चंद्रमंडलमें छिद्र होनेसे समझना चाहिए कि जैनमतमें संघ आदिका भेद हो जायगा। (६) काले हाथियोंके युद्धसे जान पड़ता है कि अबसे यहाँपर यथेष्ट वर्षा नहीं होगी। (७) खद्योतके देखनेका फल यह जान पड़ता है कि परमागम (जिनागम) का उपदेश कुछ दिनोंतक रहेगा। (८) मध्यमें सूखा सरोवर सूचित करता है कि आर्यखंडके मध्यदेशमें धर्मका विनाश होगा। (९) धूमका देखना कहता है कि अबसे दुर्जन और धूर्त्त अधिक होंगे। (१०) सिंहासनपर बंदरका बैठना स्पष्ट कह रहा है कि आगे नीच कुल-वालोंका राज्य होगा। (११) सोनेके पात्रमें कुत्तेका खीर खाना बतलाता है कि आगे राजसभाओंमें कुलिंगियोंकी पूजा होगी। (१२) हाथीपर बंदरको बैठना सूचित करता है कि राजकुमार नीच कुलवालोंकी सेवा करेंगे। (१३) कूड़ेमें कमलके देखनेसे विदित होता है कि राग द्वेष सहित भेषी कुलिंगियोंमें तपादिककी क्रिया देख पड़ेगी। (१४) समुद्रकी मर्यादा उल्लंघन होना जो देखा है वह सूचित करता है कि राजा षष्ठांश भागसे अधिक कर लेंगे। (१५) तरुण बैलों सहित रथ दिखलाता है कि बालक तप करेंगे और वृद्धावस्थामें उस तपमें दोष लगावेंगे। (१६) तरुण बैलोंपर चढ़े हुए क्षत्रिय द्योतन करते हैं कि क्षत्रिय लोग कुधर्ममें लीन होंगे।

इस प्रकार अपने सोलह स्वप्नोंके फल सुनकर राजा चन्द्रगुप्तने अपने पुत्र सिंहसेनको राज्य देकर दीक्षा ले ली। स्वामी भद्रबाहुने अपने संघमें जाकर सब शिष्योंको बुलाकर कहा;—जो यति यहाँ रहेगा, उसका व्रत भंग हो जायगा, ऐसा निमित्तज्ञानसे मालूम होता है, इसलिए सबको दक्षिण दिशाकी ओर चलना उचित है। श्रीभद्रबाहुकी आज्ञा-

इन्होने कहा:-बहिन, तू अकेली है, और मै अकेला हूँ। इसमें लोकापवाद होनेका भय है। इसलिए मैं यहाँ भोजन नहीं ले सकता। ऐसा कह मुनि अपने आश्रमको फिर लौट गये, और जाकर गुरुको सब समाचार सुनाये। गुरुने आज भी यही कहा कि बहुत अच्छा किया। पाठक जान गये होंगे कि यह सब देवमाया थी और चन्द्रगुप्तको इसकी कुछ भी खबर न थी। चौथे दिन श्रीचन्द्रगुप्त फिर आहार लेनेके लिए दूसरी ओर गये। वहाँ एक नगर देख उन्होने किसी एक गृहस्थके घर आहार लिया। आहार लेकर अपने आश्रममें आकर फिर गुरुसे आहार प्राप्तिके सब समाचार कहे। श्रीगुरुने फिर भी वही उत्तर दिया:-बहुत अच्छा किया। इस प्रकार श्रीचन्द्रगुप्त मुनि यथेष्ट चर्या और अपने गुरु स्वामी भद्रबाहुकी शुश्रूषा (वैयावृत्य) करते हुए उसी गुफामें रहने लगे। पश्चात् कुछ दिनोंमें श्रीभद्रबाहुस्वामी अपनी पर्याय पूरी होनेपर स्वर्गलोक पधारे।

श्रीचन्द्रगुप्तने अपने गुरुका मृतक शरीर किसी ऊँचे स्थानकी एक शिलापर रख उनके चरणकमलोंका चित्र उस गुफाकी एक दिवालपर खोद दिया और उनका आराधन करते हुए वहीं रहने लगे।

वहाँ श्रीविशाखाचार्य अपने शिष्योंसहित चोलदेशमें सुखसे निवास करने लगे और यहाँ रामिल्लाचार्य, स्थूलभद्राचार्य और स्थूलाचार्य अपने शिष्योंसहित पटनाहीमें रहते थे। पटना प्रान्तमें महादुष्काल पड़ा। परन्तु तो भी वहाँके श्रावक वहाँ रहनेवाले मुनियोंको भक्तिपूर्वक श्रेष्ठ अन्न देते रहे।

एक दिन एक मुनि भोजन करके नगरसे उद्यानकी ओर आ रहे थे, सो मार्गमें कितने ही दुष्काल पीड़ित भूखे मनुष्योंने उन मुनिका उदर (पेट) फाड़ डाला और उसमेंका सब अन्न निकालकर खा गये। मुनियोंको ऐसा उपद्रव होते देख श्रावकोंने संघके आचार्यसे निवेदन किया-महाराज, अब आपको अधिक उपद्रव होता है, इसलिए आप लोग रात्रिमें अपने अपने पात्र लेकर हमारे घर आया कीजिए। हम उनको अन्नसे भर दिया करेंगे, सो आप लोग उनको अपनी वसतिकामें ले आना, और जब भोजन करनेका समय होवे, तब वसतिकाके दरवाजे बंदकरके झरोखोंके प्रकाशमें एक दूसरेको हाथपर रखकर भोजन कर लेना। श्रावकोंके अनुरोध करनेसे उस दिनसे सब

साधुओंने वैसा ही करना प्रारंभ कर दिया। एक दिन रात्रिके समय एक क्षीण शरीरवाला यति, जो लंबाईमें वेतालके समान देख पडता था और जिनके एक हाथमें पिच्छि कमंडलु और दूसरे हाथमें कुत्ते बिल्ली आदिके भयसे एक दंड (लकड़ी) भी था, जा रहा था। उसको देख एक गर्भिणी स्त्रीका डरसे गर्भपात हो गया। इस महा अनर्थको देख श्रावकोंने उस संघसे फिर निवेदन किया--महाराज, आप लोग एक श्वेत कम्बल बड़ी कंधेपर इस तरहसे रखकर कि जिससे गुह्य भाग तथा कटि प्रदेश ढक सके, हम लोगोंके घर आया करें। जो आप ऐसा न करेंगे तो बड़ा अनर्थ होगा। श्रावकोंके कहनेसे वे वस्त्र लेकर ही आहारको जाने लगे। तबसे उनका नाम "अर्द्ध-कर्पटि तीर्थ" पड़ा। इस प्रकार उन्होंने सुखसे रहकर दुष्कालके बारह वर्ष पूरे किये।

यहाँ विशाखाचार्यने यह जानकर कि अब बारह वर्ष बीत गये, दुर्भिक्ष नहीं रहा, उत्तरकी ओरको विहार किया। और मार्गमें भद्रबाहु गुरुकी वंदनाके लिए उसी गुफाको संघ सहित गये। तो देखा कि वहाँ चन्द्रगुप्त मुनि अपने गुरुके चरण कमलोंका आराधन कर रहे हैं। दूसरे मुनिका साथ न होनेसे उन्हें यह ज्ञान नहीं हुआ कि केशोंका दूसरी बार लोच किया जाता है, इसलिए उनके केशोंने लम्बी जटाओंका रूप धारण कर लिया था। जटा नीचे तक लटकती थी। विशाखाचार्यके संघको आया जान चन्द्रगुप्तने सन्मुख आकर सबकी वंदना की। परन्तु सब संघने यही समझकर कि यहाँ निर्जन स्थानमें यह केवल कंद मूलादि खाकर ही जीवित रहा होगा, इसलिए वंदना करनेके योग्य नहीं है, किसीने प्रतिवंदना नहीं की। संघने श्रीभद्रबाहुस्वामीके शरीरकी क्रिया की। उस दिन सबने उपवास किया।

दूसरे दिन विशाखाचार्य पारणाके लिए संघसहित किसी गाँवको जाने लगे। तब चन्द्रगुप्तने उनको जानेसे रोका और कहा--महाराज, पारणा करके जाना। विशाखाचार्यने कहा--यहाँ कोई ग्राम नहीं है, लोगोंका निवास नहीं है, यहाँ पारणा कैसे हो सकेगा? तब चन्द्रगुप्तने कहा:--महाराज, आप इसकी चिंता न करें। जब मध्यान्हका समय हुआ चन्द्रगुप्तने नगरका मार्ग बताया, सब आश्चर्य करते हुए उधरहीसे चले। सामने ही एक सुन्दर नगर दिखाई

पडा, जहॉं कि सब मुनियोंने प्रवेश किया, सो उस नगरके श्रावकोंने उन्हें बड़े उत्साहसे पड़गाहन किया। सबका अन्तराय रहित आहार हुआ। आहार लेकर सब मुनि फिर उसी गुफामें आये। दैवयोगसे एक ब्रह्मचारी उस नगरमें अपना कमंडलु भूल आया था, सो उसके लेनेके लिए फिर उसी मार्गसे गया। परन्तु उसे नगर ग्रामका कहीं भी पता न लगा। तब तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। यहॉं वहॉं ढूँढनेपर कमंडलु एक जगह वृक्षके नीचे रक्खा हुआ मिल गया। तब ब्रह्मचारीने गुफाको लौटकर विशाखाचार्यसे ये सब समाचार कहे। वे ऐसी विचित्र कथा सुनकर समझ गये कि यह ग्राम नगर आदि चन्द्रगुप्तके पुण्योदयसे उसी समय हो जाते हैं। तब उन्होंने चन्द्रगुप्तकी बड़ी प्रशंसा की। उसके केश लोच कराकर प्रायश्चित्त दिया। असंयत (संयम रहित देव) के हाथसे दिया हुआ आहार लिया था सो अपने और सब संघने भी प्रायश्चित्त किया।

यहॉं जब दुर्भिक्ष दूर होकर चारों ओर सुकाल फैल गया, तब रामिल्लाचार्य और स्थूलभद्राचार्यने अपनी आलोचना की। स्थूलभद्राचार्य सबमें वृद्ध थे, सो उन्होंने अपनी आलोचना स्वयं करके सब संघसे बार २ कहा—अब दुष्काल बीत गया, इसलिए वस्त्रादिक छोड़ देने चाहिए क्योंकि मुनियोंके शरीरपर ये अच्छे नहीं लगते हैं। यह बात और मुनियोंको अच्छी नहीं लगी। क्योंकि वे चाहते थे कि अब ऐसे कठिन व्रत कौन अंगीकार करेगा? इसलिए उन दुष्ट मुनियोंने रात्रिमें एकान्त ध्यान पाकर हितरूप उपदेश देनेवाले स्थूलभद्राचार्यको मुक्के घूँसोंसे मारा जिससे उनके प्राण प्रातःकाल ही छूट गये और वे स्वर्ग लोक पधारे। पीछे सब ऋषियोंने मिलकर उनकी दग्ध क्रिया की, और सब वहीं सुखसे रहने लगे।

समय पाकर श्रीविशाखाचार्य मुनि इसी नगरमें पधारे जहॉं कि ये स्थूलभद्राचार्यके मारनेवाले मुनि रहते थे। इनको भ्रष्ट हुए देख संघके मुनि प्रतिवंदना करनेमें प्रतिकूल हो गये। यह बात भ्रष्ट मुनियोंको बहुत बुरी लगी। जिदमें आकर वे सर्वथा अलग रहनेको तैयार हो गये, और उसी समयसे अपने नये मतका प्रतिपादन करने लगे। उन्होंने उपदेश दिया कि भगवान् भी आहार लेते हैं, मोक्ष स्त्रीको भी होता है इत्यादि।

इन नये मतके चलानेवालोने एक राजपुत्रीको जिसका नाम स्वामिनी था, पढ़ाया। पश्चात् वह कन्या सोरठ देशके वल्लभीपुरके राजा वप्रपादको विवाही गई। राजा वप्रपादकी वह सबसे प्यारी रानी हुई। उसने अपने गुरुको वल्लभीपुरमें बुलवाया। जब वे आये तो वह रानी राजाको साथ लेकर सत्कारके लिए लेनेको सम्मुख गई। राजाने इन्हे देखकर रानीसे कहा--देवी, ये तेरे गुरु कैसे है ? न तो ये पूरे वस्त्रधारी है और न नग्न ही है। इन दोनो प्रकारोसे यदि ये मुनि किसी एक भेदको स्वीकार करें अर्थात् या तो नग्न ही हो जायँ, या पूर्ण वस्त्र धारण कर लेवे तो हमारे नगरमे प्रवेश कर सकेगे, नही तो नहीं। रानीने राजाकी ऐसी इच्छा देख मुनियोसे निवेदन किया–या तो आप पूर्ण वस्त्र पहन ले या नग्न हो जॉय। तब उन्होने श्वेत वस्त्र पहनना स्वीकार कर लिया। तबसे इनका नाम श्वेताम्बर रक्खा गया। पश्चात् रानी स्वामिनीने अपनी पुत्री जखलदेवी इन साधुओके पास पढ़ाई, जो युवती होनेपर करहाट नगरके राजा भूपालको विवाही गई। यह भी उस राजाकी अतिवल्लभा हुई। और उसने भी अपने गुरु अपने नगरमे बुलवाये। जब वे गुरु नगरके बाहर आपहुँचे, तब रानीने राजा भूपालसे कहा–देव, मेरे गुरु यहॉ पधारे है। आपको आधी दूरतक उनके सत्कारके लिए चलना चाहिए। रानीके बहुत अनुरोधसे राजा चलनेको तैयार हुआ। परन्तु बाहर जाकर उसने देखा कि सब मुनि दंड कम्बल लिये बैठे है। उन्हें ऐसी अवस्थामे देखकर राजाने कहा–देवी, देख तो तेरे गुरुओका सब भेष ग्वालियेके समान है। ये नगरसे निकाल देनेके योग्य है। इस तरह राजा उनकी बहुतसी अवज्ञा (निन्दा)करके नगरमे वापिस लौट गया। तब रानीने मुनियोसे निवेदन किया–महाराज, आपका इस तरह यहॉ निर्वाह नही होगा। इसलिए अच्छा हो कि आप निर्ग्रन्थ (दिगम्बर) हो जावे। तब वे मुनि अपना मत अवलंबन करते हुए ही दिगम्बर हो गये। अर्थात् दिगम्बर होकर भी अपने कल्पित मतके अनुयायी बने रहे। और वहाँ उन्होंने अपने संघका नाम "जाल्पसंघ" रक्खा।

इधर श्रीचन्द्रगुप्त मुनिने कठिन तप किया। और अन्तमे सन्यास धारणकर शरीर छोड़, स्वर्गमें देव पर्याय पाई। इस प्रकार नंदिमित्रने कापोती लेश्यारूप परिणामोसे उपवास किया था, सो उसके प्रभावसे वह स्वर्गोके सुख

भोग राजा चन्द्रगुप्त हुआ और तपकर फिर स्वर्ग गया। जो कोई जन, मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक उपवास करेगा सो क्या ऐसी और इससे उत्कृष्ट महिमाको प्राप्त न होगा ? अवश्य ही होगा। इसलिए अपने कल्याणकी इच्छा करनेवालोंको निरन्तर उपवास करना उचित है।

(६) जांववतीकी कथा।

द्वारावती नगरीमे कृष्ण वलभद्र दोनों भाई राज्य करते थे। एक दिन वे श्रीनेमिनाथ तीर्थकरकी वंदना करनेके लिए सकुटुम्ब गिरनार पर्वतपर गये। वंदना स्तुति करके अपने कोठेमें बैठे और धर्मश्रवण करने लगे। इधर श्रीकृष्णकी पट्टरानी जांववतीने वरदत्त गणधरको नमस्कार करके अपने पूर्व भव पूछे। श्रीगणाधीश कहने लगे:—

इसी जंबूद्वीपके अन्तर्गत अपरविदेहक्षेत्रमे एक पुष्कलावती देश है। उसमें एक वीतशोकपुर नगरनिवासी देविल नामके वैश्यकी देवलमती स्त्रीसे एक यशस्विनी पुत्री थी। वह वहांके मन्त्रीके पुत्र सुमित्रको विवाही गई थी। दैवयोगसे सुमित्रका देहान्त हो गया। इसलिए यशस्विनी बहुत दुःखित हुई। एक जिनदेव नामके सेठने धर्मोपदेश देकर उसको सम्यक्त्व ग्रहण कराया। यशस्विनीने उस समय तो सम्यक्त्व धारण कर लिया परन्तु मरनेके समय छोड़ दिया इसलिए वह मर कर आनन्दपुर नगरके राजा अन्तरके मेरुनन्दना रानी हुई। मेरुनन्दनाके अस्सी पुत्र हुए। चार हजार वर्षतक भोगोपभोगोंको अनुभव किया। अन्तमें आर्त्तध्यानसे मृत्यु हुई। जिससे बहुत कालतक संसारमें परिभ्रमण करना पड़ा। अन्तमें इसी जम्बूद्वीपके ऐरावत क्षेत्रमे विजयपुर नगरके राजा बंधुषेण रानी बंधुमतीके बंधुजसा पुत्री हुई। उसने छोटी ही अवस्थामें श्रीमती नामकी आर्यिकाके समीप प्रोषध करनेकी प्रतिज्ञा ली, और कारणवश कन्या अवस्थामें ही मर गई। मर कर धनदत्तकी वल्लभा स्वयंप्रभा हुई। उस पर्यायको भी छोड़कर इसी जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती देशके अन्तर्गत पुंडरीकिणी नगरीके राजा वज्रमुष्टि रानी सुप्रभाके सुमति नामकी कन्या हुई। इसने सुदर्शना

आर्यिकाके समीप दीक्षा ग्रहण की और आयु पूरी होनेपर पाँचवें ब्रह्मस्वर्गके इन्द्रकी देवीकी पर्याय पाई। वहाँसे चयकर विजयार्द्धपर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें जम्बूपुर नगरके राजा जवत्र रानी सिंहचन्द्राके तू जांबवती हुई है। सो इस भवमें तप करके स्त्रीवेद छेद देव होगी। वहाँसे चयकर मंडलेश्वर होगी और उसी पर्यायसे मोक्ष पावेगी। इस प्रकार एक विवेकरहित बालिकाने प्रोषधके प्रभावसे ऐसी ऐसी उत्तम पर्याद और विभूतियाँ प्राप्त की। यदि बुद्धिमान् मनुष्य प्रोषध करे तो क्या उत्तमोत्तम फल नहीं पावे? अवश्य ही पावे।

[७] ललितघटकी कथा।

इसी जम्बूद्वीपके वत्सदेशमें एक कौशाम्बी नगरी है। वहाँके राजा हरिध्वज रानी वारुणीके श्रीवर्द्धनादिक बत्तीस पुत्र हुए। उसी राजाके मन्त्रीके पाँचसौ पुत्र थे। इन सब राजाके पुत्रों और मन्त्रीके पुत्रोंकी परस्पर गाढ़ मित्रता थी। इसलिए सब एक ही जगह एक ही साथ आते जाते उठते बैठते थे। सब ही सुन्दर थे इसलिए लोग इनसे ललितघट कहने लगे।

एक दिन सबके सब मिलकर श्रीकान्त पर्वतपर शिकार खेलनेके लिए गये। वहाँ जाकर ज्यो ही इन्होंने हिरणोंपर बाण छोड़े, त्यों ही इनके धनुष् टूट गये। और सब पृथ्वीपर गिर पड़े। उठकर सब इधर उधर ढूँढने लगे कि यह क्या और किसका कौतुक है समीप ही? श्रीअभयघोष मुनिको देखा। उनको देखकर अनेकोंने क्रोध दिखलाया और कहा—इसीने हमारे धनुष् तोड़े है, हमको भूमिपर गिराया है। इत्यादि कहकर कुछ अनर्थ करने लगे। परन्तु श्रीवर्द्धनने सबको समझाकर रोक दिया। पश्चात् सबने जाकर मुनिको प्रणाम किया। मुनिने आशीर्वादमें कहा—तुम्हारे धर्मवृद्धि हो। यह सुन श्रीवर्द्धनने धर्मका स्वरूप पूछा। तब श्रीमुनि महाराजने यथार्थ धर्मका स्वरूप निरूपण कर सुनाया। धर्मका स्वरूप सुन श्रीवर्द्धनकुमारने पूछाः—मेरी आयु कितने वर्षकी शेष है? श्रीमुनिने कहा;—तुम्हारी सबकी

आयु केवल एक महीनेकी शेष रही है। यदि तुमको इसमें कुछ संदेह हो तो इसका निवारण इन बातोंसे कर लेना चाहिए। एक तो यह कि जब तुम यहाँसे नगरको लौटोगे तो मार्गमें एक भयानक सर्प मिलेगा। जिसके बहुतसे फन होंगे और मार्गको रोककर पड़ा होगा। यदि तुम उसको ताड़ना करोगे तो वह अदृश्य हो जायगा। वहाँसे आगे चलकर मार्गमें बैठा हुआ एक बालक मिलेगा। वह तुमको देखकर अपना शरीर बढ़ावेगा और भयानक राक्षसका स्वरूप धारण कर तुमको निगलनेके लिए सामने आवेगा; परन्तु तुम्हारी तर्जनासे वह भी अदृश्य हो जायगा। फिर जब तुम नगरमें प्रवेश करोगे और अपने मकानकी ओर जाने लगोगे तो कोई अंधी स्त्री अपने महलकी ऊपरकी गचीपर खड़ी होकर बालककी विष्ठा नीचे डालेगी और वह श्रीवर्द्धनके मस्तकपर पड़ेगी। तथा आगामी रात्रिको तुम्हारी माताओंको स्वप्न होगा कि तुम्हें किसी राक्षसने निगल लिया है। यह कहकर मुनिने कहा;—जो मार्गकी ये बातें सत्य निकले तो मेरा कहा हुआ आयुका प्रमाण भी सत्य ही जानना।

श्रीमुनि महाराजकी कही हुई ऐसी अपूर्व घटनाको सुनकर सबके हृदयमें एक तरहका कौतुक हुआ, इसलिए परीक्षा करनेके लिए उत्सुक होकर तत्काल ही सबके सब नगरको चल दिये। जैसा मुनिने कहा था, सब वैसा ही हुआ। मुनिके वचनोंमें सबको श्रद्धान हो गया, इसलिए अपने अपने माता पिताओंकी आज्ञा लेकर सबोंने उन्हीं श्रीअभयघोष मुनिके निकट दीक्षा ले ली। पश्चात् सबके सब यमुना नदीके किनारेपर प्रायोपगमन सन्यास धारण कर विराजमान हुए। एक महीना पूर्ण होते ही अकाल वृष्टि हुई। जिससे नदीका बड़ा भारी पूर आया और उसमें वे सबके सब बह गये। सबने समाधिपूर्वक ही शरीर छोड़ा, इससे सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र पर्याय पाई। जहाँसे एक बार आकर ही मोक्ष जावेंगे।

इस प्रकार वे कुमार शिकारी आदि होनेपर भी अन्त समयमें उपवास करनेसे ऐसे (सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्र) हुए तो दूसरा जो कोई जिनभक्त अपनी शक्तिके अनुसार मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक उपवास करेगा, वह क्या ऐसी ही उत्कृष्ट विभूतिको प्राप्त नहीं होगा? अवश्य ही होगा।

(८) अर्जुन चांडालकी कथा।

जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह क्षेत्रमे एक पुष्कलावती देश है। उसमे पुंडरीकिणी नगरी है। वहाँका राज्य राजा वसुपाल और राजा श्रीपाल करते थे। एक दिन नगरके बाहर शिवंकर उद्यानमे श्रीभीमकेवलीका समवसरण हुआ; और उसमे खचरवती, सुभगा, रतिसेना और सुसीमा ये चार व्यंतरी श्रीकेवलीके दर्शन करनेके लिए आई। उन्होने दर्शन स्तुति करके श्रीकेवलीसे पूछाः-देवाधिदेव, हमारा पति कौन होनेवाला है? भगवानने कहाः-इसी पुंडरीकिणी नगरीमे पहले चंड नामका एक चांडाल हुआ था, जिसे वसुपाल राजाने विद्युद्वेग चोरके साथ लाक्षाघरमें डालकर मरवा दिया था। उसका अर्जुन नामका पुत्र उदंबर कुष्टसे (एक प्रकारके कोढ़ रोगसे) पीड़ित हो रहा है, इसीलिए उसको कुटुम्बियोंने घरसे निकाल दिया है। वह सुरगिरि पर्वतकी कृष्ण नामकी गुफामे सन्यास धारण कर बैठा है। वही आजसे पाँचवे दिन शरीर छोड़कर तुम्हारा पति होगा। यह सुनकर वे चारों व्यंतरियाँ उसी गुफामे गई, जहाँ वह चांडाल सन्यास धारण किये बैठा था। वहाँ उस चांडालसे कहाः-हे अर्जुन, तू पाँचवे दिन इस शरीरको छोड़कर हमारा पति होगा, ऐसा श्रीभीमकेवलीने कहा है, इसलिए तू परिषहोसे पीड़ित होकर भी अपने परिणाम संक्लेशरूप नहीं करना। इस तरह उसे समझाकर वे वहीं बैठ गई। दैवयोगसे उसी गुफामे क्रीड़ा करनेके लिए कुबेरपाल नामका राजपुत्र आया और उन व्यंतरियोको देखकर क्रोधित हो कहने लगाः-यह चांडाल है, कुष्ठी (कोढ़ी) है, इसलिए इस निकृष्टको छोड़कर तुम मुझमे प्रीति करो। राजकुमारकी ऐसी बाते सुन देवियोने कहाः-अरे राजपुत्र, तू यह क्या कह रहा है? तू मनुष्य है, हम देवी है। यदि तुझे देवियोंसे भोग करनेकी इच्छा है, तो धर्ममें तत्पर हो। हम तो व्यन्तरी है, यदि तू धर्म करेगा तो तुझे सौधर्मादि स्वर्गोकी अतिशय सुन्दरी बहुतसी देवियाँ मिलेगी। देवियोकी ऐसी बात सुनकर राजपुत्र तो चला गया, परन्तु थोड़ी ही देर पीछे नागदत्तका पुत्र भवदत्त वहीं क्रीड़ा करनेके लिए आया। उन देवियोको देख उसने भी उसी तरहसे कहा, जैसा कुबेरपाल राजपुत्रने कहा था। व्यन्तरियोंने उसको भी वही उत्तर

दिया, जो राजपुत्रको दिया था। परन्तु इस उपदेशका असर भवदत्तपर न हो सका और वह कामज्वरसे मरकर अपने पिताके बनवाये हुए नागभवनमें उत्पल नामका व्यंतर हुआ। अर्जुन चांडाल सन्याससे मरकर उन्हीं देवियोंके विमानमें सुरदेव नामका देव हुआ। अपने समस्त परिवारको लेकर श्रीभीमकेवलीकी वंदना करनेके लिए आया। उसको देख उपवासका साक्षात् फल जान व्रतकी ऐसी महिमा समझ समस्त समवसरणके जीव प्रोपधोपवास करनेकी प्रतिज्ञा करने लगे।

इस प्रकार अनेक प्राणियोंका घात करनेवाला चांडाल भी उपवासके प्रभावसे देव हुआ तो और भव्य जीव जो उपवास करेंगे, क्यों न श्रेष्ठ फल पा सकेंगे?

इति श्रीकेशवानन्दिदिव्यमुनिशिष्यश्रीरामचन्द्रमुमुक्षुविरचित पुण्याश्रवकथाकोपकी सरल भाषा टीकामें उपवासफलाष्टक नामका तीसरा अष्टक पूर्ण हुआ।

अथ दानफलषोड़शक।

(१) राजा श्रीषेणकी कथा।

जम्बूद्वीप–भरतक्षेत्र आर्यखण्डमे एक रमणीक मलय नामका देश है। उसके रत्नसंचयपुर नगरके राजाका नाम श्रीषेण और रानियोंका नाम सिंहनंदिता और अनंदिता था। सिंहनंदितासे इन्द्र और अनंदितासे उपेन्द्र ऐसे दो पुत्र थे। उसी नगरमें एक सात्यकी ब्राह्मण रहता था, जिसकी स्त्रीका नाम जम्बू और पुत्रीका नाम सत्यभामा था। नगरमें सब राजा प्रजा सुखसे समय व्यतीत करते थे। उन्हीं दिनोंमे मगध देशके अचल ग्राममे एक धरणीजड़ ब्राह्मण रहता था, जिसकी स्त्री अग्निलासे दो पुत्र थे। एकका नाम चन्द्रभूति और दूसरेका नाम अग्निभूति। तथा एक कपिल नामका दासीपुत्र था जो कि अतिबुद्धिमान्, निपुण और रूपवान् था। धरणीधर जब अपने दोनों पुत्रोंको वेद पढ़ाता था, उस समय वह

भी ध्यानसे सुना करता था। सो कपिल समस्त वेद पुराणादिकका पाठी हो गया। परन्तु इस दासीपुत्रका वेदपारगामी होना धरणीधरको अच्छा न लगा, इसलिए उसने उसको अपने घरसे निकाल दिया। कपिल अपने पिताके घरमे निकलकर यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहनकर रत्नसंचयपुर नगरमें पहुँचा। किसी तरह सात्यकी ब्राह्मणसे उसकी भेट हुई। सात्यकीने देखा कि कपिल जैसा मनोज्ञ और रूपवान है, वैसा गुणी भी है, इसलिए उसने अपनी कन्या सत्यभामाका विवाह उसके साथ कर दिया। दोनो आनन्दसे रहने लगे। परन्तु कपिल ब्राह्मण संध्या वंदनादिक नित्यकर्मोंमे बहुत शिथिल रहता था, तथा कामी भी अधिक था, इसलिए सत्यभामाके चित्तपर इसके कुलका संदेह सदा बना रहता था।

इधर धरणीजड़ने सुना कि कपिल किसी धनाढ्यके यहाँ विवाहा गया है और वहाँ इसकी अच्छी प्रतिष्ठा है, इसलिए उससे कुछ द्रव्य लाना चाहिए। ऐसा विचार कर धरणीजड़ रत्नसंचयपुर पहुँचा और कपिलने इसका सत्कार किया और सब जगह प्रसिद्ध कर दिया कि ये मेरे पिता है। धरणीजड़ भी कपिलके घर आनन्दसे रहने लगा।

एक दिन जब कि कपिल किसी कामके लिए कहीं बाहर गया था, कपिलकी स्त्री सत्यभामाने धरिणीजड़को बहुतसा धन देकर पूछा—श्वसुरजी, सच कहिए कपिलकी क्या जाति है? धरिणीजड़ने यथार्थ कह दिया कि वह दासीपुत्र है। यह सुनकर सत्यभामाने दरबारमें जाकर राजासे अपने पतिका सब समाचार कहा कि यह यथार्थमें दासीपुत्र है। परन्तु यहाँ उच्च कुलीन बनकर इसने मेरे साथ विवाह कर लिया है। जब राजाको साक्षी आदिसे निर्णय हो गया कि सचमुच कपिलने अन्याय किया है, तब उन्होंने उसे गधेपर चढ़ा पीछे ढोल बजवाते हुए सब शहरमे फिरा देशसे बाहर निकलवा दिया। सत्यभामा राजमहलमे ही रहने लगी।

एक दिन श्रीअनन्तगति और अरिंजय दो चारणमुनि आहार लेनेके लिए राजमहलमें पधारे। राजाने दोनोंका पड़गाहन किया। मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक शुद्ध आहार दिया। और उसकी दोनो रानियो और सत्यभामा ब्राह्मणीने उस दानकी अनुमोदना की।

एक दिन एक अनन्तमती नामकी वेश्याके लिए राजाके दोनो पुत्र इन्द्र और उपेन्द्र परस्पर लड़ने लगे।

राजाने दोनोको लड़नेसे रोका, परन्तु न किसीने माना और न लड़ना छोड़ा, इसलिए उनसे दुःखी होकर राजाने, उसकी दोनों रानियोंने और सत्यभामा ब्राह्मणीने विषपुष्प सूँघ लिया, जिससे सबके सब सदाके लिए सो गये। राजाने श्रीमुनिराजको आहार दिया था और इन तीनोने उसकी अनुमोदना की थी, इसलिए राजा तो धातकीखंड द्वीपके पूर्व मंदराचलकी (पूर्वमेरुकी) उत्तम भोगभूमिमें आर्य हुआ और सिंहनदिता रानी उसकी आर्या हुई। अनिंदिताका जीव स्त्रीत्वको नाशकर उसी भोगभूमिमे आर्य हुआ और ब्राह्मणीका जीव उसकी पत्नी आर्या हुई। इस तरह चारो जीव उसी उत्तम भोगभूमिमे उत्पन्न हुए। पानकांग जो श्रीखंड आदि पानक वस्तु देवे, तूर्यांग जो वाद्यविशेष देवें, भूषणाङ्ग जो नाना प्रकारके भूषण देवे, ज्योतिरंग जो अनेक प्रकारके प्रकाश देनेकी शक्ति रखते हो, गृहांग जो इच्छानुसार मकान प्रदान करें, भाजनांग जो थाली लोटा आदि पात्र देवे, दीपांग जो दीपक देवें, माल्यांग जो हार माला आदि देवे, भोजनांग जो नाना प्रकारके भोजन व्यंजन देवें और वस्त्रांग जो अनेक प्रकारके वस्त्र देवे। इस प्रकार दश तरहके कल्पवृक्ष होते है। सो ये चारों जीव इन कल्पवृक्षोके फलोका उपभोग करते हुए सब तरहकी आधि व्याधि दुःखादिकसे रहित केवल सुखका ही अनुभव करने लगे। तीन पल्यतक बराबर सुखोंका अनुभव किया। आयु पूर्ण होनेपर राजा श्रीषेणका जीव सौधर्म स्वर्गके श्रीप्रभ विमानमें श्रीप्रभ नामका देव हुआ। वहाँके अनेक सुख भोगकर आयु पूर्ण होनेपर इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमे विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके रथनूपुर नगरके राजा अर्ककीर्ति रानी रश्मिमालाके अमिततेज नामका पुत्र हुआ। उसने विद्याधर कुलमें उत्पन्न होनेसे अनेक विद्या साधन की। चक्ररत्नका स्वामी हुआ। जिसके संबन्धसे नौ निधि और तेरह रत्न मिले। बहुत काल तक छः खंडका राज्य किया। अन्तमे सब परिग्रह छोड़ घोर तप किया, जिसके फलसे वह आनत स्वर्गके नंदभ्रमण विमानमें मणिचूड़ नामका देव हुआ। पश्चात् जब आयु पूरी हो गई, तब वहाँसे चयकर इसी भरतक्षेत्रके पूर्व विदेहक्षेत्रमें वत्सकावती देशमें प्रभाकरीपुर नगरके राजा स्तिमित-सागर रानी वसुंधराके अपराजित पुत्र हुआ, जिसने बलदेवकी पदवी पाई। चिरकाल तक राज्य करके अन्तमें मुनिव्रत धारण किये। सन्यास मरणकर अच्युत स्वर्गमे देव हुआ। वहाँसे चयकर इसी द्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमे मंगलावती देशके

अन्तर्गत रत्नसंचयपुरके महाराज तीर्थंकरपदके धारक क्षेमंधर रानी हेमचित्राके वज्रायुध नामका पुत्र हुआ। सकल-चक्रवर्ती होकर चिरकालतक राज्य किया। अन्तमें सकलव्रती होकर शरीर छोड़ा और उपरिम ग्रैवेयकके प्रथम सौमनस विमानमें अहमिन्द्र हुआ। वहाँसे भी चयकर इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें पुष्कलावती देशके पुंडरीकिणी नगरीके तीर्थंकर पदके धारक महाराज अभ्ररथ रानी मनोहरीके मेघरथ नामका पुत्र हुआ। उसने महामंडलेश्वर राजा होकर भी अन्तमें सब विभूति जीर्ण वस्त्रवत् छोड़कर जिनमुद्रा धारणकर सन्याससे शरीर छोड़ा, जिससे सर्वार्थसिद्धि विमानमे अहमिन्द्र हुआ। वहाँसे चयकर इसी भरतक्षेत्रके आर्यखंडमें कुरुजांगल देशके हस्तिनागपुरमें राजा विश्वसेन रानी ऐराके श्रीशान्तिनाथ सोलहवें तीर्थंकर हुए। जिनका गर्भ कल्याणक और जन्म कल्याणक इन्द्रने बड़े समारोहसे किया। कामदेव और चक्रवर्त्तीका पद प्राप्त किया। स्वयं दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्त कर अनेक जीवोंको मोक्ष मार्ग बतलाकर अन्तमे वे मुक्तिलक्ष्मीमे सदाके लिए रत हुए। सिंहनंदिता, अनिंदिता और सत्यभामा ब्राह्मणीके जीव दोनो लोकोंके सुखोका अनुभव कर अन्तमें मुक्त हुए।

इस कथामे केवल दान देनेका ही फल संक्षेपसे दिखाया गया है। इसका सविस्तार वर्णन श्रीशान्तिनाथ चरित्रमे किया गया है।

इस प्रकार एक मिथ्यादृष्टिने केवल एक वार ही दान देकर उसके फलस्वरूप बारह भवतक अनुपमेय अनेक सुखोका अनुभव किया और अन्तमें वह अजर अमर मुक्त हुआ। यदि सम्यग्दृष्टि नवधा भक्तिसे दान देवे, तो क्या वह मुक्तिवल्लभ (मोक्ष लक्ष्मीका स्वामी) नही होगा? अवश्य होगा।

(२) राजा वज्रजंघकी कथा।

इसी जम्बूद्वीपके अपरविदेहमे गंधिल देशकी उत्तरश्रेणीमें एक अलकापुर नगर था। वहाँके राजा अतिवल रानी

१ यह कथा आदिपुराणमे प्रसिद्ध है।

मेनाहरीके एक महाबल पुत्र था। सो राजा अतिबल महाबलको राज्य देकर महामुनि हो गये। उन्होंने घोर तपश्चरण करके केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्तमे मुक्ति भवनकी राह ली।

इधर महाबल विद्याधर चक्रवर्त्ती होकर महामति, संभिन्नमति, सततमति, और स्वयंबुद्ध इन चार मन्त्रियोके साथ राज्य करने लगा।

एक दिन जब कि राजाके यहाँ कोई बड़ा भारी उत्सव[1] हो रहा था, स्वयंबुद्ध मन्त्रीने कहा;-राजन्, आपका यह सब विभव ऐश्वर्य धर्मसे हुआ है। इन सबका मूलकारण धर्म है, इसलिए ऐसे उत्सवके समय कोई न कोई धर्म अवश्य करना चाहिए। स्वयंबुद्धके कह चुकनेपर शेप तीनो मन्त्रियोने जो कि तीनो ही शून्यवादी[2] थे, राजासे कहा;-महाराज, धर्मका चितवन तो तब किया जा सकता है, जब कोई धर्मी हो। परन्तु जब कोई धर्मी (धर्मका आधारभूत) ही नही है, तब धर्म कहाँ रह सकता है? सबसे प्रथम तो यह सिद्ध होना चाहिए कि जीव परलोकसे आता है और परलोकको जाता है या नहीं? अर्थात् जन्म लेनेसे पहिले जीव था या नहीं? और मरनेके पीछे जीवित रहेगा या नहीं? इस-प्रकार जब जीवकी पहली पिछली अवस्था सिद्ध हो जाय, तब परलोकका चिंतवन करना उचित होगा। हे राजन्, जीव कोई पदार्थ ही नहीं है, फिर धर्म किसके लिए और क्यों करना चाहिए? इस प्रकार तीनों मन्त्रियोंने क्रमसे कहा और तीनोने जीवके अस्तित्वका खंडन कर दिया। तब स्वयंबुद्ध मन्त्रीने जिनका कोई भी खंडन न कर सके ऐसी युक्तियो और प्रमाणोंसे उन मन्त्रियोंके कहे हुए वचनोंका खंडन करके जीवका अस्तित्व बड़ी योग्यताके साथ निरूपण किया। स्वयंबुद्धने जीवके अस्तित्व सिद्ध करनेमें दृष्टान्तरूप एक ऐसी कथा कही, जो देखी सुनी और अनुभव की हुई थी। वह इस प्रकार है-

१ यह उत्सव महाराज महाबलके जन्म दिवसका था। २ इनमेसे एक भूतवादी दूसरा बौद्ध और तीसरा ब्रह्मवादी था। आदपुराणमे इनका एक अच्छा शास्त्रार्थ लिखा है।

पूर्वकालमें इसी गद्दीका स्वामी एक अरविंद नामका राजा हुआ था। उसकी रानीका नाम विजया था। उसके हरिश्चन्द्र और कुरुविंद नामके दो पुत्र थे। एक दिन महाराज अरविन्दको बड़ा भारी दाहज्वर उत्पन्न हुआ। सब शरीर जलने लगा। तब उसने अपने पुत्र हरिश्चन्द्रसे कहा:-पुत्र, मेरा शरीर जला जा रहा है, मुझे किसी शीत प्रदेशमें ले चल। तब हरिश्चन्द्रने अपने पिताका शीत उपचार करनेके लिए जल वरसानेवाली विद्या भेजी। परन्तु वह जलवर्षिणी विद्या भी उसका कुछ शीतोपचार न कर सकी। उसे अत्यन्त दुःख होने लगा। दैवयोगसे उस समय उसके समीप ही दो छिपकलियाँ आपसमें लड़ने लगीं। अतिशय क्रुद्ध होकर एकने दूसरेपर ऐसी चोट की कि उसके रुधिर वहने लगा और उसकी दो चार बूँदे राजाके शरीरपर पड़ीं, जिससे उसे कुछ थोड़ीसी शान्ति प्राप्त हुई। राजा अरविन्दके अतिरौद्र परिणाम थे, इसलिए उसे विभंगावधि ज्ञान पहले ही हो चुका था। उसके द्वारा उसे विदित हो गया कि अमुक वनमें हरिणोंका निवास है। सो उसने अपने पुत्रको आज्ञा दी:-अमुक वनमेंसे हरिणोंको मारकर उनके रुधिरसे एक बड़ी वापिका भरो। उसमें क्रीड़ा करनेसे मेरा यह रोग दूर हो जायगा। अन्यथा जीवित रहनेका दूसरा कोई उपाय नहीं है। हरिश्चंद्र पिताकी भक्तिवश वनमें जा हरिणोंको पकड़ने लगा। वहाँ एक मुनि महाराज विराजमान थे, वे उसे रोककर कहने लगे-अरे, इस व्यर्थ महापापको क्यों अपने शिरपर रखता है? तेरे पिताकी आयु थोड़ी रह गई है, वह मरकर नरक जानेवाला है। तब राजकुमारने पूछा;-महाराज, मेरा पिता ऐसा ज्ञानी है, वह भी क्या नरक जायगा? मुनिराज बोले;-तेरा पिता अपने ज्ञानसे पापके कारणोंको तो जानता है, परन्तु पुण्यके कारणोंको नहीं जानता। तुझे विश्वास न हो तो जाकर उससे पूछ कि वनमें इस समय हरिणोंके सिवाय और कौन है? यदि मुझे इस वनमें बैठा हुआ जान लेवे तो वास्तवमें तेरा पिता ज्ञानी हो सकता है, अन्यथा नहीं। हरिश्चंद्रने तदनुसार अपने पितासे जाकर पूछा। उसने कहा-मैं नहीं कह सकता कि वनमें और कौन है! हरिश्चन्द्रको मुनिवचनोंमें श्रद्धान हो गया। पीछे उसने पिताकी आज्ञा पूरी करनेके लिए एक वापिका लाखके रससे भरवा दी। तब अरविंदने आनन्दके साथ उसमें क्रीड़ा की। पश्चात् उसीमें जलको जब वह पीने लगा, तब मालूम हो गया कि वह तो लाखका पानी

है। अतः चिल्लाकर कहने लगा—अरे, इसने मेरे घाव कर दिये! घाव कर दिये! और क्रोधित हो, हाथमें छुरी ले, हरिश्चन्द्रके मारनेके लिए दौड़ा, परन्तु दौड़ते समय ठोकर खाकर अपनी छुरीपर गिर पड़ा और मरकर नरकमें पहुँचा।

इतना कह स्वयंबुद्ध कहने लगा—इस कथाको नगरके सब वृद्ध पुरुष जानते और कहते हैं। तथा और भी सुनिए—इसी गद्दीका स्वामी एक दंडक राजा हुआ था, जिसकी रानीका नाम सुन्दरी और पुत्रका नाम मणिमाली था। दण्डक राजा मरकर अपने खजानेमें सर्प हुआ था। जब मणिमाली खजानेमें कुछ लेनेके लिए जाता तब वह सर्प कुछ भी बाधा नहीं देता था, परन्तु जब कोई दूसरा पुरुष उसके भीतर जाता, तो वह उसको काटने दौड़ता था। एक दिन राजा मणिमालीने एक रतिचरण नामके अवधिज्ञानीसे इस सर्पका वृत्तान्त पूछा। मुनि महाराजने कहा—तेरा पिता दण्डक मरकर यह सर्प हुआ है, इसलिए खजानेमें किसी दूसरेको नहीं जाने देता। तब राजा मणिमालीने उस सर्पको बहुत प्रकारसे समझाया। जिससे उसने अणुव्रत ग्रहण कर लिये। पीछे आयुका अन्त होनेपर वह सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। वहाँ जब उसने अवधिज्ञानसे पूर्व भवकी सब बात जान ली, तब उसी समय आकर दिव्य वस्त्र दिव्य आभरणादिकसे मणिमालीका सत्कार किया। ये आभरणादिक जो कि महाराज महाबलने धारण किये हैं, क्या वे ही आभरण नहीं हैं? क्या इन कथाओंसे भी जो कि आप लोगोंके अनुभवगोचर हुई हैं, यह सिद्ध नहीं होता कि जीव मरकर कहीं दूसरी जगह जन्म लेता है? अथवा मैं एक कथा और कहता हूँ, जो कि आपकी देखी हुई और अनुभव की हुई है। वह यह कि इन महाराज महाबलके पिताके पितामह महाराज सहस्रबल अपने पुत्र शतबलको राज्य देकर दीक्षित हुए और अष्ट कर्मको नाशकर मोक्ष पधारे। महाराज शतबल भी अपने पुत्र अतिबलको राज्य दे दीक्षित हुए और आयु पूर्ण होनेपर माहेन्द्र नामके चौथे स्वर्गमें देव हुए। और महाराज अतिबलने इन वर्त्तमान महाराज महाबलको राज्य दे मुनिव्रत धारण किये। एक बार जब महाराज महाबलकी कुमारावस्था थी, तब हम चारों ही (मन्त्री) इनके साथ खेलनेके लिए मेरुपर्वतपर गये। जिनालयमें जाकर श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा स्तुति की। पूजा करनेके पीछे जब ये मंदिरसे निकल रहे थे, तब एक माहेन्द्र स्वर्गके देवने इन महाराजको

देखकर "तुम मेरे नाती हो" ऐसा कह दिव्य वस्त्रादिक दिये थे। उस समय इन सबने उसको देखा था। और जब शतबलके पिता सहस्रबलको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था और देवोंका समूह उनकी पूजा करनेके लिए आया था, तब हम सबने उसको देखा था। इन प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे क्या यह सिद्ध नहीं होता है कि जीव कोई पदार्थ है और वह जन्मसे पहले तथा मरनेके पश्चात् भी जीवित रहता है? इस प्रकार स्वयंबुद्धने अनेक तरहसे जीवकी सिद्धिका निरूपण किया। कोई भी उसकी युक्तियोंका खंडन न कर सका और न उसके प्रश्नोंका उत्तर ही दे सका। तब महाबलने एक जयपत्र लिखकर स्वयंबुद्धको दिया। परन्तु उन्हें स्वयं धर्ममें निष्ठा नहीं हुई। धीरे धीरे ज्यों ज्यों काल जाने लगा, त्यों त्यों वृद्धावस्था बढ़ने लगी।

एक दिन स्वयंबुद्ध मन्त्री सुमेरु पर्वतपर वंदना करनेके लिए गया। वहाँ भक्तिपूर्वक श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा करके जब वह अपने नगरको लौटने लगा, तब विदेह क्षेत्रकी सीता नदीके उत्तर तटकी ओर कच्छा देशके अरिष्टपुर नगरमें विराजमान श्रीयुगंधर तीर्थंकरके समवसरणसे लौटते हुए दो चारण मुनि आकाशमार्गमें उतरे, जिनका नाम आदित्यगति और अरिंजय था। स्वयंबुद्धने दोनों मुनिराजोंको नमस्कार कर पूछा—महाराज, राजा महाबल धर्मग्रहण क्यों नहीं करता है? श्रीमुनिने कहा—इसका कारण उसके पूर्व भवसे ज्ञात होगा, इसलिए उसके पूर्व भवोंका वृत्तान्त सुनो;—

इसी गंधिलदेशके आर्य खंडमें सिंहपुर नगरके राजा श्रीषेण रानी सुंदरीके दो पुत्र थे। एकका नाम जयवर्मा और दूसरेका श्रीवर्मा था। जब महाराज श्रीषेणने जिनदीक्षा ली तो उसने यह विचार कर कि बड़ा पुत्र जयवर्मा राज्य करनेके योग्य बुद्धिमान् नहीं होगा, छोटे पुत्र श्रीवर्माको राज्य दिया। अपने छोटे भाईको राज्य देनेसे जयवर्माको वैराग्य उत्पन्न हुआ, इसलिए उसने स्वयंप्रभाचार्यके समीप जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। वह उस समय केशलोंच करके किसी बिलमें रखता था कि एक सर्पने उसे डँस लिया। उसी समय एक महीधर विद्याधर अपने विमानमें बैठकर कहीं जा रहा था, सो उसे देखकर जयवर्माने निदान किया कि मैंने जो यह तप किया है, इसके प्रभावसे मैं विद्याधर होऊँ। इसी निदानसे जयवर्माका जीव राजा महाबल हुआ है। सो निदानके दोषसे वह भोगादिक सामग्रीको नहीं छोड़ सकता है।

एक बात और है। कल रात्रिको उसने एक स्वप्न देखा है कि महामति आदिक तीनों मंत्रियोंने उसे एक बड़े कीचड़में डाल दिया है और तुमने उस कीचड़से निकालकर स्नान कराया है। और फिर सिंहासनपर विराजमान करके उसकी पूजा की है। यह स्वप्न सुनानेके लिए इस समय वह तुम्हारी खोज कर रहा है। अपने स्वप्नको वह तुमसे कहे, इसके पहले ही तुम उसे सुना देना। ऐसा करनेसे उसे विश्वास हो जावेगा और वह धर्मग्रहण कर लेगा। यह भी स्मरण रहे कि अब उसकी आयु केवल एक महीनेकी शेष रह गई है। स्वयंबुद्ध मंत्री इस प्रकार मुनिराजके कहे हुए वचनोंको सुन उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अपने नगरमें आया और राजासे मिलते ही उसने वह स्वप्न जो राजाने रात्रिमें देखा था, ज्योंका त्यों सुनाया। यह भी जतला दिया कि आपकी आयु केवल एक महीनेकी रह गई है। सुनकर राजा महाबल परम उदासीन हो गया। अपने पुत्र अतिबलको राज्य दे उसने जितने जिनमंदिर थे, उन सबमें अष्टाह्निकाकी पूजा कराई। और श्रीसिद्धकूटपर जाकर सब स्वजन परिजनको विदाकर सर्व परिग्रहका त्याग किया। भगवानके उपदेशानुसार केशोंका लौंचकर वह परम दिगम्बर हो गया। बाईस दिनतक प्रायोपगमन सन्यास धारण किया। अन्तमें शरीर छोड़, दूसरे ईशान स्वर्गके स्वयंप्रभ विमानमें ललितांग नामका महाऋद्धिका धारक देव हुआ। उसके स्वयंप्रभा, कनकमाला, कनकलता और विद्युल्लता ये चार महादेवियाँ हुई। ललितांग देवकी आयु दो सागरकी और देवियोंकी आयु पाँच पाँच पल्यकी थी। सो पाँच पाँच पल्य पीछे अन्यान्य देवी आकर उत्पन्न होती थीं, परन्तु उनके नाम यही स्वयंप्रभादि होते थे। जब इस देवकी आयु पाँच पल्य ही शेष रही, उस समय जो देवी उत्पन्न हुई, उनमेंसे एक स्वयंप्रभा देवी उसे अतिशय प्रिय हुई। उसके साथ आनन्दसे क्रीड़ा करते हुए जब ललितांगकी आयु छः महीनेकी रह गई और मरणके चिन्ह (मालाका मुरझाना आदि) दीखने लगे, तब वह बहुत दुःखी हुआ। दूसरे देवोंने बहुत समझाया, परन्तु उसका चित्त शान्त न हुआ। व्याकुल परिणामोंसे ही शरीर छोड़ वह यहाँ पूर्व विदेहक्षेत्रके पुष्कलावती देशमें उत्पलखेटपुरके राजा वज्रबाहु रानी वसुंधराके वज्रजंघ नामका पुत्र हुआ। और स्वयंप्रभा वहाँसे चयकर उसी देशकी पुंडरीकिणी नगरीके राजा वज्रदन्त रानी लक्ष्मीमतीके श्रीमती पुत्री हुई और क्रमसे यौवनावस्थाको प्राप्त हुई।

एक दिन राजा वज्रदंत अपनी सभामें बैठा था कि दो पुरुषोंने आकर निवेदन किया–महाराज, आपके पिता भगवान् यशोधर तीर्थंकरको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। दूसरेने कहाः–महाराज, आपकी आयुधशालामे चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है। उसी समय एक और किसी सखीने आकर खबर दी;–महाराज, देवोंका आगमन देख, आपकी पुत्री श्रीमती मूर्छित हो गई है। तब महाराज सखीसे यह कहकर कि 'शीतल वस्तुओंके द्वारा उसका शीतोपचार करो' पहले श्रीयशोधर तीर्थंकरके समवसरणमें उनकी वंदनाके लिए गये। वहाँ उन्होंने बड़ी भक्ति और विशुद्ध परिणामोंसे श्रीकेवली भगवानकी पूजा और स्तुति की। तब विशुद्ध परिणामोंके होनेसे उन्हें देशावधि ज्ञान हो गया। वहाँसे लौटकर वे फिर दिग्विजय करनेको निकले और थोड़े ही दिनमे समस्त छः खंडको जीत लौट आये। इधर श्रीमती मूर्छारहित हो मौनव्रतसे रहने लगी। एक दिन उसकी पंडिताने मौनका कारण पूछा। उसने कहा;–देवोंका आगमन देख मुझे अपने पहले भवोंकी स्मृति हो आई थी और इसीलिए मै मौनव्रतसे रहती हूँ। तब पंडिताने कहा–पूर्व भवान्तरोंकी कथा संक्षेपरूपमे मुझसे कहो। श्रीमती कहने लगी;–पंडिते, धातकीखंड द्वीपमें जो पूर्व मंदराचल है, उसके पश्चिम विदेहक्षेत्रमे एक गंधिल नामका देश है, जिसके पाटली ग्राममे एक नागदत्त नामका वैश्य रहता था। उसकी स्त्रीका नाम वसुमती था। उसके पाँच पुत्र थे जिनका नाम क्रमसे आनन्दी, नंदिमित्र, नंदिसेन, वरसेन, और जयसेन था। पुत्रोंके पीछे दो पुत्रियाँ और हुईं, जिनका नाम मदनकान्ता और श्रीकान्ता था। उन सबके पीछे मै आठवीं पुत्री जब माताके गर्भमें आई, तब ही मेरे पिताका देहान्त हो गया। पश्चात् जब मैने जन्म लिया तो मेरे सब भाई और दोनो बहिने मर गईं। इतनेसे ही शान्ति नहीं हुई। कुछ ही दिनमे मेरी नानी और मा भी इस संसारसे चल बसी। तब मेरा नाम निर्नामिका रक्खा गया। एक दिन मै बहुत दुःखी होकर वनमें गई। वहाँ एक अम्बरतिलक पर्वत था। उसपर चढ़कर मैने देखा कि श्रीपिहितास्रव मुनि पाँचसौ चारण मुनियोंके साथ विराजमान है। मैने उनसे नमस्कार कर पूछा कि मै किस कारणसे ऐसी दुःखित और कुटुम्बरहित हुई हूँ? श्रीमुनिराज बोले–इसी देशमे एक पलालकूट ग्राम था। उसमें एक देवल नामका ग्रामकूटक रहता था जिसके वसुमति नामकी स्त्री और नागश्री नामकी कन्या

एक दिन श्रीसमाधिगुप्त मुनि उसी वटवृक्षकी
थी। नागश्रीकी क्रीड़ा करनेकी जगहपर एक पुराना वटवृक्ष था। उन्हें जोरसे पढ़ते हुए देख नागश्री जो कि वहाँ खेल
कोटरमें (खोखटमें) वैठकर परमागमका अध्ययन कर रहे थे। उसने एक सड़े हुए कुत्तेको उस वटवृक्षके नीचे लाकर
रही थी अप्रसन्न हुई और उनका पढ़ना वंद करनेके लिए इस कार्यसे तूने अपनी ही आत्माको अनन्त दुःखका कारण
पटक दिया। श्रीमुनिराजने यह देख नागश्रीसे कहा-पुत्री, उसने उस मरे हुए कुत्तेको वहाँसे हटा दिया और
बना लिया है। यह सुन नागश्रीको कुछ भय हुआ, इसलिए आयुके अन्त होनेपर मरकर निर्नामिका
श्रीमुनिराजको नमस्कार कर क्षमा माँग अपने घर गई और कुछ दिनोंमें उसीके प्रभावसे तू मनुष्य
हुई है। तूने जो मुनिराजसे क्षमा प्रार्थना की थी और अपने परिणाम शान्त रक्खे थे, आदि वहुतसे व्रत धारण
योनिमें उत्पन्न हुई है। श्रीमुनिराजके मुखसे अपने पूर्व भव सुन मैंने कनकावली, मुक्तावली स्वयंप्रभा देवी हुई।
किये। पश्चात् आयु पूरी करके मैं सौधर्म स्वर्गके श्रीप्रभविमानमें ललितांग देवकी नियोगिनी परन्तु अब वह
वहाँपर जब मेरी छः महीनेकी आयु शेष रह गई थी, तब ललितांग देव वहाँसे च्युत हुआ था। मुझे वही वर
कहाँ उत्पन्न हुआ है, यह मुझे विदित नहीं है। इतना कह, फिर श्रीमतीने कहा-यदि इस भवमें भी अपनी पंडिताको यह
मिलेगा तो विषयभोग सेवन करूँगी और जीवित रहूँगी, अन्यथा नहीं। यही मेरी प्रतिज्ञा है। देखती हुई रहने लगी।
सब सुना श्रीमती ललितांग देव और स्वयंप्रभाका चित्र एक पटपर चित्रित करके उसको पंडिता ललितांग और

वज्रदंत चक्रवर्ती छहो खंड पृथिवीको जीतकर जब अपने नगरमें आया, तब श्रीमतीकी क्षत्रियोमेंसे
स्वयंप्रभाका चित्रपट लेकर इस अभिप्रायसे निकली कि कदाचित् इसे देखकर चक्रवर्तीके साथ आये हुए जिनालयमें
किसीको जातिस्मरण हो जाय। और ललितांगके जीवका पता लग जावे फिर उस चित्रपटको महापूत लटका दिया
जो कि अति उत्कृष्ट और पूज्य गिना जाता था और जिसमें वहुधा सब लोग आते थे, चौड़ी जगहमें देख पड़ता था।
और आप ऐसे स्थानमें वैठ गई कि जहाँसे वह चित्रपट और उसका देखनेवाला अच्छी तरहसे गई। वज्रदंतने उसे

इधर चक्रवर्ती जब महलमें पहुँचे तो श्रीमती अपने पिताको नमस्कार कर उनके समीप वैठ

उदासमुख देख कहा—पुत्री, तू चिन्ता मत कर, तुझसे तेरे पतिका मिलाप अवश्य होगा। कदाचित् तुझे यह शङ्का हो कि मुझे यह कैसे मालूम हुआ तो उसका समाधान यह है कि तेरे और मेरे दोनोंके गुरु एक ही थे, जिनका नाम पिहितास्रव था। श्रीमतीने पूछा—कैसे? चक्रवर्तीने कहा—मैं अवसे पाँच भव पहले इसी पुंडरीकिणी नगरीमें अर्द्धचक्रीका पुत्र चन्द्रकीर्ति हुआ था। उस भवमें एक मेरा मित्र था, जिसका नाम जयकीर्ति था। दोनोंने श्रावकोंके व्रत बड़ी प्रीति और भक्तिसे पाले। पश्चात् प्रीतिवर्द्धन नामके उद्यानमें श्रीचन्द्रसेनाचार्यके समीप दीक्षा ग्रहण की और उन्हींके निकट सन्यास धारण कर चौथे माहेन्द्रस्वर्गमें देव हुए। फिर वहाँसे चयकर चन्द्रकीर्त्तिका जीव पुष्करद्वीपके पूर्व मंदराचलके पूर्व विदेहक्षेत्रमे मंगलावती देशके अन्तर्गत रत्नसंचयपुर नगरके राजा श्रीधर रानी मनोहरीके वलदेव पदका धारक श्रीवर्मा नामका पुत्र हुआ और जयकीर्तिका जीव वहाँसे चयकर उसी राजाकी दूसरी श्रीमती रानीके विभीषण पुत्र हुआ, जिसको नारायणकी पदवी मिली। महाराज श्रीधर इन दोनोंको राज्य देकर आप श्रीसुधर्म मुनिके समीप दीक्षित हुए। घोर तप करके मुक्ति पधारे। रानी मनोहरी अपने पुत्र श्रीवर्माके अतिमोहसे आर्यिकाके व्रत धारण न कर सकी। घरमें ही श्राविकाके व्रत पालकर उसने सन्यासपूर्वक शरीर छोड़ा, जिसके प्रभावसे स्त्रीलिंग छेदकर ईशान स्वर्गके श्रीप्रभविमानमें ललितांग देव हुई।

इधर नारायण विभीषण और वलदेव श्रीवर्मा दोनों ही सुखसे राज्य करने लगे। जब वासुदेवकी आयु पूरी हो चुकी और वे प्राणान्त हो गये, तब श्रीवर्मा (वलदेव) उनके अत्यन्त गाढ़ स्नेहसे पागल सदृश हो गया। उस समय उसकी माताके जीव ललितांग देवने आकर वहुत कुछ समझाया। जिससे श्रीवर्माको ज्ञान उत्पन्न हो गया, इसलिए वह अपने पुत्र भूपालको राज्य देकर दश हजार राजाओंके साथ श्रीयुंगधर स्वामीके निकट दीक्षित हो गया। और आयु पूर्ण होनेपर सन्याससहित शरीर छोड़कर सोलहवे अच्युत स्वर्गका इन्द्र हुआ। सो अवधिज्ञानसे ललितांग देवके उपकारका स्मरण करके कृतज्ञता दिखलानेके लिए उसे अपने स्वर्गमें ले गया। वहाँ उसकी पूजा स्तुतिसे योग्य सत्कार किया गया।

ललितांग देव वहाँसे चय इसी द्वीपमे मंगलावती देशके विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तरश्रेणीमे गंधर्वपुर नगरके राजा वासव रानी प्रभावतीके महीधर नामका पुत्र हुआ। महाराज वासवने उसे राज्य दे श्रीअरिंजय आचार्यके समीप अनेक भव्य जीवोंके साथ दीक्षा ग्रहण की और अनुक्रमसे मुक्ति पाई। रानी प्रभावतीने पद्मावती आर्यिकाके निकट दीक्षा ग्रहण की और समाधिमरणसे शरीर छोड़ स्त्रीलिंग छेद सोलहवें अच्युत स्वर्गमे प्रतीन्द्रका पद पाया।

एक समय पुष्करद्वीपमे पश्चिम मंदाराचलके पूर्व विदेहक्षेत्रमें वत्सकावती देशके अंतर्गत प्रभाकरी नगरीमें श्रीविनयंधर भट्टारकको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। सब देव उनकी पूजा करनेके लिए आये। और उसी समय राजा महीधर उसी मंदराचलके चैत्यालयोंकी पूजा वंदना करनेके लिए आया। उसे देख अच्युत स्वर्गके इन्द्रने कहा—महीधर, क्या तुम मुझे जानते हो? महीधरने कहा—नहीं। तब अच्युतेन्द्र बोला—जिस भवमें तुम मनोहरी हुए थे और मै तुम्हारा पुत्र श्रीवर्मा हुआ था। तथा तुमने जब मनोहरीकी पर्याय छोड़ ललितांग देवकी पर्याय धारण की थी, उस समय मुझे समझाया था, इसलिए वहाँसे च्युत हो मैने अच्युतेन्द्रकी पर्याय पाकर तुम्हारा उपकार स्मरण करनेके लिए अपने स्वर्गमें लाकर तुम्हारा एक वार पूजन सत्कार किया था। मैं वही अच्युतेन्द्र हूँ। अच्युतेन्द्रके मुखसे अपने पूर्व भव सुनकर महीधरको जातिस्मरण हुआ, इसलिए उसने अपने पुत्र महीकंपको राज्य दे श्रीजगन्नन्दनाचार्यके समीप दीक्षा ग्रहण की। पश्चात् समाधिसहित शरीर छोड़ चौदहवे प्राणत स्वर्गमें इन्द्र हुआ। वहाँसे चयकर धातकीखंडद्वीपके पूर्व मंदराचल पर्वतके पश्चिम विदेह क्षेत्रमे गंधिल देशके अन्तर्गत अयोध्या नगरके राजा जयवर्मा रानी सुप्रभाके अजितंजय पुत्र हुआ। जयवर्माने चिरकाल तक राज्य करके उसे राज्य दे अभिनन्दन मुनिके निकट दीक्षा ले ली। और अष्ट कर्मोंका नाश कर मुक्ति प्राप्त की। इधर रानी सुप्रभाने सुदर्शना आर्यिकाके समीप आर्यिकाके व्रत धारण किये और घोर तपकर स्त्री पर्याय छेद अच्युत स्वर्गमे देवकी पर्याय पाई।

एक दिन महाराज अजितंजयने अभिनन्दन केवलीकी मन वचन कायकी शुद्धिसे पूजा की, जिसके प्रभावसे

उनके पूर्व पापास्रवजन्य कर्म शान्त और नष्ट हो गये। इससे उनका नाम पिहितास्रव पड़ गया। पीछे महाराज पिहितास्रवको (अजितंजयको) सकलचक्रवर्तीकी विभूति भी प्राप्त हो गई।

एक दिन अच्युत स्वर्गके इन्द्रने आकर अजितंजय चक्रवर्तीको कुछ उपदेश दिया और समझाया। जिसका फल यह हुआ कि उन्होंने अपने पुत्रको राज्य दे वीस हजार राजपुत्रोंके साथ श्रीमंदरधैर्य मुनिके समीप जिनदीक्षा धारण की। तपके प्रभावसे चारण ऋद्धि प्राप्तकर चारण मुनि कहलाये। वे पिहितास्रव चारणमुनि जब कि पाँचसौ चारण मुनियोंके साथ अम्बरगिरि पर्वतपर विराजमान थे, तब तूने (जब कि तेरी निर्नामिका पर्याय थी) उनकी वंदना की थी। और अच्युतेन्द्रका जीव महाराज यशोधर तीर्थंकर रानी वसुमतीके मै (वज्रदन्त) उत्पन्न हुआ। सो पिहितास्रवका जीव जब कि ललितांग था, उस समय उसने मुझको जब कि मै श्रीवर्मा बलदेव था समझाया था इसलिए पिहितास्रव मेरे भी गुरु हुए।

श्रीप्रभविमानमें एक सरीखे पुण्यके धारक तुम समेत बाईस ललितांग हुए थे। तब मैने (अच्युतेन्द्रके जीवने) अपने स्वर्गमे ले जाकर उन सबका पूजन सत्कार किया था। क्यों तुझे याद है न? श्रीपिहितास्रव भट्टारकके केवल कल्याण और निर्वाण कल्याणके समय मैने, तूने तथा ललितांग आदि देवोंने अंबरगिरि पर्वतपर उनकी पूजा की थी। क्यों स्मरण है? और भी सुन; तेरे ललितांग देवने, तूने (स्वयंप्रभाने), ब्रह्मस्वर्गके इन्द्रने, लांतव स्वर्गके इन्द्रने और मैने मिलकर श्रीयुगंधर तीर्थंकरका चरित्र उनके गणधरसे पूछा था। गणधरने कहा था कि जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमे एक वत्सकावती देश है। उसके सुसीमा नगरमे राजा अजितंजय अपनी स्त्री सत्यभामा सहित राज्य करता था। उसके अमितगति नामका मंत्री तथा प्रहसित और विकसित नामके दो पुत्र थे। दोनोहीको शास्त्रका अधिक अभिमान था। इससे दोनो ही उद्धत हो रहे थे। एक दिन उस नगरमे श्रीमतिसागर मुनि पधारे। सो सब लोग उनकी वंदना करनेके लिए गये। और ये दोनो भी गये। तब राजाको साक्षी बनाकर दोनोंने उन मुनियोंके साथ शास्त्रार्थ (विवाद) किया। परन्तु जब मुनिसे हार गये, तब दोनोहीने उनके शिष्य होकर

दीक्षा ले ली। पश्चात् दोनो ही समाधिमरणसे शरीर छोड़ महाशुक्र स्वर्गमे देव हुए। वहाँसे चय धातकीखंडके पश्चिम विदेह क्षेत्रमे पुष्कलावती देशकी पुंडरीकिणी नगरीके राजा धनंजयकी दो रानियोंसे दो पुत्र हुए। रानी जयावतीसे महाबल और जयसेनासे अतिबल। दोनो ही क्रमसे बलदेव और वासुदेव (बलभद्र नारायण) हुए। महाराज धनंजय इन दोनो पुत्रोंको राज्य दे दिगम्बर मुनि हो गये और घोर तप कर अष्ट कर्मोंको नष्ट कर मोक्ष पधारे। वे दोनों अर्द्धचक्रीकी विभूति प्राप्त कर सुखसे राज्य करने लगे। जब अतिबल नारायणका देहान्त हो गया, तब महाबलने श्रीसमाधिगुप्त मुनिके निकट दीक्षा धारण की। और घोर तप कर प्राणत स्वर्गमे पुष्पचूल नामकी देवकी पर्याय पाई। फिर वहाँसे चयकर धातकीखंड द्वीपके पूर्व मंदराचल पर्वतके पूर्व विदेह क्षेत्रमे वत्सकावती देशके अन्तर्गत प्रभावती नगरीके राजा महासेन रानी वसुंधराके जयसेन पुत्र हुआ। पिताके अनन्तर राजगद्दीपर बैठा। सकल चक्रवर्ती हुआ। छह खंड पृथ्वी वशमें कर सुखसे राज्य करने लगा। अन्तमे एक दिन उसने श्रीसीमंधरके निकट दीक्षा ग्रहण कर ली और दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवन किया, जिससे तीर्थंकर प्रकृतिका बंध किया। अन्तमें वह प्रायोपगमन सन्याससे शरीर छोड़ उपरिम ग्रैवेयकमे अहमिन्द्र हुआ। वहाँसे चय पुष्कर द्वीपके पश्चिम मंदराचल पर्वतके पूर्व विदेह क्षेत्रमे मंगलावती देशके रत्नसंचयपुर नगरके राजा अजितंजय और देवी वसुमतीके ये श्रीयुगंधरस्वामी हुए जिनके गर्भ जन्म आदि कल्याणक इन्द्रने स्वयं आकर किये थे। इतनी कथा कह राजा वज्रदंतने अपनी पुत्री श्रीमतीसे पूछा;–क्यों श्रीमते, यह कथा श्रीगणधरदेवने कही थी, तुझे स्मरण है कि नहीं? श्रीमतीने कहा;–यह तो सब कुछ मुझे याद है। परन्तु आप कृपाकर यह बतलाइए कि मेरा पति (ललितांगका जीव) वहाँसे चयकर कहाँ उत्पन्न हुआ है? वज्रदंत कहने लगे,–उत्पलखेतपुर नगरके राजा वज्रबाहु रानी वसुंधरीके (मेरी बहिनके) घर जो वज्रजंघ नामका पुत्र है, वही तेरा पति है। राजा वज्रबाहु कल प्रभात ही मुझे देखनेके लिए यहाँ आवेगे। साथमें वज्रजंघ भी आवेगा। सो तेरी पंडिता चित्रपटको लेकर मंदिरमे बैठी है, उसे देख उसको पूर्व भवका स्मरण होगा और वह उस पंडितासे पूर्व भवका

सब वृत्तान्त कहेगा। इससे बेटा, तू चिन्ता मत कर और महलमें जा वस्त्राभूषण पहन शरीरका शृंगार कर। इस तरह कन्याको समझाकर विदा किया।

दूसरे दिन वासव और दुर्दन्त दो विद्याधर उसी पवित्र चैत्यालयके दर्शन करनेको आये। सो उस विचित्र चित्रपटको देख लोगोको आश्चर्य दिखानेके लिए वासव कपटकर झूठमूठ मूर्छित हो गया। लोगोंने इसको अकस्मात् मूर्छित हुआ देख कहा—अरे, यह क्या हुआ? यह क्या हुआ? पश्चात् जब थोड़ी देर पीछे वासवने सचेत होनेकी लीला दिखलाई, तब लोगोंने पूछा;—भाई, क्यो मूर्छित हुआ था? वासवने कहा;— मै इससे पहले भवमे अच्युत स्वर्गका इन्द्र था और यह मेरी देवी थी। यह देवी वहाँसे आकर कहाँ उत्पन्न हुई है, यह तो मै नही जानता, परन्तु इसको देख मुझे पूर्व भवका स्मरण हो आया है। और इसी कारण मुझे मूर्छा आ गई थी। अच्युत स्वर्गका नाम सुनते ही बुद्धिमती पंडिता समझ गई कि यह कोई मायावी है। फिर क्या था, वह उस मायावीकी हँसी उड़ाने लगी और डपटकर बोली:—अरे जा रे धूर्त, यह तेरी वल्लभा नही है, किसी औरको ही तलाश कर। थोड़ी देर पीछे चैत्यलयके समीप राजा वज्रबाहुके डेरे लगे और वज्रजंघ चैत्यालयके देखनेके लिए भीतर गया। सो प्रथम ही उस चित्रपटपर उसकी दृष्टि पड़ी। उसे देखते ही जातिस्मरण होनेसे वह मूर्छित हो गया। थोड़ी देरमे सचेत होनेपर पंडिताने पूछा;—अभी आपको क्या हो गया था? वज्रजंघने सब ज्योका सो वृत्तान्त, जो कि पंडिताके हृदयमे श्रीमतीके द्वारा अंकित था, कह सुनाया। तब पंडिताने भी प्रसन्न हो उसे श्रीमतीका सब वृत्तान्त सुनाया और श्रीमतीसे आकर कुमार वज्रजंघके आगमनके तथा उसके पूर्व भवके सब वृत्तान्त कहे। इसकी खबर राजा वज्रदंत चक्रवर्तीको भी दी गई। तब वे वज्रबाहुको लेनेके लिए उनके सम्मुख गये और बड़ी विभूतिसे उनको अपने नगरमे ले आये। और श्रीमती तथा वज्रजंघका जब गुप्तरीतिसे परस्पर निरीक्षण हो चुका, तब दोनोका विवाह कर दिया गया।

वज्रदंत चक्रवर्तीने अपने पुत्र (श्रीमतीके बड़े भाई) अमिततेजके लिए राजा वज्रबाहुसे वज्रजंघकी छोटी बहिन अनुंधरी माँगी। वज्रबाहुने भी देना स्वीकार कर लिया। पश्चात् अनुंधरी और अमिततेजका विवाह भी आनन्दके

साथ हो गया। वज्रबाहु और वज्रदंतमें परस्पर अतिप्रेम बढ़ गया। दोनों कुछ दिनतक वहीं रहे। पश्चात् वज्रबाहुने अपने पुत्र वज्रजंघ, पुत्रवधू श्रीमती और श्रीमतीकी पंडिताको ले अपने नगरको गमन किया। पंडिता थोड़े दिनमें श्रीमतीके समीप पुंडरीकिणी नगरीको लौट आई। कालान्तरमें श्रीमती और वज्रजंघके वीरबाहु आदिक इक्यावन पुत्र उत्पन्न हुए। वज्रबाहु इन सबके विवाहादिक करके सुखसे दिन व्यतीत करने लगे।

एक दिन वज्रबाहु आकाशकी शोभा देख रहे थे। अकस्मात् एक बादलको विलीन होता देख उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ। सांसारिक भोगोंको इसी तरह अथिर जान अपने पुत्र वज्रजंघको राज्यभार सौंप आप अपने सब पोते (नाती) और पाँचसौ क्षत्रियों समेत श्रीदमधर मुनिके निकट दीक्षाधारी हुए और घोर तपश्चरण कर ध्यानरूपी अग्निसे समस्त कर्मरूपी काष्ठको जला नित्यनिरंजन पदको प्राप्त हुए।

एक दिन वज्रदत चक्रवर्ती अपनी सभामें विराजमान थे, इतनेमें एक मालीने एक सुन्दर मुकुलित कमल लाकर भेट किया। उसमें एक मरे हुए भ्रमरको (भौंराको) देख महाराज विचारने लगे—देखो, केवल एक नासिका इन्द्रीके वशीभूत होनेसे इस भ्रमरकी जान चली गई है, फिर मैं तो रात्रि दिवस पञ्चेन्द्रियके भोगोपभोगोंमें लीन हो रहा हूँ। कभी तृप्ति ही नहीं। जो मैं इनको स्वयं न छोड़ दूँगा, तो एक दिन मेरा भी यही हाल होगा। ऐसा विचार संसारसे उदास हो वे अपने पुत्र अमिततेजको राज्य देने लगे परन्तु उसने कहा—पिताजी, जिस कारण आप इस राज्यको छोड़ते हैं, मैं भी उसी कारणसे इसे छोड़कर आपके साथ क्यों न चलूँ? वज्रदन्तके बहुत समझानेपर भी राज्यको झूठन समान जान उसने स्वीकार नहीं किया तब वे दूसरे पुत्रोंको राज्य देने लगे परन्तु वे सब अमिततेजके ही अनुयायी निकले। जो उत्तर अमिततेजसे मिला था वही सब पुत्रोंसे उन्हें मिला। निदान अमिततेजके पुत्र पुंडरीकको जो कि वज्रजंघका भानजा था, राज्य देकर अपने एक हजार पुत्रों, बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओं और साठ हजार स्त्रियोंके साथ श्रीयशोधर तीर्थंकरके चरणकमलोंके निकट महाराज वज्रदन्तने दीक्षा धारण की और क्रमसे केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया। और भी सब यथायोग्य गतिको प्राप्त हुए।

इधर वज्रदन्तके शत्रु लोग पुंडरीकको बालक जान उसकी कुछ भी परवाह न कर देशमें बाधा उपद्रव करने लगे। तब वज्रदन्तकी रानी लक्ष्मीमतीने शत्रुओंके उपद्रव करनेके समाचार लिख गंधर्वपुर नगरके राजा चिन्तागति और मनोगति विद्याधरोंके द्वारा वज्रजंघके समीप पत्र पहुँचाया। वह वज्रदन्तका वैराग्य सुनकर आश्चर्ययुक्त हो शत्रुओंको जीतनेके लिए अपनी चतुरंगिनी सेनासहित नगरसे निकल पुंडरीकिणी नगरीकी ओर रवाना हुआ। मार्गमें एक सर्प नामके तालाबके किनारेपर डेरा डाला। सब लोगोंकी रसोई बनने लगी। वहींपर दो चारणमुनि जिनका नाम दमवर और सागरसेन था, आहार लेनेके लिए आकाशमार्गसे पधारे। राजा वज्रजंघ और श्रीमतीने उन्हें पड़गाहन किया। और नवधा भक्तिसे अन्तरायरहित आहार दिया, जिसके पुण्यके प्रभावसे पंचाश्चर्य हुए। उसी समय उस जंगलके व्याघ्र, शूकर, बंदर, नकुल ये चार जीव आकर श्रीमुनिको नमस्कार कर उनके समीप बैठ गये। वज्रजंघने यह कौतुक देख श्रीमुनिराजको नमस्कार किया और समीप ही बैठकर पूछा;–महाराज, मेरे मंत्री मतिवर, पुरोहित आनन्द, सेनापति अकंपन, और राजश्रेष्ठी धनमित्र हैं। उनके ऊपर मेरा अधिक प्रेम क्यों है? इन व्याघ्रादिकके उपशान्त होनेका क्या कारण है? और आपपर मेरा अधिक स्नेह क्यों है? इस प्रकार वज्रजंघने तीन प्रश्न किये। तब श्रीदमवर मुनि कहने लगे;–

जम्बूद्वीप पूर्व विदेह क्षेत्र वत्सकावती देश प्रभाकरी नगरीका राजा अनिरुद्ध महालोभी था। उसने अपनी नगरीके निकट जो एक पर्वत था, उसमें बहुतसा धन रख छोड़ा था। सो उस कारण रौद्रध्यानपूर्वक मृत्यु होनेसे वह पंकप्रभा नामके चौथे नरकमें पहुँचा। फिर वहाँ अपनी आयु पूर्ण करके वह प्रभाकरी नगरीके निकटवाले पर्वतपर व्याघ्र हुआ।

एक दिन उसी नगरके राजा प्रीतिवर्द्धनने शत्रुओंके ऊपर चढ़ाई करनेके लिए घरसे प्रस्थान करके नगरके बाहर डेरा दिया। पास ही एक वृक्षकी कोटरमें (खोखलमें) श्रीपिहितास्रव मुनि विराजमान थे, जो कि एक महीनेका उपवास किये थे। जिस दिन उनके पारणेका दिन हुआ, एक निमित्तज्ञानीने राजा प्रीतिवर्द्धनसे कहा;–महाराज, यदि ये मुनि आपके घर आहार लेवें, तो आपको प्रचुर धनका लाभ हो। यह जान राजाको

आहार देनेकी इच्छा हुई। परन्तु नगरको छोड़ मुनि महाराज यहाँ डेरोंमें कैसे पधारेंगे, यह भी चिन्ता हुई। सोच विचार कर एक उपाय किया कि नगरके मार्गोंमें कीचड़ करा दी और ऊपरसे फूल बिछा दिये, जिससे मुनि नगरमें न जाने पावे। श्रीमुनि महाराज आहार लेनेको निकले, परन्तु नगरका मार्ग रुका हुआ देख डेरोंकी ओर ही चले। तब राजाने ही उनका पड़गाहन किया। और नवधा (नौ प्रकारकी) भक्तिसे अन्तरायरहित आहार दिया। आहार देनेके महापुण्यसे राजाके यहाँ पंचाश्चर्य हुए। पश्चात् श्रीमुनिराजने कहा;–राजन्, इस सामनेवाले पर्वतमें बहुत द्रव्य रक्खा है, जिसकी रक्षा एक व्याघ्र करता रहता है। सो तेरी प्रयाणभेरीकी आवाजको सुनकर उस सिंहको इस समय जातिस्मरण हुआ है। राजाने बीचमें ही प्रश्न किया–महाराज, वह व्याघ्र कौन है? और उसे जातिस्मरण क्यों हुआ है? तब मुनिराजने उस व्याघ्रके पूर्व भव कह सुनाये। जिससे राजाको मालूम हो गया कि वह पहले इसी नगरीका राजा था, जिसने अपना बहुतसा धन इस पर्वतमें गाड़ रक्खा था। श्रीमुनि फिर कहने लगे–उस व्याघ्रने अभी समाधिमरण (सन्यास) धारण किया है, सो वह तुझे अपना पहला गढ़ा हुआ धन दिखा देगा। यह सुनकर राजा बहुत संतोषित हुआ। श्रीमुनिराजको नमस्कार कर उस पर्वतपर जा उसने उस व्याघ्रको बहुत समझाया और व्रतोंमें दृढ़ किया। तब व्याघ्रने उस राजाको वह सब धन दिखला दिया। राजाने वहाँसे धन निकलवा अपने खजानेमें पहुँचा दिया। पश्चात् उस व्याघ्रने सन्यास धारण कर अठारहवें दिन शरीर छोड़ा और ईशान नामके दूसरे स्वर्गके दिवाकरप्रभ विमानमें दिवाकर देव हुआ। राजा प्रीतिवर्द्धनने जो मुनिराजको आहार दिया था, उसकी अनुमोदना उस राजाके मन्त्री पुरोहित और सेनापतिने भी की थी। इससे वे तीनों ही जम्बूद्वीपकी उत्तरकुरु भोगभूमिमें उत्पन्न हुए। और राजा प्रीतिवर्द्धनने उन्हीं पिहितास्रव मुनिके निकट दीक्षा ले अष्ट कर्मका नाश कर मोक्ष प्राप्त किया। तथा उस राजाके मन्त्रीका जीव भोगभूमिसे चयकर ईशान स्वर्गके कांचन विमानमें कनकप्रभ देव हुआ। सेनापतिका जीव उसी स्वर्गमें प्रभंकर विमानमें प्रभाकर देव हुआ और पुरोहितका जीव भी भोगभूमिसे आकर उसी दूसरे स्वर्गके रुचित विमानमें प्रभंजन देव हुआ। इस प्रकार ये तीनो और एक व्याघ्रका जीव उसी दूसरे स्वर्गमें

उत्पन्न हुए। सो हे राजन्, जब तू ललितांग देव था, तब ये चारों ही तेरे परिवारके देव थे। वहाँसे चयकर ये तेरे मन्त्री आदिक उत्पन्न हुए है। दिवाकरप्रभ देवका जीव मतिसागर श्रीमतीके यह मतिवर मन्त्री हुआ है। प्रभाकर देव अपराजित आर्यवेगाके यह अकंपन सेनापति हुआ है। कनकप्रभ देव श्रुतकीर्ति और अनन्तमतीके यह आनन्द पुरोहित हुआ है और प्रभंजन देव सेठ धनदेव स्त्री धनदत्ताके यह धनमित्र राजश्रेष्ठी हुआ है। और राजन्, जब तू इस भवसे आठवे भवमे आदिनाथ (ऋषभदेव) तीर्थकर होगा, तब यह मतिवर मन्त्री तेरा (ऋषभदेवका) पुत्र भरत होगा, अकंपन सेनापति बाहुबलि होगा, आनन्द पुरोहित वृषभसेन होगा और धनमित्र अनन्तवीर्य होगा। इस प्रकार ये चारों ही तेरे पुत्र होगे, जो कि चारो ही चरमशरीरी (तद्भवमोक्षगामी) होंगे। राजन्, यह तेरे पहले प्रश्नका उत्तर हुआ। अब इन व्याघ्र शूकर आदि जीवोके पूर्व भव ध्यान देकर सुन;—

इसी देशके हस्तिनापुरमे एक धनदत्त नामका वैश्य रहता था। उसकी धनमती स्त्रीसे उग्रसेन नामका पुत्र था। वह एक दिन चोरी करते पकड़ा गया। कोटपालने उसकी लात धूँसे मुक्केसे खूब खबर ली। इससे उग्रसेन मर गया और यह व्याघ्र हुआ है। तथा इसी देशके विजयपुरमें एक आनन्द नामका वणिक् था। उसकी वसन्तसेना स्त्रीसे हरिकान्त नामका पुत्र था। वह इतना अभिमानी था कि किसीको भी नमस्कार नहीं करता था। एक दिन दो चार मनुष्योंने पकड़कर उसे माता पिताके पैरोपर डाल दिया। इससे हरिकान्त अपना मानभंग समझकर एक शिलापर सिर पटककर मर गया और यह शूकर हुआ है। इसी देशके धान्यपुर नगरमें एक धनदत्त वणिक था। उसकी वसुदत्ता भार्यासे नागदत्त पुत्र था, जो कि महा मायावी (कपटी) था। एक दिन उसने अपनी बहिनके सब भूषण लेकर एक वेश्याको दे दिये। बहिनके मांगनेपर हमेशा वह उत्तर दे देता था कि लाता हूँ। इसी बीचमें वह मर गया, और यह बंदर हुआ है। तथा इसी देशके सुप्रतिष्ठ नगरके राजाने एक चैत्यालय बनवाया था, जिसमें सुवर्णकी ईटें लगवाई जाती थीं। वे ईटें ऊपरसे मिट्टी जैसी काली थीं, परन्तु थीं सुवर्णकी। मजदूर लोग उन्हें ढो रहे थे। यह बात उस नगरके पूरी कचौरी बेचनेवाले एक हलवाईको, जो कि महालोभी था, मालूम हुई। उसने एक मजदूरसे

यह कहकर कि मुझे पैर धोनेके स्थानपर बिछानेके लिए दो चार ईंटोकी आवश्यकता है कुछ पूरी देकर ईंट ले ली, और उससे कह दिया कि ईंट रोज दे जाया कर और बदलेमे पूरी ले जाया कर। इस तरह वह वणिक् उस मजदूरसे एक ईंट प्रतिदिन लेने लगा। एक दिन हलवाईको किसी दूसरे ग्राम जाना पड़ा, इसलिए वह अपने बेटेसे ईंट लेनेके लिए कह गया। परन्तु किसी कारणसे उसका बेटा उस दिन ईंट न ले सका। जब वह हलवाई लौटकर घर आया और उसे यह मालूम हुआ कि लड़केने आज ईंट नहीं ली है, लोभके वश हो उसने अपने पुत्रको मारे लकड़ियोंके दम निकाल दिया, और एक बड़ी भारी पत्थरकी शिला उठाकर अपने पैरपर पटक ली, जिससे उसके भी पैर टूट गये। वह उसी दुःखसे मरकर यह नकुल हुआ है। ये सभी निकटभव्य हैं और इसीलिए सब उपशान्त हुए है। राजन्, तूने जो यह दान दिया है, उसकी अनुमोदना इन सबने की है। इसी पुण्यसे इस लोक और परलोकमें ये तेरे साथ सुख भोगेगे। जब तू तीर्थकर होगा तब ये सब तेरे अनन्त, अच्युत, वीर, और सुवीर नामके धारक चरमशरीरी पुत्र होगे। और हम दोनो तेरे अन्तके युगल पुत्र थे, इसलिए हमपर तेरा प्रेम है। इस प्रकार वे मुनिराज राजा वज्रजंघके तीनो प्रश्नोका उत्तर देकर विहार कर गये। और महाराज वज्रजंघ पुंडरीकके यहाँ पहुँचे। शत्रुओको दबाकर उन्होने वहाँका राज्य स्थिर किया। फिर अपने नगरको लौटकर वे सुखसे राज्य करने लगे।

एक दिन जब रात्रिको राजा वज्रजंघ रानी श्रीमतीसहित अपने शयनागारमे सो रहे थे तब शयनागारका अधिकारी सूर्यकान्त धूपके घड़ेमें कालागुरु (सुगंधित द्रव्य विशेष) डालकर चला गया और वहाँके झरोखे खोलना भूल गया। जिससे उस घड़ेका धुआँ मकानमे भर गया, और उससे वे दोनो स्त्री पुरुष (राजा वज्रजंघ और रानी श्रीमती) घुटकर मर गये। वे श्रीमुनिराजको आहार दान देनेके प्रभावसे दोनो ही उत्तरकुरु भोगभूमिमे स्त्री पुरुष हुए। और वे व्याघ्र, शूकर, बन्दर, न्योला आदि भी उसी मकानमे उसी धुएँसे मरकर उसी भोगभूमिमे आर्य हुए।

इधर वज्रजंघके मंत्रियोने वज्रजंघके शरीरका अग्निसंस्कार किया। और उसके पुत्र वज्रबाहुको राज्य दे मतिवर मन्त्री, अकंपन सेनापति, आनन्द पुरोहित और धनमित्र राजश्रेष्ठीने दीक्षा ग्रहण की। और तप करके चारो ही अधोग्रैवेयकमें अहमिन्द्र हुए।

इधर भोगभूमिमें रहनेवाले वज्रजंघ और श्रीमतीको एक दिन सूर्यप्रभ नामके कल्पवासी देवके दर्शन हुए। जिससे दोनोको जातिस्मरण हुआ। दैवयोगसे उसी समय वहाँ दो चारणमुनि आकाश मार्गसे पधारे। सो वज्रजंघके जीव आर्यने उन दोनो मुनियोंको नमस्कार कर पूछा;-महाराज, आपको देखकर आपपर मेरा प्रेम क्यों हुआ है? प्रीतंकर मुनिने कहा—आर्य, जब तू महाबल राजा था, तब तेरा एक स्वयंबुद्ध मंत्री था। वह तप कर सन्याससे शरीर छोड़ सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। और वहाँसे चयकर पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुंडरीकिणी नगरीके राजा प्रियसेन रानी सुन्दरीसे मै प्रीतंकर हुआ। यह मेरा छोटा भाई प्रीतिदेव है। तपके प्रभावसे हम दोनोंको चारणऋद्धि और अवधिज्ञान प्राप्त हुआ है। सो तुमको सम्यक्त्व ग्रहण करानेके लिए आये है। इस प्रकार उपदेश देकर उन छहो जीवोंको सम्यक्त्व ग्रहण करा वे मुनि वहाँसे विहार कर गये। उक्त छहों जीव उत्तर भोगभूमिके सुख भोगते हुए सुखसे रहने लगे। तीन पल्यकी आयु पूर्ण कर शरीर छोड़ सब ईशान स्वर्गमें देव हुए। वज्रजंघका जीव श्रीप्रभ विमानमें श्रीधर देव हुआ, श्रीमतीका जीव स्वयंप्रभ विमानमें स्वयंप्रभ देव हुआ, व्याघ्रका जीव चित्रांगद विमानमें चित्रांग देव हुआ, शूकरका जीव नंद विमानमें मणिकुंडल देव हुआ, वानरका जीव नंद्यावर्त्त विमानमें मनोहर देव हुआ और नकुलका जीव प्रभाकर विमानमें मनोरथ देव हुआ। इस तरह इनका आपसमें सम्बन्ध है।

एक दिन जब श्रीप्रभ पर्वतपर श्रीप्रीतंकर मुनिराजको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, तब श्रीधर आदिक देव उनकी वंदना करनेके लिए आये। वंदना स्तुति करके श्रीधरने पूछा;-भगवन्, मैं जब महाबल राजा था, तब मेरे जो महामति आदिक मन्त्री थे, वे मर कर कहाँ उत्पन्न हुए है। केवली महाराजने कहा;-उनमेंसे महामति और संभिन्नमति ये दोनो निगोदमें गये है और शतमति दूसरे शर्कराप्रभा नरकमें गया है। यह सुन श्रीधर देव शतमतिके जीवको समझानेके लिए दूसरे नरकमें गया। वहाँ उसको अनेक तरह समझाया। पश्चात् शतमतिका जीव दूसरे नरकसे निकलकर पुष्कर द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें मंगलावती देशके रत्नसंचयपुर नगरमें राजा महीधर रानी सुन्दरीके जयसेन नामका पुत्र हुआ। वह युवा होनेपर जब अपना विवाह करने लगा, तब श्रीधर देवने फिर आकर

समझाया और उसे भोगोंसे उदास कराया, जिससे जयसेनने मुनिव्रत धारण किये और समाधिमरणसे शरीर छोड़ पाँचवें ब्रह्म स्वर्गका इन्द्रपद प्राप्त किया। पश्चात् स्वर्गसे चयकर पूर्व विदेह क्षेत्रके वत्सकावती देशमे सुसीमा नगरीके राजा सुदृष्टि रानी सुन्दरीके सुविधि नामका पुत्र हुआ। उसका विवाह अभयघोप चक्रवर्तीकी मनोरमा नामकी कन्याके साथ हुआ। कुछ दिनोंमे श्रीमतीका जीव जो स्वयंप्रभ देव हुआ था, स्वर्गसे चयकर राजा सुविधि और मनोरमाके केशव नामका पुत्र हुआ। तथा चित्रांगद विमानसे चयकर चित्रांग देव उसी देशके विभीषण नामके मांडलिक राजा और प्रियदत्ता रानीके वरदत्त नामका पुत्र हुआ। तथा शूकरका जीव, जो कि नंद विमानमे मणिकुंडल देव हुआ था, उसी देशके एक नंदिसेन मांडलिक राजाके यहाँ उसकी अनन्तमती रानीसे वरसेन नामका पुत्र हुआ। वन्दरका जीव जो कि नन्द्यावर्त्त विमानमे मनोहर देव हुआ था, उसी देशके एक रतिसेन मांडलिक राजाके घर चन्द्रमती रानीसे चित्रांगद नामका पुत्र हुआ। नकुलका जीव जो प्रभाकर विमानमे मनोरथ देव हुआ था, उसी देशके मांडलिक राजा प्रभंजनकी रानी चित्रमालासे शान्तमदन नामका पुत्र हुआ। और वरदत्त वरसेन चित्रांगद और शान्तमदन ये चारों ही राजा सुविधिके मित्र हुए।

एक दिन अभयघोप चक्रवर्ती, सुविधि, वरदत्त, वरसेन आदिक राजाओंके साथ श्रीविमलवाहन जिनेन्द्रदेवकी वंदना करनेके लिए गये। वहाँ समवसरणकी विभूति देख संसारके सुखोंसे विरक्त हो उन्होंने अपने पाँच हजार पुत्रों, अठारह हजार अन्य क्षत्रियों और दश हजार स्त्रियोंके साथ जिनदीक्षा धारण की और घोर तप कर मुक्ति प्राप्त की और सुविधि वरदत्त आदिक छहों जीवोंने विशेप अणुव्रत धारण किये। जिनमेंसे सुविधिने समाधिमरणसे शरीर छोड़ा। इसलिए वह सोलहवें अच्युत स्वर्गमें इन्द्र हुआ। केशव वरदत्त आदिकने भी दीक्षा धारण की। सो आयु पूर्ण होने-पर केशवका जीव तो अच्युत स्वर्गमे प्रतीन्द्र हुआ और शेप वरदत्तादिक चारों राजाओंके जीव उसी अच्युत स्वर्गमें सामानिक जातिके देव हुए। इस प्रकार ये छहों जीव अच्युत स्वर्गमे इकट्ठे हुए। पश्चात् अच्युतेन्द्रका जीव वहाँसे चयकर इसी द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमे पुष्कलावती देशके अन्तर्गत पुंडरीकिणी नगरीमें तीर्थंकर पदवीके धारक महाराज

श्रीवज्रसेन रानी श्रीकान्ताके वज्रनाभि नामका पुत्र हुआ। और केशवका जीव जो प्रतीन्द्र हुआ था उसी पुंडरीकिणी नगरीमें राजश्रेष्ठी कुबेरकी भार्या अनन्तमतीके धनदेव पुत्र हुआ। वरदत्त वरसेन आदिक चारों जीव जो सामानिक देव हुए थे, उन्हीं महाराज वज्रसेन श्रीकान्ताके विजय वैजयन्त जयन्त और अपराजित नामके पुत्र हुए। तथा मतिवर आदिक मंत्रियोंके जीव जो ग्रैवेयकमें उत्पन्न हुए थे, श्रीवज्रसेन तीर्थंकरके बाहु, महाबाहु, पीठ और महापीठ नामके पुत्र हुए। भगवान् वज्रसेन चिरकाल तक राज्य कर अपने पुत्र वज्रनाभिको राज्य दे एक हजार राजपुत्रोंके साथ तप कल्याणको प्राप्त हुए।

एक दिन राजा वज्रनाभि अपनी सभामें विराजमान थे कि दो पुरुष साथ ही साथ कुछ संदेशा लेकर उनके समीप आये। एकने निवेदन किया:—महाराज, आपके पिता श्रीवज्रसेन तीर्थंकरको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। दूसरेने कहा;—आपकी आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है। दोनों समाचार सुनकर वज्रनाभिने पहले केवली भगवानकी पूजा की और फिर चक्रवर्ती होनेका उत्सव मनाया। धनदेव श्रेष्ठीपुत्र जो कि केशवका जीव हुआ था, वह इस चक्रवर्तीके गृहपति रत्न हुआ। वज्रनाभिने अपने विजयादिक आठों भाइयोंको अपने समान ही विभूति ऐश्वर्य आदिका स्वामी बना चिरकालतक राज्य किया और अन्तमें अपने पुत्र वज्रदन्तको राज्य दे पाँच हजार पुत्रों, विजयादिक भाइयों, धनदेव, सोलह हजार मुकुटबद्ध राजाओं और पचास हजार स्त्रियोंके साथ अपने पिता श्रीवज्रसेन केवलीके निकट दीक्षा ग्रहण की। दर्शनविशुद्धि आदिक सोलह भावनाओंका चिन्तवन किया, जिससे उन्होंने तीर्थंकर नामकर्मका बंध किया। पश्चात् आयु पूर्ण होनेपर श्रीप्रभाचल पर्वतपर प्रायोपगमन सन्याससे शरीर छोड़ा और उग्र तपके प्रभावसे सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्रका पद पाया। विजयादिक आठों भाई और धनदेव भी उग्र तप कर सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुए। इस प्रकार दशों जीव एक ही विमानमें उत्पन्न हुए। और सुखसे काल व्यतीत करने लगे। जिस समय ये सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न हुए, उस समय भरतक्षेत्रमें जघन्य भोगभूमिका समय धाराप्रवाहसे चल रहा था।

भरतक्षेत्रमें सदा एकसा समय नहीं रहता। यहाँ सदा उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालका चक्र फिरा करता है। जिनमेसे इस समय उत्सर्पिणी काल वर्तमान है। उत्सर्पिणी अवसर्पिणी दोनोंके ही छह छह भेद हैं। अवसर्पिणी कालके आरंभमें चार कोड़ाकोड़ी सागरका सुपमसुपम काल होता है। उसके प्रारंभमे मनुष्योंका शरीर उदय होते हुए सूर्यके समान कान्तिमान् तथा छह हजार धनुष ऊँचा होता है और उनकी आयु तीन पल्यकी होती है। उस समय वहाँ पानकांग, तूर्यांग, भूपणांग, ज्योतिरंग, गृहांग, भाजनांग, दीपांग, माल्यांग, भोजनांग और वस्त्रांग ऐसे दश प्रकारके कल्पवृक्ष होते है। वहाँके जीवोंको भोगोपभोगकी सामग्री इन्हीं कल्पवृक्षोंसे मिलती है। वे जीव तीन दिन पीछे बदरीफलके समान अल्प आहार लेते है। उनके भाई बहिनका संकल्प नहीं है। प्रत्येक गर्भसे स्त्री पुरुष दो ही जीव उत्पन्न होते है और वे रतिपत्नी भावको प्राप्त होकर संसारके सुखोंका अनुभव करते है। जिस दिन वे होते है, उससे इक्कीसवे दिन ही यौवनावस्थाको प्राप्त हो जाते है। उनके किसी प्रकारकी आधि व्याधि नहीं होती। कभी ज्वरादिक रोग नहीं होते। इष्ट वियोग अनिष्ट संयोगादिकके दुःख भी नहीं होते। स्त्रियोंकी आयु जब नौ महीनेकी शेष रह जाती है, तब उनके गर्भ रहता है और एक लड़का और एक लड़की उत्पन्न कर प्रसूति होनेके पश्चात् वे तत्काल ही एक जृम्भा (जँभाई) लेती है, जिससे उनका प्राणान्त हो जाता है और-मरकर नियमसे देवगतिको प्राप्त होती है। पुरुषोंको स्त्रीकी प्रसूति होनेके पश्चात् ही एक छींक आती है, जिससे वे भी उस शरीरको छोड़कर देव गतिको प्राप्त होते है।

सुपमसुपम कालके पीछे दूसरा सुपम काल आता है। जिसकी मर्यादा तीन कोड़ाकोड़ी सागरकी है। इस कालकी प्रारम्भिक दशामें मनुष्योंकी ऊँचाई चार हजार धनुषकी और आयु दो पल्यकी होती है। शरीरकान्ति और वर्ण पूर्ण चन्द्रमाके समान होता है। इस कालके प्रारम्भमें जीवोंको पैंतीस दिनमें यौवनावस्था प्राप्त होती है। वे दो दिन पीछे अर्थात् तीसरे दिन बहेड़ेके समान आहार लेते है। उनकी शेष दशा सब सुपमसुपम कालके समान होती है।

सुपम कालके अनन्तर दो कोड़ाकोड़ी सागरका सुपमदुःपम काल आता है। उस कालके आरम्भके मनुष्योंके

शरीरकी ऊँचाई दो हजार धनुष होती है। शरीरका वर्ण प्रियगुंके समान लाल होता है। उनकी एक पल्यकी आयु होती है। वे उनंचासवे दिन यौवनावस्थाको प्राप्त होते है और एक दिनका व्यवधान देकर अर्थात् तीसरे दिन आँवलेके समान आहार लेते है। उनकी शेष दशा पहले दूसरे कालके समान है।

तीसरे कालके पश्चात् ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरका चौथा काल आता है, जिसकी दुःषमसुषम संज्ञा है। इस कालके आरम्भमे मनुष्योकी ऊँचाई पाँचसौ धनुषकी और आयु एक कोटि पूर्वकी होती है। वे प्रतिदिन एक वार भोजन करते है। उनका वर्ण पाँचो प्रकारका होता है।

इस दुःषमसुषम कालके पश्चात् पाँचवाँ इक्कीस हजार वर्षका दुःषम काल आता है। उसके प्रारम्भ कालमें मनुष्योकी ऊँचाई सात हाथकी और एकसौ वीस वर्षकी आयु होती है। वे प्रतिदिन भोजन करते है, परन्तु अनियमित अर्थात् नियमरहित एक दो चार वार करते है। शरीरका वर्ण मिश्रित होता है।

पंचम कालके पश्चात् इक्कीस हजार वर्षका छट्टा दुःषमदुःषम वा अतिदुःषम काल आता है। इसके प्रारम्भमे मनुष्य नग्न रहते है। मत्स्यादिकका मांस ही उनका भोजन होता है। वे धूमके (धुआँके) समान काले होते है। उनका शरीर दो हाथका और आयु वीस वर्षकी होती है। छट्ठे कालके अन्तमे मनुष्योका शरीर एक हाथका होता है और आयु केवल पन्द्रह वर्षकी ही होती है।

दूसरे कालके आदिमें जो वर्त्ताव और जैसी दशा होती है, वही प्रथम कालके अन्तमे जानना चाहिए अर्थात् द्वितीय सुषम कालके आदिमे जितनी आयु तथा शरीरकी ऊँचाई आदि होती है, उतनी ही प्रथम सुषमसुषम कालके अन्तमे होती है।

इस प्रकार अवसर्पिणीके छहों काल पूर्ण होनेपर फिर उत्सर्पिणी कालका प्रारम्भ होता है। इस कालमे पहले छट्टा अतिदुःषम काल, फिर पाँचवाँ दुःषम, चौथा दुःषमसुषम, तीसरा सुषमदुःषम, दूसरा सुषम और पहला सुषमसुषम काल आता है। इनकी मर्यादा पहले कहे अनुसार ही जानना चाहिए।

इस प्रकार अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी दोनों दश कोड़ाकोड़ी सागरके होते हैं। और दोनों मिलाकर बीस कोड़ाकोड़ी सागरका एक कल्पकाल माना गया है।

अवसर्पिणीके तृतीय कालके अन्तमें जब उसकी स्थिति केवल पल्यके अष्टमांश (आठवें भाग) भाग रह जाती है, तब कुलकर उत्पन्न होते हैं। इस अवसर्पिणी कालके अन्तमें चौदह कुलकर हुए। उनमें सबसे पहले कुलकर प्रतिश्रुति हुए, जिनकी देवीका नाम स्वयंप्रभा था। उनका शरीर अठारहसौ धनुषका, आयु पल्यके दशवें भाग और शरीरकी कान्ति कनकवर्ण (सुवर्णके समान) थी। उनके समयमें ज्योतिरंग जातिके कल्पवृक्षोंके मन्द होनेसे, जो कि अपनी अपरिमित प्रभासे सबको प्रकाशित करते थे, सूर्य चन्द्रमा दिखाई पड़ने लगे। जैसे सूर्यकी प्रभामें तारे नहीं देख पड़ते हैं, उसी प्रकार पहले ज्योतिरंगकी प्रभाके सामने ये कभी दिखाई नहीं पड़ते थे। जब अकस्मात् सूर्य चन्द्रमाको देखकर लोगोंको भय हुआ, तब उन्हें प्रतिश्रुतिने समझाया और कहा कि कालकी हीनता होनेसे ऐसा हुआ है, इससे तुम्हें डरना नहीं चाहिए। पहले किसीको किसी प्रकारका दंड नहीं दिया जाता था, परन्तु प्रतिश्रुतिने " हा ! " ऐसे दंडका प्रचार किया था।

प्रतिश्रुति कुलकरके पश्चात् जब पल्यका अस्सीवाँ भाग बीत चुका, तब दूसरे कुलकर सन्मति हुए। उनकी पत्नीका नाम यशस्वती था। उनके शरीरकी ऊँचाई तेरहसौ धनुष, आयु पल्यके सौवें भाग और शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान थी। उनके समयमें तारे, ग्रह, नक्षत्र आदि दिखाई पड़नेसे लोगोंको जो भय हुआ था, उसे उन्होंने समझाकर निवारण किया था।

पश्चात् जब पल्यका आठसौवाँ भाग बीत गया, तब क्षेमङ्कर नामके तृतीय कुलकर हुए। उनकी पत्नीका नाम सुनन्दा, ऊँचाई आठसौ धनुष, आयु पल्यके हजारवें भाग और शरीरका वर्ण सुवर्णके समान था। उनके समयमें लोगोंको सिंह सर्पादिक भयानक मालूम पड़ने लगे, सो उन्होंने उनका भय निवारण किया और समझा दिया कि कालकी हीनतासे ये जीव अब भक्षक हो जावेंगे इनसे अलग रहना अच्छा है।

क्षेमंकरके पश्चात् जब पल्यका आठ हजारवाँ भाग बीत गया, तब क्षेमंधर नामके चौथे कुलकर हुए । इनकी स्त्रीका नाम विमला था । इनका शरीर सातसौ पचहत्तर धनुष, आयु पल्यके दश हजारवें भाग और शरीर सुवर्णके समान था । उनके समयमें रात्रिमें अंधकार होनेसे लोग डरे थे । सो उस डरको इन्होंने दीपक जलानेकी शिक्षासे दूर कर दिया था ।

क्षेमंधरके पीछे पल्यका अस्सी हजारवाँ भाग बीतनेपर सीमंकर पांचवें कुलकर हुए । उनकी स्त्रीका नाम मनोहरी था । उनका शरीर साडेसातसौ धनुष, आयु पल्यके लाखवें भाग और शरीर सुवर्णके समान था । उनके समयमें कल्पवृक्षोंके अपनानेमें झगडा हुआ था अर्थात् जब कल्पवृक्षोंसे थोड़ी वस्तु मिलने लगी थी, तब यह वृक्ष मेरा है, ऐसा झगड़ा होने लगा था । उसे सीमंकरने सबकी मर्यादा (सीमा) बाँधकर मिटाया । इन पाँचों ही कुलकरोंने " हा ! " इस दंडनीतिसे ही शासन किया ।

इनके पीछे जब पल्यका आठ लाखवाँ भाग बीत गया, तब छट्ठे कुलकर सीमंधर हुए । उनकी पत्नीका नाम यशोधरिणी था । उनका शरीर सातसौ पच्चीस धनुष, आयु पल्यके दश लाखवें । भाग और शरीर सुवर्णके समान था उन्होंने अपनी अपनी नियमित सीमामें शासन करना सिखलाया और " हा ! " और " मा ! " अर्थात् " मत कर " इन दोनो नीतियोंसे शासन किया ।

इनके पश्चात् जब पल्यका अस्सी लाखवाँ भाग और बीत गया, तब विमलवाहन सातवें कुलकर हुए । इनकी पत्नीका नाम सुमति, शरीरकी ऊँचाई सातसौ धनुष, आयु पल्यके एक करोड़वें भाग और शरीरका रंग सुवर्णके समान था । इन्होंने घोड़े रथ हाथी आदि सवारियोंपर चढ़ना सिखलाया ।

इनके पश्चात् जब पल्यका आठ करोड़वाँ भाग और बीत चुका, तब चक्षुष्मान् आठवें कुलकर हुए । इनकी पत्नीका नाम धारिणी, शरीरकी ऊँचाई छःसौ पिचहत्तर धनुष, आयु पल्यके दश करोड़वे भाग और शरीरका वर्ण

प्रियंगुके समान था। इनके समयमे लोग अपने अपने पुत्रोका मुख देखने लगे और उनसे डरने लगे। चक्षुष्मानने सबका भय दूर कर उनको समझा दिया कि ये तुम्हारे पुत्र है। तुम इनका पालन पोषण करो।

इनके पश्चात् जब पल्यका अस्सी करोड़वॉ भाग वीत चुका, तब नौवें कुलकर यशस्वी हुए। इनकी पत्नीका नाम कान्तमाला था। इनका शरीर लाल वर्णका साढ़े छःसौ धनुष ऊँचा था, तथा आयु एक पल्यके सौ करोड़वे भाग थी। इन्होने पुत्र पुत्रियोके नामकरणकी विधि वतलाई।

इनके पश्चात् जब पल्यका आठसौ करोड़वॉ भाग वीत चुका, तब अभिचन्द्र नामके दशवें कुलकर उत्पन्न हुए। इनकी स्त्रीका नाम श्रीमती, शरीरका परिमाण छहसौ पचीस धनुष, तथा वर्ण सुवर्णमय था। इनकी आयु पल्यके सहस्रकोटिवें भाग थी। इन्होने चँन्द्रमाको दिखलाकर बच्चोको क्रीड़ा करना सिखलाया। इन चारो कुलकरोने "हा!" "मा!" रूप लज्जाके शब्द कहकर दंडनीति प्रचलित रक्खी।

इनके पश्चात् जब पल्यका आठ हजारकरोड़ अर्थात् अस्सी अरबवॉ भाग वीत चुका, तब ग्यारहवे कुलकर चन्द्राभ हुए, जो कि चंद्रमाके समान (शुभ्र) थे। इनकी पत्नीका नाम प्रभावती, शरीरका परिमाण छहसौ धनुष, और आयु एक पल्यके दशसहस्रकोटि अर्थात् एक खरववें भाग थी। इन्होने पिता पुत्रके व्यवहारका प्रचार किया अर्थात् लोगोको सिखलाया कि यह तुम्हारा पुत्र है, तुम इसके पिता हो। और इन्होंने "हा!" "मा!" और "धिक्!" इन तीन नीतियोसे दोषी लोगोको दण्ड देनेकी प्रथासे शासन किया।

इनके पश्चात् जब पल्यका अस्सीसहस्रकोटि अर्थात् आठ खरववॉ भाग वीत चुका, तब मरुदेव नामके बारहवे कुलकर हुए। इनकी पत्नीका नाम अनुपमा, शरीरकी ऊँचाई पॉचसौ पिचहत्तर धनुष और वर्ण सुवर्णके सदृश था। इनकी आयु एक पल्यके एक लक्षकोटि अर्थात् दश खरववें भाग थी। इन्होंने लोगोको तालाव नदी समुद्र उपसमुद्रोंमे जो कि तृतीय कुलकरके सामने ही देख पड़े थे, नाव जहाज आदि डालकर पार जाना तैरना आदि सिखलाया। और प्रजाको उन्ही "हा, मा, और धिक्" इन तीन नीतियोंसे दण्ड दिया।

इनके पीछे जब पल्यका आठ लक्षकोटि अर्थात् अस्सी खरबवाँ भाग वीत चुका, तब तेरहवें प्रसेनजित कुलकर हुए। इनका समस्त शरीर प्रस्वेदजलसे (पसीनेसे) भीगा हुआ था। शरीरकी ऊँचाई साढे पाँचसौ धनुप और आयु एक पल्यके दश लक्षकोटिवें भाग अर्थात् एक नीलवें भाग थी। शरीरका वर्ण लाल था। प्रसेनजितके पिता अमितमतिने प्रसेनाजितका विवाह किसीकी कन्याके साथ शास्त्रविहित विधिसे किया था। तदुक्तम्;—

प्रसेनाजितमायोज्य प्रस्वेदलवभूषितम्। विवाहविधिना धीरः प्रधानविधिकन्यया ॥

अर्थात् धीरजवान् अमितमतिने पसीनेसे शोभायमान प्रसेनाजितका विवाह प्रधानविधिकी कन्याके साथ विधिपूर्वक किया। इसका कारण यह था कि तब तक तो पतिपत्नी दोनो साथ साथ (एक ही गर्भसे बहिन भाईके समान) उत्पन्न होते थे, परन्तु यह प्रसेनाजित् अपनी माताके गर्भसे अकेला ही उत्पन्न हुआ था। इसके आगे जुगल उत्पत्तिका अभाव है। तदुक्तम्;—

एकमेवासृजत्पुत्र प्रसेनाजितमत्र सः। युग्मसृष्टेरिहवोर्ध्वमितोऽभ्युपनिनीषया ॥

अर्थात—प्रसेनजितके पिता अमितमतिने प्रसेनजितको अकेला ही उत्पन्न किया। मानो उनकी यही मनोकामना थी कि इस अवसर्पिणी कालमें अब आगे युगलसृष्टिका अर्थात जुगलधर्मका क्रम न हो। प्रसेनजितने स्नानादिक कर्म-का उपदेश दिया तथा उन्हीं हा! मा! धिक्! नीतियोंसे दण्ड दिया।

इनके पीछे जब पल्यका अस्सी लाख करोड़ अर्थात् आठ नीलवाँ भाग वीत चुका, तब नाभि राजा चौदहवें कुलकर उत्पन्न हुए। उनकी पत्नीका नाम मरुदेवी था। इनका शरीर पाँचसौ पच्चीस धनुप ऊँचा था। और आयु एक कोटिपूर्वकी[1] थी। इनके शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान थी। इन्होंने भी "हा! मा! धिक्!" इन तीन

(१) पूर्वांगवर्षलक्षाणामशीतिश्चतुरुत्तरा। तद्वर्गितं भवेत्पूर्वं तत्कोटी पूर्वकोट्यसौ ॥ १ ॥

भावार्थ—चौरासी लाख वर्षका एक पूर्वांग होता है। और पूर्वांगका वर्ग अर्थात् ७०५६०००००००००० वर्षका एक पूर्व होता है। ऐसे एक करोड़ पूर्वकी आयु थी।

नीतियोंसे ही प्रजाको दण्ड दिया। इनके समयमे कल्पवृक्ष सब लोप हो चुके थे। केवल राजा नाभिके घरमे ही शेष रहे थे। गॉव नगरादिकके बांउर गेहूँ जौ उड़द मूँग मसूर चने आदिके बहुतसे वृक्ष स्वयं उत्पन्न हुए, जिनको काटने पीसने खाने आदिकी क्रिया नाभि राजाने बतलाई। इन्हीके समयमे बच्चोके नाभिनाल [नाल] आने लगा, जिसके काटनेका उपाय राजा नाभिने बतलाया, इसीलिए उनका नाभि ऐसा नाम प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार ये चौदह कुलकर हुए।

इधर वज्रनाभिका जीव सर्वार्थसिद्धिमे अहमिन्द्रके सुख भोग रहा था। जब उसकी आयु छः महीनेकी रह गई, तब कल्पवासियोके विमानोमें घंटानाद, ज्योतिषी देवोके विमानोमें सिहनाद, भवनवासी देवोके भवनोमे शंखनाद और व्यन्तरोके निवास स्थानोमे भेरीका शब्द स्वयं होने लगा। तथा समस्त देवोके सिहासन कपायमान हुए और मुकुट नम्रीभूत हो गये। सब देव जब इसका कारण चर्म चक्षुओसे भी जाननेको असमर्थ हुए, तब उन्होंने अवधिज्ञानरूपी तृतीय नेत्र प्रकाश किया। जिससे उन्होने जान लिया कि भरतक्षेत्रमे राजा नाभिके घर मरुदेवीके गर्भमे श्रीआदिनाथ तीर्थकर अवतार लेगे। तब चारों प्रकारके देवोने आकर उत्सव किया। और इन्द्रने राजा नाभि और मरुदेवीके रहनेके लिए विनीत खंडके मध्यप्रदेशमे एक सुन्दर नगरकी रचना की, जिसका नाम अयोध्या रक्खा। यह नगर नाना प्रकारके रत्नोसहित अनेक प्रकारके बाग बगीचोसे सुशोभित हुआ। नगरमे नाभिको राजगद्दीपर बैठाया। इनकी यथोचित सेवा करनेके लिए देव देवियोको नियुक्त किया। कुबेरको आज्ञा दी गई कि वह राजा नाभिके घर प्रातःकाल, मध्यान्हकाल और सायंकाल तीनो समय पञ्चाश्चर्य करै। रत्नोकी वर्षा, पुष्पोकी वर्षा, गन्धोदककी वर्षा, दुंदुभि बजना और जय जय शब्द होना, इन्हे पंचाश्चर्य कहते हैं। तथा पद्म महापद्म तिगिछ केसर पुंडरीक सरोवरके कमलोमें रहनेवाली श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी इन छः देवियोको तीर्थकरकी माताका श्रृंगार करनेके लिए नियुक्त किया। इसी प्रकार रुचिकगिरि पर्वतपर निवास करनेवाली विजया, वैजयंता, अपराजिता नन्दा, और नन्दिवर्द्धिनी देवियोको मंगलस्वरूप आठ पूर्णकुम्भोको लेकर प्रतिसमय खड़ी रहनेके लिए, उसी रुचिकपर्वतपर

रहनेवाली सुप्रतिष्ठा, सुप्रणिधा, सुप्रबोधा, यशोधरा, लक्ष्मीमती, कीर्तिमती, वसुंधरा और चित्रा देवियोको दर्पण धारण करनेके लिए, इला, सुरा, पृथ्वी, पद्मावती, कांचना, नवमी, सीता और भद्रा देवियोको जानेके लिए, लखूपा, मित्रकेशी, पुण्डरीका, वारुणी, दर्पणा, श्री, ह्री और धृति देवियोको चामर धारण करनेके लिए, चित्रा, कांचनचित्रा शिरःसूत्रा और माणी देवियोको दीपक जलानेके लिए, रुचका, रुचकाशा, रुचकान्ति, और रुचकप्रभा इन चार देवियोंको तीर्थकरका जन्मोत्सव करनेके लिए रसोई करनेके लिए तांबूल देनेके लिए और शय्या आसनके लिए, और अपर पर्वतपर रहनेवाली सुमाला, मालिनी, सुवर्णदेवी, सुवर्णचित्रा, पुष्पचूला, चुलावती, सुरात्रि, शिरसा, इत्यादिक देवियोंको अन्यान्य यथोचित कार्योंके लिए नियत किया। इस तरह मरुदेवी सुखपूर्वक रहने लगी। जब छः महीने वीत चुके, तब वह पुष्पवती हुई। अनेक देवाङ्गनाओने आकर अनेक तीर्थोंके जलसे उनका चतुर्थ स्नान कराया। उसी रात्रिको मरुदेवी अपने पतिके साथ शयन कर रही थी कि पिछली रात्रिको उसने हाथी बैल आदिके सोलह स्वप्न देखे। प्रातःकाल ही उठकर मुखप्रक्षालन दर्शनादिक नित्यक्रियाके अनन्तर अपने पतिके पास जाकर उसने अपने देखे हुए सोलह *स्वप्न कहे। तब राजा नाभिने निमित्तज्ञानसे सोलह स्वप्नोका फल कहा, जिसको सुनकर मरुदेवी अतिप्रसन्न और सन्तुष्ट हुई। आषाढ़ कृष्णा द्वितीयाको सर्वार्थसिद्धिका अहमिन्द्र वहाँसे चयकर श्रीमरुदेवीके गर्भमें अवतीर्ण हुआ अर्थात् आषाढ़ वदी द्वितीयाको श्रीआदिनाथका गर्भकल्याणक हुआ। उस दिन इन्द्रकी आज्ञासे समस्त देवोंने तथा स्वयं इन्द्रने आकर गर्भकल्याणकका उत्सव बड़ी धूमधामसे किया।

इसके पीछे देवाङ्गनाये अनेक प्रकारसे सेवा करने लगी, जिससे मरुदेवीके दिन बड़े सुखसे कटने लगे। जब नौ महीने वीत गये, तब उन्होंने चैत्रकृष्ण नवमीको तीन लोकके गुरु श्रीआदिदेवको उत्पन्न किया। तीर्थकरके जन्म

*१ श्वेत हाथी, २ श्वेत बैल, ३ सिंह, ४ लक्ष्मी, ५ मालायुग्म (दो माला), ६ चन्द्र, ७ सूर्य, ८ मीनयुग्म (दो मछली), ९ कुम्भयुग्म (दो घड़े), १० निर्मल सरोवर, ११ समुद्र, १२ सिंहासन, १३ विमान, १४ हर्म्य, १५ रत्नराशि और १६ अग्नि ये सोलह स्वप्न देखे। इनका फल यही है कि देवाधिदेव त्रिलोकपूज्य श्रीतीर्थंकर देव उत्पन्न होंगे।

होते ही भवनवासी देवोंके घर शंखका, व्यन्तरोंके विलास स्थानमें भेरीका, ज्योतिषियोंके यहाँ सिंहनादका और कल्पवासियोंके घंटाका शब्द होने लगा। सब देवों तथा इन्द्रोंके मुकुट नम्रीभूत होकर सबके आसन कंपायमान हुए। तब इन्द्रने अवधिज्ञानसे श्रीआदिदेवका जन्म हुआ जान इन्द्रकी आज्ञासे समस्त देव अपने अपने वाहनोंपर सवार होकर अयोध्या नगरीमे आये। सौधर्म इन्द्रने अपनी इन्द्राणीको तीर्थंकरदेवको लानेके लिए प्रसूतिघरमें भेजा। वह अपनी मायासे मरुदेवीको कुछ मूर्छित कर एक वैसा ही मायामयी बालक उस जगह रखकर श्रीजिनेन्द्रदेवको बाहर ले आई और उन्हे हाथ जोड़ नमस्कार करते हुए, तथा देखनेके लिए जिसने हजार नेत्र कर लिये है ऐसे इन्द्रको सौंप दिये। सो उसने उन्हें गोदमे लेकर आपको धन्य माना। पश्चात् इन्द्र ऐरावत हाथीपर सवार होकर अपनी समस्त विभूतिके साथ श्रीजिनदेवको सुमेरु पर्वतपर ले गया। और वहाँके पाण्डुक वनकी ईशान दिशामें जो शुभ्र अर्द्धचन्द्राकार पाण्डुक शिला सुशोभित है, उसपर रत्नजड़ित सिंहासनपर विराजमान करके बारह योजन ऊँचे, आठ योजन चौड़े, एक योजन मुखवाले कई करोड़ घड़ोंसे पाँचवे क्षीरसागरका जल लाकर सौधर्म और ईशान इन्द्रने अभिषेक कराया। यह श्रीजिनेन्द्रके अनन्त बलका माहात्म्य था, जो तत्काल उत्पन्न होनेपर भी वे इतना जल पड़नेसे किञ्चित् भी व्याकुल नहीं हुए। स्नान कराकर इंद्राणीने श्रीजिनेन्द्रको समस्त आभूषणोंसे अलंकृत किया। और फिर वहाँसे उसी विभूतिके साथ उन्हें ऐरावत हाथीपर विराजमान कर इन्द्र अयोध्या आये। वहाँ पिताके रत्नमय आँगनमें सुवर्णमय सिंहासनपर श्रीजिनेन्द्रदेवको विराजमान कर इन्द्रने स्वयं नृत्य करना प्रारम्भ किया। उस अनुपम सभाका वर्णन कौन कर सकता है कि जहाँ श्रीजिनेन्द्रदेव तो दर्शक थे और इन्द्र स्वयं नर्तक था इस तरह इन्द्रने भगवानको रिझाया और उनका नाम वृषभ (वृषभदेव वा वृषभनाथ) इसलिए रक्खा कि वृष धर्मको कहते है और धर्म इन्हींसे शोभायमान होगा। पश्चात् इन्द्र जिनेन्द्रदेवको उनके पिताको सौंप समस्त देवोंके सहित अपनी जगहको प्रस्थान कर गया।

श्रीऋषभदेवके बाल्यावस्थामें ही निम्नलिखित दश अतिशय विद्यमान थे। १ निःस्वेदत्व अर्थात् शरीरमें पसीना नहीं आना, २ निर्मलत्व अर्थात् शरीर असन्त निर्मल होना, ३ शुभ्र रुधिरत्व अर्थात् रुधिरका वर्ण शुभ्र दुग्धके समान होना,

४ वज्रवृषभनाराच संहनन, ५ समचतुरस्र संस्थान, ६ सुरूपवान्, ७ सुगन्धमय शरीर, ८ लक्षणयुक्त शरीर ९ अनन्त वल और १० प्रियहितवादित्व अर्थात् प्रिय और हितकारी वाणी। ये दश अतिशय सहज स्वाभाविक थे। तथा मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान ये तीनों ज्ञान उनके परिपूर्ण विद्यमान थे। इस प्रकार श्रीजिनेन्द्रदेव दिनोंदिन बढ़ते हुए सुखसे समय व्यतीत करने लगे।

इधर कल्पवृक्षोंके लोप होनेसे सब प्रजा दुःखित होने लगी। क्षुधासे पीड़ित होकर दुर्बल हुई। यद्यपि नगरके वाहर अनेक जातिके ईख गेहूँ जौ मटर आदिके वृक्ष खड़े थे, जो स्वयं उत्पन्न हुए थे। परन्तु उनको काममे लाना कोई भी नहीं जानता था। तब महाराज नाभि एक दिन अपनी वहुतसी प्रजाको साथ लेकर महाराजा वृषभदेवके यहाँ आये और उनको नमस्कार कर बोले;-महाराज, कोई ऐसा उपाय वतलाइए जिससे समस्त प्रजाको खानेके लिए अन्नादि मिलै और उनकी क्षुधा शान्त हो। इसके उत्तरमे महाराज वृषभदेवने वतलाया कि जो गन्ने (ईख-पुंढेक्षु) स्वयं उत्पन्न हुए है, उनको यत्र अर्थात् कोल्हूमे पेलकर उसके रसको पिओ जिससे भूख दूर हो जायगी। तव श्रीवृषभदेवकी आज्ञानुसार सब प्रजा वैसा ही करके संतुष्ट हुई।

इस प्रकार जव प्रजा सब तरहसे सुखी हो गई, तब एक दिन उसने फिर महाराज वृषभदेवके समीप आकर निवेदन किया:-महाराज, क्या आपके पीछे परम्परासे चलनेवाला आपका वंश इक्ष्वाकु कहा जावे? इसके उत्तरमे महाराज वृषभदेवने भी तथास्तु कहा। तवसे वह वंश इक्ष्वाकु कहलाया।

श्रीवृषभदेवके शरीरका वर्ण तप्त सुवर्णके समान था। उनकी ध्वजामे वृषभ अर्थात् वैलका चिन्ह था। शरीरकी ऊँचाई पाँचसौ धनुप और आयु चौरासी लाख पूर्वकी थी। धीरे धीरे भगवानको यौवनावस्था प्राप्त हुई, जिसे देख इन्द्रने आकर उनसे निवेदन किया;-महाराज, आप अपना विवाह करना स्वीकार कीजिए? श्रीवृषभदेवके भी चारित्रमोहनीय कर्मका उदय था, इसलिए अपना विवाह करना स्वीकार कर लिया। तब महाराज कच्छ और

महाकच्छकी पुत्री यशस्वती और सुनन्दाके साथ उनका विवाह कर दिया गया। और उक्त दोनों स्त्रियोंके साथ वे सुखपूर्वक रहने लगे।

थोड़े दिनके पश्चात् रानी यशस्वतीसे भरत पुत्र हुए। राजा अतिगृद्धके जीवने नरकसे निकलकर सिंहकी पर्याय पाई। (यह वही सिंह था, जिसने पर्वतमें रक्खे हुए धनकी रक्षा की थी और फिर उसे राजा प्रीतिवर्द्धनको बतला दिया था)। सिंह सन्यासपूर्वक शरीर छोड़कर ईशान स्वर्गमें दिवाकरप्रभ देव हुआ। वहाँसे चयकर मतिवर मंत्री हुआ। फिर अधोग्रैवेयकका अहमिन्द्र होकर वज्रनाभिका छोटा भाई बाहु हुआ। वह बाहु उग्र तप करके सर्वार्थसिद्धि गया और फिर वहाँसे चयकर भरत हुआ। राजा प्रीतिवर्द्धनका मंत्री दानकी अनुमोदनासे उत्तम भोगभूमिमें आर्य हुआ। वहाँसे मरकर क्रमसे कनकप्रभ देव, आनन्द पुरोहित, अधोग्रैवेयकका अहमिन्द्र और वज्रनाभिका छोटा भाई पीठ हुआ। यह पीठ घोर तप करके सर्वार्थसिद्धि विमानमें होकर फिर भरतका छोटा भाई वृषभसेन हुआ। पुरोहितका जीव भोगभूमिके आर्य, प्रभंजन देव, धनमित्र, अधोग्रैवेयकके अहमिन्द्र, महापीठ और सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्रकी पर्यायें प्राप्तकर अन्तमें वृषभसेनका छोटा भाई अनन्तवीर्य हुआ। व्याघ्रके जीवने भोगभूमिमें आर्य चित्रांग देव, वरदत्त, अच्युत स्वर्गमें देव, विजय और सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र इस प्रकार पाँच पर्यायें पाईं। अन्तमें सर्वार्थसिद्धिसे चयकर वह भरतका छोटा भाई अनन्त हुआ। वराहका जीव उत्तम भोगभूमिमें आर्य होकर क्रमसे मणिकुंडल देव, राजपुत्र वरसेन (सुविधिका मित्र), अच्युत स्वर्गमें देव, वैजयन्त और सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ। अन्तमें सर्वार्थसिद्धिसे चयकर भरतका छोटा भाई अच्युत हुआ। बन्दरका जीव उत्तम भोगभूमिमें आर्य होकर क्रमसे मनोहर देव, चित्रांगद, अच्युत स्वर्गमें देव, जयन्त, और सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ। फिर वहाँसे च्युत होकर भरतका छोटा भाई वीर हुआ। नकुल दान देनेकी अनुमोदनासे उत्तम भोगभूमिमें आर्य होकर मनोरथ, शान्तमदन, अच्युत स्वर्गमें देव, अपराजित और सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ। वहाँसे चयकर भरतका छोटा भाई वीरके पीछे सुवीर हुआ। इस प्रकार वृषभदेवके यशस्वती रानीसे भरत और उनके छोटे भाई वृषभसेन आदि निन्यानवे पुत्र

हुए । और वह पंडिता मनुष्यलोक और स्वर्गलोक दोनोंके अनेक सुख भोगकर भरतकी बहिन ब्राह्मी हुई ! राजा
प्रीतिवर्द्धनका सेनापति दानकी अनुमोदनासे उत्तम भोगभूमिका आर्य होकर प्रभाकर देव, महाराज वज्रजंघका अकंपन
सेनापति, अधोग्रैवेयकका अहमिन्द्र, वज्रजंघ, नाभिका छोटा भाई सुबाहु और सर्वार्थसिद्धिका अहमिन्द्र हुआ । वहाँसे
चयकर श्रीवृषभनाथकी नन्दा रानीसे सबसे पहले कामदेव बाहुवली हुए । तथा वज्रजंघकी बहिन जो कि पुंडरीककी
मा थी, मनुष्य भव और स्वर्गलोकके नाना प्रकारके सुखोंका अनुभव करती हुई बाहुवलीकी छोटी बहिन सुन्दरी हुई ।
इस प्रकार श्रीवृषभदेवके एकसौ एक पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं ।

एक दिन श्रीवृषभदेवने अपनी दोनो पुत्रियोंको अपने दोनों ओर विठाया। और जो दक्षिण (दायें) हाथकी ओर वैठी थी, उसको दक्षिण (दाये) हाथसे अकरादि वर्ण अर्थात् "अ आ इ ई उ ऊ" इत्यादि स्वर तथा "क ख ग घ ङ" इत्यादि व्यञ्जन सिखलाये, और दूसरी पुत्रीको जो कि वाम पार्श्वकी ओर (बायीं ओर) वैठी थी, उसको बाये हाथसे "इकाई दहाई सैकड़ा हजार" इत्यादि अङ्कविद्या सिखलाई । इसी प्रकार उन्होने भरत आदिक समस्त पुत्रोंको भी पढ़ा लिखाकर समस्त कलाओंमे निपुण कर दिया ।

इस प्रकार थोड़े दिन वीत चुकनेपर एक दिन राजा नाभि फिर अपनी प्रजाको लेकर महाराज ऋषभदेवके पास आए और वोले;-महाराज, अब ईखके रस पीनेसे क्षुधा शान्त नहीं होती, इसलिए कोई अन्य उपाय वतलाइए। तव श्रीवृषभदेवने अठारह कोड़ाकोड़ी सागरसे जो कर्मभूमि नष्ट हुई थी, उसकी रचना फिरसे वतलाई। ग्राम नगरकी रचना करना, घर बनाना आदिक वतलाया । क्षत्रिय वैश्य शूद्र वर्ण स्थापन किये और उनको खेती करना वाणिज्य करना, सेवा वृत्ति करना, इत्यादि जीवनके उपाय वतलाए । इस प्रकार भगवानने कर्मभूमिकी रचनाका प्रारम्भ किया, इसलिए उन्हे युगका कर्ता अथवा सृष्टिका कर्ता कहते है। जब समस्त कर्मभूमिकी सृष्टिका निर्माण करते हुए श्रीऋषभदेवके वीस लाख पूर्व जो कि कुमारावस्थाके थे, वे पूर्ण हो गये, तव इन्द्रने आकर आषाढ़ वदी पड़िवाको उन्हें राज्यपट्ट बाँधा । पश्चात् श्रीऋषभदेवने श्रेयांसके वड़े भाई सोमप्रभ क्षत्रियको राज्याभिषेकपूर्वक राज्यपट्ट बाँधकर

हस्तिनागपुरका राज्य दिया और प्रगट किया कि तुम्हारा वंश कुरुवंश कहलावेगा । अबसे जो तुम्हारे वंशमें उत्पन्न होंगे, वे सब कुरुवंशी कहलावेंगे । तथा अकंपनको राज्यपट्ट बाँधकर उसे वाराणसीका (बनारस या काशीका) राज्य दिया और प्रगट किया कि तुम्हारे वंशका नाम अग्रवंश होगा । इत्यादि अनेक राज्यवंश स्थापन करके भगवानने "हा! मा! धिक्!" इन तीन नीतियोंसे प्रजाका शासन करते हुए त्रेसठ लाख पूर्व राज्य किया । पश्चात् जब केवल एक लाख पूर्वकी आयु शेष रह गई, तब उन्हे वैराग्य उत्पन्न करानेके लिए इन्द्रने श्रीऋषभदेवकी सभामे एक ऐसी नीलांजना नामकी अप्सराका नृत्य कराना प्रारम्भ किया कि जिसकी आयु केवल अन्तर्मुहूर्तकी बाकी थी । वह नीलांजना नर्तिनी श्रीऋषभदेवके सामने अनेक तरहके हाव भावसहित नृत्य करने लगी । परन्तु अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् ही आयु पूर्ण हो जानेसे वह उसी रंगभूमिमे विलयमान हो गई। इन्द्रने झट उसी समय एक दूसरी वैसी ही नीलांजना बना दी । उसके बनानेमें इन्द्रने इतनी शीघ्रता की कि न तो उस नीलांजनाका लोप होना किसीको ज्ञात हुआ और न तान ही बिगड़ने पाई । परन्तु भगवानको यह बात मालूम हो गई । ऐसी दिव्य सभामे ही उसका विलय और मरण होता देखकर उन्हें परम वैराग्य उत्पन्न हुआ । वे तत्काल ही बारह भावनाओंका चिंतवन करने लगे । उसी समय लौकान्तिक देवोने आकर जय जय कहते हुए उनकी स्तुति की, और कहा;-महाराज, आपने यह विचार बहुत अच्छा किया । लोकका कल्याण इसीसे होगा । ऐसा कहकर वे अपने स्थानपर चले गये । पश्चात् भरतको आयोध्या, बाहुबलीको पोदनपुर, वृषभसेनको पुरिमतालपुर, और शेष कुमारोंको काश्मीरका राज्य देकर श्रीऋषभदेव मांगलिक (कल्याण करनेवाला) स्नान करके तथा मांगलिक आभूषण अलंकारोंसे सज्जित होकर देवोंकी बनाई हुई सुदर्शन पालकीपर सवार हुए । उस पालकीको सात पेड़तक भूमिगोचरियोने उठाई, सात पेंड़ विद्याधरोंने उठाई और प्रयाग नामके वनमे इन्द्रने ले जाकर रक्खी । वहाँ श्रीऋषभदेवने पालकीसे उतरकर एक बड़े मण्डपमें प्रवेश किया, जो कि कुवेरने पहलेसे ही बना रक्खा था । उसमे पूर्व दिशाके सम्मुख खड़े होकर उन्होने कच्छ आदिक चार हजार क्षत्रियोंके साथ दीक्षा ग्रहण की । प्रथम ही श्रीऋषभदेवने उन समस्त क्षत्रियोके साथ " नमः सिद्धेभ्यः " कहकर पंचमुष्टी लोच किया और छः

महीनेका उपवास ग्रहण किया। इस प्रकार वे चैत्रकृष्ण नवमीके दिन निर्ग्रन्थ अर्थात परिग्रहरहित दिगम्बर मुनि हुए। और छः महीनेका प्रतिमायोग धारण कर विराजमान हुए। उनके तपःकल्याणक होनेसे प्रयाग तीर्थ कहलाया। समस्त देवोंने तथा इन्द्रोंने भगवानके निःक्रमण कल्याणकी पूजा की। और उनके केशोंका क्षीरसमुद्रमें प्रवाह किया। इसके पश्चात् सब देव अपने अपने स्थानको चले गये।

भगवान् छः महीनेतक प्रतिमायोगसे ही विराजमान रहे। कच्छ महाकच्छादिक और समस्त क्षत्रिय दो महीनेतक तो उनके साथ उपवासित रहे। परन्तु आगे वे क्षुधा तृषाका दुःख न सह सके और इसलिए फलादिक खाने और जलादिक पीनेके लिए उद्यमी हुए। यदि उस समय श्रीऋषभदेव प्रतिमायोगसे विराजमान न हुए होते तो वे सबको आहार लेनेकी विधि बतलाते। परन्तु वे मौन धारण किये हुए थे, इसलिए उसे विधिको नहीं बतला सके, और कच्छादिकको स्वयं यह विधि मालूम नहीं थी। इसलिए वे सब भ्रष्ट होने लगे। वनदेवताने उनको दिगम्बर वेशसे च्युत होते हुए रोका तो भी अनेकोंने भौतिक आदिक नाना प्रकारके सन्यासियोंके वेश धारण कर लिये।

कुछ दिन पीछे कच्छ और महाकच्छके पुत्र नमि और विनमि आये और श्रीऋषभदेवके चरणकमलोंपर पड़कर कहने लगे;-नाथ, हमारे लिए भी कोई देश दीजिए। परन्तु महाराज तो मौन धारण किये हुए विराजमान थे, उनके लिए यह एक उपसर्ग ही हुआ, इसलिए उसे दूर करनेके लिए धरणेन्द्रने आकर उन दोनों राजकुमारोंसे कहा;-महाराजने आपके लिए विजयार्द्धका राज्य दिया है, आप मेरे साथ आइए, मैं आपको वहाँ ले जाकर आपका राज्य देता हूं। ऐसा कहकर धरणेन्द्र उन्हें विजयार्द्ध पर्वतपर ले गया और उनको वहाँके राजा बना दिये।

क्रमशः काल व्यतीत होनेपर जब श्रीऋषभदेवके छः महीने पूरे हो गये, तब उन्होंने आहार लेनेके लिए नगरमें प्रवेश किया। परन्तु तबतक आहार देनेकी विधि किसीको भी मालूम नहीं थी, इसलिए श्रीऋषभदेव जिस जिस नगरमें प्रवेश करते थे, उस नगरके राजा व स्वामी कन्या रत्नादिक भेट करने लगे, किसीने भी विधिपूर्वक आहार नहीं दिया। उस समय भरत महाराज भी उनके समीप आये और चरणकमलोंमें पड़कर निवेदन किया;-महाराज,

इस प्रकार आप प्रत्येक नगरमे क्यो फिरते हैं ? अपने नगरमें आकर पहिलेके समान राज्य कीजिए । परन्तु महाराज तो मौनावलम्बी थे, इसलिए कुछ उत्तर नहीं दिया । इससे भरतका चित्त बहुत खेदखिन्न हुआ और अन्तमे वे अपने नगरको लौट गये ।

श्रीऋषभदेवने आहार लेनेके लिए छः महीने तक परिभ्रमण किया, परन्तु कहीं भी आहार न मिल सका । अन्तमे वे भ्रमण करते हुए वैशाख शुक्ला द्वितीयाके दिन दोपहर पीछे हस्तिनागपुरके बाहरके उद्यानमे पहुँचे और वहाँ प्रतिमायोगसे विराजमान हुए । वहाँके राजा सोमप्रभके भाई श्रेयांसने उसी रात्रिके पिछले पहर अपने घरमें कल्पवृक्षका प्रवेश आदि अनेक शुभ स्वप्न देखे । प्रातःकाल ही उसने अपने भाई सोमप्रभसे अपने स्वप्न देखनेके समाचार कहे । तब सोमप्रभने उन स्वप्नोंका फल कहा कि कोई महात्मा तेरे घर आवेंगे । इसके पश्चात् वैशाख शुक्ला तृतीयाको मध्यान्हके समय श्रीऋषभदेवने आहार लेनेके लिए नगरमें प्रवेश किया । उनको देखनेसे लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ । लोग उनको बड़े कौतुकसे देखने लगे । श्रीऋषभदेव गमन करते हुए राजमहलके सामने गये । इनको सामने आते हुए देखकर सिद्धारक नामके द्वारपालने महाराज सोमप्रभसे जाकर निवेदन किया :- महाराज, श्रीऋषभदेव सामने आ रहे है । तब सोमप्रभ और श्रेयांस दोनो भाई उनके सम्मुख आये । श्रीऋषभदेवके दर्शन करनेहीसे श्रेयांसका जातिस्मरण हुआ जिससे उन्हे पूर्व भवके सब कार्य स्मरण हो आये । उनमें यह भी स्मरण हो आया कि मुनिको आहार देनेके लिए इस प्रकार स्थापन करते है, इस तरह आहार देते है । आहार देनेकी विधि जान श्रेयांसने श्रीऋषभदेवको आहारके लिए पड़गाहन किया । और सप्त[1] गुणोसे भूषित होकर नवधा[2] (नौ प्रकारकी) भक्तिसे सबसे प्रथम होनेवाले श्रीआदिदेव परमेश्वरको आहार दिया । भगवानने तीन अंजलि इक्षुरस अर्थात् ईखका रस ग्रहण किया । और

१-ऐहिक सुखकी इच्छा नहीं रखना १, क्षमा २, निष्कपटता ३, ईर्षारहित होना ४, हर्ष-विषाद नही करना ५-६, अभिमान नही करना ७, ये सात दाताके गुण है । २-पडिगाहन १, उच्च स्थान २ पादोदक ३, अर्चन ४, प्रणाम ५, मन वचन कायकी शुद्धि ६-७-८ और आहारशुद्धि ९ ।

उससे प्रगट कर दिया कि यह अक्षयदान है। उसी समय राजा श्रेयांसके घर पञ्चाश्चर्य हुए और उस दिनकी तृतीया 'अक्षयतृतीया' कहलाई।

श्रीऋषभदेवकी चर्या कल्याणके साथ पूर्ण हुई। राजा श्रेयांसने उनको आहार दिया, यह सुनकर भरतको बहुत सन्तोष हुआ और वे स्वयं राजा श्रेयांसके यहाँ गये। उनका राजा सोमप्रभ और श्रेयांसने बड़ा सत्कार कर उन्हें अपने महलोंमें ले जाकर सुवर्ण सिंहासनपर विराजमान किया। भरतने राजा श्रेयांससे पूछा:—आपने महाराज ऋषभदेवका चित्त कैसे जाना? उत्तरमें राजा श्रेयांस कहने लगे,—इस भवके आठवें भवमें (आठ भव पहले) श्रीऋषभदेवका जीव वज्रजंघ नामका राजा था और उस समय मैं अर्थात् मेरा जीव उन महाराज वज्रजंघकी देवी श्रीमती था। उस समय हम दोनोंने अर्थात् पति पत्नीने सर्प नामके सरोवरके किनारेपर दो चारण मुनियोंको आहार दिया था। उस आहार दानके फलसे राजा वज्रजंघ तो भोगभूमिमें आर्य हुए और वहाँसे चयकर श्रीधर देव, सुविधि राजा, अच्युत स्वर्गमें इन्द्र, वज्रनाभि चक्रवर्ती, और सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र होकर ये श्रीऋषभदेव हुए हैं। और वज्रजंघकी देवी श्रीमतीका जीव वहाँसे शरीर छोड़कर भोगभूमिमें आर्या, स्वयंप्रभ देव, राजा सुविधिका पुत्र केशव, अच्युत स्वर्गमें प्रतीन्द्र, धनदेव और सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र होकर मैं राजा श्रेयांस हुआ हूँ। मुझे मुनिके दर्शन होनेसे जातिस्मरण हो आया और इसीलिए मुनिके आहार देनेकी विधि मैंने जानी। महाराज भरत यह कथा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। राजा श्रेयांसकी बहुत प्रशंसा की। और थोड़े दिन वहाँ रहकर अपने घर लौटे आये।

इधर श्रीवृषभनाथ स्वामीने एक हजार वर्ष पर्यन्त तपश्चरण किया। एक दिन वे पुरिमतालपुर नगरके उद्यानमें वट (बड़) वृक्षके नीचे विराजमान थे। वहाँ शुक्लध्यानमें लीन हुए। और उसके प्रभावसे फाल्गुण कृष्णा एकादशीको ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया[1] कर्मोंको नष्ट किया, जिससे उसी समय श्रीभगवानके दिव्य केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। उनका शरीर ऐसा ज्योति-स्वरूप प्रकाशमान हो गया, मानो स्फटिक

१ ये चारों कर्म आत्माके गुणोंको घात करनेवाले हैं, इसलिए इनका नाम घातिकर्म है।

कोठे थे। इन कोठोंके बाद बहुतसी जगह छोड़कर चारों ओर स्फटिकमयी सुन्दर वेदी बनी हुई थी। उस वेदीके मध्य भागमें एकपर दूसरा और दूसरेपर तीसरा इस तरह मनोहर तीन सिंहासन शोभा बढ़ा रहे थे। उनपर अपने शरीरकी अपरिमित प्रभासे समवसरणको शोभित करते हुए श्रीकेवली भगवान् चार अंगुल ऊँचे अन्तरीक्षमें विराजमान थे। उस समवसरणमें जितने शाल थे और जितनी वेदियाँ थीं, उन सबमें प्रत्येक दिशामें एक एक इस तरह चारों दिशाओंकी ओर चार चार गोपुर अर्थात् बड़े बड़े दरवाजे थे। और प्रत्येक गोपुरके समीप आठ मंगलद्रव्य रक्खे हुए थे, नौ निधि रक्खी हुई थीं, तथा प्रत्येक गोपुर सौ सौ तोरणोंसे शोभायमान था। सबसे बाहरी शालका जो गोपुर था, वह सुवर्णमय अर्थात् सोनेका बना हुआ था। उसके पश्चात् छः गोपुर चाँदीके बने हुए थे और उनके पश्चात् दो गोपुर नाना प्रकारके रत्नोंसे मिली हुई चाँदीके बने हुए अपनी निराली ही शोभा दिखा रहे थे। बाहरी तीन गोपुरोंपर ज्योतिष्क देव रक्षक थे और फिर दो गोपुरोंकी रक्षाका भार यक्ष जातिके देवोंपर था। और उसके बाद दो गोपुरोंपर नागकुमार जातिके देव तथा भीतरी दोनों गोपुरोंपर कल्पवासी जातिके देव बैठे हुए थे। बाह्य गोपुरके मध्य मार्गमें मानस्तम्भ शोभायमान था। दूसरे और तीसरे गोपुरके मध्य भागमें केवल आकाश ही था। चतुर्थ गोपुरके मध्य मार्गके दोनों बाजुओंकी ओर दो धूपघटोंसे शोभित दो नृत्यशाला शोभायमान थीं। उन नृत्यशालाओंके बाद फिर आकाश और उसके बाद दो शाल अर्थात् कोट थे कि जिनका वर्णन ऊपर लिखा जा चुका है। उन कोटोंके बाद नौ स्तूप और स्तूपोंके बाद फिर आकाश था। उक्त रचनाके अनुसार उस समवसरणमें नौ गोपुर सुशोभित थे। यह एक दिशाकी रचना दिखाई गई है, परन्तु पाठकोंको इसी तरह चारों दिशाओंकी समझ लेनी चाहिए।

श्रीभगवान् ऋषभदेवकी यक्षिणी चक्रेश्वरी और यक्ष गोमुख हुआ। चार घाति या कर्मके नष्ट होनेसे भगवानके दश अतिशय उत्पन्न हुए। १ चारसौ कोश पर्यन्त कहीं भी दुर्भिक्ष नहीं था अर्थात् जहाँ समवसरण विराजमान था, वहाँसे चारों दिशाओंकी ओर सौ सौ कोश पर्यन्त सब जगह सुभिक्ष (सुकाल) ही था। चारसौ कोशके अन्दर कहीं भी दुष्काल नहीं पड़ता था। २ दूसरा अतिशय 'गगन-गमनता' अर्थात् आकाशमें निराधार गमन करना था। ३

पर्वतसे उदय होते हुए करोड़ सूर्योंका बिंब स्फुरायमान हो। वह पृथ्वीसे पाँच हजार धनुष ऊँचा आकाशमें निराधार स्थित रहा। समस्त देवोंके तथा इन्द्रोंके आसन कंपायमान हुए, जिससे अवधिज्ञान द्वारा सबने जान लिया कि श्रीभगवानके केवलज्ञान हुआ है। पश्चात् इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने आकर समवसरणकी रचना की, जिसका वर्णन संक्षेपसे इस प्रकार है।

समवसरणमें ग्यारह भूमियाँ थीं। पृथ्वीसे पाँच हजार धनुष ऊँची एक शिला निर्माण की, जो चारों दिशाओंकी ओर लम्बी चौड़ी गोलाकार थी और जिसमें बीस हजार सीढ़ी नीचेसे ऊपरतक सुन्दररूपसे लगी हुई थीं। वह सुन्दर शिला हरित नील वर्णस्वरूप अतिशय शोभायमान थी। शिलाके ऊपर एक ऐसे शालकी (कोटकी) रचना की कि जिसमें रत्नमयी चार गोपुर (बाहरके बड़े दरवाजेका नाम गोपुर है) थे। उन गोपुरोंकी अन्तरालवर्ती भूमिमें पाँच पाँच बड़े बड़े महलोंका अन्तर देकर सुन्दर जिनालय शोभायमान थे। उनके आगे एक सुवर्णमयी (सोनेकी) ऐसी सुन्दर वेदी बनी हुई थी कि जिसके मनोहर चार गोपुर थे। वेदीके आगे चलकर गहरी स्वच्छ जलसे भरी हुई खातिका अर्थात् खाई बनी हुई थी। खाईके आगे एक और वैसे ही चार गोपुरसहित सुवर्णमयी वेदिका बनाई गई थी। वेदिकाके सामने एक मनोहर वन था। उस वनके वृक्षोंमें तथा उनके अन्तरालमें सुन्दर बेलें फैल रही थीं, और वनके मध्य भागमें एक सुवर्णमयी शाल बनाया गया था। इस शालके भीतरी ओर एक सुन्दर उपवन बना हुआ था। उसके भीतर एक सुवर्णमयी वेदी और वेदीके बाद ध्वजाओंका समूह फहरा रहा था। ध्वजाओंके बाद एक रजतमय अर्थात् चाँदीका शाल (कोट) था और उस शालके भीतरी ओर अनेक कल्पवृक्ष शोभायमान् थे। कल्पवृक्षोंके पश्चात् भी एक सुवर्णमयी वेदी बनी हुई थी। उस वेदीके अन्दर अनेक जातिके भवन बने हुए थे। इन भवनोंके बाद बहुतसा अन्तर छोड़कर स्फटिकमयी (स्फटिकमणिका बना हुआ) सुन्दर स्वच्छ शाल शोभायमान था। इस स्फटिकमयी शालके बाद बारह कोठे बने हुए थे। मनुष्य तिर्यंच देव आदि श्रोताजनोंके बैठनेके लिए ये ही बारह

१—१ मुनि, २ कल्पवासिनी देवी, ३ आर्यिका, ४ ज्योतिष्कोंकी देवी, ५ व्यन्तरी, ६ भवनवासिनी देवी, ७ भवनवासी देव, ८ व्यन्तर, ९ ज्योतिष्क, १० कल्पवासी, ११ मनुष्य और १२ तिर्यञ्च ये क्रमसे बारह कोठोंमें बैठते थे।

तीसरा अतिशय 'अप्राणिवधता' था। इस अतिशयके प्रभावसे भगवानके समवसरणमें कोई जीव किसी भी जीवका घात नहीं कर सकता था। ४ चौथे अतिशयका नाम 'भुक्तेरभावता' अर्थात् भोजनका अभाव होना था। श्रीभगवान् सदा निराहार रहते थे। ५ पाँचवाँ अतिशय 'उपसर्गाभावता' अर्थात् उपसर्गका अभाव होना था। भगवानको कभी किसी प्रकारका भी उपसर्ग नहीं होता था। ६ छट्ठा अतिशय 'चतुरास्यता' अर्थात् चारो दिशाओंमें भगवानके चार मुख देख पड़ते थे। ७ सातवाँ अतिशय 'सर्वविद्येश्वरता' अर्थात् समस्त विद्याओंके जानकार थे। ८ आठवाँ अतिशय 'अच्छायता' अर्थात् श्रीभगवानके परम औदारिक शरीरकी छाया पड़ती नहीं थी। ९ नौवाँ अतिशय 'अपक्ष्मकंपता' आर्थात् भगवानके पलकोंकी टिमिकार नहीं लगती थी। १० दशवाँ अतिशय 'समप्रसिद्धनखकेशता' अर्थात् भगवानके नख केश सदा समान ही रहते थे, कभी बढ़ते नहीं थे। इस तरह ये दश अतिशय घातिकर्मके क्षय होनेसे हुए थे।

भगवानके इन दश अतिशयोंके सिवाय चौदह अतिशय देवकृत थे। १ पहला अतिशय 'सर्वमागधीभाषा' अर्थात् सबकी अपनी अपनी मातृभाषाका होना था। भगवानकी अनक्षरमयी दिव्यध्वनि भी समवसरणमें आये हुए समस्त श्रोताजनोंकी निज मातृभाषामें परिणत होती थी। २ दूसरा अतिशय 'सर्वजनमैत्री' अर्थात् समवसरणमें आये हुए सब जीवोंके सर्वथा मैत्रीभाव ही था, चाहे उनमें जातीय वैर क्यों न हो। ३ तीसरा अतिशय 'सर्वर्तुकफलदाद्युपयुता-सभामही' अर्थात् समवसरण समस्त ऋतुओंके फल पुष्प आदिकोंसे शोभित रहता था। ४ चौथा अतिशय 'रत्नमयीमही' अर्थात् समवसरणकी समस्त भूमि रत्नमयी (रत्नोंसे जटित अथवा रत्नोंकी बनी हुई) थी। ५ पाँचवाँ अतिशय 'विहारानुकूलमारुत' अर्थात् विहार करनेके योग्य शीतल मंद सुगंध समीर चलना था। ६ छट्ठा अतिशय 'मरुत्कुमाराणां धूल्याद्युपशान्तिनयनं' अर्थात् वायुकुमार देवों द्वारा धूलिकी शान्ति होना था। वायुकुमार जातिके देव सदा धूलिको शान्त रखते थे, धूल उड़ने नहीं पाती थी। ७ सातवाँ अतिशय 'तडित्कुमाराणां गंधोदकवर्षणं' अर्थात् मेघकुमार जातिके देव समवसरणमें गंधोदककी वर्षा करते थे। ८ आठवाँ अतिशय 'पुरः पृष्ठतश्च पादन्यासे सप्तकमलकरण' अर्थात् भगवानके गमन करनेमें जहाँ उनका पैर पड़ता था, वहाँ उनके पैरके नीचे आगे पीछे दोनों जगह सात सात कमलोंकी

रचना देव करते थे। ९ नौवाँ अतिशय 'पृथिव्या हर्षः' अर्थात् पृथिवीको हर्ष होना था। १० दशवाँ अतिशय 'जनमोदन' अर्थात् मनुष्योंको आनन्द होना था। आ समवसरणमें आये हुए समस्त जीव सदा आनन्दमें मग्न रहते थे। ११ ग्यारहवाँ अतिशय 'गगननिर्मलता' अर्थात् आकाश सदा निर्मल रहता था। १२ बारहवाँ अतिशय 'सुराणां परस्पराह्वानं' अर्थात् देवोंका परस्पर बुलाना था। समस्त देव हर्षित होकर भगवानके दर्शन पूजन स्तुति आदि करनेके लिए सदा एक दूसरेको बुलाते थे। १३ तेरहवाँ अतिशय 'धर्मचक्र' अर्थात् भगवानके गमन करते समय सबसे आगे धर्मचक्र चलता था, तथा भगवानकी स्थित अवस्थामें वह समवसरणके सामने ठहरा रहता था। और १४ चौदहवाँ अतिशय अष्ट मंगलद्रव्य थे। इस प्रकार दश अतिशय देहज अर्थात् शरीरसे उत्पन्न हुए, दश अतिशय घातिकर्मके क्षय होनेसे हुए, और चौदह अतिशय देवोपनीत, सब मिलकर भगवानके चौंतीस अतिशय थे। इनके सिवाय उनके सिंहासन, छत्रत्रय (तीन छत्र), दुंदुभि, पुष्पवृष्टि, चामर, भामण्डल, दिव्यध्वनि और अशोकवृक्ष ये आठ प्रातिहार्य थे। चौंतीस अतिशय और आठ प्रातिहार्य ऐसे ब्यालीस गुण और चार अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य, अनन्त दर्शन और अनन्तसुख ये सब मिलकर छयालीस गुण हुए। इन छयालीस गुणोंसे भूषित भगवान समवसरणमें विराजमान थे। समस्त देव भगवानकी पूजा करनेके लिए आये और यथायोग्य पूजा स्तुति करके अपने अपने स्थानको चले गये।

अथानन्तर—पुरिमताल नगरका राजा वृषभसेन भी बड़ी विभूतिके साथ समवसरणमें आया और संसाररूपी पर्वतको वज्रके समान अर्थात् संसारके परिभ्रमणको नाश करनेवाले श्रीजिनेन्द्र देवकी पूजा स्तुति करके उसने विरक्त होकर अपने पुत्र अनन्तसेनको राज्य दे दिया और स्वयं श्रीजिनेन्द्रदेवके पादमूलमें दीक्षित हुआ। वृषभसेनके अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ और वह श्रीवृषभदेवका प्रथम गणधर हुआ।

इधर अयोध्या नगरमें महाराज भरत अपनी सभामें विराजमान थे। उनके चारों ओर बड़े बड़े शूर वीर तथा मन्त्री पुरोहित आदि बैठे हुए थे। इतनेमें तीन पुरुष महाराज भरतसे कुछ निवेदन करनेके लिए बाहरसे आये।

एकने कहा:-महाराज, आपकी महारानी सुन्दरीके पुत्र हुआ है। दूसरेने कहा;-आपकी आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है और तीसरेने कहा;-ऋषभदेवको केवलज्ञान प्राप्त हुआ है। महाराज भरतने ये तीनों शुभ समाचार एक ही साथ सुनकर विचार किया कि संतानवृद्धि अर्थात् पुत्रादिक होना और राज्यकी वृद्धि अर्थात् चक्ररत्न उत्पन्न होनेसे छहो खण्डका राज्य मिलना, ये दोनो ही धर्मके प्रभावसे उत्पन्न होते है, इसलिए सबसे पहिले भगवानके केवलज्ञान होनेका उत्सव मनाना चाहिए। ऐसा विचार कर वे इन्द्रकीसी लीलाके साथ अर्थात् अनेक प्रकारकी सेना बाजे गाजे चमर छत्र आदि विभूतिके साथ वंदना करनेके लिए निकले। समवसरणमें जाकर उन्होने श्रीजिनेन्द्रदेवके चरण कमलोकी पूजा तथा स्तुति की। इसके बाद वे गणधरादिक अन्य मुनियोकी वंदना करके मनुष्योंके कोठेमें जा बैठे। राजा सोमप्रभ और श्रेयांस ये दोनो भाई जयको राज्य देकर श्रीभगवानके पादमूलमें दीक्षित हुए। तथा महाराज भरतके छोटे भाई अनन्तवीर्य भी भगवानके पादमूलमें दीक्षित हुए। ये तीनो ही अर्थात् सोमप्रभ श्रेयांस और अनन्तवीर्य अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान प्राप्त कर भगवान् ऋषभदेवके गणधर हुए। श्रीऋषभदेवकी ब्राह्मी और सुन्दरी दोनो पुत्रियाँ कुमारी अवस्थामें ही अनेक स्त्रियोके साथ दीक्षित हुई और दोनो ही आर्यिकाओमें मुख्य कहलाई। महाराज भरत भगवानके मुखसे निकलती हुई अमृतके समान दिव्यध्वनिको सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और नमस्कार कर अपने घर लौट आये। पुत्र होनेका उत्सव मनाया और पुत्रजात कर्म अर्थात् पुत्रजन्मकी क्रिया की। उसके पीछे चक्ररत्नकी पूजा करके वे किसी शुभमुहूर्त्तमें दिग्विजय करनेके लिए निकले। मार्गमें प्रयाण भेरीके शब्दोंसे दशो दिशा व्याप्त हो रही थीं। साथमें चारों ओर छहो प्रकारकी सेना चल रही थी। जिनके पैर तलोकी धूलि उड़कर आकाशमें इस तरह छा गई थी जिससे सूर्य भी आच्छादित हो गया था। कुछ दिनोमें वे कटकसहित गंगाके किनारे पहुँचे और अच्छा स्थान देखकर ठहर गये। वहाँसे गंगा नदीके किनारे २ चल वहाँ पहुँचे, जहाँ कि गंगा नदी समुद्रमें जाकर मिली है। वहाँ पहुँचनेपर इनको यह चिन्ता हुई कि समुद्रके भीतर जो मागध द्वीप है, उसके स्वामी मागधामरको किस तरह जीत सकेंगे? उनके विजय करनेका क्या उपाय है? इस चिन्ताने महाराज भरतको कुछ खिन्न कर

दिया था। परन्तु रात्रिके पिछले भागमें उन्होंने स्वप्नमें किसीको यह कहते सुना:-भरतेश्वर, तुम रथपर सवार होकर समुद्रमें प्रवेश करो। तुम्हारा रथ बारह योजन जाकर ठहर जायगा और फिर वहाँसे तुम उस द्वीपके रहनेवालोंपर बाणोंकी वर्षा कर सकोगे। यह स्वप्न देख प्रातःकाल ही भरतने वैसा ही किया। रथ बारह योजनपर जाकर ठहर गया, तब उन्होंने अपना बाण छोड़ा। उस द्वीपका स्वामी मागधामर महाराज भरतके नामका बाण देख और कुछ आश्चर्य करके उस बाणके आनेमें कुछ आक्षेप करने लगा। चतुर मंत्रियोंने उसको समझाकर शान्त किया और भरतके चक्रवर्ती होनेके समाचार समझाये। तब राजा मागधामर बहुतसी भेट लेकर भरतके सामने आया। महाराज भरतने भी उसको अपना सेवक बनाकर वापिस लौटा दिया। इसके बाद महाराज भरतने लवणसमुद्र और उपसमुद्रके बीचवाले उपवनके मार्गसे पश्चिम दिशाको चलना प्रारम्भ किया। चलते चलते वैजयन्त नामके गोपुरके समीप पहुँचे और उसको पारकर वरतनु नामके द्वीपके अधिपति वरतनुको उसी तरह विजय किया, जैसे मागधामरको किया था। वहाँसे फिर पश्चिम दिशाकी ओर गमन किया और वहाँपर पहुँचे, जहाँ सिंधु नदी समुद्रमें मिलती है। समुद्रके किनारेपर डेरा दिया। वहाँ प्रभास नामके द्वीपके अधिपति राजा प्रभासको जीता। वहाँसे चलकर सिंधु नदीकी तराईका रास्ता लिया और उत्तर दिशाकी ओर चलकर विजयार्द्ध पर्वतके समीप डेरा दिया। महाराज भरत वहीं रहे। परन्तु उनके सेनापतिने कृतकमल और विजयार्द्धको जीतकर अपनी समस्त सेना म्लेच्छ खंडकी ओर भेज दी। और आप स्वयं चक्रीके अश्व रत्नपर (रत्नरूप घोड़ेपर) सवार हो, विजयार्द्ध पर्वतकी तमिश्रा गुफाके समीप पहुँचा। वहाँ घोड़ेका मुख पश्चिम दिशाकी ओर किये हुए गुफाके द्वारपर पहुँचकर उसने दंड रत्नको बड़े जोरसे मारा और तत्काल ही घोड़ेको बहुत तेज गतिसे लौटा लाया। सेनापतिके ऐसा करनेका यह कारण था कि उस गुफामें महा ज्वालास्वरूप ऊष्मा भरी थी, जिसकी लपट दरवाजा खुलते ही दरवाजेके बाहर निकली। यदि सेनापति घोड़ेको एकदम नहीं भगाता, तो वह उसी ज्वालामें जल मरता। और घोड़ेको शीघ्र भगानेके लिए ही उसका मुंह पश्चिमकी ओर किया गया था। वह ज्वाला धीरे २ छह महीनेमें शान्त हुई।

द्वारकी शिलाको हटाकर वह सेनापति पश्चिम म्लेच्छ खंडकी ओर गया और वहाँके समस्त राजाओंको युद्धमें जीत उन सबको साथ लिये हुए उसी विजयार्द्धकी गुफाके पास भरत महाराजसे आ मिला। चक्रवर्तीने उक्त राजाओंको अपने आधीन और आज्ञाकारी जान प्रसन्नतापूर्वक विदा कर दिये। इसके पश्चात् सेनापतिने तमिश्रा गुफामें प्रवेश किया। वहाँ अंधकार अधिक था, इस कारण कांकणी रत्नसे सूर्य चन्द्रमा लिखकर उनके प्रकाशकी सहायतासे वह उत्तर म्लेच्छ खंडमें पहुँचा। प्रथम ही मध्य खंडमें प्रवेश करके वहाँ उसने अपना सम्पूर्ण कटक चर्म रत्नपर स्थापित किया और ऊपर छत्र रत्न रख दिया। ऐसा करनेसे दोनोंका आकार मुर्गीके अंडे जैसा हो गया। पश्चात् वर्त आदि म्लेच्छ राजाओंके साथ युद्ध होने लगा। जब ये लोग हारने लगे, तब उन्होंने अपने कुलदेव मेघकुमारोंकी शरण ली। वे आकर चक्रवर्तीके कटकपर उपसर्ग करने लगे; परन्तु उन रत्नोंको भेदनेमें असमर्थ होकर वे सेनापतिसे लड़ने लगे। सेनापतिने घोर युद्ध करके उनको हरा दिया और समस्त राजाओंके राज्यचिन्ह छीन मेघोंसरीखा नाद किया। इससे प्रसन्न हो भरत महाराजने जय सेनापतिका नाम मेघेश्वर रख दिया। इस प्रकार तीन उत्तर म्लेच्छ खंडोंको जीतकर चक्रवर्तीने विद्याधरोंको जीतना प्रारंभ किया।

राजा नमि विनमि स्वयं आकर अपने भानजे भरत महाराजको अपनी पुत्री सुभद्रा देकर सेवक हो गये। पश्चात् चक्रवर्तीने हिमवत् कुमारोंको जीतकर वृषभ पर्वतपर अपना नाम लिखा। वहाँसे चलकर नाट्यमालको विजय किया और फिर विजयार्द्ध पर्वतके समीप आकर उस पर्वतकी कांडप्रपात नामकी गुफाका दरवाजा खोला। अपनी समस्त सेनासहित उसी दरवाजेसे वे आर्य खंडमें पहुँचकर पूर्व म्लेच्छ खंडमें गये और वहाँ भी अपना झंडा स्थापन कर फिर आर्य खंडमें कैलाश पर्वतके समीप आ निकले। वहाँ देवाधिदेव श्रीवृषभदेवकी पूजा स्तुति करके वे अपनी राजधानीको लौटे। उस समय उन्हें अयोध्यासे निकले साठ हजार वर्ष बीत चुके थे। इतने दिनोंके बाद उन्होंने फिर अयोध्यामें प्रवेश किया परन्तु उनका चक्र रत्न नगरमें प्रवेश न कर सका। वह गोपुरके बाहर ही रुक गया। इसका कारण यह था कि चक्रवर्तीकी सेनाके चलते समय सबसे आगे चक्र ही रहता है। उसका यह नियम है कि जिस नगरमें चक्रवर्तीकी आज्ञाका

उल्लंघन करनेवाला रहता है, उस नगरमें वह प्रवेश नहीं करता, जबतक कि वह आज्ञा न मानने लगे। चक्रके रुकनेसे समस्त सेना रुक गई। भरतने इसके रुकनेका कारण पूछा। तब मन्त्रीने निवेदन कियाः—महाराज, आपके भाई आपकी आज्ञामें नहीं है, इसीलिए चक्र रुका है। यह सुनकर चक्रवर्तीने नगरके बाहर ही छावनी डाल अपने भाइयोंके समीप आज्ञा भेजी कि मैं राजा हूँ, आप लोग मेरी आज्ञामें रहैं। इस आज्ञाको बाहुबलीको छोड़ और सब भाइयोंने मान ली, साथ ही वे सब भाई अपने पिता श्रीऋषभदेवके समीप जाकर दीक्षित हो गये; परन्तु बाहुबलीने उस आज्ञाके उत्तरमें कहाः—भरत यदि मेरे बाणदर्भकी शय्यापर शयन करै तो मैं उसको बड़ी कृपाके साथ अयोध्याकी थोड़ीसी जगह रहनेके लिए दूँगा, अन्यथा नहीं। दूतने आकर जब यह सब भरतसे कहा, तब वे युद्ध करनेके लिए तैयार हुए। दोनो ओरसे सेना तैयार हो गई; । परन्तु सेनायुद्ध रोककर दोनो भाइयोको ही बल आजमानेकी सम्मति दी गई। तदनुसार दोनोंके दृष्टियुद्ध, मल्लयुद्ध और जलयुद्ध इस प्रकार तीन युद्ध हुए। और तीनोंमे भरतकी हार हुई। परन्तु अन्तमे बाहुबलीने विरक्त होकर भरतको प्रणाम किया और क्षमा माँगकर अपने पुत्र महाबलीको उन्हे सौंप उनके रोकनेपर भी श्रीऋषभदेवके पास जा दीक्षा ले ली। थोड़े ही दिनोंमे वे सकल आगमके पारगामी हो एकविहारी हुए और किसी महाअरण्यमे प्रतिमा योग धारण कर विराजमान हुए। उसी योगमे स्थिर हुए उनको बहुत दिन हो गये, इसलिए शरीरपर बेल लता आदि चढ़ गई। कभी कभी कोई विद्याधरी उनके शरीरपर चढ़ी हुई लताओंको हटा देती थी। बाहुबलीने जब योग धारण किया था, उससे एक वर्ष पीछे महाराज भरत श्रीऋषभदेवके दर्शन करनेके लिए गये। और मार्गमे महातपस्वी बाहुबलीके भी दर्शन करते गये। वंदनाके पश्चात् उन्होने पूछाः—भगवन्, अभीतक घोर वीर तपस्वी श्रीबाहुबलीके केवलज्ञान क्यो उत्पन्न नहीं हुआ? श्रीजिनेन्द्रदेवने कहाः—अब तक उनके हृदयमे मान-कषायजनित शल्य लगी गई है। वे अभी तक यही विचार रहे है कि यद्यपि मैने समस्त परिग्रह छोड़ दिया है, तथापि जिस पृथ्वीपर मैं खड़ा हूँ, वह भरत चक्रवर्तीकी ही है। जब उनके हृदयसे यह शल्य निकल जायगी तभी केवलज्ञान उत्पन्न होगा। यह सुन भरत चक्रवर्ती बाहुबलीके समीप गये। उनके चरण कमलोंको नमस्कार कर अतिशय विनयके

साथ स्तुतिरूपमे उन्हे नाना प्रकारसे समझाकर शल्यरहित किया। शल्य दूर होते ही उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। साथ ही गंधकुटी दिव्यसभा आदिक विभूति भी उत्पन्न हुई। तब भरत चक्री भगवान् बाहुबली केवलीकी पूजा करके नगरको लौट आये और बाहुबलीके पुत्र महाबलीको पोदनापुरका राज्य दे आप चक्रवर्तित्वकी महाविभूतिका भोग करते हुए सुखसे कालयापन करने लगे।

चक्रवर्तित्वकी विभूतिका प्रमाण इस प्रकार है,—अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख रथ, चौरासी करोड़ प्यादे, आज्ञाकारी बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा, बत्तीस हजार शरीरकी रक्षा करनेवाले यक्षाधीश, छयानवे हजार रानी, बत्तीस हजार आर्य खंडमे रहनेवाले राजाओंकी पुत्रियाँ, बत्तीस हजार विद्याधरोंकी पुत्रियाँ और बत्तीस हजार म्लेच्छ राजाओंकी पुत्रियाँ, तीन करोड़ कुटुम्बी जन, तीन करोड़ गायें, तीन सौ साठ शरीरवैद्य तथा कल्याणकारी अमृतसे मिले हुए अमृततुल्य भोजन, पानक खाद्य स्वाद्यरूप पदार्थोंके बनानेवाले तीनसौ साठ रसोइये, नौ निधि (निधियोंका आकार गाड़ी जैसा होता है। चतुरस्र अर्थात् चौकोर आठ योजन ऊँची नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी होती है। प्रत्येक निधिमें आठ आठ पहिये रहते हैं। तथा प्रत्येक निधिके एक हजार यक्ष जातिके देव रक्षक होते हैं। पहली निधिको कालनिधि कहते हैं। यह निधि इच्छानुसार पुस्तकोंकी देनेवाली है। दूसरी महाकालनिधि है, यह सोना चाँदी लोहा आदि खनिज पदार्थोंको देती है। तीसरी सुगंधित चावल गेहूँ आदि धान्योंकी देनेवाली पांडुक निधि है। चौथी निधि माणवक है। यह कवच (बख्तर) तलवार गदा आदि अनेक प्रकारके शस्त्रोंको देती है। पाँचवी नैसर्प निधि है, जो कि बर्तन, चारपाई आसन आदिक वस्तुओंकी देनेवाली है। छठी सर्वरत्न निधि है। यह हीरा पन्ना माणिक आदि समस्त रत्नोंकी देनेवाली है। सातवी शंख निधि है, जो कि वीणा आदिक समस्त बाजोंको देनेवाली है। आठवीं निधि पद्म है, यह अनेक तरहके वस्त्रोंको देती है। और नौवी पिंगल निधि है जो कि सब तरहके आभूषणोंको देनेवाली है, चौदह[1]

[1] चौदह रत्नोंकी भी एक एक हजार देव रक्षा करते हैं।

रत्न–चर्म रत्न, छत्र रत्न, चूडामणि नामका मणि रत्न और चिन्तामणि नामका कांकणी रत्न श्रीगृहमें उत्पन्न होते हैं। अयोध्या नामका सेनापति रत्न, अजितजय अश्व रत्न, विजयार्द्ध नामवाला हाथी रत्न और भद्रकुंड स्थापितरत्न अर्थात् रसोइया रत्न, ये चक्रवर्तीके नगरमें उत्पन्न होते हैं। और बुद्धिसागर पुरोहित रत्न, कामवृष्टि अर्थात् इच्छानुसार वस्तु देनेवाला, गृहपति रत्न और सुभद्रा स्त्री रत्न ये तीन रत्न विजयार्द्ध पर्वतपर उत्पन्न होते हैं। सुदर्शन चक्र, सुनन्द खड्ग, दंड रत्न, ये तीन रत्न आयुधशालामें उत्पन्न होते हैं। वज्रकुंडा शक्ति, सिंहाटक भाला, लोहवाहिनी बरछी, मनोजव कणय, भूतमुख खेट, वज्रकांड धनुष, अमोघ बाण, अभेद्य कवच (बख्तर), मनुष्योंको आनन्द देनेवाली जनानन्द नामकी बारह भेरी, जिनकी आवाज बारह योजन तक सुनाई पडती है, जय जय शब्द करनेवाले जयघोष नामके बारह पटहा, गंभीरावर्त नामके चौवीस शंख, वीर और अंगद ऐसे दो कटक, बहत्तर हजार पुर, छयानवे करोड़ ग्राम, पंचानवे हजार द्रोण, चौरासी हजार पत्तन, सोलह हजार खेट,[1] छप्पन अन्तर्द्वीप, सोलह हजार संवाहन, एक करोड़ थाली, सात सौ कुक्षिनिवास, आठ सौ कक्षा, नन्द्यावर्त्त सेनानिवास, क्षितिसारशालवेष्टित निवासगृह, वैजयन्ती नामका सिंहद्वार, सर्वतोभद्र नामका आस्थान मंडप, दिक्कूट नामका दिशावलोकनगृह (जहाँसे दिशायें देखी जाती हैं), वर्द्धमान नामका वीक्षणागार (जहाँसे सब शोभा देखी जाती है), धर्मान्तिक नामका धारागृह, वर्षाकालगृह, गृहकूट, शय्यागृह, पुष्करावती, कुबेरकान्त नामका भाण्डागार, सुवर्णधार नामका कोष्ठागार, सुरम्य नामका वस्त्रगृह, मेघ नामका स्नानगृह, अवतंस नामका हार, तडित्प्रभ कुंडल, विषमोचनी पादुका, अनुत्तर सिंहासन, अनुल नामके बत्तीस चमर, गृहसिंहवाहिनी नामकी शय्या, रविप्रभ नामका छत्र, नभोवल्ली बत्तीस पताका, बत्तीस हजार नाट्यशाला, समीप रहनेवाले अठारह हजार म्लेच्छ राजा, एक करोड़ हल और अजितजय रथ इत्यादि नाना प्रकारकी विभूतियोंका सुखभोग करते हुए महाराज भरत चक्रवर्ती सुखसे काल व्यतीत करते थे।

एक दिन चक्रवर्तीके चित्तमें ऐसा आया कि किसी पात्रके लिए सुवर्णादिक दान देना चाहिए। परन्तु देवें किसको ? क्योंकि

[1] पर्वत और नदीके बीचकी भूमिको खेट कहते हैं॥

जो महर्षि थे, वे तो सुवर्णादिक लेना स्वीकार नहीं करते थे, इसलिए गृहस्थोंमें कौन कौन पात्र है यह जाननेके लिए चक्रीने इस प्रकार परीक्षा की कि राजमहलके ऑगणमे धान्यादिक बोकर उनके अंकुरे पैदा कर दिये, तथा चारो ओर पुष्प फैला दिये। पश्चात् उस ऑगणमेंसे क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन तीनो वर्णोंको आमन्त्रण देकर बुलाया। सब लोग आये परन्तु जो उनमे गाढ़ जैनी थे, उन्होने उन अंकुरो और पुष्पादिकोंके ऊपरसे आना ठीक नहीं समझा, इसलिए वे उस राजांगणके बाहर ही खड़े रहे। यह देखकर चक्रवर्त्तीने कारण पूछा। उन्होंने कहा–तुम्हारे राजांगणमे मार्गशुद्धि नही है, इसलिए सेवकने यह बात भरतसे कही। तब उन्होने मार्गशुद्धि करके उनको भीतर बुलाया। और उनके व्रत अत्यन्त दृढ़ देखकर बहुत प्रसन्नता प्रगट की। और यह कहकर कि "तुम रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रके धारण करनेवाले हो" रत्नत्रय आराधनाका जतलानेवाला यज्ञोपवीत (जनेऊ) उनके कंधेपर डाल दिया। वे ही लोग ब्राह्मण कहलाये। क्योंकि ब्रह्मा अर्थात् भगवान् आदिदेव उनके इष्टदेव थे। "ब्रह्मादिदेवो देवता येषां ते ब्राह्मणा इति।" इस तरह महाराज भरतने ब्राह्मणोंको निर्माण कर उनको बहुतसे ग्रामादिक दे संतुष्ट किया।

एक दिन महाराज भरतने श्रीऋषभदेवसे पूछा:–महाराज, ये ब्राह्मण जो मैने निर्माण किये है, आगामी कालमें कैसे होंगे? तब भगवान् बोले:–ये श्रीशीतलनाथ तीर्थकरके पीछे जैनधर्मके द्वेषी हो जावेंगे। यह सुन अपने निर्माण कियेको नाश करना अनुचित जान, महाराज भरत बहुत खेदखिन्न हुए।

महाराज भरतने कैलाश पर्वतपर भूत, वर्तमान, और भविष्यकाल सम्बन्धी तीर्थकरोंके मणियोंसे जड़े हुए सुवर्णमय बहत्तर जिनमंदिर बनवाये। जिनमे उक्त बहत्तर तीर्थकरोंके उनके नाम उत्सेध (ऊँचाई) वर्ण यक्ष यक्षियाँ और चिन्हो सहित प्रतिमायें विराजमान कीं। पश्चात् उन्होंने अयोध्या नगरके प्रत्येक द्वारपर भी चौवीस तीर्थकरोंकी प्रतिमायें विराजमान की। वे समस्त प्रतिमा वंदनमालाके समान सुशोभित हुई। इनके सिवाय नगरके बाह्य प्रदेशोंमे मंदिरोंके ऊपर पंच परमेष्ठी अर्थात् अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओंकी प्रतिमायें विराजमान कीं। और घोड़पर कर प्रदक्षिणा देते समय "अरहंत जय" ऐसा कहते हुए उन प्रतिमाओंके ऊपर पुष्प बरसाये। सो यह प्रथा

आज पर्यन्त चली आती है। इस प्रकार भरत महाराज उनकी एक मूर्ति की शोक सुखसे गाथा करते हुए रहने लगे।

उधर श्रीऋषभदेवके १ वृषभसेन, २ कुम्भ, ३ दृढरथ, ४ शतधनु, ५ देवशर्म, ६ धनदेव, ७ नन्दन, ८ सोमदत्त, ९ सुरदत्त, १० वायुशर्म, ११ यशोबाहु, १२ देवपर्ण, १३ देवाग्नि, १४ अग्निदेव, १५ अग्निगुप्त, १६ मित्राग्नि, १७ हलधर, १८ महीधर, १९ महेन्द्र, २० वासुदेव, २१ वसुंधर, २२ अचल, २३ मेरुधर, २४ मेरुभूति, २५ सर्वयश, २७ सर्वगुप्त, २८ सर्वप्रिय, २९ सर्वदेव, ३० सर्वविजय, ३१ विजयगुप्त, ३२ जयमित्र, ३३ विजयी, ३४ अपराजित, ३५ वसुमित्र, ३६ विश्वसेन, ३७ साधुषेण, ३८ सत्यदेव, ३९ देवसत्य, ४० विजयदेव, ४१ सत्यमित्र, ४२ सर्वद, ४३ विनीत, ४४ संवर, ४५ मुनिगुप्त, ४६ मुनिदत्त, ४७ मुनियज्ञ, ४८ मुनिदेव, ४९ गुप्तयज्ञ, ५० मित्रयज्ञ, ५१ स्वयंभू, ५२ भगदेव, ५३ भगदत्त, ५४ भगफल्गु, ५५ मित्रफल्गु, ५६ प्रजापति, ५७ सर्वसंघ, ५८ वरुण, ५९ धनपाल, ६० मेघवाहन, ६१ तेजोराशि, ६२ महावीर, ६३ महारथ, ६४ विशाल, ६५ महाज्वल, ६६ शुचिशाल, ६७ वज्र, ६८ वज्रशाल, ६९ चन्द्रचूल, ७० मेघेश्वर, ७१ महारथ, ७२ कच्छ, ७३ महाकच्छ, ७४ नमि, ७५ विनमि, ७६ बल, ७७ अतिबल, ७८ भद्रबल, ७९ नंदि, ८० महाभोग, ८१ नंदिमित्र, ८२ महानुभाव, ८३ कामदेव, ८४ अनुपम, इन चौरासी गणधरों, तथा चार हजार साढ़े सात सौ पूर्वधर अर्थात् ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंके जाननेवालों, चार हजार एक सौ पचास शिक्षकों, नौ हजार अवधिज्ञानियों, बीस हजार केवलियों, बीस हजार छः सौ विक्रिया ऋद्धिके धारण करनेवालों, बारह हजार साढ़े सात सौ विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानके धारण करनेवालों, इतने ही वादियों, साढ़े तीन लाख श्रावकों, पाँच लाख श्राविकाओं, असंख्यात देव देवियों और अनेक करोड़ तिर्यञ्चोंके साथ, एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व विहार किया। अन्तमें कैलाश पर्वतपर योगनिरोध प्रारम्भकर विराजमान हुए।

उधर महाराज भरत चक्रवर्तीने स्वप्नमें देखा कि मेरु पर्वत सिद्धशिला पर्यन्त बढ़ गया है। अर्ककीर्ति आदिक अन्य कुमारोंने भी सूर्य आदिको स्वप्नमें ऊपर जाते देखा। तब महाराज भरतने प्रातःकाल ही इन स्वप्नोंका फल अपने पुरोहितसे पूछा। उसने निमित्तज्ञानके द्वारा उत्तर दिया कि इन समस्त स्वप्नोंसे श्रीआदितीर्थंकर परमदेवका मुक्ति जाना सूचित होता

है। सुनते ही भरत आदिक कैलाश पर्वतपर गये। वहाँ सबने श्रीवृषभदेवकी पूजा वन्दना की। परन्तु उस समय श्रीवृषभदेव मौन धारण किये थे। इसलिए सबको खेद हुआ। और चौदह दिन तक वहीं रहकर उन्होंने श्रीवृषभदेवकी पूजा की। चौदहवें दिन भगवानका योगनिरोध पूर्ण हुआ और वे माघकृष्णा चतुर्दशीको मोक्ष पधारकर अनन्त सुखके स्वामी हुए।

भगवानके मोक्ष पधारनेसे भरतादिकको दुःख हुआ, परन्तु वृषभसेन आदि गणधरोंने समझाकर उनका शोक दूर कर दिया। तब भरतादिक श्रीवृषभनाथके परम निर्वाण महाकल्याणककी पूजा करके अपने नगरको लौट आये। इस प्रकार इन्द्रादिक समस्त देव भगवानके निर्वाण कल्याणकका उत्सव करनेके लिए आये और यथेष्ट उत्सव करके स्वर्ग लोकको चले गये। वृषभसेनादिक गणधर तपस्या करके यथाक्रमसे मोक्ष पधारे। श्रीऋषभदेवकी दोनों पुत्रियाँ ब्राह्मी और सुन्दरी अच्युत स्वर्गमें देव हुईं। तथा और भी मुनियों व आर्यिकाओंने जो श्रीवृषभदेवसे दीक्षित हुए थे, अपने अपने पुण्यके अनुसार शुभ गति पाई।

एक दिन महाराज भरत अपने शिरपर श्वेत बाल देख संसारके भोगोंसे उदास हुए और अपने पुत्र अर्ककीर्तिको राज्य दे कैलाश पर्वतपर पधारे। वहाँ उन्होंने अष्टान्हिकाकी पूजा बड़ी धूमधामसे की। पश्चात् अपने स्वजन और परिजनोंसे क्षमा प्रार्थना की। और हमारे पिता ही हमारे गुरु हैं, ऐसा मनमें विचार करके अनेक राजाओंके साथ उन्होंने स्वयं दीक्षा ग्रहण की। महाराज भरतको दीक्षा ग्रहण करनेके बाद ही केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। पश्चात् वे भव्य जीवोंके अतुल पुण्यकी प्रेरणासे एक लाख पूर्व विहार करके कैलाशपर्वतसे मोक्ष पधारे।

महाराज भरतका कुमारकाल सत्तर लाख पूर्वका, मांडलिककाल एक हजार वर्षका, विजयकाल साठ हजार वर्षका, राज्यकाल पाँच लाख निन्यानवे हजार नौ सौ निन्यानवे पूर्व तेरासी लाख निन्यानवे हजार नौ सौ निन्यानवे पूर्वांग तेरासी लाख उनतालीस हजार वर्षका और संयमकाल एक लाख पूर्वका था। इस प्रकार उनकी समस्त आयु चौरासी लाख पूर्वकी थी।

महाराज भरतके मोक्ष जानेपर उनकी निर्वाण पूजा करनेके लिए देवादिक आये और यथेष्ट उत्सव मना अपने अपने स्थानको चले गये।

इस प्रकार व्याघ्रादिकोंने जो दान देनेका अनुमोदन किया था, उसके फलसे ऐसे ऐसे उत्तम फल भोगकर मोक्ष पाया तो जो स्वयं सत्पात्रके लिए दान देता है, वह ऐसी उत्तम गतिको क्यों नहीं प्राप्त होगा? अवश्य होगा। (यह कथा संक्षेपरीतिसे लिखी गई है। इसका विस्तार महापुराणसे जानना चाहिए।)

(३-४) जयकुमार-सुलोचनाकी कथा।

भरत क्षेत्र-आर्य खंड-कुरुजांगल देश-हस्तिनागपुर नगरमें राजा जयकुमार महाराणी सुलोचना सहित राज्य करते थे। एक दिन वे दोनो राजा रानी एक स्थानमें बैठे हुए आकाशकी शोभा देख रहे थे कि राजा जयकी दृष्टि जाते हुए दो विद्याधरोंपर पड़ी। उन्हें देखते ही वह "हा प्रभावती" ऐसा कहकर मूर्छित हो गया, और रानी सुलोचना भी 'एक कबूतरके जोड़ेको देखकर "हा रतिवर" ऐसा कहकर अचेत हो गई। तब कुटुम्बके लोगोंने शीतोपचारादि करके सचेत किये। परन्तु वे दोनो एक दूसरेका मुँह देखते हुए कुछ देरतक अवाक्में हो रहे। यह देख लोगोंको बड़ा कौतुक हुआ। सुलोचना बोली;-हे नाथ, मै जिसका स्मरण करके अभी मूर्च्छित हुई थी, वह रतिवर कहाँ उत्पन्न हुआ है, बतलाइए। तब जयकुमारने कहा;-वह रतिवर मै ही हूँ। और जिसका स्मरण करके मै मूर्च्छित हुआ था, जान पड़ता है, वह प्रभावती तुम हो? सुलोचनाने कहा;-हाँ मैं ही हूँ। तब जयकुमारने कहा;-प्रिये, अपने दोनोंके पूर्व भवके वृत्तान्त इन सब लोगोंका कौतुक निवारण करनेके लिए कहो। तब सुलोचना कहने लगी:—

जम्बू द्वीप-पूर्व विदेह-पुष्कलावती देशके मृणालपुर नगरमें एक सुकेतु नामका राजा राज्य करता था। उसके

राज्यमे एक श्रीदत्त नामका महाजन और उसकी विमला नामकी स्त्री रहती थी। विमलाके एक रतिकांता नामकी पुत्री और रतिवर्मा नामका भाई था। रतिवर्माकी स्त्री कनकश्रीसे एक भवदेव नामका पुत्र था, जिसे लम्बी गर्दनके कारण लोग उष्ट्रग्रीव कहते थे। उसने एक दिन अपने मामासे कहाः-तुम अपनी पुत्रीका विवाह मेरे साथ कर दो। परन्तु उसने कहा,-रतिकांता तुझे नही मिल सकती। क्योकि तू व्यापारहीन तथा निखट्टू है। तब भवदेव यह कह-कर द्वीपान्तरको चला गयाः-मै बहुतसा धन कमाकर लाऊँगा, द्वीपान्तर जाता हूँ। वहॉ मुझे १२ वर्ष लगेंगे। जबतक मै न लौटूं, रतिकांता किसी दूसरेको न देना। मामाने भी इस बातकी स्वीकारता दे दी। परन्तु जब बारह वर्ष बीत गये, और भवदेव नही आया, तब उसने उसी नगरके महाजन अशोकदेव जिनदत्ताके पुत्र सुकान्तके साथ रतिकान्ता व्याह दी। इसके पश्चात् जब उष्ट्रग्रीवने द्वीपान्तरसे आकर रतिकान्ताके विवाहकी बात सुनी, तब अतिशय क्रोधित हो, वह सुकान्तके मारनेके लिए बहुतसे सेवक लेकर चला। उसका घर घेर लिया, परन्तु उसे किसी तरह खबर लग जानेसे वह अपनी स्त्री सहित वहॉसे भाग गया और एक वनमे रम्यातट सरोवरके किनारे पहुँच उसने शक्तिसेन सहस्रभटकी शरण ली। शक्तिसेन शोभानगरके राजा प्रजापाल रानी देवश्रीका सेवक था। इसे बड़ा बनाकर राजाने प्रजाको उपद्रवोसे बचानेके लिए इस स्थानपर नियत किया था। उष्ट्रग्रीवने भी पीछा नही छोड़ा, वह भी पता लगाता हुआ वहॉ जा पहुँचा और शक्तिसेनके शिबिरके (फौजके पड़ावके) बाहर ठहरकर बोला-हे शिबिरके लोगो, सुनो, मेरा शत्रु तुम्हारे शिबिरमे है। उसे मुझे सौप दो, नही तो फिर तुम जानोगे। यह सुनकर सहस्रभट धनुषबाण सहित बाहर आकर बोला;-मै सहस्रभट हूँ। क्या मेरे शरणमे आये हुएकी तू याचना करता है? क्या तुझमें इतनी सामर्थ्य है? तब भवदेव बोलाः-हॉ! हॉ! मै भी तो कोटीभट हूँ। तब शक्तिसेनने, कहा;-क्या हर्ज है? मै तुझे मारकर प्रशंसा प्राप्त करूँगा कि सहस्रभटने कोटीभटको मारा। ले शीघ्र ही युद्धके लिए तैयार हो जा। यह सुनते ही उष्ट्रग्रीवके देवता कूच कर गये। डरके मारे वह वहॉसे भाग गया। और सुकान्त रतिकान्तासहित सहस्रभटके पास वहीं रहने लगा।

एक दिन शक्तिसेनने अमितगति नामके जंघाचारण मुनिको पड़िगाहन करके निरन्तराय आहार दिया। जिसके प्रभावसे वहाँ पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई। इसके पश्चात् शक्तिसेनने उस स्थानको छोड़ सरोवरके दूसरे तटपर डेरा डाल दिया। उस समय एक मरुदत्त नामका सेठ उस दाताके दर्शनोंके लिए वहाँ आया। तब शक्तिसेनने उससे भोजन करनेके लिए प्रार्थना की। मरुदत्तने कहा;-हाँ! मैं आपके यहाँ भोजन करूँगा, परन्तु तब, जब आप मेरा कहना करोगे। शक्तिसेनने कहा;-अच्छा, कहिए मैं अवश्य करूँगा। मरुदत्त बोला-आप यह निदान कीजिए कि मैं इस दानके फलसे दूसरे जन्ममें तुम्हारा पुत्र होऊँ। शक्तिसेनने कहा;-क्या ऐसा निदान मुझसे कराना आपको उचित है? उसने कहा-हाँ? उचित है। आखिर शक्तिसेनने वैसा ही निदान किया। पश्चात् उसकी स्त्री अटवीश्रीने भी निदान कर लिया कि मैं इस दानके अनुमोदनके फलसे आगामी जन्ममें अपने इसी पतीकी स्त्री होऊँ। उसी समय मरुदत्त सेठकी भार्याने भी निदान किया कि इस दानका अनुमोदन मैंने भी किया है, अतएव इसके प्रभावसे मैं भी आगामी जन्ममें अपने इसी पतिकी स्त्री होऊँ। जब परस्पर सब लोग इस प्रकार निदान कर चुके, तब मरुदत्तने संतुष्ट होकर भोजन किया। कालान्तरमें मरुदत्त सेठ मरकर उसी देशकी पुंडरीकिणी पुरीके राजा प्रजापालका कुबेरमित्र राजश्रेष्ठी हुआ। प्रजापालकी रानीका नाम कनकमाला और पुत्रका लोकपाल था। मरुदत्तकी स्त्री धारिणी मरकर कुबेरमित्रकी स्त्री धनवती हुई। तथा शक्तिसेन उसके उदरसे कुबेरकान्त नामका पुत्र हुआ। और अटवीश्री कुबेरमित्रकी बहिन और समुद्रदत्तकी स्त्री कुबेरदत्ताके प्रियदत्ता नामकी पुत्री हुई। उधर उग्रग्रीवने सहस्रभटका मरण सुनकर सुकान्त रतिकान्ताके घरमें आग लगा दी, जिससे वे दोनों मर गये और कुबेरमित्र सेठके घर रतिवर और रतिवेगा नामके कबूतर कबूतरी हुए। परन्तु इस पापको करके उग्रग्रीव भी नहीं बचा। गाँववालोंने क्रोधित होकर उसे भी उस जलते हुए घरमें डाल दिया, जिससे मरकर वह पुंडरीकिणी नगरीके समीप जम्बूग्राममें बिलाव हुआ।

कुबेरमित्र सेठके पुत्र कुबेरकांतको वे दोनों कबूतर बहुत प्यारे लगे। उन्हें वह अपने साथ पढ़ाने लगा। एक दिन सेठके महलके पीछे जो वन था, उसमें एक सुदर्शन नामके चारणमुनि पधारे। कुबेरकांत कबूतरोंके सहित

उनकी वंदनाके लिए गया और धर्मश्रवण करके एकपत्नीव्रत लेकर लौट आया। परन्तु यह बात कबूतरोंके सिवाय किसीको मालूम नहीं हुई। कुछ दिन पीछे कुबेरमित्रने अपने पुत्रके विवाहके लिए राजाकी पुत्री गुणवती, यशोवती, समुद्रदत्त सेठकी पुत्री प्रियदत्ता, तथा और एक हजार आठ दूसरे लोगोंकी कन्यायें माँगी, और कन्याओंके पिताओंने उन्हें देना भी स्वीकार किया, परन्तु जब विवाहका समय आया और सेठ कुबेरमित्र सब तैयारी करने लगा, तब कबूतरोंने चोंचमें लिखकर उन्हें समझा दिया कि कुमारको एकपत्नीव्रत है। यह सुन सेठने आश्चर्ययुक्त होकर पुत्रसे पूछा। परन्तु उसने भी यही कहा, इसलिए उसे बहुत खेद हुआ। आखिर इन सब कन्याओंमें उसको सबसे प्यारी कौन होगी, इसका निर्णय करनेके लिए उसने एक उपाय किया। नगरके बाहर शिवंकर उद्यानमें जगत्पाल चक्रवर्तीका बनवाया हुआ जो जिनमंदिर था, उसमें जाकर उसने भगवानकी पूजा की और उसी दिन गुणवती यशोवती आदि कन्याओंको उपवास करनेके लिए कहा। उपवासके दिन रात्रिजागरण किया। जब सबेरा हुआ तब एक हजार आठ सोनेकी थालियोंमें खीर परोसकर, एक २ सोनेके कटोरेमें घी भरकर तथा किसी एक कटोरेमें एक रत्न डालकर और प्रत्येक बर्तनके पास रत्न आभरण तथा विलेपनादि पदार्थ रखकर सब चीजोंको उसने यक्षके आगे रक्खा और कन्याओंसे कहा;-इनमेंसे तुम सब एक एक थाल आभरणादि सहित ले जाओ और सुदर्शन सरोवरके किनारे खीरका भोजन कर और शृंगार विलेपनादि करके लौट आओ। तब वे सबकी सब कन्यायें कुबेरमित्रकी आज्ञानुसार सरोवरके किनारे जाकर वहाँसे भोजन शृंगारादि करके लौट आईं। उस समय एक प्रियदत्ता कन्याने कहा-मामा मुझे घीके कटोरेमें एक रत्न मिला है। यह सुनते ही सेठने जान लिया, यह कन्या कुबेरकांतकी प्रिया होगी। पश्चात् उसने राजादिकोंसे कहा;-महाराज, मेरे पुत्रको एकपत्नीव्रत है, इसलिए आप अपनी २ कन्याओंको ले जाइए और किसी दूसरे सुयोग्य वरको दीजिए। तब राजाने पूछा;-इस पुण्यमूर्ति कुमारने ऐसा व्रत क्यों लिया? और कुमारको बहुत कुछ समझाया, परन्तु वह अपनी प्रतिज्ञासे नहीं हटा। यह सुन वे सब कन्यायें बोलीं-महाराज, इस जन्ममें इस कुमारके सिवाय हमारा कोई

दूसरा भरतार नहीं है, ऐसी प्रतिज्ञा है, इसलिए हम सब जिनदीक्षा धारण करेंगी। अन्तमें ऐसा ही हुआ, प्रियदत्ताके सिवाय अन्य सब कन्यायोंने अनंतमती आर्यिकाके समीप दीक्षा ले ली। राजादिक उनकी वन्दना करके नगरमें लौट आये। उधर कुवेरकांतके साथ प्रियदत्ताका विवाह आनन्दपूर्वक हुआ। पूर्व भवमें जो मुनियोंको दान दिया था, उस प्रभावसे उसके उद्यानके सम्पूर्ण वृक्ष कल्पवृक्ष हो गये। और घर नवों निधिसे पूर्ण हो गया। धर्मके फलसे क्या नहीं हो सकता? इस प्रकार कुवेरकांत सुखसे काल विताने लगा।

राजा प्रजापाल कुछ वैराग्यका कारण पा अपने लोकपाल पुत्रको राज्य सिंहासनपर आरूढ़ कर और कुवेरमित्र सेठको उसकी रक्षाका भार सौंप दश हजार क्षत्रियोंके सहित अमितगति चारणमुनिके समीप मुनि हो गये और तप करके मोक्षमे गये। कुवेरमित्र सेठ राजा लोकपालको मनमाना नहा चलने देता था, इस कारण राजाके सम्पूर्ण तरुण मंत्रियोंसे उसका द्वेष हो गया। उन्होंने मिलकर राजाकी एक वकुलमाला नामकी विलासिनीको मूल्यवान् वस्त्र भूषणादि देकर कहा;—थोड़ी भरी हुई नींदमें—जिसमे राजा सुन ले, तू इस तरह आप ही आप कहना कि सेठ तुमसे वयोवृद्ध है और गुणमे भी बड़े है, इसलिए आप सिंहासनपर बैठे रहकर उन्हे नीचे बैठाना अनुचित है। विलासिनीने यह बात मान ली और उसी प्रकार कह दिया। राजाने भी सुनकर समझा कि स्वप्न हुआ है। इसलिए सवेरे जब सेठ कुवेरमित्र आयें, तब उनसे विनयपूर्वक कह दिया—जब मै बुलवाऊँ, तब आप आया कीजिए। उस दिनसे सेठजी अपने घर ही रहने लगे। और राजा नई उमरके मंत्रियोंकी सलाहसे इच्छानुसार चलने लगा।

एक दिन रातको प्रेमकी लड़ाईमे राजाके सिरमे वसुमती रानीके पैरकी चोट लग गई। तब सवेरे ही राजसभामें जाकर उसने मंत्रियोंसे पूछा—जिस पॉवकी ठोकर मेरे सिरमे लगी हो, उस पॉवका क्या करना चाहिए? मंत्रीगण बोले;—महाराज, उस पैरको काट डालना चाहिए। इस उत्तरसे राजा प्रसन्न हुआ और उसी समय उसने कुवेरमित्र सेठको बुलाकर उनसे भी यही प्रश्न किया। सेठने कहा;—महाराज, यदि वह पॉव गुरुका है तो उसकी पूजा करनी चाहिए, गृहलक्ष्मीका (स्त्रीका) हो तो उसे नूपुर (विछुए) आदि अलंकारोसे भूषित करना चाहिए और

रतिवेगा कबूतरी मरकर उसी दक्षिण श्रेणीके भोगकापुरके राजा वायुरथ और रानी स्वयंप्रभाके प्रभावती नामकी पुत्री हुई। यह अपनी एक हजार वहनोंमें सबसे जेठी थी।

हिरण्यवर्मा और प्रभावतीके सकल कलाओंमें निपुण तथा जवान होनेपर एक दिन वायुरथ प्रभावतीसे बोला:- बेटी, सम्पूर्ण विद्याधरोंके कुमारोंमे तुझे कौन श्रेष्ठ जान पड़ता है, जिसके साथ तेरा विवाह कर दूं। प्रभावती बोली;- पिताजी, मुझे जो कुमार गतियुद्धमें जीत लेगा, उसीके साथ विवाह करूँगी, अन्यके साथ नहीं। इसके पश्चात् प्रभावतीकी एक हजार वहिनोंसे पूछा तो उन्होंने कहा-जो प्रभावतीका वर होगा, वही हमारा होगा, नहीं तो हम जिनदीक्षा ले लेवेंगी। तब वायुरथने मेरुगिरिके पास सब विद्याधरोंको एकत्र किये और पांडुक वनमें स्वयंवरके लिए खडे होकर प्रभावतीने घोषणा की कि सौमनस वनमें ठहर कर मोती और रत्नोंकी मालाको छोड़नेपर जमीनपर गिरते २ मेरुकी तीन प्रदक्षिणा देकर जो कोई इस मालाको ग्रहण कर लेगा, वही जीतेगा। ऐसा कह उसने अपने कहे अनुसार माला डाली और अनेक विद्याधरोंको उसमें हरा दिया। पीछे हिरण्यवर्माने अपनी शीघ्र गतिसे उस मालाको झेलकर, प्रभावतीको जीत उसके करकमलों द्वारा डाली हुई वरमाला पहिन ली। लोगोंको इससे बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके पश्चात् वह उक्त एक हजार कुमारियोंके साथ भी पाणिग्रहण करके सुखसे काल व्यतीत करने लगा और राजा आदित्यगति उसे राज्य दे मुनि हो अविनाशी मोक्ष लक्ष्मीके स्वामी हुए।

हिरण्यवर्मा दोनों श्रेणियोंको जीत विद्याधरोंका स्वामी हो बड़ी विभूतिसे प्रभावतीके साथ सुखोंका अनुभव करने लगा। दानके अनुमोदनके फलसे प्रभावतीके सुवर्णवर्मादि अनेक पुत्र हुए। वहुत काल राज्य करके एक दिन वह प्रभावतीके सहित पुंडरीकिणी नगरीके जिन मंदिरकी वन्दनाके लिए गया था, सो उस नगरीके देखते ही दोनोंको जातिस्मरण हो गया। तब अपने नगरको लौटकर उसने अपने पुत्र सुवर्णवर्माको राज्य दे दिया और चारणऋद्धिके धारक गणधरमुनिके निकट अनेक पुरुषोंके साथ दीक्षा लेकर वह कुछ समयमें स्वयं चारणऋद्धि और सकल शास्त्रका धारण करनेवाला हो गया। उधर प्रभावतीने अनेक स्त्रियोंके साथ सुशीला आर्यिकाके समीप जिनदीक्षा ले ली।

यदि बालकका हो तो उसे मिठाई खिलाकर प्रसन्न करना चाहिए । यह उचित उत्तर सुनकर राजा बहुत संतुष्ट हुआ, और कुबेरमित्र श्रेष्ठीसे प्रतिदिन राजसभामें आनेकी इच्छा प्रगट करके सुखसे राज्य चलाने लगा ।

एक दिन सेठानी धनवती कुबेरमित्रके बाल कंघेसे साफ कर रही थी । उनके सिरमें दो चार सफेद बाल देख उसने कहा:-नाथ, आपके बाल पक गये हैं । सुन कुबेरमित्रने संसारकी क्षणभंगुर दशाओंका विचार करके उसी समय अपने पुत्र कुबेरकांतको राजा लोकपालके आधीन कर अनेक लोगोंके साथ वनमें भट्टारकके समीप जिनदीक्षा ले ली। और कुछ कालमें मुक्ति प्राप्त की। इधर कुबेरकांतको कुबेरदत्त, कुबेरमित्र, कुबेरदेव, कुबेरप्रिय, और कुबेरचन्द्र नामके पांच पुत्र उत्पन्न हुए। एक दिन उसने अमितगति जंघाचारण मुनिको आहारके लिए पड़गाहे, जिन्हें कि उसने पूर्वजन्ममें आहार दिया था। सो उनके उस दिन आहारके होनेसे पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई। उस समय पुष्पवृष्टि आदि देखकर वे दोनों कबूतर आनन्दसे नृत्य करने लगे। उन्हें देखकर कुबेरकांतने कहा:-हे रतिवर, और हे रतिषेणा, मैं इस पुण्यका हजारवाँ हिस्सा तुम्हें दे दूँगा। यह सुन कबूतरयुगल स्नेहसे उसके पावोंपर पड़ गये। तब कुबेरकांतने उन्हें उनके योग्य आभूषणोंसे सजा दिया। सो एक दिन उन आभूषणोंसे सजे हुए वे दोनों कबूतरकबूतरी विपलाजल्या नदीके किनारे रेतके ऊपर क्रीड़ा कर रहे थे, उस समय उन्हें आकाशमें दिव्य विमानपर जाते हुए दो विद्याधर दिखाई दिये। उन्हें देख उन दोनोंने निदान किया कि मुनिदानकी अनुमोदनासे हम ऐसे विद्याधरयुगल होवें। इसके पश्चात् एक दिन वे जम्बू ग्रामके चैत्यालयके आगे लोगोंके बिखेरे हुए चावलोंको चुन रहे थे कि एकाएक उस बिलावने जो कि पूर्व जन्ममें उग्रवीर था, आकर रतिवरको मुँहमें दबा लिया। यह देख रतिषेणाने रतिवरके तीव्रमोहसे बिलावको चोंचें मारना शुरू किया। जिससे क्रोधित हो बिलावने उसे छोड़ रतिषेणाको दबा लिया। इतनेमें लोगोंने आकर उनको छुड़ा लिया। दोनों कंठगतप्राण हो तड़फने लगे। तब लोग उन्हें उठाकर वसतिकामें ले आये। और वहाँ एक आर्यिकाने उन्हें पंचनमस्कार मंत्र दे दिया। जिसे स्मरण करते २ रतिवर कबूतर तो प्राण छोड़ विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें सुसीमा नगरके राजा आदित्यगति और रानी शशिप्रभाके अतिशय रूपवान् हिरण्यवर्मा पुत्र हुआ और

एक दिन गुणधर महामुनि पुंडरीकिणी नगरीके शिवंकर उद्यानमे आकर विराजमान हुए। उनकी वन्दनाके लिए राजा गुणपाल अपने परिवारसहित आया। वन्दना कर धर्मोपदेश सुन उसने हिरण्यवर्मा मुनिका अतिशय सुन्दररूप देखकर पूछा;-भगवन्, ये मुनि कौन है? और किस कारण संसारसे विरक्त हो गये हैं? गुणधर मुनिने कहा;-राजन्, ये पूर्व जन्ममे इसी नगरीके कुबेरकांत सेठके घर रतिवर नामके कबूतर थे। सो वहाँ मुनियोंके दानकी अनुमोदना करके उस पुण्यके प्रभावसे हिरण्यवर्मा विद्याधर चक्रवर्ती हुए थे। अब इस नगरीको देखकर पूर्व भवका स्मरण हो जानेसे इन्हे वैराग्य हो गया है और इसीसे इन्होने परम दिगम्बरी दीक्षा धारण की है। यह सुन राजा गुणपालको धर्मके फलमें गाढ़ श्रद्धान उत्पन्न हुआ और इस कारण उस दिनसे वह धर्ममें अधिक तत्पर हो गया। उसी समय सुशीला आर्यिका भी सब आर्यिकाओंके सहित उसी नगरमें एक स्थानपर आकर ठहरी। सो राजा उनकी भी वन्दना करके नगरमे लौट आया। पश्चात् कुबेरकांत सेठकी स्त्री प्रियदत्ता मुनियोंकी वन्दना करके आर्यिकाओंके पास गई। उसने ज्यों ही उनकी वन्दना की कि प्रभावती उसे पहचानकर प्रेमपूर्वक बोली;-प्रियदत्ते, सुखसे तो है? उसने कहा;-हे आर्ये, आपने मुझे कैसे पहचान लिया? तब प्रभावतीने अपना सब हाल उसे कह सुनाया और फिर पूछा-तुम्हारा पति कुबेरकांत कहाँ है? प्रियदत्ता कहने लगी;-हे प्रभावती, एक दिन एक सुरूपवती आर्यिकाको आहार देकर मैने पूछा;-हे माता, तू ऐसी मनोहर रूपवती तरुण अवस्थामे किस कारण आर्यिका हो गई है? और तू कौन है? तब वह बोली;-मै विजयार्द्ध-दक्षिणश्रेणी-गांधारपुरके राजा गंधराज और रानी मेघमालाकी रतिमाला नामकी पुत्री और मेघपुरके राजा रतिवर्माकी प्रिया हूँ। एक दिन मेरा पति मुझे यहाँके जिनमंदिरोंकी वंदना करानेको लिवा लाया था, सो मैने उस समय तेरे पति कुबेरकांतको देखकर अपने पतिसे पूछा:-ये कौन है? तब उन्होंने कहा:-मेरा मित्र कुबेरकांत श्रेष्ठी है। यह सुन मैं तेरे पतिपर अतिशय आसक्त हो गई। जिनदेवकी पूजाके पीछे मै उसके साथ संयोग करनेके लिए वनमे क्रीड़ा करनेके मिस गई। और वहाँ "हे नाथ, मुझे साँपने डस ली" ऐसा कहकर मूर्छित हो गई। तब मेरा पति विह्वल सरीखा हो मुझे निर्विष करनेके लिए स्वयं प्रयत्न करने लगा; परन्तु जब मेरी मूर्च्छा नही

गई, तब कुबेरकांतके समीप जाकर उसने कहा–मित्र, मेरी प्रियाको अच्छा कर दो। तब वह मेरे पतिको किसी वृक्षकी जड़ लानेके लिए भेज स्वयं मंत्र पढ़ पढ़कर फूँकने लगा। परन्तु मै यथार्थमें वहाना बनाकर मूर्छित हुई थी, इसलिए पतिके जाते ही एकांत पाकर उठ बैठी और बोली:–सेठजी, मुझे सर्पने नहीं काटा है। मै तुमपर अतिशय आसक्त हूँ, इसलिए यह तुमसे मिलनेका उपाय किया था। सो अब संभोगदान देकर मेरी रक्षा करो। तब कुबेरकांत यह कहकर कि "हे बहिन, मै तो नपुंसक हूँ। तू शीलवती पतिव्रता होकर रह" वहाँसे चला गया। पश्चात् मेरा पति आ गया, सो मै उसके साथ अपने नगरको चली गई। उस समय पतिने जाना कि सेठके मंत्रसे यह अच्छी हो गई है।

फिर एक दिन तुझे पुत्रके साथ रथपर चढ़कर जिनमंदिरको जाती हुई देख मैने पतिसे पूछा–ये कौन जा रही है? पतिने कहा:–मेरे मित्रकी वल्लभा प्रियदत्ता है। तब मैने फिर कहा:–तुम्हारा मित्र तो नपुंसक है, फिर उसके पुत्र कहाँसे हुआ? पतिने कहा:–मेरे मित्रने एकपत्नी व्रत धारण कर रक्खा है, इसलिए अन्य स्त्रियोंने द्वेषसे उसे ऐसा प्रसिद्ध कर रक्खा है। यथार्थमे वह नपुसक नही है। यह सुन मै अपने मनमे अपनी वारंवार निन्दा करती हुई अपने नगरको चली गई।

एक दिन अपनी वर्षगाँठकी रातको मै अपनी बुरी चेष्टाका स्मरण कर करके विषण्ण अर्थात् उदासीन बैठी हुई थी। यह देख पतिने उदास होनेका कारण पूछा और उस समय मैने उनसे अपने सब चरित्र सत्य सत्य कह दिये। उन्हे सुन पतिने कहा:–संसारी जीवोको ऐसी ही बुरी परणति हुआ करती है। इसमे कुछ आश्चर्य नहीं है। अब संक्लेश मत कर। तब मैने कहा:–चाहे जो हो, अब तो मै सबेरे ही जिनदीक्षा ले लूँगी। यह सुन उन्होंने कहा:–अच्छा, तो मै भी तेरे ही साथ दीक्षा लूँगा। पश्चात् दूसरे दिन पुत्रको राज्य सौंपकर हम दोनो बहुतसे पुरुष स्त्रियोंके साथ दीक्षित हो गये। बस, यही मेरी दीक्षाका कारण है।

प्रियदत्ता उस सुरूपवती आर्यिकाकी सुनाई हुई उक्त कथा कहकर बोली–प्रभावती, इसके पश्चात् रतिमाला और

रतिवर्माकी दीक्षाका हाल सुनकर मेरे पति (कुवेरकांत) उनके पास गये और उन्हें नमस्कार करके अपने पुत्र कुवेरप्रियको राजा गुणपालकी रक्षामें सौंपकर कुवेरदत्तादि चारों पुत्रों तथा और भी कई पुरुषोंके सहित दीक्षित हो गये और घोर तप करके मुक्तिको प्राप्त हो गये । इस प्रकार कुवेरकांतके समाचार सुनाकर प्रियदत्ता अपने घर लौट गई ।

वह विलाव जिसने रतिवर और रतिवेगाको मुँहमें दवाया था, मरकर पुंडरीकिणी नगरीके कोटपालका विद्युद्वेग नामका प्यादा हुआ था । उसदिन उसकी स्त्री प्रियदत्ताके साथ मुनिकी वंदनाको आई थी । सो वह देरसे लौटकर घर गई, इससे विद्युद्वेगने क्रोधित होकर पूछाः—इतना विलम्ब कहाँ लगाया ? तब उसने हिरण्यवर्मा और प्रभावतीका सुना हुआ चरित्र सब कह सुनाया, जिससे उसे जातिस्मरण हो गया । मुनि और आर्यिकाको अपने पूर्वभवके वैरी जानकर वह स्त्रीसे बोला—प्रिये, उन्हें चलकर मुझे दिखला दे, सो स्त्रीने साथ ले जाकर दिखला दिया । तब रातको वह पापी वहाँ गया और दोनोंको अर्थात् हिरण्यवर्मा और प्रभावती आर्यिकाको एकत्र बाँधकर श्मशानमें ले गया । और एक जलती हुई चितामें डालकर गर्वसे बोलाः—मैं वही भवदत्त (उग्रग्रीव) हूँ जिसने तुम दोनोंको शोभा नगरमें जलाकर मारा था और जम्बू ग्राममें गल्ला दवाकर मारा था । इसके पश्चात् उन दोनों तपस्वियोंने शान्त चित्तसे शरीर छोड़ा । सो हिरण्यवर्मा तो सौधर्म स्वर्गके कनकप्रभ विमानमें सौधर्म इन्द्रका अन्तः परिषद्य कनकप्रभ देव हुआ और प्रभावती उसी कनकप्रभ देवकी कनकप्रभा देवी हुई । वहाँ दोनोंने चिरकालतक सुख भोगे और फिर आयु पूरी करके कनकप्रभ देव तो ये राजा मेघेश्वर (जयकुमार) हुए हैं और वह देवी कनकप्रभा मैं सुलोचना हुई हूँ । इस प्रकार सुलोचनाने अपने भवांतर कहे । सुनकर सब लोग प्रसन्न हुए ।

देखो, एक वार मुनिको आहार देनेस शक्तिसेनने ऐसे अनुपम वैभवको पाया और कबूतर कबूतरी उस दानकी अनुमोदनासे जयकुमार सुलोचना हुए । तब फिर जो कोई भव्य मन वचन कायकी शुद्धतापूर्वक मुनिदान करे, तो क्यों न अपूर्व सुखोंका स्वामी हो ? अवश्य हो ।

(५) सुकेतु श्रेष्ठीकी कथा ।

जम्बू द्वीप-पूर्व विदेह-पुष्कलावती देश-पुंडरीकिणी नगरीमें वसुपाल नामका राजा राज्य करता था। वहाँ एक जैनधर्ममें अतिशय श्रद्धालु सुकेतु नामका वैश्य अपनी स्त्री धारिणीसहित रहता था। वह एक वार व्यापारके लिए द्वीपान्तर जानेको घरसे निकलकर शिवंकर उद्यानमें नागदत्त श्रेष्ठीके वनवाये हुए नागभवनके निकट प्रस्थान करके ठहरा था। सो धारिणी मध्याह्नके समय उसके लिए घरसे रसोई तैयार करके वहाँ ले गई। सुकेतु अतिथिसंविभाग व्रत धारण किये था, इसलिए वह मुनियोंके आनेकी वाट देखने लगा। इतनेमें गुणसागर मुनि अपनी प्रतिज्ञाके पूरी होनेपर चर्याके लिए वहाँसे निकले। सुकेतुने उनका विधिपूर्वक पड़िगाहन करके अंतरायरहित आहार दिया जिसके प्रभावसे पंचाश्चर्य हुए। तथा सुकेतुके अधिक निर्मल परिणामोंके कारण साढ़े तीन करोड़ रत्नोंकी वर्षा हुई। नागदत्त श्रेष्ठीने यह कहकर कि "ये रत्न मेरे नागभवनके आँगनमें वरसे है, इसलिए मेरे है" उन्हे अपने घर ले गया। परन्तु वे रत्न थोड़ी देरमें आप ही आप जहाँके तहाँ चले गये। तव नागदत्त फिर इकठ्ठे करके उन्हे ले गया। परन्तु आश्चर्यकी वात है कि वे वहींके वहीं फिर पहुँच गये। यह देख क्रोधित हो नागदत्तने उन रत्नोंको फोड़नेका विचार करके एक रत्नको शिलापर दे मारा, किन्तु वह फूटा नहीं, उलटा लौटकर उसके लिलाटमें जोरसे लगा। यह देख देवोंने हँसी करके उसका नाम माणिनागदत्त रख दिया। तव नागदत्त अतिशय क्रोधित हो महाराज वसुपालके समीप जाकर बोला;—हे देव, मैंने जो भवन नामका नागभवन वनवाया है, उसके आगे रत्नोंकी वर्षा हुई है। सो आपको उन्हें अपने भंडारमें मँगाकर रखना चाहिए। राजाने कहा—ऐसा अकारण द्रव्य मुझे नहीं चाहिए। परन्तु नागदत्त माना नहीं, पैरोंपर पड़ गया। तव राजाने उसके अधिक आग्रहसे उन्हें अपने भँडारमें मँगाकर रख लिये। परन्तु थोड़ी ही देरमें वे वहींके वहीं पहुँच गये। राजाने पूछा;—ऐसा क्यों हुआ? तव किसीने कह दिया कि सुकेतु श्रेष्ठीके दिये हुए मुनिदानके प्रभावसे ये रत्न वरसे है, इसीलिए शायद ऐसा हुआ होगा। तव राजाने विना

विचारे हाय! मैने यह क्यो किया, इस प्रकार पश्चात्ताप करते हुए सुकेतुको बुलाया। सो वह पंचरत्न और कल्पवृक्षोके फूल लेकर आया। महाराजकी नजर किये। उन्होंने कहा;-मैने जो विना सोचे विचारे अकृत किया है, सेठजी! उसे क्षमा करके सुखसे अपने घर रहिए। तब-श्रेष्ठीने कहा;-महाराज, आप मेरे स्वामी हैं। क्षमा करनेकी कौनसी बात है। रत्नोकी क्या बड़ी बात है? प्रयोजन हो तो, जितने चाहे उतने रत्न इस सेवकके घरसे मँगा लीजिए। राजाने कहा;-तुम्हारे घरमें रक्खे हुए क्या मेरे नहीं है? जब आवश्यकता होगी, तब मँगा लूँगा। श्रेष्ठी प्रसन्न होकर अपने घर आया और सुखसे रहने लगा।

राजा सुकेतुपर इतना प्रसन्न हुआ कि जो कोई सुकेतुकी प्रशंसा करता था। उससे वह प्रसन्न होता था, और मणिनागदत्तकी जो स्तुति करता था उससे द्वेष करता था एक दिन राजाने सुकेतुकी बहुत प्रशंसा की, परन्तु उसे जिनदेव नामका एक श्रेष्ठी सह न सका। इसलिए बोला-महाराज, सुकेतुके रूप गुणकी प्रशंसा करते है, अथवा ऐश्वर्यकी करते है? यदि रूप गुणकी प्रशंसा करते है, तो कीजिए। और जो धन वैभवकी करते हों, तो पहले मेरे साथ धनवाद कराइए पीछे जो जीतै, उसीकी प्रशंसा कीजिए। यह सुन, सुकेतुने कहा:-ऐश्वर्यका क्या घमंड करता है, चुप रह। जिनदेवने कहा;-पुरुषको कोई कीर्तिका काम करना चाहिए, इसलिए मैने प्रार्थना की है कि तुम मेरे साथ धनवाद करो। सुकेतु बोला;-जैनीको वाद करना उचित नहीं है। तथापि जिनदेवने आग्रह नहीं छोड़ा और सुकेतुको धनवाद स्वीकार करना पड़ा। दोनोंने परस्पर प्रतिज्ञापत्र लिखकर राजाके हाथ सौंप दिये कि जो हारेगा, जीतनेवाला उसकी लक्ष्मी ले लेगा। पश्चात् दोनोंने अपने २ घर जाकर मैदानमें सारे धनका ढेर लगाया। और राजादिकोंने दोनोंके धनकी परीक्षा कर सुकेतुको विजयपत्र दे दिया। क्योंकि धनभंडार उसीके यहाँ अधिक था। तब जिनदेव बोला कि यथार्थमें मै जीता हूँ। क्योंकि सुकेतु सरीखे सखाकी सहायसे आज अनंत संसारके करनेवाले मोह महारिपुको मैने जीत लिया है। ऐसा कहकर सबसे क्षमा माँग सुकेतुके रोकनेपर

भी जिनदेवने संसार-देह-भोगोंसे विरक्त हो जिनदीक्षा ले ली। तब सुकेतु जिनदेवके पुत्रको उसकी सम्पूर्ण लक्ष्मी दे दानादिक सत्कार्य करता हुआ सुखमें रहने लगा।

मणिनागदत्त सुकेतुके वैभवको देख नहीं सकता था, इसलिए उसने एक दिन अपने नागालयमें तपश्चरण-पूर्वक नागोंका आराधन किया। पहले नागदत्तका पुत्र भवदत्त एक अर्जुन नामके चांडालको संबोधन करती हुई यक्षीको देखकर कामज्वरसे पीड़ित होकर मर गया था और उस नागालयमें उत्पल नामका देव हुआ था। सो नागदत्तके आराधनसे प्रसन्न हो वह बोला—हे नागदत्त, यह कायक्लेश क्यों करता है?

नागदत्त—तुम्हारा आराधन करता हूँ?

उत्पलदेव—किसलिए?

नागदत्त—जिस लक्ष्मीसे मैं सुकेतुकी लक्ष्मीको जीत सकूँ, वह मुझे तुम्हारे प्रसादसे मिल जावे, इसलिए।

उत्पल—तुम पुण्यहीन हो, इसलिए तुम्हें उसकी लक्ष्मी नहीं दे सकता हूँ।

नागदत्त—पुण्यहीन हूँ, इसीलिए तो तुम्हें आराधन करता हूँ, नहीं तो तुम्हारी आराधनाका प्रयोजन ही क्या था?

उत्पल—लक्ष्मीको छोड़कर और जो कुछ तुम कहोगे, सो करूँगा।

नागदत्त—तो सुकेतुको मार डालो।

उत्पल—निर्दोष पुरुषको नहीं मार सकता। उसे कुछ दोष लगाकर अलबत्तह मार डालूँगा।

नागदत्त—किसी भी उपायसे मारो, परन्तु मारो। बस उसके मरनेसे मैं संतुष्ट हो जाऊँगा।

उत्पल—तो मैं वन्दरका रूप धारण करता हूँ। मुझे साँकलसे बाँधकर तुम सुकेतुके निकट ले चलो। वह जब पूछे कि यह वन्दर क्यों ले आये? तब तुम कहना कि मैं वनमें गया था, वहाँ मुझे यह वन्दर दिखलाई दिया। देखते ही इसने पूछा कि क्या देखते हो? मैंने कहा—तू वन्दर होकर मनुष्य सरीखा बोलता है! इसने कहा—मैं वन्दर नहीं हूँ, पुण्यदेवता हूँ। मेरा स्वभाव उलटा है। मैंने कहा—सो कैसा? तब यह बोला—जो मेरा स्वामी होता है, वह

जो कुछ आज्ञा करता है, उसे मै कर लाता हूँ। परन्तु यदि वह कुछ आज्ञा नहीं देता है, तो मै उसे मार डालता हूँ। और इसी विरुद्ध स्वभावसे किसीका आश्रय नही लेकर मै वनमें रहता हूँ। इसकी उक्त आश्चर्यजनक बातें सुन इसे आपके पास ले आया हूँ, यदि आपमें आज्ञा देते रहनेकी सामर्थ्य है, तो इसे रख लो, नही तो मै छोड़े देता हूँ।

उत्पलकी बाते सुन नागदत्तने वैसा ही किया और आखिर सुकेतुने उस वन्दरको अपने यहाँ रख लिया। रखते देर नही हुई कि वह बोला;-स्वामिन, आज्ञा कीजिए। सुकेतुने कहा,-इस नगरके बाहर अनेक जिनमंदिरोंसे युक्त एक रत्नमयी नगर बनाओ। बन्दरने कहा;-मुझे छोड़ दीजिए, अभी जाकर बनाता हूँ। सुकेतुने छोड़ दिया। तब उसने बाहर जाकर थोड़े ही समयमें मनुष्योंको कौतुक उत्पन्न करनेवाला वैसा ही नगर तैयार कर दिया। और लौटकर फिर आज्ञा माँगी। तब सुकेतु ऐसा कहकर कि "मै राजाके समीप जाकर आता हूँ, तब तक तू ठहर" राजाके पास गया, और बोला;-देव, मैने एक नगर बनवाया है, वहाँ आप राज्य कीजिए। राजाने कहा;-तुम्हारे पुण्यके उदयसे वह नगर बना है, सो अब वहाँका राज्य तुम्हीं करो। यह सुन सुकेतु राजाका आभार मानता हुआ घर आया। आते ही वन्दर बोला;-स्वामिन्, आज्ञा दीजिए। सुकेतु बोला;-अच्छा सब नगरको ले जाकर मेरे उस नवीन नगरमें ठहराओ। बातकी बातमें उसने ऐसा ही कर दिखाया। और सुकेतुको उसकी स्त्री धारिणी सहित राजभवनमें ले जाकर सिंहासनपर बैठाय फिर आज्ञा माँगने लगा। तब सुकेतुने कहा;-गंगाजल लाकर धारिणीसहित मेरा राज्याभिषेक करके राज्य मुकुट पहनाओ। वन्दरने वैसा ही किया और फिर आज्ञा माँगने लगा। सुकेतु बोला;-नागदत्तादि सब लोगोंको महल मकान देकर उनको अक्षय धनधान्यादिसे पूर्ण कर दो। उसने तत्काल ही वैसा भी कर दिया, और फिर आज्ञा माँगी। तब सुकेतुने खिसियाकर कहा;-अच्छा, मेरे राजमहलके आगे एक खंभा गड़ाकर उसकी जड़से एक साँकल बाँध उस साँकलके सिरपर एक कुंडलमें अपना सिर फँसाकर जबतक मैं नहीं रोकूँ, तबतक खंभेके ऊपर चढ़ और नीचे उतर। बेचारे बन्दरने इस आज्ञाके अनुसार दो तीन दीनतक खंभेपर वह कसरत की, परन्तु जब सुकेतुने नहीं रोका, तब थककर वह वहाँसे भाग गया।

सुकेतु सेठ बहुत समयतक राज्य करके एक दिन अपने सिरमें श्वेत वाल देख संसारसे विरक्त हो गया। इसलिए वह अपने पुत्रको राज्य दे राजा वसुपालसे अपनेको छुड़ा अर्थात् आज्ञा ले मणिनागदत्तादि बहुत लोगोंके साथ भीम भट्टारकके निकट दिगंबर मुनि हो गया। और तपस्या करके मोक्षको प्राप्त हुआ। वारिणी भी तप कर अच्युत स्वर्गमे देव हुई। मणिनागदत्तादि यथायोग्य गतियोंको प्राप्त हुए। सुकेतुके घरसे निकलते ही वह देवमयी नगर लोप हो गया।

इस प्रकार एक वारके दानके फलसे सुकेतुको देवदुर्लभ सुख प्राप्त हुए। और अन्तमें मोक्ष प्राप्त हुआ। इसलिए सब लोगोंको दानधर्ममे तत्पर होना चाहिए।

---

(६) आरंभक ब्राह्मणकी कथा।

आर्य खंडके पद्मपुर नगरमे शंखदारुक नामके ब्राह्मणका पुत्र आरंभक वड़ा भारी विद्वान् भद्र मिथ्यादृष्टि था। वहुतसे विद्यार्थियोंको पढ़ाता हुआ वह सुखसे रहता था। एक दिन चर्याके लिए आते हुए एक महामुनिको पड़िगाहन करके उसने अन्तरायरहित आहार दिया। उस पुण्यके फलसे आयुके अंतमे मरकर वह भोगभूमिमे उत्पन्न हुआ। फिर वहाँसे स्वर्ग और स्वर्गसे चयकर धातकी खंडमे चक्रपुरके राजा हरिवर्मा और रानी गांधारीके व्रतकीर्ति पुत्र हुआ। वहाँ तपकर स्वर्ग गया। फिर वहाँसे चयकर जम्बू द्वीप-पूर्व विदेह-मंगलावती देश—रत्नसंचयपुरके राजा अभयघोष तथा रानी चन्द्राननाके पयोवल पुत्र होकर तप करके प्राणत स्वर्गमे देव हुआ। और फिर वहाँसे चयकर इस भरत क्षेत्रके पृथ्वीपुरके राजा जयंधर और रानी विजयाका पुत्र जयकीर्ति हुआ। जयकीर्ति तपस्या करके अनुत्तर स्वर्गमे देव हुआ और वहाँसे च्युत होकर अयोध्याके राजा जितशत्रुके (अजितनाथके पिताके) भाई विजयसागर और रानी विजय-सेनाके सगर नामका दूसरा चक्रवर्ती हुआ। सो भरतके समान छह खंडका राज्य करता हुआ सुखसे रहने लगा। उसके साठ हजार पुत्र हुए। वे प्रतिदिन जब उससे आज्ञा माँगते थे कि हम लोग क्या करे। तब चक्रवर्ती कह

देते थे कि हमको क्या दुःसाध्य है, जिसकी आज्ञा करे। परन्तु आखिर एक दिन पुत्रोंके आग्रहसे उन्होंने आज्ञा दे दी कि कैलाशके चारों तरफ एक जलकी खाई खोदो। तदनुसार सब पुत्रोंने मिलकर दंड रत्नसे खाई खोदी। और वड़े पुत्र जान्हवीका वेटा भगीरथ तथा किसी अन्यका वेटा भीमरथ ये दोनों दंड रत्न लेकर गंगाका जल लानेके लिए गये। इतनेमें दंड रत्नकी चोटसे क्रोधित हो धरणेन्द्रने इतर सब पुत्रोंको भस्म कर दिये।

महाराज सगरने पहले कभी किसी पुरुपको पंचनमस्कार मंत्र दिया था, उसके फलसे वह शरीर छोड़ सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ था। सो अपने आसनके कंपायमान होनेसे वह ब्राह्मणका वेप धर सगरके समीप आया और भोगासक्त जान उन्हें संवोधित कर चला गया। तव राजा सगर विरक्त हो भगीरथको राज्य दे दीक्षा ले तपस्या कर मोक्षको गये।

एक दिन भगीरथने धर्माचार्यकी वन्दना करके पूछाः-भगवन्, मेरे पिता तथा काकाओंने कैसा समुदायकर्म उपार्जन किया था; जिससे उन सवकी एक साथ मृत्यु हुई। तव मुनिराज कहने लगेः-वे सब कई भव पहले अवंती ग्राममें साठ हजार कुटुम्वी थे। एक वार वे सवके सव मुनिकी निंदा करते थे, सो एक कुम्हारने (कुंभकारने) उन्हें रोका, पश्चात् एक दिन जव कुम्हार कहीं दूसरे गाँवको चला गया, तव वहुतसे भीलोंने मिलकर उन कुटुम्वियोंको मार डाला। मरकर सवके सव शंख कौड़ी आदि अनेक योनियोंमें जन्म लेकर अयोध्या नगरीके वाहर गिजाई (लाल रंगके कीड़े) हुए। और वह कुंभकार मरकर किन्नर होकर अयोध्याका मंडलेश्वर राजा हुआ। सो उसके हाथीके पाँव तले पड़कर वे सवके सव कीड़े मर गये। और दूसरे जन्ममें तपस्वी होकर ज्योतिर्लोकमें देव हुए। फिर वहाँसे चयकर ये सगर चक्रवर्तीके साठ हजार पुत्र हुए। अयोध्याका मंडलेश्वर राजा तप-पूर्वक शरीर छोड़ स्वर्ग गया और वहाँसे आकर तू हुआ है। यह सुन, भगीरथने अपने पुत्रको राज्य दे मुनि होकर मोक्ष प्राप्त किया।

इस प्रकार एक मिथ्यादृष्टि ब्राह्मण एक वार मुनिदान देकर ऐसी गतिको प्राप्त हुआ। यदि सम्यग्दृष्टि दान करे, तो उन्हें क्यों न सव कुछ सुलभ हो जावे ?

---

(७) नल नीलकी कथा।

आर्य खंड–किष्किधापुरके वानरवंशी राजा सुग्रीवके नल नील नामके दो भाई थे। ये सुग्रीवादि सब रामचन्द्रके सेवक थे। रामचन्द्र और रावणका जिस समय सीताके लिए युद्ध हुआ था, उस समय नल नील दोनो उनके सेनापति थे। उस युद्धमे नल नीलने रावणके हस्त प्रहस्त नामके सेनापति मारे थे। उनके जन्मान्तरके विरोधकी कथा इस प्रकार है,—

भरत क्षेत्रके कुशस्थल ग्राममे एक ब्राह्मणके इंधक पल्लव नामके दो मूर्ख पुत्र थे। जैनियोके संसर्गसे उन्होने एक वार मुनिको आहार दान दिया था। कुछ दिन पीछे दोनोने दो कुटुम्बियोके साझेमे व्यापार किया और उसमें लाभ भी उठाया, परन्तु हिस्सा करते समय झगड़ा हो जानेसे कुटुम्बियोने उन्हे मार डाला। सो मरकर दोनो भोगभूमिमे उत्पन्न होकर वहाँसे स्वर्ग गये और स्वर्गसे चयकर ये नल नील हुए। पश्चात् वे दोनो कुटुम्बी मरकर कालेंजर वनमे शशा हुए। फिर वहाँमे अनेक योनियोमे भ्रमण कर तापसीके व्रत धारण कर ज्योतिषी देव हुए और आखिर विजयार्द्धकी दक्षिणश्रेणीमे राजा अग्निकुमार तथा रानी अश्विनीके हस्त प्रहस्त हुए।

इस प्रकार सम्यक्त्वरहित मूर्ख ब्राह्मण भी एक वार मुनिदानके फलसे भोगभूमि और स्वर्गके सुख भोगकर नल नील हुए और फिर जिनदीक्षा धारण कर मोक्षको गये। तो फिर सम्यग्दृष्टि जीव दान करके मुक्तिफल क्यों नहीं पावेगे ? अवश्य पावेगे।

(८) लव अंकुशकी कथा।

अयोध्या नगरीमे राम और लक्ष्मण वलभद्र नारायण राज्य करते थे। रामचन्द्रकी सीता महाराणी गर्भवती हुई। जब पिताकी आज्ञा पालन करनेके लिए भरतको राज्य देकर राम लक्ष्मण वनवासको निकले थे तब वनमेसे रावण

सीताका हरण कर ले गया था और पीछे राम लक्ष्मण रावणको मारकर उसे अयोध्या ले आये थे। सो लोग कहने लगे कि रावणके घर सीता वहुत दिन रही और फिर रामचन्द्र उसे अपने घर ले आये, यह अनुचित्त किया। इसी लोकापवादके भयसे सीताको रामचन्द्रने घरसे निकाल एक वनमें भिजवा दी।

वहाँ हाथी पकड़नेके लिए पुंडरीकिणी नगरीका राजा वज्रजंघ आया था। वह सीताको वहिन मानकर अपने घर ले गया था। वहाँ सीताके लव और अंकुश नामके युगल पुत्र उत्पन्न हुए। युवा होनेपर वज्रजंघने उनका विवाह कर दिया। पश्चात अपनी भुजाओंके जोरसे उन दोनोंने अनेक राजाओंको जीतकर महामंडलेश्वरकी पदवी प्राप्त की। और कुछ दिनोंमे नारदके मुँहसे अपने पिता और काकाके समाचार पा उन्होंने अयोध्यापर चढ़ाई की औरलड़ाईमे अपने पिता काकाको एक प्रकारसे हरा दिया। राम लक्ष्मणको इससे बड़ा कौतुक हो रहा था, उसी समय नारदने राम लक्ष्मणसे कह दिया कि वे उनके पुत्र थे। तव वे स्नेहसे पुत्रोंको हृदयसे लगाकर नगरमें ले गये। खूब आनन्द मनाया। फिर उन्हे युवराजपद दे दिया।

पीछे विभीषणादि प्रधान पुरुषोंके कहनेसे रामचन्द्रने परीक्षाके लिए सीताको अग्निकुंडमें प्रवेश करनेकी आज्ञा दी। उसके निश्चल पातिव्रतके प्रभावसे वह कुंड कमलयुक्त सरोवर हो गया। तव सीता संसारको अपनी विशुद्धता वतला विरक्त हो गई। और वहीं महेन्द्र उद्यानमें सकलभूषण मुनिके समवसरणमे पृथ्वीमती आर्यिकाके निकट उसने दीक्षा ले ली। रामचन्द्र अतिशय मोहके कारण अपने परिवारसहित सीताको रोकनेके लिए समवसरणमे गये; परन्तु वहाँ भगवानके दर्शनमात्रसे उनका मोह नष्ट हो गया। इसलिए भगवानकी पूजा करके वे धर्मश्रवणके लिए अपने कोठेमे जा वैठे। तव विभीषणने केवली भगवानसे रामचन्द्रादिके पूर्व भव पूछ लव अंकुशके पुण्यके अतिशयका कारण पूछा। भगवान् कहने लगे,—

आर्य खंड-काकंदीपुरके राजा रतिवर्द्धन और रानी सुदर्शनाके प्रीतिंकर हितंकर नामके दो पुत्र थे। एक वार सर्वगुप्त नामके एक राजपुरोहितको राजाने कैद करके जेलमें भेज दिया था, उसकी स्त्री विजयावली छोड़नेकी प्रार्थना

करनेके लिए राजाके समाप गई। परन्तु राजाका मनोहर रूप देख उसपर आसक्त हो प्रार्थना करना भूल बोली—महाराज, कृपा करके मुझे ग्रहण कीजिए। राजाने कहा—तू मेरी बहिनके बराबर है। तब वह अप्रिय उत्तर सुन क्रोधित हो वहाँसे चली गई। कुछ दिनोमे सर्वगुप्तको कैदसे छुट्टी दे राजाने फिर पुरोहित पदपर नियुक्त कर दिया। तब विजयावलीने उससे बात बनाकर कहा:—तुम्हारे पीछे राजा मेरा शीलभंग करना चाहता था। उसे मैने बड़ी कठिनाईसे बचाया है सो इससे और पूर्वके अपकारसे वह पुरोहित राजासे मन ही मन रुष्ट हो गया और धीरे २ अन्य राजपुरुषोको मिलाने लगा। फिर एक दिन मौका पाकर राजाको सब लोगोके साथ उसने राजभवनको घेर लिया। तब राजा और उसके दोनो पुत्र अपने जनानेसहित किसी तरह नगर छोड़ चले गये। और काशीपुरके राजा काशिपुके यहाँ जा पहुँचे। इसने उन्हे बड़े सत्कारसे अपने यहाँ ठहराया। पीछे राजा रतिवर्द्धनने काशीनाथकी सेना लेकर काकंदीपुरपर चढ़ाई की और युद्धमे पुरोहितको बाँध अपना राज्य ले लिया। कुछ दिन प्रजाका पालन करके दोनो पुत्रों सहित उन्हाने जिनदीक्षा ले ली। सो वे पुत्र दुर्धर तप करके नवमें ग्रैवेयकमे उत्पन्न हुए। वहाँसे चयकर शाल्मलीपुरमे रामदेव नामके ब्राह्मणके वसुदेव और वासुदेव नामके पुत्र हुए। वे दोनो पात्रदान दे उसके फलसे भोगभूमिमे उत्पन्न हुए। वहाँसे ईशान स्वर्गमे उत्पन्न हुए और अब ये रामचन्द्रके लव अंकुश नामके पुत्र हुए है।

इस प्रकार एक बार भी सत्पात्रके दानसे वसुदेव वासुदेव ब्राह्मण लव अंकुश जैसे चरमशरीरी महापुरुप हुए, फिर सम्यग्दृष्टि श्रावक यदि सत्पात्रोंको दान देवे तो क्या ऐसे महत्फलको नही पावे? अवश्य पावे।

(९) राजा दशरथकी कथा।

अयोध्या नगरीमे राजा दशरथ राज्य करते थे। उन्होने एक दिन महेन्द्र उद्यानमे आये हुए सर्वभूतहितशरण्य-मुनिकी वन्दना कर समीप बैठ अपने पूर्व भव पूछे। तब मुनिराज कहने लगे,—

इसी आर्य खडके कुरुजांगल देशके हस्तिनापुर नगरमे एक उपास्ति नामका राजा था। उसने एक वार मुनिदानका निषेध किया, इसलिए तिर्यंच गतिमे असंख्यात भव तक परिभ्रमण करके वह चन्द्रपुरके राजा चन्द्र और राणी धारिणीके धारण नामका पुत्र हुआ। इस भवमे उसने भक्तिसहित मुनिदान दिया, इसलिए मरकर देवकुरु भोगभूमिमे उत्पन्न हुआ, वहाँसे स्वर्ग गया और स्वर्गसे चयकर जम्बू द्वीप-पूर्व विदेह-पुष्कलावती देश-पुंडरीकिणी नगरीके राजा अभयघोष रानी वसुधाके नंदिवर्धन नामका पुत्र हो तपस्या करके स्वर्ग गया। फिर वहाँसे आकर जम्बू द्वीप-अपर विदेह-विजयार्द्ध शशिपुर नगरके राजा रत्नमालीके सूर्य नामका पुत्र हुआ।

एक वार रत्नमालीने सिंहपुरके राजा वज्रलोचनपर चढ़ाई की। उसी समय एक देवने आकर उसे रोका। उसके कारण पूछनेपर देवने कहाः—इसी विजयार्द्धमे गांधारके राजा श्रीभूतिके एक सुभूति नामका पुत्र और उभयमण्यु नामका मंत्री था। एक वार राजाने कमलगर्भ भट्टारकके उपदेशसे जो व्रत ग्रहण किये थे, उन्हें उस मंत्रीने छुड़ा दिये। उस पापसे मरकर वह हाथी हुआ। उसे राजाने अपना पट्टबंध हाथी बना लिया। एक वार उस हाथीको श्रीकमलगर्भ मुनीश्वरके दर्शनसे जातिस्मरण हो आया, इसलिए वह श्रावकके व्रत ग्रहण कर मरनेपर सुभूतिकी स्त्री योजनगंधाके अरिंदम नामका पुत्र हुआ और फिर उन्हीं मुनिके समीप दीक्षा ले तपस्या कर मैं सतार स्वर्गमे देव हुआ हूँ। तथा राजा श्रीभूति वह पर्याय छोड़ मंदर वनमे हिरण और फिर कांभोज देशमे कलिंजम नामका भील हो पापकर्मके करनेसे दूसरे नरक गया। वहाँ जाकर मैंने उसे उपदेश दिया वहाँकी आयु पूरी कर अब तू रत्नमाली हुआ है। क्या तू नरकके दुःख भूल गया? जो अब फिर अपने हितको भूल लड़ाई करनेको उद्यत हुआ है। यह सुन रत्नमाली अपने पुत्रको राज्य दे रत्नतिलक मुनिके निकट वडे पुत्र सूर्यके साथ मुनि हो गया। तप कर दोनों शुक्र स्वर्गमे देव हुए। पश्चात् हे राजन्, वहाँसे चयकर सूर्यचरका जीव तो तू हुआ, रत्नमालीका जीव राजा जनक हुआ, अरिंदमका जीव राजा कनक हुआ और अभयघोषका (नन्दिवर्धनके पिताका) जीव तप कर ग्रैवेयकमे उत्पन्न हुआ था, सो वहाँसे चयकर मैं (सर्वभूतहितशरण्य मुनि) हुआ हूँ। यह सुन राजा दशरथ मुनिकी वन्दना कर अपने नगरको लौट आया और अपराजिता आदि पट्टरानियां,

रामचन्द्रादि पुत्रों तथा अन्य बन्धुओं सहित महाविभूतिका भोग करता हुआ, सुखसे रहने लगा।

इस प्रकार राजा धारण मिथ्यादृष्टि होकर भी सत्पात्रदानके फलसे इस प्रकार विभूतिको प्राप्त हुआ। फिर अन्य सम्यग्दृष्टि जीव मुनियोंको दान देवें तो क्यों न इच्छित सुख संपदाको पावे? अवश्य ही पावें।

[१०] श्रीभामंडलकी कथा।

विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीके रथनूपुर नगरमें सीता देवीके भाई विद्याधरचक्री प्रभामंडल (भामंडल) सुखसे राज्य करते थे। अयोध्यामें एक कदंब नामका वैश्य था। उसकी अंबिका स्त्रीसे अशोक और तिलक नामके दो पुत्र थे। सो पिता पुत्र तीनों सीतात्यजन अर्थात् सीताका वनोवास सुन संसारसे विरक्त हो द्युति भट्टारकके निकट दीक्षा ले मुनि हुए और कुछ दिनोंमें सम्पूर्ण आगमके पाठी हो गये। एक वार वे ताम्रचूलपुरके चैत्यालयकी वन्दनाको जाते थे; परन्तु मार्गमें पचास योजनकी सीतार्णव नामकी अटवीके पड़ जानेसे और वर्षा ऋतु समीप आ जानेसे चातुर्मासिक योग धारण कर वे ठहर गये। उसी समय भामंडल वहाँसे स्वेच्छाविहार करनेके लिए निकले, सो मुनियोंको उक्त उपसर्ग सहित देखकर वहीं ठहर गये। और समीप ही ग्रामादि बसा उन्होंने आहारदानादि देकर उपसर्ग निवारण किया। इस तरह अनंत पुण्यका संग्रह कर भामंडलने वहुत काल तक राज्य किया। एक दिन वे रातको अपनी सुंदरमाला रानीसहित सो रहे थे कि अकस्मात विजलीके पड़नेसे उनका देहान्त हो गया और उत्तम भोगभूमिमें जाकर उत्पन्न हुए।

देखो, रानी और सम्यक्त्वहीन भामंडलने मुनिदानके फलसे उत्तम भोगभूमि जैसी उत्तम गति पाई, फिर सम्यग्दृष्टि जीव यदि मुनिदान करे तो क्यों न अच्छी गति पावे? अवश्य ही पावे।

[११] सुसीमा पट्टराणीकी कथा ।

आर्य खंडके सुराष्ट्र देशमें एक द्वारावती नगरी है । वहॉ वलभद्र नारायण राजा पद्म और श्रीकृष्ण राज्य करते थे । श्रीकृष्णनारायणके सत्यभामा, रुक्मिणी, जांववती, लक्ष्मणा, सुसीमा, गौरी, पद्मावती और गांधारी ये आठ पट्टरानियॉ थीं । एक दिन वलभद्र और नारायण दोनों उर्जयन्ति गिरिपर (गिरनारपर) श्रीनेमिनाथ भगवान्‌की वन्दना करनेके लिए गये । और नमस्कार कर अपने कोठेमें वैठ धर्मश्रवण करने लगे । अवसर पाकर सुसीमा देवीने वरदत्त गणधरसे नमस्कार कर अपने पूर्व भव पूछे । तव गणधर भगवान् कहने लगे,–

धातकी खंड–पूर्व विदेह–मंगलावती देशके रत्नसंचय पुरका राजा विश्वसेन जिसकी रानीका नाम अनुंधरा और मंत्रीका सुमति था, अयोध्याके राजा पद्मसेनके द्वारा युद्धमें मारा गया । रानी अनुंधरी पतिकी मृत्युसे वहुत दुःखी हुई । तव सुमतिने उसे समझा बुझाकर व्रत धारण करा दिये । जिससे आयुके अन्तमें मरकर वह विजयद्वारके रहनेवाले विजय यक्षकी ज्वलनवेगा देवी हुई । पश्चात् उस पर्यायको पूरीकर वहुत काल तक भ्रमण करने वाद जम्बू द्वीप पूर्व विदेह–रम्यावती देशके शालिग्राममें यक्षि नामके ग्रामकूटककी स्त्री देवसेनाके यक्षादेवी नामकी पुत्री हुई । वह एक दिन पूजाकी सामग्री लेकर यक्षकी पूजा करनेके लिए गई, सो वहॉ धर्मसेन मुनिके पास धर्मश्रवण करके उसने मुनियोंको आहारदान दिया । पश्चात् एक दिन जव वह विमलाचल पर्वतपर अपनी सखियोंके साथ क्रीड़ा करनेको गई थी, और वहॉ अकालवृष्टिके कारण एक गुफामें छुप रही थी, तव सिंहने आकर उसे भक्षण कर ली । मरकर हरिवर्ष क्षेत्रमें उत्पन्न हुई, वहॉसे ज्योतिर्लोकमें उत्पन्न हुई और फिर पुष्कलावती देशके वीतशोकपुरके राजा अशोक और श्रीमतीके श्रीकांता नामकी पुत्री हुई । वह कन्या अवस्थामें ही जिनदत्ता आर्यिकासे दीक्षा ले तपकर महेन्द्र स्वर्गके इन्द्रकी इन्द्राणी हो अव तू नारायणकी पट्टरानी सुसीमा हुई है । अव तू इस भवमें तप कर कल्पवासी देव होवेगी और फिर वहॉसे चयकर मंडलेश्वर राजा हो घोर तपकर मोक्षको प्राप्त करेगी । अपने भवान्तर सुनकर सुसीमाको अतिशय हर्ष हुआ ।

इस प्रकार एक विवेकहीन यशोदेवी मुनिदानके फलसे मोक्षकी पात्र हुई, फिर और विवेकी सम्यग्दृष्टि पुरुष दान करके मनोवांछित फल पावें, इसमें कहना ही क्या है ?

(१७) गांधारी पट्टरानीकी कथा ।

उसी दिन भगवन् नेमिनाथके समवसरणमें श्रीवरदत्त गणधरसे गांधारी रानीने भी अपने भवान्तर पूछे। तब गणधरदेव कहने लगे,—

अयोध्याके राजा रुद्रदासकी रानी विनयश्री श्रेष्ठ मुनिदानके प्रभावसे उत्तरकुरु भोगभूमिमें उत्पन्न हो चन्द्रमाकी रोहिणी देवी हुई। फिर वहाँसे चयकर विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें गगनवल्लभपुरके राजा विद्युद्वेग रानी विद्युन्मतीके विनयश्री नामकी पुत्री हुई और निसालोकपुरके राजा महेन्द्रविक्रमको परणाई गई। महेन्द्रविक्रम एक चारणमुनिके निकट धर्मश्रवण कर, पश्चात् हरिवाहन पुत्रको राज्य दे दिगम्बर हो गये और विनयश्री आर्यिका हो गई। सो तप करके सौधर्म इन्द्रकी देवी हो तू नारायणकी पट्टरानी हुई है। अब आगे तू भी तप करके स्वर्ग और मनुष्य भवके सुख भोग मोक्ष प्राप्त करेगी। यह सुन गांधारी बहुत प्रसन्न हुई।

इस प्रकार एक विवेकरहित स्त्री एक वार मुनिदानके फलसे गांधारी पट्टरानी जैसे पदको प्राप्त हुई, तब अन्य विवेकी जीव मुनिदान करें, तो क्यों न सब प्रकारके सुखोंको पावें ? अवश्य पावें।

[१८] गौरी पट्टरानीकी कथा ।

इसके पश्चात् भगवान् नेमिनाथके समवसरणमें गौरीने भी अपने पूर्व भव पूछे। तब श्रीवरदत्त गणधर बोले,— भरतक्षेत्रके इभपुर (गजपुर) नगरके धनदेव वैश्यकी स्त्री यशस्विनीको एक वार एक विद्याधरको आकाश-

मार्गसे जाते हुए देखकर जातिस्मरण ज्ञान हो गया। सखियोंने पूछा, तब वह बोली,—धातकी खंड—अपर विदेहके अरिष्टपुर नगरमें आनन्द श्रेष्ठीकी भार्या नन्दा अमितगति और सागरचन्द्र मुनिको दान देकर उसके फलसे देवकुरु भोगभूमिमें उत्पन्न हुई। और वहाँसे ईशान इन्द्रकी इन्द्राणी होकर अब मैं यशस्विनी हुई हूं। मुझे इस प्रकार अपने भवान्तर स्मरण आये हैं। इसके पीछे यशस्विनीने सुभद्राचार्यके समीप प्रोपधोपवास ग्रहण किये, जिसके फलसे वह सौधर्म इन्द्रकी देवी हुई और फिर वहाँसे चयकर कोशाम्बी नगरीमें समुद्रदत्त वैश्यकी सुमित्रा स्त्रीके गर्भसे धर्ममती नामकी पुत्री हुई। वही धर्ममती जिनमती आर्यिकाके समीप दीक्षा ले तपकर शुक्रेन्द्रकी प्रिया हो अब तू नारायणकी पट्टराणी हुई है। अब पहली पट्टरानियोंके समान तू भी स्वर्गके तथा मनुष्य भवके सुख भोगकर मोक्ष प्राप्त करेगी। यह सुनकर गौरीको बहुत संतोष हुआ।

देखो, इस तरह एक मूर्ख स्त्री भी मुनिदानके फलसे जब ऐसे वैभवको प्राप्त हो गई, तब दूसरे बुद्धिमान् जन मुनिदानके प्रभावसे इच्छित फलोंको पावेंगे, इसमें सन्देह ही क्या है?

(१४) पद्मावती पट्टरानीकी कथा।

रानी पद्मावतीने भी समवसरणमें अपने भव पूछे। तब गणधर भगवान् बोले,—अवन्ति देशकी उज्जयनी नगरीके राजा अपराजित् और रानी विजयाके एक विनयश्री नामकी पुत्री हुई। वह हस्तशीर्षपुरके राजा हरिषेणको परणाई गई। उसने एक बार वरदत्त मुनिको आहार दान देकर बहुतसा पुण्य उपार्जन किया। पश्चात् एक दिन वह शयन-गृहमें सोती थी, सो कालागरु आदि सुगंधित पदार्थोंकी धूपके धुएँसे अपने पतिसहित घुटकर मर गई और हैमवत क्षेत्रमें उत्पन्न हुई। वहाँसे चन्द्रमाकी देवी होकर फिर मगध देशके शाल्मलिखंड ग्राममें देविल ग्रामकूटककी विजयदेवीके उदरसे पद्मा नामकी पुत्री हुई। उसने वरधर्म योगीके उपदेशसे अज्ञातफलभक्षणका अर्थात् विना जाने हुए फलके खानेका त्याग कर दिया।

एक दिन चंडदान भील उस गाँवके सब लोगोंको बाँधकर अपनी पल्लीमें (ग्राममें) ले गया। इन सबके साथ पद्मा भी कैद होकर गई। पीछे जब उस भीलको राजगृहके राजा सिंहरथने मार डाला, तब वे सब लोग वहाँसे भागकर एक अटवीमें जा पहुँचे। परन्तु वहाँ विना जाने हुए किंपाक फलका (इन्द्रायणका) भक्षण करके सबके सब मर गये, केवल एक पद्मा जीती रही सो वहाँसे अपने घर लौट आई। क्योंकि उसे अनजाने फलके त्यागका व्रत था। उसके पीछे वह बहुत समयतक जीती रही। और अन्तमें मरकर हेमवत क्षेत्रमें उत्पन्न हुई। फिर उस पर्यायको भी पूरी करके स्वयंप्रभाचलनिवासी स्वयंप्रभ देवकी देवी हुई और बहुत काल तक सुख भोगकर जयंतपुरमें विमलश्री नामकी कन्या हुई। वह भद्रिलपुरके राजा मेघवाहनके साथ व्याही गई। सो एक मेघघोष पुत्रको पाकर पद्मावती आर्यिकासे दीक्षा लेकर आर्यिका हो गई। और तप कर सहस्रार स्वर्गके इन्द्रकी देवी हो अब तू नारायणकी प्रिया हुई है। आगे तू भी अन्य रानियोंके समान मोक्ष पावेगी। यह सुनकर पद्मावती बहुत प्रसन्न हुई।

इस प्रकार एक विवेकहीन मिथ्यादृष्टि स्त्री भी सत्पात्रदानके फलसे इस प्रकार मोक्षकी अधिकारिणी हुई, तो अन्य पुरुष इसके फलसे मोक्षके पात्र क्यों न होवेंगे? अवश्य होवेंगे।

(१५) धन्यकुमारकी कथा।

अवंती देशकी उज्जयनी नगरीमें राजा अवनिपाल राज्य करता था। उस समय वहाँ एक धनपाल नामका धनवान् वैश्य था। उसकी स्त्री प्रभावतीके देवदत्त आदि सात पुत्र थे। उनमेंसे कई एक विद्याभ्यास करते थे और कई एक व्यापार करते थे। प्रभावती एक दिन चतुर्थ स्नान करके अपने पतिके साथ शयन करती थी कि रात्रिके पिछले पहरमें उसने ऊँचा सफेद बैल, कल्पवृक्ष, चन्द्रादि पदार्थोंको स्वप्नमें अपने घरमें प्रवेश करते हुए देखे। उसने सवेरे अपने पतिसे उनकी वार्ता कही। पतिने स्वप्नका फल विचारकर कहा:—प्रिये, तेरे गर्भसे वैश्य कुलमें प्रधान

और अपनी कीर्तिसे तीनों जगतको धवल करनेवाला महात्मा पुत्र उत्पन्न होगा। यह सुन वह अतिशय प्रसन्न हुई और नौ महीने व्यतीत होनेपर उसके गर्भसे एक सुन्दर पुत्रने अवतार लिया।

उस भाग्यवान् पुत्रका नाल गाड़नेके लिए जो जमीन खोदी गई, उसमें द्रव्यसे भरा हुआ एक कड़ाहा निकला। इसी प्रकार उसके स्नान करानेके लिए जो जगह खोदी गई, वहाँसे भी बहुतसा धन निकला। तब धनपालने राजाको इस धनके मिलनेकी सूचना दी। परन्तु उन्होंने कह दिया कि वह धन तुम्हारे पुत्रके प्रभावसे मिला है, अतएव उसका स्वामी भी वही है। इससे संतुष्ट होकर श्रेष्ठीने घर आ पुत्रका जन्मोत्सव खूब धूमधामसे किया। और नगरके सम्पूर्ण जिनमंदिरोंमे अभिषेकादि करके दीन अनाथोंको सुवर्ण आदिका दान दे प्रसन्न किया। इस पुत्रके जन्मसे मातापिता अपने वर्गमें धन्य हुए इस कारण उसका नाम धन्यकुमार रक्खा गया।

वह धन्यकुमार अपनी बालक्रीड़ासे बंधुओंको संतुष्ट करके जैनोपाध्यायके निकट विद्याभ्यास कर सम्पूर्ण कलाओंमे कुशल हो गया। वह बड़ा उदार और भोगी था, इस कारण उसके देवदत्तादि सातों भाई कहते थे कि हम लोग कमानेवाले हैं और यह गमानेवाला है। यह बात एक दिन प्रभावतीने सुनकर अपने पतिसे कहा:—धन्यकुमारको किसी व्यापारके काममें लगाओ तो अच्छा हो। तब श्रेष्ठीने अच्छे मुहूर्तमें सौ रुपया देकर पुत्रको बाजारमें बैठा दिया और समझा दिया कि यह द्रव्य देकर कोई वस्तु खरीदना, फिर उसे बेचकर दूसरी खरीदना, फिर तीसरी खरीदना, इस प्रकारसे जब तक भोजनका समय न होवे, तब तक खरीद बिक्री करते रहना और फिर आखिरमें जो वस्तु खरीदो, उसे मजदूरके हाथ देकर भोजनके लिए घर चले आना। यह कहकर श्रेष्ठी तो घर चले आये, और धन्यकुमार अपने अंगरक्षको सहित दूकानमें बैठा। इतनेमें कोई पुरुष एक चार बैलोंकी गाड़ीमें लकड़ी भरके बेचनेको आया। सो कुमारने वे रुपये देकर उस गाड़ीको खरीद ली, पश्चात उसे बेचकर एक भेड़ खरीदी और उसे बेचकर पलँगके पाये खरीद कर वह भोजनके लिए घर आ गया। उस दिन पुत्रको पहले पहल व्यापार करके आया जान माताने बड़ा भारी उत्सव मनाया। यह देख बड़े पुत्र बोले,—बड़ा आश्चर्य है कि यह पहले ही दिन सौ रुपया खोकर आ गया है, तो भी

धन्यकुमारके रूपादि अतिशयको देखकर किसी वैश्यने धनपालसे निवेदन किया;–मै अपनी पुत्री धन्यकुमारको देना चाहता हूँ। धनपालने कहा:–बड़े पुत्रको दो। तब वह बोला;–यदि दूँगा, तो धन्यकुमारको दूँगा, अन्यको कदापि नही दूँगा। यह समाचार पा उस दिनसे सातो भाई धन्यकुमारसे द्वेष रखने लगे; परन्तु यह बात धन्यकुमारको मालूम नही हुई।

एक दिन वे सब मिलकर उद्यानकी एक बावड़ीमे धन्यकुमारको क्रीड़ा करनेके लिए ले गये। वे सब बावड़ीमे क्रीड़ा करने लगे। धन्यकुमार उनका कौतुक देखता हुआ बावड़ीके तटपर बैठ रहा। इतनेमे एकने आकर उसे पीछेसे बावड़ीमे धकेल दिया। धन्यकुमार "णमो अरहंताणं" कहता हुआ गिर पड़ा। तब वे मनके सब ऊपरसे बहुतसे पत्थर डाल उसे मरा समझ संतुष्ट हो चले गये। उधर जलदेवताने धन्यकुमारको जल निकलनेके द्वारसे बाहर निकाल दिया। निकलकर वह नगरके बाहर आया, और वहाँसे "भाइयोंके द्वेषसे अब यहाँ रहना ठीक नहीं है" ऐसा सोच देशांतरको चल दिया।

रास्तेमे एक किसानको हल जोतते हुए देख धन्यकुमार यह विचार करने लगा कि "सम्पूर्ण विद्याएँ मैने सीखीं, परन्तु यह एक अपूर्व ही देखी इसे भी सीखना चाहिए" उसके समीप गया। उसके प्रभावशाली रूपको देखकर किसानको अचंभा हुआ। महापुरुष जानकर उसने प्रार्थना की;–प्रभो, मै किसान हूँ, परन्तु कुटुम्ब मेरा शुद्ध है। और मेरे निकट दही भात तैयार है, क्या आप भोजन करेंगे? कुमारने भोजन करना स्वीकार किया। तब किसान उन्हे हलके पास बिठाकर आप पत्तल बनानेके लिए पत्ते लानेको गया। उसके चले जानेपर कुमारने हलकी मूठ पकड़कर बैलोको हाँकना शुरू किया। थोड़ीसी जमीन खुदी थी कि एक सोनेसे भरा हुआ घड़ा हलमे उलझ आया। उसे देख कुमारने सोचा, पूरा पड़ा ऐसे विद्याभ्याससे, जिसमें पहले ही यह उपद्रवकी जड़ निकली। यदि यह इसे देख लेगा, तो मेरे साथ अनर्थ करेगा। इस विचारके होते ही वह उस द्रव्यके कलशको मिट्टीके नीचे जैसाका तैसा

छुपा हल छोड़ स्वस्थतासे एक ओर बैठ रहा। इतनेमें किसान पत्ते लेकर आ गया। उसने एक गड्ढेमे रक्खे हुए पानीके घड़े तथा दही भातको निकाला और धन्यकुमारके पॉव धोकर पत्तलमे परोस प्रेमसे भोजन कराया।

भोजनके वाद धन्यकुमार राजगृहका रास्ता पूछकर चल पड़ा। इधर किसान आकर हलका फाल ज्यो ही जमीनमें दवाया कि वह कलश उसमें फिर उलझ गया। उसे देख किसान यह निश्चय करके धन्यकुमारके पीछे लगा "यह कलश उसी महाभाग्यका है, इसलिए मुझे लेना उचित नहीं है, उसीको लौटा देना चाहिए।" थोड़ी दूर चलकर कुमार उसे आता हुआ देख एक वृक्षकी छायामे बैठ गया। उसने जाकर नमस्कार किया और कहा;-आप अपने द्रव्यको छोड़कर क्यो चले आये? कुमारने उत्तर दिया;-भाई, मेरे पास द्रव्य कहॉसे आया? मै ऐसे ही आया था और तेरा दिया हुआ भोजन कर ऐसे ही जाता हूँ। फिर वह द्रव्य मेरा कैसे? किसान वोला:-इस खेतको मेरे परदादाने जोता, दादाने जोता, वापने जोता और अब तक मै जोतता रहा हूँ। परन्तु यह द्रव्य किसीको अब तक क्यो नहीं मिला? आज आप आये, तब ही मिला, इसलिए यह आपका ही है। तब कुमारने यह सोचकर कि इस विवादसे क्या प्रयोजन है? कहा;-भाई, खैर मेरा ही वह द्रव्य सही, परन्तु आज मै यह सब तुम्हे दे देता हूँ। सो तुम इसे यत्नके साथ भोगना। तब किसान आभारपूर्वक उस द्रव्यको ग्रहण कर और यह कहकर कि मै अमुक गॉव और अमुक शहरका एक पामर प्राणी हूँ, जिस समय सेवककी जरूरत हो, मुझे सूचना देना। मै अवश्य ही सेवामे हाजिर होऊँगा, अपने ग्रामको चला गया।

धन्यकुमारने वहॉसे आगे चलकर एक स्थानमे अवधिवोध मुनिको देखकर नमस्कार किया और धर्मश्रवण करके पूछा;-भगवन्, मेरे भाई मुझसे द्वेष क्यो करते है? माता अधिक स्नेह क्यो करती है? और किस पुण्यके फलसे मै ऐसा हुआ हूँ? मुनिराज वोले,—

मगध देशके भोगवती ग्राममे कामवृष्टि नामका ग्रामपति (मालगुजार) था। उसके मृष्टदाना नामकी भार्या और सुकृतपुण्य नामका नौकर था। कुछ दिनोमे मृष्टदाना गर्भवती हुई और कामवृष्टिकी मृत्यु हो गई। पीछे ज्यों २ गर्भ

बढ़ने लगा, त्यों त्यों कुटुम्बी जन मरने लगे। और जब बालक उत्पन्न हुआ, तब माताकी माता अर्थात् नानी चल बसी। पश्चात् सुकृतपुण्य नौकर तो ग्रामपति हो गया और मृष्टदाना बड़े कष्टसे दूसरेके घर पेट पालती हुई बालककी जीवनरक्षा करने लगी। इन अशुभ उदयोंके आनेसे उसने पुत्रका नाम अकृतपुण्य रख दिया। यह सुनकर धन्यकुमारने पूछा:— नाथ, किस पापके फलसे वह बालक उत्पन्न हुआ ? कृपा करके यह भी समझाइए। मुनि बोले;—

भूतिलक नगरमें एक धनपति नामका विपुल धनका स्वामी वैश्य रहता था। उसने एक बड़ा भारी जिनमंदिर बनवाया, जो कि नाना प्रकारके मणिमयी कंचनमयी उपकरणोंसे सुशोभित था। उन उपकरणोंको देखकर एक व्यसनीका मन चल गया। इसलिए वह मायाचारी ब्रह्मचारी बनकर अतिशय कायक्लेशादि करके देश भरमें क्षोभ उत्पन्न करता हुआ भूतिलक नगरमें आया। धनपति सेठ बड़े सत्कारसे उसे अपने जिनमंदिरमें ले गया। कुछ दिनके पश्चात् उन सम्पूर्ण उपकरणोंका उसे रक्षक बनाकर धनपति सेठ तो द्वीपान्तरको चला गया। इधर ब्रह्मचारी महाराजने अपनी तृप्तिके लिए थोड़े ही दिनोंमे वे सब उपकरणादि हजम कर डाले। भरपूर व्यसन सेवन किये। पापका फल भी जल्दी मिल गया। अर्थात् थोड़े ही समयमें जिनप्रतिमा विलोपनके पापसे उसको कुष्ट रोग उत्पन्न हुआ, जिससे उसका सारा शरीर गलने लगा। उस रोगमें सड़ते हुए वह मृत्युकी बाट देख रहा था कि धनपति सेठ देशान्तरसे लौटकर आ पहुँचा। उसे देखकर मायाचारी सोचने लगा कि यह क्यों आ गया, वहीं क्यों नहीं मर गया ? लौटकर नहीं आता तो अच्छा होता। इस प्रकारके रौद्रध्यानमें ही उसका शरीर छूट गया और वह सातवें नरकमें जा पहुँचा। वहाँके घोर दुःख सहते हुए आयु पूरी करके फिर वह स्वयंभूरमण समुद्रमें महामत्स्य हुआ। उस पर्यायको पूरी कर फिर सातवें नरकमें गया। छ्यासठ सागरतक नरकका दुःख भोग अनेक त्रस स्थावर योनियोंमे जन्म ले वह जीव जिसकी कथा चल रही है, अन्तमें अकृतपुण्य हुआ।

अकृतपुण्य एक दिन सुकृतपुण्यके चनोंके खेतपर गया और बोला;—हे सुकृतपुण्य, मैं तुम्हारे चने लुन दूँगा इसके बदलेमें क्या तुम मुझे कुछ देओगे ? तब " इसके पिताके प्रसादसे मैं ग्रामपति हुआ हूँ और आज यह हमसे

भिक्षा माँगता है ! विधि बड़ा विचित्र है । ” ऐसा विचार कर वह दुःखी होता हुआ अपनी थैलीमेसे कुछ द्रव्य निकाल कर उसे दिया, परन्तु वह द्रव्य उसके हाथमें पड़ते ही अंगार हो गया । तब अकृतपुण्य बोला;–सबको तो चने देते हो और मुझे अंगार क्यों ? क्या तुम्हें ऐसा करना उचित है ? सुकृतपुण्यने कहा;—अच्छा भाई, मेरा अंगार मुझे दे दो, और तुमसे इस राशिमेसे जितने लेते बनें, चने भरकर ले जाओ। तब वह एक पोटलीमें चने बाँधकर घर ले आया । उन्हें देखते ही माताने पूछा–इन्हें कहाँसे लाया ? पुत्रने उनके लानेके सब समाचार कहे । सुनकर उसे बड़ा दुःख हुआ कि मेरे सेवकने भी सेवकपना छोड़ दिया । इसलिए वह पुत्रको लेकर और उन्हीं चनोंका पाथेय (कलेवा) बना यहाँसे चल दी । कुछ दिनमें अवन्ती देशके सीमवाक ग्रामके बलभद्र नामके ग्रामपतिके घर प्रार्थना करके ठहर गई । ग्रामपतिने उसको अपना घर पूछा, परन्तु उसने कुछ उत्तर न दिया । परन्तु ग्रामपतिके बहुत आग्रह करनेपर अन्तमें मृष्टदानाने अपनी सब दुःखकथा उससे कह दी । तब ग्रामपतिने कहा–अच्छा, तुम मेरे यहाँ रसोई बनाया करो और यह बालक हमारे बछड़े चराया करेगा । इसके बदलेमें मै तुम दोनोंको भोजन वस्त्र दिया करूँगा । यह बात मा बेटोंने स्वीकार कर ली । तब ग्रामपतिने अपने घरके पास एक फूसकी झोपड़ी बनवा दी और वे दोनों उसकी सेवा करते हुए अन्न वस्त्र पा उसमें रहने लगे।

बलभद्रके सात पुत्र थे। उन्हें प्रतिदिन खीरका भोजन करते हुए देखकर बालक अकृतपुण्य अपनी मातासे खीर माँगता था । और इसपर वे सातों उसे मारते थे । परन्तु जब बलभद्र देख पाता था, तब उसकी रक्षा करता था । एक दिन खीर माँगते २ बालकके मुँहमें फैन आ रहा था । उसे देख बलभद्रने पूछाः–यह बालक दुर्बल क्यों हो रहा है ? माताने कहाः–खीर न मिलनेपर रोनेसे । सुनकर बलभद्रके दया आई और दूध, घी, चावल देकर कहाः–घरपर खीर बना आज इस बालकको प्रसन्नतासे भोजन कराओ । माताने ऐसा ही स्वीकार किया । घर जाकर पुत्रसे कहाः–बेटा, आज तुझे खीर खिलाऊँगी, इसलिए बछड़ा चराकर जल्दी आ जाना । पुत्रने “ऐसा ही करूँगा” कहकर जंगलकी राह ली । इधर माताने प्रेमसे खीर बनाई । पीछे दो पहर होनेपर पुत्र लौटकर आ गया, तब माता उसे घरकी रखवाली सौंपकर

पानी भरनेको गई और कह गई कि यदि कोई मुनि भोजनके लिए आवे तो उन्हें जाने नहीं देना। उन्हें भोजन कराकर अपन दोनों भोजन करेंगे। तदनुसार पुत्रने मासोपवासका पारणा करनेके लिए आये हुए एक मुनिराजको देख उन्हें वस्त्रादिरहित कोई महाभिक्षुक जान उनके सन्मुख जाकर कहा;—हे पितामह, मेरी माताने आज खीर बनाई है, सो तुम्हें भी उसका भोजन करावेगे। इसलिए जब तक वह न आ जावे, थोड़ी देर ठहरो। तब मुनि यह कहकर कि "यह हमारा धर्म नहीं है," जाने लगे। परन्तु बालक तत्काल ही उनके चरणोंसे लिपट गया और बोला;—पितामह, अतिशय अपूर्व खीरका भोजन करके जानेमें तुम्हारी क्या हानि है? इतनेमें मृष्टदाना भी आ गई। घड़े उतारकर उसने अन्तरीय वस्त्रको कंधेपर डाला (कंधेला मारा) और हे भगवन् हे परमेश्वर तिष्ठ! इस प्रकार यथोक्त विधिसे उसने पड़िगाहन किया। पश्चात् बलभद्रके घरसे उष्ण जल लाकर अतिशय विशुद्ध चित्तसे उसने मुनिराजको आहार दिया। अकृतपुण्य भी उस आहारदानसे हर्षित हुआ। बोला;—मेरे घर आज मुनिदेवने आहार किया, इसलिए मै धन्य हूँ।

वे मुनिराज अक्षीणमहानस ऋद्धिके धारी थे। इसलिए उन गरीबोंकी वह रसोई उस दिन मुनिके आहारके प्रभावसे ऐसी अटूट हो गई कि चक्रवर्तीका कटक भी भोजन कर जावै, पर क्षीण न हो। मुनिराजके चले जानेपर मृष्टदानाने अपने पुत्रको और फिर बलभद्रको सकुटुम्ब भोजन कराया। इसके पश्चात् उस गाँवके समस्त लोगोंको बर्तन भर भरकर खीर दी, परन्तु वह कम न हुई।

दूसरे दिन अकृतपुण्य खीरका भोजन करके जंगलको बछड़े चरानेके लिए गया। वहाँ एक वृक्षकी छायामें सो गया। इधर वक्त होनेपर बछड़े घर आ गये। परन्तु पुत्रको नहीं आया देख माता रोने लगी। तब बलभद्र उसके कहनेसे अपने दो तीन सेवको सहित बालकके ढूंढनेके लिए निकला। उधरसे वत्सपाल लौट रहा था कि इन्हें देख डरके मारे भागा और पर्वतपर चढ़ गया। वहाँ एक गुफाके द्वारपर जाकर बैठा। उस गुफामें जिन्हें आहार दिया था, वे ही मुनि विराजमान थे। उनपर उसकी बड़ी भारी श्रद्धा-भक्ति हुई। जब वहाँ बैठे हुए श्रावक

मुनिको नमस्कार करके और " णमो अरहंताणं " कहते हुए वहाँसे चलने लगे, तब वह भी " णमो अरहंताणं " कहता हुआ उनके साथ चल पड़ा। थोड़ी दूर गया था कि एक विकराल व्याघ्रने पकड़ लिया। सो " णमो अरहंताणं " इस महामंत्रका स्मरण करते हुए ही उसने प्राण छोड़ दिये। और सौधर्म स्वर्गमें बड़ी भारी ऋद्धिका धारी देव हुआ। भवप्रत्यय अवधिके बलसे यह देवपर्याय अपने पूर्व भवमें किये हुए दानादिके फलसे पाई जानकर वह जिनपूजादि सत्कृत्य करता हुआ सुखसे काल यापन करने लगा।

उधर सवेरे बलभद्रके साथ मृष्टदानाने जाकर अपने पुत्रका कलेवर देख बहुत शोक किया। तब उस पुत्रके जीव देवने आकर उसे समझाया और शोक दूर किया। उस समय वह अपने मनमें यह निदान करके कि आगेके जन्ममें यही देव मेरा पुत्र हो आर्यिका हो गई। और कुछ दिनमें समाधिसहित मरकर सौधर्म स्वर्गमें देवी हुई। पश्चात् बलभद्र भी संसारसे विरक्त हो गया और अन्तमें मरणकर उसी स्वर्गमें देव हुआ।

सौधर्म स्वर्गके दिव्य सुखोंको बहुत कालतक भोगकर बलभद्रका जीव तुम्हारा पिता धनपाल हुआ, मृष्टदानाका जीव तुम्हारी माता प्रभावती हुई, और अकृतपुण्यके जीवने तुम्हारी पर्याय पाई है। तथा बलभद्रके जो पहिले सात लड़के थे, वे ही अब धनपालके साथ पुत्र हुए हैं। वे पुत्र उस जन्ममें जिस तरह तुम्हें दुःख देते थे, उसी प्रकार अब भी द्वेष करते हैं। माता जैसे पहले प्यार करती थी, उसी तरह अब भी करती है। इस प्रकार मुनि महाराजके मुखसे अपने पूर्व भव सुन उन्हें नमस्कार कर धन्यकुमारने प्रसन्नतासे आगेको गमन किया।

क्रम क्रमसे चलते हुए कुछ दिनमें धन्यकुमार राजगृह नगरीके पास पहुँचा। वहाँ एक सूखे हुए वृक्षोंका वन था। उसका स्वामी एक कुसुमदत्त नामका वैश्य था, जो राजाके सम्पूर्ण मालियोंका नायक था। कुसुमदत्तने एक वार इस वनको सूखा जानकर काट डालनेका विचार किया परन्तु एक अवधिज्ञानी मुनिसे पूछनेपर उसने जाना कि कोई पुण्यात्मा पुरुष उस वनमें जावेगा, तो उसी समय वह हरा भरा और फल फूलोंसे शोभित हो जावेगा। इसलिए तबसे कुसुमदत्त उस वनकी रक्षा करता रहता था। सो उस दिन ज्यों ही धन्यकुमारने उस वनमें प्रवेश किया, त्यों

ही वहाँके सूखे सरोवर निर्मल जलसे परिपूर्ण और वृक्षादि हरे भरे तथा फलफूलसहित हो गये। धन्यकुमारने जिनदेवका स्मरण करके एक सरोवरमेसे थोड़ासा जल पिया और एक वृक्षकी छायामे बैठकर वह विश्राम करने लगा। उधर वनको हरा भरा देख, कुसुमदत्तको आश्चर्य हुआ। मुनि महाराजके वचनोका स्मरण करके उसने उन्हे मन ही मनमे नमस्कार किया और फिर वनमे प्रवेश करके धन्यकुमारको देखा। प्रणाम करके पूछा;-आप कहाँसे आये ? उसने कहा;-मै वैश्य हूँ। देशान्तरसे आ रहा हूँ। कुसुमदत्तने कहा;-मैं भी जैनी वैश्य हूँ। आप मेरे पाहुने है, मेरे घर चलिए। तब धन्यकुमार उसके साथ हो लिया। कुसुमदत्त सत्कारपूर्वक उसे अपने घर ले आया, और अपनी स्त्रीसे बोला;-ये मेरे भानजे है। स्त्री बहुत प्रसन्न हुई। उसने समझा कि यह मेरा जामाता (दामाद) होगा, इसलिए स्नान भोजनादिसे उनका खूब ही सत्कार किया। उसी समय कुसुमदत्तकी पुत्री पुष्पवती धन्यकुमारका रूप लावण्य देखकर उनपर अतिशय आसक्त हो गई।

एक दिन पुष्पवतीने धागा और बहुतसे फूल धन्यकुमारके सामने लाकर रख दिये। उन्होने उन फूलोंकी एक अतिशय सुन्दर माला बनाकर तैयार कर दी। पुष्पवती वहाँके राजा श्रेणिक और रानी चेलिनीकी पुत्री गुणवतीके लिए प्रतिदिन माला बनाकर ले जाया करती थी। सो उस दिन वह धन्यकुमारकी बनाई हुई मालाको लेकर राजमहलमे गई। गुणवतीने पूछा;-पुष्पवती; तुम तीन दिनसे क्यो नही आई। उसने कहा:-मेरे पिताके भानजे आये हुए है उनके सत्कारादि करनेके कारण मुझे आनेका अवकाश नही मिला। ये बाते हो ही रही थी कि गुणवतीकी दृष्टि उस नवीन मालापर गई। उसे आश्चर्यके साथ देखकर पूछा;-पुष्पवती, और आज यह माला किसकी बनाई हुई ले आई है ? यह तो तेरी बनाई हुई नहीं जान पड़ती। बड़ी सुन्दर माला बनी है। तब पुष्पवतीने कहा-उन्हीं धन्यकुमारकी बनाई हुई है। तब गुणवतीने हँस कर कहा;-तब तो तुझे बहुत अच्छा वर मिला है। यह सुनकर पुष्पवती लज्जित होकर चली गई।

एक दिन धन्यकुमार किसी धनीकी चित्र विचित्र दूकान देख वहाँ जा बैठा। उस दिन उसे व्यापारमें बहुत

भारी नफा हुआ। इसलिए वह धनी बोला;—मैं अपनी पुत्रीका विवाह तुम्हारे साथ करूँगा, क्योंकि तुम कोई बड़े पुण्यात्मा हो। दूसरे दिन कुमार शालिभद्र नामके प्रसिद्ध वैश्यकी दूकानपर जा बैठा। उस दिन उसे भी बहुत नफा हुआ। इसलिए वह भी बोला—मैं अपनी महाभगिनी पुत्री सुभद्रा तुम्हें दूँगा। फिर एक दिन वहाँके राजश्रेष्ठीने कीर्तिपुर नगरमें घोषणा करा दी कि जो वैश्यका पुत्र एक दिनमें एक कौड़ीसे एक हजार दीनार कमा सकता हो, उसे मैं अपनी पुत्री धनवती ब्याह दूँगा। यह घोषणा धन्यकुमारने सुनी। उसने उसी समय श्रेष्ठीके यहाँ जाकर कौड़ी ले, उससे मालालंबन तृण खरीदे किये। पश्चात् वे तृण मालीको देकर उसने फूल लिये और उनकी एक अतिशय सुन्दर माला गूँथकर तैयार की। उसे उद्यानको हवा खानेके लिए जाते हुए राजकुमारोंको दिखलाई। और उनके पूछनेपर उसका एक हजार दीनार मूल्य बतलाया। एक कौतुकी राजकुमार उसे एक हजार दीनार देकर ले गया। धन्यकुमारने वह द्रव्य ले जाकर श्रेष्ठीको सोंप दिया, और उसने की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार अपनी पुत्री धन्यकुमारको भेंट कर दी। इस प्रकार धन्यकुमारकी नाना प्रकारसे प्रशंसा सुन उसके रूप यौवनको देख गुणवती अतिशय आसक्त हो गई, और कुमारकी विरहचिन्तामें दिनपर दिन क्षीणशरीर अर्थात् दुर्बल होने लगी।

एक दिन धन्यकुमारने राजमंत्री आदिके पुत्रोंको द्यूतक्रीड़ामें (जूआमें) हरा दिया और राजाका पुत्र अभयकुमार अपने विज्ञानके (चतुराईके) मदमें अतिशय गर्वित हो रहा था, सो चन्द्रकवेधको वेध करके उसे भी जीत लिया; परन्तु इन सब बातोंसे वे सबके सब धन्यकुमारसे द्वेष करने लगे और उसके मार डालनेकी चिन्ता करने लगे।

यहाँ गुणवतीके दिनपर दिन दुर्बल होते जानेका कारण जानकर राजा श्रेणिकने अभयकुमारादिके साथ सलाह की कि धन्यकुमारको कन्या देनी चाहिए अथवा नहीं? अभयकुमारने कहा;— नहीं, क्योंकि उसका कुल ज्ञात नहीं है अर्थात् कोई यह नहीं जानता है कि धन्यकुमार किसी ऊँच कुलका है, अथवा नीच कुलका? श्रेणिकने कहा—यदि ऐसा होगा, अर्थात् धन्यकुमारके साथ गुणवतीका विवाह नहीं किया जावेगा, तो वह मर जावेगी। तब अभयकुमारने कहाः—जब तक वह जीता है, तब तक कुमारी दुःखी रहेगी। और जब तक वह निरपराधी है, तब तक उसका मारना

ठीक नहीं है। इसलिए कोई उपाय करके उसे मार डालना चाहिए। और वह उपाय यही है कि नगरके बाहर जो राक्षसका मन्दिर है, उसमें पहले बहुतसे मनुष्य जाकर मर गये हैं। इसलिए ऐसी घोषणा करा देनी चाहिए कि जो पुरुष उस राक्षसभवनमें प्रवेश करेगा, उसे आधा राज्य और अपनी गुणवती पुत्री दूँगा। इस घोषणाको सुनकर घमंडसे वह वहाँ अवश्य जावेगा और मारा जावेगा। राजाने यह बात स्वीकार कर ली। और सब लोगोंके निषेध करनेपर भी धन्यकुमार उस राक्षसभवनमें गया। परन्तु उसके दर्शन करते ही वह राक्षस उपशान्तचित्त हो गया। उसने सम्मुख आकर नमस्कार किया और धन्यकुमारको दिव्य सिंहासनपर बैठाकर कहा;—हे स्वामिन्, इतने दिन तक आपका भांडागारिक (खजांची) बनकर मैं प्रसन्नतासे इस द्रव्यकी रखवाली करता रहा हूँ। अब आप आ गये। इसलिए यह सब धनभंडार स्वीकार कीजिए। मैं आपका सेवक हूँ। जिस समय आप स्मरण करेंगे, मैं हाजिर होऊँगा। इतना कह राक्षस तो अदृश्य हो गया। धन्यकुमार रात्रिभर वहीं रहा। उधर जब कुमारकी राक्षसमन्दिरमें जानेकी बात सुनी, तब ऐसी प्रतिज्ञा करके कि जो गति उनकी होगी, वही हमारी होगी, गुणवती आदिने भी वह रात जिस तिस तरहसे व्यतीत की।

प्रातःकाल हुआ। धन्यकुमार मन्दिरमेंसे निकलकर नगरकी ओरको रवाना हुआ। उन्हें देख राजा तथा नगरनिवासियोंको बड़ा भारी कौतुक तथा आश्चर्य हुआ। पश्चात् राजा अभयकुमारादि पुत्रोंके साथ उसे लेनेके लिए आधी दूर सम्मुख गये। उन्हें राजमहलमें ले जाकर बड़ा भारी सत्कार किया और अवसर पाकर पूछा—आपका कुल क्या है? तब धन्यकुमारने कहाः—मैं उज्जयनीके एक वैश्यका पुत्र हूँ और तीर्थयात्राकेलिए निकला हूँ। इससे राजाको संतोष हुआ और उसने गुणवती आदि सोलह कन्याओंके साथ धन्यकुमारका विवाह करके अपना आधा राज्य दे दिया। तब धन्यकुमार उस राजमहलके आसपास नगर बनाकर उसीमें राज्य करता हुआ सुखसे दिन काटने लगा।

उधर उज्जयनीमें धन्यकुमारके चले आनेपर राजादिकोंको बहुत दुःख हुआ। मातापिताके दुःखका तो कहना ही क्या? उसी समय धन्यकुमारको जो नव निधियाँ प्राप्त हुई थीं, उनके रक्षक देवोंने उन्हें (धन्यकुमारके माता

पिताओंको) माता पुत्रोंसहित उस वसुमित्र श्रेष्ठीके घरसे निकाल दिया। वे सबके सब अपने पहले घरमें आकर रहने लगे। यह देख पुरवासियोंको अचरज हुआ। वे लोग यह भी कहने लगे कि अहो! देखो तो धनपाल कैसा कठोर वज्रहृदय है, जो ऐसे महाभाग्य पुत्रके चले जानेपर भी जीता है। और भी जिसके जीमें जो आया, सो कहकर धनपालकी निंदा की।

कुछ दिनोंके बाद धनपाल श्रेष्ठीके ऐसा अशुभका उदय हुआ कि उन्हें जीविकाकी चिन्ता हो गई। भोजनका भी ठिकाना नहीं रहा। लाचार उसी राजगृही नगरीमें जहाँ कि धन्यकुमार राज्य करता था, धनपाल सेठ अपने भानजे शालिभद्रका पता लगाते हुए निकले। धन्यकुमारके महलके सामने वे शालिभद्रका घर पूछ रहे थे कि धन्यकुमारकी दृष्टि उनपर पड़ी। तत्काल ही समीप आकर वे पिताके चरणोंपर गिर पड़े। यह देख लोग आश्चर्य करने लगे कि इस रास्तागीर बनियेके पैरोंपर इतना बड़ा राजा क्यों पड़ गया। धनपालने भी कहाः-राजन्, इतने बड़े प्रतापी यशस्वी राजा होकर आप यह क्या करते हैं? आप पृथ्वीपति हैं, और मैं एक मन्दभागी वैश्य हूँ। आप मेरे नमस्कारके योग्य हैं। तब पुत्रने कहाः-नहीं, आप पिता हैं और मैं आपका पुत्र हूँ। यह सुनते ही धनपालका हृदय भर आया। पुत्रको गले लगा लिया। दोनों ही परस्पर मिलापके आनन्दमें रोने लगे। तब मंत्री आदिने बड़ी कठिनाईसे उन्हें रोका। पीछे सबके सब राजमहलमें गये। वहाँ धन्यकुमारने अपनी सब कथा कह सुनाई और अपनी माता आदिके कुशल समाचार पूछे। धनपालने कहाः-सब जीते हैं, परन्तु भोजनके लिए वहाँ किसीको भी कुछ नहीं है। यह सुन धन्यकुमारने तत्काल ही बहुतसे सेवक भेजकर सब कुटुम्बियोंको बुलवा लिये। उनके आगमनके समाचार सुनकर धन्यकुमार बड़ी भारी विभूतिके साथ आधी दूरतक लेनेके लिए गया। मिलते ही पहले माताको नमस्कार किया और पीछे भाइयोंको। उस समय अर्थात् धन्यकुमारके नमस्कार करते समय सातों भाई लज्जासे नीचा मुख करके रह गये। तब धन्यकुमारने कहाः-भाइयो, आप लोगोंके प्रसादसे मुझे यह राज्य मिला है। आप लोग क्यों व्यर्थ लज्जित हो रहे हैं? अब आपके जीमें जो कुछ शल्य हो, उसको

निकाल दीजिए। भाईकी इस प्रकार उदार वाणी सुन वे सब भाई निःशल्य हो गये। पश्चात् सबको नगर तथा महलमें ले गया। और खूब सेवा आदर कर सबको यथायोग्य ग्रामादि दे धन्यकुमार सुखसे रहने लगा।

एक दिन अपनी सुभद्रा स्त्रीका मुख उदास देखकर धन्यकुमारने पूछाः-प्रिये, तुम्हारा मुख विरूप क्यों हो रहा है? सुभद्राने कहा;-मेरा भाई शालिभद्र घरमें वैराग्य भावोंका अभ्यास करता हुआ रहता है, इसका मुझे बड़ा भारी दुःख है। तब धन्यकुमारने कहा;-प्रिये, मैं उन्हें जाकर समझा दूँगा, वे वैराग्य नहीं लेंगे। तुम शोकको छोड़ दो। इसके पीछे धन्यकुमार अपनी ससुराल गया। वहाँ अपने सालेसे पूछा;-आप आज कल मेरे यहाँ क्यों नहीं आते है? वे बोले;-आज कल मैं तपका अभ्यास किया करता हूँ, इससे आपके यहाँ नहीं पहुँच पाता। धन्यकुमारने कहा;-यदि आपकी इच्छा तप करनेकी है, तो फिर अभ्यास करनेसे क्या? श्रीवृषभदेव आदि तीर्थंकरोंने क्या तपका अभ्यास किया था? उन्होंने तो विना अभ्यास किये ही ऐसा कठिन तप किया था, जो किसीसे न हो सके। अच्छा आप तो अभ्यास ही किया करें, परन्तु मैं तो अब तप ही ले लेता हूँ। मुझे अभ्यास नहीं करना है। ऐसा कह धन्यकुमारने घर आकर अपने धनपाल नामके बड़े पुत्रको राज्य दिया और राजा श्रेणिक आदि सबसे क्षमा माँगकर श्रीवर्द्धमान भगवानके समवसरणमें माता पिता भाई तथा शालिभद्र आदि बहुतसे लोगोंके साथ जिनदीक्षा ले ली।

कुछ कालमें सम्पूर्ण आगमोंके धारी होकर और बहुत कालतक तपस्या करके तथा अन्तमें सल्लेखना करके प्रायोपगमन विधिसे श्रीधन्यकुमार मुनिने शरीर छोड़ा। और सर्वार्थसिद्धि स्वर्गके सुख प्राप्त किये। धनपालादि अपनी२ तपस्याके अनुसार यथायोग्य गतियोंको प्राप्त हुए।

इस प्रकार वत्सपाल एक वारके मुनिदानके प्रभावसे ही इस प्रकार सुखको प्राप्त हुआ। फिर अन्य लोग क्यों नहीं मुनिदानके फलसे सब प्रकारके सुखोंको पावेंगे?

---

(१६) अग्निला ब्राह्मणीकी कथा ।

आर्य खंड सुराष्ट्र देशके गिरि नगरमें भूपाल राजा राज्य करता था। वहाँ एक सोमशर्मा नामका ब्राह्मण अपनी अग्निला स्त्री और दो पुत्रोंके सहित सुखपूर्वक रहता था। एक पुत्रका नाम शुभंकर और दूसरेका प्रभकर था। पहला पुत्र सात वर्षका था और दूसरा पाँच वर्षका।

एक दिन सोमशर्माके घर श्राद्धका दिन आया। उस दिन उसने बहुतसे ब्राह्मणोंका न्योता किया था। सो पिंडदान करनेके लिए सबके सब सोमशर्माके साथ किसी जलाशयपर गये। इधर दो पहरको गिरनार पर्वतपर रहनेवाले श्रीवरदत्त महामुनि मासोपवासके पारणेको गिरि नगरमें चर्याके लिए आये। उन्हें किसीने नहीं देखा। एक अग्निला ब्राह्मणीकी दृष्टि उनपर पड़ी। अग्निलाको जैनियोंके निरन्तर संसर्गसे जैनधर्मका कुछ बोध हो गया था इसलिए वह मुनिके सम्मुख जाकर उनके चरणोंपर पड़ गई। और बोली;-हे स्वामिन्, मैं ब्राह्मणी हूँ तथापि मेरे माता पिता जैनी हैं। इसलिए मेरे यहाँ आहारकी शुद्धि है। कृपा करके हे परमेश्वर, मेरे घर तिष्ठिए। इस प्रकार यथोक्त विधिसे मुनिकी स्थापना की। वरदत्त मुनि कृपासागर थे। ब्राह्मणीकी भक्तिको देख हर्षित हुए और ठहर गये। तब अग्निलाने बड़े भारी आनन्दके साथ नवधा भक्ति और दाताके सातों गुणसहित मुनिको शुद्ध आहार दान दिया। उस समय उसके हृदयमें अपने पतिका बड़ा भारी डर लग रहा था, तो भी उसे देवगति आयुका बंध हुआ।

मुनि निरन्तराय आहार लेकर अग्निलाके घरसे लौटे और उसी समय पिंडदान करके आते हुए ब्राह्मणोंने घरमें प्रवेश किया। सो मुनिराजको देखकर वे क्रोधरूपी अग्निसे जल उठे। और यह कहकर चलने लगे कि हे सोमशर्मा, तुम्हारी रसोई क्षपणकने (जैन मुनिने) जूठी कर दी, इसलिए ब्राह्मणोंके भोजन करने योग्य नहीं रही। तब सोमशर्मा "महाराजाओ, मैं लक्ष्मीवान् हूँ इसलिए जो आप लोगोंके जीमें आवै, सो प्रायश्चित्त देकर श्राद्धकार्य कीजिए।" ऐसा कहकर ब्राह्मणोंके चरणोंमें पड़ गया। उसकी भक्ति और लक्ष्मी देखकर कई एक लोभी ब्राह्मण बोले—

सोमशर्मा उत्तम ब्राह्मण है, इसलिए विप्रके वचनसे सब ही कुछ शुद्ध है। सो प्रायश्चित्त देकर हमारी समझमे भोजन करना उचित है। यदि न मानो, तो शास्त्रप्रमाण देख लो। इसके सिवाय स्मृतिकार कहते है;—

अजाश्वा मुखतो मेध्या गावो मेध्यास्तु पृष्ठत ।
ब्राह्मणा· पादतो मेध्या· स्त्रियो मेध्यास्तु सर्वत· ॥

अर्थात्–बकरी और घोड़ा मुखसे पवित्र है, गाय पूछसे पवित्र है; ब्राह्मण पांवोंसे पवित्र है, और स्त्रियॉ सब ओरसे सब प्रकारसे पवित्र है। इसलिए इसे प्रायश्चित्त देकर बकरी तथा घोड़के मुखसे रसोईको शुद्ध करके भोजन करना चाहिए। परन्तु कोई २ बोले कि अन्यान्य दोपोका प्रायश्चित्त तो है, परन्तु यतिके भोजन करानेका कोई प्रायश्चित्त हो, तो उसका निरूपण करो। इस प्रकार परस्पर विवाद करके अन्तमे वे सब ब्राह्मण पावोंमे पड़े हुए भी सोमशर्माको छोड़कर अपने २ घर चले गये।

इसके पीछे सोमशर्माने घरमे जाकर अग्निलाके सिरके बाल पकड़कर यह कहते हुए डंडोसे उसे मारी कि "मै उत्तम कुलका ब्राह्मण इस पापिनी जैनीकी पुत्रीके साथ विवाह न करता, तो इतनी विडम्बनामे क्यो पड़ता?" मारके मारे अग्निला मूर्च्छित हो गई, गिर पड़ी। तब सोमशर्मा छोड़कर चला गया। पीछे सचेत होनेपर अग्निला अतिशय दुःखी हुई और छोटे लड़केका हाथ पकड़कर तथा बड़े लड़केको पीछे करके और लोगोंके मुंहसे यह जानकर कि मुनिराज गिरनार पर्वतपर रहते है, पर्वतकी ओरको चली। मार्गमे एक भिल्लिनीको देखकर अग्निलाने पूछा;–गिरिनारका रास्ता कौनसा है? भिल्लिनी बोली–माता, तुम्हारा वहॉ क्या प्रयोजन है? अग्निलाने कहाः–इससे तुम्हें क्या? तुम तो मुझे रास्ता बतला दो। भिल्लिनी बोली;–तुम जैसी अकेली स्त्रीसे सिह व्याघ्रादि हिंसक पशुओसे भरे हुए इस पर्वतपर कैसे प्रवेश किया जावेगा? अग्निलाने कहा;—वहॉ मेरे गुरु विराजमान है। उनके प्रभावसे मेरा सब प्रकारसे कल्याण होगा। कोई डर नही है। तुम तो रास्ता बतला दो। तब उस भिल्लिनीने लाचार होकर मार्ग बतला दिया। उसके अनुसार अग्निला पर्वतपर पहुँची। वहॉ एक भीलसे मुनिके विराजमान होनेका स्थान पूछा। दो छोटे २ सुकुमार

बालकोंको साथ लिये हुए उस स्त्रीको देख उस भीलको दया आ गई। इसलिए उसने पर्वतकी कटिमें जो गुफा थी, उसमें विराजमान मुनिको जाकर दिखला दिये। अग्निला मुनिको नमस्कार कर समीप बैठ गई और कहने लगी–भगवन्, स्त्रीका जन्म बड़ा दुःखदायी है। इसलिए इस पर्यायको नष्ट करनेवाली जिनदीक्षा मुझे दीजिए। मुनिराजने कहा;—माता, जान पड़ता है कि तुम क्रोधित होकर यहाँ आई हो। इसलिए तत्काल ही तुम्हें दीक्षा नहीं दी जा सकती और यहाँ तुम्हारे ठहरनेमें लोकनिन्दाका डर है। इसलिए यहाँसे जाकर जबतक तुम्हारा कोई संबंधी न आवे, तबतक किसी वृक्षके नीचे ठहर जाओ। यह सुनकर विनयवती अग्निला वहाँसे उठकर किसी ऊँचे शिखरके वृक्षके नीचे जा ठहरी। वहाँ पुत्रोंने कहा,–हमको प्यास लगी है। तब अग्निलाके पुण्यके प्रभावसे वहाँ एक सूखा तालाब अतिशय मीठे निर्मल जलसे भर गया। सो उसका जल उसने बालकोंको पिलाया। थोड़ी देरमें उन्हें भूख लगी। तब वही वृक्ष कल्पवृक्ष हो गया। सो उसके द्वारा बालकोंने अपनी भूख शान्त की। अग्निला इन सब कौतुकोंको धर्मके फल जान बहुत हर्षित हुई और धर्ममें दृढ़ श्रद्धा करके सुखसे ठहरी।

उधर उसी दिन गिरि नगरमें आग लगी। सो सोमशर्माके घरको छोड़कर राजभवन अन्तःपुर आदि सबके सब घर जलकर भस्म हो गये। सब लोग नगर छोड़कर भागे और बाहर एक जगह इकट्ठे हुए। वहाँ सब बोले;–बड़े आश्चर्यकी बात है कि चारों ओर जिसके आग प्रचंड हो रही है, वह सोमशर्माका घर ज्योंका त्यों खड़ा हुआ है। उसे आँच भी न लगी। यह क्या बात है?। कहीं यह सब लीला उस क्षपणककी (जैनमुनिकी) न हो। जान पड़ता है, कोई देव क्षपणकके वेशमें सोमशर्माके यहाँ भोजन करनेके लिए आया था। नहीं तो क्या उसका घर बच सकता था? इस प्रकार विचार करके वे सब ब्राह्मण जिनका सोमशर्माने न्योता किया था, तथा अन्य भी बहुतसे ब्राह्मण उसकी रसोईको पवित्र मान करके सोमशर्माके यहाँ गये और बोले;–तुम पुण्यवान् हो। क्षपणकके वेशमें तुम्हारे यहाँ कोई देव भोजन कर गया है। इसलिए तुम्हारे यहाँकी रसोई अतिशय पवित्र है। हम लोगोंको आहार कराओ। तब सोमशर्माने

उन सबको तथा और भी ब्राह्मणोंको बुलाकर यथेष्ट भोजन कराया। वे मुनि अक्षीणमहानस ऋद्धिके धारी थे। सो दूध और दहीको छोड़कर (?) वह रसोई सब प्रकारके भोजनोंसहित अटूट हो गई। सम्पूर्ण नगरनिवासियोंने जीम लिया, परन्तु कम नहीं हुई। इससे सब लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। और सब लोग मुनिदानमें अनुरक्त हो गये।

दूसरे दिन सोमशर्माको चिन्ता हुई। वह दुःखी हो कहने लगाः-हाय! मुझ पापीने उस महासती पुण्यमूर्ति निरपराधिनी अग्निलाको व्यर्थ ही मारा। न जाने वह कहाँ गई होगी। यहाँ वहाँ देखता हुआ, विलाप करने लगा। उस समय किसीने कह दिया-तुम्हारी स्त्री गिरिनार पर्वतपर गई है। तब वह कुछ लोगोंके साथ पर्वतको चला। उसे आता हुआ देखकर अग्निलाने यह सोच कर कि "ये आ रहे हैं, सो मुझे फिर भी कुछ न कुछ दुःख दिये विना नहीं रहेंगे।" पुत्रोंको वहीं बैठाकर आप वहाँसे गिरकर मर गई। और सोमशर्माके वहाँ पहुँचनेके पहले ही व्यन्तर लोकके दिव्य महलमें उत्पादशय्यापर अन्तर्मुहूर्तमें नवयौवनसम्पन्न, धातुरहित, सहज वस्त्र अलंकार मालाओंसे शोभित, सुगंधित निर्मल देह, अणिमा गरिमा आदि आठ गुणोंसे पुष्ट, जैनी जैनोंमें वात्सल्यभाव रखनेवाली, सम्पूर्ण द्वीपोंके रमणीक पर्वत, नदी, वृक्षप्रदेशोंमें क्रीड़ा करनेवाली, और अनेक परिवारकी देवियोंसे शोभित, श्रीमान् नेमिनाथ भगवानके शासनकी रक्षा करनेवाली, कांचिका नामकी यक्षी उत्पन्न हो गई। सो तत्काल ही भवप्रत्यय अवधिज्ञानके बलसे अपनी उत्पत्तिका कारण जान धर्मानन्दमूर्ति और लोगोंको मन हरण करनेवाली अग्निलाका रूप बनाकर पुत्रोंके पास जा बैठी। इतनेमें सोमशर्मा वहाँ आया, और उसे अपनी स्त्री जानकर बोलाः-हे प्रिये, मुझ पापीने विना परीक्षा किये हुए जो कुछ अपराध किया है, वह सब क्षमा करो। तब उसने कहा;-मैं तुम्हारी स्त्री नहीं हूँ। देखो, वह तुम्हारी स्त्री है। ऐसा कहकर अग्निलाका कलेवर उसे दिखलाया। परन्तु उसे श्रद्धान नहीं हुआ। वह यह कहकर कि नहीं, तुम्हीं मेरी स्त्री हो, उसका वस्त्र पकड़नेके लिए ज्यों ही समीप गया, त्यों ही वह दिव्य देह ऊपरको आकाशमें चली गई, और बोली;-कहो, अब मैं तुम्हारी स्त्री कैसे हूँ? तब सोमशर्माने आश्चर्ययुक्त होकर पूछा;-देवी,

तुम कौन हो ? कांचिकाने अपनी सब कथा कह सुनाई और समझाया कि इन लड़कोंको लेकर घर जाओ। सोमशर्मा बोला;–अब मुझे घरसे क्या प्रयोजन है ? जो तुम्हारी गति हुई है, वही मेरी होगी। यक्षीने कहा–यदि ऐसा करोगे, तो ये बालक मर जावेगे। इसलिए इन्हें लेकर घर जाओ। तब वह बोला;–यह तो मै भी जानता हूँ। इसके पीछे वह अपने घर जाकर, अपने गोत्रजोंको दोनो पुत्र सौप, जिनधर्मकी भावना भायकर, अपनी स्त्रीके स्वर्गगमनकी बात सब ब्राह्मणोंको सुना, और उन्हें अणुव्रत महाव्रतोके अनुकूल करके स्वयं पर्वतपर गया और वहाँसे (किसीके बिना जाने) गिरकर मर गया। और अंबिकादेवीका वाहन सिहजातिका देव हुआ।

पीछे वे शुभंकर प्रभंकर दोनो पुत्र जिनधर्मके अतिशय श्रद्धालु होकर बहुत समयतक चार प्रकारका गृहस्थधर्म पालकर श्रीनेमिनाथ भगवानके समवसरणमे दीक्षित हो गये। और उत्कृष्ट तप करके केवलज्ञानी हो मोक्षलक्ष्मीके स्वामी हुए।

इस प्रकार पराधीन स्त्रीकी जाति अग्निला पतिके डर सहित भी एक बार मुनियोंको आहार देकर स्वर्गके महान् सुखोंको प्राप्त हुई। फिर अन्य स्वतंत्र पुरुष सर्वदा दान करे, तो ऐसा कौनसा सुख है, जो उन्हे प्राप्त न हो ?

इति श्रीकेशवनन्दिदिव्यमुनिशिष्यश्रीरामचन्द्रमुमुक्षुविरचित पुण्यास्रवकथाकोषकी परवारवंशोद्भव श्रीनाथूरामप्रेमीकृत सरलभाषाटीकामें दानफलवर्णन-षोडशक समाप्त हुआ।

अथ ग्रन्थप्रशस्तिः ।

यो भव्याब्जदिवाकरो यमकरो मारेभपञ्चाननो, नानादुःखविधायिकर्म्मकुभृतो वज्रायते दिव्यधीः।
यो योगीन्द्रनरेन्द्रवन्दितपदो विद्यार्णवोत्तीर्णवान्, ख्यातः केशवनन्दि देवयतिपः श्रीकुन्दकुन्दान्वयः॥ १॥
शिष्योऽभूत्तस्य भव्यः सकलजनहितो रामचन्द्रो मुमुक्षु–र्ज्ञात्वा शब्दापशब्दान् सुविशदयशसः पद्मनन्द्याह्वयाद्वै।
वन्द्याद्वादीभसिंहात्परमयतिपतेः सोऽव्यधाद्भव्यहेतो–र्ग्रन्थं पुण्यास्रवाख्यं गिरिसमितिमितैर्दिव्यपद्यैः कथार्थैः॥ २॥

चन्द्रादित्यसदाऽम्बर ॥ ३ ॥

सार्द्धैश्चतुःसहस्रैर्या, मितः पुण्यास्रवाह्वयः । ग्रन्थः स्थेयात् सतां चित्ते, चन्द्रादित्वसदाऽम्बर ॥ ४ ॥

कुन्दकुन्दान्वये ख्याते, ख्यातो देशिगणाग्रणी । बभूव संघाधिपः श्रीमान्पद्मनन्दी त्रिरात्रिकः ।

वृषाभिरूढो गणपो गुणाद्यतो, विनायकानन्दितचित्तवृत्तिकः ।

उमासमालिङ्गितईश्वरोपमस्ततोप्यभून्माधवनन्दिपण्डितः ॥ ५ ॥

सिद्धान्तशास्त्रार्णवपारदृश्वा, मासोपवासी गुणरत्नभूपः । शब्दादिवार्थो विबुधप्रधानो, जातस्तत श्रीवसुनन्दिसूरिः ॥ ६ ॥

दिनपतिरिव नित्यं भव्यपद्माब्धिबोधी, सुरगिरिरिव देवैः सर्वदा सेव्यपादः ।

जलनिधिरिव शश्वत् सर्वसत्त्वानुकम्पी, गणभृदजनि शिष्यो मौलिनामा तदीयः ॥ ७ ॥

कलाविलासः परिपूर्णवृत्तो, दिगम्बरालङ्कृतिहेतुभूतः । श्रीनन्दिसूरिर्मुनिवृन्दवन्द्य–स्तस्मादभूच्चन्द्रसमानकीर्तिः ॥ ८ ॥

चार्वाकबौद्धजिनसाङ्ख्यशिवाद्विजानां वाग्मित्ववादिगमकत्वकवित्ववित्तः ।

साहित्यतर्कपरमागमभेदभिन्नः, श्रीनन्दिसूरिगगनाङ्गणपूर्णचन्द्रः ॥ ९ ॥

प्रशस्तिका भावार्थ ।

भव्यरूपी कमलोंको प्रमुदित करनेवाले सूर्य, यमके धारण करनेवाले, कामदेवरूपी हाथीके लिए पंचानन सिंह, नाना प्रकारके दुःखोंके करनेवाले कर्मरूपी पर्वतोंको नष्ट करनेमें जिनकी दिव्यबुद्धि वज्रके भावको धारण किये है, जिनके चरणोंकी योगीश्वर और राजा वन्दना करते हैं, विद्यारूपी समुद्रको तर करके जो पार पहुंच गये हैं, ऐसे श्री केशवनन्दि भट्टारक श्रीकुन्दाकुन्दान्वयमें प्रसिद्ध हुए ॥ १ ॥ उनके एक सकल जनोंका हित करनेवाला श्रीरामचन्द्र मुमुक्षु नामका भव्य शिष्य हुआ। जिसने निर्मल यशवाले श्रीपद्मनन्दि मुनिसे तथा वंदनीय वादीभसिंह मुनिराजसे व्याकरणशास्त्र पढ़कर भव्यजनोंके लिए यह ५६ सुन्दर पद्यों तथा कथाओंवाला पुण्यास्रवग्रन्थ निर्माण किया ॥ २ ॥ सज्जनोंके हृदयरूपी आकाशमें यह साढ़े चार हजार श्लोकप्रमाण पुण्यास्रवग्रन्थ निरन्तर विराजमान रहो ॥ ३ ॥

श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकी परम्परामें देशीय गणके अग्रगण्य और संघके स्वामी श्रीपद्मनन्दि नामके एक त्रिरात्रिक (?) आचार्य हुए ॥ ४ ॥ पश्चात् उनके शिष्य एक माधवनन्दि नामके पंडित हुए, जो महादेवकी उपमाको धारण किये हुए थे। महादेव वृष अर्थात् बैलपर आरूढ़ रहते थे और माधवनन्दि वृष अर्थात् धर्ममें आरूढ़ थे। महादेव जिस तरह गणाधीश तथा गुणोद्यत थे, वैसे ही ये देशीयगणके स्वामी तथा गुणप्राप्त करनेमें उद्यत थे। महादेवके चित्तकी वृत्ति विनायक अर्थात् गणेशसे आनन्दित रहती थी, इधर इनकी विनायक अर्थात् विघ्नोंसे आनन्दित रहती थी। महादेव उमाका (पार्वतीका) आलिङ्गन किये रहते थे और माधवनन्दि उमा अर्थात् शान्ति अथवा कीर्तिमें निमग्न रहते थे ॥ ५ ॥ शब्दसे जैसे अर्थ उत्पन्न होता है, उसी प्रकार उन माधवनन्दि पंडितसे सिद्धान्तशास्त्ररूपी समुद्रके पार देखनेवाले मास मासका उपवास करनेवाले, गुणरूपी रत्नोंसे भूषित और पंडितोंमें प्रधान श्रीवसुनन्दिसूरि नामके आचार्य हुए ॥ ६ ॥ पश्चात् उनके एक मौलिनामके शिष्य हुए, जो भव्यजनरूपी कमलोंको सूर्यके समान प्रफुल्लित करते थे, सुमेरुगिरिके समान देवता जिनकी सर्वदा सेवा करते थे, और समुद्रके समान सम्पूर्ण प्राणियोंपर जो अनुकम्पा करते थे ॥ ७ ॥ पश्चात् उनसे चन्द्रमाके समान कीर्तिके धारण करनेवाले, मुनिगणोंके द्वारा वन्दनीय, कलाविलास, परिपूर्ण वृत्तिवाले, और दिगम्बरियोंके शृङ्गारस्वरूप श्रीनन्दिसूरि या केशवनन्दि नामके आचार्य (ग्रन्थकर्ताके गुरु) हुए ॥८॥ (नवम श्लोकका सम्बन्ध ठीक नहीं बैठता है, श्लोक अशुद्ध जान पड़ता है।)



पुण्यास्रव-कथाकोष समाप्त।

पुण्यास्रव-कथाकोष।